JEEVAN SAKHA

1946

G. K. V.
B.
R

078769.

COMPILED

078769

078769

विषय सूची

१—शुभ संदेश—श्रद्धेय बाबू पुरुषोत्तमदास टण्डन १

२—जल-तत्त्व—श्री गंगाप्रसाद गौड़, 'नाहर' २

३—संक्रामक रोग तथा वैज्ञानिक जलोपचार—डा० के० शंकरन् नायर, सेवाग्राम, वरधा ५

४—जल-चिकित्सा का सिद्धान्त—डा० कुलरंजन मुकर्जी, कलकत्ता १५

५—जलोपचार—क्रिया एवं प्रतिक्रिया—श्री विठ्ठलदास मोदी, संचालक, (आरोग्य मन्दिर गोरखपुर) १७

६—जलोपचार की प्रमुख विधियां—डा० खुशीराम दिलकश, २३

७—जापानी हॉट दॉथ—लेखक—डाक्टर सुरेन्द्रप्रसाद गर्ग, एम० ए० ३४

८—जल-तत्त्व—श्री सुरेन्द्रनाथ तिवारी, १४ तुलाराम बाग प्रयाग ३५

९—बच्चों की बीमारियां—डा० कुलरंजन मुकर्जी कलकत्ता ३७

१०—फादर नीप—उनकी चिकित्सा-पद्धति—श्री पुरुषोत्तमदास मोदी ४१

११—स्नान से लाभ और उसके प्रकार—श्री महेन्द्रकुमार 'मानव', एम० ए० ४५

१२—ठंडे पानी की पट्टी की उपयोगिता—श्री हीरालाल ४७

१३—अन्दरूनी सफाई—श्री विश्वम्भरनाथ द्विवेदी, एन० डी०, डी० वाई, ४९

१४—आयुर्वेद में जल का स्थान—श्री महेन्द्रनाथ पांडेय, आयुर्वेद-विशारद, ५५

१५—सौर जल-चिकित्सा (Chromo-Hydro-pathy)—श्री श्रीकृष्ण शर्मा, बी० ए०, एन० डी० डी० वाई ६१

१६—जल ही अमृत है !—प्रोफेसर रामचरण महेन्द्र, एम० ए०, डी लिट्०, डी० डी० ६७

१७—खनिज जल—श्री कमलेश श्रीवास्तवा, बी ए० ७०

१८—जल-चिकित्सा का महत्त्व—डा० कृष्ण वर्मा, एन० डी, संचालक, नेचर क्योर हास्पिटल, मलाड, बम्बई ७३

१९—जल तथा आरोग्य—श्री श्रीकृष्ण शर्मा, ८१

२०—जल चिकित्सा का इतिहास—श्री कामता प्रसाद अग्रवाल एम० ए० एन० डी० डी० वाई, विशारद ८७

२१—संपादकीय १०१

वे जीवन से निराश हो चुके थे !

किन्तु वही अब देखिए क्या कहते हैं !

“दमा का दम तोड़ने के लिए मैंने क्या नहीं किया ? डाक्टरों और वैद्यों का इलाज विफल रहा।...मैं बिलकुल ही ना उम्मीद होकर **प्राकृतिक स्वास्थ्य गृह के संचालक डा० बालेश्वर प्रसाद सिंह,** के पास पहुँचा।...पेट की सफाई कर मैं लग गया अपनी चिकित्सा में। वस्त्रधौति की आज्ञा दी गई।...यह तो जारी था ही मैंने कुछ आसान और प्राणायाग भी शुरू किया...वहीं अस्पताल में ही ये सब उन लोगों की निगरानी में करता रहा। धीरे धीरे दमा की शिकायत जाती रही।...इस तरह कड़े नियम से रह कर मैंने उस रोग से छुटकारा पाया जिसे बड़े बड़े नाम वाले डाक्टर लाइलाज और वैद्य असाध्य बतलाते हैं। यह सब कृपा है प्राकृतिक चिकित्सा की और उसके प्रचारकों की भी।”

—कुँवर कौशलेश प्रसाद शर्मा, बरांव राज्य

इसी तरह के न जाने कितने असाध्य और निराश रोगियों को प्राकृतिक चिकित्सा-विधि से नया जीवन मिला है।

यदि आप भयानक से भयानक, व्याधि, अथवा जीर्ण रोग से पीड़ित हो रहे हैं तो उससे छुटकारा पाने के लिए नीचे लिखे पते से पत्र-व्यवहार करें। हमारे स्वास्थ्य गृह में प्रायः सभी प्रकार के रोगों का नैसर्गिक विधियों से सफलतापूर्वक इलाज होता है।

स्वास्थ्य गृह में रोगियों के रहने का प्रबन्ध

स्वास्थ्य-गृह में रोगियों के आराम और सुविधा के ख्याल से दो श्रेणियां निर्धारित कर दी गई हैं। प्रथम श्रेणी के रोगी से १००) मासिक और द्वितीय श्रेणी के रोगियों से ७५) मासिक लिया जाता है, जिसमें चिकित्सा दूर करने की फीस भी शामिल है। रोगियों को अपने भोजन का प्रबन्ध अलग से करना पड़ेगा। पूरा विवरण पत्र भेजकर प्राप्त करें। पत्र के साथ टिकट भेजना जरूरी है।

नोटः—हमारे यहां संक्रामक रोगों से पीड़ित रोगियों के रखने का प्रबन्ध नहीं है।

व्यवस्थापक—

प्राकृतिक स्वास्थ्यगृह, लूकरगंज, इलाहाबाद।

पढ़िये ! **लाभ उठाइये !!**

सुन्दर, स्वस्थ और सुखी जीवन के इच्छुकों को

ये पुस्तकें पढ़नी चाहिए

(१) रोगों की अचूक चिकित्सा (चतुर्थ संस्करण) :श्री जानकी शरण, वर्मा, बी० ए०	५)
(२) बच्चों की रक्षा—लुई कूने	॥=)
(३) मैं निरोग हूँ या रोगी ?—लुई कूने	॥=)
(४) स्वास्थ्य के नुस्खे—'जीवन सखा' कार्यालय	।)
(५) क्या और कैसे खायं—डा० बालेश्वर प्रसाद सिंह	।=)
(६) ब्रह्मचर्य ही जीवन है—स्वामी शिवानन्द	१॥)
(७) आनन्दमय जीवन—श्री शंकरलाल तिवारी	॥)
(८) कब्ज या कोष्ठबद्धता : डा० बालेश्वरप्रसाद सिंह	१)
(९) तपेदिक—श्री एम० एन० पांडेय	४)
(१०) शाकों के गुण—श्री नारायणप्रसाद अरोड़ा	१)
(११) फलाहार—श्री नारायणप्रसाद अरोड़ा	१)
(१२) वैज्ञानिक जल-चिकित्सा—श्री कुलरंजन मुखोपाध्याय	२)
(१३) सचित्र हठयोग—स्वामी शिवानन्द	१।)
(१४) मन और उसका निग्रह (प्रथम भाग)—स्वामी शिवानन्द	१)
(०५) मन और उसका निग्रह (द्वितीय भाग) ,,	३)
(१६) हम सौ वर्ष कैसे जीवें : श्री केदारनाथ गुप्त, एम० ए०	१॥।)
(१७) आरोग्य-साधन—महात्मा गाँधी	॥)
(१८) स्वास्थ्य साधन—श्री रामदास गौड़	३॥)
(१९) अहार ही औषध है : डा० एल० एन० रतरा	१।)
(२०) दवाओं से बचो—श्री गंगाप्रसाद गौड़, 'नाहर'	१)
(२१) Your diet in health & disease by Harry Benjamin	1-4-0
(२२) Food-de-Medicine by Dr, L. N. Ratra, H. M. B.	1-2-0
(२३) Universal un-cooked food	3-8-0
(२४) Nature Cure of Eye defect by Dr. K. L. Sharma.	2-0-0
(२५) Practical Nature cure ,, ,, ,,	8-8-0
(२६) Constipation and Dyspepsia	1-8-0
(२७) Gems of health	2-0-0
(२८) Drugless healing	1-0-0

स्वास्थ्य सम्बन्धी पुस्तकें मिलने का पताः—

मैनेजर, स्वास्थ्य ग्रंथ-भंडार २८७, बादशाहीमंडी, चौक, प्रयाग ।

दांतों की शोभा, मुख की शोभा !

चेहरे की सुन्दरता के लिए दांतों की सुन्दरता निहायत जरूरी है। यदि आपके दांत सड़-गल गये हों, निकलवा देने की जरूरत हो तो उन्हें बिना किसी तकलीफ के और वैज्ञानिक रीति से निकलवा देने और उनकी जगह नये दाँत बनवाने के लिये नीचे लिखे पते से पत्र-व्यवहार करें या स्वयं आकर मिलें। हमारे यहां दाँत और आँख की प्रायः सभी बीमारियों का सही और निरापद इलाज भी होता है।

डा० किशोरीलाल, सर्जन डेन्टिस्ट
६७, जानस्टन गंज (मंदिर दरवेश्वरनाथ के सामने)
इलाहाबाद

मधुर जीवन

(व्यावहारिक तथा दैनिक मनोविज्ञान का मासिक पत्र)

यह पत्र आपको पुरानी मानसिक लीक से निकाल कर नए विचार देगा। आपको शीघ्रही दूसरों पर प्रभाव डालने, वश में करने, मित्र बनाने तथा लोक-प्रियता बढ़ाने में सहायता देगा; आपके कार्य करने की योग्यता बढ़ायेगा। मनोवैज्ञानिक चिकित्सा, वशीकरण, दाम्पत्य जीवन के रहस्य, सेक्स, बाल मनोविज्ञान तथा प्रतिदिन के संपर्कों में कैसे मनोविज्ञान के नियमों का प्रयोग करना सिखायेगा। अमेरिका के जिस पत्र के आदर्शों पर इसे चलाया जा रहा है उसके बीस हजार ग्राहक हैं। विशेष विवरण जानने के लिए आज ही लिखें:—

संचालक, महेंद्र मन्दिर, नयापुरा,
कोटा (राजपूताना)

रबर की मोहर

और

पीतल की सील, चपरास, डाई, स्टैन्सिल, स्टील स्टैम्प तथा साइनबोर्ड अच्छे व सस्ते बनते हैं।

हमारी तैयार की हुई मोहरों की एजेन्सी लेकर लाभ उठाइये।

मुन्नूलाल वर्मा एण्ड सन्स
८४, जानसेन गंज, इलाहाबाद

Reg. No. 1-172

शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्
NATURE ONLY HEALS

ज-लचिकित्सा अंक

जीवन सखा

सम्पादक

डा० बालेश्वरप्रसाद सिंह

वर्ष ११] जनवरी [अङ्क १

शुभ संदेश

‘जीवन-सखा’ का जल-चिकित्सा अंक निकलने वाला है, वह उपयोगी हो और जनता में प्राकृतिक चिकित्सा की भावना फैलावे, यह मेरी मंगल कामना है।

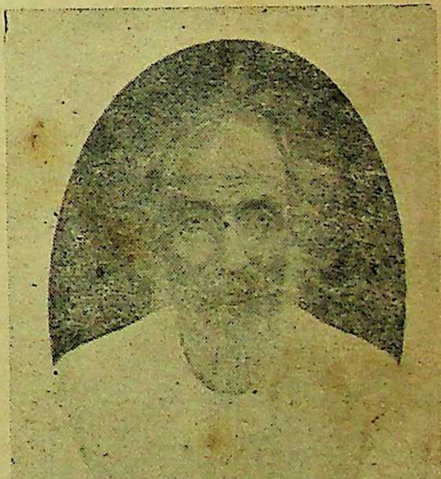

वर्षों के अनुभव से मेरा विश्वास है कि औषधियों के विषय में अन्ध-परम्परा ने मनुष्य मात्र में मानसिक दुर्बलता फैला रखी है। प्राकृतिक चिकित्सा का आधार प्राकृतिक जीवन है। अप्राकृतिक औषधियों की ओर से मनुष्य को खींच कर प्राकृतिक साधनों—मन, तेज, वायु, मिट्टी और जल—द्वारा शरीर को शुद्ध करना, यह प्राकृतिक चिकित्सा का सिद्धान्त है। इन साधनों से न केवल शारीरिक किन्तु मानसिक शुद्धि होती है क्योंकि शरीर और मन का गहरा सम्बन्ध है। तरह तरह की नकली औषधियों के व्यापारिक प्रचार ने न केवल मनुष्य के स्वास्थ्य को धक्का पहुँचाया है किन्तु उसके नैतिक तल को नीचा किया है।

जो लोग प्राकृतिक साधनों का महत्व दिखाकर मनुष्य में स्वास्थ्य सम्बन्धी आत्म-निर्भरता पैदा करते हैं वे धार्मिक दृष्टि से भी समाज की ऊंची सेवा करते हैं। ——पुरुषोत्तमदास टण्डन

जल-तत्त्व

[श्री गंगाप्रसाद गौड़, 'नाहर']

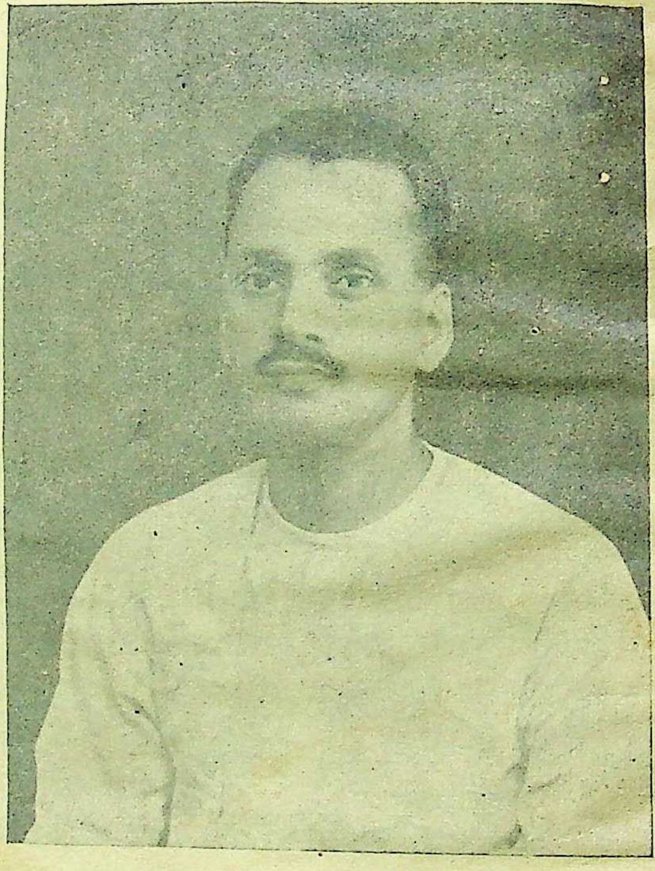

जल जीवन-धारण के लिए उतना ही आवश्यक है जितना कि श्वास लेने के लिए वायु। 'जल में अमृत है, जल में औषधियां हैं। जल रोगों का शत्रु है, यही सभी रोगों का नाश करता है'—यह है हमारी कतिपय वैदिक ऋचाओं का अर्थ जिससे प्रकट होता है कि अनादि काल से ही भारतवासी जल के औषध गुण से सर्वथा परिचित थे—परिचित ही नहीं थे वरन् जल में उन्हें इतने गुण दिखायी दिए थे कि वे इसकी देवता (वरुण) के रूप उपासना भी करने लगे। वेदों में जल 'जीवन' तथा अमृत भी कहा गया है, जो जल की इसी महानता का द्योतक है।

प्रस्तुत लेख में 'नाहर' जी ने जल के इसी नैसर्गिक गुण पर प्रकाश डाला है। आप प्राकृतिक चिकित्सा प्रणाली के मर्मज्ञ ही नहीं एक अनुभवी विशेषज्ञ भी हैं। इधर आप 'तत्व चिकित्सा-विज्ञान' नामक एक वृहद् ग्रंथ तैयार करने में लगे हैं। यह लेख उसी का एक अंश है। —सं०]

सृष्टि के आरम्भ में भगवान की चेतना-शक्ति की प्रेरणा से क्रमशः आकाश, वायु, तथा तेज (अग्नि) के प्रादुर्भाव होने के बाद रूपतन्मात्रमय तेज के विकृत होने पर उससे रसतन्मात्र हुआ, जिससे जल-तत्त्व की उत्पति हुई। रस अथवा जल तत्त्व अपने शुद्ध स्वरूप में एक ही है, किन्तु अन्य भौतिक पदार्थों के संयोग से वह कसैला, मीठा, तीखा, कडुवा, खट्टा, नमकीन तथा गदला आदि हो जाता है।

वस्तुओं को गीला करना, मिट्टी आदि को पिण्डाकार बना देना, तृप्त करना, प्राणियों को जीवित रखना, प्यास बुझाना, पदार्थों को मृदु करना, ताप की निवृत्ति करना, सब प्रकार की स्वच्छता प्रदान करना और कूपादि में से निकाल लिए जाने पर उन्हें फिर भर देना—ये जल की वृत्तियां हैं।

श्रम, क्लान्ति, मूर्च्छा, पिपासा, तन्द्रा, वमन, विबंध और निन्द्रा को दूर करना, शरीर को बल देना, उसे तृप्त

करना, हृदय को प्रफुल्लित रखना, शरीर के दोषों को दूर करना छः प्रकार के रसों का कारण बनना तथा प्राणियों के लिए सर्वदा अमृत तुल्य सिद्ध होना आदि जल के साधारण कार्य हैं तथा शीतलता, तरलता, हल्कापन, एवं स्वच्छता इसके प्राकृतिक गुण।

जल के अनेक नाम हैं, जैसे, पानीय, सलिल, नीर, कीलाल, जल, अम्बु, आप, वारि, वारिक, तोय, पय, पाथ, उदक, जीवन, वन, अम्भ, अर्ण, अमृत, और धनरस आदि। इन नामों में जल का नाम 'जीवन' और 'अमृत' होना, इस बात का ज्वलन्त प्रमाण है कि प्राणियों का जीवन धारण करना जल पर ही अवलम्बित है या जल प्राणियों का प्राण है। शास्त्रों में भी कहा है :

'जीवनां जीवनम् जीवो जगत सर्वन्तु तन्मयम्'

अर्थात् जल प्राणियों का प्राण है। सम्पूर्ण संसार जलमय है। मतलब यह कि जल वर्षण से हमें खाद्य-पदार्थ मिलते हैं, जल में सम्पूर्ण रोगों को नाश करने की शक्ति विद्यमान है, तथा आश्रय और संसर्ग भेद से जल में जीवन-दान के कितने ही अन्य गुण पाये जाते हैं, जिससे उत्तम स्वास्थ्य एवं दीर्घ आयु की उपलब्धि होती है।

वेदों में जल का एक नाम 'सोम' भी है, और वहां इस को ही बलवर्द्धन, द्युम्नवर्द्धन, शार्यवर्द्धन, आध्यायन करने वाला, मधुमत्तम आदि कहा है। वेदों में स्थान-स्थान पर कहा है कि इन्द्र अर्थात् आत्मा 'सोम' के द्वारा अपनी तृप्ति करता है तथा शरीर के संवर्द्धन और रक्षण आदि 'सोम' के स्वाभाविक सौम्य कार्य हैं।

वेदों में जल के गुणों की प्रशंसा और जल द्वारा रोग-निवृत्ति के वर्णन स्वरूप कितनी ही ऋचायें हैं, जिनमें से कुछ नीचे दी जाती हैं:--

'म्योभुवस्तान ऊर्जेद धातान महेरणाय चक्षसे ॥'

—ऋ० मं० ७ अ० ६। ५

अर्थात्, जल अत्यन्त आरोग्यप्रद एवं बलदायक है।

'जलाषणाभिषिंचत जलषिणोपसिंचत।
जलाषमुग्रं भेषजं तेननो मृंड जीवसे'

—ऋ० मं० ६ अ० ५७ मं० २

अर्थात् भगवान आदेश करते हैं कि जल से अभिसिंचन करो। जल सर्व प्रधान औषधि है। इसके सेवन से जीवन सुखमन बनता है और शरीर की अग्नि भी आरोग्य-वर्द्धक होती है।

'आपोहिष्ठा मयो भुवस्ता न ऊर्जे दधातन।
महेरणाय चक्षसे ॥ यो वः शिवतमो
रसस्तस्य भाजयतेहनः। उशतीरिव मातरः।
तस्मादरंगमामवो यस्य
क्षयाय जिन्वथ। आपो जनयथा च नः।
ईशाना वार्याणां क्षयन्तीश्चर्षणीनाम्
अपोयायामि भेषजम् ॥'

अर्थात्, जल हम को सुख दे, सुखोपभोग के लिये पुष्ट करे, बड़ा और दृढ़ करे। जिस प्रकार मातायें अपने दुधमुंहे बच्चों को दूध पिलाती हैं, हे जल! उसी प्रकार तुम हमें अपना मंगलकारी रस पान कराओ। तुम हमारे मलों का नाश करो और योग्य संतान प्राप्त करने में सहायक हो। हे परमेश्वर! हम तुमसे अन्नादिक पदार्थों के स्वामी मनुष्य मात्र का रक्षक तथा रोगमात्र की औषधि जल मांगते हैं।

'आपो इद्धा उ भेषजोरापो अभीव चातनीः।
आपस सर्वस्य भषजोस्तास्तु कृण्वन्तु भेषजम् ॥'

—ऋ० १०। १३७। ६

अर्थात् जल ही औषधि है, जल रोगों का दुश्मन है, यह सभी रोग को नाश करता है, इसलिये यह तुम्हारा भी रोग दूर करे।

'अमृतं वै आपः'

—तै० आ० १। १६

अर्थात्, अमृत का देने वाला जल ही है।

'आप इद्धा उ भेषजोरापो अभीव चातनीं।
आपस सर्वस्य भेषजो स्तास्तें मुञ्चन्तु क्षेत्रियात् ॥,

अथर्व० ३। ७। ५

अर्थात् जल ही औषधि है, जल रोग को दूर करता है, जल सब रोगों का संहार करता है। इसलिये यह जल तुम्हें भी कठिन रोग के पंजे से छुड़ा ले।

'अप्स्वन्तरममृतमप्सु भेषजम्।,

—अथर्व० १। १। ५। ४

अर्थात्, जल में अमृत है, जल में औषधियां हैं।

'शन्नोदेवीरभिष्टये आपो भवन्तु पीतये।
शंयोरभिस्रन्तु नः ॥'
—ऋ० १०। ९। ४

अर्थात्, हे ईश्वर! दिव्यगुणों वाला जल हमारे लिए सुखकारी हो, अभीष्ट पदार्थ की प्राप्ति कराये, हमारे पीने के लिये हो, सम्पूर्ण रोगों का नाश करे, तथा रोगों से पैदा होने वाले भय को न पैदा होने दे, और हमारे सामने बहे।

'इदमायः प्रवहत, यतकिंच दुरितं मयि।
यदवा अहम् अभिदुद्रौह, यद्वा शेपेऽउतानृतम्।

अर्थात् हे परमात्मा! मुझमें जो पाप (भीतर बाहर का अशौच) है, मैंने जो द्रोह, विश्वासघात किया है या मैंने जो अपशब्द कहे हैं या मैं जो झूठ बोलता हूं, उन सब को जल बहा ले जाय।

संसार के अन्य देशों की बात नहीं कह सकते। पर हम भारतवासी तो जल की महिमा एवं उसके रोगनाशक गुणों के सम्बन्ध में अति प्राचीन काल से जानकारी रखते हैं और नित्य प्रति उससे लाभ उठाते हैं। हमारे सभी संसारिक और पारमार्थिक कार्यों के करने के प्रथम जल से स्नान करना अनिवार्य है तथा हमारा कोई भी धार्मिक कार्य बिना जल की सहायता के सुसम्पन्न हो ही नहीं सकता। हम भारतवासी जल के इन्हीं कल्याणकारी गुणों पर मोहित होकर जल को साधारण जल न मानकर वरुण देवता के रूप में उसकी पूजा करते हैं। इसके अतिरिक्त गंगा-जल पर अटूट श्रद्धा भक्ति जो भारतवासियों के हृदयों में आदिकाल से चली आ रही है उसे संसार भलीभाँति जानता ही है।

जल प्राण-रक्षा के लिये प्रसिद्ध पञ्च तत्त्व है। यह जीवन के लिये उतना ही आवश्यक है, जितना श्वास लेने के लिये वायु। पेय पदार्थों में तो जल से बढ़कर कोई अन्य शान्तिदायक पेय है ही नहीं। थोड़े में कहना चाहें तो कह सकते हैं कि जल, ईश्वर प्रदत्त वह अमृत है जिसे उसने कृपा करके हम मृत्युलोक-वासियों को सुख-शान्ति का जीवन बिताते हुये, यदि हम चाहें तो, अमर तक होने के लिये भेजा है। अब यह हमारी गलती है जो हम उसके प्रयोगों से अनभिज्ञ रहकर उससे उचित लाभ न उठावें।*

---

*लेखक की अप्रकाशित पुस्तक 'तत्त्व चिकित्सा-विज्ञान' से!

डा० कुलरंजन मुखोपाध्याय लिखित

वैज्ञानिक जल-चिकित्सा

जल, मिट्टी, गर्मी, हवा, धूप और पथ्य प्रभृति द्वारा चिकित्सा की सर्वश्रेष्ठ पुस्तक। मूल्य दो रुपया। पुस्तक मिलने का पता—

डा० कुलरंजन मुखोपाध्याय,
वैज्ञानिक जल-चिकित्सालय,
११४।२ बी हाजरा रोड,
कालीघाट, कलकत्ता,

संक्रामक रोग तथा वैज्ञानिक जलोपचार

डा० के० शंकरन् नायर, सेवाग्राम, वरधा

[लेखक महात्मा गाँधी के साथ । चित्र में महात्मा जी माइक्रोस्कोप द्वारा कीटाणु का निरीक्षण करते हुए दिखायी देते हैं ।

कीटाणु हमारे सच्चे मित्र हैं—शत्रु नहीं, जैसा कि आधुनिक कीटाणुवादी एलोपैथिक डाक्टर बताते हैं । इस भूतल का एक कोना भी, जहाँ वायु का प्रवेश है, कीटाणु से रिक्त नहीं । फिर इनकी सृष्टि संहारक नहीं हो सकती । कीटाणुओं की उत्पत्ति, उनकी आकृति-प्रकृति, उनकी वृद्धि के लिए कृत्रिम माध्यम, आदि ज्ञातव्य बातों की संक्षेप में जानकारी प्राप्त कराते हुए लेखक ने अपने मत का बड़े सुन्दर ढंग से प्रतिपादन किया है । साथ में कुछ विभिन्न रोगों में जल-प्रयोग की विधियाँ एवं अपने महत्वपूर्ण अनुभव देकर लेखक ने इस लेख को बहुत ही उपयोगी बना दिया है ।

डा० शंकरन् सेवाग्राम में महात्मा गांधी के आश्रम के एक सम्मानित सदस्य हैं । आप वहाँ स्वास्थ्य एवं स्वच्छता सम्बन्धी विभाग के प्रधान हैं । कीटाणुवाद, शरीर-विज्ञान, रोग-विज्ञान तथा एलोपैथी का गम्भीर अध्ययन के करने साथ ही आप प्राकृतिक उपचार-विधियों के प्रयोग में भी पारंगत हैं । आपके विस्तृत अनुभव एवं ज्ञान का परिचय इस सुन्दर लेख से पूरी तरह मिल जाता है ।—सं०]

संक्रामक रोगों तथा जलोपचार के वैज्ञानिक प्रयोग के विषय में कुछ कहने के पूर्व अच्छा होगा यदि हम अपना ध्यान किंचित् भूतल के समस्त जीवधारियों तथा उनके एक दूसरे से सम्बध के प्रति आकृष्ट करें और इन संक्रामाण करने वाले जीवाणुओं (Bacteria) के आकार-प्रकार एवं शारीरिक बनावट का जीव-विज्ञान की दृष्ठि से विश्लेपण करें । इससे हमें रोग-संक्रमण (Infection) के सिद्धान्त और. उनपर जलोपचार के वैज्ञानिक प्रयोग सम्बन्ध बातों को अपेक्षाकृत अधिक स्पष्टतापूर्वक और आसानी से समझने में विशेष सहायता मिलेगी ।

इस भूतल के समस्त जीवधारियों को मुख्यतः दो श्रेणियों में विभाजित किया गया है:—(१) 'यूनी सेल्यूलर,' (एक बीज कोषात्मज) अर्थात् जिनका निर्माण केवल एक ही 'सेल' या बीज-कोष से हुआ है और (२) 'मल्टी सेल्यूलर' (बहु बीज-कोषात्मज) अर्थात् जिनका निर्माण बहुत से बीज-कोषों से हुआ है । 'यूनी सेल्यूलर' जीवधारियों को 'बैक्टीरिया' या जीवाणु कहते हैं ।

जीवधारियों का पारस्परिक सम्बन्ध

लेकिन इन सूक्ष्म जीवाणुओं का अन्य उच्चतर श्रेणी के प्राणियों, मनुष्यों तथा पशुओं से क्या सम्बन्ध है तथा एक दूसरे के शान्तिपूर्ण अस्तित्व को बनाए रखने के लिए उनके क्या निर्धारित कार्य हैं, इसकी भी हमें उपेक्षा न करनी होगी, इसे ध्यान में रखना होगा ।

कीटाणुओं का वर्गीकरण तथा उनकी बनावट

आधुनिक कीटाणुवाद ने केवल मनुष्यों तथा पशुओं के लिए रोगकारक (pathogenic) अथवा सामान्य

(Non pathogenic) कीटाणुओं से सम्बन्ध रखता है, वरन् उसके अन्तर्गत उच्चतर श्रेणी के वनस्पति जन्य जीवाणु भी आते हैं।

ये जीवाणु (बैक्टीरिया) दो प्रकार के माने गए हैं—

(१) रोग-उत्पन्न करनेवाले (Pathogenic) और (२) सामान्य (Non-Pathogenic)। इसके अतिरिक्त इनके दो प्रकार और भी माने गए हैं— (१) प्राणि जन्य और (२) वनस्पति जन्य। प्राणिजन्य और वनस्पतिजन्य, इन दोनों श्रेणियों के जीवाणु समान्यरूप से रोग उत्पन्न करने वाले अथवा साधारण कोटि के Non pathogenic।

बैक्टीरिया इतने सूक्ष्म कीटाणु हैं कि वे केवल अणुवीक्षण यंत्र (माइक्रोस्कोप) द्वारा ही देखे जा सकते हैं। आधुनिक कीटाणुवाद के अनुसार ये सूक्ष्म कीटाणु वायुमण्डल में तथा ऐसे प्रत्येक स्थान पर जहां पर वायु का समागम होता हो—जैसे त्वचा का ऊपरी भाग, मुख, कण्ठ तथा नासिक-रंध्र में मौजूद रहते हैं। इन कीटाणुओं को बुनियादी तौर से दो भागों में बांटा गया है—(१) पैरासाइट्स (Parasites) और (२) सेप्रोफाइट्स (Saprophytes)। इसके अनन्तर इन कीटाणुओं को, उनकी आकृत-प्रकृति के अनुसार-अनेक श्रेणियों में रक्खा गया है जिनमें कुछ मुख्य श्रेणियाँ इस प्रकार हैं—(१) कोकाई (Cocci), (२) बैसिली (Bacilli) और (३) स्पिरिला (Spirilea)। यहां पर इन्हीं तीन प्रकार के कीटाणुओं का संक्षेप में परिचय करा देना पर्याप्त होगा।

(१) कोकाई—ये कीटाणु गोलाकार अथवा अण्डाकार होते हैं। ये तीन प्रकार के होते हैं—डिप्लो कोकाई (Diplo cocci), (२) स्टेफिलो कोकाई (Staphylo cocci), और स्ट्रेप्टो कोकाई (Strepto cocci)। जब ये कीटाणु दो-दो की संख्या में पाएं जाते हैं तो इन्हें डिप्लो कोकाई कहते हैं। न्यूमोनिया तथा गर्दन तोड़ बुखार आदि रोगों के कीटाणु इसी कोटि के अन्तर्गत आते हैं। जब ये गुच्छे के रूप में पाए जाते हैं तो इन्हें स्टेफिलो कोकाई कहते हैं। ये कीटाणु फोड़े, विषाक्त व्रण तथा दुष्ट-व्रण (कारबंकिल) से निकलने वाले मवाद में पाए जाते हैं। इन कीटाणुओं की उत्पति कुछ अम्ल के सहित श्वेत-सारों के खमीर से होती है। जब ये कीटाणु एक श्रृंखला (जंजीर) के रूप में पाए जाते हैं तो इन्हें स्ट्रेप्टो कोकाई कहते हैं। ये प्रायः हर प्रकार के प्रदाह की अवस्थाओं—जैसे नासूर की झिल्लियों का प्रदाह, हृदय के भीतरी स्तरों का प्रदाह, जोड़ों का प्रदाह, अस्थि के ऊपरी स्तर का प्रदाह, आदि—में पाए जाते हैं। इसी प्रकार टांसिलाइटिस (कंठ की कौड़ियों का प्रदाह) कान के पर्दों का प्रदाह, दांत की जड़ में होने वाले विषाक्त घाव आदि के प्रदाह में भी यही कीटाणु पाए जाते हैं, किन्तु ये उतने भयानक नहीं होते जितने कि ऊपर बताए गए रोगों में पाए जाने वाले कीटाणु होते हैं। इन कीटाणुओं की वृद्धि के लिए रक्त और शर्करा तथा श्वेतसार के माध्यम की आवश्यकता होती है।

(२) बैसिली—ये कीटाणु ऊर्ध्वरेखा की आकृति के होते हैं। यक्ष्मा, टायफायड, पैरा टायफायड, (ए० बी० सी०) डिप्थीरिया, पेचिश, इन्फ्लुएंजा, टिटैनस (धनुपटंकार) आदि रोगों में ये कीटाणु पाए जाते हैं। इन्हें अपनी वृद्धि के लिए श्वेतसार की आवश्यकता होती है। किन्तु यक्ष्मा और कुष्ठरोग में पाए जाने वाले बैसिली कीटाणुओं की कृत्रिम माध्यम के द्वारा कम वृद्धि होने के उदाहरण मिलते हैं।

(३) स्पिरिला—ये कीटाणु आंकुचित (curved) आकृति के होते हैं। ये उपदंश या गरमी (Syphilis) से होने वाले स्राव में तथा बुखार की अवस्थाओं में भी पाए जाते हैं। इनकी वृद्धि के लिए रक्त के माध्यम की आवश्यकता होती है।

बैक्टीरिया की रासायनिक बनावट

बैक्टीरिया की रासायनिक बनावट में विशेष विभिन्नता पाई जाती है। माइक्रोकेमिल प्रयोगों से यह प्रकट हुआ है कि बैक्टीरिया में ग्लाइकोजन (Glycogen) और वसा (Fats) से सम्बद्ध तत्व मौजूद रहते हैं। बैक्टीरिया में प्रोटीन, चरबी या तेल जैसे पदार्थ (Lepoid Snbstances) और लवण विभिन्न अनुपात में रहते हैं। बैक्टीरिया-जन्य प्रोटीन (Mycro protien) साधारण प्रोटीन

से इस माने में भिन्न होता है कि यह सुरासार Alcchol से प्रभावित नहीं होता और इसमें गंधक (Sulpher) नहीं रहता। बैक्टीरिया जन्य प्रोटीन प्रधानतः ग्लोबलिन और न्युक्लियो प्रोटीन होते हैं। इसके सेल की दीवारें 'काइटिन' (chitin) की बनी होती हैं। बैक्टीरिया जन्य लवण में मुख्यतः सोडियम, पोटैशियम और मैगनेशियम पाए जाते हैं।

भिन्न-भिन्न बैक्टीरिया के भोजन, उनकी आकृति-प्रकृति के अनुसार, भिन्न-भिन्न होते हैं। मोटे तौर पर बैक्टीरिया की वृद्धि के लिए उन्हें दिए जाने वाले कृत्रिम भोजन के सम्बन्ध में होना यह चाहिए कि ये कीटाणु जिस वातावरण में उत्पन्न होते हैं, उसका जहां तक हो सके अधिक से अधिक अनुसरण किया जाय।

रोग कारक (Pathogenic) बैक्टीरिया के सम्बन्ध में ध्यान रहे कि उनको जो कृत्रिम भोजन दिया जाय वह शरीर के तरल पदार्थों तथा तन्तुओं के अनुरूप होना चाहिए। बैक्टीरिया को अपनी वृद्धि के लिए प्रोटीन, नाइट्रोजन और लवणों की आवश्यकता होती है है। माध्यम (Medium) की प्रतिक्रिया विशेष महत्वपूर्ण है। अधिकांश बैक्टीरिया की कुछ क्षारीय (Alkaline) माध्यम के द्वारा सर्वोत्तम रीति से वृद्धि होती है। लेकिन अन्य बैक्टीरिया—जैसे हैजे के कीटाणु—के माध्यम में लेशमात्र अम्ल (Acid) मौजूद होने पर अपनी वृद्धि नहीं कर सकते।

नमी (Moisture)—बैक्टीरिया की वृद्धि के लिए नमी का होना अत्यन्त आवश्यक है। सूखे वातावरण में अपने अस्तित्व को कायम रखने की बैक्टीरिया की क्षमता में उनकी श्रेणी के अनुसार विशेष अन्तर पाया जाता है। इस तरह के वातारण में B. coli और V. cholra (हैजे के कीटाणु) शीघ्रता से मर जाते हैं। लेकिन क्षय के कीटाणु (B. Tuberculosis) कुछ महीने तक अपने अस्तित्व को कायम रख सकते हैं।

बैक्टीरिया का गैस (Gaseous Environment) से सम्बन्ध

कुछ किस्म के बैक्टीरिया केवल आक्सीजन की मौजूदगी में ही बढ़ सकते हैं, जैसे B. Subtitis। अन्य बैक्टीरिया आक्सीजन के सर्वथा अभाव में बढ़ते हैं, जैसे B. Tetani। लेकिन वे अपने माध्यम के यौगिकों (Compounds) से आक्सीजन प्राप्त करते हैं। अधिकांश कीटाणुओं के लिए आक्सीजन का रहना या न रहना महत्वपूर्ण नहीं होता, हालां कि उन्हें ऐसा वातावरण अनुकूल पड़ता है जिसमें आक्सीजन हो। इन कीटाणुओं को अपने अस्तित्व के लिए वायु की आवश्यकता नहीं होती।

तापमान

(अ) बैक्टीरिया की वृद्धि पर तापमान प्रभाव—प्रत्येक किस्म के बैक्टीरिया के लिए एक निर्दिष्ट तापमान (Optimum Temperature) होता है, जिसमें उनकी वृद्धि सबसे अधिक होती है। मोटे तौर पर यह तापमान (जिसमें बैक्टीरिया की क्रियाशीलता सबसे अधिक होती है) बैक्टीरिया की प्रकृति के अनुसार निर्धारित होता है। उदाहरण के लिए प्राणि-तन्तुओं में निवास करने वाले बैक्टीरिया की सबसे अधिक वृद्धि ३७'५ डिगरी सेन्टीग्रेड पर होती है तथा सड़न उत्पन्न होने की प्रक्रिया में योग देने वाले बैक्टीरिया की सबसे अधिक वृद्धि २० डिगरी और २४ डिगरी सेन्टीग्रेड तापमान के बीच होती है। कुछ कीटाणुओं की वृद्धि के लिए तो बहुत ऊंचा तापमान (६० से ७० डिगरी सेन्टीग्रेड) अनुकूल पड़ता है—जैसे थरमोफेलिक बैक्टीरिया (Thermophelic Bacteria) यह कीटाणु खाद और अंत्र-मार्ग (Intestinal tract) आदि ये पाया जाता है। इसका सबसे अच्छा विकास ५० डिगरी सेन्टीग्रेड से ५५ डिगरी सेन्टीग्रेड या उससे भी अधिक तापमान में होता है।

(ब) कीटाणुओं के जीवन-धारण की क्षमता (Viability) पर प्रभाव—अपुनरुत्पादक कीटाणु ५७ डिगरी सेन्टीग्रेड से अधिक तापमान में शीघ्रता से मर जाते हैं। वह न्यूनतम तापमान जिसमें कोई भी कीटाणु १० मिनट के भीतर मर जाता है, 'थरमल डेथ प्वाइन्ट' (Thermal death point) कहलाता है। शुष्क-ताप (Dry heat) की अपेक्षा नमी में अधिक शीघ्रता पूर्वक कीटाणु मर जाते हैं।

अपुनुरुत्पादक कीटाणु १४० डिगरी शुष्क तापमान में ३ घन्टे तक अथवा १०० डिगरी सेन्टीग्रेड तापमान में ६ घन्टे तक जीवित रह सकते हैं। सभी ज्ञात कीटाणु १२५

डिगरी सेन्टीग्रेड तापमान का भाप लगने पर १५ मिनट में मर जाते हैं।

प्रकाश

बैक्टीरिया अपनी वृद्धि तथा जीवन-धारण के लिए अन्धकार को पसन्द करते हैं और सूर्य की सीधी किरणें पड़ने पर शीघ्रता से मर जाते हैं। सूर्य की हरीं, कासनी (Violet) और परा-कासनी (Ultra-Violet) किरणें कीटाणुओं के लिए सबसे अधिक सांघातिक होती हैं। प्रकाश का कार्य ऊपरी (Supefricial) होता है और बहुत पतले शीशे के द्वारा सूर्य की किरणें रुक जाती है। रोन्टेजेन किरणें (Rontgen Rays) और रेडियम-उद्भूत प्रकाश (Radium emanation) अधिक काल के बाद ही अपना कोई प्रभाव दिखा सकते हैं

पारस्परिक प्रभाव—कुछ (पैरा साइट्स) कीटाणु जीवित प्राणि-तन्तुओं अथवा पौधों में वृद्धि प्राप्त करते हैं। अन्य कीटाणुओं (सैप्रोफाइट्स) की वृद्धि जल, सड़ने वाले वस्तुओं, मिट्टी (Soil) आदि में होती है तथा अन्य बहुतेरे कीटाणु पैरा साइट्स अथवा सैप्रोफाइट्स की तरह रह सकते हैं। इस के अलावा कीटाणुओं में एक अन्य प्रकार का सम्बन्ध होता है है जिसे 'सिम्बियोसिस' (Simbiosis) कहते हैं, जिसमें दोनों तरह के कीटाणु (Symbronts) दूसरे की वृद्धि के अनुकूल पड़ते हैं । जैसे लिक्वेमिनेसो की जड़ में, जहां से इन पौधों के लिए नाइट्रोजन मिलता है, बढ़ने वाले कीटाणु। दूसरी ओर 'ऐन्टी बियोसेस' (Antibioses) उस अवस्था को कहते हैं जो कि तत्संबंधी कीटाणुओं की वृद्धि के लिए प्रतिकूल पड़ती है।

कीटाणु सम्बन्धी उफान (Bacterial enzymes)

कीटाणु सम्बन्धीं उफान या खमीर प्राणियों व पौधों के खनिज पदार्थ (Organic matter) के बहुत ही विषम (complex) परमाणुओं (molucules) को अपेक्षाकृत साधारण तत्वों में खंडित कर देता है। सड़ाव की अवस्था में एल्बूमिनस कण (Abluminous bodies) इण्डोल (Indol), और एरेटाइनिन (Eretinin) जैसे समान्य तत्वों में विभाजित हो जाते हैं और विभिन्न सुरासार (Alkohol), तथा अम्ल (Acid) कीटाणुओं द्वारा श्वेतसारों (Carbo hydrates) के खण्डित होने के फलस्वरूप उत्पन्न होते हैं।

रंगीन पदार्थ उत्पन्न करनेवाले क्रोमोजेनिक बैक्टीरिया (Chromogenic bacteria) जैसा कि उनके नाम से प्रकट होता है, एक रंगीन पदार्थ (pigments) सामान्यतः लीपो क्रोम्स (Lipochromes) उत्पन्न करते हैं। प्राणि-तन्तुओं में कोई विशेष का वसा-प्रधान रंगीन पदार्थ (Fatty pigments) पाया जाता है। ये रंगीन पदार्थ सम्भवतः लसीका (Exeritory products) के रूप में होते हैं। ये चूंकि कीटाणुओं के स्वतः शरीर के अन्दर उत्पन्न होते हैं, इसलिए यह रंगीन पदार्थ कीटाणुओं के कृत्रिम या वास्तविक माध्यम के आक्साइड में परिणत होने (Oxidation) से (अनुचित आहार के फलस्वरूप) शरीर में उत्पन्न हो सकता है।

कीटाणु जन्य विष (Bacterial Toxins)

कीटाणु जन्य की विष विस्तृत जानकारी हमें बैक्टीरिया तथा उनके प्रभावों के अनुसार प्राप्त हो सकती है। ये कीटाणु हमारे लिए अनेक रोग-विज्ञान सम्बन्धी व्याघात (pathological Lisions) उत्पन्न करते हैं। ये विष प्रोटीन होते हैं प्रधान और इन्हें निम्न श्रेणियों में विभाजित किया गया है:—एक्सोटाक्सिन्स' अथवा एक्स्ट्रा सेल्यूलर टाक्सिन (Exo toxins or extra cellular toxins), घुलन शील विष, जो कि डिप्थीरीरिया, (Diptheria), टीटैनस और पेचिश Dysentry आदि कतिपय रोगों के कीटाणुओं द्वारा उत्पन्न होता है। इन विषों को बहुत ही प्रमुखता मिली है क्योंकि विशिष्ट विष का विशिष्ट तन्तु से सम्बन्ध होता हैं। यह विष कीटाणुओं को तरल माध्यम में पाल कर प्राप्त किया जा सकता है।

एण्डोटाक्सिन अथवा इन्ट्रासेल्यूलर टाक्सिन ये--विष बैक्टीरिया के बीज कोषों (Cells) से उत्पन्न विषाक्ति पदार्थ होते हैं और ये आवृत किए हुए मध्यम में मीलित नहीं होते। इनके कार्य भी अपेक्षाकृत कम विशिष्ट होते हैं और ये अधिकांश रोग कारक कीटाणुओं द्वारा उत्पन्न होते हैं।

टोमेन विष (ptomains poison)

टोमेन विष प्रोटीन के विकीर्ण होने की प्रक्रिया के बीच उत्पन्न होते हैं। प्रोटीन पहले एल्बुमोज़ Albumoses और पेपटोन peptones में और उसके अनन्तर एमिनोएसिड

Ameinoaidis में परिणत होते हैं। टोमेन वानस्पतिक उपक्षार (AIkaoids) के अनुरूप होते हैं और वे अ-विषाक्त जैसे मिथिलेमीन (Mythylamine) अथवा विषाक्त हो सकते हैं --जैसे पनीर में पाया जाने वाला टीरो टाक्सिकन (Tyro toxicon) और मसूरिका (Measles) में पाया जाने वाला मिटीलो टाक्सिन (Mytilo toxin.)

बैक्टीरिया की वृद्धि के लिए माध्यम

समस्त कीटाणुओं को सफलता-पूर्वक अपनी वृद्धि एवं विस्तार के लिए माध्यम (भोजन) की आवश्यकता होती है। और यह भोजन अथवा माध्यम भी यदि कृत्रिम है तो उसे शरीर की बनावट तथा कार्य के अनुरूप होना चाहिए। लेकिन रोग-कारक कीटाणुओं के सम्बन्ध में अनुभवों तथा प्रयोगों द्वारा यह सामान्य रूप से प्रकट हुआ है कि यह अपने भोजन के रूप में सीरम (Serum) या रक्त को ग्रहण करता है। कीटाणुओं के भोजन अथवा माध्यम में अन्न-सार (Proteids) और श्वेतसार (Corbohydrates) की तरल या कुछ ठोस रूप में तथा पार दर्शक (Transparent) अथवा अ-पार दर्शक (Opaque) रूप में आवश्यकता होती है।

मांस (Meat) की लसीका कीटाणुओं का सामान्य रूप से भोजन है। उन कीटाणुओं का भोजन, जिनका अप्लीमम तापमान(Optimum Temperature) जिलेटिन जिसमें उनकी सबसे अधिक क्रियाशीलता होती है (जान्तव पदार्थ विशेष) गलन-विन्दु (Melting point) से अधिक होता है, एक अन्य जान्तव पदार्थ,(श्वेतसार) एजर,. (Agger). होता है। दोनों जिलेटिन, एजर और रक्त का सीरम, ये सभी अधिकांश कीटाणुओं के लिए आवश्यकीय भोजन होते हैं।

कीटाणु-विशेषज्ञों की राय में समस्त रोगवाही कीटाणुओं की वृद्धि तथा विस्तार का मूल आधार एक विशिष्ट तापमान, नमी और उपयुक्त माध्यम हैं। अब हम यह देखें कि मनुष्य के शरीर-प्रणाली में किस प्रकार ये माध्यम, तापमान तथा नमी उत्पन्न होते हैं।

कीटाणुओं के लिए अनुकूल माध्यम, तापमान और नमी शरीर में कई तरह उत्पन्न होते है। जैसे—(१) अनमेल (Incompatible) भोजन, (२) अन्नसार (Proteid) तथा श्वेत-सार प्रधान खाद्य ठूस ठूस कर खाना और (३) भोजन के अवशिष्ट अंश का सड़ाव।

अनमेल भोजन

प्रति दिन ग्रहण किए जाने वाले भोजन में मुख्य अंश स्टार्च (श्वेतसार) और प्रोटीन (दाल, मांस, इत्यादि) होते हैं। इनके रासायनिक परिवर्तन(Convertion) के लिए इनसे सर्वथा भिन्न पदार्थ की–अर्थात्, स्टार्च के लिये क्षार (Alkaline) की और प्रोटीन के लिए अम्ल (Acid) की आवश्यकता होती है। जब किसी अम्लकारक खाद्य के साथ स्टार्च ग्रहण करते हैं–जैसे अम्लकारक फल, दही या खटाई पैदा करने वाला कोई अन्य पदार्थ–तो क्षारीय तत्व टियालिन (Ptyalin)–लार में पाया जाने वाला एक प्रकार का खमीर जिससे स्टार्च डेक्सट्रिन (Dextrin) और शर्करा में परिणित होता है प्रभावहीन (Neutralised) हो जायगा। इस तरल पदार्थ टियालिन (ptyalin) का कार्य समस्त स्टार्चों और श्वेतसारों पर असर करना और उनको घुलनशील शर्करा (Sugar) तथा एक प्रकार की अन्य शर्करा विशेष माल्टोज (Maltose) में परिणत कर देना होता है। लेकिन अम्ल का मिश्रण होने के कारण वह भोजन क्षार-तत्व के इस आधार को नष्ट कर देगा और शरीर में अम्ल तथा गैस उत्पन्न होंगे। इसी प्रकार जब प्रोटीन प्रधान भोजन संगठित (Consentrated) क्षारीय खाद्य-वस्तुओं के साथ ग्रहण किया जाता है तो उसके फलस्वरूप प्रोटीन का पेपसिन (pepsin)–पाचक-रस का उपादान–विशेष में परिणत होने का कार्य पर्याप्त रूप से नहीं हो सकता। और इसका नतीजा यह होगा कि प्रोटीन में खमीर उठने लगेगी और अन्त में वह सड़ने लगेगा। इस प्रकार शरीर-प्रणाली में स्टार्च और प्रोटीन का सड़ाव बैक्टीरिया की वृद्धि के लिए बहुत अनुकूल माध्यम प्रस्तुत कर देता है।

आवश्यकता से अधिक भोजन

यह कहा जाता है कि हम जितना भोजन करते हैं उसका केवल एक तिहाई भाग हमें जीवित रखता और बाकी दो तिहाई भाग डाक्टरों को जीवित रखता है। यह कथन यथार्थ ही है। जब असाधारण परिमाण में भोजन

किया जाता है तो शरीर की पाचन-प्रणाली उसे उपर्युक्त घुलनशील खाद्य-तत्वों में परिणत करने में असमर्थ हो जाती है और धीरे-धीरे अजीर्ण की शिकायत पैदा हो जाती है। अजीर्ण समस्त कीटाणु जन्य रोगों का मूल कारण बनता है। उदाहरण के लिए मैं यहां पर हैजे के सम्बन्ध में भी अपने निजी अनुभवों को देना चाहता हूँ जो कि मध्य प्रान्त में इस संक्रामक रोग के सम्बन्ध में मुझे प्राप्त हुए। लड़ाई के दिनों में गरीब लोग पूरा-पूरा राशन नहीं प्राप्त कर सकते थे और वे तुवर, चना, अरहर, मोट (इन सब में संगठित रूप से प्रोटीन होता है) खाकर ही गुजर करते थे। अतः उन लोगों को अजीर्ण की शिकायत पैदा हो गयी जिसके परिणाम स्वरूप पिछले वर्ष १९४५ में उस प्रान्त में हैजे का प्रकोप होने पर ७०,००० व्यक्ति काल-कवलित हुए। एलोपैथी-प्रणाली भी यह स्वीकार करती है कि हैजे के कीटाणुओं की वृद्धि तथा विस्तार के लिए अजीर्ण उपयुक्त आधार प्रस्तुत करता है।

भोजन के अवशिष्ट अंशों का सड़ाव

हम जो भोजन ग्रहण करते हैं उसके अधिकांश भाग को बड़ी आँत (Colon) से साफ हो जाना चाहिए। लेकिन जब अधिक परिमाण में भोजन किया जाता है तो बड़ी आंत की मल-विसर्जन शक्ति शिथिल पड़ जाती है और इस प्रकार भोजन का अवशिष्ट अंश बड़ी आँत में जमा होने लगता है और अन्ततोगत्वा यह मल को बाहर ठेलने में असमर्थ हो जाता है। अनुचित आहार तथा अपर्याप्त मल-विसर्जन के फलस्वरूप पच न सकने वाला स्टार्च तथा प्रोटीन से भरा हुए भोजन का अवशिष्ट अंश रुका पड़ा रहता है जो बाद में सड़ने लगता है। इसके अनन्तर इस सड़ाव के बीच उत्पन्न होने वाले गैस तथा विभिन्न प्रकार के अम्लों का बड़ी आँत शोषण कर लेती है और यह विषाक्त पदार्थ तन्तुओं में एकत्र हो जाता है। अन्त में ये तन्तु निष्क्रिय हो जाते हैं और रोग प्रवाही कीटाणुओं का संक्रमण होने की सम्भावना हो जाती है।

रोग संक्रमण का सिद्धान्त

आधुनिक डाक्टरी प्रणाली का यह विश्वास है तथा वह दूसरों को भी यह विश्वास दिलाना चाहती है कि जिस प्रकार किसी दुर्बल राष्ट्र पर कोई शक्तिशाली राष्ट्र आक्रमण कर देता है उसी प्रकार शरीर-प्रणाली की रोग-प्रतिरोधक शक्ति-क्षीण पड़ जाने पर तथा कथित रोग-कारक कीटाणु उस पर आक्रमण कर देते हैं। और इस आधार पर डाक्टर लोग कुछ रसायनों (Chemicals) का आविष्कार करके इन कीटाणुओं को नष्ट कर देने का प्रयत्न कर रहे हैं। लेकिन उनका यह विश्वास यह कहां तक सत्य है, यह विचारणीय है।

हमें यह ज्ञात हो चुका है कि ये कीटाणु (Bactera) वायु-मंडल में सर्वत्र विद्यमान हैं। कोई भी स्थल, जहां पर वायु का समावेश होता हो, इन कीटाणुओं से रहित नहीं है। यह भी स्वयं सिद्ध है कि इस भूतल के समस्त प्राणी इस विश्व के अस्तित्व को शांति पूर्वक बनाए रखने के लिए हैं। कीटाणुओं की बनावट सम्बन्धी विज्ञान से हमें यह भी ज्ञात हुआ है कि बिना किसी विशिष्ट तापमान, नमी और उपयुक्त आहार के इन कीटाणुओं की वृद्धि असम्भव है। इस लेख में पहले यह भी बताया जा चुका है कि ये तीनों आवश्यक वस्तुएं शरीर-प्रणाली में विभिन्न कारणों से उत्पन्न होती हैं। इसके अलावा आधुनिक डाक्टर चिकित्सा विज्ञान स्वयं कहता है कि रोग निवारण (Immunity)-शक्ति के अभाव के ही कारण रोग के कीटाणुओं का संक्रमण (Infection) होता है। यह स्वतः रोग संक्रमण का सिद्धान्त ही है जो आज सारे संसार को आतंकित किए हुए है, जिसके फलस्वरूप बड़ी से बड़ी बेवकूफियाँ भी हो रही हैं। संसार में भयानक से भयानक अनिष्ट अथवा आपदाएं भी आधुनिक विज्ञान की घातक भूलों के ही परिणाम हैं। संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि सम्पूर्ण जड़ जगत् जीवित प्राणियों को लेकर बना है। खमीर उठना (Fermentation) और स्वतः रोग भी शरीर में असाधारण तापमान के फलस्वरूप बिजातीय द्रव्यों का ही उद्रेक है। खमीर का उठना शरीर में सूक्ष्म जीवाणुओं (Microdes) और बैसिली (Bacpili) की बनावट पर निर्भर करता है, जो कि सर्वथा स्वभाविक कार्य है।

इस जड़ जगत् को, जिसका अनुभव हम अपनी ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा करते हैं, भ्रम मात्र समझना चाहिए और इससे उदासीन हो जाना चाहिए, किन्तु डाक्टरी

चिकित्सा विज्ञान के प्रतिनिधि जड़वाद के आधार पर इस जगत को सर्वथा विपरीत दृष्टि से देखते हैं। वे असत्य को सत्य समझते हैं। सामान्य रूप से अगोचर पदार्थों तथा जीवों को देखने के लिए एक विशेष प्रकार के शीशे (Magnifying glass) का प्रयोग किया जाता है। रोन्टेजेन यंत्र (Rontgen aparatus) का प्रयोग शरीर के समूचे भीतरी भाग को प्रज्वलित कर देने के लिए किया जाता है। यह पहले सिरे की बेवकूफी नहीं तो और क्या है ?

जब कि यह जड़ जगत् वस्तुतः भ्रम ही है, मनुष्य की निर्णायक बुद्धि उस पर शासन करती है, अणु-वीक्षण यंत्र Microscope द्वारा देखे गए कीटाणु धर घसीटे जाते हैं और उन्हें हौवा बना दिया जाता है। प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में इन कीटाणुओं के प्रति भय और आतंक भर दिया जाता है।

इस प्रकार तो हम यही समझेंगे निर्दोष जीवाणु भी संसार में मृत्यु तथा विनाश को आमंत्रित कर सकते हैं। रोगवाही कीटाणु जीवन तथा आरोग्य सम्बन्धी गलत तौर तरीके के परिणाम मात्र हैं। इस सम्बन्ध में सबसे बुरी बात तो यह है कि ये वैज्ञानिक सिद्धान्त मनुष्य को अपनी रोग-व्याधि के मूल कारण से अधिकाधिक विमुख करते जा रहे हैं और इस प्रकार वे अपनी रोग-व्याधि का कारण अपने से बाहर, कीटाणु इत्यादि में, ढूंढ़ते हैं। इससे तो मनुष्य विनाश के ही पथ पर अधिकाधिक अग्रसर होता जायगा। इस दृष्टि से वर्तमान कीटाणवाद सर्वथा अस्वास्थ्यकर ही है।.

'आपद्काल का मित्र ही सच्चा मित्र है'। प्रकृति के नियम के अनुसार, ऐसे प्रत्येक अवसर पर जब कि वे देखते हैं कि मनुष्य की शरीर-प्रणाली अपने कार्य को पूरा करने में असफल हो रही है, उसकी सफाई करने के लिए ये कीटाणु प्रस्तुत रहते हैं, अर्थात् शरीर में जो मल इकठा हो जाता है उसका कुछ भाग तो वे स्वयं खा जाते हैं और बाकी विषम भाग अपेक्षाकृत अधिक सामान्य हिस्सों में विभक्त हो जाता और इस प्रकार उसे बाहर निकाल फेंकना शरीर प्रणाली के लिए सरल बन जाता है। इस रासायनिक (शरीर-यंत्र सम्बन्धी) प्रतिक्रिया तथा विष (बैक्टीरिया से निःसृत स्राव) के कारण बहुत अधिक तापमान, पीब पड़ना सिर दर्द आदि लक्षण प्रकट होते हैं, जो मनुष्य को भयभीत कर देते हैं और वह डर कर कृमि-नाशक सूइयों और दवाइयों का प्रयोग करता हुआ अपने 'सच्चे मित्र' कीटाणुओं का नाश कर देने के लिए कोशिश करने लगता है। लेकिन इससे उसकी हालत बद से बदतर ही हो जाती है।

हमें यह स्मरण रखना होगा यह शरीर एक मन्दिर है जिसमें हमारी आत्मा प्रतिष्ठित है। वह इस मन्दिर में कोई विजातीय द्रव्य प्रविष्ट होने देना अथवा उसमें रहने देना नहीं चाहती। इसलिए यह शरीर में एकत्र हुआ विसदृश अथवा विजातीय द्रव्य को तथा बैक्टीरिया तथा औषधियों के सेवन से शरीर में उत्पन्न हुए विष को भी बाहर निकाल फेंकना चाहती है। इस प्रकार दवाइयों के विष को दूर करने का यह अतिरिक्त भार उस पर आ पड़ता है। जब जहरीली औषधियों के प्रयोग से शरीर-प्रणाली के मित्र कीटाणु मर जाते हैं तो उस हालत में शरीर-प्रणाली निरुपाय हो जाती है।

उपर्युक्त बातों से अब यह स्पष्ट हो गया होगा कि इन तथा कथित रोगाणुओं (Bacteria) हम को शत्रु के बजाय अपना घनिष्ट मित्र ही समझें और उन्हें प्राकृतिक उपायों जैसे जल का वैज्ञानिक प्रयोग अर्थात् कटि-स्नान मेहन स्नान, न्युट्रल बाथ, धूप-स्नान पैरों का गर्म नहान, गरम पट्टी, वाष्प-स्नान, गीली पट्टी, छाती की गीली पट्टी, तरारा, आदि के साथ साथ उपवास तथा वैज्ञानिक आहार के द्वारा शरीर-मंदिर को मल रहित तथा स्वच्छ रखने में सहायता पहुँचावें, यही हमारे लिए श्रेयस्कर है।

जल के वैज्ञानिक-प्रयोग

जल आन्तरिक (शारीरिक) तथा वाह्य स्वच्छता का प्रतीक है। हमारे शरीर की ७५ प्रतिशत रचना जल से हुई है तथा हमार शारीरिक क्रियाएं सर्वांशतः जल पर ही निर्भर करती हैं। शरीर विज्ञान की दृष्टि से यह भी सत्य है कि जल के बिना जीवन धारण करना असम्भव है।

निःसन्देह रोगोपचार के समस्त उपकरणों में जल-प्रयोग सबसे प्राचीन है। जलोपचार का उल्लेख प्राचीनतम चिकित्साग्रन्थों में मिलता है। सबसे प्राचीन जातियों की

रीति रिवाजों में भी इसका समावेश पाया जाता है। प्राचीन मिस्री, फारसी, यहूदी, यूनानी और हिन्दू सभी जातियों ने रोगोपचार के लिए जल को अपनाया था, जैसा कि इन जातियों के लोग आज भी करते हैं।

भारतीयों में यह सामान्य परम्परा थी की दर्द तथा विषाक्त फोड़ा (Ulcer) को दूर करने के लिए सारे शरीर पर स्थानिक भाप का प्रयोग किया जाता था! घाव और सूजन पर ठंडी पट्टी देने का भी रिवाज था।

महात्मा गांधी और प्रो० भंसाली भाई जैसे महापुरुषों ने यह दिखा दिया है कि वे जल का प्रयोग करते हुए कई दिनों तथा निरान्न रह कर भी जीवन धारण किए रह सकते हैं। महात्मा जी ने ७६ साल की अवस्था में २१ दिनों का उपवास किया था। प्रो० भंसाली भाई ने साबरमती आश्रम में ५३ दिनों का और १९४२ में वरधा में ६३ दिनों का उपवास किया था। इन उपवासों में उन्होंने जल के सिवाय और कोई वस्तु ग्रहण नहीं की थी। मैं यह कहूँगा उपवास के बाद इन दोनों व्यक्तियों का स्वास्थ्य बहुत उत्तम हो गया, जिससे कि यदि वे चाहें तो १५० वर्ष से भी अधिक समय तक जीवित रह सकते हैं!

जल का एक प्रधान गुण यह है कि वह संसार के प्रायः सभी पदार्थों को अपने में घुला सकता है। शरीर के भीतर यह वह माध्यम है जिसके द्वारा भोजन का रस तैयार होता है जा तन्तुओं में समीकरण के लिए पहुंचता है। इस प्रकार से तैयार होने वाला भोजन का रस ही धमनियों में तथा वह रस के ही रूप में यकृत और गुर्दों में तथा त्वचा तथा अन्य मल-विसर्जक अवयवों में पहुंचता है।

यह एक उल्लेखनीय बात है कि शर्करा और पेपटोन (peptone), जो कि पचे हुए भोजन से तैयार होनेवाले दो मुख्य पदार्थ हैं, ये दोनों ही जल में अत्यन्त घुलनशील हैं। कारबोनिक ऐसिड गैस (Carbonic acid gas), जो कि श्वेतसारों के आक्सीजन के साथ मिलने की क्रिया (Oxidition) से उत्पन्न होता है, तथा हाइड्रोकार्टोन (Hydrocartons) भी लवणाक्त (Saline) माध्यम में अत्यधिक घुलनशील हैं। मूत्र में पाया जाने वाला विषाक्त द्रव्य—यूरिया (Uriea) भी, जो कि अन्न-सार (proteid) के आक्सीजन से मिलने की क्रिया के समय उत्पन्न होता है, जल में बहुत अधिक घुलनशील है। यूरिकाम्ल (Uric acid), चीनी से उत्पन्न विषाक्तद्रव्य तथा अन्य असाधारण पदार्थ, जैसे बैक्टीरिया जन्य विष साधारण मल की अपेक्षा जल में अधिक आसानी के साथ घुल जाते हैं।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि परिमार्जक द्रव्य के रूप में जल न केवल शरीर के बाहरी भाग के लिए बल्कि अन्दरूनी हिस्से के लिए भी बहुत महत्वपूर्ण है। इस सम्बन्ध में मैं यहाँ पर दो-तीन विशेष उदाहरण देना चाहता हूँ। महात्मा गांधी ने १९२४ में दिल्ली में जो उपवास किया था उन दिनों एक बार उनकी हालत बहुत बिगड़ी हुई जान पड़ने लगी। उनके पेशाब में 'कास्ट' (वे 'सेल' जिनसे रक्त-शिराएं बनी हैं) जाने के लक्षण प्रकट होने लगे, जिससेडाक्टर लोग घबड़ा गए। उन्होंने महात्मा जी को थोड़ा फल का रस लेने के लिए राजी करने का प्रयत्न किया, लेकिन भला गांधी जी कब माननेवाले थे। इसके उत्तर में गांधी जी ने डाक्टरों से यही कहा—'आप २ दिन तक खामोश रहिए।' गांधी जी ने जल का सेवन कुछ और बढ़ा दिया। दो दिन में पेशाब में 'कास्ट' जाना अपने आप बन्द हो गया!

दूसरा उदाहरण स्वयं मेरा अनुभव है जो श्रीमती किशोर लाल मशरूवाला की बीमारी के समय, जब कि वह गत नवम्बर के महीने सेवाग्राम आश्रम में टाइफस बुखार से पीड़ित हो रही थीं, मुझे हुआ। उनके मूत्र में एलब्यूमेन—रक्त के साथ रहने वाले कण विशेष—जाने के लक्षण प्रकट होने लगे। उनको सांस लेने में कठिनाई होने लगी। ऐसी हालत में उन्हें काफी पानी पीने को दिया गया और उनकी अवस्था सामान्य (Normal) पर फिर पहुंच गयी। एक दूसरा अनुभव मुझे गत वर्ष मध्य प्रान्त में हैजे के व्यापक प्रकोप के समय, जब कि ७०,००० आदमी इसके शिजार बने थे, हैजा निवारकआन्दोलन के सिलसिले में हुआ। वह यह कि जब के रोगी हैजे के गुर्दे या मूत्राशय (Kidneys) ने काम करना बन्द कर दिया—जब कि उनका पेशाब रुक गया तो उन पर गरम और ठंडे जल का प्रयोग किया गया।। रोगियों को इस प्रकार के स्नान देने के ५ मिनट के अन्दर ही फिर पेशाब होने लगा। निःसन्देह जल में रोगोपचार सम्बन्धी एक महान्

गुण है। तरल होने के कारण जल का शरीर पर अनेक प्रकार से आन्तरिक और वाह्य प्रयोग हो सकता है—स्नान, पट्टी, तरारा आदि के रूप में। और इनके परिणाम भी विशेष उल्लेखनीय होते हैं। इस सम्बन्ध में यहां पर विभिन्न रोगों में जल-प्रयोग के उदाहरण देना अप्रासंगिक न होगा।

फोड़ा (Absess)

शरीर के किसी भाग में कुछ ललाई के साथ धीरे-धीरे या पीड़ायुक्त सूजन के साथ-साथ शीघ्रतापूर्वक फोड़ा हो सकता है। सूजन में जलन होने लगती है, वहाँ की त्वचा लाल और मुलायम हो जाती है और वह टपकने लगता है। इस हालत में त्वचा के निचले हिस्से में या मांस पेशियों में फोड़ा हो सकता है। फोड़ा स्वतः प्रकृति के एक प्रयत्न के रूप में है, जिसके द्वारा वह शरीर में घुसे हुए दूषित पदार्थ को निकाल देना चाहती है। अगर उस फोड़े से निकलने वाली पीब का एक बूंद अणुवीक्षण यंत्र के सामने रक्खा जाय तो उसमें बहुसंख्यक स्टेफिलोकोकाई कीटाणु दिखाई देंगे।

लक्षण—बुखार, ललाई, सूजन, प्रदाह, पीड़ा, पीठ में दर्द। यदि यह गहरा है तो सिर दर्द।

चिकित्सा—द्वितीय अवस्था के बजाय प्रथमास्था में ही इसकी चिकित्सा यह है कि रोगी को पूर्ण उपवास कराया जाय और बीच-बीच में उसे एक प्याला गरम पानी में नीबू का रस निचोड़ कर पीने को दिया जाय। लेकिन नीबू के साथ जितना गरम पानी उसे पीने के लिए बताया गया है उसके अलावा उसे और पानी भी पीने को न दिया जाय। हर रोज दो बार और आवश्यकता जान पड़ने पर तीन बार एनिमा भी दिया जाय। एनिमा का पानी सिरगरम होना चाहिए। यह रोगी की अवस्था के अनुसार ही किया जाय।

फोड़े पर स्थानिक गरम और ठंडी पट्टी। यह साधारण पट्टी से भिन्न होती है। पहले गरम जल की पट्टी दें—कोई ५ मिनट तक। उसके बाद कुछ क्षण तक—२० या २५ सेकेण्ड या उससे भी अधिक समय तक—ठंडी पट्टी दें जिससे त्वचा की गरमी बाहर खींच ली जाय। सूजन गायब होने तक इस क्रम को चलावे।

शारीरिक प्रभाव—गरम पट्टी देने के बाद तुरन्त ठंडी पट्टी देने से ठंडे जल की अस्वरित (Atonic) प्रतिक्रिया स्वरित (Tonic) प्रतिक्रिया में परिणत हो जाती है और इस प्रकार रक्त-नलिकाओं (Blood-vessels) की अवस्था में विशेष परिवर्तन हो जाता है और इसके द्वारा वहाँ की त्वचा में रक्त का संचालन लम्बे अरसे तक सक्रियता पूर्वक कायम रक्खा जा सकता है।

यदि फोड़े की द्वितीयावस्था है या वह बिलकुल पक गया है तो उसका आपरेशन करा देना आवश्यक होगा। लेकिन चीरा लगाए जाने के बाद भी वही गरम और ठंडी पट्टी का प्रयोग जारी रखना होगा। फोड़े पर मिट्टी की पट्टी लगा दी जाय। मिट्टी को घाव पर भी लगाया जा सकता है।

मामूली फोड़ा (Boils)

इसका भी कारण वही है जो विषाक्त फोड़े (Absess) का, लेकिन यह अपेक्षाकृत साधारण होता है।

लक्षण—ललाई, दर्द और अन्त में पीब पड़ जाना।

चिकित्सा—इसकी चिकित्सा भी वही है जो पहले प्रकार के फोड़े (Absess) की। गरम और ठंडी पट्टी और मिट्टी की पुल्टिस। आहार भी वही होना चाहिए। एनिमा के प्रयोग से आंतों को साफ रखना चाहिए।

दुष्टव्रण या पृष्ठव्रण (Carbuncle)

साधारण फोड़े की भाँति दुष्टव्रण का भी विसदृश-द्रव्यों (Dead matter) का केन्द्र होता और है जहाँ के तन्तु मृत हो जाते हैं। यह साधारण फोड़े की अपेक्षा अधिक भयानक होता है। कतिपय प्रतिकूल अवस्थाओं अथवा पहले से ही मौजूद रहने वाले कारणों से कोई फोड़ा दुष्ट-व्रण (Carbuncle) में परिणत हो सकता है। वात-रोग (Gout), बहुमूत्र (Diabetes) और अण्ड-लाल मूत्र (Albuminutia) ये सभी दुष्टव्रण के पूर्व कारण होते हैं। दुष्टव्रण हो जाने पर अवस्था बहुत गम्भीर हो जाती है और इसका शरीर पर बहुत भयानक प्रभाव पड़ता है।

लक्षण—साधारण तथा अन्य प्रकार के फोड़ों के समान, किन्तु पीड़ा अधिक। सूजन फैल भी सकती है। इस के ऊपर की त्वचा लाल हो जाती है। फूटने पर इसमें से पीलापन लिये हुये पीब निकलती है।

चिकित्सा—नीबू के रस के साथ ३ दिनों का उपवास। यदि रोगी की अवस्था अनुकूल हो तथा अभी और उपवास की आवश्यकता जान पड़े तो इसे ३ दिन से अधिक समय तक भी चलाया जा सकता है। उपवास के बाद रोगी को शन्तरे का रस और शाक-भाजियों का रस दें। लेकिन रोग को कोई स्टार्च प्रधान शाक, जैसे आलू, न दिया जाय। फोड़े पर गरम और ठंडी पट्टी बारी-बारी से, दिन में कम से कम ४ बार दी जाय। एनिमा और गरम स्नान बहुत आवश्यक हैं। कम तापमान होने पर न्यूट्रल बाथ भी दिया जा सकता है। यह स्नान बुखार रहने पर भी जारी रक्खा जा सकता है और इस क्रम को तब तक चलाया जा सकता है जब कि फोड़ा अच्छा न हो जाय।

न्यूट्रल बाथ (Neutral Bath) का प्रभाव यह होता है कि इससे त्वचा अपेक्षाकृत सतेज (Active) बन जाती है जिससे मल-बहिष्करण क्रिया में सहायता मिलती है। लेकिन इस स्नान में प्रयुक्त जल का तापमान शरीर के तापमान से कुछ कम होना चाहिए। कम तापमान होने से शरीर में अपेक्षाकृत अधिक गर्मी पैदा होने की क्रिया सतेज हो उठती है तथा इसके अन्य प्रतिक्रियात्मक (Reflex) प्रभाव होते हैं। जब जल का तापमान शरीर के तापमान के बराबर रक्खा जाता है तो उससे मल के बाहर निकलने में रुकावट हो जाती है जिससे शरीर का तापमान बढ़ जाता है। इसका एक दूसरा प्रभाव शमनकारक होता है और इसके स्नायुओं को पूर्ण विश्राम मिल जाता है। स्नायुओं को शक्ति संचय का अवसर प्राप्त होता है जिससे स्नायु-केन्द्र सतेज एवं सक्रिय हो उठते हैं। इससे त्वचा सम्बन्धी स्नायुओं की उत्तेजना (Irretability) शान्त हो जाती है। महात्मा गांधी के लिए तो न्यूट्रल बाथ एक दैनिक कार्य बन गया है।

स्टेफिलो कोकाई कीटाणुओं के संक्रमण से उत्पन्न सभी रोगों का इसी प्रकार उपचार किया जा सकता है।

स्ट्रेप्टो कोकाई कीटाणु जन्यरोग

इस श्रेणी के रोग कारक अथवा सामान्य (Non pathogenic) कीटाणु टांसिल, (Tonsilites) अन्तः कर्ण प्रवाह (Otitis) दांत की जड़ों में हो जाने वाले फोड़े में पाए जाते हैं जो अपेक्षाकृत कम उग्र होते हैं। मनुष्य के शरीर में स्ट्रेप्टो कोकाई कीटाणुओं का रोग-सम्बन्धी प्रक्रियाओं, जैसे पीब पड़ने की क्रिया, के साथ साथ अथवा बिना इसके सूजन का फैलना, विसर्प रोग, (Erysipelas) नासूर की झिल्लयों में पीब पड़ना, जोड़ों, अस्थि के ऊपर परदों (Periosteum) हृत्पिण्डावरक झिल्ली का प्रदाह (Ulcerative endocardites) बच्चा जनने के उपरान्त प्रायः स्त्री के जनेन्द्रिय में उत्पन्न हो जाने वाला प्रदाह (puerperal) सम्बन्धी रक्त की विषाक्तता (Septicaemia), अंत्र प्रदाह (Appendieitis) की द्वितीयावस्था में होने वाला अंत्रावरक झिल्ली का प्रवाह (peritonitis) आदि से सम्बन्ध होता है। लेकिन इस सम्बन्ध में एक महत्वपूर्ण बात यह स्मरण रखना चाहिए कि ये समस्त रोग स्वतः रोग नहीं, रोग के लक्षण मात्र हैं जैसे बुखार। बुखार कत्तई कोई रोग नहीं है बल्कि रोग का एक लक्षण है। इसलिए उपचार का उद्देश्य होना चाहिए। रोग की जड़ को दूर कर देना यदि हम लक्षण को दृष्टि में रख कर उपचार करेंगे तो यह एलोपैथी जैसा दमनकारी उपचारक्रम मात्र होगा। अतएव मैं यहां स्ट्रेप्टोकोकाई कीटाणु अन्य रोगों के उपचार का उदाहरण दूंगा। इसी प्रकार तत्सम्बन्धी रोगों का भी उपचार किया जा सकता है।

विसर्प रोप (Erysipelas)

यह सबसे तीव्र एवं भयानक रोग है। लेकिन जब इसका संक्रमण केवल त्वचा में होता है अर्थात् जब त्वचा में ही दूषित पदार्थ जमा होता है तो यह विसर्प रोग होता है। जब यह विषाक्त पदार्थ तन्तुओं में जमा होता है तो इससे बीज कोषात्मज झिल्लियों (Cellutis) का प्रदाह होता यदि यह कहीं रक्त नालिका में हुआ तो इससे सारे शरीर में रक्त-विकृति (Septicemia) हो जाती है जो और भी भयानक होती है।

निदान—इस रोग का आक्रमण होने पर बेचैनी बहुत बढ़ जाती है और शरीर में क्लांति छा जाती है। इसके साथ साथ शरीर में विषाक्त पदार्थ के फैलने के भी लक्षण प्रकट होते है—जैसे, बुखार, सिर दर्द, वमन, पीठ का दर्द, जोड़ों में दर्द, आदि। जिस स्थान पर यह रोग होता है वह सूज कर

(शेष पृष्ट ५७ पर)

जल चिकित्सा का सिद्धान्त

डा० कुलरंजन मुकर्जी, कलकत्ता

रोग चाहे कोई भी हो किन्तु इसका मूल कारण एक ही होता है—शरीर प्रणाली में विजातीय पदार्थ अथवा मल का संचय। इस मल की सफाई ही रोग दूर करने का सबसे सही इलाज है। शरीर-प्रणाली में संचित मल की सफाई करने में हमारे लिए जल कितना सहायक होता है, यही इस लेख का मुख्य विषय है, जिसे अनुभवी लेखक ने भली-भांति दर्शाया है।

डा० कुलरंजन मुकर्जी कलकत्ते के एक सुप्रसिद्ध प्राकृतिक चिकित्सक हैं। वहां पर आपका एक स्वास्थ्य-गृह भी है जहाँ पर रोगियों की नैसर्गिक चिकित्सा पद्धति के अनुसार इलाज होता है। आपने प्राकृतिक उपचार अनेक पुस्तकें भी लिखी हैं। आपकी एक पुस्तक 'वैज्ञानिक जल-चिकित्सा' का हिन्दी संस्करण हिंदी भाषा-भाषियों के बीच आ चुका है और उसे अच्छी लोकप्रियता भी मिल रही है। आपका यह लेख अनुभव पूर्ण एवं उपादेय है। —सं०]

हम चाहे जिस रोग से पीड़ित हों, किन्तु शरीर में मल तथा विषाक्त पदार्थों का एकत्रित हो जाना ही उसका मूल कारण होता है। इन दूषित तथा विषाक्त पदार्थों के स्वरूप विभिन्न प्रकार के हो सकते हैं किन्तु यह असंदिग्ध है कि इसके बिना शरीर में कोई रोग नहीं हो सकता।

ये दूषित तथा विषाक्त पदार्थ साधारण तथा मलांत्र (colon) तथा छोटी आंत की मल-विसर्जन क्रिया में व्यवधान पड़ जाने, मल समुचित रीति से निष्कासन न हो सकने अर्थात् उनमें मल भरे रहने के फलस्वरूप शरीर में उत्पन्न होते हैं। हम जो भोजन करते हैं वह हमारे शरीर को पोषण-तत्व तथा शक्ति एवं स्फूर्ति प्रदान करता है, किन्तु वह जब मल के रूप में आंतों में बहुत समय तक रुका रहता है उस हालत में भी वह पोषणतत्व प्रदान कर सकता है किन्तु इसके साथ-साथ वह विष भी उत्पन्न करेगा। हमारी आँतों की भीतरी दीवार छोटी-छोटी जिह्वाओं से आबद्ध हैं, जिन्हें 'विली' (Villi) कहते हैं। वे सदैव गतिशील बनी रहती हैं और अधपचे खाद्य-तत्वा का शोषण करती रहती हैं। जब आंतों के आंशिक रूप से निष्क्रिय होजाने के कारण मल की सफाई की क्रिया समुचित रीति से नहीं हो पाती और जब बहुत अर्से तक मल रुका पड़ा रहता है तो उसमें बहुत ही सूक्ष्म जीवाणु, जिनका निरीक्षण माइक्रोस्कोप से ही किया जा सकता है, पैदा हो जाते हैं और वे अत्यन्त विषाक्त पदार्थ उत्पन्न करते हैं। और इन विषाक्त पदार्थों का भी शोषण आंतो की जिव्हाएं [Villi] कर लेती हैं। मनुष्य को सताने वाले अधिकांश रोग आंतों के इन विषाक्त पदार्थों के समीकरण से ही उत्पन्न होते हैं।

किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि केवल आंतों में मलावरोध होने के ही कारण शरीर में रोग उत्पन्न होते हैं। हमारे शरीर में जो विविध प्रकार की रासायनिक क्रियाएं-तथा प्रतिक्रियाएं हुआ करती हैं उनके कारण अनेक प्रकार के विष उत्पन्न हुआ करते हैं। इन विषों को हमारे गुर्दों, फेफड़े और पसीना बहाने वाली ग्रंथियाँ बाहर फेंका करती हैं। यदि हमारे शरीर के ये अंग ठीक समय पर इन विषों को बाहर निकालते रहें तो हम कभी बीमार ही नहीं पड़ सकते। किन्तु जब किन्हीं कारणों से विजातीय द्रव्यों को बाहर निकालने की क्रिया ठीक से संचालित नहीं हो पती तो फिर यह विष और विजातीय पदार्थ कहाँ जावें ? अतः वे निश्चय ही हमारे शरीर में अपने लिए स्थान ढूंढ़ लेंगे और स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव डालेंगे।

कभी कभी यह विष और गन्दगी बहुत लम्बे अर्से तक हमारे शरीर में एकत्रित हुआ करती है। इस समय हमें यह मालूम नहीं होता कि हमारे जीवन में घुन लग रहा है। वह बहुत समय तक अप्रकट रह सकता है और इसमें भ्रान्त धारणा उत्पन्न हो सकती है कि हम बिलकुल स्वस्थ हैं। किन्तु आगे चलकर जब इन्हें सम्हालना कठिन हो

जाता है तो शरीर में भयंकर बीमारी पैदा हो जाती है।

लोगों का ख्याल है कि बीमारी एकाएक हो जाया करती है किन्तु बात ऐसी नहीं है । हमें बीमारी एकाएक हो सकती है किन्तु उसके प्रकट होने में सदा बहुत समय लगा करता है । मामूली सर्दी जुकाम भी एकाएक नहीं होता। जब सर्दी लग जाने के कारण रोम-कूप बन्द हो जाते हैं तो जो विष प्रायः त्वचा के रोग-कूपों से होकर निकला करता है वह गुर्दों और अतड़ियों से बाहर निकलता है । किन्तु हमारे यह अंग जब शक्ति से अधिक काम करने के कारण निर्बल हो जाया करते हैं और रक्त में लगातार विष मिश्रित होता रहता है और इस प्रकार जब यह अतिरिक्त परिश्रम करने में असमर्थ हो जाते हैं तभी प्रकृति उन्हें शरीर के किसी अन्य भाग से निकालती है और हमें सर्दी लग जाया करती है।

इस प्रकार वस्तुतः बीमारी प्रकट होने से बहुत पहले ही हमारे शरीर में गड़बड़ी हुआ करती है और रोग उसी समय प्रकट होता है जब यह गड़बड़ी पूर्णता को प्राप्त हो जाती है। सफाई की क्रिया के अवरुद्ध हो जाने के परिणाम-स्वरूप एकत्रित विष की उपेक्षा शरीर एक सीमा तक ही कर सकता है और जब शरीर की इस सहन शक्ति की सीमा का अतिक्रमण हो जाता है तो हमें कोई न कोई रोग हो जाया करता है।

शरीर के विष को नष्ट करने की जो गुंजाइश हमारे शरीर में हुआ करती है वह उसे शरीर में सरलता से एकत्रित होने की सुविधा नहीं प्रदान करती। जब शरीर अपने अंदर की गरमी को अपने मुख द्वारों से निकालने में असमर्थ हो जाती है तब गंदगी मूत्र, पसीने और श्वास से निकला करती है। इसी प्रकार गुर्दे का कार्य त्वचा और त्वचा का कार्य गुर्दे तथा शरीर के किसी निष्क्रिय अंग का कार्य दूसरा अंग करने लगता है। हमारा शरीर इस प्रकार का स्वतः कार्य करने वाला एक अद्भुत यंत्र है।

किंतु दिन प्रतिदिन प्राकृतिक नियमों की उपेक्षा करके हम अपने शरीर में एक ऐसी अवस्था उत्पन्न कर लेते हैं जिसमें शरीर में अवांछित तत्वों के एकत्रित होने में सुविधा होती है। समय असमय, बहुत अधिक मात्रा में तथा भक्ष्याभक्ष्य पदार्थों का ग्रहण करना, आवश्यकता से अधिक परिश्रम या आवश्यकता से कम व्यायाम करना, अधिक सहवास करना, बंद कमरों में रहना, उतावला और चिंतित रहना और अनेक ज्यादतियां और व्यतिक्रम हमारे शारीरिक क्रिया में एक उलटफेर उत्पन्न कर देती हैं और इस प्रकार हमारे शरीर की सफाई करने वाले अंगों की क्रिया में व्याघात पहुँचता है ।

हम सदा इन अस्वास्थ्यकर पदार्थों को शरीर में एकत्रित करने के लिए उत्तरदायी नहीं हुआ करते। हम जान बूझ कर प्राकृतिक नियमों का अतिक्रमण नहीं करते। कदाचित हमारा अज्ञान ही हमारा सबसे बड़ा अपराध है, किंतु प्रकृति बड़ी कठोर अनुशासक है । उसके कोष में क्षमा नामक शब्द नहीं होता। जब कभी भी ज्ञान या अज्ञान से हमारे शरीर में बहुत अधिक गंदगी एकत्रित हो जाती है और इस सीमा तक पहुंच जाती है कि वह जीवन की क्रिया में हस्तक्षेप करने लगती है तब शरीर को साफ करने के लिए प्रकृति कोई कठोर साधन प्रयोग में लाती है । प्रकृति की इस क्रिया को रोग कहते हैं।

जब आँतों में भोजन का अवशिष्ट भाग या और कोई गंदगी जम जाती है तो प्रकृति उसे बलपूर्वक दूर करती है। प्रकृति के इस प्रयत्न को पेचिश, दस्त या अजीर्ण कहते हैं।

कभी कभी प्रकृति शरीर की गंदगी को रोम द्वारा निकालना चाहती है इसी कारण खुजली, फोड़े-तथा फुन्सी तथा अन्य चर्म-रोग हो जाया करते हैं।

कभी-कभी शरीर की पतली झिल्लियों को सफाई के द्वारों की भांति प्रयुक्त किया जाता है और हम विभिन्न प्रकार के नजलों की बीमारी सुना करते हैं।

कभी-कभी प्रकृति शरीर की गंदगी को जला देने के लिये शरीर के ताप में वृद्धि कर देती है और हम उसे ज्वर कहते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि हमें चाहे जो व्याधि हो—चाहे हम उसे दस्त कहें, चाहे फोड़ा या बुखार—सब एक ही बीमारी के अनेक स्वरूप हैं। शरीर में गंदगी और विष का एकत्रित होना ही रोग का मूल कारण है और प्रकृति द्वारा शरीर को स्वच्छ करने के अनेक प्रयत्नों का नाम रोग है ।

[शेष पृष्ठ ६० पर]

जलोपचार-क्रिया एवं प्रतिक्रिया

श्री विट्ठलदास मोदी, संचालक, आरोग्य मंदिर, गोरखपुर

जल जीवन का दानी और उसका रक्षक दोनों ही है और सम्भवतः इसीलिए हमारे प्राचीन मनीषियों ने जल को 'जीवन' की संज्ञा दी, 'जीवन' को 'जल' का पर्याय बना दिया! जल का महत्व निस्सन्देह बहुत बड़ा है ।

यहां पर आप देखेंगे कि विभिन्न अवस्थाओं में जल-प्रयोग की किस तरह भिन्न-भिन्न प्रतिक्रियाएं होती हैं । विषय जितना गम्भीर है उतना ही यह लेख मोदी जी सरीखे सिद्ध-हस्त लेखक की लेखनी से निःसृत होकर सरल और सुबोध भी बन गया है ।

'जीवन सखा' के भूतपूर्व सम्पादक डा० मोदी से पाठकों का परिचय कराने का नहीं, उनका स्मरण दिलाने की आवश्यकता है । हमें इसका हर्ष ही नहीं गर्व भी है कि आप पिछले ५ वर्षों से सस्ता साहित्य मंडल, दिल्ली द्वारा प्रकाशित गांधी जी की रचनात्मक प्रवृत्तियों के—जिनमें प्राकृतिक चिकित्सा भी सम्मिलित है— मुख पत्र 'जीवन साहित्य' के सम्पादन और गोरखपुर में अपने चिकित्सागृह आरोग्य मंदिर के सफलतापूर्वक संचालन में व्यस्त रहते हुए भी इधर अब हमारे पाठकों के लिसे भी समुचित सामग्री नियमित रूप से प्रस्तुत कर रहे हैं । इसके लिए हम अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करते हैं ।—सं०

जल विभिन्न रूपों में—तरल, वायव्य (भाप) कठोर (बरफ)—प्रयोग किये जा सकने की सुविधा के कारण शरीर के अपने को रोग मुक्त करने के प्रयास में बहुत बड़ा सहायक होता है। अतः जो दुर्बल को सशक्त एवं रोगी को स्वस्थ बनाना चाहते हैं उनके लिए यह चिकित्सा का एक बहुत बड़ा एवं शक्तिपूर्ण साधन है । ठंडे, गरम और सिरगरम पानी का उपयोग नया नहीं है । रोगों से मुक्ति पाने एवं शरीर को स्वस्थ रखने के लिए सभ्य और और असभ्य सभी प्रकार के लोगों द्वारा यह सदियों से प्रयुक्त होता रहा है । पर अब जल-चिकित्सा विज्ञान की दृढ़ भित्ति पर प्रस्थापित हो गई है एवं यह इतनी समुन्नत हो गई है कि जो इसका समझकर उपयोग करते हैं वे इससे मनचाहा एवं लोगों को आश्चर्य में डालने वाला लाभ प्राप्त कर सकते हैं ।

जल में अनेक रूपता के गुण के अलावा तीन गुण और होते हैं—(१) गरमी जज्ब करने और गरमी देने की शक्ति, (२) चीजों को अपने में मिला लेने की शक्ति, (३) रूप परिवर्तन की शक्ति अर्थात् जिस पात्र में यह रखा जाता है वैसी ही इसकी शक्ल हो जाती है ।

गरमी धारण करने की शक्ति जल से अधिक किसी भी अन्य वस्तु में नहीं है और गरमी यह बहुत शीघ्रता से पकड़ता एवं छोड़ता भी है । अतः यह शरीर से गरमी निकालने एवं शरीर को गरमी पहुंचाने, इन दोनों कार्यों में आवश्यकतानुसार आता है । अपनी घुलाने की क्षमता के कारण पिये जाने पर शरीर के अंदर से यह यूरिक एसिड और आक्जेलिक एसिड जैसे हानिप्रद तत्वों को शरीर से बाहर कर देता है ।

शरीर-शोधन के लिए जल का उपयोग अधिकतर तरल अवस्था में ही होता है, पर आवश्यकता होने पर जल को भाप में परिवर्तित कर अथवा जमाकर, इसे बरफ बनाकर, भी काम में लाते हैं ।

जल के प्रयोग गोकि बहुत सीधे सादे एवं सर्वथा प्राकृतिक होते हैं पर ये चिकित्सा के बहुत शक्ति पूर्ण साधन हैं, अतः इसका प्रयोग बहुत सावधानी से रोगी का बलाबल समझकर ही करना चाहिए । जो प्रयोग एक मोटे, सशक्त व्यक्ति के शरीर को जुकाम से मुक्त करने में

सहायक हो सकता है वही प्रयोग जुकाम से पीड़ित दुबले-पतले, कमजोर एवं रक्ताभाव के रोगी के लिए संहारक सिद्ध हो सकता है। जो यह नहीं समझते वे रोगी को लाभ के बदले नुकसान ही पहुंचाते हैं। कई बार कई लोग जल-चिकित्सा के किसी प्रयोग द्वारा रोग-मुक्त हुये हैं और वे उसी रोग से पीड़ित व्यक्ति से मिलने पर दवा के नुस्खे की तरह वही प्रयोग उसी रीति से उन्हें कराते हैं और रोगी को नुकसान पहुंचने पर प्रयोग कराने वाला बदनाम न होकर जल-चिकित्सा पद्धति बदनाम होती है।

जल का प्रयोग शरीर की गरमी घटाने अथवा बढ़ाने के लिए तो होता ही है पर जल की गरमी और ठंडक का असर जो शरीर की त्वचा पर होता है वह वहीं तक सीमित नहीं है। शरीर का ऊपरी भाग अपने नाड़ी-मंडल एवं रक्त-शिराओं के विचित्र सहयोग द्वारा सीधे शरीर के भीतरी भाग से संबंधित है। अतः जब जल का प्रयोग त्वचा पर किया जाता है तो उसका असर शरीर के अन्दर की मांस पेशियों, नाड़ियों एवं रक्त-शिराओं पर भी पड़ता है। यह असर दो प्रकार का होता है, पहला प्रतिक्षिप्त क्रियात्मक (Reflex) और दूसरा आत्मचालित (Mechanical)। यदि गरमी, ठंडक, मालिश अथवा थपकी के प्रयोग द्वारा त्वचा पर सिकुड़न पैदा की जाती है तो यह सिकुड़न सारे शरीर के अन्दर भी पैदा हो जाती हैं। यह शरीर के ऊपर त्वचा पर की गई क्रिया की प्रतिक्षिप्त क्रिया है। पर आत्मचालित क्रिया दूसरे ही प्रकार की होती है। जब त्वचा के निकट की रक्त-शिरायें संकुचित की जाती हैं तो इस संकोचन के फलस्वरूप शरीर के अन्दर रक्त तेजी से पहुंचता है—रक्त-शिराओं के संकोचन के कारण उनसे निकला रक्त भीतर की तरफ स्थान पाने को भागता है। अतः त्वचा पर की गई क्रिया के दो विरोधी असर साफ समझ में आते हैं—पहला प्रतिक्षिप्त, जिसके फलस्वरूप रक्त-शिरायें सिकुड़ती हैं और दूसरा आत्मचालित, जिसके फलस्वरूप शरीर के भीतर की शिरायें फैलती हैं। अतः त्वचा पर की गई जल-क्रिया का सही असर उसके द्वारा शरीर के अन्दर होनेवाली प्रतिक्षिप्त क्रिया एवं आत्मचालित क्रिया को समझने के बाद ही जाना जा सकता है एवं जो इसे समझते हैं वे जल के द्वारा शरीर के अंग-प्रत्यंग पर इच्छित प्रभाव डाल सकते हैं।

इसी प्रकार जो क्रिया त्वचा पर की जाती है उसका प्रभाव उस क्रिया तक ही सीमित न होकर उससे होनेवाली प्रतिक्रिया पर भी निर्भर है। ठंडे पानी को लीजिये। इसके प्रयोग द्वारा त्वचा की रक्त-शिराओं के संकुचित हो जाने के कारण, अर्थात् गरम रक्त के त्वचा के निकट से हट जाने के कारण, त्वचा ठंडी एवं पीली हो जाती है पर ज्यों ही वह प्रयोग बन्द किया जाता है संकुचित शिरायें फूल जाती हैं और त्वचा का पीलापन अथवा नीलापन लाली में बदल जाता है।

ठंडे पानी के प्रयोग द्वारा पहले पसीना निकलना तुरन्त बन्द हो जाता है पर इस प्रयोग की जब प्रतिक्रिया होती है तब वह अधिकता से निकलने लगता है। साथ ही ठंडे पानी के प्रयोग के फलस्वरूप यह भी होता है कि जब तक यह प्रयोग चलता रहता है अथवा पानी में ठंडक रहती है शरीर से गरमी निकलती रहती है, पर ठंडे उपचार के बन्द होने पर इसकी प्रतिक्रिया स्वरूप जब रक्त तेजी से त्वचा के निकट पहुंचता है तब गरमी बढ़ती हुई प्रतीत होती है। इसका फल यह होता है कि अन्दर के रक्त के त्वचा के निकट आने पर शरीर से गरमी अधिक तेजी से निकलने लगती है।

ठंडे पानी का प्रयोग त्वचा पर कीजिए, रक्त की गति मंद हो जायगी साथ ही हृदय की गति भी। केवल हृदय की गति कम करने की आवश्यकता हो तो हृदय के ऊपर की दो मुठी जगह पर खूब ठंडे पानी से भीगी पट्टी अथवा बरफ से भरी बैग देर तक रखिये। हृदय की गति कम हो जायगी। हृदय के ऊपर की जगह हृदय से सम्बन्धित है। पर यदि हृदय की गति तीव्र करनी है हो तो ठंडे पानी का प्रयोग बहुत थोड़ी देर तक करना चाहिए। ठंडे पानी का प्रयोग देर तक करने से ठंडे जल के प्रतिक्षिप्तात्मक प्रभाव के फलस्वरूप हृदय की गति मन्द रहेगी पर वही प्रयोग जब बहुत थोड़ी देर तक किया जायगा तो आत्मचालित क्रिया के कारण हृदय की गति तीव्र हो जायगी।

जो जल के प्रयोग में निपुण होना चाहते हैं उन्हें त्वचा पर जल के प्रयोग की प्रतिक्रिया, शरीर के अन्दर उससे होनेवाली प्रतिक्षिप्त क्रिया एवं आत्मचालित क्रिया

को ठीक ठीक समझने के साथ शरीर के ऊपर के किस भाग का शरीर के अन्दर के किस अंग से क्या सम्बन्ध है, यह भी जानना-समझना चाहिए।

आमाशय के ऊपर की त्वचा से आमाशय का इतना अधिक सम्बन्ध है कि जो कुछ वहां रक्त संचालन एवं स्नायु-शक्ति-प्रसरण के सम्बन्ध में किया जाता है उसका सीधा असर आमाशय पर पड़ता है। इसी प्रकार यकृत के ऊपर की त्वचा से यकृत का भी सीधा सम्बन्ध है। जब इस स्थान पर ठंडे पानी का प्रयोग किया जायगा तब लिवर की रक्त-शिरायें संकुचित होंगी एवं वहीं पर गरम पानी का प्रयोग करने पर वे फैलेंगी। इसलिए यदि लिवर के पास आवश्यकता से अधिक रक्त इकठा हो गया है तो हटाया जा सकता है और यदि रक्त-शिराओं में उचित-रीति से प्रवाहित नहीं होता तो वहां नये स्वस्थ रक्त का संचार कर लिवर रोग-मुक्त किया जा सकता है।

यदि शरीर के अन्दर कहीं सूजन हो, अथवा किसी रीति से कहीं रक्त इकट्ठा हो गया हो तो इस अवस्था से मुक्ति पाने के लिए गरम पानी से भरे टब में लेटना चाहिए। फल यह होगा कि गरम पानी की गरमी त्वचा के निकट की रक्त-शिराओं को फैला देगी और रक्त वहां इतनी अधिक मात्रा में आ जायगा कि भीतर के पीड़ित भाग को रक्त के दबाव से छुट्टी मिल जायगी। और वहां का कष्ट दूर हो जायगा। ऐसे कष्टों को दूर करने के लिए गरम नहान से बढ़कर दुनिया में कोई दूसरी सरल दवा नहीं है।

जल के प्रयोग से किसी भी दवा का कोई मुकाबिला नहीं हो सकता। शरीर के सबसे अधिक मूल्यवान अंग हृदय पर ठंडे-गरम जल के प्रयोग से पड़ने वाले असर के बारे में हम बता आये हैं। यह असर जल का प्रयोग होते ही देखने को मिलता है। ऊपर त्वचा पर जल का प्रयोग हुआ, उनकी अनुभूति का असर नाड़ी पर एवं उसके द्वारा नाड़ी-केन्द्र (रीढ़) पर पहुंचा। वहां से उसकी प्रतिक्रिया के लिए हुक्म हुआ। इस सारे काम में एक सेकेंड का सवां हिस्सा भी नहीं लगता। अतः लाभ तुरन्त दिखाई देता है। पर यही लाभ यदि दवा से लेना हो तो ? दिल जोरों से धड़क रहा है, यह धड़कन रोगी को शराब पिलाकर कम की जा सकती है। पीने पर शराब पहले रक्त में मिलती है तब वह रक्त के सहारे सारे शरीर में पहुंचती है, इस प्रकार दी गई शराब का बहुत थोड़ा अंश हृदय को मिलता है और इस सारी क्रिया में बहुत देर लगती है। पर यदि धड़कते हुए हृदय पर ठंडे पानी की पट्टी रखी जाती है तो हृदय की धड़कन तत्क्षण सम हो जाती है ! यदि शराब से होने वाली हानि का विचार न किया जाय तो भी पानी के इस प्रयोग के सामने शराब का क्या मूल्य ?

आदमी बेहोश होकर फर्श पर गिर पड़ता है। ऐसी दशा में मुंह पर पानी के छींटे मारते ही हृदय फिर से चलने लगता है, छाती फूल उठती है, आँख खुल जाती है और रोगी की मृत्यु का भय दूर हो जाता है !

इसी प्रकार यदि शरीर का कोई भी अंग काम करना बंद कर दे तो कम से कम उस अंग को बेहोश हुआ तो माना ही जायगा। कभी कभी जब लोग दावत वगैरह में या घर पर ही कस कर खा लेते हैं तो पेट अकसर फूल जाता है और पाचन-क्रिया रुक जाती है। ऐसी हालत में यदि पेट पर थोड़ी देर तक गरम पानी से सेंक देने के बाद ठंडे पानी की पट्टी रखकर तुरंत हटा ली जाय तो इससे आमाशय को उसकी चैतन्यता उसे वापस मिल जाती है और वह पुनः काम करने लग जाता है, अर्थात् पाचन-क्रिया शुरू हो जाती है और पेट के भारीपन का कष्ट धीरे धीरे चला जाता है। चूरन, चटनी यह काम इतनी शीघ्रता से कभी नहीं कर सकते।

यदि शरीर के किसी भी अंग का कार्य शिथिल हो गया हो तो इसी रीति से उसे पुनः कार्य में प्रवृत्त किया जा सकता है, जानने की जरूरत केवल इतनी ही है कि वह अंग कहाँ है और लाभ उसे ठंडे पानी से होगा अथवा गरम पानी से।

ठंडे पानी के प्रयोग से शरीर में होने वाली प्रतिक्रिया एवं उसके मूल्य को हम नित्य किये जाने वाले साधारण स्नान से भली भाँति समझ सकते हैं और उसे समझ कर हम अपने स्नान को अधिक उपयोगी भी बना सकते हैं।

सभी का अनुभव है कि गरमी में ठंडे पानी का स्नान बड़ा आनंददायक होता है और यही स्नान जब ठंडे पानी

से भरे तालाब में या गहरी नदी में किया जाता है तब आनन्द और भी बढ़ जाता है। पर जाड़े के दिनों में यही स्नान सब लोग समान रूप से बर्दाश्त नहीं कर सकते। मोटे दुर्बलों की अपेक्षा अधिक देर तक ठंडे पानी में रह सकते हैं और बच्चों के दाँत बड़ों की अपेक्षा ठंडे पानी के प्रयोग से जल्द ही कटकटाने लगते हैं। इससे यह भली भाँति समझा जा सकता है कि पानी का गलत उपयोग स्वास्थ्य देने के बजाय हानि पहुंचा सकता है।

ठंडा पानी शरीर से गरमी खींचता है। गरमी में स्वभावतः यह जाड़े में पानी की ठंडक अधिक होने से शरीर से गरमी तेजी से खिंचती है। इस समय यदि ठंडे पानी का प्रयोग बहुत थोड़े समय के लिए किया जाय तो शरीर की बची गरमी उसे फिर शीघ्रता से गरम कर लेती है पर यदि गरमी अधिक निकल जाय तो ?—गरमी कमजोर एवं रोगी शरीर में कम होती है। शरीर के सभी कार्य एवं रक्त-संचालन धीमा पड़ जाता है और स्नान द्वारा चैतन्यता बढ़ने के बजाय शिथिलता का अनुभव होता है।

इसी ठंडक की उपयुक्त मात्रा शरीर पर लगने पर त्वचा के निकट की रक्त-शिराओं के संकुचित होने के कारण जब रक्त शरीर के अन्दर के भाग में अधिक मात्रा में पहुंचता है तब अंदर के प्रत्येक अंग चैतन्य हो जाते हैं, वे सब अपने कार्य तेजी से करने लगते हैं। सभी का अनुभव है कि नदी में गोता लगाते ही आदमी जोरों से साँस खींचता है। यह फेफड़ों की क्रियाशीलता बढ़ जाने का प्रमाण है। यह कार्य बिना किसी प्रयास के तलवे में गुदगुदी लगने पर पैर उछल जाने के समान अपने आप होता है। गहरी सांस के कारण शरीर में अधिक ओषजन पहुंचता है। हृदय भी अपना कार्य तेजी से करने लगता है। फलतः रक्त की गति तीव्र हो जाती है और शरीर के प्रत्येक अंग को अधिक रक्त एवं शुद्ध रक्त मिलने लगता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि समुद्र, नदी, तलाब में स्नान करने अथवा ठंडे पानी के किसी प्रकार के नित्य के प्रयोग से शरीर में रक्त बनने की गति स्थाई रूप से बढ़ जाती है।

ठंडे पानी के प्रयोग से पाचन-क्रिया भी ठीक होती है, जिससे भोजन ठीक तरह से पचता है एवं उसके बचे हुए भाग का उपयोग रक्त शीघ्रता एवं परिपूर्णता से करता है। त्वचा पर ठंडक लगने का प्रभाव यह भी होता है कि आमाशय से पाचक रस तेजी से निकलते हैं। इन्हीं कारणों से ठंडे पानी के स्नान के बाद अथवा प्रातःकाल शीतल मंद बयार में टहल आने के बाद भूख तेजी से लगती है। ठंडक से हमेशा पाचन क्रिया ठीक होती है एवं भूख बढ़ती है, यकृत एवं लालाग्रंथियों का कार्य भी उत्तेजित होता है। बरफ भरे मैदान में रहने वाले एसकिमों जाति के लोग ठंडक के प्रभाव से ही भर-भर पेट चरबी अथवा ऐसे खाद्य खाकर पचा पाते हैं जिनको साधारण आदमियों के लिए पचा सकना कठिन है।

ठंडे पानी के स्नान से जो प्रभाव शरीर के अंग-प्रत्यंग पर पड़ता है ठीक वही प्रभाव खुली त्वचा पर ठंडी हवा लगने से प्रभाव ठंडक का होता है। उसका वाहन चाहे जल हो अथवा वायु।

यह हुई ठंडे पानी के स्नान की बात। ठंडे पानी के बाद अब सिरगरम अर्थात् ९२° से लेकर ९५° फारनहाइट गरम पानी के बारे में जानना चाहिए। सिरगरम पानी से भरे टब में लेटने से गरमी में गरमी कम लगती है। अनिद्रा और स्नायु दौर्बल्य की यह एक ही दवा है। सिरगरम पानी में स्नायुओं को शिथिल करने की बड़ी शक्ति है। टब में लेटे लेटे शरीर का वह शिथिलीकरण होता है जो योगियों के लिए दुर्लभ है। ऐसी अवस्था में नींद आ जाती है और यह एक घंटे की नींद बाहर के चार घंटे की नींद के बराबर होती है। कुछ दिन का यह स्नान त्वचा को सतेज, सुन्दर एवं सुचिक्कण बना देता है। बीमारी के बाद उठे कमजोर रोगियों को यह स्नान कुछ दिन तक लगातार करना चाहिए। उनके लिए यह वह काम करेगा जो कोई मालिश नहीं कर सकती।

अब हम कुछ तीव्र रोगों में जलोपचार की विधि बतायेंगे।

लू लगना

गरमी के दिनों में लू लगना आये दिन की घटना होती है। इस दशा में शरीर की गरमी बहुत बढ़ जाती है और अकसर रोगी का कुछ घंटों के अन्दर ही प्राणांत हो

078769

जाता है। ऐसी दशा में ठंडे पानी का प्रयोग आशातीत लाभ करता है। लू लगे हुये प्राणी पर उसे बैठाकर या सुलाकर चार फीट की ऊंचाई से खूब ठंडा पानी––अच्छा होगा कि बरफ मिलाकर पानी का तापमान ६०° फारन हाइट कर लिया जाय—डालना चाहिए और साथ साथ दो तीन आदमियों को मिलकर रोगी के सारे शरीर को खुले हाथों से रगड़ना चाहिए। तलहथी से रगड़ने के कारण पानी की ठंडक की वजह से शरीर के अन्दर गया रक्त त्वचा के निकट वापस आता रहता है और ठंडे पानी के संपर्क में आकर ठंडा होता रहता और शरीर की गरमी को कम करता रहता है। रोम-कूप खुल जाते हैं और उनके द्वारा भी शरीर से गरमी निकलने लगती है। लू लगने से रोम-कूप बन्द हो जाते हैं अर्थात् शरीर से गरमी और गंदगी (पसीने के रूप में) निकलने का मुख्य द्वार बन्द हो जाता है। रोम-कूपों द्वारा फेफड़ों की तरह शरीर भी सांस लेता है, अतः उनके बन्द होने से शरीर को ओषजन मिलने में भी कोताही होने लगती है। गरमी में पसीना निकलने की क्रिया के फलस्वरूप शरीर अपना तापमान ठीक रख पाता है। गरमी के कारण त्वचा पर का पसीना भाप बनता रहता है और त्वचा को ठंडा रखता है। ठंडे पानी के इस प्रयोग से लू लगे व्यक्ति की ये सारी क्रियायें दुरुस्त हो जाती हैं और वह स्वस्थ हो जाता है।

लूह के रोगी पर पानी डालते वक्त सिर को और सिर के पीछे के भागको ठंडा रखनेका विशेष खयाल रखना चाहिए। ठंडे पानी की यह विधि यदि समय पर काम में लाई जा सके तो रोगी के मृत्यु की कोई संभावनां नहीं है।

पेट चलना या हैजा

गरमी के दिनों में एक दूसरा रोग होता है। हैजा या मुहं-पेट चलना। इस तरह के रोगी के पेट और पेडू पर ठंडे पानी से भीगा मोटा तोलिया रखने से निश्चित रूप से मुहँ-पेट चलना वंद हो जाता है। यदि रोगी के पेट में दर्द हो तो गरम पानी का एक एनीमा देकर उसकी आंतें साफ कर देनी चाहिए औद पंद्रह-बीस मिनट तक पेट को गरम पानी से भीगे कपड़े से सेंक कर पुनः पेट पर ठंडे पानी की पट्टी रख देनी चाहिए। ठंडे पानी की पट्टी दस-दस मिनट पर बदली जाती है। ठंडी पट्टी रखने से त्वचा सिकुड़ती है और उसी पट्टी के गरम हो जाने पर रक्त वहां तेजी से पहुंचता है। फिर ठंडी पट्टी रखी जाती है वह फिर गरम होने पर रक्त फिर तेजी से आता है। इस प्रकार पेट के हिस्से में, आंतों में नया रक्त आता रहता है और गरमी निकलती रहती है। विदेशों में कुछ समझदार डाक्टर भी ऐसे समय जल प्रयोग करते हैं। उनका कहना है कि प्रतिक्रिया स्वरूप रोगी अंग में जो नया रक्त आता रहता है वह रक्त के सफेद कीटाणुओं को रोग के कीटाणुओं से लड़ने एवं उन्हें नष्ट करने की शक्ति देता है।

मियादी बुख़ार

मियादी बुखार के रोगी को चाहिए कि जब तक वह जागे एक एक पाव ठंडा पानी प्रति घंटे पीता रहे। इससे त्वचा के रास्ते गंदगी और गरमी निकलती रहेगी। अतः प्यास न रहे तब भी पानी पीते रहना चाहिए। यदि पानी अधिक दिया जा सके तो वह भी पिया जा सकता है क्याकि इस हालत में पानी प्यास बुझाने से अधिक शरीर की गंदगी दूर करने के लिये पिया जाता है। पानी में शंतरे या किसी फल का रस थोड़ी मात्रा में मिलाया जा सकता है। यदि रोगी पानी न पी पावे तो ८०° फारनहाइट गरम पानी का एक एनीमा दिन में तीन बार देना चाहिए और रोगी को चाहिए कि जहाँ तक हो सके वह इस पानी को रोके। इसके अलावा नित्य सवेरे गुनगुने गरम पानी का एनीमा पेट साफ करने के लिए तो देना ही चाहिए।

अधिक ज्वर होने पर रोगी को नंगा करके ठंडे पानी से भीगी चादर निचोड़ कर उढ़ा दी जा सकती है। यदि ज्वर उतारना आवश्यक हो तो रोगी को मोमजामें पर सुलाकर और ठंडे पानी से तर पट्टी लपेटकर सारी पट्टी पर तेजी से हलके दबाव के साथ हाथ फेरना चाहिए। इससे ज्वर शीघ्र और सिर के पीछे ठण्डे पानी से भीगी पट्टी रखनी चाहिए। इससे सिर दर्द दूर होता है। यह पट्टी गरम होते ही बदलते रहना चाहिए। पर यदि दर्द बहुत तेज हो तो गले के चारों ओर बरफ के पानी में भीगी पट्टी निचोड़ कर लपेटना चाहिए।

पेट पर ठंडी गीली पट्टी तो जब तक ज्वर न उतर जाय तब तक बराबर रखते जाना चाहिए। इस पट्टी के

योग से न आँतों के अन्दर फुसियाँ एवं घा होते हैं और न खून के दस्त ही आते हैं ।

यदि खाँसी आने लगे तो छाती पर गीली पट्टी रख ऊनी कपड़े से ढक कर बाँध देनी चाहिए। छाती की पट्टी के प्रयोग के समय पेट पर से पट्टी हटा देनी चाहिए। छाती की पट्टी दिन में दो तीन बार आध घंटे के लिए रखना काफी है।

यदि रोगी ज्वर के कारण अकबक करने लगे तो उसे सारे बदन की गीली पट्टी देना चाहिए—सारे बदन पर ठंडे पानी से भीगा कपड़ा लपेट कर दो-तीन कम्बलें लपेट देना चाहिए। इस समय ९८° फारनहाइट गरम पानी में रोगी को सुलाने से भी वही काम होता। यदि पट्टी दी जाय तो पट्टी के गरम होने पर उसे बराबर बदलते रहना चाहिए। इसके लिए दो पट्टी और चार-छ कम्बलें तैयार रहें। एक पट्टी गरम होने पर रोगी को आहिस्ते से निकाल कर दूसरी पट्टी में लपेट दिया जाय।

कुछ छोटे-मोटे प्रयोग

सिर के गर्म होने के साथ सिर दर्द होने पर सिर और मुंह पर मोटा ठंडा तौलिया रखने एवं गले पर ठंडी पट्टी बाँधने से सिर दर्द जाता है। सिर पर बालों में भी थोड़ा ठंडा पानी लगा देना चाहिए और पट्टी गरम होने पर बदलते रहना चाहिए।

कमजोर दिल या बैठते दिल पर (६०° फारन हाइट) ठंडी पट्टी हर घंटे पंद्रह-बीस मिनट के लिए रखनी चाहिए। दो घंटे पर १० मिनट के लिए गरम पानी से सेंक भी। यदि फेफड़ों में पानी आ जाने के कारण दर्द है तो यह सेंक बार बार दी जा सकती है। इस सेंक के समय पैरों और शरीर के अन्य अंगों को गरम कपड़ों से ढक कर गरम रखना चाहिए।

सर्दी जुकाम और नाक बहने में यदि रात को बालों को ठंडे पानी से भिगो लिया जाय तो रात भर में सर्दी जुकाम चली जाय।

हाथ में या अंगुलियों में सूजन की वजह से दर्द हो तो कोहनी को ठंडे पानी में डुबोना चाहिए।

फुंफ्फुस के यक्ष्मा के रोगी को यदि खाँसी आवे तो छाती की पट्टी से बढ़कर कोई दूसरी निरापद दवा नहीं है। यह पट्टी पतले कपड़े की होनी चाहिए कि तुरन्त गरम हो जाय और यह गरम ही कुछ देर तक रहने देना चाहिए।

सिर में रक्त संचय होने की वजह से नींद न आने पर नींद बुलाने के लिए ९२° फारन हाइट गरम पानी में सोने के मुकाबिले का कोई दूसरा अच्छा उपाय नहीं है। इस नहान से निकलने के बाद कमर में ठंडे पानी से भिगोकर निचोड़ा हुआ तौलिया लपेटकर ऊपर से ऊनी कपड़ा लपेट देना चाहिए। ताकि पट्टी तुरन्त गरम हो जाय और रक्त खिच आवे।

कमर में दर्द हो तो सोते वक्त गरम पानी से भीगे तौलिये से देर तक सेंकना चाहिए और फिर ठंडे पानी से भीगा तौलिया दर्द की जगह पर रखकर ऊनी पट्टी लपेटनी चाहिए।

आँखों में दर्द हो तो आँख की और माथे की हलकी सेंक करनी चाहिए। गाल की नहीं।

पेट में दर्द हो तो गरम पानी का एनीमा देना चाहिए। फिर पेट को सेंक कर घंटे भर के लिए पेट पर ठंडी पट्टी लपेटकर ऊपर से ऊनी पट्टी लपेट देनी चाहिये।

पेड़ू का दर्द पैर को तेज गरम पानी में रखने से दूर होता है। बात यह होती है कि रक्त पेड़ू से हटकर पैर की तरफ आ जाता है। जिससे पेड़ू के पास इकठा रक्त हट जाता है और दर्द चला जाता है। इस समय यदि पैर को गरम पानी में रखने के साथ-साथ कमर को गरम पानी से सेंका भी जाय तो दर्द और भी शीघ्रता से चला जायगा।

नाक से खून गिरने पर यदि रीढ़ के ऊपरी भाग में ठंडे पानी की धार डाली जाय तो नाक से खून आना बंद हो जाता है।

गर्भाशय की गड़बड़ी के कारण यदि हिस्टीरिया का दौरा आता हो तो वह बहुत बार पैरों को ठंडे पानी से धोने से दूर हो जाती है।

बहुत बार रुका हुआ पेशाब, जो किसी तरह नहीं उतरता था पैरों को कुछ ही क्षण के लिए ठंडे पानी में रखने से आ गया है।

(शेष पृष्ठ २४ पर)

जलोपचार की प्रमुख विधियाँ

डा० खुशीराम दिलकश, एम० एस० बी०, एल० एस० ई० पी०, एन० डीं०, प्रिंसिपल नेशनल नेचुरोपैथिक कालेज, लखनऊ

जल-चिकित्सा नैसर्गिक उपचार-पद्धति का सब से प्रधान अंग है। सच तो यह है कि प्राकृतिक चिकित्सा-प्रणाली का आविर्भाव सबसे पहले जलोपचार के ही रूप में हुआ। अतः बहुत से लोग प्राकृतिक-चिकित्सा का अभिप्राय जल-चिकित्सा ही समझते रहे हैं। किन्तु अब प्रकृति के अन्य तत्वों—मिट्टी, धूप, वायु आदि—के चमत्कार भी रोग-व्याधि पीड़ित मानव-समाज के सामने प्रकट हो चुके हैं। अतः अब इस नैसर्गिक-चिकित्सा प्रणाली के विभिन्न अंगों के अलग-अलग महत्व को लोग इसके विकास के साथ-साथ अधिकाधिक समझने लगे हैं। आधुनिक विशेषज्ञों ने भी अपने वैज्ञानिक अन्वेषणों एवं प्रयोगों के द्वारा यह सिद्ध कर दिया है कि जल में रोग-निवारण तथा आरोग्य लाभ करने के आश्चर्यजनक गुण विद्यमान हैं। वैज्ञानिकों का यह अनुसंधान कोई नई बात नहीं है। क्योंकि रोगों के उपचार और स्वास्थ्य लाभ की दिशा में जल के महत्व से कई शताब्दि पूर्व से ही लोग परिचित हो चुके हैं और संसार के भिन्न-भिन्न देशों में रोगोपचार के रूप में जल का प्रयोग भी होता रहा है। आज के मानव ने अपने पूर्वजों की चिकित्सा-प्रणाली को भुलाया नहीं है, वरन् इस चिकित्सा विज्ञान को अपने वैज्ञानिक अन्वेषणों से अपेक्षाकृत अधिक उन्नत और विकसित ही बनाया है।

जलोपचार का महत्व एवं उपयोगिता

अपनी दैनिक आवश्यकताओं में जल की यह उपयोगिता एक साधारण मनुष्य भी समझ सकता है कि इसका मनुष्य-जीवन पर कितना असीम शारीरिक प्रभाव पड़ता है। जल-चिकित्सा ही एक ऐसी आसान तथा सबसे सस्ती उपचार विधि है जो हर समय सर्वत्र किसी भी सम्भव आवश्यकता के समय प्राप्त हो सकती है। उचित तथा विवेकपूर्ण जलोपचार से हर प्रकार के कठिन से कठिन रोग भी ठीक हो जाते हैं। जल-चिकित्सा जल का असली गुण बताती है और इसका भिन्न भिन्न लक्षणों के आधार पर इस्तेमाल भी विभिन्न प्रकार से ही किया जाता है। तमाम प्राकृतिक चिकित्सा में निस्सन्देह सबसे अधिक गुणकारी तथा शक्तिशाली जल-चिकित्सा ही है। इसका व्यवहार भी बहुत आसान है, क्योंकि यह आसानी से तरल से ठोस और ठोस से भाप बन जाता है। यह अनुभव किया गया है कि पानी ओषजन की ७५ प्रतिशत खपत बढ़ा देता है और ८५ प्रतिशत हाईड्रोजन की मात्रा को शरीर से निकाल देता है। कोई भी रोग ऐसा नहीं है जिसमें किसी न किसी सूरत में नियमित रूप से पानी का उपयोग न किया जा सके। तथापि इसका असर भिन्न भिन्न तापमान में शरीर पर भिन्न भिन्न प्रकार का होता है। जल-चिकित्सा में निम्नलिखित तापमान का पानी व्यवहार में लाया जाता है:—

१—बहुत ठंडा	...	३२ से ५० डिग्री तक
२—ठण्डा	...	५० से ६५ ,,
३—शीतल	...	६५ से ८० ,,
४—गुनगुना	...	८२ से ९२ ,,
५—सामान्य	...	९२ से ९५ डिग्री तक
६—गर्म	...	९५ से ९८ ,,
७—,,	...	९८ से १०४ ,,
८—बहुत अधिक गर्म	...	१०४ से १२० डिग्री तक

या इससे भी अधिक तक!

उपचार में विभिन्न तापमान के जल के गुण और प्रभाव

१२० डिग्री से अधिक तापमान वाला पानी शायद ही कभी व्यवहार में लाया जाता हो। १०४ से १०८ तक के तापमान के स्नान का वही असर होता है जो कि इससे अधिक तापमान का, और १२० डिग्री से अधिक तापमान का पानी खतरे से खाली नहीं होता। १४०° तापमान का भाप और ३००° तापमान तक के वायु को शरीर सहन कर सकता है। जल-चिकित्सा में फारनहाइट का

थर्मामीटर व्यवहार में लाया जाता है और इस लेख में भी तापमान के स्थान में इसी थर्मामीटर का जिक्र किया गया है ।

जल-चिकित्सा में शरीर पर पानी का असर, पानी के तापमान, समय की अवधि, शरीर के अंग, व्यवहार करने का तरीका और सबसे अधिक तो रोगी की शारीरिक अवस्था आदि पर निर्भर है ।

पानी के व्यवहार की अवधि, जो बड़े बड़े जल चिकित्सालयों में प्रयोग की जाती है, नीचे दी जाती है:—

अत्यल्प (बहुत ही कम), ...	५ से १५ सेकेंड तक
अल्प (कम) ...	१५ से ६० सेकेंड तक
अधिक ...	२ से १० मिनट तक
अत्यधिक ...	१० से ३० मिनट या इससे भी अधिक समय तक ।

जल-प्रयोग के अस्थायी तथा स्थायी प्रभाव

किसी भी अवस्था में जब शरीर पर पानी का प्रयोग किया जाता है, चाहे वह व्यवहार आभ्यान्तरिक हो अथवा वाह्य तो उससे दो प्रकार के असर पैदा होते हैं(१)—क्रियात्मक तथा (२) प्रति क्रियात्मक इनमें से पहले को अस्थायी तथा दूसरे को स्थायी प्रभाव कहते हैं । पानी का व्यवहार इन्हीं दोनों गुणों के लिए किया जाता है । जब पूरक (अस्थायी) प्रभाव की आवश्यकता होती है तो पानी का तापमान साधारण होता है और पर्याप्त समय तक उसकी प्रतिक्रिया को रोकने के लिए किया जाता है । और जब प्रतिक्रियात्मक गुण (स्थायी प्रभाव) की आवश्यकता होती है तो गर्म अथवा ठंडा पानी का व्यवहार किया जाता है और वह भी कम समय तक । इसकी प्रतिक्रिया थोड़े समय के व्यवहार से प्रायः निश्चित हो जाती है, अधिक समय के व्यवहार में नहीं । जल-चिकित्सा का व्यवहार स्थायी अथवा प्रतिक्रियात्मक प्रभाव के लिये ही किया जाता है । इसलिए यह बात सदा याद रखनी चाहिए कि पानी तथा शरीर के तापमान में ही जितना अधिक अन्तर होगा उतना ही अधिक प्रतिक्रिया भी होगी अर्थात् प्रभाव स्थायी होंगे ।

अस्पताल के व्यवहारिक अनुभव से शरीर पर जल के व्यवहार का निम्न परिणाम मालूम हुआ है:—

बहुत गर्म पानी अल्प कालीन—

१—शरीर के तापमान को कम कर देता है ।
२—चमड़े (त्वचा) की कार्यशीलता को घटा देता है ।
३—रक्त-चाप (Blood Presure) पर कोई असर नहीं होता ।
४—शरीरिक यंत्रों में स्फूर्ति उत्पन्न करता है ।
५—हृदय की गति को स्वस्थ तथा सतेज करता है ।
६—माँस पेशियों को सिकोड़ता है ।
७—रक्त-स्नायुओं को सिकोड़ता है ।
८—पोषण-शक्ति को प्रभावित करता है ।
९—श्वास-क्रिया को उत्तेजित करता है ।

उष्ण जल, चिरकालीन—

१—शरीर के तापमान को बढ़ाता है ।
२—त्वचा की कार्य शक्तियों को बढ़ाता है ।
३—रक्तचाप को कम करता है ।
४—शरीरिक स्नायुओं को हल्के तौर पर प्रभावित करता है ।
५—हृदय की गति को तेज तथा कमज़ोर करता है ।

(पृष्ठ २२ का शेषांश)

दमे की तीव्र अवस्था में छाती पर ठंडे पानी की धारा कुछ क्षणों के लिये तेजी से डालने पर दमा पहले बढ़ा हुआ मालूम होगा पर थोड़ी ही देर बाद निश्चित रूप से लाभ प्रतीत होगा । जीर्ण दमे में छाती पर ठंडे पानी की पट्टी लपेटने के बाद ऊपर से ऊनी पट्टी लपेट कर आध घंटे तक दिन में दो तीन बार रहने से जरूर फायदा होता है । दमे का जोर पैरों को अथवा दोनों हाथों को गरम पानी में पंद्रह-बीस मिनट रखने से निश्चित रूप से कम हो जाता है ।

जलोपचार के सिद्धान्त—प्रतिक्षिप्त क्रिया, आत्मचालित क्रिया एवं शरीर पर होनेवाली उनकी प्रतिक्रिया समझने के बाद कोई भी किसी रोग के लिये जलोपचार निश्चित कर सकता है । यहाँ कुछ नित्य होनेवाले रोगों एवं नित्य उपस्थित होनेवाली अवस्थाओं में जल-प्रयोग की विधियाँ इसलिये लिख दी गई हैं कि इनके प्रयोग के बाद प्राप्त हुये अनुभव एवं विश्वास के आधार पर अन्य कठिन अवस्थाओं में भी जल का प्रयोग बिना किसी हिचकिचाहट के किया जा सके ।

लेखक

यद्यपि प्राकृतिक चिकित्सा के अनुसार सभी रोगों में एकरूपता मानी जाती है किन्तु, सभी रोगों की चिकित्सा-विधि भी एक ही हो, यह बात नहीं। एक ही रोग से पीड़ित विभिन्न रोगियों की अवस्था एक सी नहीं हो सकती, और इसलिए उनकी चिकित्सा-विधि भी आवश्यकतानुसार अलग-अलग होनी चाहिए। इसके अलावा आप यह भी देखेंगे कि प्राकृतिक चिकित्सा-विधि में किंचित् असावधानी अथवा भूल होने से रोगी को लाभ के बजाय हानि ही होती है। अतः यह नितान्त आवश्यक है कि रोग एवं रोगी की अवस्था की भली भाँति जांच कर लेने के बाद ही चिकित्सा-विधि निर्धारित करनी चाहिए।

चिकित्सा-विधि के इस महत्व पर इस लेख के अनुभवी लेखक डा० के० आर० दिलकश, एन० डी० एल० एस० ई० पी, एन० डी, ने जिस योग्यता के साथ प्रकाश डाला है वह सराहनीय है। इस सम्पूर्ण लेख की एक एक पंक्ति आपके विस्तृत अनुभव एवं परिज्ञान की प्रतीत है।

डा० दिलकश नेचर क्योर क्लिनिक, के प्रधान चिकित्सक तथा नेशनल नेचुरोपैथिक कालेज लखनऊ के प्रिन्सिपल हैं। गृह में वर्षों से आपने विभिन्न प्रकार के रोगियों का उपचार करते हुए जो अनुभव प्राप्त किए हैं, वही इस लेख का मूलाधार है। आपने अंग्रेजी में 'नेचर क्योर बाथ्स' और हिन्दी तथा उर्दू में 'हमारा भोजन' आदि पुस्तकें भी लिखी हैं।

आपका यह परिचय इस किंचित् असावधानी के कारण इस लेख के आरम्भ में न दे सके इसके लिए लेखक तथा पाठक दोनों से क्षमा प्रार्थी हैं।—सं०]

६—मांसपेशियों को फैला देता है।

७—सतह के रक्त-पात्रों को हलका करता है।

८—पोषण-शक्ति को प्रभावित करता है।

९—श्वास-क्रिया को तेज़ और कमजोर करता है।

ठंडा पानी अल्प कालीन—१—शारीरिक तापमान को बढ़ाता है।

२—त्वचा की कार्यशीलता में वृद्धि करता है।

३—रक्त-चाप को बढ़ाता है।

४—शरीर की नाड़ियों को प्रभावित करता है।

५—हृदय की क्रिया शीलता को तीव्र और मज़बूत बनाता है।

६—मांसपेशियों को सिकोड़ता है

७—सतह के रक्त-पात्रों को थोड़े समय के लिए सिकोड़ता है।

८—पोषण-शक्ति को प्रभावित करता है।

९—श्वास-क्रिया को हलका तथा कमज़ोर करता है।

ठंडा पानी, अधिक समय तक—१—शरीर के तापमान को कम करता है।

२—त्वचा की क्रियाशीलता को कम करता है।

३—रक्त चाप को घटाता है।

४—स्नायु तथा नाड़ियों को हलके तौर पर प्रभावित करता है।

५—हृदय-गति को कमज़ोर करता है।

६—सतह के रक्त-पात्रों को सिकोड़ता है।

७—पोषण-शक्ति को हलका-सा प्रभावित करता है।

८—श्वास-क्रिया को हलका तथा कमज़ोर करता है।

९—मांस पेशियों को संकुचित करता है।

यदि जल चिकित्सा करते समय जल के तापमान, समय तथा उसके व्यवहार को भली भांति समझ कर उसका प्रयोग किया जाय तो रोगी के लिये व्यवस्था करने में कोई कठिनाई नहीं होगी। फिर भी इसका ध्यान रखना चाहिये कि जल का व्यवहार सीमा से बाहर न हो जाय। प्रारम्भ में प्रयोग के ठीक ठीक गुण निश्चित करने के लिये प्रयोग हलका तथा अल्प कालीन होना चाहिये। हर प्रयोग के बाद प्रतिक्रिया का होना आवश्यक है। इसलिये रोगी को किसी न किसी प्रकार का व्यायाम करना, तेज चलना आवश्यक होता है। और यदि वह कमज़ोर हो, व्यायाम न कर सकता हो, तो उसे कम्बला में अच्छी तरह से लपेट कर आराम करने देना चाहिये ताकि किसी हालत में उसे ठंड न लगने पाये। यदि नाड़ी की चाल, अनियमित, कमजोर, बहुत हलकी अथवा बहुत तेज हो जाय, यदि शरीर का तापमान बढने लगे तो स्नान उस समय बन्द कर देना चाहिये। ठण्डे स्नान के दो घन्टे बाद भोजन करना चाहिये अथवा भोजन के बाद स्नान दो से तीन घंटे के अन्तर पर देना चाहिये।

जल की विभिन्न प्रयोग-विधियां

रोग-निवारण के लिये पानी का प्रयोग कई प्रकार से किया जा सकता है। यहां केवल जल-चिकित्सा की कुछ मुख्य विधियों का वर्णन किया जाता है।

कटि स्नान—जल-चिकित्सा में इस स्नान को बहुत ऊँचा स्थान प्राप्त है। इस चिकित्सा विज्ञान के सुप्रसिद्ध जर्मन आचार्य लूई कुने ने इस स्नान का अपने नवीन चिकित्सा विज्ञान (New science of Healing) नामक पुस्तक में वर्णन करते हुये बताया है कि इस स्नान से सैकड़ों रोगियों को लाभ हुआ है। आप लिखते हैं कि इस स्नान के लिये पानी का तापमान ६८ डिग्री से ८४ डिग्री फारन हाइट होना चाहिये। साधारण तथा बहुत से रोगों में पानी का यह तापमान लाभदायक सिद्ध हुआ है, पर बहुत रोगी ऐसे भी हैं जिन्हें पानी के इस तापमान से हानि हुई है और सच तो यह कि इनकी संख्या भी कम नहीं है। यदि किसी प्राकृतिक चिकित्सक कुछ वर्षों तक रोगियों की चिकित्सा की है और यदि उसने अपने रोगियों को ध्यानपूर्वक देखा है तो उसे मालूम होना चाहिए कि उसकी बहुत सी असफलताओं का कारण इस स्नान के लिए प्रयुक्त जल का अनुचित तापम ही है। उदाहरणार्थ, जुकाम की दबी हुई अवस्था से उत्पन्न हों वाले रोग (Chronic catarrhal conditions), चा वह शरीर के किसी भी अंग से सम्बन्ध रखते हों, विशेष क उस अवस्था में जब कि त्वचा शुष्क हो रही हो पसीना कम आता हो, या बिलकुल न आता हो, जल के इस तापमान से हानि ही होती और ज्यों हीं रोगी ऊपर बताए गए तापमान के जल से स्नानों को आरम्भ करता है उसकी दशा बिग ड़ने लगती है। यह सच है कि प्राकृतिक चिकित्सा रोगों की एकरूपता में विश्वास रखती है किन्तु इसका यह अर्थ नहं कि रोग की हर अवस्था में भी एकरूपता है। जह किसी दो रोगियों के रोग की अवस्था में एकरूपता भी वहाँ उनकी अपनी अवस्थाओं में एकरूपता होना आवश्यक नहीं। इसलिए सब रोगियों या रोगों की चिकित्सा में एक रूपता के सिद्धान्त का व्यवहार नहीं किया जा सकता। मैं ऐसे कितने ही रोगियों को जानता हूँ जिन्हों ने पुस्तक का सहार ले कर लूई कुने की जल-चिकित्सा प्रणाली के आधार प अथवा केवल ऐसे लोगों की सलाह के मुताबिक, जो स्व इस चिकित्सा-प्रणाली द्वारा किसी एक रोग से छुटकारा प चुके थे, अपनी चिकित्सा की और हानि उठाई। यह स्नान यदि उचित ढंग से दिया जाय तो कोई कारण नहीं कि किसी भी रोग में इससे पूरा लाभ न हो। सब से बड़ी भूल जो इस स्नान में की जाती है वह इसके पर्याप्त तापमान औ समय की अवधि के सम्बन्ध में होती है।

कटि-स्नान की विधि—इस स्नान के लिये टब इ प्रकार का होना आवश्यक है जैसा कि चित्र में दिखाय गया है। ऐसा टब न मिलने पर नाँद आदि से भी का लिया जा सकता है। इस टब में पानी इस प्रकार भरा जात है कि जब रोगी दोनों पांव बाहर रख कर टब में बैठे पानी नाभि और जांघों तक पहुंचे। टब से बाहर पांव साम किसी एक चौकी पर रक्खे जाते हैं और रोगी टब में पी तरफ कुछ सहारा लेकर बिना अपना हाथ रोके तेजी से कु पेड़ू को नाभि से नीचे की ओर और पेड़ू की एक ओर दूसरी ओर तक एक साधारण मोटे भीगे हुए कपड़े से पा के अन्दर ही मलता है। यह अत्यन्त आवश्यक है कि टाँगे पा

और शरीर का ऊपरी भाग पेड़ू के साथ ही ठण्डा न किया जाय।

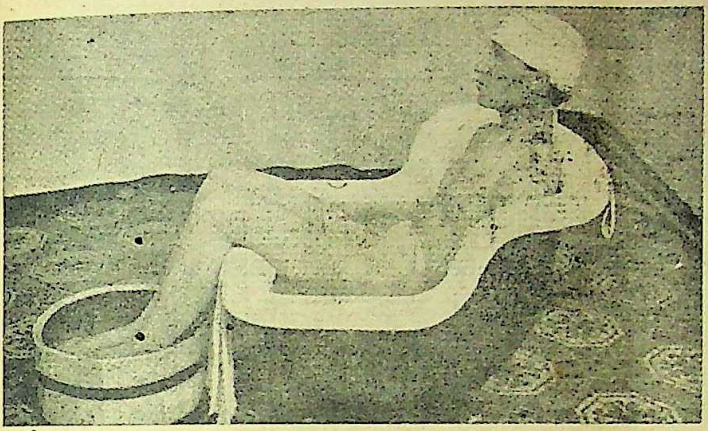

पेड़ू स्नान

विभिन्न रोगों में कटि-स्नान के लाभ—शरीर में विजातीय द्रव्य का एकत्रित होना ही रोग का कारण है। यह स्नान विजातीय द्रव्य अथवा दूषित मल को ढीला कर के शरीर से निकालता है। इसलिये सब रोगों में इससे लाभ उठाया जा सकता है। यहाँ पर मैं उन विशेष बातों का वर्णन करूंगा जिनका इस स्नान के प्रयोग के समय ध्यान में रखना आवश्यक है। जिन रोगियों का रक्त चाप (Blood Pressure) बढ़ा हुआ है उनको ५० डिग्री से ८५ डिग्री तक के शीतल जल से स्नान देने से हानि पहुंचती है फालिज (Paralysis) के रोगियों को जब तक कि उनका रक्त-चाप स्थिर न हो जाय, स्नान कदापि न देने चाहिये। ब्रांकाइटिस (Bronchitis) दमा, प्लुरिसी (Pleurisy) निमोनिया, अण्डकोष अथवा गर्भाशय प्रदाह व पीड़ा, जांघ की रगों की पीड़ा (Sciatica) और गठिया जैसे रोगों की तीव्र अवस्था में ठण्डे पानी का कटि-स्नान सदैव हानिकारक होता है।

ऐसे समस्त रोगों में जिनमें दाह अपनी तीव्र अवस्था में उपस्थित है, अथवा दबे हुये जुकाम की जीर्णावस्था कटि-स्नान के जल का तापमान ८८ डिग्री से १०० डिग्री तक रखना चाहिये।

ठण्डे जल का कटि-स्नान अधिक समय तक लेने से बहुत से रोगियों की भूख और वजन कम होने लगता है। ऐसी दशा में स्नान के समय की अवधि केवल दो मिनट तक कर देने से भूख बढ़ जाती है और शरीर में स्फूर्ति आ जाती है।

पीलिया अथवा पाण्डु में जलोपचार—पीलिया अथवा पाण्डु रोग (Jaundice) जिसमें औषधि-विज्ञान बिलकुल ही विवश होता है, जल-चिकित्सा द्वारा बहुत कम समय में ठीक हो जाता है। गर्म जल के वस्ति कर्म अथवा एनिमा (Enema) या वाष्प स्नान के उपरान्त ठण्डे जल (६५ से ७५ डिग्री तक) का कटि-स्नान २ से ५ मिनट तक देने से अत्यन्त लाभ होता है।

जननेन्द्रिय सम्बन्धी रोगों में जल-प्रयोग—पुरुषों के जननेन्द्रिय सम्बन्धी रोगों में ठण्डे जल (६० से ७५ डिग्री तक) का कटि-स्नान आरम्भ में एक से दो मिनट और फिर क्रम-क्रम से पांच मिनट तक देना चाहिये। इससे अधिक समय तक स्नान देने से जनेन्द्रिय में और भी शिथिलता उत्पन्न हो जायगी। जो रोगी स्वप्न-दोष के रोग से ग्रसित हों उन्हें ठण्डे स्नान कदापि न लेने चाहिये। उनके लिये सामान्य जल ८८ से ९४ डिग्री तक के जल से कटि-स्नान (१५ से ३० मिनट तक) अति लाभकारी सिद्ध होंगे।

मासिक धर्म की गड़बड़ी तथा अन्य बीमारियों में—जिन स्त्रियों के मासिक धर्म के समय रक्त अधिक गिरता हो और बहुत दिनों तक रक्त स्राव जारी रहता हो उन्हें कटि-स्नान (जल का तापमान ६० डिग्री से ७५ डिग्री तक), ५ से १० मिनट तक और दिन में दो से तीन बार देने से शीघ्र लाभ होता है।

पाखाने या मुंह के रास्ते खून गिरने की दशा में—कटि-स्नान (जल का तापमान ६५ से ७५ डिग्री तक) १० मिनट तक रोगी की शक्ति के अनुसार दो चार बार तक देना चाहिये।

कटि-स्नान प्राकृतिक चिकित्सा की अन्य विधियों के साथ बांझपन का अचूक इलाज है।

पुराने सुजाक अथवा गर्मी (आतशक) से उत्पन्न हुई व्याधियों के लिये ८८ डिग्री से ९४ डिग्री के तापमान का जल प्रयोग में लाना चाहिये।

लुई कुने के बाद के जल चिकित्सकों ने कटि-स्नानों में कुछ परिवर्तन किये हैं। कटि-स्नान लेते समय वह पाँवों को गर्म पानी (तापमान १०२ से १०४ डिग्री तक) रखने की राय देते हैं। पेट को मलने के साथ साथ कमर के उस भाग को, जो जल के अन्दर होता है, मलवाते हैं (चित्र नं०) इस स्नान को उन्हों ने तीन बड़े भागों में बाँट दिया है—१ ठण्डे पानी का कटि-स्नान (तापमान ५० से ८५ डिग्री तक), (२) सामान्य जल का कटि-स्नान (तापमान ८८ से ९४ डिग्री तक) (३) गर्म जल का कटि-स्नान (तापमान १०२ से १०८ डिग्री तक)।

ठण्डे या सामान्य जल के कटि-स्नान के गुण वही हैं जो कुने के बताये हुये कटि-स्नान के हैं। गर्म जल में पांव रखने से विशेष लाभ नहीं होता।

मुमकिन है कि यूरोप और अमेरिका जैसे देशों में, जहाँ कड़ी सर्दी पड़ती है, इसकी आवश्यकता हो। भारतवर्ष में जाड़े के दिनों में टाँगों को घुटने तक गर्म कम्बल से ढँक देना ही काफी होता है। यदि रोगी बहुत कमज़ोर हो और सर्दी भी कड़ी पड़ रही हो तो गर्म पानी का टब पाँवों के लिये प्रयोग में लाया जा सकता है।

सिर की पीड़ा जैसी व्याधियों से पीड़ित होने वाले रोगियों को जिनकी आँखे और चेहरा सुर्ख और गर्म हो जाता हो, कटि-स्नान के साथ पाँवों को गर्म पानी के टब में रखने से अवश्य लाभ होता है। टब में बैठने के पहले रोगी को अपना सिर ठण्डे पानी से धो कर उस पर एक गीला तौलिया लपेट लेना चाहिये। इस स्नान के लिए प्रयोग किए जाने वाले जल का तापमान १०२ डिग्री से १०८ डिग्री और स्नान समय १० से १५ मिनट तक होना चाहिए इसकी विधि इस प्रकार है:—टब में बैठने से पहले रोगी का सिर ठण्डे जल से धो कर गीले तौलिये लपेट दें। टब में बैठते समय पानी का तापमान १०२ डिग्री होना चाहिये और फिर धीरे-धीरे तापमान को बढ़ा कर १०८ तक ले जाना चाहिये। यह स्नान सुजाक की तीव्र जलन को बन्द करता और पेशाब को खोलता है। बवासीर के मस्सों का दाह तथा पीड़ा को नष्ट करता है। स्त्रियों की गुह्येन्द्रियों की दाह व पीड़ा को दूर करता है। सर्दी लग जाने से यदि मासिक धर्म रुक गया हो अथवा पीड़ा के साथ थोड़ा और रुक-रुक कर आता हो तो इससे लाभ पहुँचता है। गर्भाशय, अण्डकोश का जीर्ण दाह (Inflamation) मालूम होने पर आरम्भ के कुछ दिनों तक गर्म पानी के कटि-स्नान दे कर ही ठण्डे पानी के कटि-स्नान आरम्भ करने चाहिए। गर्भवती स्त्रियों को गर्म पानी का कटि-स्नान न देना चाहिये।

मसाने अथवा गुर्दे की पथरी के कारण होनेवाले दर्द को कटि-स्नान शान्त करता है। टांग की नसों के दर्द (Sciatica) में यह स्नान दिन में दो बार १० से १५ मिनट तक देने से भी लाभ हो जाता है।

रोगी स्नान समाप्त करके जब उठे तो उसे ठण्डे जल के टब में ५ से १० सेकेण्ड तक बैठ जाना चाहिए या रोगी के कूल्हे या कमर के निचले भाग को ठण्डे जल से धो देना चाहिए। इस बात का ध्यान रहे कि रोगी टब से निकलते समय अपने पांवों को ठण्डी या गीली जगह न रक्खे। यह स्नान सदैव गर्म कमरे में लेना चाहिए और यदि कमरा ठण्डा हो तो गर्म कर लेना चाहिए।

घर्षण मेहन-स्नान (लुई कुने)

घर्षण मेहन-स्नान उसी टब में दिया जाता है जो कटि-स्नान में प्रयोग किया जाता है। रोगी एक लकड़ी के स्टूल पर बैठता है जो टब के सिरे से तीन इंच नीचा रहता है—टब में जल इतना भरा रहता है कि वह स्टूल के धरातल तक उसके सिरे को छू कर पहुँच सके। इसके लिए ५५ से ६५ डिग्री तापमान के ६ से ८ गैलन (प्रायः २४ से ३२ सेर तक) जल की आवश्यकता होती है। लुई कुने ने अपनी पुस्तक में जल का तापमान ५० से ६० डिग्री तक रखने की सम्मति दी है, जो कि जर्मनी जैसे शीत प्रधान देश के लिए ही उपयुक्त है। रोगी, जो अपने पैरों को टब के बाहर रखकर स्टूल पर बैठता है, जनेन्द्रिय के अग्र भाग की त्वचा को आगे की ओर खींचता है और बायें हाथ की तर्जनी और मध्यमा अंगुलियों की सहायता से इस त्वचा को इस प्रकार खीचकर पकड़ता है कि जनेन्द्रिय का अगला भीतरी भाग इन दोनों उंगलियों से पीछे रहे। तब वह आगे खींची हुई सारी त्वचा को एक रूमाल के बराबर के जूट या लीनियन के कपड़े से हलके हलके रगड़ कर धोता है। जनेन्द्रिय

अगले भीतरी भाग को न रगड़ा जाता है न धोया जाता है। मुसलमानों को, चूँकि वह जनेन्द्रिय के अग्र भाग की त्वचा को कटा देते हैं, फोतों और गुदा के मध्य भाग को, जिसे सीवन कहते हैं, और फोतों अथवा जांघों के मध्य भाग अथवा मेरुदण्ड के अन्तिम भाग को रगड़ कर धोना चाहिये। स्त्रियों को जननेन्द्रिय के ऊपरी परदों को ही मलना चाहिये। सदैव अंगोछे से जितना अधिक पानी उठ सके उठाये और हलके हाथों से धीरे-धीरे इन परदों को इधर उधर न रगड़ते हुये धोया जाय। लुई कुने ने स्टूल के स्थान पर एक ऐसे तख्ते को टब में रखने की सम्मति दी है जो आगे से गोल कटा होता है। यह स्नान दिन में दो या तीन बार या इससे भी अधिक १० से ३० या ४५ मिनट के लम्बे समय तक दिया जाता है। दूसरे स्नानों की भाँति शरीर का गर्म करना इस स्नान के पश्चात् भी आवश्यक है। स्नायु सम्बन्धी रोगों में यह स्नान अति लाभदायक सिद्ध होता है हिस्टीरिया और मिर्गी जैसे भयानक रोगों में लेखक ने बीसियों रोगियों को पूर्ण स्वस्थ किया है। लकवा और गठिया के रोगियों को यह स्नान लम्बे समय तक देना चाहिये। प्राकृतिक चिकित्सा सम्बन्धी दूसरी क्रियाओं के साथ यह स्नान दिक अथवा क्षय रोग की प्रत्येक दशा में लाभ पहुँचाता है। क्षय रोग चाहे फेफड़ों, आँतों, ग्रन्थियों अथवा हड्डियों का हो, सभी को इस स्नान से लाभ होता है। वीर्य सम्बन्धी रोगों में जब कि जननेन्द्रिय में वीर्य्य धारण करने की शक्ति न हो, स्तम्भन शक्ति का नाश हो चुका हो, उत्तेजना कम हो गई हो या बिलकुल जाती रही हो तो इस अवस्था में यह स्नान अति लाभदायक है।

बांझपन, बारम्बार गर्भपात तथा डिफ्थीरिया जैसे भयानक रोगों में घर्षण-मेहण स्नान का प्रयोग

बाँझपन की दशा में या जिन स्त्रियों को बार बार गर्भपात होता है इस स्नान से बहुत लाभ होता है। बच्चों के सभी रोगों में विशेषकर डिफ्थीरिया जैसे भयानक-रोग जिससे ९९ प्रतिशत बच्चे काल के ग्रास हो जाते हैं और जिसकी संसार में कोई औषधि नहीं है ठीक समय पर यह स्नान देने से रक्षा की जा सकती है। डिफ्थरिया की दशा में यह स्नान स्थानिक वाष्प-स्नान के बाद दिन में दो तीन बार देना चाहिए। नासूर, भगन्दर पृष्ठ-व्रण या कारबंकिल (Carbuncle) आदि रोगों में वाष्प-स्नान के पश्चात २० से ३० मिनट तक यह स्नान देना चाहिये। इससे घाव जल्द भर जाते हैं।

गले की खराबियाँ, साँस की नली की सूजन, छोटी आंतों की सूजन आदि तीव्र अवस्थाओं में घर्षण-मेहन-स्नान

जुकाम का होना और बह जाना एक अच्छा लक्षण है। इससे शरीर के विजातीय द्रव्य की शुद्धि हो जाती है। परन्तु जब शरीर से जुकाम के बाहर निकालने की शक्ति कम हो जाती है तो यह शरीर के अन्दर रुक कर बहुत सी खराबियां पैदा करता है। गले की खराबियां (Tonsilitis, Pharyngitis) साँस की नली की सूजन (Bronchitis) दमा, निमोनिया, आमाशय की सूजन (Gastritis and Gastralgia) छोटी आँतों की सूजन, (Entritis) आदि आदि जुकाम के अन्दर रुक जाने की अवस्थायें हैं। इन सब तीव्र अवस्थायों में कटिस्नान न देकर मेहन-स्नान देना चाहिये। इन दशाओं के सुधार के लिऐ मेहन-स्नान से बढ़ कर प्राकृतिक चिकित्सा में और कोई साधन नहीं है। मेहन स्नान सब प्रकार के भीतरी वर्मों को लाभ पहुँचाता है।

फालिज या लकवा (Paralysis) अंगों की निष्क्रियता (Paraplegea) में यह स्नान लम्बे समय तक दिन में दो तीन बार देने चाहिये।

लुई कुने लिखते हैं कि स्टूल या तख्ते के तीन अंगुल ऊपर तक पानी रखने से बहुत से रोगों में शीघ्र लाभ होता है। ऐसी दशा में जल का तापमान ६३ से ७३ डिग्री तक होना चाहिए। लुई कुने ने ऐसी अवस्थाओं या ऐसे रोगों का कोई वर्णन नहीं किया है। अतः इस संबंध में चिकित्सक और रोगी दोनों ही प्रायः भूल करते हैं और इस कारण उन्हें सफलता नहीं प्राप्त होती बल्कि इसके विपरीत कभी कभी हानि ही उठानी पड़ती है। इसके बारे में चिकित्सक या रोगी को यह ध्यान रखना चाहिये कि जिन रोगों में बिना किसी प्रकार की उत्तेजना दिये दूषित मल को शरीर के बाहर निकालना होता है वहीं ही हमें पानी

के तापमान को बढ़ाते अथवा जल को तख्ते या स्टूल के ऊपर ले आते हैं।

स्त्रियों को मासिक धर्म के समय यह स्नान बन्द कर देना चाहिये। मेहन-स्नान केवल रोगियों के लिये है, स्वस्थ स्त्री पुरुषों को इसे न लेना चाहिये अन्यथा इससे निःसन्देह हानि होगी।

प्राकृतिक स्नान (एडोल्फ जूस्ट)

यह स्नान एक टब में लिया जाता है जिसकी लम्बाई ४ फीट चौड़ाई १८ इंच और गहराई ६ इंच होती है इस स्नान में पांव के ठंडा स्नान, कुने के पेड़ू-स्नान तथा सर्वांग स्नान के प्रभाव मिश्रित हैं। ४ से ६ इंच गहरा पानी, ७० से ७२ डिग्री के तापमान का, टब में डाला जाता है। रोगी टब में टांगे फैलाये हुए घुटनों को पानी से ऊपर एक दूसरे से अलहदा रख कर बैठ जाता है और अपने हाथों से पानी में डूबे हुए सीवन और अंडकोश और अंडकोशों के दोनों ओर के भागों को ५ मिनट तक धोता और मलता है। इसके पश्चात् पानी को हथेलियां से पेड़ू पर जोर से फेंकता है और साथ ही साथ में मलना शुरू कर देता है। इस तरह ५ मिनट तक मलने के पश्चात् पानी को उठा कर रोगी अपने शरीर पर डाल लेता है। वह अब टब से बाहर आकर अपने गीले शरीर को हाथों से मल कर सूखा कर देता है। इस स्नान को लेखक ने मन्दरीक स्नायु-दौर्बल्य, वायु-विकार दूषित जिगर, चक्कर आने और आँखों की बीमारियों में बहुत ही लाभदायक पाया है। पुरुषों के जननेन्द्रिय सम्बंधी रोगों में तो इससे बढ़ कर शायद ही कोई दूसरी विधि होगी। जीवन-शक्ति को बढ़ाने में यह स्नान बहुत ही लाभदायक सिद्ध हुआ है।

वेट शीट पैक (गीली) चादर में लपेटने का स्नान)

सन् १७५० में पहले लूकस ने इस स्नान का प्रयोग किया और उसके बाद वी० प्रेसनिज ने मुख्तलिफ बीमारियों में इस चिकित्सा प्रणाली को अपनाया। रोगी को एक गीली चादर में लपेट कर ऊपर से खुश्क कम्बल या गरम कपड़े इस प्रकार लपेट दिया जाता है कि शरीर को हवा न लग सके। इस स्नान के लिए दो बड़े कम्बल, दो बड़ी चादरें जो कि लिनेन या हाथ के कते हुये सूत तथा हाथ से ही बुनी हुई खादी की हों, एक बड़ा तौलिया और एक बाल्टी की जिसमें पानी (तापमान ६०-८५ से डिग्री) भरा हो, आवश्यकता है। ६० डिग्री से कम तापमान का पानी प्रयोग में न लाना चहिये।

वेट शीट पैक देने का तरीका

पहले तौलिये को खाट के एक सिरे पर आड़े-आड़े बिछा दें। तकिये के लिये ७-८ इंच की जगह छोड़ देनी चाहिये। इसके बाद दोनों कम्बलों को बिछा दें। चादर आवश्यकतानुसार तापमान के पानी में निचोड़ कर कम्बल के ऊपर बिछा दी जानी चाहिये। बाद में रोगी को उस पर इस प्रकार लिटा देना चाहिये कि चादर का तीन इंच हिस्सा कन्धों से बाहर निकला रहे। रोगी की दोनों बाहों को सिर से ऊपर रखवा देना चाहिये। इसके बाद एक तरफ़ से शरीर को चादर से लपेट देना चाहिये और चादर का सिरा बगल के नीचे दबा देना चाहिये। कूल्हे के नीचे के चादर के हिस्से को उसी तरफ़ की टांग पर लपेट कर दूसरी टांग को बिना ढके छोड़ देना चाहिये। अब रोगी की बांह को नीचे आने देना चाहिये ताकि उससे चादर को दबा सके। इसी प्रकार शरीर की दूसरी तरफ़ को भी गीली चादर लपेटना चाहिये।

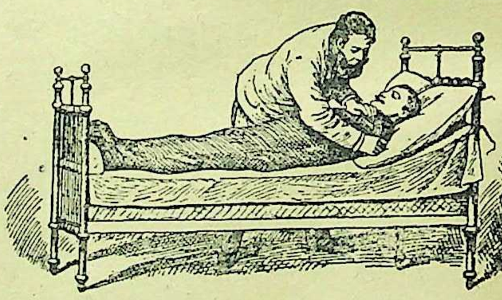

पूरे शरीर की गीली पट्टी

अब समस्त शरीर को टांग सहित खूब अच्छी तरह कम्बलों से ढक दें। गर्दन पर कम्बल को ठीक-ठीक लपेटने के लिये एक पट्टी लपेटने की आवश्यकता है। बाद में कम्बल से बचाने के लिये, जिससे वह शरीर में गड़ने न पावे तथा हवा को भीतर प्रवेश करने से रोकने के लिये तौलिये को बाहर कर कन्धे के नीचे मुंह, गर्दन को ढंक देना चाहिये। शरीर को और अधिक गर्मी पहुंचाने के लिये शरीर पर एक

और कम्बल लपेटा जा सकता है। रोग की गति के अनुसार इस स्नान को एक से तीन घंटे तक या इससे भी ज्यादा समय तक दिया जा सकता है।

ठंडा पैक देने की विधि

इसका प्रयोग ठीक 'वेट शीट पैक' की तरह होता है। पानी का तापमान ६० से ७० डिग्री के बीच होता है। इससे कम तापमान का प्रयोग गुणकारक नहीं होता। वेट शीट तथा ठण्डे पैक में अन्तर यह है कि ठण्डे पैक में चादर सब तर रहनी चाहिये तथा एक चादर के स्थान पर दो बादरों को अधिक देर तक ठंडा रखने के लिये व्यवहार में लाना चाहिये। इस प्रयोग में कन्धों को सावधानी से बचाये रखना चाहिये जिससे गर्दन के पास ठण्डक न पहुँचे। गीली चादर हर १०-१५ मिनट के बाद बदलते रहना उचित है। इस बार-बार बदलने की तकलीफ़ से बचने के लिये सब से नया तरीका जो इस्तेमाल किया जाता है वह यह है कि ऊपर के कम्बल को हटा कर चादर पर बर्फ रगड़ा जाता है जब तक कि चादर काफ़ी ठण्ढी नहीं हो जाती। ठण्ढा पैक बुख़ार सम्बन्धी रोग जैसे कि मलेरिया, इन्फुलेन्जा, पीला बुख़ार, मियादी, टाइफाइड, बुख़ार और प्लेग आदि में बहुत हितकारी है।

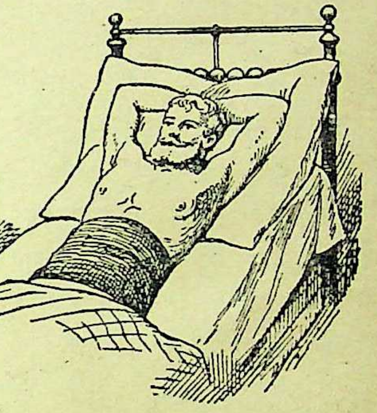

पेट की गीली पट्टी

गीली चादर का स्नान (ड्रिपिंग शीट)

यह प्रयोग जल चिकित्सालयों में विशेष लाभप्रद होता है। भीगे चादर से लिपटे रहने पर शरीर को भली प्रकार रगड़ने के प्रयोग को ड्रिपिंग शीट कहते हैं। लिनेन अथवा खादी की एक बड़ी चादर एक पानी के बर्तन में थोड़ी देर रक्खी जाती है जिससे कि चादर खूब अच्छी तरह पानी में भीग जाय और फिर उसे निचोड़ लिया जाय। चादर पानी से भली प्रकार तर रखनी चाहिए। उसको एक सिरे से पकड़ कर दूसरे सिरे से समेट लेना चाहिए। रोगी को टब में जिसमें ३-४ इंच गहराई लिये हुये ठंढा पानी भरा होना चाहिए, खड़ा कर देना चाहिये। रोगी को अपने दोनों हाथों को थोड़ा ऊपर उठाने दो तब गीली-चादर को बाईं बगल से रोगी के शरीर पर लपेटना आरम्भ करें। यह ध्यान रखना चाहिए कि रोगी चादर को मजबूती से पकड़े रहे ताकि चादर अपने स्थान पर रुकी रहे। और फिर दो आदमियों से रोगी के शरीर को तेजी से रगड़वाना चाहिए। शरीर के गर्म होने पर और पानी शरीर पर डाला जाना चाहिये। गीली चादर के गिरा देने के बाद सूखी चादर लपेट कर शरीर को रगड़ना चाहिये। बस यह स्नान पूरा हो जायगा।

इस स्नान के प्रयोग का प्रभाव पानी के तापमान पर तथा पानी की मिकदार, जो कि चादर में छोड़ दी गई हो, तथा प्रयोग की अवधि पर भी निर्भर है। कमजोर रोगी को खाट पर लिटा कर अथवा स्टूल पर बिठा कर भी यह प्रयोग में लाया जा सकता है। यह भी ध्यान रखना चाहिये कि जितना ही अधिक ठंढा पानी होगा उतना ही अधिक वह लाभदायक भी प्रमाणित होगा। दुर्बल या ऐसे

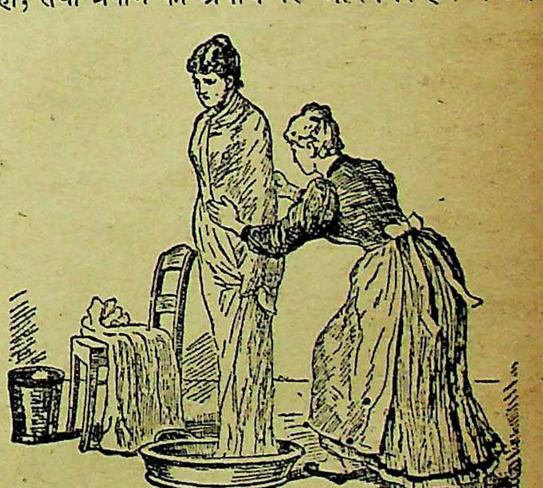

ड्रीपिंग बाथ

रोगी, जो ठंडे पानी के प्रयोग से अभ्यस्त नहीं होते उनके लिये कुछ गर्म पानी का (तापमान ६५ से ७५ डिग्री फा०) प्रयोग करना चाहिए। शरीर से मजबूत रोगी के लिये ५५ डिग्री फा० तक का पानी व्यवहार में लाया जा सकता है जो सदैव लाभदायक सिद्ध होगा।

लेखक ने बिजली के स्नान अथवा गर्म पैक तथा अन्य पसीना लाने वाले प्रयोगों के अनन्तर भी इस प्रयोग को किया है जिसका परिणाम सन्तोषप्रद हुआ है। यह ठंढे स्नान के मुकाबले में सबसे अच्छा प्रयोग है।

पेड़ू का स्थानीय गर्म सेंक (Abdominal heating pack) और उसके विभिन्न प्रयोग

जल-चिकित्सा के अन्तर्गत पेड़ू का स्थानीय गर्म पैक (Abdominal heating Pack) बहुत लाभदायक प्रयोग है। एफ० ई० विल्ज ने ठीक ही कहा है कि यदि कोई सर्वोपयोगी रामबाण औषधि हो सकती है तो वह रात को पेड़ू की पट्टी ही है। उन्होंने अपनी विख्यात पुस्तक 'दि नेचुरल मेथड्स आफ हीलिंग' में लिखा है कि स्त्रियों के गुप्त रोगों में इस प्रयोग का आश्चर्यजनक प्रभाव होता है। यह प्रयोग जब छाती पर किया जाता है तब इसे छाती का पैक कहते हैं। यक्ष्मा (टी० बी०) रोग में चेस्ट पैक सफलतापूर्वक व्यवहार में लाया जाता है। चेस्ट पैक खांसी को रोकता है तथा तापमान को कम करता है। पुरानी खांसी तथा फेफड़े की सूजन में लेखक ने इस प्रयोग को विशेष लाभदायक पाया है। यह पैक गर्दन के के इर्द-गिर्द गले की बढ़ी हुई गिल्टियों में अथवा आवाज के बैठ जाने में बहुत फायदेमन्द है। लेखक ने इस प्रयोग को पुराने डिप्थीरिया के रोग में सफलतापूर्वक व्यवहार किया है।

गीले कपड़े की गद्दी और उसके प्रयोग एवं गुण

पानी की गद्दी (कम्प्रेस) जल-चिकित्सा का सब से सरल प्रयोग है और साथ ही अत्यन्त ही प्रभावात्मक भी है। इस प्रयोग में किसी भी तापमान का पानी जिस्म पर कपड़े अथवा किसी अन्य उपयुक्त यंत्र द्वारा प्रयोग किया जाता है। लिनेन का कपड़ा ४ से ६ बार तह किया हुआ या इससे भी अधिक का व्यवहार में लाया जाता है। विशेष लाभ के लिए गद्दी को मोमजामा, (आयल क्लाथ) अथवा (रबर शीट) से ढक देना चाहिए। गद्दी को देर तक रखने के लिए तथा आवश्यकतानुसार तापमान प्राप्त करने के लिए यथेष्ट तापमान के पानी से भरे हुए रबर की थैली को गद्दी के ऊपर रखना चाहिए। गद्दी का प्रभाव पानी के तापमान पर निर्भर है।

"बहुत ठंडी पट्टी गांठ अथवा जख्मों के सूजन को दबाने में व्यवहार की जा सकती है। यह तापमान को कम कर देती है। सिर के ऊपर व्यवहार में लाने से सन्निपात के रोगी को आराम करता है। बहुत ठंढा अथवा बर्फ का बैग भोजन करने के आध घंटा पूर्व पेट पर रखने से मलेरिया की के के लिए अत्यन्त लाभदायक है।" —जे० एफ० कैलाग

खूनी बवासीर में इस पट्टी का स्थानीय प्रयोग लाभदायक है तथा गर्दन की चारों तरफ लपेटने से टांसिल की बीमारी (Tonsilitis) में भी हितकर प्रमाणित हुआ है। रीढ़ की हड्डी के ऊपर के भाग में तथा गर्दन पर ठंढी पट्टी के लगाने से नकसीर तुरन्त ही बन्द हो जाती है। खूनी बवासीर अथवा गर्भाशय से खून बहने में ठंढे पानी की पट्टी दोनों जांघों के बीच में लगाने से तुरन्त ही रुधिर प्रवाह बन्द हो जाता है। पेट ऊपर ठंढी पट्टी कै, उल्टी को रोकती है। सूजाक के कारण फोतों के दर्द को भी यह दूर करती है।

जल का तरारा (Douche) देना

तरारा जल का विशेष प्रयोग है जो कि टोंटी से शरीर के विशिष्ट अंग पर किया जाता है। आजकल जल-चिकित्सा में अनेक प्रकार के यंत्र व्यवहार में लाये जाते हैं, जिससे तरारा आसानी से दिया जा सकता है। ऐसे यंत्रों के अभाव में घर के नलों अथवा साधारण टीन का बर्तन भी, जिसमें रबड़ की नली लगी हो, काम में लाया जा सकता है।

तरारा देने की क्रिया का प्रभाव तापमान, दबाव और पानी की मोटी या पतली धारा पर निर्भर है। तरारा में व्यवहार किये जाने वाले पानी का तापमान ४५ से ७० डिग्री फारन हाइट होता है और गर्म तरारा के लिये १०४ से १२५ अथवा १३० डिग्री का तथा साधारण के लिये

९२ से ९७ डिग्री फारन हाइट। यदि तरारा का इलाज कमजोर तथा अशक्त रोगी पर करना हो तो तरारा कम ऊंचाई से देना चाहिये। यदि ऐसी अवस्था में ठंढा अथवा अति ठंढे पानी का व्यवहार किया जाय तो तरारा बहुत कम समय तक करना उपयुक्त होगा। किसी किसी अवस्था में तरारे का कालम (घेरा) एक बारीक बाल से कदाचित ही अधिक होता है। अन्य अवस्थाओं में टोंटी का नाप आधे इंच घेरे का होता है।

ठंढा तरारा करीब करीब हर एक पुराने रोग में लाभदायक सिद्ध हुआ है। संक्रामक रोग में ठंढा तरारा रामबाण है। गठिया तथा अन्य बात रोगों के लिए अति ठंढे जल के तरारे के स्थान में गरम पानी के तरारे से चिकित्सा शुरू करनी चाहिए।

गरम तरारे के लिये पानी के तापमान को शनैः शनैः परन्तु शीघ्रता से बढ़ा कर सब से ऊंचे तापमान तक पहुंचना चाहिए। तरारे की अवधि १५ सेकंड से ५ मिनट तक होती है। चूंकि तरारा प्रायः दर्द को आराम करने के लिये दिया जाता है इसलिये अधिक ऊंचाई से देने की आवश्यकता नहीं। जब कि ज्यादा तेज तापमान व्यवहार किया जाता है तो टाटी को बराबर हिलाते रखना चाहिये।

अन्य प्रकार के सेंक और उनके प्रयोग

गर्म जल में निचोड़ हुये कपड़े या गर्म पानी की बोतल के द्वारा या रबड़ के लच्छे से देह की त्वचा में उष्णता का प्रयोग फोमेन्टेशन कहलाता है। फोमेन्टेशन किसी अंग विशेष के वाष्प-स्नान का भी काम देता है। फोमेन्टेशन के लिये सबसे उत्तम पदार्थ मोटी फलालेन या ऊनी कपड़ा है। आवश्यकता तथा अवस्था के अनुसार कपड़ा काफी लम्बा चौड़ा होना चाहिए। फोमेन्टेशन के लिये लगभग आधी बाल्टी उबलता हुआ जल आवश्यक है। जल को उबलता हुआ रखने के लिये बाल्टी या बर्तन को थोड़े से जलते कोयले या अंगीठी पर रख दें। बीमार को आवश्यकता तथा उसकी दशा के अनुसार चाहे लिटा कर डुबो दें या चाहे बैठे रहने दें। कपड़े को उबलते जल में दोनों सिरे पकड़ कर डुबो दें। जब कपड़ा उबलते हुये जल में पूरा तर हो जावे तो जल्दी से दोनों सिरों से कपड़े को ऐंठ दें, जिसमें कि कपड़ा अच्छी तरह उमेठ जाये। तब कपड़े को उस भाग पर रक्खें जहां सेंक देना है। सदैव त्वचा पर सूखा कपड़ा रख कर फोमेन्टेशन दें। जहां सेंक देना होता है कभी-कभी वहां कुछ वेसलीन या नारियल का तेल रगड़ देते हैं। बीमारी की हालत के अनुसार फोमेन्टेशन का समय कम या अधिक होता है। प्रयोग के अन्त में थोड़ा ठंढा प्रयोग करना चाहिये।

डा० ए० सी० सेल्मन, एम्०·डी० का कहना है कि फोमेन्टेशन लगभग पीड़ा वाली सब व्याधियों में आराम देता है। वह सब प्रकार के लेप व मरहमों से कहीं श्रेष्ठ है। उत्तम लाभ के लिये विशेष कर पीड़ा की दशाओं में फोमेन्टेशन काफी अधिक चौड़े भाग में देना आवश्यक है।

अन्य उष्ण प्रयोगों की तरह फोमेन्टेशन का प्राथमिक परिणाम विशेष या उत्तेजना करने वाला होता है जब बहुत देर तक फोमेन्टेशन किया जाता है तो यह दूसरा अप्रधान अर्थात् शान्तिकारक परिणाम दबता जाता है। डा० जे. एच्. कैलाग ‘रैशनल हाइड्रोथिरैपी में लिखते हैं“ जब किसी सूजान को कम करना होता है या स्राव व स्वेद के अवरोध में उत्तेजिता करना हो, नस (स्नायु) या पेशी को उत्तेजित करना हो, किसी विशेष अंग में रक्त बदलना या बढ़ाना हो, रुधिर के विशेष जीवाणु बढ़ाना हो या काम करने की सामर्थ्य जाग्रत करना हो तो सेंक (फोमेन्टेशन) का प्रयोग करना चाहिए।”

लिवर का सूजन, स्त्री या पुरुष के गुप्तांग की सूजन, रगों और पुट्ठों की सब प्रकार की सूजनयुक्त व्याधियों, आंत उतरने में जो कम न हो, बड़ी रग से दर्द के दाँत की पीड़ा, आधा शीशी तथा कर्ण पीड़ा, पुट्ठों के जोड़ों का जकड़ना सूजाक, कंठ या तालू का फूलना, पथरी की पीड़ायें, ग्रन्थि रोग, नसों का दर्द आदि रोगों पर यह सेंक अत्यन्त गुणकारी होता है। लेखक ने कंठ के अवरोध व कंठ नाली की अन्य व्याधियों में गर्म फोमेन्टेशन तथा उसके पश्चात् शीत प्रयोग का उपयोगक अत्यन्त उपयोगी पाये हैं। सूजन में यह बहुत लाभदायक होता है। लेखक ने फेफड़ों की सूजन और पीड़ा अर्थात् निमोनियां, फेफड़े की अन्य सूजन, वायु-नली की

(शेष ३६ पृष्ठ पर)

जापानी हॉट बॉथ

लेखक—डाक्टर सुरेन्द्रप्रसाद गर्ग, एम० ए०

जल चिकित्सा-शास्त्र-विशारदों ने अनेक प्रकार के स्नानों का विधान किया है। जापानी हॉट बॉथ का भी उन्हीं में महत्वपूर्ण स्थान है। इन पंक्तियों के लेखक ने उक्त स्नान को अत्यधिक उपयोगी एवं अचूक पाया है। इसकी विधि तथा लाभ नीचे लिखे जाते हैं:—

एक गोल (shallow) टब या अन्य बर्तन लीजिये। बर्तन इतना बड़ा हो कि स्नान करने वाला अच्छी तरह बैठ सके। उसके कन्धे भी उसमें समा जायें। पर सिर ऊपर रहे। बर्तन में सुहाता-सुहाता गर्म जल भर कर रोगी को बिठला देना चाहिये। सिर पर ठंडे जल की गीला वस्त्र रखना जरूरी है।

नियम—(१) यह स्नान शुरू में प्रति सप्ताह और दो मास बाद प्रति तीसरे दिन होना चाहिये।

(२) यह स्नान जीर्ण रोगों में बड़ा लाभ पहुंचाता है।

(३) स्नान १५ मिनट से ४५ मिनट तक किया जा सकता है।

(४) स्नान का जल ठण्डा होने पर उसमें से ठण्डा जल को हिलाना-डुलाना न चाहिए। गर्म जल निकाल कर गर्म मिला देना चाहिए।

(५) गर्म जल में शान्त चित्त होकर बैठना और जल हिलने में बेचैनी पैदा करता है।

(६) स्नान के समय जब जब घबराहट या बेचैनी हो तब तब शरीर के ऊपरी भाग को जल से ऊंचा उठाना और सिर पर दो-चार लोटा ठण्डा जल डालना उचित है।

(७) जो व्यक्ति एक साथ ३०-४५ मिनट तक स्नान नहीं ले सकते, उन्हें १०-१५ मिनट जल में बैठ कर उठ जाना चाहिये और १०-१५ मिनट टहल कर फिर जल में बैठना चाहिये। ऐसा करने से नाड़ी अपनी साधारण दशा में आ जाती है और बेचैनी नहीं होती।

(८) स्नान के अन्त में शरीर को ठण्डे जल से स्नान करा के कम्बल लपेट कर लेट जाना चाहिये। इससे अत्यधिक पसीना आता है, और शरीर बड़ा हल्का हो जाता है।

(९) हृदय-रोग वाला को गर्म जल पेड़ू तक रखना चाहिए। किसी भी दशा में हृदय को गर्म जल न छूए।

(१०) बच्चों व वृद्धों के लिए अधिक गर्म जल न लेना चाहिए।

(११) गुर्दों, पेट, बवासीर आदि के रोगा के लिए जल नाभी तक ही रखा जावे।

(१२) गठिया तथा लकवे के रोगियों को उन अंग विशेषों को उसे ४ घण्टों तक गर्म जल में रखना उचित है।

(१३) यह स्नान दुर्बलता अवश्य लाता है, पर शरीर के जीर्ण से जीर्ण रोग को दूर भगाने में अपना सानी नहीं रखता। हमने इसे पीलिया, मियादी ज्वर, पेट के रोगों में बहुत लाभ उठाया है। विशेषतः सरदी में इस स्नान को लेने में बड़ा आनन्द आता है। चिकित्सकों का मत है कि दमा, फोड़ा, बवासीर, खुजली, बहुमूत्र, आदि सभी रोगों में इससे लाभ उठाया जा सकता है। पर हमारी राय में क्षय, स्नायविक रोग आदि में इसे न होना चाहिये। कभी-कभी चिकित्सा की भूलवश रोगी को स्नान के समय गश्त आ जाती है। पर उस समय न घबरा कर रोगी को लिटा देना चाहिए और उसके सिर पर ठण्डा जल डालना चाहिए। रोगी स्वतः ही होश में आ जाता है।

⁂

जल-तत्त्व

श्री सुरेन्द्रनाथ तिवारी, १४ तुलाराम बाग, प्रयाग

हमारे शरीर में जल काफी तादाद में रहता है। इसमें ६६ प्रतिशत जल है। यह मात्रा कुछ तो जल से जो हम पीते हैं और कुछ भोजन की सामग्री से जो हम खाते हैं कायम रहती है। खाद्य-पदार्थों के बाद हमारा शरीर जल पर ही निर्भर रहता है। इसी कारण अनशन करते हुए भी जल के आश्रय से अतिकाल तक शरीर चलाया जा सकता है।

जल-तत्व क्या है और इसका हमारे शरीर से क्या सम्बन्ध है इस बात को प्रत्येक शरीरधारी को समझ लेने की आवश्यकता है। हम लोग समुचित शिक्षा की कमी के कारण बहुत सी बातें नहीं समझते। मूक पशुवत सांसारिक वस्तुओं का व्यवहार तो हम करते हैं परन्तु समझ के साथ नहीं। हम नहीं समझते कि किसी वस्तु के साथ हमारी कितनी घनिष्टता है। उसका हमारे जीवन के साथ क्या सम्बन्ध है और किस मात्रा में वह हमें क्या लाभ तथा क्या हानि कर सकती है। भोजन को ही उदाहरण के रूप में ले लीजिये। हम इतना ही अनुभव करते हैं कि बिना खाये हमारा जीवन अधिक काल तक नहीं चल सकता। पर यह खाना, जिससे जीवन चलता है, क्या है; क्यों इससे जीवन चलता है! क्या हमारे लिए उपयोगी है। क्या नहीं; कितनी मात्रा से क्या फायदा अथवा क्या नुकसान हो सकता है, इत्यादि बातें न तो हम अच्छी तरह जानते ही हैं और न जानने का प्रयत्न ही करते हैं। केवल पशुओं की भाँति पेट भरना जानते हैं। उसमें भी एक भारी कमी रहती है। पशु वर्ग तो अपने स्वाभाविक ज्ञान (Instiucts) के कारण अपने खाद्याखाद्य पदार्थ को समझ लेता है तथा तदनुसार समुचित मात्रा में ही उसका प्रयोग करता है। परन्तु हम लोग तो जबान के स्वाद के पीछे चलने वाले हैं और इसी कारण यदि खाने की चीजें रुचि कर हुईं तो पेट को बेतहाशा भर देते हैं जिसका परिणाम यह होता है कि जिससे हमें लाभ होना चाहिए उससे उलटे भारी हानि हो जाती है। यह सब हमारे समझने की कमी के कारण होता है और ठीक ऐसी ही बात जल के सम्बन्ध में भी है।

खाद्य-पदार्थों के सम्बन्ध में खाते खाते थोड़ा-बहुत अनुभव हमें हो ही जाता है परन्तु जल के सम्बन्ध से तो हम बिलकुल अनभिज्ञ रहते हैं। प्यास लगने पर पानी पी लेना एक मोटी बात है। पर इसकी भी हम अकसर अवहेलना कर जाते हैं। शरीर की कोई भीतरी मांग है यह तो हमें मालूम हो जाता है परन्तु वह क्या है, खाने की है या पीने की इसका निर्णय करना कठिन हो जाता है। पीने की यदि मौग हुई और स्वाद के आग्रह की प्रबलता के कारण यदि पानी की जगह खाना पेट में पहुँचाया गया तो हमारी जीवन-शक्ति इस हमारी समझ की कमी के अत्याचार के कारण भीतर ही भीतर जल-भुन कर रह जायगी। वह रोगों के रूप में भीतर ही भीतर कोई विद्रोह भले ही खड़ा कर दे, इसके अतिरिक्त वह हमसे कह ही क्या सकती है? गूंगा इशारे से ही अपनी जरूरत हमसे प्रकट कर सकता है। यह हमारी बुद्धिमानी है कि हम उसको ठीक-ठीक समझ जायं। अस्तु जीवन शक्ति को ठीक अवस्था में रखने के लिए यह परम आवश्यक है कि भोजन की तरह समय पर समुचित मात्रा में जल भी हमारे शरीर में पहुंचना चाहिए। हम ऊपर कह ही चुके हैं कि जल हमारे जीवन के लिए एक उपयोगी पदार्थ है। इसको और अच्छी तरह से समझने के लिए एक इंजन का उदाहरण ले लीजिये। इंजन कोयला और पानी के सहारे चलता है— या यों कहिये कि कोयला और पानी ही उसे चालक-शक्ति रूप जीवन प्रदान करते हैं इन दोनों का प्रयोग यथोचित मात्रा में न होने से इंजन की चाल में बाधा पड़ सकती है। निरा कोयला ही कोयला झोंक देने अथवा पानी ही पानी दे देने से वह चल नहीं सकता। यही बात हमारे शरीर के लिए पानी के सम्बन्ध में समझना चाहिए।

अब यह जल-तत्त्व जो हमारे जीवन का एक अनिवार्य अंग क्या है और इसका दूसरे जीवन से क्या सम्बन्ध

है, इसी पर हमें विचार करना है।

जल-तत्त्व से हमारा मतलब जल से मिलनेवाली उस शक्ति से है जिसके सहारे हमारा जीवन चलता है। जैसे हमारे स्थूल शरीर की रग-रग और रेशे-रेशे में प्राण-शक्ति रहती है वैसे ही अन्य पदार्थों की तरह पानी में भी प्राण-शक्ति होती है : यदि यह प्राण-शक्ति जल में नहाती तो उसके सहारे हमारे शरीर की प्राण-शक्ति कैसे चलती। यह हमारे शरीर को ही नहीं प्रत्युत सृष्टि के सारे इतर वनस्पति तथा प्राणि वर्ग को भी प्राणांश प्रदान करता है। कितनों का तो यही एकमात्र जीवनदाता है। जल तो मछली का एक जीवनाधार है। कितने ऐसे और जीव भी हैं जो जल से ही जीवन पाते हैं और उसी से अपना जीवन चलाते हैं। यही जल में रहने वाली प्राण-शक्ति हमारा जल-तत्त्व है। गीता में भगवान-कृष्ण ने कहा है "रसोड़ हमाप्सु कौन्तेय" (७।८)–हे अर्जुन! मैं जल में इस रूप से रहता हूँ अर्थात् जल में जीवन चलाने वाला जो रस (प्राण) है, वह मैं हूँ। यही मैं विश्वात्मा अथवा विश्वशक्ति (Cosmic Intelli gecne) है।

उपरोक्त बातों से अब स्पष्ट हो जाता है कि जल-तत्व से हमारी बड़ी घनिष्टता है। यह क्यों है, अब हमें इस पर विचार करना है। इसके लिए हमको अपने उद्गम की ओर जाना पड़ेगा। हमारा सृष्टिवाद खुले शब्दों में कहता है कि एक ही सर्वशक्ति-सम्पन्न-सत्ता की महत्ता यह विश्व ब्रह्मांड है। विकासोन्मुख होने पर इसी एक महती अव्यक्त शक्ति से पुरुष (प्राण अथवा चेतना शक्ति) तथा प्रधान (प्रकृति अथवा पदार्थशक्ति की अभिव्यक्ति होती है। इसी प्रधान (प्रकृति) शक्ति से महत् (बुद्धि॰), इससे अहंकार (Ego), अहंकार से मन तथा मन से पंचभूतों के परिवार की उत्पति होती है।

पंचभूतों में सर्वप्रथम आकाश (Space), आकाश से वायु, वायु, से तेज (प्रकाश), तेज से अप (जल) और जल से पृथ्वी तत्व की उत्पत्ति होती है। इस पृथ्वी तत्त्व से ही समय पाकर मुख्यतः चार प्रकार की सृष्टि उभ्दिज, स्वेदज, अंडज और जरायुज क्रमशः उत्पन्न होती है। अंतिम जरायुज ही हम सबों की उत्पत्ति का कारण है। इस विधान में एक बात बड़े मार्के की है जिस पर सभी बुद्धिमानों को विचार करना चाहिए। वह यह है कि एक ही अव्यक्त (जिसको हम देख नहीं सकते) क्रमशः व्यक्त (स्थूल) होते होते इस वर्तमान विश्व के रूप में होता है और अन्त (लय के समय) में उलटे क्रम से एक दूसरे में लय होते-होते केवल एक वही अव्यक्त शेष रह जाता है।

उपरोक्त विधान से हम देखेंगे कि हमारी अभिव्यक्ति अन्तिम आधार पृथ्वी है। इसी से हम उसे पृथ्वी माता कहते हैं। पृथ्वी जल तत्त्व से उत्पन्न है। दूसरे शब्दों में इसको यों भी कह सकते है कि पृथ्वी तत्त्व के बाद हमारा सबसे नजदीकी तत्त्व जल-तत्त्व ही है। यही हमारी जल-तत्त्व की घनिष्टता है। और इसी कारण हमारे लिए आहार के बाद यह सबसे आवश्यक चीज है। यही कारण है कि प्राकृतिक चिकित्सा-प्रणाली में मिट्टी की उपादेयता के बाद जल की उपयोगिता का महत्वपूर्ण स्थान है।

(पृष्ठ ३३ का शेषांश)

सूजन, मूत्राशय की सूजन और दमा में गर्म फोमेन्टेशन का प्रयोग बहुत लाभकारी देखा है।

रीढ़ के ऊपरी भाग तथा गर्दन से पिछले भाग में सेंक देना और सीने पर शीत प्रयोग करना फेफड़े की कंपकपी को रोकता है।

फोमेन्टेशन देने की तीन विधियां हैं:—(१) गर्म सेंक (२) बारी-बारी से सेंक और (३) प्रावाहिक सेक।

प्रारम्भ ही में गर्म सेंक या फोमेन्टेशन की व्याख्या हो चुकी है।

समान काल का बारी बारी अति उष्ण व अति शीत सेंक देना बारी बारी का सेंक (Atlernate fomentation) कहलाता है। ऊष्ण से आरम्भ कर अन्त में शीत फोमेन्टेशन करना चाहिये।

प्रावाहिक (Revulsiue fomentation) फोमेन्टेशन बारी-बारी सेंक के समान है। भेद केवल इतना है कि शीत प्रयोग सदैव कम समय का होता है। इसके प्रयोग का सब से उत्तम प्रकार यह है कि गरम सेंक ४ से ५ मिनट देना चाहिये और शीत प्रयोग २० से ४० सेकंड तक।

बच्चों की बीमारियाँ

डा० कुलरंजन मुकर्जी, कलकत्ता

सब बीमारियों की जड़ एक ही है—शरीर में विजातीय द्रव्य का संचय। तो फिर एक नवजात शिशु-के, दूध मुँह बच्चे के, शरीर में यह विकार या विसदृश पदार्थ कहां से आ जाता है ? इस प्रश्न का समुचित उत्तर आप को इस लेख में मिलेगा। साथ ही आप यह भी जान सकेंगे कि कुछ विशिष रोग शैशवावथा में ही क्यों होते हैं, और उनके निवारण के सरल उपाय क्या हैं ? --सं०]

बच्चों की बीमारियां भी उसी कारण अथवा अवस्था से उत्पन्न होती हैं जिनसे बयस्कों के बीमरियां होती हैं। सब बीमारियां शरीर प्रणाली में मल अथवा विष के एकत्र होने के कारण उत्पन्न होती हैं। बीमारी चाहें जिस तरह की भी हो, उनकी उत्पत्ति शरीर में इन्हीं दूषित पदार्थों के एकत्र होने के ही कारण होती है। आप को यह सन्देह हो सकता है कि बच्चे के शरीर में मल अथवा विष कहाँ से इकट्ठा हो सकता है। कुछ लोगों का कहना है कि यह विकार उसे अपने माता-पिता से प्राप्त होता है। लेकिन आधुनिक वैज्ञानिक जोर देकर अपनी यह राय जाहिर करते हैं कि किसी भी व्यक्ति को अपने पिता या माता से बीमारियां पैतृक रूप में नहीं प्राप्त होतीं। उसे तो अपने माता-पिता से केवल वह पूर्वावस्था ही विरासत में मिलती है जिससे शरीर में रोग उत्पन्न होता है। यदि बालक को स्वच्छ तथा आरोग्यवर्धक वातावरण में रक्खा जाय, उसका पालन-पोषण हो तो उसे अपने अभिभावकों की बीमारियों से सर्वथा मुक्त रक्खा जा सकता है। लेकिन यह ध्यान रहे कि शरीर की रासायनिक प्रक्रिया (Metadotism) के फलस्वरूप अथवा पाचन क्रिया के बाद शरीर में बच रहने वाले भोजन सड़ाव के कारण शरीर में किंचित उत्पन्न हुआ विष बच्चे के सुकोमल शरीर में गड़बड़ी पैदा कर देने के लिए पर्याप्त सिद्ध होता है। थोड़ा सा भी श्रम अथवा उष्णता उसके शरीर का तापमान् १०२ डिगरी तक बढ़ा सकते हैं। इसी प्रकार आवश्यकता से कुछ भी अधिक भोजन करने पर वह वमन (कै) कर देता है, और सड़ी-गली चीज़ों के खाने से उसे पतले दस्त (Diarrhea) होने लगते हैं। वास्तव में बच्चों में रोग की प्रतिरोधक शक्ति बहुत कम होती है और संक्रामक रोगों का उनके शरीर पर असाधारण रूप से प्रभाव पड़ने की सम्भावना रहती है। आंतों में कुछ भी मल इकट्ठा होने अथवा शरीर-प्रणाली में थोड़ा सा भी विकार जमा होने पर उसके शरीर में रोगोत्पत्ति करने वाले जीवाणुओं की वृद्धि होने का ज्यातर मौका मिल जाता है। यही कारण है, जो कुछ विशिष्ट बीमारियां खास तौर से बाल्यकाल अथवा शैशवास्था में ही हुआ करती हैं। सच यह है कि रोग की सब से प्रबल सम्भावना जन्म लेने के प्रथम दो वर्ष में दृष्टिगोचर होती हैं।

लेकिन प्रकृति सदैव सतर्क रहती है। वह सदा विभिन्न मार्गों से विकार को शरीर के बाहर फैंक देने तथा रक्षात्मक अवयवों द्वारा नष्ट कर देने के लिए प्रयत्नशील रहा करती है। इस प्रकार जब तक वह शरीर को स्वच्छ और मल-रहित रखने में समर्थ होती है तब तक शरीर में कोई रोग उत्पन्न नहीं हो सकता। लेकिन जब किसी कारण से आमाशय, गुर्दे, त्वचा और फेफड़े अपना कार्य पूरा-पूरा सम्पादन करने में असमर्थ होते हैं तो यह मानी हुई बात है कि शरीर में कुछ न कुछ मल अथवा विकार शरीर के अन्दर रह जाता है। बच्चे का सुकोमल शरीर इस विष

को बहुत अधिक सहन नहीं कर सकता और अक्सर वह इससे छुटकारा पाने के लिए जोरा से प्रयत्न करता है। सभी तीव्र रोग शरीर-मन्दिर को स्वच्छ रखने की इस प्राकृतिक प्रक्रिया के ही फलस्वरूप उत्पन्न होते हैं। लेकिन जब दमनकारी (रोग को दबा देने वाली) औषधियों के प्रयोग किए जाने अथवा किसी अन्य कारण से शरीर-प्रणाली रोग का प्रतिरोध करने की शक्ति खो बैठती है तो वह तीव्र रोग जीर्ण रोग का रूप धारण कर लेता है।

(२)

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि रोग वस्तुतः एक ही है—और वह है शरीर में मल अथवा विसदृश पदार्थों का जमाव। और इसलिए इसका इलाज भी एक ही है—शरीर-प्रणाली में संचित मल की सफाई अथवा मल-विसर्जन। जिस प्रकार प्रकृति मल-विसर्जन करने वाले अंगों के द्वारा मल अथवा विसदृश पदार्थों को बाहर फेंक कर हमारे शरीर को स्वस्थ रखती हैं, उसी प्रकार हम भी प्रकृति की इस प्रक्रिया के द्वारा शरीर को शुद्ध तथा मल-रहित रख सकते और समस्त रोगों को दूर कर सकते हैं। प्रत्येक रोग को उन्हीं उपायों से दूर किया जा सकता है जिनसे कि हम अपने स्वास्थ्य को बनाए रखते हैं।

बच्चों की सभी बीमारियों में, जब कि यह विश्वास किया जाता हो कि मल-विसर्जन क्रिया समुचित रीति से नहीं हो रही है—पेट साफ नहीं हो रहा है, तो मल को बाहर निकाल देने के लिए प्रत्येक उपाय करना चाहिए। प्रत्येक छोटे बच्चे के मल-द्वार (गुदा) में पान के पत्ते का डंठल तीन-चौथाई इंच तक प्रवेश किया जा सकता है। इससे मृदु रेचन होगा और मलांत्र (Colon) में रुका हुआ मल बाहर निकल आएगा। अपेक्षाकृत कड़े बच्चों को खालिस शहद का एनिमा दियाँ जा सकता है। यह प्रायः जल के एनिमा का-सा काम करेगा, अंतर केवल यही होगा कि इससे मलांत्र न धुलेगा। शहद का एनिमा देने के बाद कुछ सेकेन्ड तक गुदा-द्वार को दबा रखना चाहिए। लेकिन खालिस शहद होना निहायत जरुरी है। पुराने तथा सड़े-गल शहद से बच्चे को भारी नुकसान पहुँच सकता है। खालिस शहद न मिल सके तो जल का एनिमा दिया जा सकता है। जुलाब देने से एनिमा देना कहीं अच्छा है। यदि आंतों में सड़ाव होने के लक्षण दिखाई देते हों तो एनिमा के पानी में थोड़ा नीबू का रस भी मिलाया जा सकता है। छोटे बच्चों को एनिमा देने के लिए एक पाइन्ट (लगभग डेढ़ पाव) से अधिक पानी न होना चाहिए। जल का तापमान भी शरीर के तापमान से कुछ अधिक होना चाहिए।

जीर्ण रोगों में बच्चे के आमाशय (Abdomen) और यकृ (liver) की प्रतिदिन कुछ मिनट तक मालिश होनी चाहिए। इससे पित्त के निःसृत होने में सहायता मिलेगी और आँतों में इतनी ताकत आ जायगी जिससे कि वे कम से कम रोजाना दो बार मल को बाहर निकाल दें। इसके अलाव पाचन और समीकरण की शक्ति में भी वृद्धि होगी और इस प्रकार रोगी का शरीर रोग का प्रति-रोध करने में समर्थ हो जायगा। रात के समय पेड़ू पर गीली पट्टी बाँध कर सोना कब्ज या कोष्ठबद्धता का अचूक इलाज है। इसकी विधि यह है कि पेट और पीठ पर लगभग ६ इंच चौड़ा कपड़ा पानी में भिगो कर बाँध दिया जाय और उसके ऊपर सूखे फलालैन की पट्टी बांध दी जाय। बच्चे को कटि-स्नान भी बिना किसी प्रकार की आशंका के दिया जा सकता है। लेकिन कटि-स्नान (हिप बाथ) देने पहले हमें यह अवश्य देख लेना चाहिए कि बच्चे का शरी बिलकुल गरम है। और कटि-स्नान के बाद भी शुष्क घर्ष स्नान (सूखी मालिश) से उसके शरीर में सामान्य उष्णत (गरमी) उत्पन्न कर देनी चाहिए। कटि-स्नान के लि प्रयोग में लाये ज़ाने वाले जल का तापमान भी बहुत क न होना चाहिए। शरीर के तापमान से कुछ डिगरी क तापमान का जल बच्चे के लिए अत्यन्त उपयोगी होगा यह कोई आवश्यक नहीं कि एक ही मामले में इन तमा विधियों का प्रयोग किया जाय। इनमें से एक या विधियां यदि समुचित सावधानी के साथ काम में ला जायँ तो इनका परिणाम रोगी के लिए बहुत ही सुख होगा।

आंतों की सफाई हो जाने पर हमें बालक के रोम-कू को स्वच्छ कर देने, उन्हें खोल देने और शरीर साधारण तौर से परिशुद्धि के लिए अपना ध्यान आक करना चाहिए। बाल रोगों में इस उद्देश्य की पूर्ति के लि

सर्वोत्तम उपाय है 'ट्रंक पैक' (गरदन और कटि के बीच के भाग की पट्टी) का प्रयोग। यह 'ट्रंक पैक' गीले कपड़े पट्टी के ही समान हैं। इसमें दोनों हाथ और पैर बाहर रहते हैं। बच्चे के समूचे शरीर पर पट्टी देना सदा कठिन ही होता है। लेकिन इस पट्टी का प्रयोग बालक के शरीर पर आसानी से और बराबर किया जा सकता है। पट्टी के प्रयोग के समय बालक रोए-चिल्लाये नहीं, इसके लिए उसे बराबर गोद में लिए रहना चाहिए। यद्यपि बच्चे के हाथ और पैर खुले रहते हैं, उनपर पट्टी नहीं बांधी जाती, किन्तु उसके समूचे शरीर को, (गरदन तक) एक शाल से पूरी तौर से ढके रखना चाहिए। बच्चे पर पट्टी का प्रयोग करने के समय यह ध्यान रखना चाहिए कि 'ट्रंक पैक' के लिए जिस कपड़े को काम में लाया जाय वह बहुत पतला हो और अगर शरीर बहुत गरम नहीं है तो इसे खूब निचोड़ कर प्रायः सूखा कर लिया जाय। बच्चे के शरीर को ढकने के लिए कम्बल के बजाय शाल इस्तेमाल किया जाय। इस पैक से भी वही लाभ होता है जो कि गीली पट्टी से होता है। हल्का वाष्प-स्नान (स्टीम बाथ) भी बच्चे के लिए लाभदायक होगा। लेकिन बच्चे के लिये स्टीम बाथ के बनिस्बत 'ट्रंक पैक' कहीं अधिक लाभदायक होता है।

हमें यह भी ध्यान रखना होगा कि बच्चे के पेशाब खूब हो। इसके लिए बच्चे को प्रतिदिन पर्याप्त मात्रा में पानी पिलाना चाहिये। बुखार की हालत में बच्चे को हर घन्टे या आध घन्टे के बाद एक चम्मच पानी, उसमें कुछ बूंद नीबू का रस मिलाकर, पिलाना चाहिए। स्वास्थ्य की अवस्था में भी उसे एक बार से दूसरी बार के भोजन के बीच एक मर्तबे पानी अवश्य पिलाना चाहिए। लेकिन साधारण भोजन कराने के समय पानी उसे हरगिज न पिलाना चाहिए।

इन सब विधियों के प्रयोग से बच्चे की शरीर-प्रणाली में एकत्र हुए विष अथवा विकार, जो कि समस्त रोगों के मूल कारण होते हैं, बाहर निकल जायंगे। मगर इसके साथ ही साथ हमें बच्चे के शरीर को नया करने और रोगों का निवारण करने वाले अवयवों की हिफाजत के लिये अवश्य प्रयत्न करना चाहिए। रोग उत्पन्न करने वाला विष इन अंगों को संकुचित बनाए रखता है। जब शरीर का संचित मल अथवा विकार रोगों से शरीर को सुरक्षित रखने वाली प्रणाली को बेकाबू या निस्तेज में कर देता है तो उसके फलस्वरूप शरीर में रोग उत्पन्न होना स्वाभाविक ही होता है। शरीर के समस्त अवयवों को सतेज बनाने के लिये ठण्डे स्नान से बढ़ कर कोई दूसरी विधि नहीं है।

बच्चों की बीमारियों में शीतल जल के सभी प्रकार के स्नानों में स्पंज-बाथ (गीले कपड़े से सारे शरीर को पोंछ देना) सर्वोत्तम है। इस स्नान के पहले सिर, मुख, और गरदन की मामूली तौर से ठंढा कर लेना चाहिए। तब बच्चे के समूचे शरीर को (गरदन पक) ढ़क देना चाहिए। इसके बाद एक समय में शरीर के केवल एक ही भाग को खोल कर उसे पोछना चाहिए। जल का तापमान सामान्य हो। इसके बाद एक मुलायम तौलिये से उसे पोंछ कर उस भाग को सुखा देना और फिर ढंक देना चाहिए। इसी प्रकार समूचे शरीर का, एक-एक अंग करके, घर्षण-स्नान होना चाहिए। बच्चे को प्रतिदिन कुछ मिनट के लिये कटि-स्नान (हिप बाथ) भी दिया जा सकता है। लेकिन हिप-बाथ देने पर भी समूचे शरीर का घर्षण-स्नान (Spong bath) छोड़ न देना चाहिए। प्रत्येक शीतल स्नान के पूर्व प्रति दिन कम से कम एक बार नियमित रूप से धूप स्नान भी होना चाहिए।

किन्तु बच्चे के उपचार के सम्बन्ध में सदैव बहुत ही सावधानी से काम लेना चाहिए यह हमेशा याद रखना चाहिए कि ठण्डे जल के प्रयोगों की बच्चों में बहुत मामूली ही प्रतिक्रिया होती है। ७ साल तक की अवस्था के बच्चों की त्वचा शीतल जलोपचार के बाद जल्द उष्ण (गरम) नहीं होती। इसलिये बच्चे के उपचार में सामान्य तापमान के जल को ही प्रयोग में लाना उचित होगा। इसके अलावा यह भी ध्यान रखना चाहिए शीतल जल का एकबारगी प्रयोग करके बच्चे को घबड़ा न दिया जाय। इसका प्रयोग क्रम-क्रम से ही होना चाहिए। प्रत्येक ठण्डे स्नान का क्रमिक प्रयोग उत्तम होगा। इसकी विधि यह है कि यदि बच्चे को ठण्डा स्नान कराना हो तो पहले सामान्य तापमान के जल (Tipid water) का प्रयोग किया जाय और बाद में स्नान देने के समय उसमें ऊपर से ठण्डा पानी डाल दिया जाय। इस प्रकार स्नान के पानी का तापमान घटाया जा सकता है। इसके अलावा यह भी आवश्यक है कि आरम्भ में ठण्डे पानी का स्नान बहुत थोड़ी देर के लिए हो और स्नान के समय को प्रतिदिन क्रम क्रम से बढ़ाया जाय।

बच्चे का भोजन

बच्चे का भोजन भी बड़ा महत्वपूर्ण है। बच्चे का भोजन इस प्रकार का होना चाहिए जिससे कि उसके शरीर का निर्माण शुद्ध से शुद्ध तत्वों से हो और इसके साथ ही साथ शरीर के मल अथवा विकार का परिमार्जन तथा बहिष्करण भी हो जाया करे। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये बच्चे का आहार सुपच, अनुत्तेजक, मुख्यतः क्षारमय (Alakaline) तथा खाद्योजों (Vitamins) और खनिज लवणों (mineral salts से परिपूर्ण होना चाहिए। इस दृष्टि से दूध, फल और शाकी-भाजी बच्चे के आहार के रूप में सर्वोत्तम है। माता के दूध में वे सभी तत्व विद्यमान रहते हैं जो शिशु के लिए आवश्यक होते हैं और साथ ही उस दूध में कुछ हद तक रोग-निवारण शक्ति भी मौजूद रहती है। यदि कारणवश कोई बच्चा अपनी माता का दूध पीने से वंचित हो जाय तो उसके लिये दूध पिलाने वाली दाई रख लेनी चाहिए और दाई न मिलने पर ही दूध पिलाने के कृतिम साधनों का उपयोग करना चाहिए। यह तो प्रायः सभी जानते हैं कि बच्चे के लिए माता के दूध के अभाव की पूर्ति गाय के दूध से ही हो सकती है।

बच्चा अपनी माता का दूध पीता हो या कृत्रिम साधनों (बोतल आदि) के द्वारा किन्तु यह आवश्यक है कि तीसरे महीने से उसे दूध के साथ साथ थोड़ा फलों का रस भी पिलाना चाहिए। नारंगी, टमाटर, अंगूर, और सेव का रस प्रतिदिन ३ से ६ बार तक दिया जा सकता है। पांचवें महीने से उसे चुकन्दर, गाजर, पालक तथा अन्य हरी-ताजी शाक भाजियों का शोरवा (सूप) देना चाहिए और क्रमशः उसे फल और शाक भाजियां भी देनी चाहिए। ज्वर की हालत में छोटे बच्चों को माता का दूध पिलाना चाहिए। अपेक्षाकृत बड़े बच्चों को दूध, मक्खन निकाला हुआ दूध और 'माल्ट' के सहित 'बार्ली वाटर' आहार के रूप में विशेष रूप से देना चाहिए। लेकिन चीनी का प्रयोग किसी भी हालत में न करना चाहिए। बुखार रहने की अवस्था में छोटे-छोटे बच्चों में आंतों की गड़बड़ी पैदा होने की अधिक संभावना रहती है। अगर बच्चों को चीनी या शक्कर न दिया जाय या बहुत कम दिया जाय तो अपचन की कोई सम्भावना न हो सकेगी।

लेकिन अगर कभी बुखार के साथ साथ या स्वतंत्र रूप से पतले दस्त (Diarrhea) आने लगें तो सभी प्रकार का भोजन १२ से २४ घन्टे तक के लिए बन्द कर देना चाहिए। बार-बार उपवास कराने की या लम्बे अर्से तक आवश्यकता से कम भोजन कराने के बनिस्बत एक बार इस प्रकार का उपवास करा देना अच्छा है। तीव्र डायरिया की हालत में, चाहे वह किसी भी प्रकार हो, दूध, फल, और शाक-भाजियां देना फौरन बन्द कर देना चाहिए और जब तक खतरे की स्थिति टल न जाय तब तक सिर्फ फाड़ा हुआ दूध का पानी ही बच्चे को देना चाहिए। स्तनपायी बच्चों को लम्बे अर्से तक उपवास कराने के बाद केवल माता का दूध ही पीने को देना चाहिए।

जीर्ण रोगों में उपचार आरम्भ करने पर पहले कुछ दिनों तक बच्चे को आधे भोजन पर रखना चाहिए, उसके बाद भोजन का परिमाण क्रमशः बढ़ाया जाय। प्राकृतिक चिकित्सा में कोई दवा देने की आवश्यकता नहीं, लेकिन इस प्रकार का पचन शुद्ध (Aseptic) आहार शरीर में दवा का-सा काम करता है।

* * *

फादर नीप——उनकी चिकित्सा-पद्धति

श्री पुरुषोत्तमदास मोदी

प्राकृतिक चिकित्सकों में फादर नीप का स्थान बड़ा ही महत्वपूर्ण रहा है। वे एक प्रसिद्ध जल-चिकित्सक थे। उन्होंने जल-चिकित्सा द्वारा स्वयं नव जीवन प्राप्त किया और दूसरों को मरने से बचाया। यहां संक्षेप में हम उनके जीवन का परिचय देंगे और उनकी चिकित्सा पद्धति का वर्णन करेंगे जो सर्वथा जलोपचार है।

फादर नीप का जन्म १७ मई सन् १८२४ में एक बुनकर परिवार में बवेरिया के स्टेफन स्वायड नामक गांव में हुआ था। बचपन से ही इनकी इच्छा पादरी बनने की थी और बुद्धि भी उनकी प्रखर थी। लेकिन गरीबी के कारण इनकी शिक्षा का उचित प्रबंध न हो सका और इस लिए अपनी आत्मा का हनन कर इन्हें बुनकरी का पुश्तैनी धंधा अपनाना पड़ा। लेकिन आगे चलकर ये एक रोमन कैथलिक चर्च के पादरी भी होगये।

इक्कीस वर्ष की अवस्था में इन्हों ने अपने पाकेट में मुसाफिरी का पास डाला और घर के निकल पड़े। इनके मानस-पट पर तो अंकित था पादिरी बनने के लिए अध्ययन करने की उत्कट अभिलाषा। बुनकर तो था इनका वंश मात्र इसलिए किसी ऐसे सज्जन कीं शागिर्दी ढूढ़ने में लग गये जो इनको अध्ययन के मार्ग पर ला सके। इसी समय रेवरेंड चैपलेन मर्कले नाम के एक सज्जन से भेंट हो गयी। उन्हों ने दो वर्षों तक इन्हें बड़ी मिहनत से पढ़ाया और दूसरा वर्ष बीतते ही इन्हें हाई स्कूल में भरती होने योग्य बना दिया। हाई स्कूल की पाँच वर्षों की कठिन पढ़ाई ने इनको कमजोर कर दिया और इससे इनका स्वास्थ्य गिर गया। तब इनके पिता इन्हें प्रसिद्ध डाक्टरों के पास ले गये लेकिन कोई लाभ न हुआ। उस समय फादर नीप के मकान मालिक ने नीप के पिता से कहा था——बुनकर। मुझे उम्मीद नहीं यह विद्यार्थी फिर घर लौटेगा।"

ऐसे समय सौ-भाग्य-वश फादर नीप को एक ऐसी पुस्तक मिल गई जिसमें जल-चिकित्सा की चर्चा थी। उसके लेखक थे डाक्टर एस० हान। न जाने क्यों उसके दिल ने उसे आजमाने को प्रेरित किया और ज्यों ज्यों लाभ होता गया, उत्साह भी बढ़ता गया। इस तरह उन्होंने पूर्ण सफलता प्राप्त की और खोई हुई जिन्दगी को फिर से हासिल की। जीवन-प्राप्ति की इस नई आशा ने उनके मृत शरीर में विजली दौड़ायी और उनके भग्न हृदय में उत्साह का प्रकाश फैल गया। फादर नीप के लिए वह पुस्तक अंधे की लाठी सावित हुई। इन्हीं के रोग के रोगी ने इन्हें लाभ होते देख इन्हीं की तरह चिकित्सा शुरू कर दी और दोनों में पहले स्वास्थ्य लाभ करने की होड़ सी लग गई। फादर नीप ने तब से पादरी का काम आरंभ किया और तीस वर्षों तक करते रहे।

यह है संक्षेप में फादर नीप की जीवन-कहानी। अब उनके जलोपचार अथवा चिकित्सा-पद्धति की ओर दृष्टिपात कीजिए। आस्ट्रि साइलीशिया के ग्राहसबर्ज निवासी विसेंट प्रेसनिज के ठंडे जल के प्रयोगों पर इनका सबसे अधिक विश्वास था। ये वोरिशोफेन नामक स्थान में चिकित्सा चलाते थे। इनकी भी चिकित्सा के साधन प्रकृति के उपादन जल वायु, धूप एवं भोजन-सुधार थे। यद्यपि बहुता ने इनकी इस पद्धति का विरोध किया लेकिन इनकी चिकित्सा से प्राप्त लाभ में उस विरोध को क्षण भर में धराशायी कर देने की जबर्दस्त शक्ति थी।

गरीब क्या अमीर दोनों को इन्हों ने पादरी जीवन के गंभीर एवं मधुरता पूर्ण शन्दों में राय की और उन्होंने स्वास्थ्य लाभ किया। इनकी सफलता का सबसे बड़ा कारण इनके गुण और मृदु व्यवहार भी हैं।

नीप का विश्वास था कि रक्त में दूषित द्रव्य के पहुंचने से अथवा शरीर में रक्त के स्वाभाविक प्रवाह में किसी प्रकार बाधा पड़ने से रोग उत्पन्न होते है और वे सभी रोग जलोपचार द्वारा दूर किये जा सकते हैं। उनके जलोपचार में जल का प्रयोग, पट्टी गरम कपडे और बिना गरम कपड़े के बन्धन के साथ भाप-स्नान और फुहारे का प्रयोग था। उनका कहना है कि ठंडा ज़ल गरम जल

से अत्यधिक लाभ दायक है। उनके जलोपचार की सब से बड़ी विशेषता तो यह है कि उनका प्रयोग बहुत थोड़े समय तक चलता था। फुहारे के साथ इनका पहला नियम था—ठंडा और जरा देर।

अब फादर नीप डाक्टर नीप हो गये। उनके पास तरह तरह के रोगी आने लगे। वे सभी आश्चर्य में डूब इनके जलोपचार एवं व्यवहार को दख और स्वास्थ्य लाभ कर चले जाते थे। उनका सबसे बड़ा आश्चर्य तो यह होता था कि फादर नीप बिना किसी आले आदि के प्रयोग के वे रोगी के रोग को जान लेते थे क्यों कि उनकी दृष्टि इतनी तीव्र थी और देखते देखते इतनी अनुभव शील हो गई थीं कि उनको रोग जानने में कोई देर न लगती थी। फिर उनका तो विश्वास ही था कि सभी रोग रक्त में दूषित द्रव्य पहुंचने से अथवा शरीर में रक्त के स्वाभाविक प्रवाह में किसी प्रकार बाधा पड़ने से ही रोग उत्पन्न होते हैं। उनके पास बहुत तरह के रोगी आते थे। किसी दुबले और पीले रोगी को देखकर वे तुरन्त इस निष्कर्ष पर पहुंचते थे कि रोगी का रक्त बहुत घटिया तरह का और खराब है एवं रोगी के शरीर को आवश्यक गर्मी नहीं मिलती। ऐसे रोगी के लिये वे उसकी भूख बढ़ाने और तीव्र रक्त्र संचालन के लिए शरीर को विभिन्न अंगों को धोने और नहलाने की राय देते थे। पट्टी या विशेष स्नान उनकी दृष्टि में ऐसे रोगी के लिये व्यर्थ थे। ऐसे रोगी के शरीर की गरमी पर उनका ध्यान विशेष रहता था। यदि रोगी के शरीर की गरमी बहुत ही कम हुई तो उन अंगों पर जिनपर ठंडे पानी का प्रयोग करना होता था पहले उसे भाप आदि के द्वारा गरम कर लेते थे। फल यह होता था कि कुछ ही दिनों में रोगी की भूख बढ़ जाती थी और साथ ही रक्त का परिमाण और संचालन की गति भी पहले से अधिक तीव्र हो जाती थी जिससे शरीर के सारे अवयव अत्यधिक क्रियाशील हो जाते थे।

मोटे आदमी की चिकित्सा उन्हें बड़ी सावधानी पूर्वक करनी पड़ती थी। क्यों कि उनके शरीर में चर्बी की अधिकता के कारण उनका हृदय भी कुछ न कुछ कमजोर हो ही जाता है। ऐसे रोगिया के लिए वे मल निकालने वाले अंगों में उनकी क्रिया एवं गति बढ़ाने के लिए शक्ति लाते थे। उस समय के और सभी डाक्टर हृदय रोग में जल प्रयोग के विरुद्ध थे। लेकिन फादर नीप की राय उन सब के विपरीत थी। वे हृदय रोग के रोगियों को घुटने, जाँघ या पीठ धोने की राय देते थे जिससे रक्त कमजोर हृदय से हटकर शरीर के निचले भागों की ओर गतिमान् हो जाय। इससे शरीर के सभी अङ्ग समान रूप से गर्म हो जाते थे। फलतः रोगी की जीवन शक्ति भी बढ़ती जाती थी जिससे आगे चलकर ऊपरी भाग और सारे शरीर का स्नान कराना सम्भव हो जाता था।

कितने ही रोगी किसी न किसी अंश में स्नायु दौर्बल्य से पीड़ित होते—उन सबको वे पहले कमरे में टहलने और धूप होने पर घास पर टहलने की राय देते थे जिससे पैरों में रक्त का संचालन सजग हो जाय और आगे के जल के कठिन प्रयोगों में सुविधा हो। इन स्नायु सम्बन्धी रोगों में कभी कभी दर्द या ऐंठन पैदा होती है। इनसे घबड़ाने की जरूरत नहीं। ये तो रोग निवारक उभाड़ हैं जिनसे गरम जल के प्रयोग से बड़ी आसानी से राहत पाई जा सकती है। कभी कभी तो ये उभाड़ शरीर की मल निष्वाकन की क्रियाओं के तीव्र या रुक जाने के रूप में प्रगट होते हैं। यह रोगी के निश्चय रूप से स्वस्थ हो जाने की सूचना है। क्योंकि जीर्ण रोगों में यदि ये उपद्रव न हों तो समझना चाहिए कि रोगी के स्वस्थ होने में संदेह है। कोई भी पुरानी चीज मिटने के पहले कुछ न कुछ हलचल तो मचाती ही है। उसी तरह ये रोगों के उभाड़ भी हैं। फादर नीप के चिकित्सा-क्रम को चलाने की यही रीति है।

फादर नीप की चिकित्सा-पद्धति के प्रधान नियम इस प्रकार हैं—प्रयोग जितने ही समय के लिए होगा वह उतना ही सफल होगा। पानी जितना ही अधिक ठंडा हो प्रयोग उतने ही कम समय तक किया जाय। क्योंकि जल के ठंडक के अनुसार ही शरीर पर उसकी प्रतिक्रिया भी कम और बेशी होती है। लेकिन ठंडे पानी का प्रयोग करते समय इस बात का ध्यान अवश्य रहे कि रोगी के शरीर में उचित मात्रा में गरमी है या नहीं। न हो तो पहले गर्म पानी का प्रयोग करने के बाद ठंडे पानी का प्रयोग किया जाय।

जल प्रयोग के बाद उसे सुखाने की जरूरत नहीं। तुरन्त हलके कपड़े पहन कर कसरत करने लग जाना चाहिए और फिर उसे धीरे धीरे कम करते हुए बन्द करना चाहिए। यदि रोगी बहुत कमजोर हो और कसरत न कर सके तो उसे ठंडे जल के प्रयोग के तुरन्त बाद बिस्तर में लिटाकर कंबल आदि से ढक देना चाहिए।

शरीर को स्वस्थ एवं रोग-मुक्त रखने का सबसे बड़ा साधन शरीर को कठोर एवं सहनशील बनाना है। फादर नीप का सबसे बड़ा और प्रथम यही सिद्धान्त है जिस पर उनका सारा जलोपचार निर्भर है।

आज की पीढ़ी ने, जिसने मनुष्य के ऐशो-आराम के लिए बड़े बड़े आविष्कार किये हैं और सभ्य बनने का दावा करते हैं, शरीर की आवश्यक कठोरता में कमी कर दी है और शरीर में हर प्रकार के रोगों को बढ़ने-पनपने के लिए विषैली खाद उत्पन्न कर ली है। ऋतु में जरा-सा परिवर्तन हुआ नहीं कि सर्दी या जुकाम हो गया। ठंडी जगह में से आकर तुरन्त गरम कमरे में गये नहीं कि उनका गला बैठ गया और आवाज भारी पड़ गई।

गर्मियों में खस की टट्टी से बाहर निकले नहीं कि लू लग गई। ऐसी तो हो गई है आज की पीढ़ी। इतना ही नहीं बड़े आदमियों के घरानों के स्त्री पुरुषों के हाथ इतने नाजुक होते हैं कि उनमें जरा से काम से फफोले पड़ जाते हैं। "देखियेगा कहीं आपके कमर लचक न जाय" यह भी तो उसी कोमलता को प्रगट करता है जो आज की पीढ़ी ने घोल घोल कर पी रखी है। इन सबको देखने से यह पता चलता है कि लोगों के शरीर के अंग-प्रत्यंग में रोग सोये से रहते हैं, और उन्हें जरा भी जगाने वाली चीज मिली कि वे बाहर निकल आये। उनके शरीर के नाजुक होने के साथ साथ उनके दिल भी नाजुक और मुर्दा हो गये हैं। ऐसे लोगों को देखकर यह कल्पना करना कठिन है कि पहले मनुष्य नंगे बदन रहता था, धूप, वायु जल सब में स्वच्छन्दता पूर्वक विचरता था, हर मौसम में रोज नहीं नहाता था, इतने पर भी पूर्ण स्वस्थ एवं शक्तिवान होता था और बड़े बड़े जानवरों को मारता था।

हां, तो यदि हमें अपने शरीर को कठोर और सहनशील बनाना है तो इसे बचपन से ही शुरू करें। पेड़ जब पौधे के रूप में होते हैं उन्हें जिधर को मोड़ दिया जाता है उधर ही को मुड़ जाते हैं। इस दृष्टि को सामने रखकर फादर नीप जल के अपने प्रत्येक प्रयोग के साथ शरीर के अंग प्रत्यंग और त्वचा को कठोर बनाने के लिए कुछ बहुत सीधे सादे और नितांत निरापद उपाय बताते थे। उनमें से कुछ उपायों का हम विस्तृत रूप से वर्णन करेंगे।

१—नंगे पांव टहलना।
२—भीगी घास पर टहलना।
३—गीले पत्थरों पर टहलना।
४—तुरन्त की गिरी बरफ पर टहलना।
५—ठंडे पानी में टहलना।
६—हाथ-पैर को ठंडे पानी से धोना।
७—सारे शरीर पर या केवल पैरों पर पानी डालना।

शरीर को दृढ़ बनाने की इन सरल विधिया को देख कर कितने लोग फादर नीप पर हंसेंगे और उनकी बातों को मूर्खतापूर्ण कहेंगे। लेकिन ऐसा करना गलत होगा। इस बात से डरना कि इन प्रयोगों से सर्दी जुकाम, गले का दर्द और गठिया आदि हो जायंगे सो गलत होगा। इन विधियों में ऐसे नाजुक शहरी स्त्री-पुरुषों का भी ध्यान रक्खा गया है जिन्होंने अपना जीवन अत्यंत अप्राकृतिक बना लिया है, जिनके शरीर को ताजी हवा एवं सूर्य-किरणों का स्पर्श भी नहीं होता और उनके पैरों का स्पर्श धरती माता की कोमल धूल से नहीं होता। जिस पर धरती माता के कोमल एवं दृढ़ करों के स्पर्श नहीं हुए उसको हम अभागा ही कहेंगे। बड़े बड़े शहरों विशेषतः अमेरिका और विलायत में स्त्री-पुरुषों को जन्म से मृत्यु पर्यन्त धरती माता का स्पर्श नहीं होने पाता।

बच्चे ने जन्म लिया नहीं कि नर्स ने अपने हाथों में लोक लिया। एक वर्ष तक पलने में झूलते रहे या मां की गोद में। जरा बड़े हुए तो पैरों में मोजे और जूते डाल दिये गये और शरीर को मोटे कपड़ों से ढंक दिया गया। हमेशा उनके पैरों में चप्पल रहे। सोते वक्त उतारा और उठते ही पैरों में चप्पल डाल ली। नहाने गये तो बेटिंग स्लीपर पहने हैं वहां भी धरती माता का स्पर्श नहीं। मरे तो लोहे की संदूक में रखकर धरती माता की छाती में गाड़ दिए गये। लेकिन जीवित रहते इन्होंने यह न सोचा कि जिस माता

की गोद में अंत में हमको जाना है उससे पहले ही सम्पर्क क्यों न रखें।

पहले पहल फर्श पर दिन के किसी समय टहल कर शुरू करें और फिर धीरे धीरे सवेरे प्रातः कालीन धूप में नंगे पांव मैदान में टहलने की आदत डालें। इस प्रयोग के शुरू करने के बाद ही पता चल जायगा कि पैरों में रक्त की गति बढ़ गई है, ताजी हवा, प्रकाश और गरमी, जिनसे वे अब तक वंचित रहे हैं, उन्हें लाभ पहुंचा रहा है और उनकी मुर्दा जिन्दगी में जान आ रही है। उन्हें जल्द ही इस बात का पता चल जायगा कि जिनके पाँव हमेशा ठंडे रहते हैं उनके लिए नंगे पैर टहलने से बढ़कर कोई दूसरा पुरअसर इलाज नहीं है। लेकिन इस बात को देखकर दुःख होता है कि आज भी बड़े बड़े प्राकृतिक चिकित्सक अपने आरोग्य मंदिरों में इसको विशेष महत्व नहीं देते।

जमीन पर नंगे पांव टहलने के बनिस्बत ओस से भीगी हुई या पानी से तर घास पर टहलना अधिक लाभदायक है। जिनके पैरों में बेवाइयां फट जाती हैं उनके लिए ओस से भीगी घास पर टहलना बहुत ही लाभदायक है। जिनकी आँखें कमजोर हैं उन्हें भी ओस से भीगी घास पर टहलना चाहिए। इससे खून आंखों की ओर दौड़ता है और उनको ताजगी प्रदान करता है। जिनके सिर में खून इकट्ठा हो जाता है, सिर दर्द करता रहता है, अथवा जिनके गले में किसी प्रकार का रोग हो गया है, यदि वे इन दो में से किसी उपाय का सुविधानुसार प्रयोग करें तो फादर नीप के कथनानुसार उन्हें उससे प्राप्त लाभ की प्रशंसा करने के लिए मुश्किल से शब्द मिलेंगे। इस प्रकार पन्द्रह मिनट टहलना काफी होगा। लेकिन यह रोगी को टहलने की भूख को इतना जाग्रत कर देती है कि इनकी इच्छा इससे दूने समय तक टहलने के लिए हो जाती है।

पहाड़ पर रहने वाले लोग तुरन्त की गिरी हुई ताजी बर्फ का बहुत बढ़िया प्रयोग कर सकते हैं। तुरन्त की गिरी हुई बर्फ पर एक या दो मिनट दौड़ें। पैर गरमी से जलने लगेंगे और सारा रक्त पैर की ओर खिंच आवेगा। बच्चों को बर्फ पर खेलने में कितना मजा आता है इसको तो आपने देखा ही होगा। इससे उनको कभी भी सर्दी या जुकाम नहीं होता। पैर की बेवाई फटने और दांत में दर्द होने पर भी बर्फ पर दौड़ना एक बढ़िया इलाज है।

पिंडली भर गहरे पानी में टहलना भी शरीर को दृढ़ बनाने का श्रेष्ठ साधन है। सारे शरीर पर तो इसका असर होता ही है लेकिन मसाने पर इसका विशेष प्रभाव होता है। बहुत देर के रुके हुए पेशाब और गुर्दे के अनेक रोगों में भी यह क्रिया बहुत ही लाभदायक साबित हुई है।

पाचन-प्रणाली पर भी इस क्रिया का विशेष प्रभाव पड़ता है। इससे अधोवायु शान्त होती है, छाती का भारीपन दूर होता है और श्वास की गति भी ठीक होती है। पहले पहल इस क्रिया को एक मिनट से शुरू करें फिर उसे धीरे धीरे पांच छः मिनट तक बढ़ा लेना चाहिए। पानी जितना ही अधिक ठंडा होगा लाभ भी उतना ही अधिक होगा। कमजोर रोगी पहले साधारण ठंडे पानी में इस क्रिया को शुरू कर सकते हैं लेकिन आगे चल कर उन्हें भी धीरे धीरे पानी की ठंडक बढ़ानी चाहिए। इसके बाद पानी से निकल कर हाथों को कंधों तक डुबोया भी जा सकता है। किसी रोग में तो इन दोनों क्रियाओं को साथ करने की जरूरत होती है। इसके लिये टब में खड़े होकर हाथों को टेबुल या और किसी ऊंचे स्थान पर रखे हुए पानी से भरे बर्तन में रखना चाहिए।

घुटनों तक पैरों पर पानी डालने की तो बहुत लोगों की आदत है विशेषतः देहात में रहने वालों को और यह शरीर को दृढ़ बनाने की उत्तम विधि भी है। बहुत ठंडी जगह के रहने वालों को तो इसे नित्य न करके हर तीसरे-चौथे करना चाहिए। जिनके पैर घुटनों तक ठंडे रहते हैं उनके लिए तो यह बहुत ही लाभदायक हैं। इस क्रिया का मुख्य उद्देश्य है खाली धमनियों में रक्त भरना और ऊर्ध्व भाग की ओर के व्यर्थ जमे रक्त को नीचे की ओर खींचना।

शरीर को दृढ़ बनाने की ये क्रियाएं करनी तो बराबर चाहिए लेकिन जाड़ों में इनका समय कम कर देना चाहिए। रक्ताभाव और स्नायु दौर्बल्य से पीड़ित रोगियों के लिए

(शेष पृष्ट ५० पर)

स्नान से लाभ और उसके प्रकार

श्री महेन्द्रकुमार 'मानव', एम० ए०

बाथ रूम के दरवाजे पर थाप पड़ी। मैं भीतर था। बाहर से मित्र के शब्द स्पष्ट कान में नहीं पड़ रहे थे। शायद कह रहा था—"कितने घण्टे से नहा रहे हो। अब तो निकलो दूसरों की कुछ चिन्ता किया करो। मुझे तो नहाने में पांच मिनट भी नहीं लगते। तुम बाथरूम में न जाने क्या किया करते हो?" मैंने इतना तो अच्छी तरह समझ लिया कि खतरे की घण्टी बज गई। मैंने भीतर से उत्तर दिया—'बस दस मिनट और फिर आप शौक से नहाइये।' मित्र बाहर खड़े झुंझलाते रहे लेकिन स्नान पूरा किए बगैर कैसे निकल आऊं क्योंकि अर्द्ध स्नान अस्नान के बराबर है। प्रयाग के ५ वर्ष के छात्र जीवन में मेरे साथ यही बात रही। साथियों की शिकायत थी कि मुझको बाथरूम में बड़ी देर लगती है। बम्बई में तो इस शिकायत ने उग्र रूप धारण कर लिया है क्योंकि हमारे कमरे में आठ विद्यार्थी हैं और इस साम्यवाद के युग में पूंजीवादी तरीके उनको पसन्द नहीं। इसलिए सब ने मिलकर बाथ रूम के समय को भी विभक्त कर लिया है। भाग्य से आधा घण्टे का समय मेरे हिस्से में भी पड़ गया है।

भारत के प्राचीन ऋषियों ने स्नान की महत्ता को समझा था और इसीलिये उन्होंने स्नान पर इतना जोर दिया है। गंगा-स्नान की महिमा से तो मुक्ति तक मिलती है। भारत में लाखों ऐसे तीर्थ स्थान हैं जहां स्नानादि का विधान किया है। यह जरूर है कि इन सब क्रिया-काण्डों को धर्म की चादर उढ़ा दी गई है जिससे कि धर्म-भीरु जनता उन क्रियाओं को करना अपना कर्तव्य समझती रहे। प्रत्येक व्रतोद्यापन, पूजन विधान पर्व-यात्रादि में स्नान का पहले विधान किया गया है। आज उसी आर्य देश के लोग अरब की संस्कृति के संसर्ग से जुमा के जुमा नहाने लग गए हैं। स्नान का कोई महत्व ही नहीं रह गया। लोग तीर्थों में जाकर डुबकी मारने में स्वधर्म की संप्राप्ति समझने लगे चाहे उस डुबकी से उनका सिर तक न भीगे। घरों में स्त्रियों ने एक लोटा पानी डाल कर स्नान विधि को संपूर्ण करने का नया तरीका निकाला। व्यापारी लोगों को भी अपनी कार्य-व्यस्तता के कारण और दूसरी ओर धर्म के भूत के भय के कारण दो चक्कियों के बीच अपने को पीसना पड़ा और उनका स्नान भी स्त्रियों के स्नान से कोई अच्छी दशा में नहीं है। वाह री धर्म की विडम्बना! पता नहीं क्यों भारत में भविष्य को भुलाकर केवल भवत् की भावना का भूत सवार हो गया है। धनी से धनी आदमी भी एक खुली जगह के खुले मकान में कुछ अधिक खर्च करके रहना पसन्द नहीं करेगा वह शहर के बीच गन्दी गलियों की दूषित वायु को सेवन करना अधिक पसन्द करेगा। लेकिन ज़रा सी बीमारी हुई कि डाक्टर-वैद्यों को सर्वस्व दान करने के लिए तैयार हो जायगा। उस समय उसे रुपये पैसे का मोह नहीं सताएगा लेकिन मकान के किराए के सम्बन्ध में पूरी कंजूसी से काम लेगा। यही हाल स्नान का है। रोज नहाने में कुछ अधिक समय देना पसन्द नहीं करेगा लेकिन बीमार पड़ने पर साल के साल नष्ट करने में उसे दुःख नहीं होगा?

कुछ दिन पहले मैं मारवाड़ गया था। वहां देखा कि वह के स्त्री पुरुष २-२, ३-३ महीने स्नान नहीं करते। स्त्रियों के हाथों पर मैल की तह जमी रहती है और उन्हीं हाथों से वे घर का सब काम करती रहती हैं। माना कि वहां पानी की कमी है लेकिन लोगों को यह समझ लेना चाहिये कि जिस तरह पानी पीना जरूरी है उसी तरह पानी से स्नान करना भी जरूरी है।

पाठकों से व्यक्तिगत विवेचना के लिये क्षमा मांगते हुए मैं निम्न लिखित पंक्तियाँ लिखना चाहता हूँ।

मेरी तीन बार स्नान करने की आदत है। पहली बार तो जाकर सिर्फ सिर से लोटे ढालता हूँ फिर गीले शरीर में साबुन लगाता हूँ तत्पश्चात् शरीर को बिना मले ही दूसरी बार पानी डालकर साबुन को धो डालता हूँ। साबुन को धोने

के बाद मुख्य स्नान शुरू होता है। इस बार शरीर के अंगों पर थोड़ा थोड़ा पानी लगाकर उन उन अंगों को मलता हूँ और मैल की बातियां छूट कर गिरने लगती हैं और तीसरी बार, अन्तिम स्नान कर लेता हूँ तथा एक मोटे तौलिया से देह पोंछ लेता हूँ। अक्सर मैं नहाने के बाद शरीर धूप में ही सुखा लिया करता हूँ। बहुत से लोग साबुन लगा कर शरीर पर दो चार हाथ फेर कर नहा लेते हैं उससे न तो साबुन ही अच्छी तरह छूटता है और न मैल ही निकलती है। स्नान करने पर मुझे मालूम होने लगता है जैसे मैंने बहुत व्यायाम कर लिया है कोई कड़ा परिश्रम करके निकला हूँ। और मेरी राय में तो स्नान ही सर्वोत्तम व्यायाम है, अगर उसको उस दृष्टि से देखा जाय। स्नान के बाद तुरन्त ही क्षुधा सताने लगती है। इसका कारण शायद यह है कि ठण्डे पानी से स्नान करने से शरीर की बंटी हुई गर्मी भीतर एक जगह जमा हो जाती है और उदराग्नि के रूप में परिणत हो जाती है।

नहाने के बाद एक नई चेतना, एक नई स्फूर्ति का अनुभव होने लगता है। सब कामों में दिलचस्पी महसूस होने लगती है। ताजगी से बदन भर जाता है। जिस दिन नहीं नहाता हूँ उस दिन भोजन की ओर विशेष रुचि नहीं रहती। शरीर पर 'मुर्दनी सी छाई रहती है। तबियत भारी हो जाती है। सिर दुखने लगता है। उत्साह मारा जाता है। करीब करीब सभी का यही अनुभव है। हां, कुछ लोग न नहाने के ही आदी हो जाते हैं और मुर्दनी के बीच जीते जीते उनको उसके अस्तित्व का भी पता नहीं लगता।

स्नान के सम्बन्ध में मुझसे जो भूलें हुई हैं उनको भी पाठकों की सावधानी के लिए लिखे देता हूँ। जाड़े के दिन थे। मैं सुबह ५ बजे उठकर टट्टी दातुन से फरागत होकर एक पैरिया पर स्थित हनुमान जी के मन्दिर जाता। वहाँ पर कुछ व्यायाम करता और दौड़ते दौड़ते घर आकर कुंए पर स्नान करता। कुछ दिन तो यह क्रम चला लेकिन एक दिन ऐसी ठण्ड लगी कि महीनों पलंग पर पड़ा रहना पड़ा। इसलिए व्यायाम करने के बाद, भोजन करने के बाद और कुवेला में स्नान न करने का ध्यान रखना चाहिए।

दूसरे जब मैं प्रयाग में शुरू शुरू में आया था मेरा स्वास्थ्य अच्छा नहीं था और मैं कमजोर भी बहुत हो गया था लेकिन तब भी पौन घंटे तक नहाता रहता था। उतना पानी तो मैं ओढ़ नहीं पाता था परिणाम यह होता था कि नहाने के बाद तबियत मुरझाने लगती थी। दिन भर थकान महसूस होती रहती थी। पलंग पर पड़े रहने की तबियत होती थ किसी काम में जी नहीं लगता था। इसलिए अपनी शक्ति पर भी ध्यान रखना चाहिए। उसके बाहर काम करने से भी हानि होने की संभावना रहती है।

हमारे यहाँ रोगी को जल और वायु से बचाने की कोशिश की जाती है। कमरे की सब खिड़कियाँ बन्द कर दी जाती हैं जिससे न तो स्वच्छ वायु ही मिलती है और न प्रकाश ही आता है। परन्तु मेरे नगर में एक अमेरिकन डाक्टर हल थीं। उनको मैंने न्यूमोनिया के रोगियों तक को नहलाते देखा है। इसलिए स्वच्छता का सदैव ध्यान रखना चाहिए। यह बात समझ लेना चाहिए कि स्वच्छता और शृंगार में उतना ही अन्तर है जितना कि Necessity आवश्यकता और Luxury (विलासित) में। शरीर को स्वच्छ रखने में आधा घण्टा खर्च करने के माने यह नहीं होता कि हम वह समय शृंगार करने में खर्च कर रहे हैं। साधारणतः स्त्रियाँ शृंगार प्रिय होती हैं लेकिन मैंने ऐसी बहुत सी सीधी बहुओं को भी देखा है जो शरीर धोने में अगर १५ मिनट खर्च करें तो उनको सास की घुड़कियाँ सहनी पड़ती हैं। 'किसके लिए देह चमका रही है ? डायन !' जब हमारी जननियाँ ही अपने कर्तव्य को भूल गईं तो उनकी सन्तान को क्या दोष दिया जाय ?

आज भारतवासी अपने प्राचीन ऋषियों की शिक्षा को भूल गए हैं और बाद के वैराग्य के आन्दोलन के प्रभाव में आकर वे अपने शरीर के प्रति कर्तव्य को भी भूल गए हैं। मैं तो समझता हूँ कि आज उन धर्म-ग्रन्थों की जरूरत नहीं है जिनमें शरीर के प्रति उपेक्षा करना सिखाया गया है, जिनमें लिखा है शरीर को धोना भी नहीं चाहिए अघोरी बना रहना चाहिए। शरीर तो मल-गृह है, उसकी कभी परवाह नहीं करना चाहिए। यह योग नहीं है न वैराग्य, केवल ढोंग है। जिस साधु का शरीर स्वच्छ नहीं है उसका मन क्या निर्मल होगा ? मन शुद्ध रखने के लिए शरीर को शुद्ध रखना आवश्यक है। देह साफ तो दिल साफ वाले सिद्धान्त को मानने वाला हूँ मैं!

(शेष पृष्ठ ४८ पर)

ठंडे पानी की पट्टी की उपयोगिता

श्री हीरालाल (आरोग्य मन्दिर, गोरखपुर)

अज्ञानवश हम लोग बहुत सी उपयोगी चीजों से दूर रहते हैं यद्यपि उनको करने पर वे बहुत ही उपयोगी तथा आवश्यक सिद्ध होती हैं।

हमारे देश में प्रतिवर्ष दवा, लोशन, मरहम, टिकिया आदि पर हजारों रुपया खर्च होता है लेकिन स्वास्थ्य की दृष्टि से उनका तनिक भी महत्व नहीं है। हमारे लिए सबसे सीधा बिना पैसे का और उत्तम उपचार है 'पानी'; जिसे हम पश्चिमी सभ्यता के चक्कर में पड़कर छोड़े हुए हैं। पानी से भीतरी बाहरी दोनों प्रकार की सफाई होती है।

अपने घाव को साफ रखने और मिटाने के लिए जंगली जानवर जल में स्नान करते हैं। घायल हिरन बहते हुए झरनों में राहत पाने के लिए घंटों खड़ा रहता है। इसी प्रकार मनुष्य के भी बड़े बड़े भयंकर घाव और अन्य रोग नष्ट हो सकते हैं। लेकिन जल की महिमा न जानने के कारण उसे इस पर विश्वास ही नहीं होता। वह सोचता है कि जल जैसी मामूली, बिना कौड़ी की चीज कीमती दवाओं के मुकाबिले में क्या काम करेगी?

अमेरिका के एक बहुत बड़े प्राकृतिक चिकित्सक का कहना है—

सब रोगों की कोई भी एक रामबाण दवा नहीं हो सकती, पर यदि कोई उपाय सभी रोगों में लाभ कर सकता है तो वह है जल का उचित प्रयोग। सचमुच यदि उचित रीति से ठंडे पानी का प्रयोग किया जाय तो इससे बढ़कर कोई दूसरा उपचार नहीं है।

पानी की उपचार-शक्ति बहुत ही तीव्र, उपयोगी और अद्भुत है जिसका वर्तमान समय में, जब दवा मुश्किल से मिलती है, उपयोग खूब होना चाहिए। प्राकृतिक चिकित्सा का इतिहास बताता है कि इस चिकित्सा के प्रवर्तक वही लोग हुए हैं जो अन्य सब चिकित्सा प्रणालियों से निराश होकर प्रकृति की शरण में आये। उन्होंने अपना स्वास्थ्य सुधारने के साथ साथ इस चिकित्सा के विशेषज्ञ होकर जीवन से निराश हजारों व्यक्तियों को लाभ पहुँचाया। इसी संजीवनी प्राकृतिक चिकित्सा का एक दृढ़ आधार पानी है।

जल चिकित्सा का ही एक बहुत ही उपयोगी अंग ठंडी पट्टी भी है। वास्तव में ठंडी पट्टी का प्रयोग पूरे शरीर तथा प्रत्येक अंग पर अलग-अलग आवश्यकता नुसार किया जा सकता है। ठंडी पट्टी की विधि यह है कि कोई कपड़ा ठंडे पानी से भिगो कर निचोड़ दीजिये, और जिस स्थान पर रखना हो वहां रख कर किसी अनी कपड़े को उस पर तीन चार बार लपेट दीजिए।

बहुत सोच समझकर इसका प्रयोग करने से यह बहुत ही उपयोगी सिद्ध होना है लेकिन लापर याही अथवा बिना सोचे समझे प्रयौग करने से लाभ के बदले हानि होने की सम्भावना भी रहती है।

पट्टी के प्रयोग से रक्त-शिरायें संकुचित होती हैं और थोड़े समय के लिए खून अन्दर की ओर चला जाता है। किंतु ज्यों ही शीतल जलका स्पर्श त्वचा से होता है तुरन्त स्नायु मस्तिष्क को टेलीफोन करती हैं, शरीर पर शीतल वार हुआ है। मस्तिष्क तुरन्त उस स्थान पर खून की धारा में जाता है। सम्भव है, संकुचित शिराओं को ठेल कर रक्त शीघ्रता से वहां प्रवेश नहीं कर पाता किन्तु धीरे धीरे रक्त फैलकर सारी शिराओं को नये खून से भर देता उस समय संकुचित शिरायें पहले की अपेक्षा अधिक फैल जाती है। नीले रक्त हीन चमड़े पर गुलाबी आभा झलकने लगती है, ठंडा चमड़ा उत्पन्न हो औंता है और रोम कूप खुल जाते हैं। यह प्रभाव काफी समय तक रहता है। उपचार शुरू करने के पहले यह जान लेना परमावश्यक है कि रोग ग्रस्त स्थान पर शुद्ध रक्त की कमी है अथवा नहीं। और साथ ही इस ओर ध्यान देना चाहिये कि उस स्थान का सीधा सबंध किता विशेष स्थान से है; जैसे पेशाव की शिकायत होने से गुर्दे, पाखाने से पेट, और श्वास खराबी आने से फेफड़े में दोष मालूम होता है।

कमर की पट्टी ऊपर बतायी हुई विधि से कमर के चारों ओर नौ इंच की चौड़ाई में लपेट कर ऊपर से तीन-चार पर्त ऊनी कपड़े लपेट देना चाहिए ताकि सांस लेते समय गिरने की संभावना रहे। सोते समय यह पट्टी लेनी चाहिए और रात भर रहने देनी चाहिए। एक बार इस्तेमाल की हुई पट्टी को खूब साफ करके ही पुनः इस्तेमाल करना चाहिए। इस पट्टी से पाचन-क्रिया के ठीक होने में बहुत ही मदद मिलती है। इस गुण के कारण इस पट्टी का बहुत ही महत्व है क्योंकि आजकल अधिकांश लोगों को पाचन सम्बन्धी शिकायत रहती है। पाचन-क्रिया के खराब होने के कारण ही भोजन का रस और रक्त ठीक नहीं बन पाता और मनुष्य सूखता चला जाता है जिससे अंत में तपेदिक से भयंकर रोगों का शिकार होना पड़ता है। अतः अपच से होने वाले रोगों से बचने के लिए यह बहुत ही आवश्यक है। तबियत ढीली होने पर कमर से पट्टी लेना नहीं भूलना चाहिए। रोगी को जब तक इस पट्टी के लगाने से जाड़ा न मालूम हो तब तक किसी प्रकार की हानि की संभावना नहीं है। पहली रात के प्रयोग से ही इतना लाभ जरूर होग कि सबेरे पेट खूब साफ़ होगा।

इसी प्रकार फेफड़े, हृदय की खराबी मालूम होने पर सीना-पट्टी, गले में खराबी गले की पट्टी और स्नायविक दुर्बलता होने पर शरीर अथवा रीढ़ की पट्टी लेनी चाहिए।

कब्ज, सर्दी, इनफ्लुएंजा, जलन, अनिद्रा; ज्वर, दमा हैजा आदि में यह बिजली की तरह लाभ करती है।

हृदय रोग, कैंसर, मधुमेह ऐसे भयानक रोगों में पट्टी किसी अनुभवी चिकित्सक की देख-रेख में ही लेनी चाहिए।

जिस स्थान पर पट्टी दी जाती है वहां अन्य स्थानों की अपेक्षा रक्त संचार में तीव्रता आ जाती है। उदाहरणार्थ गुर्दे में खराबी आने पर उस स्थान पर पट्टी देने से वहां रक्त संचार में तेजी आ जायगी और गुर्दे की बीमारी दूर हो जायगी।

कुछ ही दिन पहले की बात है। एक सज्जन को दिन भर में सैकड़ों दस्त हुए। कै और मिचली भी साथ थी तथा पेशाब बिल्कुल बंद था ७-८ बार पेट पर ठंडी पट्टी देते ही सारी शिकायत दूर हो गयी और वे दो दिन में ही बिल्कुल चंगे हो गये। डाक्टरों ने तो 'कालरा' कहकर उनके घरवालों को बड़ी ही परेशानी में डाल रखा था।

यकृत, प्लीहा, और पाचन-क्रिया में इसी के द्वारा अपने कार्य संपादन में बड़ी मदद मिलती है।

आशा है पाठक इस उपयोगी एवं हर समय और हर जगह मिलने वाली पट्टी से अवश्य ही लाभ उठायेंगे।

(पृष्ट ४६ से आगे)

आज संक्रान्ति है, लाखों नरनारी आज गंगा में डुबकी लगाने जाते हैं लेकिन वे यह नहीं जानते कि इस डुबकी लगाने का क्या रहस्य है ? क्यों आज के दिन स्नान करने को इतना महत्व दिया गया है। आज से सूर्यदेव दक्षिण पथ को छोड़कर उत्तर पथ की ओर मुड़ने लगते हैं। संसार का शीत-मृत ग्रीष्मामृत में परिणत होने लगता है। एक प्रकार से लोगों को निर्भय होकर नहाने की छूट दी जाती है।

घर में नहाने की अपेक्षा किसी बहती नदी, स्वच्छ सरोवर, कुदरती झरने या उफनाते समुद्र में नहाने का अगर योग मिले तो अधिक अच्छा है। दुर्भाग्यवश बहुत से भारतवासी समुद्र-स्नान से वंचित रहते हैं और जो उसके किनारे रहते हैं वे भी उस प्राकृतिक दे उसे लाभ नहीं उठाते। समुद्र, नदी, तालाब में तैरने से भी स्वास्थ्य पर बहुत अच्छा असर पड़ता है और नियम से तैरने वाले बहुत कम बीमार होते देखे गये हैं। आध घण्टे, पौन घण्टे पानी के अन्दर खड़े रहने से भी शरीर की बहुत-सी व्याधियाँ दूर हो जाती हैं। भारत में किसी समय जल-क्रीड़ा बहुत प्रचलित थी लेकिन आज वह प्रथा उठ सी गई है। समुद्र में नहाने से तो खास कर कोई चर्म-रोग होने ही नहीं पाते। खुजली, दाद, आदि चर्मरोगों की समुद्र स्नान तो अचूक दवा है।,

प्राकृतिक स्नान या टब के स्नान के विषय में अक्तूबर ४५ के 'जीवन सखा' में एडोल्फ जुस्ट का लेख प्रकाशित हुआ है लोगों को उसे देखना चाहिए।

धूप-स्नान भी स्वास्थ्य के लिए विशेष गुणकारी है। सौभाग्यवश भारत में धूप स्नान है भी बहुत सुलभ। एक कम्बल ओढ़ कर धूप में लेट रहिए। पसीने को भीतर पोंछते रहिए। उसके बाद एक बन्द कमरे में जाकर अच्छी तरह शीतल जल से स्नान कर लीजिए। हवा का बचाव करना चाहिए।

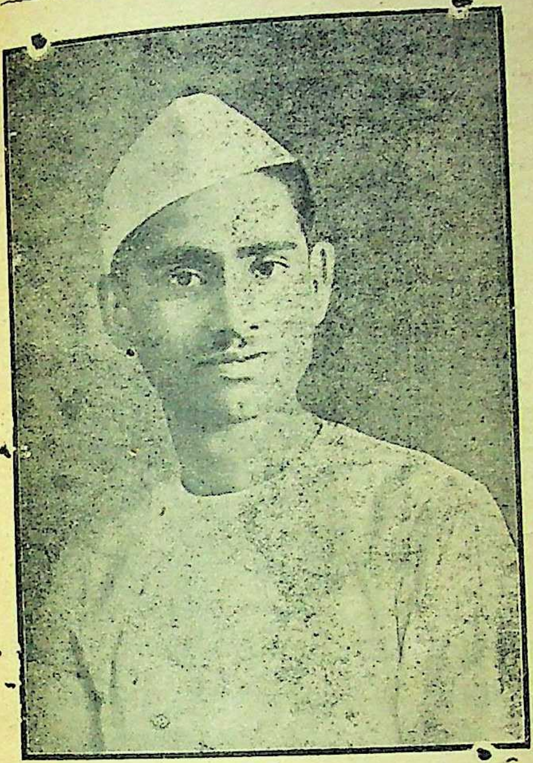

अन्दरूनी सफाई

श्री विश्वम्भरनाथ द्विवेदी, एन० डी०, डी० वाई०

[शारीरिक स्वास्थ्य, आन्तरिक एवं वाह्य स्वच्छता के लिए बताई गई विधियों में, यौगिक क्रियाओं का महत्व बहुत अधिक है। कुछ यौगिक क्रियाएं तो ऐसी हैं जिनका स्थान कोई भी प्रचलित आधुनिक विधि ग्रहण नहीं कर सकती। अभ्यासी लेखक ने इस लेख में कतिपय एनिमा के अलावा यौगिक क्रियाओं का, जो अन्दरूनी सफाई के लिए विशेष महत्व पूर्ण हैं, बड़ी सरल भाषा में सुन्दर ढंग से वर्णन किया है। लेख बहुत उपयोगी है। —सं०]

अन्दरूनी सफाई से मेरा मतलब है शरीर के भीतरी अंगों की सफाई। वाह्य सफाई के तो अन्यायान्य साधन हैं, लोग प्रायः इसी ओर विशेष ध्यान भी दिया करते हैं। किंतु वे यह नहीं जानते कि बाहरी सफाई बिना अन्दरूनी सफाई के बेकार सी चीज है। भीतरी कल पुर्जे साफ रहने से बाहरी अंग भी साफ रहता है और शरीर निरोग एवं सौंदर्यमय बना रहता है।

अन्दरूनी सफाई के लिए बाजारों में डाक्टरों के पास अनेक प्रकार की दवाइयाँ रहती हैं। लोग इनका प्रयोग करते हैं। क्षणिक आराम भी पाते हैं परन्तु स्थाई लाभ और सुख से कोसों दूर हो जाते हैं। इन गरम जुलाब वाली गोलियों, उत्तेजक दवाइयों से उनके शरीर के भीतरी अंग ढीले एवं कमजोर हो जाते हैं। फिर वे जिन्दगी भर एक डाक्टर से दूसरे डाक्टर के पास, एक वैद्य के पास से दूसरे वैद्य के पास भटकते रहते हैं। अन्त में अपने भाग्य को दोषी ठहराते हुए मन मार कर बैठ रहते हैं, किं कर्तव्य विमूढ़ और जीवन से निराश हो जाते हैं। कभी कभी तो आत्म घात करते हुए भी सुना जाता है।

मसल मशहूर है कि 'अपने हाथ अपने अंग फोड़े, दोषी ठहराए भवानी को'। यह कितनी युक्ति संगत बात है। हम अपने कर्मों पर तो ध्यान नहीं देते कि हमने अपने शरीर के साथ क्या नाजायज हरकत की। इसका परिणाम क्या होगा, इसकी ओर तनिक भी आंख उठाकर देखना पसन्द नहीं किया। मनुष्य कुछ खोकर ही सीखता है। जहाँ कर्म की प्रधानता है वहां प्रायश्चित की भी प्रधानता है। बुरे कर्मों का भी प्रतिकार है, ऐसा शास्त्र बताता है। उन जीवन से निराश व्यक्तियों के लिए जीवन सुखमय और उनका संसार सुनहला संसार बनाने की क्रिया एवं प्रतिकार भी है, अगर वे संलग्न होकर वैसा करें। सच्चा प्रायश्चित ही उनके अच्छे स्वास्थ्य का द्योतक है। आगे मैं यह बताने जा रहा हूँ कि ऐसे लोगों का प्रायश्चित क्या है?

शरीर का निर्माण तथा पोषण करने में जिन पंच भौतिक तत्वों की जरूरत पड़ती है उनमें एक जल भी है। जल अपना एक खास स्थान रखता है। दुनिया की कोई भी जानदार चीज पानी से परे नहीं। सभी में सैकड़ा पीछे कुछ

अंश इसका रहता है। जब इसकी महानता इस प्रकार सिद्ध हो चुकी तब क्या कारण है कि अपने शरीर को शुद्ध करने में उसका कुछ भी हाथ न हो। जब हम जल से बाह्य सफाई की विविध कमियों को पूरी करते हैं और उसमें सफल भी होते हैं, तो क्या कारण है कि भीतरी सफाई में वह सहायक न हो ? उचित ढंग से काम लेने से जब बेजान मशीन आश्चर्यजनक काम कर जाती है, तब अगर पानी को शरीर के भीतरी भाग में उचित ढंग से काम लें तो क्या वह अपना काम करने से मुकर जायगा ? मैं यहाँ यह बताऊंगा कि जल शरीर के भीतरा अंगों की सफाई किन तरीकों से कर सकता है। इन विधियों को कार्य रूप में परिणित करने से हर कोई सुखमय जीवन व्यतीत करेगा और निराश जीवन सारमय बन जायगा, इसमें शक नहीं।

एनिमा

एनिमा की उपयोगिता और यन्त्र—एनिमा के यंत्र कई प्रकार के हैं और इनसे कई ढंगो से आँत में पानी चढ़ाया जा सकता है। इस तरह पानी चढ़ाकर आँत को धोना आंत की, पेट की, सफाई का सर्वोत्तम साधन है। इसके दो तीन फ़ायदे हैं। (अ) बिना किसी प्रकार की उत्तेजना और जलन के आंत की सफाई हो जाती है। (ब) जल के प्रयोग से स्नायु-शक्ति बढ़ती है, जिससे उसकी काम करने की शक्ति भी बढ़ती है। चिकित्सक यह अच्छी तरह जानते हैं कि पानी के प्रयोग से स्नायु-शक्ति भी बढ़ती है। इसी कारण वह अपनी चिकित्सा में जल के प्रयोग को महत्वपूर्ण बताते हैं।

एनिमा के यंत्र सवा रुपये से लेकर दो हजार रुपये तक में मिलते हैं। पर मेरा विचार है कि सर्व साधारण के लिये सवा या डेढ़ रुपये वाला यंत्र, जो दीवाल से कील के सहारे लटका दिया जाता है (इसका दाम अब छः रुपए और दस रुपए तक हो गया है)। इसमें रबड़ की एक नली लगी रहती है। उसके भाग में टोंटीदार नेजुल लगा रहता है। इसी नेजुल को गुदा-मार्ग में रखकर पानी चढ़ाया जाता है। यह अत्यन्त सरल और लाभदायक है। दूसरा यंत्र ऐसा भी होता है, जिसमें बर्तन नहीं होता। वह रबर की एक नली भर रहती है। जिसके बीच में एक पोली (खोखली) गेंद सी रहती है। इस नली के एक सिरे को गुदा-मार्ग में रखते हैं और दूसरे सिरे को लोटे में। गेंद को बार-बार दबाने से पानी ऊपर चढ़ता है। पहला यंत्र ज्यादा अच्छा है।

एक ही यंत्र सभी लोगों के काम का हो सकता है। उसी यंत्र से छः महीने के बच्चे से लेकर १०० साल के वयोवृद्ध मनुष्य तक को एनिमा दिया जा सकता है। कुछ लोगों की धारणा है कि एनिमा के प्रयोग से आदत पड़ जाती है फिर बिना एनिमा के पाखाना होता ही नहीं। बात किन्हीं अंशों तक ठीक भी है। ज्यादा पानी प्रतिदिन चढ़ाने

(४४ पृष्ठ से आगे)

अच्छा तो यह होगा कि वे इस प्रयोग को जाड़े में शुरू न करके गर्मियों में इस क्रिया को शुरू करें। उनके जाड़े में इस क्रिया को शुरू करने से हानि की संभावना है। ये क्रियायें यों तो सभी उम्र के स्त्री पुरुष दोनों के लिए उपयोगी हैं लेकिन बच्चों के लिए विशेष लाभदायक है।

पैरों का ठंडा रहना, लाल बुखार, मोतीझरा और हाफा डाफा—सरीखे भयंकर रोग इन क्रियाओं से शीघ्र अच्छे होते हैं। अतः रोगी और निरोग सभी के लिये ये क्रिया उपयोगी हैं और शरीर को दृढ़ बनाने के लिए इन सब में से एक या दो विधियां नित्य नियमित रूप से करनी चाहिए। बहुत थोड़े समय तक करते ही आपको इसके लाभ का पता चल जायगा।

× × ×

इन आश्चर्यजनक क्रियाओं का आविष्कारक बवेरिया का साधु अपनी अल्प अवस्था में ही अनजान में मूत्राशय पर फोड़ा हो जाने के कारण ७ जून १८९७ को हजारों स्त्री पुरुषों को शोकातुर कर चल बसा जिन्हें इनसे जीवन-दान मिला था।

कितनी ही जगह आज भी नीप-जल-चिकित्सा मंदिर स्थापित हैं। लेकिन नीप के कथनानुसार सब के सब उनका नाम तो बर्तते हैं लेकिन आगे चला सकने की किसी में योग्यता नहीं है।

से आंतें ढीली पड़ जाती है परन्तु यदि पाव भर या आधा सेर पानी प्रतिदिन चढ़ावे तो ऐसी धारणा निर्मूल हो जाती है। पाव भर या आधा सेर पानी से जब एनिमा लिया जाता है तब ऐसे एनिमा को 'टानिक एनिमा' कहते हैं। इससे शक्ति शरीर के अन्दर आती है और आदत नहीं पड़ती।

पानी का अन्दाज

पानी का परिमाण अलबत्ता अलग होगा। छः महीने के बच्चे के पेट में दो छटांक से पाव भर तक पानी चढ़ा सकते हैं। एक वर्ष से लेकर ६ वर्ष तक के बच्चे के पेट में पाव भर से लेकर आधा सेर तक पानी चढ़ाते हैं। छः वर्ष से लेकर १२ वर्ष तक के बच्चे को आधा सेर से लेकर १ सेर तक पानी चढ़ाते हैं। उससे बड़े अर्थात् १२ वर्ष से लेकर ज्यादा उम्र वालों को १ सेर से लेकर २ सेर तक पानी चढ़ा सकते हैं। २५-३० वर्ष वालों के पेट में ढाई सेर तक पानी चढ़ाया जा सकता है। पानी की मात्रा धीरे-धीरे बढ़ानी चाहिए।

एनिमा के पानी में क्या मिलाया जाय ?

कुछ डाक्टर एनिमा के पानी में रेड़ी का तेल, साबुन की झाग, ग्लीसरीन इत्यादि डालते हैं। उनका यह कहना है कि इन चीजों के मिलाने से आंत बहुत अच्छी तरह साफ हो जाती है। लेकिन इस पर विचार कर देखिए—सिर्फ साबुन मिलाने की ही बात को लीजिए। यह प्रतिदिन का अनुभव है कि बदन में लगा हुआ साबुन आप ही आप नहीं छूटता। उसे कई बार पानी से धोने की जरूरत पड़ती है। यह आसानी से समझा जा सकता है कि आंत में लगा हुआ साबुन एक ही बार में क्योंकर साफ हो जायगा। दूसरे पदार्थ भी आंत में अनावश्यक उत्तेजना पैदा करते हैं। इस उत्तेजना से धीरे-धीरे आंतें कमजोर हो जाती हैं।

एनिमा का प्रयोग

एनिमा के लिए जितना भी पानी तैयार करना है उसको जरा गरम कर लें। शरीर के ताप के बराबर गर्मी होना आवश्यक है।

एनिमा के बर्तन को अच्छी तरह साफ करें और रबर की नली इत्यादि को भी अच्छी तरह गरम पानी से साफ कर लें। तैयार जल को एनिमा के बर्तन में डाल दें। बहुत अच्छा हो अगर एक नींबू का रस निचोड़ कर एनिमा के पानी में कपड़े के सहारे छान लिया जाये। अब एनिमा के बर्तन को जिस जगह या तख्त पर लेट कर एनिमा लेना है, उससे चार फुट की ऊंचाई पर दीवार से कील के द्वारा लटका दें। बेंच या तख्त के नीचे पैताने की ओर दो दो ईंट लगा सकते हैं। अब जिसको एनिमा देना हो उसको इसी बेंच पर चित लिटा दें। कहने की जरूरत नहीं कि सिर कुछ नीचा होगा और पैर की ओर ऊंचा। पैरों को मोड़ रखना चाहिए। अब रबर की नली के अग्र-भाग को खोल दें जिससे कुछ पानी निकल जाने से अन्दर की हवा निकल जाय। फिर उसको बन्द कर उसमें थोड़ा वेसलीन या घी मलकर गुदा-मार्ग के अन्दर लगभग दो इंच तक प्रवेश करा दें और पानी को आंतों में चढ़ने दें। कभी कभी तो पानी बड़ी आसानी से आंत में चढ़ जाता है पर कभी-कभी कुछ कठिनाई भी होती है। कभी जरा सा पानी चढ़ने के बाद पेट में दर्द शुरू हो जाता है और ऐसा मालूम होता है कि अब पानी नहीं रोका जा सकेगा। इस हालत में नली के अग्रभाग को थोड़ी देर के लिए बन्द कर देना चाहिए जिससे पानी चढ़ना बन्द हो जाय, कुछ ही देर में पेट का दर्द बन्द हो जायगा। दर्द बन्द होने पर फिर पानी को आंत में चढ़ने देना चाहिए। इसी तरह धीरे धीरे जितना पानी चढ़ाना हो आंत में चढ़ने दीजिए। पानी को आंत में इसी अवस्था में कुछ देर तक रोक रखना चाहिए। अब पेट की हल्की मालिश करें। इसके बाद टट्टी जाना चाहिए। पहले पानी रोकना कठिन होगा। अभ्यास से १०-१५ मिनट तक पानी रोका जा सकता है। पानी रोक रखने से मल फूल कर बाहर निकल आता है और एनिमा की आदत भी नहीं पड़ती है। पानी चढ़ाने के बाद तुरन्त ही पाखाने जाने से मल बिलकुल ही नहीं निकलता और एनिमा की आदत पड़ने की संभावना रहती है। पर आदत तभी पड़ सकती है जब कि तीन चार महीने लगातार एनिमा लिया जाय। बताई गई विधि के अनुसार एनिमा लेने से पेट की सफाई अच्छी तरह हो जायगी

और आदत भी नहीं पड़ेगी। यदि बेंच या तख्त न हो तो जमीन पर दरी, कम्बल या चटाई बिछाकर मरीज को उसी पर चित लिटाकर उसकी कमर के नीचे तकिया रख सकते हैं, जिससे उसका सिर कुछ नीचा हो जाय।

एनिमा स्वयं भी लिया जा सकता है। यदि किसी कारण चित न लेटा जा सके तो दाहिनी करवट लेट कर भी एनिमा ले सकते हैं। पर चित लेटना और सिर को कुछ नीचा करना ज्यादा अच्छा है।

एनिमा के प्रयोग के बारे में हिदायतें

(१) एनिमा वैसे हर रोज नहीं लेना चाहिए, पर उपवास में या केवल फलों के रस पी कर या फल खा कर रहने के दिनों में हर रोज एनिमा लेना चाहिए। पूरे उपवास में तीन चार दिनों तक दोनों वक्त एनिमा लेना चाहिए।

(२) जिसकी आंत में बहुत दिनों के विकार सूखकर चिमट गए हैं, उसे पहले दो तीन दिनों तक एनिमा लेने से मल नहीं निकलता। ऐसी हालत में एनिमा लेना बन्द नहीं करना चाहिए।

(३) तीव्र (Acute) रोगों में उपवास के साथ एनिमा का प्रयोग जरूरी है। एक ही दो दिन के उपवास और एनिमा के प्रयोग से ९० प्रतिशत से ज्यादा रोग दूर हो जाते हैं।

(४) पुराने (chronic) रोगों में तीन चार सप्ताह के फलाहार-शाकाहार और बीच-बीच के दो तीन दिन के उपवास के साथ साथ एनिमा के नियमित प्रयोग से ७५ प्रतिशत पुराने रोग आसानी से जाते रहेंगे।

(५) एनिमा लेने के आध घन्टे तक लेट कर आराम करना चाहिए।

(६) एनिमा लेने के बाद भरसक एक घंटे तक कुछ खाना नहीं चाहिए।

(७) साधारणतः तन्दुरुस्ती को बनाए रखने या उन्नत करने के लिए प्रति वर्ष या छः माह बाद तीन दिन का उपवास और एनिमा का प्रयोग बहुत लाभदायक है। इन दिनों के बाद चार पांच दिन तक केवल फल और पत्तीदार भाजियों को खाकर रहना बहुत अच्छा होगा। ऐसा करने वाले बहुत दिनों तक सुखी रहकर जीवन-व्यतीत करेंगे।

बस्तिकर्म

पश्चिमी शिक्षा के मतानुयायी अथवा शिक्षा-व्यसनी डाक्टर लोग भी 'बस्तिकर्म' को मानते हैं। परन्तु वे लोग बस्तिकर्म को 'एनिमा' या डूश से सम्बोधित करते हैं। उस पच्छिमी पद्धति से बस्तिकर्म के लिए रबर, ट्यूब, काँच का या लोहे का बर्तन तथा टोटी आदि अनेक साधनों की जरूरत पड़ती है। परन्तु हमारे आर्य ऋषि मुनियों ने हजारों वर्षों से पहले सिद्ध किया हुआ 'बस्ति कर्म' थोड़े से साधन, किंचित् परिश्रम और बिना मूल्य से किया जाता है।

बस्ति कर्म के लिए पूर्व तैयारी

बस्ति कर्म के लिये नौलि-कर्म सिद्ध होना चाहिए। छः अंगुल लम्बी बांस की अथवा लकड़ी की नली चाहिए, (कहने का मतलब यह कि पतली अंगुली उस छेद में आसानी से आ-जा सके) गाय का घी अथवा तेल, तालाब या बर्तन में ठंडा पानी या साधारण गरम जल। नदी का तट विशेष उपयोगी होगा।

बस्ति कर्म का आरम्भ

बस्ति कर्म दो प्रकार से किया जाता है। तीन या चार दिन पवन बस्ति करने के पश्चात् जल बस्ति कर्म किया जाता है। प्रथम खड़े होने दोनों घुटनों पर दोनों हाथों का पंजा रक्खे और 'वाम नौलि' तथा 'दक्षिण नौलि' को घुमावे। तत्पश्चात् मध्यम नौलि को घुमावे। इस प्रकार १ मिनट तक नौलि करने के पश्चात् बाँस की नली के दो अंगुल स्थान पर गाय का घी या तेल लगाकर गुदा में दो अंगुल नली को प्रवेश करे और मध्यम नौलि को ऊपर नीचे तथा चारो ओर घुमावे। नौलि ऊपर नीचे ले जाने के समय में जो पवन उदर में आवे तो चारों ओर घुमाने की जरूरत नहीं। मध्यम नौलि जब उदर के मध्य में ठीक प्रकार से दिखाई देवे, तब पवन उदर में प्रवेश करेगा और जब नौलि को नीचे की ओर और वाम नौलि न उठावे तब पवन उदर से बाहर निकल जायगा। इस कर्म को पवन बस्ति कर्म कहते हैं।

पवन बस्ति सिद्ध होने का प्रमाण

मेद शरीर तथा वायु शरीर वाले को, पित्त प्रधान

शरीर वाले से अधिक समय लगता है। अर्थात् पित्त प्रधान शरीर वाले को तीन चार दिन में सिद्ध हो तो वायु तथा कफ प्रधान प्रधान शरीर वाले को छः से आठ दिन लग सकते हैं। प्रतिदिन प्रातः काल टट्टी (मल-विसर्जन) होने के बाद दो से तीन मिनट पर्यन्त पवन बस्ति करें। जब पवन नलिका द्वारा प्रवेश करते समय तथा बाहर निकलते समय 'सी सोटी' के समान शब्द होने लगे तब समझना चाहिए कि पवन बस्ति कर्म सिद्ध हो गया।

जल बस्ति कर्म

पवन बस्ति कर्म सिद्ध होने के अनन्तर तालाब या नदी में जाकर कमर तक पानी में खड़े होकर नौलि को एक मिनट तक घुमाने के पश्चात् घी या तेल लगाई हुई नलिका के दो अंगुल भाग को गुदा में प्रवेश कर मध्यम नौलि को ऊपर की ओर फिर नीचे की ओर ले जाना तथा ले आना चाहिए। जब नौलि ऊपर नीचे आवेगी तब पानी पेट में आ जायगा और नौलि नीचे की तरफ जायगी और उदर से गुदा-द्वार से मल बाहर निकल जायगा। जिनको पानी उदर में थोड़ी देर रखना है उन्हें चाहिए कि वे पानी उदर में प्रवेश करते ही नलिका को बाहर निकाल दें। नलिका निकालने के पश्चात् दो या तीन मिनट नौलि कर्म कर पानी को निकाल देना चाहिए। नदी, तालाब आदि साधन न हों तो किसी ऊंचे बर्तन को रखकर बस्ति कर्म करना चाहिये। स्थान इतना ऊंचा हो कि खड़े होकर बस्ति कर्म करने पर नितम्ब जल की सतह से स्पर्श करता हुआ रहे।

नौलि कर्म के समय जब पानी पेट में चला जाय तब जल बस्ति कर्म सिद्ध हुआ समझें। पेट में जल के पहुँचते ही नलिका को गुदा द्वार से बाहर निकाल देना चाहिए। नहीं तो बारम्बर जल उदर में प्रवेश करता रहेगा और बाहर निकलता रहेगा। ऐसा होने से जिस शिकायत को दूर करने के लिए बस्ति कर्म शुरू किया है इसके करने पर भी वह शिकायत दूर न हो सकेगी। बस्ति कर्म सिद्ध होने के पश्चात् प्रातः काल दो से तीन बार पानी उदर में से कख कख कर निकालना चाहिए। मल विर्सजन की इच्छा हो तो पहले मल त्याग करें फिर बस्ति कर्म करें।

धात्विन्द्रियातः करण प्रसादे
दधाच्च कान्ति दहनं प्रदीप्तिम्
अशेषदोषोपचयं निहन्या
दभ्यस्यमाने जलबस्ति कर्म ॥

सप्त धातुओं, पंच कर्मेन्द्रियों मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार प्रसन्न विशुद्ध बनता है। जठराग्नि अत्यन्त उद्दीप्त होती है। मुख पर सात्विक कान्ति छा जाती है। त्रिधातु की अत्यन्त वृद्धि तथा न्यूनता दोनों को नष्ट करके साम्य रूप में कर देता है।

कास, संग्रहणी, श्वास रोग, गर्भवती स्त्री, भगन्दर, सन्निपात, गुदा में शोथ, आन्त्र व्रण आदि रोग वाले को बस्ति कर्म नहीं करना चाहिए।

बारह वर्ष से सौ बरस तक की आयु वाले आवाल बृद्ध स्त्री पुरुष कर सकते हैं, परन्तु उपरोक्त बीमारी वालों को सिर्फ मनाही है।

जल धौति कर्म

योग एक विशुद्ध रहस्यमय शास्त्र है जिसका आधार केवल निजी अनुभव व विज्ञान है। अष्टांग योग द्वारा सशक्त शरीर, पवित्र मन तथा आत्म-दर्शन आसानी से प्राप्त होने की बात प्राचीन काल से लोग मानते चले आ रहे हैं। तर्क तथा अभ्यास दोनों के बल पर योगाभ्यास के लाभ प्रत्यक्ष उठा सकते हैं। वर्तमान समय में नियमपूर्वक सप्रेम शास्त्रीय विधि के अनुशीलन से लाभ उठाया जा सकता है।

यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारण और समाधि, ये अष्टांग योग के आठ हिस्से हैं। आसन यम व नियम से शरीर संशोधन की दृष्टि से षट् कर्म किए जाते हैं जिनमें पहला स्थान धौति कर्म और नेति कर्म का है। यह जल और वस्त्र दोनों से ही किया जाता है। यहां पर हम दोनों की व्याख्या जल से ही करने की करेंगे।

पानी को स्वच्छ साफ बर्तन में रखकर, उसमें थोड़ा नमक मिलाकर आग पर गरम करने के लिए रख दीजिए। जब उसकी गरमाहट शरीर के ताप के बराबर हो जाय तब उसे छान कर अलग गिलास या लोटे में रख लें। यह तो जल तैयार हो गया। अब नीम के पेड़ के पास जाइए और पेड़ से नीम की पत्ती लगी एक टहनी तोड़ लाइए। फिर एक एक सीक में सिर्फ सिरे पर लगी दो पत्तियों को तोड़कर शेष पत्तियों को साफ कर दीजिए। इसी प्रकार चार-पांच

सीकें बनाकर रख लें। एक छोटा सा आसन बैठने के लिए हो तो उत्तम होगा।

तैयार किया हुआ योग जल, जो आपने रख छोड़ा है, पीना शुरू कीजिए। धीरे धीरे २ सेर या २।। सेर तक पी डालना चाहिए। पानी की मात्रा धीरे धीरे बढ़ाई जाय तो अच्छा ही होगा। अब आप सीकों को उठाइये और आगे की ओर झुक कर बैठ जाइए फिर सीकों को मुंह के अन्दर हलक या कण्ठ में डालिए और धीरे धीरे सहलाइये। ऐसा करने से कै मालूम होगी और पिया हुआ पानी पेट की गन्दगी के साथ बाहर आ जायगा। इसी क्रम से सब पानी पेट से बाहर निकाल देना चाहिए। हो सकता है, सीकें ठीक से काम न करें तो नाखून रहित अंगुली से सहारा ले सकते हैं। यदि इससे भी आप की समस्या हल न तो घबड़ाना नहीं चाहिए, पेट का पानी पचकर पेशाब और पाखाना के रूप में बाहर आ जायगा।

जल का पान इत्मिनान से और ठीक से करना चाहिए। इधर उधर के विचार अगर मस्तिष्क में चक्कर न लगाएं तो अच्छा। जिन सामानों का प्रयोग किया जाय वह स्वच्छ रहे तो ज्यादा अच्छा होगा। सीकों की फुरेहरी बनाने में ध्यान रहें कि उसमें किसी प्रकार की फैंच या कांटे वगैरह रहें वरना लाभ के बजाय हानि की सम्भावना अधिक रहेगी। यह मनुष्य को अपनी शक्ति के अनुसार ही करना चाहिए।

जल नेति कर्म

प्रातः काल दन्त धावन के पश्चात् जो स्वर चलता हो उसी नासिका रंध्र से किसी साफ बर्तन में रखे हुए योग जल को खींचें। पानी खींचते समय दूसरी नाक बंद कर लेनी चाहिए। इससे जल खींचने में कोई अड़चन न पड़ेगी। शायद कुछ दिनों तक सिर के पिछले भाग में गुदगुदाहट व सनसनाहट हो पर कुछ दिनों के अभ्यास से यह बात दूर हो जाती है। इसके बाद दूसरी नाक से पानी खींचना चाहिये। पर ध्यान रहे खींचा हुआ पानी पी नहीं लेना चाहिये बल्कि मुंह से निकाल देना चाहिए। ऐसा करने से लाभ अधिक होगा।

जल नेति से नेत्रों की जलन भाग जाती है। मस्तिष्क की अनावश्यक गर्मी दूर हो जाती है। प्यास की शिद्दत कम हो जाती है। दृष्टि शक्ति बढ़ती है। मस्तिष्क शुद्ध हो जाता है। जुकाम हमेशा बने रहने का अचूक इलाज है।

कपाल शोधनी चैव, दिव्य दृष्टि प्रदायिनी।
गत्रूर्ध्वगातरोगौघं, नेतिराशुनिहन्ति च ॥

नेत्र, मस्तिष्क को शुद्ध करती है, दिव्य दृष्टि देती है। कन्ध, भुजा और सिर के सन्धि के ऊपरी हिस्सों के रोगों को शीघ्र नष्ट करती है।

पाण्डु, कमल, अम्लपित, पित्त ज्वर, नासिका में विशेष दाह पित प्रकोप में उत्पन्न रोग समूह में नेति कर्म नहीं करना चाहिये।

शंख प्रक्षालन क्रिया

तैयारी में पहले योग जल शरीर-तापमान का करीब २।। सेर स्वच्छ बर्तन में रख लेना चाहिये। साथ में गिलास का रहना जरूरी होगा।

जितना पाना एक बार में पिया जा सके पी लेना चाहिये। फिर कसरत करना चाहिये ताकि वह पिया हुआ पानी पच जाय और शीघ्र ही गुदा-द्वार से बाहर हो जाय।

कसरत नं० १ :—सीधे खड़े होकर हाथों को ऊपर नीचे करना चाहिये। साथ ही पंजे भी उठाये जायेंगे। इसी क्रम से तीन चार बार करना चाहिये।

कसरत नं० २ :—सीधे खड़े हो जाइये। फिर घुटनों को आगे की ओर मोड़ कर थोड़ा झुक जाइए। अब दोनों हाथों को पीछे की ओर ले जाकर रानों को बीच कर एक दूसरे को पकड़ लीजिए। अब पेट पर ज़ोर देते हुये उठने की कोशिश कीहिए। फिर छोड़ कर अपनी असली हालत में आ जाइये। इसी क्रम को चार पांच बार करें।

यदि अब तक पिया हुआ पानी पच गया तो थोड़ा सा पानी एक गिलास में रख कर और पी लेना चाहिए। फिर कसरत शुरू करना चाहिए।

कसरत नं० ३—सीधे खड़े हो जाइए। अब बारी-बारी से पैरों को मोड़कर छाती के पास लाइए और दोनों हाथों से पकड़ कर दबाइए। एक के बाद दूसरा दूसरे के बाद पहला पैर बदलते रहना चाहिए। इसी क्रम से तीन-चार बार करना चाहिए।

(शेष पृष्ट ५६ पर)

आयुर्वेद में जल का स्थान

[श्री महेन्द्र नाथ पांडेय आयुर्वेद-विशारद, एन०डी०डी०बाई]

वेदों में एक मन्त्र आता है—

'अप्स्वन्तरमृतमप्सु भेषजम्।' इसका अर्थ है जल में औषधि है। उक्त मन्त्र से यह निश्चय होता है कि वेद के समय में भी लोग जल के गुण से परिचित थे। जल को अमृत समझते थे। जल के औषधि गुण से परिचित थे। वेदों में यह खास बात है कि हर एक बात उसमें सूत्र रूप में बताई गई है। उसका विस्तार करना उसके ज्ञाताओं का काम है।

वेद का ही उपांग आयुर्वेद है। जिस प्रकार वेद अनादि है उसी प्रकार आयुर्वेद का ज्ञान भी अनादि है। विशेष विशेष कालों में उसके विशेष विशेष ज्ञाता हो गये हैं और उन्होंने उस ज्ञान को जनता में फैलाने का प्रयत्न किया है। इसीलिए एक ही विषय पर अनेक आचार्यों के अनेक मत और अनेक अनुभव मिलते हैं। हम उन सब अनुभवों को सत्य मानते हैं। हम चाहते हैं वे सब अनुभव एक साथ मिला दिये जायं। उन विषयों पर जो नये अनुभव प्राप्त हों उनको भी उनके साथ मिलाने का प्रयत्न करना चाहिए। आयुर्वेद से हमें इस बात का पता निश्चित रूप से लग जाता है कि जिस विषय पर हम अनुभव करना चाहते हैं उस परहमारे पूर्वज, हमारे पूर्व के चिकित्सक, कितना विचार कर चुके हैं। कितना अनुभव हमारे लिए छोड़ चुके हैं, जो अनुभव आयुर्वेद में सुरक्षित हैं।

जल का उपयोग नहाने धोने, कपड़ा साफ करने और भोजन पचाने आदि के काम में तो होता ही है। आयुर्वेदीय अधिकांश औषधियां-क्वाथ और अरिष्ट—बनाने में जल का खूब ही प्रयोग होता है। इसके अलावा अकेला जल भी औषधि रूप में व्यवहृत होता है!

बहुत से प्राकृतिक चिकित्सक यह समझते हैं कि जल चिकित्सा पश्चिम की उपज है। हमारी राय उनसे भिन्न है। हम यह मानते हैं कि आज से ३-४ सौ वर्ष पूर्व योरोप वालों ने जल का प्रयोग सीखा हैं। हमारे भारतवर्ष में न जाने कब से जल का प्रयोग औषधि रूप में हो रहा है। हां, यह बात अवश्य है कि भिन्न भिन्न देशों में विकास का क्रम एक तरह का नहीं होता।

लुई कुने के बहुत पहले योरोप में जल-चिकित्सा का जन्म हो चुका था, किन्तु उसका व्यापक प्रचार और प्रचुर प्रयोग लुई कुने ने ही किया। उन्होंने 'न्यू साइंस आफ हीलिंग' (नवीन चिकित्सा-विज्ञान) नामक पुस्तक लिख कर इस दिशा में प्रमुख कार्य किया है। लुइ कुने केवल ठंडे जल का ही प्रयोग अपनी चिकित्सा में करते थे। वही उन्होंने अपनी पुस्तक में भी लिखा। भारतवर्ष में जो प्राकृतिक चिकित्सक लुई कुने की प्रणाली के पक्षपाती हैं वे आज भी ठंडे ही जल का प्रयोग करते हैं, उसी को उचित समझते हैं।

लुई कुने साहब की प्रणाली अधूरी साबित हुई और अमेरिका आदि देशों में इस दिशा में नये प्रयत्न आरम्भ हुए। अमेरिका के सुप्रसिद्ध प्राकृतिक चिकित्सक डा॰ केलाग ने 'रैशनल हाइड्रोपैथी' (विवेकात्मक जल-चिकित्सा) नामक पुस्तक लिखकर इस दिशा में विशेष उल्लेखनीय कार्य किया। उन्होंने उष्ण जल का भी प्रयोग किया। उन्होंने डिग्रियों में नाप नाप कर जल का प्रयोग किया और अपनी पुस्तक में उनका उल्लेख किया है।

आयुर्वेद में जो जल-चिकित्सा मिलती है वह एकांगी नहीं है। गरम और ठंडे दोनों तरह के जलों का प्रयोग मिलता है। हम वैद्य लोग दोनों तरह जल को औषधि रूप में काम में लाते हैं। यह क्रम विवेकपूर्ण भी है। हां, प्राचीन काल में कोई ऐसा यंत्र सम्भवतः नहीं था जिसके द्वारा पानी की गर्मी डिग्रियों में नापी जाती। यही कारण है कि चिकित्सक को ठंडे और गरम जल के प्रयोग के लिए अपनी बुद्धि का उपयोग करना पड़ता है कि कहाँ कितना ठंडा या कितना गरम जल काम में लाया जाय। प्राचीन काल में उस प्रकार की कोई नाप नहीं निश्चित हो सकी जैसी कि केलाग साहब ने की है।

घाव अच्छा करने के लिए जल का प्रयोग बहुत प्राचीन काल से भारतवर्ष में होता आ रहा है। गाय-बैलो के पांव में एक प्रकार का घाव हो जाया करता है उसे

'खांगना' कहते हैं। प्रत्येक किसान इस बात को जानता है और समय पर काम में लाता है कि पशु को जल में बाँध रखने से बढ़ कर उस घाव को अच्छा करने के लिए कोई उपाय नहीं है। सिट्स बाथ शिरन स्नान के नाम से प्रसिद्ध है। शिस्न शब्द से ही 'सिट्स' शब्द निकला हुआ जान पड़ता है। इस स्नान के गुणदायक प्रभाव से लोग इतने प्रभावित हो चुके थे कि दिन भर में कई बार यह स्नान किया करते थे। इसके गुणों पर मुग्ध होकर ही इसे धार्मिक रूप दिया गया था और लोग प्रत्येक बार लघुशंका करने के बाद इन्द्रिय को धोया करते थे।

आयुर्वेद में एक अवगाहन क्रिया का वर्णन आया है। इसकी पूरी विधि हमने अपनी पुस्तक 'तपेदिक' में लिखा है। अवगाहन का शब्दार्थ होता है स्नान। यह अवगाहन पुराने रोगों को दूर करता है, बन्द नसों को शुद्ध करके खोलता है, नसों के भीतर के विकार को दूर करता है। अवगाहन के बाद मालिश का विधान है। इस अवगाहन क्रिया के ही अन्तर्गत कटि-स्नान और 'होल बाडी पैक' या 'चेस्ट पैक' को समझना चाहिए। इसके अतिरिक्त फोड़े फुंसी, घाव, जख्म, दर्द आदि पर स्थानिक पट्टियों का प्रचार बहुत प्राचीन काल से है। जिन पद्धतियों और विधियों का प्रचार देश में है उन सब को आयुर्वेदीय विधि ही समझनी चाहिए, क्योंकि आयुर्वेद के अतिरिक्त ऐसी कोई अन्य विधि नहीं है जो देश के रक्त में घर कर सकी हो।

अवगाहन के लिए किसी पात्र मिट्टी, लकड़ी या धातु की कोष्ठी—में गरम जल या ठंडा जल या दूध अथवा किसी औषधि का काढ़ा भर उसी में बैठते या लेटते हैं। चिकित्सक जिस तरह बतावे वैसे करना पड़ता है। इसी को अवगाहन कहते हैं।

किन किन रोगों में ठंडे जल का प्रयोग होता है और किन में गरम जल का, इसकी एक सूची हमें आयुर्वेदीय ग्रन्थों में मिलती है। परन्तु अवगाहन-क्रिया किन किन रोगों में कराई जाय इसकी सूची हमें आयुर्वेदीय ग्रन्थों में नहीं मिली। इसके दो कारण हो सकते हैं। पहला कारण यह हो सकता है कि चिकित्सक अपनी बुद्धि के अनुसार जहां उचित समझे वहां अवगाहन करावे। दूसरा कारण यह भी हो सकता है कि जिस प्रकार यज्ञ के विधान और यागिक क्रियाओं के विधान अलग अलग शास्त्रों में मिलते हैं, इन क्रियाओं में से बहुत सी रोग-शान्ति के लिये आयुर्वेदीय चिकित्सा में व्यवहृत होती हैं परन्तु उनका विस्तृत वर्णन आयुर्वेदीय ग्रन्थों में नहीं मिलता। इसी तरह सम्भव है अवगाहन क्रिया और जल-चिकित्सा के सम्बन्ध में अलग शास्त्र रहे हों और समय के प्रभाव से नष्ट हो गये हों।

अब तो जल चिकित्सा के बारे में ही भारतीय चिकित्सकों द्वारा अनेक प्रयोग हो चुके हैं। आयुर्वेद के विशेषज्ञों द्वारा यह चिकित्सा अपनाई जानी चाहिए और आयुर्वेद के इस खोये हुए अंग की पूर्ति करनी चाहिए।

(५४ पृष्ठ से आगे)

कसरत नं० ४—पैरों में फासिला करते हुए सीधे खड़े हो जाइए। अब हाथों को कन्धों की सीध में ऊपर उठाइए फिर सिर लगा हुआ हाथ झुक कर पैरों के अंगूठों को छूना चाहिए। ध्यान रहे पैर के घुटने मुड़ेंगे नहीं। इसी क्रम से चार-पाँच बार करना चाहिए।

अब भी अगर पानी की थोड़ी बहुत गुंजाइश रह गई हो तो एक गिलास पानी और पी लेना चाहिए। कसरत शुरू करने पर एक जगह खड़े होकर कसरत नहीं करना बल्कि शीघ्रता के साथ चार-पाँच बार तेजी से चलकर करना ज्यादा अच्छा होगा। इसी बीच अगर पाखाना मालूम हो जाय तो टट्टी से निवृत हो लेना चाहिए। यदि टट्टी साफ नहीं होती अथवा देर में लगती है अथवा नहीं भी लगती तो घबराना नहीं चाहिए। पानी किसी न किसी रूप में बाहर निकल ही जायगा।

पेट की समस्त बीमारियों को दूर करने के लिए यह राम बाण है। इससे कब्ज, मंदाग्नि, पेचिश, अपच आदि जैसी बीमारियां तो चुटकी बजाते भगती हैं।

गजकरणी क्रिया

तैयार किया योग जल पी लेना चाहिए फिर धीरे से रबर का एक पतला ट्यूब मुंह के द्वारा पेट के कुछ भाग तक पास कर दीजिए। पेट से पानी धीरे धीरे उस ट्यूब के द्वारा बाहर आ जायगा और पेट का विजातीय द्रव्य बाहर निकल जायगा। इसके करने में आसानी होगी। शेष बातें पिछली क्रियाओं की ही तरह हैं।

इन क्रियाओं के साथ समुचित आहार का प्रयोग विशेष लाभकारी साबित होगा।

संक्रामक रोग तथा वैज्ञानिक जलोपचार

पृष्ठ ३३ का शेषांश

लाल हो जाता है और तब यह लसीका ग्रंथियों (Lympheties) के मार्ग से शीघ्रता के साथ फैलने लगता है।

शरीर के अन्य भागों की अपेक्षा चेहरे पर इसका अधिक असर पड़ता है। सूजन इतनी भयानक होती है कि आदमी का चेहरा पहचाना तक नहीं जा सकता। शरीर का तापमान बढ़कर १०४ और १०५ तक पहुंच सकता है। अगर इस अवस्था में समुचित रीति से कोई उपचार न हो तो वे रोगवाही कीटाणु बहुत उत्पात मचा सकते हैं और तब बहुत सी विषमताएं उत्पन्न हो सकती हैं। ऐसी अवस्था में रोगी को हृद्रोग, निमोनिया, अंत्रावरक झिल्लयों का प्रदाह (Peritonitis), गर्दनतोड़ बुखार (Meningitis) हो सकते हैं।

चिकित्सा—रोगी की चिकित्सा उपवास से आरम्भ की जाय और उसे केवल जल पीने को दिया जाय। लेकिन जल का परिमाण ८ पौण्ड (लगभग ४ सेर) से कम होना चाहिए। जितनी बार पेशाब हो उसका रेकार्ड रक्खा जाय। २४ घन्टे में होने वाले पेशाब की मात्रा ६४ औंस से कम होनी चाहिए। रोगी को प्रतिदिन भीगे तौलिये से स्नान और एनिमा (Douch) २ बार दिया जाय। पेड़ू पर दिन में ३ बार मिट्टी की ठंडी पट्टी और बुखार १०२ डिगरी से बढ़ने पर गीली चादर की पट्टी (Wet sheet pack) दी जाय। इस प्रकार तापमान को १०१ डिगरी या १००° डिगरी पर ला दिया जाय। लेकिन १०० डिगरी से कम नहीं।

जल में ताप का शोषण करने की विशेष क्षमता होती है। अतः शरीर के तापमान को २ या ३ डिगरी कम कर देने के लिए भी ठंडे पानी का एनिमा दिया जा सकता है। लेकिन इन समस्त प्रयोगों के बीच रोगी पर कोई श्रम नहीं पड़ना चाहिये। सभी प्रयोग बहुत आहिस्ते से करना चाहिए।

एनिमा तथा घर्षण-स्नान (Sponge Bath) का प्रभाव

जल पर रहते हुए उपवास आरंभ करते ही रोगी के शरीर के तन्तु विष तथा दूषित पदार्थ का [illegible] करने लगते हैं। यह दूषित अथवा विसदृश पदार्थ रक्त-नलिका में आता है और उसके अनन्तर यह ४ मल-विसर्जक (Eleminatory) अंगों—फेफड़े (Lungs) गुर्दे (Kidney) आँत (Intestine). और त्वचा (Skin) में पहुंचता है। इस प्रकार शरीर के भीतर से मल गैस तथा वाष्प-रूप में फेफड़ों से बाहर निकल जायगा। लवण गंधक (Sulphur) सोडियम फास्फेट (Sodium phosphate) जल और असाधारण अवस्था में पिक्रो टाक्सिन (picrotoxin), नीकोटीन (Nicotine), कैम्फर (Camphor) अमोनिया (Amonia) आदि बाकी ३ मल-विसर्जक अंगों द्वारा शरीर से बाहर निकल जाते हैं। त्वचा के ऊपर से इन सब विसदृश पदार्थों को साफ कर देने, रोम कूपों को साफ रखने और इस प्रकार त्वचा तथा रोम-कूपों को अपेक्षाकृत अधिक सक्रिय बनाने का कार्य स्पंज-बाथ (Sponge-bath) अर्थात् भीगे तौलिये का स्नान करता है।

निराहार तथा रसाहार पर रहने के दिनों में साफ पखाना नहीं होता और इसके साथ ही साथ बड़ी आँत (Colon) में और भी अधिक विषाक्त पदार्थ अथवा मल आकर इकट्ठा हो जाता है। यदि एनिमा न लिया जाय तो इन विषाक्त पदार्थों का आँतें पुनः शोषण कर जायंगी और समूचे शरीर में जहर फैल जायगा। इसलिए आँतों से इस मल को बाहर निकाल देने के लिए एनिमा लेना निहायत जरूरी है।

जल का आन्तरिक प्रभाव

हम यह बता चुके हैं कि शरीर में एकत्र हुआ विषाक्त पदार्थ रक्त-संचालन-प्रणाली (Circulation) द्वारा खींच लिया जायगा और उसका कुछ अंश विसर्जन के लिए फेफड़ों में पहुंचा दिया जायगा। यदि पर्याप्त मात्रा में जल शरीर के अन्दर पहुंचेगा तो विषाक्त पदार्थों का जमाव कम होगा और गुर्दों को सक्रियतापूर्वक कार्य करने में सहायता मिलेगी और इससे रक्त-संचालन भी समुचित रीति से होने लगेगा और हृदय भी उत्तम अवस्था में

रहेगा। लेकिन अगर जल की मात्रा अपर्याप्त है तो यह जहर रक्त में रह जायगा, इससे गुर्दें को नुकसान पहुंचेगा और तब आगे चल कर हृदय तथा श्वास-प्रणाली को भी क्षति पहुँचेगी और रोगी के प्राण संकट में पड़ जायेंगे।

पेड़ू पर मिट्टी की पट्टी का प्रयोग

पेड़ू पर मिट्टी की पट्टी का प्रयोग सभी प्रकार के प्रदाह की अवस्थाओं में, विशेषतः आमाशय की झिल्लियों (Abdominal viscera) के प्रदाह में, नितान्त आवश्यक है। इससे आमाशयिक रक्त-संचरण (Abdominal Circulation) में वृद्धि होती है। मिट्टी में शोषण-शक्ति (power of absorption) भी होती है। अतः यह विषाक्त द्रव्य को शोषण कर लेती है। इसी प्रकार स्ट्रेप्टो कोकाई कीटाणु जनित सभी रोगों में इस उपचार-विधि से काम लिया जा सकता है, जिसका परिणाम बहुत उत्तम होगा।

आंत्रिक ज्वर (Enteric fever)

यह लक्षण टायफायड के कीटाणुओं (B. Tiphosus) पैरा टायफायड (ए० बी० सी०) के कीटाणुओं तथा संक्रामक ज्वर (B. Coly) के कीटाणुओं की दूषित क्रियाशीलता के फलस्वरूप प्रकट होता है। इन सभी रोगों का उपचार बहुत आसान है, यदि यह आरम्भ में ही समुचित रीति से किया जाय, अन्यथा रोग के गम्भीर रूप धारण कर लेने की बराबर सम्भावना रहती है जिसके फलस्वरूप रोगी का प्राणान्त तक हो सकता है।

निदान—आंत्रिक ज्वर कई प्रकार के होते हैं जिनमें ज्वर का क्रमिक आक्रमण (Cradual onset), अविराम ज्वर (conlinued pyrexia), असाधारण पतले दस्त, पेट का फूल जाना, शरीर पर लाल चकत्ते पड़ जाना, (Rose rash), तिल्ली का बढ़ जाना आदि लक्षण प्रकट होते हैं।

इन अवस्थाओं में यदि रोगी का समुचित रीति से उपचार न किया गया तो उसकी अवस्था विकट हो सकती है और तब उसे ब्रांको-निमोनिया (Brancho-pnemonia); लोबर निमोनिया (Lober pnemonia) ब्रोंकाइटिस (Bronchitis) रक्त-संचय (Congestion) गलकोष-प्रवाह (pharnyngitis) आदि हो सकते हैं।

लेकिन अब तक जिन-जिन रोगियों पर नैसर्गिक विधि का प्रयोग किया गया है उनमें से किसी को भी इस प्रका की किसी विषम अवस्था का सामना नहीं करना पड़ा औ वे बिलकुल अच्छे हो गए।

चिकित्सा—उबाल कर ठंडा किया हुआ पानी रो को खूब पिलाया जाय, प्रतिदिन प्रायः ६ पौंड (लगभ ३ सेर) तक। दिन में दो बार एनिमा और घर्षण-स्नान (Spong Bath) दिया जाय। पेड़ू पर मिट्टी की पट्टी (हर पाँच से १० मिनट बाद बदल दी जाय। १०२ डिगरी अधिक बुखार होने पर गीली चादर की पट्टी (Wet shee pack) भी दी जाय जिससे तापमान १०१ डिगरी प आ जाय। रोगी को कमरे में न रखकर बरामदे में रखें, जहां पर वायु का संचार अच्छी तरह होता रहे। अग गरमी के दिन हों तो रात में रोगी को बाहर मैदान सुलावें।

आहार—नारंगी या मोसम्बी के रस और नीबू के र के सिवाय रोगी को और कुछ न दिया जाय। ऊपर बताए गए उपचार-क्रम को तब तक जारी रक्खें, जब तक रो के लक्षण दूर न हो जायं। अगर रोगी का इस विधि उपचार किया जाय तो खतरे की कोई गुंजाइश नहीं सकती और उसे पूर्ण नीरोग हो जाना निश्चित है। सेवा ग्राम आश्रम में इसी विधि से इस तरह के समस्त रोगि का उपचार किया गया और मैं यह कह सकता हूँ कि सभी मामलों में इस उपचार-क्रम का परिणाम अत्य आश्चर्यजनक एवं उत्साहवर्धक हुआ है।

सभी प्रकार के आंत्रिक ज्वर (Enteric fever) में, टाइफस के केस में भी, उपचार की विधि एक ही है टाइफस के उपचार के सम्बन्ध में मैं यहाँ पर अपना ए निजी अनुभव दे देना चाहता हूँ, जो मुझे सेवाग्राम श्रीमती किशोर लाल के उपचार के समय, जो गत नवम्ब मास में टाइफस से पीड़ित हो रही थीं, प्राप्त हुआ।

बीमारी के प्रथम सप्ताह में उन्हें कुछ आराम मालूम हुआ लेकिन उसके बाद एकाएक उनके शरीर विष फैलने के लक्षण प्रकट होने लगे और उनकी अवस् बहुत चिन्ताजनक हो गयी। उन्हें सीबा ज़ोल, (ciba zol), उन्हें एम० बी० ६९३ (M. B. 693), सल्फा गुइनाडिन (Sulpha guanidine) आदि सभी गंधक (Sulpher) से तैयार की गई दवाएं सोडा बाई कार्ब (Soda bicarb) तथा अन्य क्षारीय सम्मिश्रणों (Mixtures) के साथ दी गयी थीं।

अन्त में उनकी अवस्था बहुत चिन्ताजनक हो जाने पर दवाएं बन्द कर दी गयीं और उनका पूर्ण रूप से नैसर्गिक उपचार आरम्भ हुआ। उनका उपचार क्रम वही रक्खा गया जैसा कि मैं ऊपर बता चुका हूँ और इसी से वे पूर्ण स्वस्थ हो गयीं। इसी प्रकार ४ अन्य रोगियों का भी सफलतापूर्वक उपचार किया गया था।

१९४४ में टाइफस के एक रोगी का भी इसी नैसर्गिक उपचार पद्धति से इलाज किया गया। आरम्भ में उस रोगी ने भी डाक्टरों की दवाइयां खायी थीं और उसकी भी अवस्था बहुत गम्भीर तथा चिन्ताजनक बन गयी थी। लेकिन ज्यों ही उस रोगी को प्रकृति की शरण में ला दिया गया, उसकी हालत सुधरने लगी और वह क्रमशः पूर्ण नीरोग हो गया।

(B. Coli बी०) कोलाई कीटाणु-जन्य रोग

इस रोग विशेष का जल चिकित्सा पद्धति से बड़ी आसानी के साथ इलाज किया जा सकता है। सेवाग्राम में श्री प्यारेलाल की बीमारी के समय बापू जी ने जो प्रयोग किए थे और उससे मुझे जो निजी अनुभव प्राप्त हुआ उसका उल्लेख मैं यहाँ पर कर देना चाहता हूँ।

एक बार श्री प्यारेलाल सेवाग्राम आश्रम में संक्रामक ज्वर (B. Coli) कीटाणुओं के संक्रमण से पीड़ित हो रहे थे और बापू जी की निगरानी में उनका उपचार हो रहा था। उनके उपचार का मुख्य क्रम था आहार के रूप में फलों का रस, न्यूट्रल बाथ। एनिमा, और स्पंज बाथ का क्रम भी नियमित रूप से चल रहा था। इस उपचार क्रम से कुछ ही दिनों में वह पूर्ण स्वस्थ हो गए थे। न्यूट्रल बाथ के सम्बन्ध में यह ध्यान रहे कि जल का तापमान शरीर के तापमान से एक डिगरी कम होना चाहिए।

शरीर-प्रणाली से विषाक्त पदार्थों का शोषण तथा बहिष्कार करने के अलावा जलोपचार का एक विशेषगुण यह है कि यह शरीर-प्रणाली को अपने अन्दर एक प्रकार का विष-प्रतिरोधक (Antitoxin) द्रव्य तैयार करने में सहायक होता है। इस प्रकार इस जहर का प्रतिकार करने के लिए रोगी को बाहर से कोई खास दवा (Auto-vaccine) खिलाने की जरूरत नहीं रहती। इस रोग विशेष में एलोपैथ लोग आमतौर से आटो वैक्सीन रोगी को खिलाते हैं, लेकिन इसका प्रभाव नगण्य ही होता है।

मैंने स्वयं इस रोग विशेष से पीड़ित होने वाले रोगी का कुछ फेर-बदल के सहित जल-चिकित्सा पद्धति के अनुसार उपचार किया है और इसका परिणाम आश्चर्यजनक हुआ है।

जिन अन्य रोगियों पर मैंने जलोपचार की विधियों का प्रयोग किया है उनमें से कुछ मूत्र-ग्रंथि का प्रदाह (Nephritis) तथा मूत्राशय का प्रदाह (Cystitis) के रोगी थे। इन रोगों के उपचार के सम्बन्ध में मैं यह बता देना चाहता हूँ कि इस तरह के रोगियों को जलोपचार के साथ-साथ क्षारीय (Alkaline) आहार पर रखने की आवश्यकता होती है; अर्थात् उनके आहार में आमूल परिवर्तन कर देना आवश्यक होता है।

गले की झिल्लियों का प्रदाह (Diptheria)

इस रोग विशेष पर जलोपचार की विधियों का सफलतापूर्वक प्रयोग किया जा सकता है। अन्तर दे-दे कर गरम और ठंडी पट्टी, बुखार को काबू में रखने के लिए गीली चादर की पट्टी (Wet sheet pack) स्थानिक वाष्प-स्नान (Local steam bath) घर्षण स्नान (Sponge bath) और एनिमा के साथ-साथ वैज्ञानिक आहार, मुख्यतः फलों तथा शाक-भाजियों के रस, पर रोगी को यदि रक्खा जाय तो शरीर प्रणाली की रोग-निवारक शक्ति में वृद्धि होगी, मल का समुचित रीति से विसर्जन होगा और वह शीघ्र आरोग्य लाभ कर लेगा।

लेकिन इस रोग के सम्बन्ध में सावधान रहने की जरूरत है, क्योंकि इस रोग के कीटाणु विशेष रूप से जहर फैलाने वाले (Exotoxic) होते हैं और इनकी क्रियाशीलता बहुत उग्र होती है। अतः चिकित्सक का

प्रत्येक कार्य बड़ी सावधानी के साथ और सुनिश्चित होना चाहिए अन्यथा रोगी के प्राणान्त हो सकते हैं।

हैजा (Cholra)

हैजा एक बहुत ही तीव्र तथा संघातिक रोग है। डा० कोडरिन (Dr. Kodrin) ने १८८३ में मिस्र में यह अन्वेषण किया था कि यह रोग 'कामा बैसिली', (हैजे का कीटाणु विशेष) की वृद्धि के फलस्वरूप होता है।

लक्षण—हैजा होने पर चावल के धोवन की तरह बहुत अधिक पतले दस्त और कै होते हैं। रोगी के शरीर में दर्द के साथ ऐंठन होने लगती है, रोगी की शक्ति शीघ्रतापूर्वक क्षीण होती जाती है और रक्त से जलीय अंश का शोषण (Dehydration) होने तथा विसदृश पदार्थों की वृद्धि होने के कारण रोगी की शीघ्र मृत्यु हो जाती है।

चिकित्सा—इस रोग का एलोपैथिक उपचार भी जल-चिकित्सा पर आधारित है अर्थात् इसमें डाक्टर लोग वैज्ञानिक रीति से परिशुद्ध किए हुए जल (Distilled water) को लवण के घोल में मिला कर या तो खाल के अन्दर या नसों के रास्ते पानी चढ़ाते हैं। कुछ अवस्थाओं में इन दोनों विधियों से वे काम लेते हैं और रोगी को नींबू का रस या प्याज का रस पिलाते हैं। जल का यह प्रयोग जल-चिकित्सा

(आगे पृष्ठ ६२ पर)

जल-चिकित्सा का सिद्धान्त

(१६ पृष्ठ से आगे)

सब भयानक रोग इसी प्रकार होते हैं। किंतु जब हम बार-बार प्रकृति की इस सफाई की क्रिया को दवा अथवा किसी अन्य भांति से दबा देते हैं या किसी अन्य किसी कारण से जब शक्ति इतनी कम हो जाती है कि शरीर सुधारने के किसी प्रयत्न में सफल नहीं हो पाता तब रोग की अवस्था भीषण स्वरूप धारण कर लेती है। अस्तु जितने रोग हैं वे सब शरीर की एक ही अवस्था के विभिन्न स्वरूप हैं।

जिस प्रकार रोग एक ही होता है उसी प्रकार उसका उपचार भी एक ही होता है। शरीर में गंदगी और विष का एकत्रित हो जाना ही रोग का मूल कारण हुआ करता है तब ऐसी स्थिति में उसका क्या उपचार चाहिए? विधिपूर्वक शरीर की गंदगी और विष की सफाई करना ही उपचार है। अपने को स्वस्थ रखने के लिए हम सदा औषधियों का प्रयोग नहीं करते। प्रकृति शरीर के विषाक्त पदार्थों को मल-मूत्र, स्वेद और श्वास द्वारा बाहर निकाल दिया करती है और इस प्रकार हमें रोगमुक्त रखती है। जब हम बीमार होते हैं तो हम अपने सब रोगों का उपचार कर सकते हैं। जल-चिकित्सा में जिसे बहुधा प्राकृतिक चिकित्सा के नाम से भी पुकारते हैं, टब-स्नान-वाष्प-स्नान, गीले कपड़े की पट्टी (Wet sheet pack) डूश, जलपान प्राणायाम, फलाहार और दुग्धाहार को तथा अन्य उपायों को प्रयोग में लाते हैं।

हम अभी ऊपर कह चुके हैं कि यह शरीर आत्मा-चालित एक यंत्र है। इसमें यथासंभव अच्छा करने और रक्षा करने के सभी साधन मौजूद हैं। हमारे रक्त में जो, एक प्रकार के सफेद कीड़े होते हैं, वे बीमारी के कीड़ों को, जो रक्त में किसी प्रकार प्रविष्ट हो जाते हैं, मार डालते हैं। लीवर सदा रक्त को साफ करने के काम में लगा रहता है हमारे शरीर में इस प्रकार का प्रबंध रहता है जिससे शरीर के विभिन्न रसों का अनुपात ठीक रहे। रक्त में क्षारीय रस के पर्याप्त मात्रा में होने से किसी बीमारी का भय नहीं रहता। जब प्रकृति का यह रक्षात्मक साधन शरीर में विषाक्त पदार्थों के जमा हो जाने से टूट जाता है तभी हमें बीमारी हो सकती है। प्राकृतिक प्रयोग जैसे वाष्प-स्नान एवं गीली पट्टी (Wet sheet pack), जो शरीर के विषों को दूर करने के प्रयोग में लाये जाते हैं, रक्त को भी शुद्ध करते हैं और उसे तथा शरीर के अन्य रक्षात्मक तंतुओं को मजबूत बना कर हमें स्वस्थ तथा रोग मुक्त रखते हैं। शरीर के स्वस्थ और रोगों को अच्छा करने के लिए आज कल शीतल जल से स्नान, वायु स्नान और गर्म तथा ठंडी पट्टी का क्रमिक प्रयोग इत्यादि को प्रयोग में लाया जाता है।

इस प्रकार जब शरीर स्वच्छ और शक्तिशाली हो जाता है तो हमें कोई रोग नहीं होता।

पुस्तकालय
गुरुकुल काँगड़ी.

सौर जल-चिकित्सा (Chromo-Hydro-pathy)

श्री श्रीकृष्ण शर्मा, बी० ए०, एन० डी० डी० वाई

'The water saw its master's face and tblushed'—Byron

'जल निधि ने अपने नियन्ता की ओर दृष्टिपात किया और वह पानी-पानी हो गया !'—बायरन

जल का सब से प्रधान गुण है ग्रहण शीलता—उसका जिस पदार्थ से सम्मेल होता है, उसका वह गुण ग्रहण कर लेता है। इसे विविध रूपों में प्रयोग में लाए जा सकने के कारण भी इसका महत्व एवं उपयोगिता प्रकृति के अन्य तत्वों से अधिक बढ़ गयी है। सूर्य-रश्मियों के सम्मेल से यह हमारे लिए कितना जीवनदायक बन जाता है, इसकी जानकारी आपको इस लेख से प्राप्त होगी। लेखक ने जिस ढंग से अपने विषय का निरूपण एवं प्रतिपादन किया है, वह बहुत ही प्रभावोत्पादक एवं हृदयग्राही है।—सं०]

भगवान भास्कर की जीवनदायिनी स्वर्णिम रश्मियों का हमारे स्वास्थ्य, आरोग्य एवं जीवन पर कितना गहरा प्रभाव पड़ता है, यह बात अब कहने की नहीं रही, यह तो अब विज्ञान की कसौटी पर कसी जा कर निर्विवाद सिद्ध हो हो चुकी है। आधुनिक विज्ञान की गंभीर, विश्लेषणात्मक तथा पारदर्शी आंखों ने जब रहस्य के परदे को चीर कर तथ्य का अवगाहन किया तो हृदयाकर्षक इन्द्रधनुषी परिधान से सुसज्जित होकर नर्तन करती हुई रवि-रश्मियां इतने सुन्दर रूप में दिखायी पड़ीं कि संसार की विस्मय-विस्फारित नेत्रों में चकाचौंध भर उठा—वह विस्मित, आश्चर्य-चकित बन बैठा ! सप्त रंगों के मधुमय जीवन गान ने बहरे कानों में भी अपनी नैसर्गिक संगीत-लहरियां भर दीं, अंधों को भी उस दिव्य ज्योति का आभास मिला—जीवन का तिमिरावरण हट गया, 'सत्यं', शिवं सुन्दरं' के दर्शन हुए। इन रहस्यमय संदेशवाहिकाओं ने इस धरातल पर जहाँ-जहां प्रवेश किया, एक क्रान्ति सी मचती गयी, सोते हुए संसार को एक नयी आशा, एक नये सन्देश और एक नयी सृष्टि का प्रादुर्भाव होता दिखाई दिया !

यह सूर्य की ही महिमा है जो उसकी सुनहरी किरणें सागर से वारि-विन्दु खींचकर अमृत-वर्षा करती हैं और ग्रीष्मताप से झुलसी हुई वसुन्धरा पर अपनी रंगीनियों की माया बिखेर देती हैं। कल-कल नाद करता हुआ निर्झर, लबालब भरे जलाशय, लहराते हुए शस्यश्यामल खेत, रंग-बिरंगे फल-फूल, सभी समवेत स्वर से सूर्य की ही गौरव-गरिमा का गान करते हैं। जगत का संचालन करता हुआ वह विश्वात्मा—सूर्य—अपनी जगह पर अटल और स्थिर है। किन्तु जल चन्द्रमा की भांति शीतल और चंचल। रवि-रश्मियां सूक्ष्म हैं, तो जल स्थूल। दोनों की असमानता या विपरीतता (Contrast) ही दोनों के मेल या सम्पर्क की हेतु है। दोनों का संगम या समागम अनिवार्य है।

जल यद्यपि सूक्ष्म तत्त्व नहीं, किन्तु वह स्वतः सूक्ष्म शक्तियों का वाहक अवश्य है। विद्युत, चुम्बक, प्रकाश अथवा वायु के अतिरिक्त प्राण-शक्ति धारण करने की क्षमता जल में विद्यमान है। साधारण जल को कुछ समय के लिए अगर सूर्य के प्रकाश में रख दिया जाय तो उसमें चुम्बक शक्ति का संचार हो जायगा, जो दुर्बल, शक्ति-क्षीण, रोग-पीड़ित व्यक्तियों के लिए अमृत-तुल्य है ! जल को गरम करने से उसमें निहित वायु का अंश कम हो जाता है और अगर उसी जल को दो बर्तनों में उलट-पुलट कर रख दिया जाय तो वायु का संचार (विशेषतः ओषजन--आक्सीजन--का संचार) हो उठने से वह अधिक गुणकारी तथा स्वादिष्ट बन जाता है। विद्युत्-शक्ति के सम्बन्ध में पाठकों को शायद डा० नेहरू के आश्चर्यजनक प्रयोग याद होंगे। वह प्याज की जड़ों अथवा विद्युत्-धारा के प्रवाह से जल को औषधिगुण से समायुक्त कर देते थे। प्राण-चिकित्सकों का भी यही कहना है कि जल में प्राण-शक्ति का संचार किया जा सकता है और इस प्रकार से तैयार किया गया सप्राण जल अनेक प्रकार के रोगों का उन्मूलन करके रोगी को नया जीवनदान दे सकता है।

प्रकाश-शक्ति के अंतर्गत रंग-शक्तियों से भी जल को संचारित किया जा सकता है। रंगों की सहायता से जल को अत्यन्त गुणकारी तथा उसके प्रभाव को स्थायी बनाया जा सकता है। उदाहरण के लिए दो दृष्टान्त लीजिए। सुबह उठने पर कार्य-शिथिल आमाशय अथवा कोष्ठ को सतेज एवं क्रियाशील बनाने के लिए गरम जल का प्रयोग किया जाता है। हमको लाभ अवश्य होता है, परन्तु हमारे लिए प्रति दिन करना आवश्यक होता है। कारण यह कि इसका प्रभाव स्थायी नहीं होता। किन्तु यदि पीले रंग की बोतल में तैयार किया हुआ जल अल्प मात्रा में ही एक दिन, और जीर्ण रोग की अवस्था में कुछ और समय तक, प्रयोग किया जाय तो कोष्ठ इतने सक्रिय एवं सतेज हो जाते हैं कि लम्बे समय तक के लिए उनसे फुरसत मिल जाती है।

इसी प्रकार प्रदाह युक्त आमाशय को शान्त करने के लिए बार बार ठंडे जल के प्रयोग को दुहराने के बजाय यदि केवल दो-तीन बार नीली बोतल का पानी दे दिया जाय तो यह तकलीफ बिलकुल जाती रहेगी। इन दोनों अवस्थाओं में रंग के द्वारा जल में विशिष्ट शक्ति का संचार हो जाता है जो अपना अलग-अलग महत्व रखती है।

(पृष्ठ ६० से आगे)

का प्रमुख अंग है, पर हां एलोपैथ-डाक्टरों का दृष्टि, कोण प्राकृतिक चिकित्सा पद्धित से भिन्न अवश्य है। मेरी राय में इस रोग का जल-चिकित्सा पद्धति के अनुसार बड़ी सफलतापूर्वक इलाज किया जा सकता है। जैसे—गरम स्नान, पेड़ू पर मिट्टी की पट्टी का प्रयोग तथा घर्षण-स्नान का प्रयोग। इन सारी विधियों को तब तक जारी रखना चाहिए जब तक रोगी की अवस्था सामान्य न हो जाय। मिट्टी की पट्टी देने के बाद शुष्क-घर्षण स्नान (Dry friction bath) तथा कटि-स्नान (Hip bath) भी देना चाहिए।

गरम स्नान के बीच रोगी की छाती तथा हाथ, पैर कम्बल से अच्छी तरह ढक कर रखना चाहिए।

आहार--रोगी को सिर्फ नींबू का रस और प्याज का रस देना चाहिए। जितना रस हो उसमें उतना ही पानी मिला दिया जाय और उसे रोगी को पिलाया जाय।

रोगी की अवस्था सामान्य हो जाने पर उसे न्यूट्रल बाथ (Neutral Bath) देना आवश्यक है। इस विधि से प्राकृतिक चिकित्सकों ने हैजे के रोगियों का सफलतापूर्वक उपचार किया है।

१९४५ में मध्यप्रान्त में डा० सुशीला नायर के नेतृत्व में जो हैजा निवारण आन्दोलन में कैम्प खोला गया था उसमें मुझे जब भी ऐसे रोग मिले जिनके गुर्दों ने समस्त एलोपैथिक दवाइयों के प्रयोग करने पर भी अपना काम करना बन्द कर दिया तो मैंने उन पर जल-चिकित्सा का प्रयोग किया। आरम्भ में मैंने जल-चिकित्सा के प्रयोग सेवाग्राम के निकट के एक गांव में संयोगवशात् किया था, उसके अनन्तर मध्यप्रांत में तो मैंने जल-चिकित्सा का प्रयोग बहुतेरे, रोगियों पर किया जिसका परिणाम बहुत ही आश्चर्यजनक रीति से सन्तोष प्रद हुआ।

आखिर रंग भी तो प्रकाश का ही एक अंश है। जल के विविध शक्तियों से प्रभावित होने का कारण है उसकी निर्गुणता [Neutrality]—यह न गर्म है, न ठंडा। इसका कोई स्वतंत्र रूप, रंग या स्वाद नहीं। यह शीघ्र ही दूसरे की विशेषता अपने में खींच लेता है। इसलिए सूर्य-रश्मि चिकित्सा में जल का महत्वपूर्ण स्थान है। यह सूर्य की संयुक्त शक्ति के अतिरिक्त पृथक-पृथक शक्तियों को भी धारण कर सकता है। सूर्य के दृश्य किरण-चित्र के सात रंगों में से किसी भी रंग को पारदर्शक माध्यम के द्वारा जल में सम्पुटित किया जा सकता है। कहने का मतलब यह है कि लाल रंग के शीशे के द्वारा सूर्य की केवल लाल रंग की प्रकाश-लहरियाँ ही छन सकती हैं, शेष छः रंगों की लहरियों का शोषण हो जाता है।

यों तो जल के बदले तेल, मिश्री, और नमक को भी सूर्य भावित (Charge) किया जा सकता है, परन्तु जल तैयार करने में चार विशेष सुविधाएं हैं जो अन्य पदार्थों में नहीं पाई जातीं। पहली बात तो यह कि जल सर्व-व्यापक होने के कारण बिना किसी प्रकार की कठिनाई के मिल सकता है। हमारे भारत में ऐसे लाखों निर्धन व्यक्ति हैं जिन्हें तेल और मिश्री मिलना भी दूभर होता है। उनके लिए तो जल तो एक दैवी वरदान के रूप में है। जल सभी के लिए समान रूप से सुलभ है। दूसरे यह कि अन्य पदार्थों की अपेक्षा जल कम समय में तैयार होते हैं। मिश्री या तेल ३० दिन से ६० दिन में सूर्य-भावित होते हैं जल केवल ४ से ६ या ८ घन्टे में तैयार हो जाता है। तीसरे, जल का प्रयोग आन्तरिक और वाह्य दोनों रूपों में हो सकता है। जल पीने के लिए भी दिया जा सकता है और पट्टी या पैक (pack) के रूप में प्रयोग किया जा सकता है। चौथे जल में कोई स्थल विशिष्टांश (physical residue) नहीं होता जो शरीर में जाकर किसी प्रकार की हानि पहुंचा सके। मिश्री की शर्करा नाजुक अवस्था में अल्प मात्रा में दिए जाने पर भी रोगी को हानि पहुँचा सकती है परन्तु जल के प्रयोग के सम्बन्ध में इस तरह की कोई आशंका नहीं की जा सकती।

जल तैयार करने की विधि—जल को सूर्य के रंगीन प्रकाश में रखने से वह विशेष गुणकारी हो जाता है। यह गुण सूर्य-रश्मि के किसी विशिष्ट रंग की लहरियों (Vibrations) के जल में समाविष्ट हो जाने के फलस्वरूप उत्पन्न होता है। जिस प्रकार ग्रामोफोन के रेकार्ड में नाद-कम्पन अंकित हो उठते हैं ठीक उसी प्रकार जल में भी रंग लहरियाँ प्रविष्ट हो जाती हैं। इस प्रकार से तैयार किए गए जल को रंग के अनुसार नीला, हरा या लाल जल कहते हैं।

जिस रंग का जल तैयार करना हो उसी रंग की बोतल खूब साफ कर लेनी चाहिए। अगर हो सके तो शीशे के काग लगाने चाहिए अन्यथा बाजारों में बिकने वाला साधारण काग से भी काम चलाया जा सकता है। शुद्ध ठंडे जल को उस बोतल में तीन-चौथाई भाग तक भर कर काग कस कर लगा देना चाहिए। इसके लिए वर्षा का जल श्रेष्ठ होता है, क्यों कि वह स्वच्छ होने के अतिरिक्त दीर्घकाल तक खराब नहीं होता। उसके अभाव में नदी या कुएं का जल भी प्रयोग में लाया जा सकता है। इस जल को छान या उबाल कर साफ कर लेना चाहिए। शहरों में नल का पानी ही ठीक होगा। बोतल को सदैव किसी काठ के टुकड़े पर रखना चाहिए।

सूर्य-प्रकाश में ४ से ६ घन्टे तक रखने से वह जल तैयार हो जाता है। सूर्य की रोशनी में जल देर तक रखने से अधिक गुणकारी होता है। नीली बोतल में तैयार किया गया जल पीली या लाल बोतल में तैयार किए जल की अपेक्षा अधिक दिनों तक उपयोगी बना रहता है। नीली बोतल का जल दो सप्ताह तक काम में आ सकता है परन्तु लाल या पीली बोतल का जल चार या पाँच दिन बाद बदल देना अच्छा है।

लाल और बैंगनी रंग की बोतलें बहुत कम मिलती हैं। परन्तु उनके अभाव में अगर उस रंग का काँच (Glass-sheet) मिल जाय तो किसी शीशे या चीनी मिट्टी के बर्तन के ऊपर उस कांच को रख कर वही गुण प्राप्त किया जा सकता है जो इस रंग की बोतल का होता है। अगर यह भी प्राप्त न हो तो उसी रंग का सिलोफाइन (Cellophine) कागज, जो बोतलों के ऊपर लपेटा जाता है, काम में लाया जा सकता है।

उपरोक्त रीति से तैयार जल की एक या दो औंस खूराक एक व्यक्ति के लिए पर्याप्त होती है। यह रोग अथवा रोगी की

अवस्थानुसार दिन में ३, ४ या ६ बार तक दिया जा सकता है। परन्तु समय कम रहने पर उसी अनुपात से जल की मात्रा भी कम कर देनी चाहिए। बच्चों, बूढ़ों तथा अशक्त रोगियों के लिए एक चम्मच जल काफी है। तीव्र रोगों में हमें इसे कई बार देना चहिए और इसे तब तक जारी रखना चाहिए जब तक कि रोग के लक्षण शान्त न हो जायँ।

विविध प्रकार के जल : उनके गुण तथा उपयोग

नील गगनांगन में विहार करने वाला सूर्य केवल गरमी ही नहीं बरसाता, उन शीतल किरणों को भी बिखेरता है जिनका अप्रत्यक्ष अनुभव किसी वृक्ष की हरी पत्तियों की सुखद छाया में ही कर सकते हैं। हरी पत्तियों में रवि की वे प्रखर किरणें अपनी उष्णता तिरोहित कर हरी-नीली प्रकाश-लहरियों का सुखद वितान तान देती हैं। क्लान्त पथिक इस शीतल छाया के लिए भ्रमवश तरु-पल्लव के ही प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करता है। वह भूल जाता है कि उसे यह शीतल वृक्ष की लहलहाती हुइ पत्तियाँ नहीं, सूर्य की वे शीतल रश्मियाँ ही प्रदान कर रही थीं!

वैज्ञानिक प्रयोगों एवं विश्लेषणों से यह प्रकट हुआ है कि इन्द्र धनुष के सात रंगों में से तीन रंग शीतल, तीन उष्ण और उनके बीच में हरा रंग तटस्थ है—न गर्म, न ठंडा। किरण-चित्र के एक ओर तो बैगनी, नीला और गहरा नीला रंग शीतल गुणकारक और दूसरे वर्ग के रंग उष्ण प्रकृति के हैं।

व्यावहारिक प्रयोग में केवल ५ रंग मुख्य माने गए हैं, जिनका चिकित्सा की दृष्टि से उपयोग होता है। बैगनी और लाल रंग केवल प्रकाश के ही रूप में बहुधा प्रयोग में लाए जाते हैं, जल के रूप में बहुत कम। कारण यह कि इन दो रंगों की बोतलें बहुत कम मिलती हैं। मैंने स्वयं बैगनी रंग की बोतल अब तक नहीं देखी है।

नीले बोतल में तैयार किये गए जल में नीले रंग के सभी गुण आ जाते हैं। नीला जल भी नीले रंग की तरह शीतल और कीटाणुनाशक है। डा० बैबिट (Babbit) ने नील रंग के इस अद्भुत एवं रहस्यमय गुण पर विशेष रूप से जोर दिया है। उष्ण-प्रधान देशों के लिए तो वरदान के रूप में है। उष्ण-प्रधान देशों में ही संक्रामक रोगों का बहुधा प्रकोप होता है, क्योंकि गर्मी के ही कारण रोगाणु (Micro organism) अनगिनती संख्या में उत्पन्न होते हैं। तापमान के शीघ्र-परिवर्तन से उद्वेग-क्रिया प्रचण्ड हो उठती है, जिसके कारण हैजा, मलेरिया, प्लेग जैसी महामारी का प्रकोप अधिक होता है। हमारे देश में अगर इन बीमारियों के प्रकोप के दिनों में नीले रंग का प्रयोग जल के रूप में किया जाय तो इससे रोग-संतप्त जनता का कल्याण होने के साथ धन के अपव्यय से बहुत अधिक रक्षा भी हो सकती है।

श्री ज्वाला प्रसाद ने ग्रीष्म ऋतु में हैजे और लू से बचाव के लिए नीले जल को एक महौषधि बताया है। कुत्तों को अगर नीला जल दिया जाय तो उनके पागल होने की सम्भावना ही न रहे। चिकित्सा के निवारणात्मक पहलू (Preventive side) की दृष्टि से नीले जल को बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है।

नीले जल का आन्तरिक प्रयोग हैजा, संग्रहणी, पेचिश ज्वर, पीलिया इत्यादि में होता है। ज्वर की दशा में बहुत सावधान से जल देना चाहिए। ज्वर को कभी दबाने की चेष्टा न करनी चाहिए। केवल तीव्र लक्षणों को दूर करने का प्रयत्न करना चाहिए। प्यास, कै और दस्त की अवस्था में जरूरत से ज्यादा जल की मात्रा देना ठीक नहीं। नीले जल का वाह्य प्रयोग हर प्रकार के जख्म, चोट, वेदना (दांत, सिर दर्द इत्यादि) में किया जाता है। जहरीले जानवरों के काटने पर भी यह धोने और गीली पट्टी बांधने के काम आता है। यह दर्द और जलन को शीघ्र दूर कर देता है और खून बन्द करने में भी सहायक है।

हलका नीला रंग गर्मी को शीघ्र कम कर देता है। क्योंकि इसमें शीतलता अधिक होती है। परन्तु जब फेफड़े के रोग जैसे खांसी, कास, दमा इत्यादि या आँख, कान, जैसे नाजुक अवयवों के रोगों में भी इसका प्रयोग होता है तो वह इतनी शीतलता सहन नहीं कर सकते। उनको थोड़ी उष्णता की भी आवश्यकता होती है। जहां ज्वर और खाँसी दोनों उपस्थित हों वहां हलका नीला रंग हानि भी कर सकता है। ऐसी अवस्थाओं में गहरा नीला (Indigo) रंग गुणकारी सिद्ध होता है। गहरे नीले में लाल रंग की हलकी छवि रहती है जो अत्यधिक शीतलता को कम कर देती है।

सूखी खाँसी पर गहरे नीले जल का सफल प्रयोग कर के मैंने देखा है। जुकाम के दब जाने से या किसी गर्म दवा के कारण अगर कफ सूख गया हो तो यह जल शीघ्र ही कफ को ढीला कर के बाहर फेंक देता है। यह प्रभाव के गीली पट्टी (Wet pack) के समान होता है।

इसका आन्तरिक प्रयोग फेफड़े के सभी रोगों पर किया जा सकता है। प्रारम्भिक दमा, कूकरखांसी, पसली चलना, निमोनिया और क्षय रोगों में भी इसका प्रयोग हितकारी होता है मन्दाग्नि, जिसमें पित्त का प्रयोग विशेष होता है, इस जल के पीने से शान्त हो जाती है। इसके अतिरिक्त आंख, कान और नाक की बीमारियों में—जैसे आँख का जाला, बहरापन, नाक से खून गिरना इत्यादि — यह प्रयोग किया जाता है। नक्सीर फूटने पर जल को सुड़कना चाहिए और जल में कपड़ा तर कर के दोनों आँखों के बीच रखना चाहिए।

बैगनी, नीला और गहरा नीला उच्चकोटि के रंग है। इनका केन्द्र सूक्ष्म जगत में है। आकाश से इनकी वर्षा होती है। जब हम हरे रंग पर आते हैं तो हमें स्थूल जगत का भान होने लगता है। हरा प्रकृति का रंग है। यह अधिक परिचित सा रंग हमें संतुलित शक्ति और नैसर्गिक शान्ति का संदेश देता है।

हरा रंग न गर्म है ठंडा फिर भी शांतिदायक है। इसका प्रभाव रक्तचाप पर विशेष रूप से पड़ता है गिरे हुये रक्तचाप (Low blood pressure) में गहरे हरे रंग का प्रकाश हृदय पर तीस मिनट तक डालना चाहिये। दोपहर में खाना खाने के बाद घंटे घंटे पर आधी आधी छटाँक हरा जल पीना चाहिए। रक्तचाप के बढ़ने पर हलके हरे रंग का प्रकाश देना चाहिए और खाने में हरे सलाद की मात्रा खूब होनी चाहिये।

हरे रंग से चर्म रोग भी अच्छे हो जाते है। फोड़े फुन्सी पर भी सफल प्रयोग किया जा सकता है। यहां तक कि कैन्सर (cancer) पर भी यह रंग प्रकाश और जल के रूप में लाभ दिखाता है, मगर बहुत बढ़ न गया हो। इसका आन्तरिक प्रयोग सिर दर्द, जुकाम और इनफ्लुएंजा पर भी लाभकारी होता है इसके साथ हरा प्रकाश भी डालना चाहिए।

लाल, पीला तथा नारंगी रंग के गुण एवं प्रभाव

अब हम सूर्य के किरण चित्र के दूसरी ओर ध्यान देंगे। यह पीले रंग से लेकर लाल रंग तक फैला हुआ है। बीच में नारंगी रंग शोभायमान है। यह सब रंग उष्ण और उत्तेजक हैं।

पीला रंग स्नायुओं को उत्तेजित करता है। शरीर की शुद्धि के लिये यह अनिवार्य है क्योंकि इसका रेचक प्रभाव यकृत और कोष्ठ पर पड़ता है। जिस व्यक्ति में इस रंग की कमी होती है वह पेट की गड़बड़ी, अजीर्ण, कब्ज, वायु विकार, मधुमेह, बवासीर, इक्जीमा, कुष्ट आदि व्याधियों से पीड़ित हो सकता है।

मधुमेह में पीला जल पीना और पीला प्रकाश सूर्य-चक्र पर डालना चाहिए। इससे कब्ज खत्म रहेगा और शुद्ध रक्त शरीर में लगेगा। परन्तु यह चिकित्सा से क्रम दो महीने तक चलाना चाहिए।

बवासीर भी पीले जल के अतिरिक्त प्रयोग से ठीक हो सकती है परन्तु खूनी बवासीर में पीला रंग नहीं पीना चाहिए। बादी बवासीर में पीला और खूनी में नीला जल देना उचित है। कब्ज में पीला जल के अतिरिक्त पीला प्रकाश नाभि पर डालना चाहिए। आधे घंटे सुबह और शाम यह प्रकाश देना चाहिए पीले रंग का कुष्ट में भी प्रयोग होता है और इसकी विधि 'जीवन' सखा में निकल चुकी है।

इसके बाद नारंगी रंग के गुण पर विचार करना है। यह पीला और लाल रंग के सम्मेल से बना है। अतः यह स्नायु उत्तेजक पीले रंग के अतिरिक्त रक्त-उत्तेजक लाल रंग के गुण से युक्त है। स्नायु और रक्त दोनों के उत्तेजित करने के कारण यह जीर्ण रोगों में बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ है। पुराना दमा, कफ ज्वर, गीली खाँसी, गठिया और अन्य जीर्ण वात व्याधियों में यह अपना प्रभाव दिखाता है। इनके अतिरिक्त यह गुर्दे की बीमारियों, पथरी और आँत उतरने में भी प्रयोग किया जाता है।

पुराने दमा में नारंगी जल के अतिरिक्त नारंगी प्रकाश भी सीने और गले पर डालना चाहिए। यह जल पेट भी साफ करता है इसलिए दमे में विशेष लाभदायक है।

गीली खांसी में भी यह कफ का बनना रोक देता है और संचित कफ को बाहर निकाल देता है।

गठिया में नारंगी जल के अतिरिक्त नारंगी या लाल प्रकाश भी जोड़ों पर डालना चाहिये जिससे रक्त-संचालन अच्छी तरह होने लगे।

लाल शीशी में तैयार पानी पीने के काम बहुत कम आता है। इसका प्रयोग वाह्य रूप में मालिश के काम आता है। लकवा या फालिज में लाल पानी से मालिश करना बहुत उपयोगी होता है।

उपरोक्त अध्ययन से स्पष्ट हो गया होगा कि विविधि प्रकार के तीव्र और जीर्ण रोगों में सूर्य की सप्तरंगी किरणों से तैयार जल से कितना लाभ हो सकता है। शरीर में जल सर्वत्र व्याप्त है। यह शीघ्र ही शरीर में फैल जाता है और जहां भी अमुक रंग की आवश्यकता होती है वहां शीघ्र ही पहुंचा देता है। उदाहरण के लिये मलेरिया ज्वर को लीजिये। अगर हम केवल नीला जल देंगे तो ज्वर तो कम हो जायगा परन्तु आंतों में संचित मल न निकल पायगा। अगर हम एक-चौथाई भाग पीला जल भी तीन चौथाई नीले जल में मिला देंगे तो कोष्ठ पीला रंग अपनी ओर खींच लेगा और रक्त नीला रंग शोषण कर लेगा, जिसके फल-स्वरूप पेट भी साफ हो जायगा और रक्त की अत्यधिक गर्मी शांत हो जायगी और मलेरिया के कीटाणु भी मर जायेंगे। शरीर के जिस भाग में जिस रंग की कमी होती है वह जल के द्वारा वहीं पहुँच जाता है, अगर उस रंग को शरीर के अन्दर पहुँचा दिया जाय।

इस में कोई सन्देह नहीं कि सूर्य की शक्ति से जल की आरोग्य-शक्ति और प्रखर हो जाती है और उसके प्रभाव को कोमल सुरक्षित और स्थायी बना देती है। यह जल की रंग-शक्ति धारण करने की क्षमता का स्पष्ट प्रमाण है जो दिना दिन परिपक्व होता जा रहा है और भविष्य में एक नई चिकित्सा-प्रणाली अर्थात् जल—सूर्य—चिकित्सा की ओर शुभ संकेत कर रहा है।

हमाम

सब के लिये बड़ा साबुन अथवा यह कह लीजिये कि बड़ा साबुन छोटे दाम में। इसके गुणोंकी सुप्रसिद्धता, इसका खास वज़न और कम दाम, जब कि हर चीज़ की क़ीमत बहुत बढ़ गई है, और इस सुगंधित तथा गाढ़े झाग ने इसे हिन्दुस्तान का सबसे बढ़िया साबुन सिद्ध कर दिया है।

स्टाक हर जगह उपस्थित है
अपने दूकानदार से हमाम माँगिये

दी टाटा आयल
मिल्स कं० लि०

A TATA PRODUCT

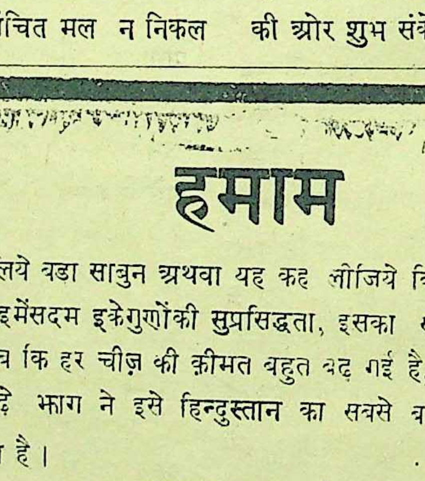

जल ही अमृत है !

प्रोफेसर रामचरण महेन्द्र, एम० ए०, डी लिट्०, डी० डी०

डा० रामचरण महेन्द्र हरबर्ट कालेज कोटा, (राजपूताना) के प्रोफेसर हैं। अंग्रेजी साहित्य के आचार्य होने के अतिरिक्त आप मनोविज्ञान के भी पंडित हैं। मानसिक एवं आध्यात्मिक स्वास्थ्य सम्बन्धी अबतक अपनी अनेक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं।

आपकी एक सबसे बड़ी विशेषता यह है कि आप जिस विषय पर भी लिखना चाहते हैं हमे अपने गंभीर अनुभव विस्तृत अध्ययन, एवं असाधाधारण प्रतिभा से अत्यन्त प्रभावोत्पादक तथा उपादेय बना देते हैं। प्रस्तुत लेख आपकी इसी विशेषता का परिचायक है।—सं०]

जिस व्यक्ति ने जल की रोग निवारण शक्ति को मालुम किया, वह वास्तव में बड़ा भाग्यशाली था। उसने मानव समाज का जो उपकार किया, उसके हम चिरऋणी रहेंगे। अति प्राचीन काल में यह महत्वपूर्ण दिन आया होगा। क्योंकि जल के रोग निवारक गुणों का उल्लेख हमें ऋगवेद में उपलब्ध है। आर्यों ने जल की स्तुति करते हुए निर्देश किया है—"आपो हिष्टामयोभुवः। तान ऊर्जे दधातन। महेरणायचक्षसे।" अर्थात् "हे जल ! तुम स्वास्थ्य के कारण हो, वस्तुतः हमें गया है कि—

आप इद्धा उ भेषजोरापो अभीव चातनी :।
आपस्सर्वस्य भेषजोस्तास्ते कृएवन्तु भेषजम् ॥

कहा ऐसा बल दो कि हम सत्य जान पावें दूसरी जगह

अर्थात् जल वह औषधि है, जो रोगों को भगाता है। वह समस्त रोगों के निमित्त औषधि के रूप में है। तुम्हारे समस्त रोगों को भी वह दूर करे।'

रोगों का निवारण करने के लिए हम किस किस प्रकार जल का प्रयोग कर सकते हैं ? प्रधान विधियां तीन प्रकार की हैं—-पानी पीकर रोग निवारण, स्नान शुद्धि द्वारा तथा पानी की गीली पट्टी बांधना। सर्वप्रथम हम पानी पीने के विषय को लेंगे। पानी कब्ज नाश की सर्वोत्तम औषधि है। कम पानी पीने से पेट का दूषित पदार्थ जम कर सड़ता है। उसे निकलने के लिए उसका कुछ गीला रहना अनिवार्य है। प्रातःकाल उठते ही थोड़ा सा जल पी लेने से शरीर में तरावट रहती है। उषः पान कब्ज की रामबाण औषधि है। उठते ही आध सेर जल पीजिए। फिर, थोड़ा सा टहलिये। कब्ज जड़ से चला जायगा। हजारों व्यक्तियों को इस से लाभ हुआ है। अपच में, भोजन के डेढ़ घन्टे पश्चात् गरम पानी पीने से अग्नि दीप्त होती है और उदर-शूल दूर हो जाता है। सरदी, प्रतिश्याय आदि में भी गरम जल पीने से अत्यधिक लाभ होता है। लोग चाय को बड़ा गुणकारी मान कर गर्म गर्म पीते हैं। वास्तव में, लाभ गर्म पानी का होता है, पेशाब के अवयव धुल जाते हैं और कुछ तरावट भी आती है। गले की जलन तथा अति भोजन के कारण पेट की जलन में कुछ कुछ समय पश्चात् एक एक चम्मच ठंडा जल पीना चाहिए। में रंग बिरंगी बोतलों में जल भर कर रखने से ऐसा आश्चर्यजनक जल तैयार होता है कि उससे प्रायः सभी रोग शान्त जा सकते हैं। चेहरे का रंग लाल रखने के लिए, स्फूर्ति-

दायक एवं तरोताजा दीखने के लिए कम से कम तीन सेर जल दिन में अवश्य पान करना चाहिए।

यदि मनुष्य के शरीर में चलते फिरते रक्त की तरलता नष्ट हो जाय या न्यून हो जाय, तो हम कदापि नहीं जीवित रह सकते। रुधिर की यह तरलता जल से ही कायम रह सकती है। जल का मुख्य कार्य शरीर के रक्त की शुद्धि करना है। स्नान से आप शरीर को बाहर से धोते हैं, पानी पीकर आप अपने शरीर में चिर संचित विषों को धोकर दूर कर देते हैं। जल गुर्दे, मूत्राशय आदि के संचालन का कार्य आसान कर देता है। अनेक व्यक्ति यदि जलोपचार करें, यथेष्ट मात्रा में जल का प्रयोग प्रारम्भ कर दें तो गठिया से बच सकते हैं। प्रमेह, वीर्यपात, मूत्र नली की जलन यथेष्ट जल के प्रयोग से दूर हो जाते हैं। अत्यधिक परिश्रम के कारण गहरे रंगदार लाल पीला पेशाब उतरना जल की न्यूनता का ही द्योतक है। जल का अधिकांश भाग तो पसीने आदि के रूप में बहिर्गत हो जाता है, थोड़ा सा भाग ही गुर्दों को धो पाता है। अतः यदि परिश्रम करते समय थोड़ा थोड़ा जल घंटे घंटे भर बाद पीने का क्रम रक्खें तो तरोताजगी बनी रह सकती है। बहुत से व्यक्तियों को अजीर्ण अथवा नजला प्रायः आवश्यकता से कम मात्रा में जल पीने के कारण ही होता है।

अमेरिका के सुप्रसिद्ध लेखक श्रीयुत बरनर मैकफैडन ने अपनी 'आहारशास्त्र' नामक पुस्तक में सविस्तार जलोपचार का विवेचन किया है। इस पुस्तक में आपने निर्देश किया है कि यदि अधिक प्यास लगी हो तो गुनगुना अर्थात् थोड़ा गरम पानी पीना उत्तम है। यदि सम्भव हो और किसी प्रकार आदत पड़ जाय तो जल को सम्पूर्ण भोजन करने के पश्चात् ही काम में लावे। मैकफैडन साहब एक स्थान पर कहते हैं कि स्वाभाविक प्यास भोजन के एक डेढ़ घंटे पश्चात् प्रतीत होगी। उस समय जल अवश्य पीना चाहिए। यदि पाचन शक्ति क्षीण हो, यह अग्नि- मांद्य तो उस समय भी गरम जल का प्रयोग करना उत्तम रहेगा। इससे पाचन-शक्ति उद्दीप होगी।

पानी कब पिएँ ?

इस प्रश्न का उत्तर प्रत्येक व्यक्ति के लिए पृथक् पृथक् है। बच्चे, वृद्ध, स्त्रियों, नवयुवक सब के लिए हम कोई एक नियम निश्चित नहीं कर सकते। हाँ, यह तो निर्विवाद है कि जब तृषा हो तभी जल-पान किया जावे। प्यास को यथासंभव मारा न जाय। अनेक व्यक्तियों को यह भ्रान्ति सी है कि भोजन के साथ जल का प्रयोग हानि कारक है। उससे पाचक रस निर्बल पड़ जाते हैं और अपच होता है। यह सब व्यर्थ है। भोजन के समय भी यदि थोड़े से जल का प्रयोग कर लिया जाय तो हानि नहीं। हाँ, यदि यकायक बहुत सा ठंडा जल भोजन के समय पी लिया जाय तो पेट की आन्तरिक अग्नि मंद हो जायगी तथा पाचन में अवरोध अवश्यम्भावी है।

हम कितना पानी पिएँ, यह प्रत्येक लिए पृथक् पृथक् है। युवक को, जो कठोर परिश्रम का शारीरिक कार्य करता है, पढ़ने लिखने का कार्य करने वाले क्लर्क, अध्यापक दूकानदार इत्यादि से अपेक्षाकृत अधिक परिमाण में जल की आवश्यकता प्रतीत होती है। फिर, परिस्थितियों तथा मौसम के अनुसार भी परिमाण में परिवर्तन होना आवश्यक है। गर्मी में अधिक प्यास प्रतीत होती है। सर्वोत्तम नियम यही है कि जब जितनी प्यास लगे, तभी अविलम्ब उसे शान्त कर लिया जाय, व्यर्थ दबा न दिया जाय। अन्यथा कब्ज फौरन हो जायगा। आवश्यकता से अधिक जल का प्रयोग भी हानिकारक है। इससे शुद्धि के अवयवों पर व्यर्थ का बोझ पड़ता है। आजकल अनेक लोगों को सोडावाटर, चाय, शरबत इत्यादि की झूठी तृषा प्रतीत होती है। यह लाभ के बजाय हानि पहुँचाने वाली झूठी प्यास है। अतः इससे सावधान रहें।

जल के विविध स्नान

लूईकूने साहब ने जल को इतना अधिक महत्व स्नान के कारण ही प्रदान किया है। लूईकूने साहब की सम्पूर्ण चिकित्सा प्रणाली केवल स्नानों पर ही अवलंबित है। लूईकूने का मूल सिद्धान्त रोगों की एक रूप है। उनके मत में रोग एक ही हैं, जो नाना रूपों में प्रस्फुटित होते हैं। शरीर के विभिन्न अवयवों में पेट मुख्य है अतः सब से

अधिक अत्याचार उसी बेचारे पर होते हैं। आवश्यकता से अधिक भोजन के कारण बहुत सा बोझ उस पर लाद दिया जाता है। फलतः विजातीय द्रव्य एकत्रित होने लगते हैं। ये विजातीय द्रव्य रोगों का बाना पहिन कर प्रकट होते हैं। इन विजातीय द्रव्यों को बाहर निकालने के लिए लुईकुने साहब ने दो प्रकार के स्नानों का आविष्कार किया है—उदर स्नान तथा मेहन-स्नान। इनसे अस्वाभाविक गर्मी भी दूर होती है। बहुधा ये चिर संचित विजातीय द्रव्य देर तक जमे रहते हैं। वस्तुतः शीघ्र आरोग्य के लिए उन्हें स्नानों द्वारा ढीला करते हैं। तत्पश्चात् उस कूड़े करकट में गति (Motion) उत्पन्न होती है। ढीला करने के लिए लुईकूने साहब के वाष्प स्नान तथा सूर्य-स्नान की व्यवस्था की है।

उदर स्नान के लिए एक टब में कुएँ का ताज़ा पानी इतना भरिये कि बैठते समय जांघ एवं नाभि के मध्य का भाग जल में डूबा रहे। इस प्रकार बैठ कर पेडू को जल से भीगे वस्त्र से धीरे धीरे रगड़ते रहिए। रोग तथा अवस्था के अनुसार दस मिनट तक यह स्नान लिया जा सकता है।

मेहन स्नान में टब में शीतल जल भर कर एक स्टूल या पटरा इस प्रकार रखना चाहिए कि सुभीते के अनुसार जननेन्द्रिय जल में डूबी रहे, अन्य अंग बाहर रहें। बाएँ हाथ की दो उंगलियों के मध्य इन्द्रिय को इस प्रकार पकड़े कि उसके आगे का कोमल अंश वाह्य झिल्ली से ढक जाय। अब इस चमड़े को पानी के अन्दर मुलायम रुमाल से धीरे धीरे मले। स्त्री रोगों, पुरुष घृणित रोगों में यह बहुत लाभप्रद है।

लूईकूने के वाष्प-स्नान के लिए साधारण बेंत की कुर्सी से कार्य हो सकता है। कुर्सी के नीचे संभाल कर खौलता हुआ जल रख कर कुर्सी पर रोगी को बिठा दीजिये और सम्पूर्ण शरीर को कम्बल से इस प्रकार ढक दीजिए कि वाष्प बाहर न निकलने पावे। इस बर्तन को अंगीठी या स्टोव के ऊपर भी रख सकते हैं।

जल की पट्टी का प्रयोग

जल की पट्टी नाना प्रकार की हो सकती है। आवश्यकतानुसार सम्पूर्ण शरीर पर पानी की पट्टी बाँधी जा सकती है तथा किसी अंग विशेष पर भी। फिर पट्टी ठंडे तथा गर्म जल दोनों ही प्रकार की हो सकती है। यदि कट जाय तो ठंडे पानी की पट्टी ही सर्वोत्तम है। उदर के विकारों के लिए गर्म पट्टी पेड़ू पर बांधनी चाहिए। गले के दर्द में गर्दन पर गर्म पट्टी से सेंक सकते हैं। पेट के दर्द में गर्म जल बोतल में भर कर सेंकना बहुत उत्तम है। स्थानिक रोग मिटाने के लिए गरम पानी की पट्टी का प्रयोग ही सर्वोत्तम है। श्री पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल इस विषय में लिखते हैं—"स्थानिक दर्द मिटाने के लिए कई परतवाली फलालैन की पट्टी लेना चाहिए। उसको खूब गरम जल में भिगो निचोड़ कर उसकी पट्टी बाँधनी चाहिए। फिर उसके ऊपर उसी प्रकार ऊनी वस्त्र बांध लेना चाहिए जिस प्रकार ठंडी पट्टी में। गरम पट्टी के बाद हमेशा फिर ठंडी पट्टी बाँधनी चाहिए, अन्यथा लाभ के बदले हानि होगी। निमोनिया में इस प्रकार एकान्तर से कई बार गरम और ठंडी पट्टी का प्रयोग करना चाहिए। गरम पट्टी का प्रयोग सब प्रकार की वेदना मिटाने के लिए किया जा सकता है, किन्तु जलोदर में भूलकर भी गरम पट्टी का प्रयोग नहीं करना चाहिए।"

जब ज्वर अधिक हो तो ठंडी पट्टी के प्रयोग से ज्वर कम हो जाता है। दूर तक टहलने के पश्चात् दुखते हुए पाँवों को धो डालने से थकावट दूर होती है। ठंडे पानी के स्नान बड़े बलबर्द्धक एवं दीर्घजीवन देनेवाले होते हैं। स्नान में जब जल कुछ दूरी से डाला जाता है तो उसे तरेरा कहते हैं। तरेरा केवल शीतल जल का ही उत्तम है। यदि ऊपरी भागों में रोग हो तो कमर से ऊपर तरेरा लेना चाहिए; निचले भागों के लिए कमर से नीचे तरेरा लीजिए। नेत्र कान इत्यादि के शूल से मुक्ति के लिए सिर पर ठंडे पानी का तरेरा उत्तम है। शरीर के भिन्न भिन्न अवयवों पर भी आवश्यकतानुसार किसी जल-चिकित्सा के विशेषज्ञ से पूछ कर तरेरे का प्रयोग किया जा सकता है।

जल के इन असंख्य उपयोगों को देखकर ऋग्वेद में उचित ही कहा है—"हे जल, तुम्हीं स्वास्थ्य के कारण हो, अतः हमें ऐसा बल दो कि सत्य को जान पावें।"

खनिज जल

श्री कमलेश श्रीवास्तव, बी० ए०

सृष्टि के निर्माण में जल-तत्त्व का विशेष योग है। जीवन का विकास प्रधानतया जल के ही द्वारा हुआ है। जिन रासायनिक क्रियाओं द्वारा प्राणियों के कलेवर (Organism) का निर्माण होता है वे जल की ही उपस्थित में सम्भव हैं।

जल के अनेक प्रकार हैं। वाह्य रूप में सभी जल एक से होते हुए भी अपने गुण एवं उपयोगिता की दृष्टि से अलग-अलग महत्व रखते हैं। यहां पर विद्वान लेखक ने जल-तत्त्व की मूल उत्पति से लेकर उसके विभिन्न रूपों का वैज्ञानिक विवेचन किया है। हमारे स्वास्थ्य एवं आरोग्य के लिए खनिज-जल (mineral water) का क्या महत्व है, यही इस लेख का मुख्य विषय है।

आप देखेंगे कि यद्यपि अनेक रोगों में खनिज जल महौषधि के रूप में है फिर भी इसकी कुछ विशिष्ट मर्यादाएं हैं जिनका पालन किए बिना खनिज जल के प्रयोग से पूरा पूरा लाभ नहीं उठाया जा सकता। इसके अलावा अन्य कई ज्ञातव्य बातें भी आपको इस लेख में मिलेंगी। जिनकी जानकारी प्राप्त करना जलोपचार के लिए वांछनीय ही नहीं अनिवार्य भी है। सं०]

जल की उत्पत्ति के विषय में ऐसा अनुमान किया जाता है कि जिस समय पृथ्वी सौर महापिंड से पृथक हुई उस समय एक कल्पनातीत महा उत्ताप के कारण उसके सारे मूलतत्त्व (Elements) वाष्पीय दशा में सारे आकाश में फैले थे। इन्हीं मूलतत्त्वों में हाईड्रोजन और आक्सीजन भी थे। उस भीषण दाह में इन मूलतत्त्वों के परमाणु इतने अधिक वेग से स्फुरित हो रहे थे कि उन्हें परस्पर रासायनिक सम्बन्ध जोड़ने का अवकाश ही न था। लाखों वर्षों के पश्चात् यह संयोग सम्भव हो सका, फिर भी उस योग का स्वरूप वाष्पीय ही रहा होगा। करोड़ों वर्षों के पश्चात् जब ताप कुछ कम हुआ तो यह वाष्प बादलों के रूप में परिवर्तित हो गया। यह बादल जब बरसे होंगे तो इनकी बूंदे धधकती हुई पृथ्वी के तल तक पहुँचने के पूर्व ही वाष्पीभूत होकर उड़ गई होंगी। लाखों वर्षों तक ठंडा होने के पश्चात् यह सम्भव हो सका होगा कि पानी भाप से जलरूप में घनीभूत हो. पृथ्वीतल के गड्ढों में दे सका। जल से भरे यही गड्ढे आजकल महासागर के नाम से पुकारे जाते हैं। इन्हीं महासागरों सारे धरातल पर निरंतर जल का वितरण हुआ करता है। इस वितरण द्वारा पानी पृथ्वी पर प्रत्येक स्थान में वाष्प, जल अथवा हिम के रूप में व्याप्त रहता है।

पृथ्वी पर जल प्रचुर परिमाण में व्याप्त है। उसके सबसे बड़े पार्थिव भंडार पृथ्वी के महासागर हैं। जिस समय पानी धरातल पर टिक सका होगा उस समय जहां जहां उसकी पहुँच हुई होगी वहां के घुलनशील पदार्थ उसमें घुल गये होंगे। इसीलिये समुद्र-जल खारा है। इस जल में ३॥ प्रतिशत विभिन्न लवण रहते हैं, जिनमें से मुख्य हैं—सोडियम क्लोराइड (साधारण नमक), मैग्नीशियम क्लोराइड, पोटैशियम क्लोराइड, कैलशियम और मैग्नीशियम के सल्फेट्स इत्यादि।

केवल जड़ जगत में ही नहीं प्राणि जगत् में भी पानी प्रचुर परिमाण में व्याप्त रहता है। मनुष्य-शरीर में अवस्था के अनुसार ६० से ८० प्रतिशत पानी रहता है। वनस्पतियों के कलेवर में ९८ प्रतिशत तक पानी रहता है। यहाँ तक कि लकड़ में भी ५० प्रतिशत पानी रहता है। संयुक्त रूप में पानी कुछ रासायनिक यौगिकों (Chemical compounds)—जैसे मैदा, शकर आदि—में और कुछ लवणों—जैसे फिटकिरी, तूतिया आदि—में भी पाया जाता है।

वैसे तो कोई भी ज्ञात वस्तु पानी में सर्वथा अघुलनशील नहीं होती। पत्थर, शीशा, सोना आदि भी अति

सूक्ष्म परिमाणों में पानी में घुलते रहते हैं--ऐसे सूक्ष्म परिमाणों में कि उसका निर्धारण हम साधारण रीतियों से नहीं कर सकते। हवा भी कुछ अंशों में पानी में घुलती है। पानी में इस घुली हुई हवा की आक्सीजन हीं जलचरों को जीवनदान करती है।

वर्षा-जल स्रवित (Distilled) होने के कारण अत्यन्त शुद्ध होता है फिर भी उसमें मार्ग के धूलकण आदि अशुद्ध पदार्थ मिले रहते हैं। सूक्ष्मांशों में आक्सीजन (Oxygen), नाइट्रोजन, (Nitrogen), कारबन डि० आक्साइड (Corbon dioxide,) अमोनिया (Ammonia), अमोनियम नाइट्रेट (Ammonium Nitrate) आदि भी मिले रहते हैं। पृथ्वी में शोषण होने पर जब यह वर्षा जल भूमि के अन्दर उतरता है तो उसमें मिले हुए जीव पदार्थ पृथक होते जाते हैं परन्तु मार्ग में पड़ने वाले घुलनशील खनिज, लवण आदि को वह घोलता हुआ नीचे उतरता चला जाता है। इन लवणों में सोडियम (Sodium) कैलशियम (Calcium). और मैगनेशियम (magnesium) के क्लोराइड (chlorides) कैलशियम और मैगनेशियम् के बाई कारबोनेट (Bi-carbonatss) और सलफेट (Sulphates) मुख्य हैं। छिद्रमय भूमि से होकर यह जल अभेद्य (Impermeabile) स्तरों पर एकत्र हो जाता है। इस जल को आभ्यांतरिक (Undergraound) जल कहते हैं मार्ग मिलने पर यही जल स्रोत रूप में धरातल के ऊपर आ जाता है। इस प्रकार के स्रोत जो आभ्यांतरिक जल धाराओं द्वारा बनते हैं कुछ खनिज गुण रखते हैं। कभी-कभी स्रोत जल में ऐसें पदार्थ घुल जाते हैं जो स्वास्थकारी और रोगनाशक होते हैं। कारण यह जब जल खनिज पदार्थों से होकर आता है इसलिए उसमें खनिज पदार्थों के घुलनशील अंश घुल जाते हैं जिससे जल में विभिन्न खनिजों के गुण समा जाते हैं। इस प्रकार का खनिज जल बाजार में दवा की दूकानों पर भी मिलता है और औषधियों के रूप में लोग इसका प्रयोग करते हैं।

आभ्यांतरिक जल अपने साथ बहुत से घुले हुये खनिज धरातल के भीतर से स्रोतों के जरिये बाहर आता है और स्रोत के मुख के आसपास इस खनिज को दबाव व गर्मी कम हो जाने के कारण जमा कर देता है। इस प्रकार के खनिज गुण सम्पन्न जलाशय सेराटोगा, न्यूयार्क, कार्लवाद, बाथ (इंगलैंड), विशी (फ्रांस), बोर्नियो (इटली), आदि स्थानों में पाये जाते हैं। गाइसर कुण्ड के मुख पर भी प्रायः इस प्रकार के खनिज जमा हो जाते हैं जो स्वास्थ्य के लिये लाभकारी माने जाते हैं। इस प्रकार के गाइसर कुड उत्तरी अमेरिका के 'यलो स्टोन नेशनल पार्क (Yellow stone national park) में पाये, जाते हैं।

भारतवर्ष में भी मुंगेर, विन्ध्याचल आदि स्थानों में इस प्रकार के जलाशय पाये जाते हैं जिनका जल लोग बड़ी श्रद्धा, भक्ति के साथ पीते हैं। अश्रुवापन में भैरव-कुंड और देहरादून में गन्धक के स्रोत प्रसिद्ध हैं। राजगिरि में भी इस प्रकार के खनिज जल के झरने पाये जाते हैं जिनका जल बहुत ही मीठा और स्वास्थ हितकारी के लिये होता है। इस प्रकार के जल का व्यवहार करने से भोजन शीघ्र ही और अच्छी तरह पच जाता है। शरीर की अग्नि भी उद्दीप हो उठती है जिससे भूख भी अच्छी लगती है। परन्तु इस प्रकार के जल का आवश्यकता से अधिक प्रयोग करना हानिकारक भी सिद्ध हुआ है। कुछ दिनों पश्चात् उसी प्रकार के जल की आदत सी पड़ जाती है और यदि कहीं परिस्थित वश दूसरा जल पीना पड़ता है तो शीघ्र ही अपच हो जाता है।

प्रसंगवश यहाँ पर गंगा-जल का वर्णन कर देना अनुचित न होगा। अपने इन्हीं खनिज गुणों के कारण गंगा का जल हिन्दुओं में इतना पवित्र और श्रेष्ठ माना गया है। समतल भूमि में आने पर इस जल के बहुत से गुण नष्ट हो जाते हैं फिर भी हरद्वार के आगे का जल आज दिन भी अत्यन्त गुणकारी, स्वास्थ्यवर्द्धक और रोगनाशक है। गंगा नदी में नहाने से पाप कटने का अभिप्राप्त यही है कि अनेक प्रकार के रोगों में गंगा जल लाभ पहुँचाता है। कहा जाता है कि प्रतिदिन गंगा में स्नान करने से कोढ़ तक अच्छा हो जाता है।

यहाँ पर जल की कुछ दैनिक रासायनिक क्रियाओं का भी वर्णन कर देना आवश्यक ही प्रतीत होता है। हमारे शरीर में पानी का एक महत्वपूर्ण कार्य यह कि वह शरीर के उच्छिष्ट पदार्थों

को घोलकर या उनमें मिलकर स्वेद अथवा मलमूत्र के रूप में बाहर निकाल दे। इन उच्छिष्ट पदार्थों के शरीर में रहने से नाना प्रकार के रोग पैदा हो सकते हैं। इसलिये प्यास रहने पर भी पानी न पीना निश्चय ही रोग को निमंत्रण देना है। और प्यास भी उसी समय लगती है कि जब वाष्पीकरण अथवा निष्कासन के कारण हमारे शरीर में पानी की कमी हो जाती है और शरीर में होनेवाली रसायनिक क्रियाओं के स्वाभाविक संचालन में बाधा पड़ने लगती है। अन्य वस्तुओं के साथ भी पानी की रासायनिक प्रतिक्रियायें (chemical Reactions) होती रहती हैं। पानी में सोडियम या फासफोरस डाल देने से पानी में आग सी लग जाती है। इस प्रकार के आश्चर्यजनक खेल बहुधा हम नगरों में देखते हैं। पानी को चूने के साथ जो प्रतिक्रिया होती है उससे इतनी गर्मी का उत्पादन होता है कि पानी उबलने लगता है। इस प्रकार के चूने के पानी में क्षारीय (caustic) गुण होते हैं और बच्चों की पेट की बीमारियों में लाभकारी सिद्ध हुये हैं। धातुओं की कई अन्य 'आक्साइड' (Oxides) भी पानी में घुलकर क्षारों का उत्पादन करते हैं।

विद्वानों में खनिज खल की औषधि के रूप में उपयोगिता पर गंभीर मतभेद है। कुछ लोगों का दावा है कि खनिज जल ही सम्पूर्ण शारीरिक व्याधियों की एकमात्र महौषधि है। परन्तु हमारे पास इसके विरुद्ध कहने को भी पर्याप्त सामग्री है। खनिज जल का पूरा पूरा लाभ हम उस समय तक नहीं उठा सकते जब तक कि हम और दूसरे प्रयोगों का सहारा न लें, जैसे भोजन में सुधार, व्यायाम, मालिश आदि। इसके अतिरिक्त खनिज जल में घुले हुये धातु उतने लाभकारी नहीं हो सकते जितने कि फल आदि।

द्वितीय जल का महत्व उसके घनत्व पर पूर्ण रूप से अवलम्बित है। खनिज जल में धातुओं के घुल जाने के कारण उसका धनत्व भी कुछ बढ़ जाता है जिसकी वजह से ऐसा जल शीघ्र ही शरीर के रुधिर के अनुकूल नहीं पड़ता। जल का स्वास्थकारी गुण बहुत कुछ इस बात पर निर्भर करता है कि उसका घनत्व मनुष्य शरीर के रुधिर के घनत्व के अनुपात (Ratio) में रहे। इसी कारण से खनिज जल के स्वास्थकारी गुण बहुत कुछ सीमित से हैं। फिर भी खनिज जल का वाह्य प्रयोग लाभकारी सिद्ध हुआ है। स्विट्ज़रलैंड में इस प्रकार के खनिज जल का प्रयोग प्राकृतिक चिकित्सक लोग किया करते हैं। इसके प्रयोग का यह प्रभाव मनुष्य शरीर पर पड़ता है कि त्वचा में यथेष्ट चैतन्यता आ जाती है जिसके कारण शरीर के दोषों के निष्कासन (Elimination) में सहायता मिलती है। कुछ विशेष रोग ऐसे भी हैं कि जिनका निदान खनिज जल की सहायता से आशातीत सफलता के साथ किया जाता है। गठिया के रोगियों को खनिज जल के प्रयोग से यथेष्ट आराम मिलता है। और इसी सिद्धांत पर यूरोप में खनिज जलाशयों के आस-पास गठिया से पीड़ित रोगियों की चिकित्सा की जाती है। इस प्रकार के पूरा पूरा लाभ उठाने के लिये प्रकृति के और की सिद्धांतों का सहारा लेना पड़ता है जैसे, भोजन में सुधार, उपवास, व्यायाम, विशेष प्रकार के स्नान आदि। परन्तु सभी प्रकार की बीमारियों में खनिज जल का एक मात्र प्रयोग उचित नहीं। कुछ रोगों पर इसका प्रयोग लाभकारी सिद्ध हुआ है और अधिकतर रोगी खनिज जल के प्रयोग को निरर्थक ही पाते हैं।

खनिज जलाशयों की एक अपनी स्वयं की मनोरंजक कहानी भी है। योरोप में बहुधा इस प्रकार के जलाशय लोगों को अपनी ओर आकर्षित करते हैं और उनके चारों ओर एक छोटा-मोटा नगर सा बस जाता है। रोगियों के लिए विश्राम एवं चिकित्सा का एक अलग स्थान सा बन जाता है और साथ ही साथ एक व्यापार केन्द्र भी। कुछ लोग अपना स्वास्थ्य-गृह खोलकर धन कमाने का एक अच्छा जरिया भी निकाल लेते हैं। दुःख की बात तो यह है कि भारतवर्ष में इतने खनिज जल के जलाशयों के होते हुए भी अभी तक लोगों का ध्यान उधर नहीं गया है। यदा-कदा घूमने के विचार से लोग कभी कभी राजगिरि आदि स्थान पर पहुँच जाते हैं परन्तु अभी तक चिकित्सकों ने उन जलाशयों का विशेष प्रयोग करना नहीं आरंभ किया है। हमारी सरकार ने भी इधर कोई ध्यान नहीं दिया है। फिर भी हमारे सम्मुख एक उन्नत भविष्य है यदि हम इन जलाशयों का उचित प्रयोग करने लग जांय। रोगियों को भी यथेष्ट सुविधायें मिलेंगी और साथ ही साथ व्यापार की दृष्टि से भी इन जलाशयों का प्रयोग लाभकारी है।

जल-चिकित्सा का महत्त्व

डा० कृष्ण वर्मा, एन० डी, संचालक, नेचर क्योर हास्पिटल, मलाड, बम्बई

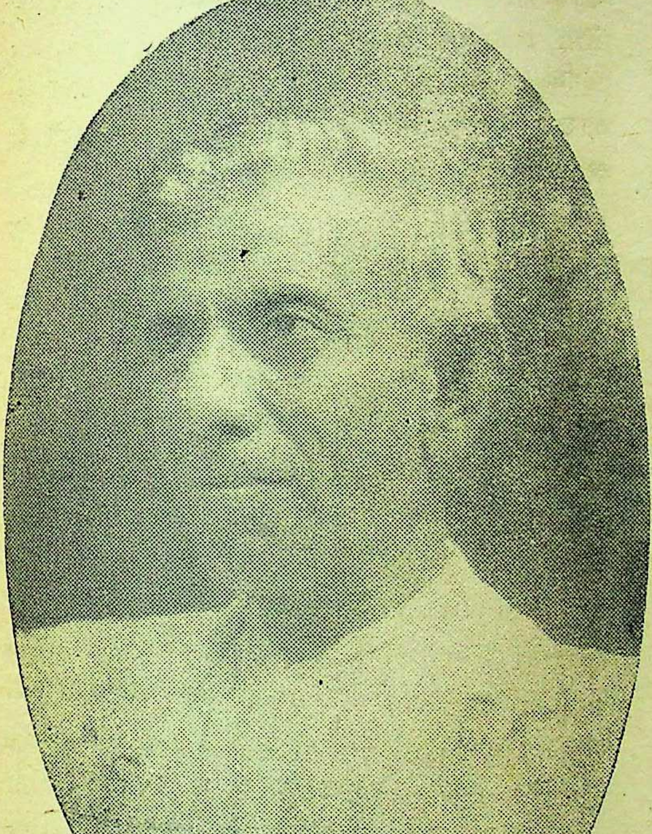

लेखक

डा० कृष्ण वर्मा भारत के वयोवृद्ध एवं अनुभवी प्राकृतिक चिकित्सकों में हैं। युवावस्था में आप क्षयरोग से पीड़ित हो गए थे, डाक्टरों से जवाब मिल चुका था। चारों तरफ से निराश हो जाने पर आपने प्रकृति की शरण ली। प्रकृति की कृपा से आपने स्वयं स्वास्थ्य एवं आरोग्य लाभ किया तथा अबतक न जाने कितने 'असाध्य' रोगियों को भी स्वास्थ्य एवं आरोग्य प्रदान किया है।

मलाड, बम्बई, में आपने प्रायः ३५ वर्ष पूर्व 'नेचुरल हीलिंग होम' नामक एक छोटा-सा चिकित्सा गृह स्थापित किया। इस संस्था को उत्तरोत्तर सफलता मिलती गयी और आज वह 'नेचर क्योर हास्पिटल' के नाम से प्रसिद्ध है।

आपने प्रस्तुत लेख में देश-विदेश में प्राकृतिक चिकित्सा की प्रगति का उल्लेख करते हुए यह प्रतिपादित किया है कि हम इस समय चिकित्सा के संक्रान्ति-काल में हैं। भविष्य में औषधि प्रणाली का लोप और नैसर्गिक प्रणाली का उत्कर्ष एवं व्यापक प्रसार होना अनिवार्य है। विभिन्न रोगों में जलोपचार सम्बन्धी आपके अनुभव तो बहुत ही प्रभावोत्पादक एवं उपयोगी अनुकरणीय है। —सं०]

जल को 'जीवन' तथा 'अमृत' कहा गया है—ये दोनों पर्यायवाची शब्द इस तथ्य के संकेतक हैं कि आरोग्य एवं अनारोग्य, इन दोनों अवस्थाओं में जल का महत्व अपरिमेय है। यह रोगों का नाश करने, मनुष्य को सदा नीरोग रखने तथा बल-बुद्धि बढ़ाने के लिए एक महौषधि के समान है। हमारे पूर्वजों ने सम्भवतः इसी हेतु जल के प्रयोग को एक प्रकार का धार्मिक रूप दे रक्खा था। आयुर्वेद में कहा गया है, "दिवस्यान्ते पिवेत् दुग्धं, निशान्ते शीतल जलम्।" अर्थात् दिवस के अन्त में—शाम को दूध—और रात्रि के अन्त में—प्रातः काल—शीतल जल पीना चाहिए। यहाँ पर प्रातः काल शीतल जल पीने का मतलब उषः पान से है। उषः पान का हमारे

प्राचीन ग्रंथों में बड़ा महत्व बताया गया है। इसकी विधि यह है कि रात्रि के समय ताँबे के पात्र में जल भर कर रख दे और वही जल सूर्योदय से ३ घन्टे पहले उठ कर ६० से ८० तोले के परिमाण में पी लिया जाय। इससे मल की शुद्धि अच्छी तरह हो जाती है। इसी श्लोक में आगे कहा गया है कि रात्रि के अन्त में ठंडा पानी, दिन के अन्त में गाय का धारोष्ण दूध और भोजन के अन्त में मठा पीना चाहिए।

इस नियम का पालन करने वाले व्यक्ति को न तो कभी वैद्य की जरूरत पड़ेगी और न दवा की। इस एक छोटे से श्लोक में आरोग्य विषयक अनेक ग्रंथों का निचोड़ रख दिया गया है। सचमुच यह बड़े खेद की बात है कि आज हम अपने पूर्वजों की अमृतवाणी की सर्वथा अवहेलना कर सभी बातों में विदेशियों का अनुकरण करने लग गए हैं जिसका परिणाम भी हमें बुरी तरह भोगना पड़ रहा है और आज हमारे यहाँ औसत आयु केवल २५ वर्ष की रह गयी है, जबकि प्राचीन समय में लोग सौ-सवा सौ वर्ष तक जीवन का उपभोग करते थे। इस बात के भी प्रमाण हैं कि हमारे पूर्वजों द्वारा बताये गए आरोग्य-सम्बन्धी नियमों से विदेशियों ने लाभ उठाया, उनका प्रयोग किया और इस प्रकार अपने आरोग्य एवं आयुष्य की वृद्धि की।

आज संसार के प्रायः सभी देशों में जिस जल-चिकित्सा को बड़ा महत्व दिया जा रहा है, उसकी मूल-उत्पत्ति आर्यावर्त्त में ही हुई है। डा० पोप अपनी पुस्तक 'प्रैक्टिकल हाइड्रोथिरैपी' (Practical Hydrotherapy) में लिखते हैं:—उपचार के रूप में जल का प्रयोग शुरू-शुरू में हिन्दू लोग ही करते थे। जल-चिकित्सा का जन्म प्राचीन काल में हो ही चुका था। रोग-निवारक साधन के रूप में जल का प्रयोग बहुत प्राचीन समय से होता आ रहा है। प्राचीन समय के हिन्दू, फारसी, यहूदी, मिस्री, और यूनानी लोग विभिन्न प्रकार के रोगों के उपचार में जल का प्रयोग करते थे। प्राचीन काल के मिस्त्र के निवासी नील नदी की उसी प्रकार पूजा करते थे जिस प्रकार हिन्दू लोग गंगा ही पूजा करते हैं और उनका विश्वास था कि इसके जल में स्नान करने से भूमि के ही समान वंध्या स्त्री भी उर्वरता का गुण प्राप्त कर सकती है--बाँझों के भी सन्तान हो सकती है।

अमेरिका के विश्व-विख्यात प्राकृतिक चिकित्सक डा० कैलाग ने, जिन्होंने अपनी सौ वर्ष की आयु पूरी कर हाल ही में स्वर्गा-रोहण किया है, अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'रैशनल हाइड्रोथिरैपी (Rational Hydrotherapy) में इस सत्य का प्रतिपादन किया है कि मनुष्य को सताने वाली सौ में नब्बे बीमारियां जलोपचार द्वारा बड़ी आसानी से और सदा के लिए निर्मूल की जा सकती हैं।

आपका कहना है—आधुनिक वैज्ञानिक अन्वेषण ने इस महान सत्य को सुदृढ़ एवं निश्चित आधार पर प्रतिष्ठित कर दिया है कि रोग-निवारण की शक्ति चिकित्सकों तथा उनकी दवाइयों में नहीं होती। रोग-निवारण की शक्ति स्वतः शरीर-प्रणाली में ही निहित है जो शरीर के अवयवों के निर्माण तथा उन्हें कायम रखने की शक्ति के रूप में प्रकट होती है। दूसरे शब्दों में शरीर अपनी चिकित्सा स्वयं करता है। विशिष्ट तापमान के जल का आवश्यकतानुसार बाह्य अथवा आन्तरिक प्रयोग किए जाने पर वह रोग कारक अवस्थाओं का प्रतिरोध करने में शरीर-प्रणाली को सहायता पहुंचाता है। जलोपचार ही एक मात्र ऐसी चिकित्सा-विधि है जिसके द्वारा समूचे शरीर में अथवा शरीर के किसी विशिष्ट भाग में रक्त को और वस्तुतः शरीर की प्रत्येक प्राण-धारक क्रिया को समुचित रीति से संचालित किया जा सकता है।

'हाइड्रोपैथिक एनसाइक्लोपीडिया' (जल-चिकित्सा संबन्धी विश्व-कोष) के रचयिता डा० ट्रौल का विचार है कि जलोपचार का प्रयोग सभी रोगों में लाभदायक एवं सर्वश्रेष्ठ है। इसी प्रकार प्रिसनिज की 'दि नेचुरल मेथड्स आफ हीलिंग,' क्लेटन की 'क्यूरेटिव ट्रीट मेंट आफ डिजीजेज,' लूईकुने की 'न्यूसाइन्स आफ हलिंग' आदि पुस्तक जलोपचार के महत्त्व को प्रतिपादित करती हैं।

मेरी एस० जी० निकोल्स अपनी पुस्तक 'ओमन्स वर्क वाटर क्योर' में लिखती हैं कि बहुत से लोगों का जो यह ख्याल है कि जल-चिकित्सा का प्रयोग केवल जीर्ण रोगों में ही कारगर होता है, यह उनकी भ्रान्ति ही है। कई

माताएं अपने बच्चों के ज्वर आदि तीव्र रोगों से पीड़ित होने पर औषधोपचार के लिए डाक्टरों और वैद्यों को बुलाती हैं। वे यह नहीं जानतीं कि उस कोमल अवस्था में इन जहरीली औषधियों का बच्चों के शरीर पर कितना भयानक प्रभाव पड़ेगा। यदि इस तरह की अवस्थाओं में जलोपचार की विधि अपनाई जाय तो रोगी थोड़े दिनों में ही आश्चर्यजनक रूप से नीरोग हो जायगा। यदि रोगी में पर्याप्त जीवन-शक्ति होगी तो जलोपचार का कोई अवांछनीय परिणाम न होगा और वह शीघ्र आरोग्य लाभ कर लेगा।

उदाहरण के लिए यहाँ पर मैं कतिपय रोगों में जलोपचार की आश्चर्यजनक सफलता का उल्लेख कर देना आवश्यक समझता हूँ। इनमें से एक दृष्टान्त डा० कोयरनेर (Dr. Koerner) की प्रसिद्ध पुस्तक 'स्योरेस्ट क्योर आफ फेब्राइल डिजीजेज' (Surest cure of Febrile diseases) से यहां पर दिया जाता है :—

यकृत के प्रदाह की चिकित्सा

'एक वयोवृद्ध महिला (आयु ६०) यकृत प्रदाह (Hepatitis) से पीड़ित हो रही थीं। अपनी बीमारी के के छठें दिन उन्होंने मुझे बुलाया। इन ६ दिनों में उनका डाक्टरी इलाज हुआ था, लेकिन इससे उनकी बीमारी कम होने के बजाय और भी बढ़ गयी। फलतः उन्होंने प्राकृतिक चिकित्सा प्रणाली की भी आजमाइश करनी चाही और मुझे बुलाया। यकृत के स्थान पर जोरों का दर्द था। पेट फूल गया था। बुखार बहुत तेज, जोरों की प्यास, मुंह का स्वाद कड़ुवा, बार-बार उबकाईं आना, ये सब लक्षण रोगिणी में प्रकट हो रहे थे। उस रोगिणी पर गीले कपड़े की पट्टी का प्रयोग किया गया। एक बार के प्रयोग में ही उस का दर्द कम हो गया। उसकी हालत तेजी के साथ सुधरने लगी और एक हफ्ते में वह बिलकुल चंगा हो गयी।

चेचक में जल का प्रयोग

एक नाजुक बदन की सुन्दरी स्त्री के चेचक की बीमारी हो गयी। कैथलिक धर्मावलम्बी होने के कारण उसने धार्मिक भावना से प्रेरित होकर उपवास किया। कंठमाला की बीमारी होने के कारण वह अपनी जल-चिकित्सा करा रही थी। उसे जोरों से जाड़ा देकर तेज बुखार शुरू हुआ। शरीर में वेदना, सिर दर्द, मुंह का फूल जाना आदि लक्षण प्रकट हुए। वह जीवन से निराश सी हो गयी।

चिकित्सा—उस रोगिणी की चिकित्सा इस प्रकार की गई। पहले दिन उस पर गीली चादर की पट्टी (Wet sheet pack) का प्रयोग किया गया। रोग के प्रत्यक्ष चिन्ह प्रकट न होने से जलोपचार की प्रतिक्रिया की कुछ संभावना हुई। दूसरे दिन रोग के लक्षण स्पष्ट हो गए।

उसके कुटुम्बियों ने जल-चिकित्सा सम्बन्धी कुछ पुस्तकें पढ़ी थीं, किन्तु किसी रोग में इसका प्रयोग होते नहीं देखा था। तीसरे दिन सुबह तक उसके शरीर पर चेचक के दाने दिखाई देने लगे। उसकी चिकित्सा प्रचलित पद्धति से भिन्न प्रकार की हुई और उसकी चिकित्सा करने वाली थी एक स्त्री, जिसे औषधिशास्त्र की कोई डिग्री नहीं मिली थी। इस हालत में उसके घरवालों का असमंज अथवा हिचकिचाहट प्रकट करना स्वाभाविक ही था। इसलिए उसके पति ने औषधोपचार करने वाले किसी डाक्टर को बुलाने का विचार किया। किन्तु बहुत समझाने पर वह कुछ दिनों तक प्राकृतिक चिकित्सा कराने पर राजी हो गया। मैंने इस बात को मंजूर कर लिया कि जल-चिकित्सा का महत्व स्वीकार करनेवाले किसी डाक्टर को बुलाकर उसे बीच बीच में दिखा दिया जाय। अतः एक डाक्टर को बुलाया गया। उन्होंने उसके कुटुम्बियों को धैर्य धारण करने के लिए कहा और बीच-बीच में आकर वह आश्वासन भी देते रहे।

उसे बुखार इतना तेज था कि मामूली तौर पर जो गीली चादर की पट्टी दी जाती थी उसके स्थान पर उसे गीली चादर को चौपरत कर (Four fold) पट्टी दी गई। ज्यों-ज्यों बुखार कम होने लगा चादर की परतें भी हटाई जाने लगीं। तीसरे दिन दोपहर के बाद उसके शरीर पर दाने दिखायी देने लगे और चौथे दिन तक सब दाने निकल आए। उसे एनिमा भी दिया जाता था और बुखार के लिए उसे दिन में कई बार गीली चादर का स्नान दिया जाता था। आहार के रूप में उसे फल का रस दिया जाता। यद्यपि उसके शरीर पर चेचक के दाने बहुत अधिक

निकले थे, लेकिन जलोपचार के फलस्वरूप रोगिणी को कोई ज्यादा तकलीफ या बेचैनी नहीं मालूम हुई। कमरे में हवा आने-जाने के लिए सभी खिड़कियों और दरवाजे खोल रक्खे गये और बुखार की हालत में खिड़कियों और दरवाजों पर परदे लगा दिए गए थे।'

उपरोक्त दृष्टान्त डा० निकोल्स की पत्नी श्रीमती मेरी एस० जी० निकोल्स की पुस्तक से उद्धृत किया गया है। उक्त पुस्तक में उन्होंने केवल जलोपचार से ही स्त्री-पुरुषों के अनेक रोग दूर हो जाने के दृष्टान्त दिए हैं। उनकी राय में औषध चिकित्सकों द्वारा 'असाध्य' ठहरा दिए जानेवाले अनेक तीव्र एवं जीर्ण रोग जल-चिकित्सा विधि का सहारा लेने पर बड़ी आसानी के साथ दूर हो सकते हैं।

क्षय रोग में जलोपचार

डा० ए० विलफोर्ड हाल (Dr. A. Wilford Hall) ने अपनी पुस्तक में जो क्षय रोग की जल-चिकित्सा विधियां बतायीं हैं, उसके लिए उन्हें हजारों प्रशंसा-पत्र प्राप्त हुए थे। क्षय रोग का वह जो इतना सफल उपचार करते थे, उसका कारण यह था कि वह स्वयं भुक्त भोगी रह चुके थे और जल-चिकित्सा के ही द्वारा उन्हें इस भयानक रोग से छुटकारा मिला था।

वह अभी केवल १६ साल के युवक थे कि उन्हें क्षय रोग हो गया। कुछ वर्ष पूर्व उनके एक भाई की मृत्यु इसी रोग से हो चुकी थी। उनके कौटुम्बिक डाक्टर ने साफ कह दिया--मैं आपको झूठ मूठ में दिलासा नहीं दे सकता। आपकी भी हालत वैसी है जैसी कि आपके भाई की थी। मैं आपको यही राय दे सकता हूँ कि आप सारा काम-काज बन्द करके पूर्ण विश्राम करें। आपकी जिन्दगी कुछ महीने से अधिक नहीं चल सकती। अन्य विशेषज्ञों से भी राय ली गई और उन्होंने भी यही जवाब दिया कि अब आपका एक फेफड़ा बिलकुल खराब हो चुका है। अब आप एक साल से अधिक समय तक जीवित नहीं रह सकते।

अपने रोग के सम्बन्ध में डा० हाल लिखते हैं—उस समय मैं अस्थि-पिंजर मात्र रह गया था। आशा के कोई चिन्ह नहीं रह गए थे। बगल के कमरे में जाने तक की मुझमें शक्ति नहीं रह गयी थी। दो कदम चलने पर भी थक कर बैठ जाता। वजन केवल १२० पौण्ड रह गया था। किन्तु जलोपचार ने मेरे लिए जादू का असर दिखाया। मुझे पूर्ण आरोग्य लाभ कर लेने पर देखने वाले दंग रह गए। शरीर में शक्ति एवं बल की वृद्धि के साथ साथ मेरा वजन २०० पौण्ड हो गया।

डा० हाल औषधोपचार करने वाले डाक्टर न थे, किन्तु पी० एच० डी, एल० एल० डी० होने के नाते वह एक अच्छे विचारक अवश्य थे। उन्होंने अपने रोग के मुख्य कारण का पता लगाया। उन्हें मालूम हुआ कि अंतड़ियों में संचित मल के ही द्वारा क्षय रोग के कीटाणु संचित मल के ही द्वारा क्षय रोग के कीटाणु उत्पन्न होते हैं। अंतड़ियों में एकत्र मल अथवा विष से शरीर का रक्त दूषित हो जाता है और यह दूषित रक्त ही उनके पोषण का आधार बनता है। यदि इस गन्दगी को दूर कर दिया जाय तो उनके पोषण का अधार मिट जायगा और वे नष्ट हो जांयगे। वह रोग के मूल कारण को अच्छी तरह समझ गए थे। उसका उन्हेंने अपना इलाज अपने आप किया और नीरोग ही नहीं हुए बल्कि उनका स्वास्थ्य पहले से भी अच्छा हो गया। ८० वर्ष की आयु में भी उनके चेहरे पर जो सुर्खी थी वह अधिकांश युवकों के चेहरे पर मुश्किल से देखने को मिलेगी।

यूरोप तथा अमेरिका में तो आधुनिक डाक्टर भी विभिन्न रोगों के उपचार के सम्बन्ध में जल की प्रभावकारिता एवं उपयोगिता को स्वीकार कर चुके हैं। जुलाई सन् १८६१ में 'दि न्यूयार्क मेडिकल रेकार्ड' में सेन्ट लूकस अस्पताल के डा० बीवरली ने 'टायफायड बुखार के उपचार में जल का आन्तरिक प्रयोग' शीर्षक महत्वपूर्ण लेख प्रकाशित किया था उसमें उन्होंने पेरिस के अस्पतालों की मेडिकल सोसायटी की बैठक में प्रो० डेबोव द्वारा पढ़े गए एक निबंध की भूरि-भूरि प्रशंसा की गई थी। उस निबंध में डा० डेबोव ने दावा किया था कि उन्होंने पेरिस के अस्पतालों में टायफायड के १५० रोगियों को बिना किसी दवा दारू के केवल जल-प्रयोग से ही अच्छा किया है।

यूरोप के एक अन्य सुप्रसिद्ध डाक्टर प्रोफेसर कैन्टेनी ने भी प्रो० डेबोव के विचारों का पूर्ण रूप से समर्थन किया है। बल्कि वह उनसे एक कदम और आगे बढ़ गए हैं

और उन्होंने काफी परिमाण में जल पीने को देने तथा जल का आन्तरिक स्नान कराने इन दोनों बातों की सलाह दी है। तीव्र रोगों में तो वह रोगी को दिन में दो बार आन्तरिक स्नान देते थे।

सुप्रसिद्ध जर्मन चिकित्सक डा० ब्रैण्ड ने ज्वर की अवस्थाओं में रोगियों को कोई दवा न देकर सिर्फ जल पिलाने की सलाह दी है उनकी इस प्रणाली को जर्मनी के फौजी अस्पतालों में (और फ्रांस के भी अनेक अस्पतालों में) अपना लिया गया है। इस प्रकार के जलोपचार का परिणाम यह हुआ कि जब कि औषधोपचार से होनेवाली मृत्यु संख्या ४० प्रतिशत थी, वह जलोपचार के फलस्वरूप कट कर केवल ८ प्रतिशत रह गयी। प्रो० कैन्टेनी का कहना है कि यदि टायफायड ज्वर की प्रारम्भिक अवस्था में जलोपचार किया जाय तो अधिकांश मामलों में रोग को दूर कर दिया जा सकता है।

हैजे में जल का प्रयोग

इसी प्रकार ३ सितम्बर १८९२ में 'शिकागो डेली ट्रिब्यून' ने अपने सम्पादकीय में हैजे के उपचार के लिए जल-प्रयोग की उपयोगिता को स्वीकार किया है। उसमें इस जलोपचार की चर्चा करते हुए बताया गया है। हैजे का यह उपचार प्रकट रूप से बहुत सरल किंतु बहुत ही प्रभावकारी होता है इसमें सिर्फ नमक मिलाए हुए गरम पानी के एनिमा देने के सिवाय और कुछ नहीं किया जाता। लेकिन इसके परिणाम आश्चर्यजनक होते हैं। इसके प्रयोग से हैजे से होने वाली मृत्यु संख्या ५० प्रतिशत घट गयी है। यह दावा किया गया है कि हैजे की प्रायः सभी अवस्थाओं में जलोपचार समान रूप से गुणकारी होता है।

सन् १८३०-३२ में हैजे के भीषण प्रकोप के दिनों में ग्रिफेनबर्ग (जर्मनी) के डा० विनसेन्ट प्रिसनिज ने, जिन्हें प्राकृतिक चिकित्सा का जनक कहा जा सकता है, हैजे के रोगियों का इसी प्रकार जलोपचार किया था और कहा जाता है कि उन्होंने बहुत बड़ी तादाद में हैजे के रोगियों की जान बचा ली थी।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि जीर्ण तथा तीव्र सभी प्रकार के रोगों में जलोपचार का महत्त्व बहुत अधिक है। हम आजकल चिकित्सा-सम्बन्धी एक संक्रान्ति काल के बीच से होकर गुजर रहे हैं। डाक्टरी औषधोपचार प्रणाली के दिन अब गिने गिनाए रह गए हैं।

मैंने अपने प्राकृतिक स्वास्थ्य-गृह में अनेक तरह की स्त्री-पुरुषों की बीमारियों को केवल पंचतत्वों के ही आधार पर—जिनमें जल, वायु और धूप (प्रकाश) का विशेष रूप से प्रयोग होता है—नैसर्गिक उपचार करके अच्छा किया है। हमारे स्वास्थ्य-गृह में कुछ तो ऐसे रोगी उपचार के लिए आए और वे प्रकृति माता की कृपा से अच्छे भी हो गए, जिन्हें बड़े बड़े नामधारी देशी तथा विदेशी डाक्टरों ने जवाब दे दिया था। यहां पर हम प्रसंग-वश उनमें से दो एक वृतान्त दे देना उचित समझते हैं।

मेरे चिकित्सा-गृह में एक बाई अपने रोग के इलाज के लिये आईं। उनका नाम था श्रीमती लक्ष्मी बाई नारायण दास वह एक श्रीमन्त कुल की महिला थीं। धन-वैभव पूर्ण जीवन, स्वास्थ्य एवं आरोग्य सम्बन्धी आवश्यक बातों की गैरजानकारी, अनियमित खान-पान आदि कारणों से उन्हें कब्ज की शिकायत शुरू हुई। कब्ज ही सारे रोगों का मूल कारण बनता है। प्राकृतिक चिकित्सा में इसीलिये चाहे कोई भी रोग हो, मेदे की सफाई पर पहले ध्यान दिय जाता है। किंतु प्रचलित चिकित्सा प्रणाली के डाक्टर कब्ज दूर करने का सही तरीका न अख्तियार करके उन्हे बार-बार जुलाब देते। बाई को भूख न लगती थी, इसके लिये वे भूख लगने की दवा देते। डाक्टरों का ध्यान रोगी को कोई वास्तविक लाभ पहुँचाने की अपेक्षा अपने स्वार्थ-साधन के प्रति अधिक था। इसका नतीजा यह हुआ कि डाक्टरों की जेब तो गर्म हुई, लेकिन रोगिनी के रोग ने जड़ पकड़ लिया— इतना ही नहीं उसने नए-नए रूप भी धारण कर लिये। दवा होती गयी, मर्ज बढ़ता गया। डाक्टरों द्वारा रोग का निदान भी होता रहा। अन्त में रोग के लक्षणों की जांच करके उन्हें बताया कि यह 'स्प्रू' (Sprue) रोग है। फिर कारण का इलाज न हो कर लक्षण का इलाज होने लगा। लेकिन भला इससे रोगिणी को वास्तविक लाभ कैसे हो सकता था। डाक्टरों से निराश होकर घरवालों ने वैद्यों की शरण ली। उन्होंने इसे संग्रहणी बताया।

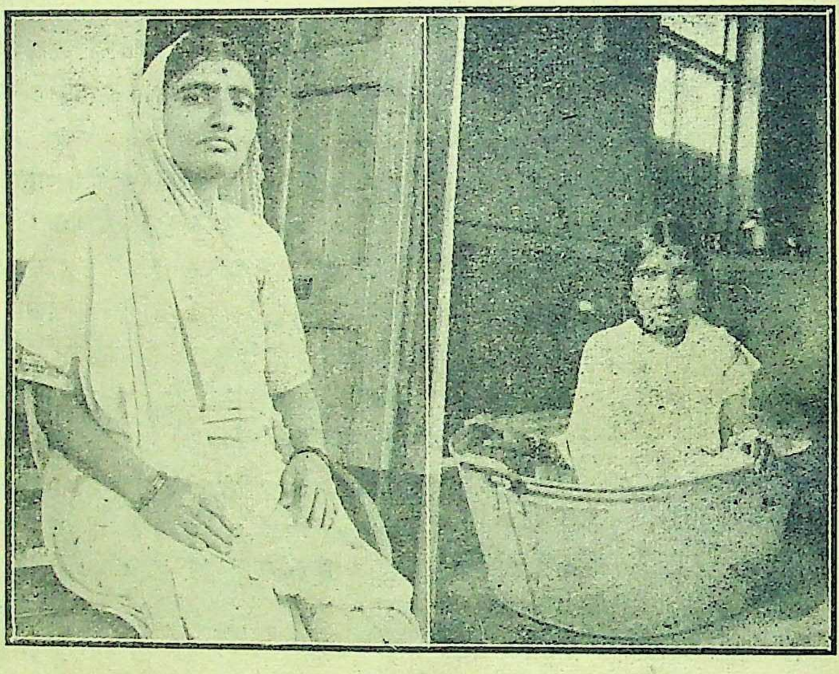

श्रीमती लक्ष्मी बाई नारायणदास

चिकित्सा के बाद

चिकित्सा आरम्भ करने के समय

बाई की क्षुधा मन्द पड़ गई थी। कभी पतले दस्त होते, कभी कब्ज रहता, साथ-साथ बैचैनी भी रहती। रोग पुराना पड़ जाने की वजह से चिकित्सक घबड़ाने लगे और अपनी जिम्मेदारी का बोझ हटा लेने की गरज से यह सलाह दी कि जल-वायु परिवर्तन के लिये रोगिनी को देहात में भेज दिया जाय। घर वालों ने चिकित्सकों की यह सलाह भी मान ली और उन्हें देहात में भेज दिया। लेकिन उनकी हालत सुधरने के बजाय बिगड़ती ही गयी। अतः उन्हें फिर शहर में लाया गया। उनकी शक्ति इतनी क्षीण पड़ गई कि अब वह घर के अन्दर भी चल फिर सकने में असमर्थ हो गयीं। उनके मुंह में छाले पड़ गए। भोजन की रुचि बिलकुल न रह गई। उनके कई और बदबूदार दस्त होने लगे। निद्रा का नाश हो गया—नींद बिलकुल आती ही न थी।

कौटुम्बिक डाक्टर को अब रोगिणी के बचने की कोई आशा न रह गई। फिर भी उन्होंने दिलासा दिया कि वह अपनी दवाओं के जोर से रोगिणी को कोई कष्ट का अनुभव नहीं होने देंगे, क्योंकि अब रोग इस अवस्था में पहुंच गया है कि इससे अधिक और कुछ नहीं किया जा सकता। 'मरता क्या न करता' वाली कहावत चरितार्थ हुई। चारों तरफ से निराश हो जाने पर घर वालों ने बाई का प्रकृतिक चिकित्सा कराने का विचार किया और इस हेतु से वह मेरे पास लायी गयी।

हमारे चिकित्सा गृह में बाई का इलाज इस प्रकार शुरू हुआ। आहार के रूप में उन्हें फलों के रस में पानी मिलाकर या दूध को फाड़ कर उसका पानी (Whey) दिया गया। इसके साथ जलोपचार किया गया—कटि-स्नान, एनिमा, आदि के रूप में। इस उपचार क्रम से रोगिणी को कुछ ही दिनों में आराम मालूम होने लगा। जीवन की जो आशा छूट चुकी थी, वह अब फिर से होने लगी। पाचन-शक्ति में सुधार होने के साथ-साथ फलों के रस की मात्रा भी बढ़ाई जाने लगी और अब रोगिणी को मठा भी दिया जाने लगा। उसके बाद फलों के रस के स्थान पर ताजे रसदार फल दिये गए। इसके साथ साग-सब्जियों का भी रस दिया जाता।

ढाई साल तक एलोपैथिक डाक्टरों और वैद्य-हकीमों की चिकित्सा से रोगिणी को लाभ तो कुछ भी नहीं हुआ था बल्कि इसके विपरीत उसके लिये बिस्तरे से उठ सकना

भी कठिन हो गया था। लेकिन प्राकृतिक चिकित्सा से वही रोगिनी सवा महीने में सड़क पर टहलने जाने में समर्थ हो गयी। उसके बाद बाई को २० दिन का दूध-कल्प कराया गया। इसके बाद उसे क्रम से कच्ची और पकाई हुई शाक-भाजी फिर साधारण आहार पर उसे ला दिया गया। यहाँ पर रोगिणी की प्राकृतिक चिकित्सा शुरू होने के पहले का और चिकित्सा के बाद का जो चित्र दिया गया है उससे पाठक यह जान सकते हैं कि प्राकृतिक चिकित्सा क्या चमत्कार दिखा सकती है।

क्षय रोग से छुटकारे के लिए जलोपचार

हर साल असंख्य युवक-युवतियों का भक्षण करनेवाले क्षय रोग की भयानकता से तो प्रायः सभी परिचित हो चुके हैं किन्तु अब तक प्रचलित चिकित्सा-प्रणाली इसका कोई निश्चयात्मक और सही इलाज निकालने में असमर्थ ही हुई है। इसके लिए लाखों रुपये खर्च करके देश के उदार एवं लोकसेवी आत्माओं ने अस्पताल खोले हैं। शिमला के समीप धर्म पुर क्षय-रोग चिकित्सा गृह नामक एक ऐसी संस्था है जहां पर प्रायः प्राकृतिक चिकित्सा के नियमों के अनुसार क्षय के रोगियों का इलाज होता है। इसके अलावा किसी दूसरे स्थान में क्षय रोग का समुचित इलाज होता हो, अथवा रोगियों को इच्छित लाभ होता हो, ऐसा कम से कम अब तक देखने या सुनने में नहीं आया है। एलोपैथ डाक्टर तरह तरह की दवाइयों या इंजेक्शनों के प्रयोग से अथवा रोगी को मछली का तेल, अंडे आदि पुष्टिकारक चीजें खिला कर कुछ समय के लिए रोगी का वजन भले ही कुछ बढ़ा सकते हों, लेकिन इन उपायों से रोग को जीवन शक्ति का लाभ प्रायः नहीं के ही बराबर होता है। फिर तो कुछ समय के बाद रोगी की हालत बिगड़ जाती है और जीवन के अन्त के ही साथ उसके रोग का अन्त होता है। किन्तु इस भयंकर रोग के लिए भी नैसर्गिक उपचार कितना आश्चर्यजनक लाभ पहुंचा सकता है, इसका एक दृष्टान्त मैं यहाँ पर जिज्ञासुओं के लाभार्थ देना चाहता हूँ।

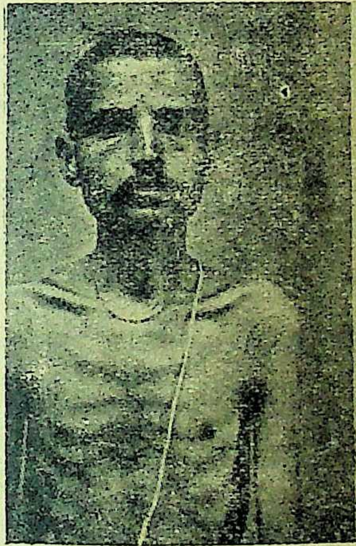

श्री मावजी

चिकित्सा के पूर्व

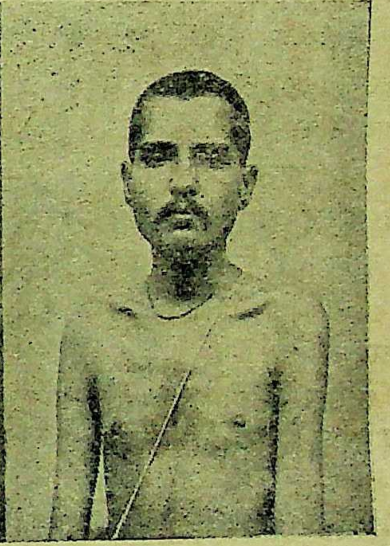

गौ० ठक्कर

चिकित्सा आरम्भ करने के १०० दिन बाद

मावजी गौ० ठक्कर नामक एक सज्जन इस भयंकर रोग से ग्रसित हो गये थे। उनका रोग अपनी तृतीयावस्था में पहुंच चुका था। बुखार, खाँसी, बलगम के साथ खून जाना, पतले दस्त होना, दस-बीस कदम चलने की शक्ति न रह जाना—इस तरह की अवस्था हो गई थी उनकी। किन्तु इस हालत में भी प्रकृति ने उनकी रक्षा कर ली। जल, वायु, धूप और आहार इनके समुचित प्रयोग से १०० दिन के भीतर ही रोगी की अवस्था में जो परिवर्तन हुआ वह रोगी के चित्र से साफ प्रकट हो जाता है।

अपेण्डिसाइटिस के लिए आपरेशन के बजाय जलोपचार

अपेण्डिसाइटिश (अंत्र प्रदाह) के लिए एलोपैथी में आपरेशन करके उस भाग को निकाल देने के सिवाय और कोई दूसरा उपाय नहीं बताया गया है। किन्तु विश्वविख्यात प्राकृतिक चिकित्सक डा० जे० एच० केलाग ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "रेशनल हाइड्रोथिरौपी' में यह दावे के साथ लिखा है कि गरम जल के एनिमा से तीव्र (Acute) तथा जीर्ण (Chronic) अपेण्डिसाइटिस को जड़ से दूर किया जा सकता है।

पिछले ५ वर्षों में अनेक अपेण्डिसाइटिस के रोगी, हमारे चिकित्सा गृह में उपचार के लिए आए। प्राकृति चिकित्सा कराना ही उचित समझा था जिन्हें डाक्टरों ने फौरन आपरेशन करा डालने की सलाह दी थी, किन्तु उन्हंने या तो आपरेशन के भयभीत होने या साधन हीन होने के कारण आपरेशन कराने के बजाय प्राकृतिक चिकित्सा कराना ही उचित समझा था। इनमें से शत-प्रतिशत रोगियों को जलोपचार से लाभ पहुँचा है और इस तरह के कई रोगी अवतक जीवित हैं और पूर्ण स्वास्थ्य एवं आरोग्य का उपभोग कर रहे हैं।

गर्भाशय भ्रंश में जलोपचार

बाई ल० ह० सा० (अवस्था २७ वर्ष) ने दूसरी बार गर्भ धारण किया था। उनकी शिकायत यह थी कि ४ मास के बाद गर्भाशय नीचे खिसक आता था। टट्टी और पेशाब के समय बड़ी तकलीफ होती थी। उठने-बैठने, चलने फिरने या और कोई काम करने में बड़ा दर्द होता। केवल लेटे रहने में ही आराम मिलता। उनके उपचार के लिये एक लेडी (महिला) डाक्टर को बुलाया गया। उसने आपरेशन करा डालने की राय दी। अतएव उस बाई को बम्बई जनाना अस्पताल के सबसे बड़े डाक्टर को दिखाया गया। उसने भी यही राय दी कि गर्भाशय को फौरन काट कर निकलवा देना चाहिए; अन्यथा बच्चा पैदा होने के समय प्रसूति और बच्चा दोनों की जानें चली जानें का खतरा है। यह सुनकर वह बाई बहुत निराश हो गई। गर्भस्थ शिशु को काटकर निकाल दिया जाय, इतना धैर्य उसमें नहीं था। इसके अलावा और कोई भी उपचार कराने के लिए वह तैयार थी। अन्ततोगत्वा वह मेरे चिकित्सालय में भरती हुई। हमारे यहां उसका उपचार इस प्रकार आरम्भ हुआ।

सबसे पहले उसका भोजन बन्द कर दिया गया। आहार के रूप में फलों के रस के सिवाय उसे और कुछ न दिया जाता था। चिकित्सा के तौर पर उसे पहले गुनगुने पानी में कटि-स्नान दिया गया और फिर क्रमशः ठंडे पानी का स्नान दिया जाने लगा। दर्द के लिए मामूली गर्म पानी गर्भाशय में चढ़ाया (Viginal douche) जाता। कुछ दिनों के बाद उसे Cal-fe (एक प्रकार क्षार विशेष जिसका चिकित्सा में प्रयोग होता है) दिया जाने लगा। कटि-स्नान तो प्रसव के समय तक जारी रहा। इस क्रम को जारी रखने के फलस्वरूप प्रसव के समय न तो कोई उसे विशेष पीड़ा हुई और न किसी डाक्टर, नर्स या दाई (Mid wife) को बुलाने अथवा कोई औषधि प्रयोग करने की आवश्यकता पड़ी। बड़ी आसानी के साथ और मामूली दाई के ही द्वारा काम चल गया। इसके एक निरोग लड़की पैदा हुई। उसके २ साल बाद वह फिर गर्भवती हुई और इस बार उसके पुत्र पैदा हुआ। बाद और बच्चा दोनों स्वस्थ्य एवं सकुशल हैं। अभी तक फिर उसे यह शिकायत नहीं हुई है।

जीवन सखा-प्रेमियों से

जीवन सखा का जनवरी का अंक एक विशेषांक है---"जल चिकित्सांक"। इस विशेषांक की मांग अत्यधिक है। हमारे पास इसके लिए बराबर आर्डर आ रहे हैं। इस संबंध में हमें यह सूचित करते हुए संकोच होता है कि हमने यह जल-चिकित्सांक अत्यन्त परिमित संख्या में प्रकाशित किया है जो कि हमारे स्थायी ग्राहकों के लिए ही अपर्याप्त साबित हो सकती है। अस्तु, जीवन सखा स्नेहियों से निवेदन है कि वह केवल विशेषांक मंगाने का कष्ट न उठाकर यदि स्थायी रूप से जीवन सखा परिवार में शामिल होने की कृपा करें तो अति उत्तम हो।

व्यवसथापक—

जल तथा आरोग्य

श्री श्रीकृष्ण शर्मा, बी० ए०, एन० डी० डी० वाई

प्रकृति नटी द्वारा संचालित सृष्टि के सतत परिवर्तनशील नाटक में जल 'प्रधान पात्र' का अभिनय करता है। यह चंचल बहुरूपिया सदा-सर्वदा अपना स्वरूप बदलता रहता है। एकता में विविधता की रागिनी झंकृत करने वाला यह कौतुकी अपना एक व्यापक किन्तु रहस्यमय अस्तित्व रखता है। यह अपना रूप और गुण बदलने में अप्रतिम है। कभी तो हम इसे हिम के रूप में पर्वतराज के उन्नत मस्तक पर हीरक किरीट की शोभा सरसाते देखते हैं तो कभी अनन्त नीलाम्बर में सघन घन मालाओं के रूप में रस-वर्षण करते हुए! यह कभी तो वसुन्धरा के धधकते हुए अन्तस्तल से वाष्प रूप में निकलने के फलस्वरूप ज्वालामुखी को उभाड़ कर प्रलय नृत्य करने लगता है और कभी शस्य श्यामला धरिणी पर ओस के रूप में बिखरता हुआ नैसर्गिक शान्ति फैला देता है। कभी तो यह चट्टानों को तोड़ कर जल-प्रपात अथवा निर्झर के रूप में कल-कल नाद करता है, तो कभी महासागर की गगन चुम्बी लहरों के रूप में अट्टहास! जल को जीवन भी कहते हैं, क्यों कि यह जीवन की भांति सदैव गतिशील है। इसकी गतिशीलता में ही इसकी अद्भुत शक्तियों का निर्माण होता है और तभी वह सृष्टि के समस्त रचनात्मक कार्य करने में सफल भी होता है। गतिहीनता इसके लिये सांघातिक होती है। किसी जलाशय या गड्ढे में बंधा हुआ गतिहीन जल निष्प्राण हो उठता है, इसके सारे गुण मारे जाते हैं। यह सड़न उत्पन्न करके अनेक सूक्ष्म रोगाणुओं की सृष्टि करने लगता है जो इस भूतल के प्राणियों के लिए संहारक बन बैठते हैं। सचमुच जल की माया कितनी विचित्र है?

परन्तु सबसे आश्चर्य की बात तो यह है कि सृष्टि के सूक्ष्म तत्वों को अपने में विलीन किये रहने वाला यह चंचल जल पावनता, शीतलता एवं शक्ति का अक्षय भण्डार है। इसकी चंचलता और गतिशीलता में ही एक विचित्र गंभीरता एवं शुचिता का रहस्य छिपा है। यह मनुष्य के तप्त हृदय को शीतल करता है, उसके जीवन के प्रत्येक कार्य में सहायक और उपयोगी होता है। जल के बिना यह जगतीतल ही मरुस्थल नहीं बनता, बल्कि मानव जीवन की उर्वरता भी मारी जाती—मनुष्य का शारीरिक, मानसिक और नैतिक विकास हो ही नहीं सकता था।

जल सभ्यता का मूल उत्स

अत्यन्त प्राचीन समय में एक स्थान से दूसरे स्थान में विचरण करने वाली मानव जाति को जल का आश्रय प्राप्त होने पर ही उसे स्थिरता एवं दृढ़ता प्राप्त हुई होगी। एक जगह बस कर सामाजिक जीवन व्यतीत करने की भावना जल से ही उत्प्रेरित हो कर मानव मस्तिक में पहिली बार उत्पन्न हुई रही होगी, यह तो मानना ही पड़ेगा। नदी के किनारों पर अनेक नगरों की नीव पड़ी, जहाँ भिन्न भिन्न प्रकृति एवं स्वभाव वाले मनुष्यों का सम्मिलन हुआ, परस्पर विचारों के आदान-प्रदान के फलस्वरूप सभ्यता एवं संस्कृति का निर्माण हुआ। यह प्रभाव इतना गहरा एवं सुनिश्चित था कि आज भी हम उसकी उपेक्षा नहीं कर सके हैं, वह हमारे इतिहास में 'सिन्धु नदी की उपत्यका की सभ्यता' (Indus Valley Civilsation) या 'नील नदी की उपत्यका की सभ्यता' (Nile Valley Civilsation) के रूप में अंकित हैं।

हमारे देश में जीवन-यापन तथा रहन-सहन की प्रत्येक दिशा में जल अपना महत्वपूर्ण अस्तित्व रखता है। हमारे बड़े बड़े तीर्थ स्थान नदी या समुद्र तट पर ही स्थित है। त्योहारों तथा अन्य पुण्यपर्वों के अवसर पर प्रायः नदी या जलाशय के ही किनारे उत्सव होता है। हमारे जीवन से सम्बन्धित कोई भी धार्मिक एवं दैनिक कर्म जल के बिना सम्पादित नहीं हो सकता। जल जीवन के विकास का बहुमूल्य साधन है। पौराणिक आख्यान के अनुसार जल लक्ष्मी की उत्पत्ति-स्थान तो है ही, वह अमृत घट का दाता भी हैं। जल मनुष्य को नीरोग करके दीर्घायु बनाता है। जल-तत्व का अध्ययन एवं अन्वेषण करने पर यही ज्ञात होता है कि यह अमृतोपम गुणों से परिपूर्ण है।

पश्चिम में प्राकृतिक चिकित्सा का प्रादुर्भाव जल-चिकित्सा के ही रूप में हुआ। आज भोजन-विज्ञान, सूर्य-रश्मि-चिकित्सा, व्यायाम आदि अनेक उपचारात्मक प्रणालियों के काफी उन्नत एवं विकसित हो जाने पर भी मूल जल-चिकित्सा का महत्व ज्यों का त्यों बना हुआ है।

प्राकृतिक चिकित्सा प्रणाली का अवगाहन करते समय आज भी हमारे मस्तिष्क में उस दृश्य का स्मरण हो आता है जब कि बवेरिया के एक मामूली किसान विसेन्ट प्रिसनिज ने एक लंगड़ाती हुई हिरनी को जलाशय में अपने प्राकृतिक उपचार के लिए प्रवेश करते हुए देखा था। उस समय उसने जल के कल-कल शब्द में जो नैसर्गिक सन्देश सुनायी दिया वह चिकित्सा जगत में क्रान्ति मचा देने वाला था। जिस प्रकार न्यूटन ने वृक्ष से जमीन पर सेव गिरते देखकर पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण शक्ति (Law of gravity) का आविष्कार किया उसी प्रकार उस हिरनी वाली घटना से प्रभावित होकर विन्सेन्ट प्रिसनिज ने जल-चिकित्सा-प्रणाली की नींव डाली। उसने जो वीज वपन किया उसे उसके शिष्यों ने अभिनव प्रयोगों के जल से सिंचित करके अंकुरित एवं परिपल्लवित जिसने किया आज कल्प वृक्ष का रूप धारण कर लिया है और जिसकी शीतल पावन छाया पीड़ित मानवता को सुख-शान्ति प्रदान कर रही है। इस कल्प वृक्ष को अपने सतत प्रयत्नों से विकसित एवं परिपल्लवित करने वालों में सबसे अधिक श्रेय आॅथ, नीप और लुई कूने को है, जिन्होंने नैसर्गिक चिकित्सा पद्धति को एक सर्वांगपूर्ण वैज्ञानिक प्रणाली के रूप से परिणत कर दिया है।

आज हमें यह जान कर आश्चर्य होता है कि एक समय वह भी था जब एलोपैथिक डाक्टर ज्वर से संतप्त रोगी को जल का प्रयोग तक नहीं करने देते थे। उनका ख्याल था कि जल उनके अरोग्य लाभ में बाधक है। उनकी यह भ्रान्ति कितनी हास्यास्पद थी। वह समझते थे कि यदि रोगी को जल पीने को दिया गया तो उसकी आँतें फूल जायंगी। किन्तु इस तरह की भ्रामक धारणाओं के विरुद्ध संसार के प्रगतिशील प्राकृतिक चिकित्सकों ने जिस आन्दोलन का सूत्र-पात किया उसके फलस्वरूप इन एलोपैथ डाक्टरों की भी आँखें खुल गयीं और अब वे ज्वर के रोगी को जल पीने को ही नहीं देने लगे बल्कि टायफायड (विषम-ज्वर) में स्पंज-बाथ (घर्षण स्नान) तक कराने लगे हैं।

स्वास्थ्य एवं आरोग्य के लिए जल का महत्व

आइए, अब हम जल के चिकित्सा सम्बन्धी महत्व पर विचार करें।

जल में चार विशेष गुण हैं। पहला है व्यापकता (Emanence) दूसरा भेद्यता (Permeatability), तीसरा लोच (Mobility) और चौथा गुण है निर्गुणता (Neutrality)। इसमें घोलन-शक्ति (solvent) विशिष्ट रूप में विद्यमान है।

जल स्वयं सर्वत्र व्याप्त है ही परन्तु वह शरीर में भी सर्वत्र समा जाता है। रग रग में व्याप्त हो जाने के कारण यह सफाई का काम बहुत अधिक करता है। शरीर में कुछ पोल (cavities) स्थान हैं जहाँ वह सीधे पहुँचाया जा सकता है और वहां से गंदगी भी साफ हो जाती है। नाक के द्वारा मुंह तक, मुख से गले होता हुआ आमाशय और आँतों तक पहुँचता है, गुदा के द्वारा सम्पूर्ण बड़ी आँतों में फैल जाता है और वज्रौली द्वारा ब्लैडर तक में पहुँचाया जा सकता है। कान में भी बड़ी सुगमता से चला जाता है और सब मैल खीच कर बाहर निकाल देता है। शरीर के आन्तरिक भागों में सीधे प्रविष्ट होने के कारण कफ को बड़ी सुगमता से निकाल देता है। श्वास-प्रणाली (pespiratoy pasasge) और भोजन प्रणाली (Alimenatry Canal) को पूर्ण रीति से साफ करने की क्षमता जल में है। योगियों ने इसी लिये धौलि, नेति, वस्ति इत्यादि क्रियाओं के रूप में शरीर शुद्धि के लिये जल प्रयोग बताया है।

जल केवल इन्हीं पोल-स्थानों (Cavities) ही में नहीं वरन शरीर के प्रत्येक कीट, तन्तु तथा कोष में प्रविष्ट हो जाता है। इसका एक प्रमाण तो यही है कि अगर सादे जल को पिया जाय तो वह पेशाव और पाखाने के द्वारा विष को लिये हुये निकलता है

शरीर में मूल रूप से तीन आवश्यक क्रियायें होती रहती हैं। वे है पाचन समीकरण और विसर्जन की क्रियायें। स्वास्थ्य के लिये यह आवश्यक है कि वे सुचारु रूप से हों और तीनों में सामंजस्य होना चाहिये। तीनों में से किसी एक में भी त्रुटि हो जाने से स्वास्थ्य संतुलन बिगड़

जायगा। इन तीनों क्रियाओं में जल की आवश्यकता होती है बल्कि बिना जल के यह सम्भव ही नहीं। जल के गुण और मात्रा से तीनों क्रियाओं में परिवर्तन हो जाता है। जल कम पीने से पाचन क्रिया और उसके फलस्वरूप विसर्जन क्रिया भी ठीक प्रकार नहीं होती और शरीर में मल एकत्रित होने लगता है। यह जल की तरलता (Fluidity) ही है जिसके द्वारा मल विसर्जन यन्त्रों (जैसे चर्म, गुर्दे इत्यादि) की सहायता से शरीर के बाहर फेंक दिया जाता है। जल शरीर के समस्त सरल पदार्थों (Fluids) का आधार है। शरीर के दस भागों में आठ भाग जल से बना है अतएव जल शरीर का प्रधान तत्त्व है।

शरीर में प्रत्येक कोष (Cell) सक्रिय है। यह सेल टूटते और बनते रहते हैं। इन दोनों क्रियाओं में जल का होना अत्यन्त आवश्यक है। बिना जल के कोष न तो पोषक तत्व ग्रहण करके विकसित हो सकते हैं और न इनका विभाजन ही हो सकता है। जल को बन्द कर दो तो जीवन लुप्त हो जायगा। इसीलिये जल को जीवन भी कहा गया है।

अब यह सिद्ध हो गया कि जल के बिना जीवन सम्भव नहीं। परन्तु जल में वे कौन से गुण हैं जो चिकित्सा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण माने जाते हैं। इन आरोग्यकारक गुणों पर (Remedial powers) विचार करना चाहिये।

जल शरीर का ताप व्यवस्थापक (Thermal Regulator) भी है और ताप निर्णायक यंत्र (Thermometer) भी। प्यास और शरीर पर जल पड़ने पर मानसिक प्रतिक्रिया (रुचि अथवा भय) से शरीर की आन्तरिक गर्मी का अनुमान किया जा सकता है। रोगी गर्म अनुभव कर रहा है अथवा ठंड (Chilly) यह अनुभव करना चिकित्सक के लिये बहुत आवश्यक है। आन्तरिक गर्मी ताप यन्त्र से नहीं नापी जा सकती परन्तु रोगी की शारीरिक और मानसिक स्थिति से अनुमान अवश्य किया जा सकता है—जैसे जबान का सूखा होना, त्वचा की रुक्षता, प्यास इत्यादि।

शरीर में ताप सम्बन्धी तीन यंत्र हैं। पहले को कहते हैं उष्ण-उत्पादक (Thermogenetic), दूसरे को उष्ण-प्रसारक (Thermotaxis) और तीसरे को उष्ण-वाहक (Thermolytic) कहते हैं। इन्हीं के द्वारा शरीर में गर्मी का उत्पादन, प्रसारण (Distribution) और वहिष्करण होता है। जल तीनों को प्रभावित करता है और विशेषकर पिछले दो यन्त्रों को।

जल के द्वारा गर्मी निकलने में बड़ी सहायता मिलती है। जल अपनी इस विशेषता के कारण चिकित्सकों को अधिक प्रिय है! प्रायः सभी तीव्र व्याधियों में **उद्वेग क्रिया के अन्तर्गत शरीर में उष्णता बढ़ जाती है।** परन्तु अगर यह गर्मी चर्म के द्वारा बाहर न निकल सकी तो शरीर के आन्तरिक भाग और विशेष कर उपयोगी अवयवों (Vital organs) में व्याप्त हो जाती है। यह दशा जिसे आन्तरिक ज्वर कहते हैं बहुत भयानक होती है। अगर इस ज्वर को बाहर न निकाला जाय तो प्राण खतरे में पड़ जाता है।

जल अपना कार्य विशेषकर चर्म के द्वारा करता है उसका बाह्य प्रयोग चर्म के ही ऊपर जाता किया है। चर्म के सम्पर्क में आने से जल उसकी गर्मी अपने में ले लेता है। हम यह जानते हैं कि कुछ **विशिष्ट उष्णांक** (Calories) एक निश्चित परिमाण में मल को गर्म करता है अस्तु चर्म की सतह पर जल के गर्म होने का तात्पर्य है अनेक उष्णांक गर्मी शरीर से निकल जाना। परन्तु यह प्रभाव बहुधा (mechanical) यान्त्रिक होता है।

जल के बाह्य प्रयोग में ठंडा पैक बहुत उपयोगी होता है क्योंकि इसका प्रभाव क्रियात्मक (Functional) भी होता है। **पैक के द्वारा जो गर्मी निकलती है** वह **ताप विकीरण** (Heat Radiation) के सिद्धान्त पर अवलम्बित है। पैक के नीचे जो नम गर्मी बनती रहती है वह अन्दर से रक्त को बाहर चर्म की ओर खींचती है जिसके फलस्वरूप न्यूनतम रक्त नलिकाएं (Blood vessels) और रोम छिद्र फैल जाते हैं और शरीर से अत्यधिक ताप को बाहर निकालने में समर्थ होते हैं। ज्वर की दशा में रक्त नलिकाएं और रोम-छिद्र तन कर संकुचित हो जाते हैं जिसके कारण गर्मी निकल नहीं पाती और चर्म गर्म और

रूखा हो जाता है और गर्मी शरीर के अन्दरूनी भाग में बैठ जाती है। पैक से यह चर्म फैल जाता है और स्वेदन होने लगता है और फिर ज्वर भी स्वतः उतर जाता है।

शरीर की आन्तरिक गर्मी के कारण प्रदाहयुक्त भागों या अवयवों में रक्त का जमाव अधिक हो जाता है। रक्त के इस अत्यधिक जमाव को पैक बड़ी सुगमता से दूर कर देता है क्योंकि रक्त का खिंचाव त्वचा की ओर होने लगता है और अन्दर रक्त का दबाव कम हो जाता है। इस प्रकार पैक से न केवल गर्मी कम होती है वरन् शरीर का विष भी बाहर निकल जाता है। पैक के वस्त्र पर भूरा या पीला रंग और दुर्गन्ध से विदित होता है कि शरीर का विष भी पैक के द्वारा निकल जाता है।

परन्तु केवल यही बात नहीं है कि पैक से गर्मी ही निकलती है वरन् इसके विपरीत शरीर की **ठंडी अवस्था** जबकि शरीर का ताप सामान्य से कम हो गया हो दूर कर के गर्म प्रतिक्रिया (Warm Reaction) उत्पन्नकर देता है। इसमें पैक के आवरण गीले कम हों और सूखे अधिक। इसके अतिरिक्त पैरों में गर्म बोतलों या रोगी के चारों ओर गर्म ईंटें भी रखनी चाहिये।

इस प्रकार जल के उचित प्रयोग से ज्वर या अन्य प्रदाहयुक्त अवस्थायें आसानी से पार हो जाती है। अपने ठीक समय में बिना किसी क्षति या कुप्रभाव के यह अवस्था (Inflammatory procss) निर्विघ्न रूप से अन्त हो जाती है। शरीर की शक्तियों का अपवय भी नहीं होता।

परन्तु वाह्य प्रयोग के अतिरिक्त आन्तरिक प्रयोग से भी गर्मी कम करने में सहायता मिलती है। जल की एक विशेषता है उसकी निर्गुणता अस्तु इसका अम्ल से रासायनिक स्नेह है। शरीर की बढ़ी हुई अम्लता को कम कर के भी यह शरीर के ताप को कम करता है। गठिया जैसे रोग में जल के प्रचुर उपयोग से शरीर में एकत्रित अमल पेशाब और पसीने के रूप में निकल जाते हैं और रोगी को विशेष आराम मिलता है।

• ठंडे जल का दूसरा महत्वपूर्ण प्रभाव शरीर की सूक्ष्म शक्तियों पर पड़ता है। शरीर में विद्युत-चुम्बक शक्तियों की वृद्धि हो जाती है जिसके फलस्वरूप शरीर में नई स्फूर्ति अथवा उत्तेजना का भान होता है। जीवन शक्ति केवल गर्मी या सर्दी के निरन्तर संसर्ग से प्रभावित नहीं होती परन्तु यदि उसे गर्मी और सरदी का क्रमिक (Alternate) प्रयोग किया जाय तो विशेष रूप से उत्तेजित होती है। शरीर में गर्मी यों ही विद्यमान है परन्तु जब एकाएक ताप का अन्तर ठंडे जल के द्वारा पहुँचता है तो विद्युतशक्ति का प्रवाह होने लगता है।

इन शक्तियों के प्रवाह से शरीर में अन्य महत्वपूर्ण परिवर्तन होने लगते हैं जो आरोग्य के लिये बहुत आवश्यक हैं। विद्युत जल के परमाणुओं (Molecules) को उनके मूल तत्वों में विभक्त कर देती है और शरीर में आक्सीजन, हाइड्रोजन और ओजोन (Ozone) गैस की वृद्धि होती है। आक्सीजन और ओजोन से शरीर के विजातीय द्रव्य भस्म हो जाते हैं और शरीर निर्मल हो जाता है। इन गैसों के संयोग से कीटाणुनाशक गुण भी शरीर में तीव्र हो जाते हैं।

जल का विशेष प्रभाव रक्त के संचालन पर भी पड़ता है। जल के प्रयोग से रक्त सम्पूर्ण शरीर में बड़े वेग से दौड़ने लगता है। ठंडे जल से एक प्रकार का धक्का सा लगता है जिससे सम्पूर्ण शक्तियाँ उत्तेजित हो उठती हैं। पहली प्रतिक्रिया के अन्तर्गत रक्त शरीर के अन्दर चला जाता है परन्तु दूसरी प्रतिक्रिया, जो स्थायी होती है, रक्त को अन्दर से बाहर की ओर बड़े वेग से लाती है। रक्त की इस गति और प्रवाह का लाभकारी प्रभाव समस्त शरीर पर पड़ता है।

जल के उत्तेजक प्रभाव को वैज्ञानिकों ने एक प्रकार से और सिद्ध किया है। नहाने के पूर्व एक बूंद रक्त में लाल कण गिने गये और फिर नहाने के पश्चात। नहाने के उपरान्त लाल कणों की संख्या दूनी पायी गई। इसका तात्पर्य यह नहीं कि जल ने इतने नवीन कण पैदा कर दिये परन्तु जो अलसाए हुए कण इधर उधर बिखरे हुए थे वे एक जगह एकत्रित हो गए।

जल का स्नायुओं पर बड़ा शीतल और पुष्टिकारी प्रभाव पड़ता है। स्नायुओं का तनाव कम हो जाता है

और उनको विशेष आराम मिलता है। जल के समान स्नायुओं के लिये, किंचित स्वच्छ वायु को छोड़कर, अन्य कोई चीज नहीं। विशेष स्नानों में मेहन-स्नान (Sitz-bath) का स्नायुओं पर बड़ा शामक (Soothing) प्रभाव पड़ता है। बड़ी हलकी और सरल (Non Irritable) उत्तेजना होती है जो समस्त स्नायु-प्रणाली को सशक्त कर देती है। वर्तमान युग मशीनों का है और कलों की कोलाहल के फल स्वरूप जो स्नायविक और मानसिक रोग आजकल प्रचलित हैं उनका एक मात्र सहारा शीतल और स्वच्छ जल है। अनिद्रा, हिस्टीरिया, उन्माद इत्यादि रोगों पर जल का सफल प्रयोग किया जा सकता है। स्नायु-शक्ति को पुनः संचालित करने क्षमता रखने के कारण, जल का जीर्ण-रोगों की चिकित्सा में महत्वपूर्ण स्थान है।

जल का आरोग्य सम्बन्धी प्रयोग उसके रेचक अवयवों को प्रभावित करने पर निर्भर है। प्रत्येक रेचक अवयव का जल से घनिष्ट सम्बन्ध है। त्वचा के द्वारा पसीने (अदृश्य और दृश्य) के रूप में फेफड़ों के द्वारा श्वास के रूप में, गुर्दे के द्वारा पेशाब और गुदा के द्वारा मल के रूप में यह निकलता है। इससे स्पष्ट है कि सभी रेचक अवयव इसका प्रयोग करते हैं। चर्म के विषय में अभी कहा गया है कि यह विष को पसीने के रूप में बाहर निकालता है। श्वास में भी जल का अंश रहता है। गुर्दे के लिए जल अत्यन्त आवश्यक है। रक्त के तीक्ष्ण अम्ल को पानी के द्वारा घोल कर शरीर से पेशाब के रूप में निकालता है। अगर पानी कम पिया जाय तो यही अम्ल गुर्दे के कोमल कोषों की क्षति पहुँचाता है। इसी प्रकार कोष्ठ को भी जल की आवश्यकता पड़ती है। जल का बहुत बड़ा भाग बड़ी आंत में सूखता है और मल के निष्कासन में अग्रगामी किया (peristaltieaction) की सहायता पहुँचाता है।

जल शरीर के लिए एक सर्वांगपूर्ण टानिक है। यह रक्त, स्नायु, मांशपेशी तथा प्रत्येक कोष को सतेज और सशक्त करता है। शरीर की समस्त प्रणाली जैसे—भोजन, श्वास, स्नायु, रक्त संचालन (Circulatory system) इत्यादि प्रणालियों के सुसंगठित कार्य के लिये अनिवार्य है। परन्तु जल का स्वास्थ्यकारी प्रभाव मन पर भी पड़ता है। यह मन को शान्ति, स्फूर्ति तथा प्रफुल्लता प्रदान करता है। मनुष्य की नीच पाशविक प्रवृत्तियों को शान्त कर के दैवी प्रवृत्तियों की ओर मन को ले जाता है। यह सदाचार का अनमोल साधन है। किसने गंगा या यमुना नदी [illegible]न कर के पवित्र विचारों और भावों का अनुभव नहीं किया? कुछ नहीं तो मन की मलिनता, उद्विग्नता तथा आलस्य को तो यह अवश्य हर लेता है।

इतने गुण जान लेने के उपरान्त प्रश्न यह उठता है कि क्या जल में कोई अवगुण नहीं है? वही दृष्टांत जो पहले हमने लिया था फिर से लें। समुद्र मथने पर केवल अमृत ही नहीं वरन् विष भी निकलता था। अस्तु जल भी बिना हानिकारक गुण के नहीं हो सकता। कोई चीज स्वयं अच्छी या बुरी नहीं होती वरन् उसका प्रयोग ही उसको भला या बुरा बनाता है। वास्तव में जल के दुरुपयोग से वह विष के समान घातक सिद्ध होता है। जल रोगी को मार सकता है, अगर उचित रूप से व्यवहार न किया जाय।

ज्वर की अवस्था में जल को केवल ताप की उग्रता को कम करने के लिये ही प्रयोग किया जाता है। ज्वर को जल के द्वारा वैसे ही दबाया जा सकता है, जिस प्रकार तेज औषधियों से सम्भव है। अतएव जल का ताप उस हद तक रखा जाता है जितने में प्रवाहयुक्त अवस्था सरलता और सुरक्षित रीति से पूर्ण हो जाय, न कि उसकी गति को बीच ही में रोकने के लिये। जल के उचित प्रयोग के लिये रोग की अवस्था तथा रोगी की शक्ति का पूर्ण ध्यान रखना चाहिये और उसी के अनुसार जल का ताप और स्नान या पैक का समय निश्चित करना चाहिये। यह बात भ देखना आवश्यक है कि आन्तरिक ज्वर भीतर न रह पावे और तुरन्त बाहर निकालने का प्रयत्न करना चाहिये।

कमजोर रोगी के साथ जल का बाह्य और आन्तरिक प्रयोग में बहुत सावधानी रखनी चाहिये। कमजोरी की दशा में अधिक जल देने से शारीरिक रस पतले पड़ जाते है और आरोग्यकारक शक्ति कम हो जाती है।

एक अवस्था ऐसी भी होती है जब कि जल बिलकुल ही नहीं दिया जा सकता। वह दीन दशा जलोदर (Dropsy) की होती है। ऐसी हालत में प्रत्येक कोष जल से लुचलुचे (Water Logged) हो जाते हैं और शरीर साधारण

जल को ग्रहण नहीं कर सकता। जल देने से तन्तुओं (Tissues) में पुनः जल संचय होने लगता है। ऐसे रोगी के उपयोगी अवयव, जैसे यकृत, गुर्दे, प्लीहा इत्यादि बहुत कमजोर हो जाते हैं और पाचन-क्रिया बिलकुल कमजोर पड़ जाती है। ऐसी दशा में जल केवल फलों के रस के रूप में दिया जा सकता है। इस दशा में दूध में पानी मिलाने से भी हानिकर जाता है। जल को इसोलिये थोड़ाथोड़ा कर के पीना चाहिए और कभी भी बड़े बड़े घूंट न पीना चाहिये।

जल की उपयोगिता को जो समझता है उसके लिए जल की एक-एक बूंद मोती के समान मूल्यवान हैं। जल का स्वास्थ्य और आरोग्य से घनिष्ट सम्बन्ध है। वर्तमान युग के संघर्षमय जीवन में मनुष्य मात्र के लिए शान्ति शुचिता तथा सत्य का सन्देश सुनने वाला जल ही है। हमारा कर्त्तव्य हमें उचित है कि इससे लाभ उठाकर जीवन के लक्ष्य की ओर अग्रसर हों और सुख-शान्तिमय जीवन व्यतीत करें।

YOUR DIET IN HEALTH AND DISEASE

By Harry Benjamim

हैरी वैनजा मिन इंगलैण्ड के सुप्रसिद्ध जीवित प्राकृतिक चिकित्सकों में हैं। आपकी दृष्टि-शक्ति इतनी क्षीण पड़ गयी थी कि उनके लिए डाक्टरों के पास कोई चश्मा ही न रह गया था। किन्तु उन्होंने प्राकृतिक-चिकित्सा द्वारा आँखों की खोई हुई ज्योति पुनः प्राप्त कर ली। आज तो आपका नाम संसार के प्राकृतिक चिकित्सकों के बीच बड़े आदर के साथ लिया जाता है। आपने 'Better Sight without glasses', 'Every body's guide to Nature cure' आदि कई पुस्तकें भी लिखी हैं।

YOUR DIET IN HEALTH AND DISEASE

स्वास्थ्यार्थियों के लिए यह आहार-विज्ञान सम्बन्धी आपकी पुस्तक एक अनुपम भेंट है। यदि आप आहार-चिकित्सा के द्वारा समस्त रोगों को निर्मूल करके अपने खोये हुए स्वास्थ्य एवं आरोग्य को बिना किसी चिकित्सा की सहायता के पुनः प्राप्त कर लेना चाहते हैं तो इस पुस्तक की एक प्रति आज ही मंगा लीजिए। पुस्तक का मूल्य सिर्फ १।) है। हमारे स्टाक में इस अनुपम पुस्तक की परिमित प्रतियां ही हैं, अतः शीघ्रता करें। विलम्ब से आर्डर भेजने पर सम्भव है कि आपको निराश होना पड़े।

मैनेजर, स्वास्थ्य ग्रंथ भंडार

२८७, बादशाही मण्डी, चौक प्रयाग

जल-चिकित्सा का इतिहास

(श्री कामता प्रसाद अग्रवाल एम० ए०, एन० डी० डी० वाई०, विशारद)

यह कहना शायद अत्युक्ति न होगा कि जल चिकित्सा का इतिहास यथार्थ में प्राकृतिक चिकित्सा का ही इतिहास है और स्वतः प्राकृतिक चिकित्सा का इतिहास है जल चिकित्सा का श्रीगणेश। इसके अतिरिक्त यह भी समान रूप से सत्य है कि औषधि या चिकित्सा के रूप में जल का प्रयोग मानव सभ्यता के आदि काल से होता चला आ रहा है। प्रकृति के "क्षिति, जल, पावक, गगन, समीरा"— इन पञ्च तत्वों में जल को ही प्रधानतया यह श्रेय क्यों प्राप्त है? इसीलिए कि प्रकृति के पांचो तत्वों में जल ही ऐसा एक तत्व है जो आपकी सेवा करने को निरन्तर सुलभ रहता है, आपके इतने निकट इतनी और प्रचुरता से विद्यमान है, आपके प्रत्येक रोगों में अपने इतने अधिक रूप बदलकर आप का उपकार करने में समर्थ रहता है। चाहे आप किसी भी रोग से पीड़ित क्यों न हों, चाहे आप कितने ही अस्वस्थ क्यों न अनुभव करते हों, जल का कोई-न कोई प्रयोग, कोई-न-कोई उपचार आपकी सहायता को सदैव प्रस्तुत मिलेगा, आपकी पहुंच उस तक अवश्यमेव होगी। जल में ही वह गुण है जिस कारण वह कल्पना के अन्दर आने वाले प्रत्येक शारीरिक अथवा मानसिक रोग की किसी भी दशा अथवा अवस्था में समय एवं स्थिति के अनुसार अपने अनेकानेक आकार बदल सकता है, अनेकानेक अद्भुत रूप धारण कर सकता है, अनेकानेक उपचारात्मक उभाड़ों को उत्पन्न कर व्याधि से मुक्ति दिला सकता है। जल का यह परोपकार इस सीमा तक पहुँचा हुआ है कि वह एक मात्र 'सर्वरोग-औषधि' की संज्ञा का पूर्ण अधिकारी है। अन्य किसी प्राकृतिक तत्व में यह गुण आपको कहां मिलेगा? प्रकृत्ति का अन्य कोई तत्व विश्व में इतनी व्यापकता से न तो विद्यमान है और न वह है आपकी चिकित्सा के निमित इतना बहुरूपिया। अन्य कोई तत्त्व शरीर में उपचार-सम्बन्धी इतनी प्रतिक्रियाएं नहीं उत्पन्न कर सकता है और न उसका प्रयोग प्रत्येक रोग अथवा दुर्घटना जन्य संकटों के समय इतनी शीघ्रता व सरलता से उपलब्ध एवं उपादेय ही हो सकता है।

लेखक

भारतीय प्राचीन ग्रन्थों में वर्णित जल के औषधि-गुण

हाँ, तो मैं कह रहा था कि चिकित्सा के रूप में जल का प्रयोग उतना ही पुराना है जितनी कि स्वयं जल की इस पृथ्वी पर सृष्टि। हमारे वेदों की रचना कदाचित् सृष्टि के आदि से मानी जाती है। देखिए, उनमें जल के अपूर्व चिकित्सा-गुण की किस प्रकार महिमा गाई गई है। ऋग्-वेद के केवल दो श्लोकों का हिन्दी अनुवाद नीचे मैं दे रहा हूँ जिससे मेरे इस कथन की सत्यता का पूर्ण प्रमाण मिल जायगाः—

(१) "जल औषधि है। जल रोगों का नाश करता है। यह सब रोगों को दूर करता है। इसलिए यह तुम्हारा रोग दूर करे।" ऋग्वेद १०। १३७। ६

(२) "जल में अमर बना देने की शक्ति है अर्थात् यह हमें निरोग बना कर अमर कर दे सकता है। जल में रोग छुड़ा देने का गुण है। इस जल की ऐसी महिमा है।" ऋग्वेद १२। ३। १६

आयुर्वेदीय ग्रन्थों में तो जल द्वारा रोगों को दूर करने की अनेक विधियाँ वर्णित हैं। इसीलिये बहुत से आयुर्वेदाचार्य प्राकृतिक चिकित्सा एवं जल-चिकित्सा को आयुर्वेद के ही अन्तर्गत उसका एक विकसित अङ्ग, उसकी एक प्रस्फुटित शाखा मानते हैं। उनकी धारणा है कि प्राकृतिक चिकित्सा अथवा जल-चिकित्सा-शास्त्र कोई नवीन खोज नहीं है, उसका स्रोत, उसका उद्गम, आयुर्वेद से से ही निकला है। चीन का प्राचीन साहित्य बताता है कि वहाँ उपचार के लिये जल का प्रयोग कम-से-कम ईसा के ७०० वर्ष पूर्व से होता आ रहा है। एक चीनी लेख में, जिसका रचना-काल ईसा के कई शताब्दि पूर्व की आँका जाता है, वर्णन मिलता है कि वहां के एक चिकित्सक ने एक चीनी स्त्री के लिये यह चिकित्सा निर्धारित की थी—हिम-जल के सौ अवगाहन और प्रत्येक अवगाहन के पश्चात् एक लिनेन की चादर को लपेटना। पाठक देख सकते हैं कि यह उपचार आधुनिक 'भीगी चादर की लपेट' (Wet sheet Pack) के सिद्धान्त से कितना मिलता-जुलता है।

ग्रीस और रोम में जल का प्रयोग

हमारे देश की तरह यूनान (ग्रीस) में भी जलके लाभप्रद प्रभाव को जान कर नित्य-स्नान को एक धार्मिक-कृत्य का रूप दे दिया गया था जिससे कि काहिल और सुस्त लोग भी धार्मिक बन्धन के कारण प्रतिदिन स्नान करें और उसके लाभ से वंचित न रहें।

यूनान में ४६०-३७७ ई० (ईसा के पूर्व) में हिपोक्रिटीज नामक एक व्यक्ति का जन्म हुआ था। हिपोक्रिटीज वह व्यक्ति है जिसे लोग भ्रम वश 'औषधोपचार प्रणाली का जनक' मानते है, पर वह जीवन भर प्राकृतिक चिकित्सा के नियमों के अनुसार चिकित्सा करता रहा और इसी कारण उसे अपने समय में बड़ी प्रसिद्धि मिली थी। हिपोक्रिटीज को ठण्डे व गर्म जल के औषधि-गुणों का बड़ा अच्छा ज्ञान था। इनका प्रयोग वह ज्वर, घाव, रक्तस्राव तथा अन्य कितनी ही विविध बीमारियों के उपचार में वे खटके करता था। रोगों को दूर करने में जल के प्रयोग के समय वह अनेक आदेश दिया करता था। इन आदेशों पर आज भी दो हजार वर्षों के अनुभव के पश्चात् कोई संशोधन नहीं किया जा सका है। उदाहरणके लिए, उसका एक आदेश यह था कि ठण्डे स्नान बहुत थोड़े समय का होना चाहिए। इसके अतिरिक्त वह ठण्डे व गर्म पानी के प्रयोग की 'प्रतिक्रिया के नियम' से भी पूर्णतः परिचित था, क्योंकि ठण्डे पानी से स्नान करने के बाद शरीर तुरंत अपनी उष्णता, गर्मी, को फिर से प्राप्त कर लेता है, जब कि इसके विपरीति, गर्म जल का स्नान लेने के बाद उल्टा ही असर होता है।

रोमवासियों ने भी, जिनके सुन्दर सुडौल शरीर आज भी प्रख्यात हैं, शरीर को हृष्ट-पुष्ट बनाने के लिए जल को बहुत ही उपयोगी पाया था।

रोमन सम्राटों के भव्य स्नानागार

रोमनों के समय में तो स्नान (बाथ) का विकास बहुत ऊंचे दर्जे तक पहुँच गया था। रोमनसम्राटों की तो यह दशा थी कि वे जगह-जगह विशाल भव्य स्नानागारों के निर्माण करवाने में एक दूसरे से होड़ लगाते थे। ये स्नानागार सार्वजनिक होते थे और इतने बड़े बनाये जाते थे कि उसमें प्रतिदिन हजारों आदमी स्नान कर सकें। केवल रोम में ही इनकी संख्या साढ़े आठ सौ के लगभग बताई जाती है। यहां केवल लोग स्नान के आनन्द का उपभोग करने नहीं आते थे, वे जल के चिकित्सा-गुण से भी लाभ उठाते थे। इसके प्रयोग से वे अपने शरीर को निरोग और सुदृढ़ बनाते थे। रोम और पम्पियाई के भग्नावशेषों को देखने से स्पष्ट प्रतीत होता है कि उनके नहान-घर स्नान के अनेक साधनों व उपकरणों से किस प्रकार सुसज्जित थे। उनमें ठंडे पानी से स्नान के लिए फौवारे, गर्म वायु व बाष्प स्नान के लिए कमरे, गर्म व ठंडे पानी के हौज और आराम के लिए सुन्दर स्थान बने थे। एक समय था, जब कि रोमनिवासियों के ये स्नानागर सारे संसार में प्रसिद्ध थे। प्लाइनी (Pliny) नामक प्रसिद्ध इतिहासकार का तो यहां तक कहना है कि रोमन-साम्राज्य के वैभव काल के ५०० वर्षों में चिकित्सा के लिए एकमात्र जल का ही उपयोग किया जाता था। सेल्सस (Celsus) तथा अन्य रोमन चिकित्सकों ने अपनी पुस्तकों में 'स्नान' की बड़ी महिमा गायी है। सेल्सस ने तो बाद में अपनी संपूर्ण चिकित्सा प्रणाली के अन्तर्गत 'स्नान' को एक आवश्यकीय अंग माना।

उसकी चिकित्सा प्रणाली के अन्य दो अंग 'व्यायाम' व 'घर्षण' थे'

मध्यकालीन युग में संभवतः अरब के हकीम ही संसार में सबसे अधिक सुयोग्य गिने माते थे । वे ज्वर, चोट, घाव आदि अनेक रोगों के उपचार में जल का उपयोग खुल कर करते थे। चेचक व खसरा के इलाज के निमित्त जलोपचार सम्बन्धी उनकी जो हिदायतें थीं वे आज भी उतनी ही सही हैं।

जापान में १८८१ में प्रकाशित 'टोकियो मेडिकल जर्नल' नामक पत्र में स्पष्ट लिखा है कि जापान में ठंड स्नान का प्रयोग लगभग ८०० वर्षों से होता आया है, विशेष कर ग्रामीण आदिमवासी चिकित्सकों के बीच। इसके अतिरिक्त उसमें यह भी दिया हुआ है कि लगभग ३०० वर्ष पहिले वहां के एक डा० नाकागामी ने ठंडे स्नान के औषधि-गुण सम्पन्न प्रयोगों पर एक छोटी सी पुस्तिका प्रकाशित करवाई थी जिसमें शीतल स्नान का प्रयोग हिस्टीरिया, दमा, बच्चों के दौरे और तीव्र उन्माद आदि रोगों में विशेष लाभदायक बताया गया है।

पन्द्रहवीं शताब्दी में सावोन रोला नामक एक इटैलियन चिकित्सक था जो ठंडे अपनी चिकित्सा में ठंडे जल के स्नान का बराबर क्रम-बद्ध उपयोग करता था। वहीं का बरिज्जी नामक चिकित्सक गर्भाशय सम्बन्धी बीमारियों में ठंडे योनि- डूस को प्रयोग में लाता था। तत्कालीन प्रमुख जर्मन व स्पेन वासी चिकित्सक अनिद्रा (Insomnia) रोगों में ठण्डे जल द्वारा उपचार करने की सलाह देते थे।

सत्रहवीं शताब्दि में सेप्टला नामक चिकित्सक सिर-दर्द व लू लगने पर ठण्डे जल के स्नान द्वारा उपचार करता था। इसी [illegible] में बेल्जियम-निवासी एक चिकित्सक, जिनका नाम हरमैन था, कब्ज, लकवा, व उन्माद आदि रोगों में शीतल जल का प्रयोग करता था। ये वे रोग हैं जिनके उपचार में ठंडे पानी से बढ़कर और कोई 'एकमात्र' चिकित्सा नहीं है। १६७५ ई० में लियां (Lyons) निवासी बर्रा नामक एक डाक्टर ने एक पुस्तक प्रकाशित की थी जिसका शीर्षक था "दि यूस आव आइस, आव स्नो ऐण्ड आव कोल्ड" (प्राकृतिक व अप्राकृतिक बर्फ का तथा शीतलता का प्रयोग)। इस पुस्तक से ज्ञात होता है कि लेखक ने शीतल जल के अनेक उन उपचारात्मक-गुणों का पता पा लिया था जिनकी उपयोगिता पिछले ७५ वर्षों में वैज्ञानिक प्रयोगों के आधार पर सुदृढ़ भित्ति पर स्थापित हो गई है। दीर्घकालीन अविराम ज्वर के लिए तो वह शीतल जल को सर्वोत्तम औषधि बताता था। छूत की बीमारियां, फोड़े, पाला लगना, पेचिश, जलोदर, प्लेग, गले का शोथ, पेट का कड़ापन, इन व्याधियों में शीतल जल के उपयोग द्वारा उपचार का वह विशेष रूप से समर्थक था।

इङ्गलैंड में जल-चिकित्सा

इङ्गलैण्ड के जल-चिकित्सा के इतिहास में जॉन फ्लायर का नाम सर्व प्रथम आता है। सर जॉन फ्लायर लिचफील्ड के डाक्टर थे। उनको एक दिन यह पता चला कि उपर्युक्त शहर के पास ही किसी झरने के पानी में स्नान करके कुछ किसानों ने स्वास्थ्य-लाभ किया है। जल की इस उपयोगिता की ओर उनका ध्यान आकृष्ट हुआ। उन्होंने इसकी खूब जांच व शोध की और तब उन्हें जल का प्रभाव विदित हुआ। **सन् १६६७ ई० में** उन्हों ने ठण्डे जल के स्नान का इतिहास प्रकाशित किया जिसमें उन्होंने आदेश दे रक्खा है कि शीतल जल का स्नान लेने के पहिले रोगी के शरीर से पसीना निकलवाना चाहिए जिसकी विधि यह है कि रोगी को भीगी चादर से लपेट कर ऊपर से उसे कम्बल से ढक दिया जाय। ठीक यही विधि १०० वर्ष से अधिक बीतने के बाद प्रेसनीज़ (priessnitz) ने, जो जल-चिकित्सा का आविष्कारक व जनक कहा जाता है, चलायी थी और जो आज 'भीगी चादर की लपेट' के नाम से पुकारी जाती है। फ्लॉयर ने लिचफील्ड में सत्रहवीं शताब्दी के अन्तिम भाग में एक जल-चिकित्सालय को भी जन्म दिया था। सर जॉन फ्लायर ने अपनी पुस्तक में एक स्थान पर वर्णन किया है कि भीगी चादर की लपेट (वेट शीट पैक) का प्रयोग उनके समय में खिलाड़ियों द्वारा होता था। घुड़दौड़ में भाग लेने वाले घुड़सवारों का वजन उसके द्वारा कम किया जाता था।

उसमें इसकी विधि इस प्रकार बताई गई है:—

"घुड़सवार की कमीज को ठण्डे पानी में डुबो दो, और जब यह अच्छी तरह भीग जाय तब आदमी को गर्म कम्बलों के अन्दर लिटा दिया जाय जिससे जोरों से पसीना निकले। इससे उसका काफी वजन घट जायगा, एक या दो पौण्ड।"

यही विधि अन्य कई रोगों के दूर करने में भी इस्तेमाल की जाती थी। जॉन फ्लायर साहब के उपर्युक्त कथन से तथा उनकी समूची पुस्तक से इसी प्रकार के अनेकानेक अधकचरे प्रयोगों से पाठक अच्छी तरह कल्पना कर सकते हैं कि उस समय में इङ्गलैण्ड में प्रचलित ये अपूर्ण प्रयोग वे ही थे जिनको प्रेसनीज व फादर नीप ने आगे चलकर लगभग १५० वर्ष बाद अपनाया, पुनर्जीवित किया व उनका पुनरुद्धार किया।

सर जॉन फ्लायर की पुस्तक के पश्चात् यहाँ पर एक और ग्रंथ का उल्लेख कर देना आवश्यक है, जिससे इस बात पर पूर्ण प्रकाश पड़ता है कि आज से २०० वर्ष पूर्व भी योरप के देशों में जल का सामान्य रूप से रोगों में किस प्रकार चिकित्सा-सम्बन्धी उपयोग किया जाता था। इस पुस्तक का नाम है 'प्रिमिटिव फ़िज़िक' (प्राचीन कालीन औषधोपचार) यह १७४७ ई० में प्रकाशित हुई थी। इसके लेखक हैं जॉन वेसले (John wesley), एम० ए०। वेसले साहब की पुस्तक में उन्हीं जलोपचारों का उल्लेख है जिनसे लेखक ने जन साधारण में सफलता पूर्वक प्रयोग होते पाया था। इस पुस्तक से कुछ उदाहरण दिये जाते हैं, जो पाठकों को अवश्य रोचक व ज्ञान वर्धक प्रतीत होंगे:—

जाड़ा-बुखार या मलेरिया ज्वर में—"ठण्ड का दौरा होने के ठीक पहिले ठण्डा स्नान ले लो" (यह विधि आज भी जर्मनी व फ्रांस में फैली है), अथवा "दौरे के ठीक पहिले एक क्वार्ट ठण्डा पानी पी लो और तब बिस्तरे पर लेट कर शरीर से पसीना निकालो"।

दमा में:—"रोज प्रातः एक पाइण्ट ठण्डा जल पियो, उसके पश्चात् फौरन उससे सर को धो डालो और १४ दिन में एक बार ठण्डे स्नान का प्रयोग करो।"

अंतरा जाड़ा बुखार में:—जान वेसले का कहना है कि "ज्वर न आने के दिन बहुत हलका व बचाकर खाना खाइए अथवा ठण्डे स्नान का प्रयोग कीजिए (जब कि आप बहुत वयोवृद्ध या दुर्बल न हों)।" परन्तु जब आप इसका प्रयोग करें, चाहे किसी भी कारण से, तो उचित यह है कि शीतल जलाशय में आप जायं; फौरन उसके अन्दर घुस जायं पर सर के बल नहीं; सिर्फ दो या तीन मिनट तक उसमें रुक जाय (अथवा आरम्भ में और भी कम); जब पेट भरा हो तब कभी स्नान न लिया जाय; कम-से-कम सप्ताह में दो या तीन बार स्नान लिया जाय, जब तक कि नौ या दस बार आप स्नान न कर चुकें।

"ठण्ड का दौरा शुरू होने के पहिले, बिस्तर पर लेट जाइए और लेमोनेड पीकर छः ता आठ घण्टे तक बहुत सा पसीना निकालिए। इससे सामान्यतः तीन या चार बार में रोग चला जाता है और यदि न जाय, तो दौरों के बीच में शीतल स्नान का इस्तेमाल कीजिए।" अतरा ज्वर को भगाने का उपर्युक्त विधि के विषय में अमेरिका के लब्ध-प्रतिष्ठ प्राकृतिक चिकित्सा के डा० केलाग का कथन है कि उन्होंने १८६८ में यू० एस० ए० (अमेरिका के संयुक्तराज्य) के मध्य भाग में जन-साधारण को इसी विधि का प्रयोग करते देखा है और वह भी सफलता पूर्वक उन केसों में जिनमें मलेरिया तथा अन्य औषधियां बिल्कुल बे-असर रही हैं।]

"चोट लगने पर सूजन न आने देने के लिए:—पाँच या छः बार कपड़े को दोहरा-दोहरा कर तथा शीतल जल में डुबो कर उसे रखिए और जब वह गर्म हो जाय तो उसे बदल दीजिए।"

"चोट की सूजन को अच्छा करने के लिए:—जितना आप से सहन हो सके उतने गरम पानी में कपड़ों से डुबो कर प्रातः व सन्ध्या में आध घन्टे तक सेंक दीजिए।"

"जलने पर:—फौरन ही शीतल जल में अंग को डुबो दीजिए एक घन्टे तक वहीं रखिए, अथवा यदि पहिले ही अच्छा न हो जाय तो कदाचित् चार या पाँच घन्टे तक।"

कुकर-खाँसी में:—"रोजाना शीतल स्नान का प्रयोग कीजिए"।

उदर-शूल में:—"एक पाइण्ट ठण्डा जल पीजिए अथवा एक क्वार्ट गर्म पानी, या थैली में गर्म पानी भर कर (रखिए) अथवा गर्म पानी में पाँवों को डुबो रखिए १५ मिनट के लिए।"

पुराने सर दर्द में:—"सोने के १५ मिनट पहिले अपने पाँव गर्म जल के अन्दर रखिए, दो या तीन सप्ताह तक।"

गठिया में:—"मालिश और पसीना निकालने के साथ साथ ठण्डे जल के स्नान का प्रयोग कीजिये।"

जोड़ों में सूजन आने पर:—"प्रतिदिन उस भाग पर गर्म जल की एक धारा डालिये अथवा एक दिन ठण्डे जल की धार दूसरे दिन गर्म जल की।"

"कुछ दिनों तक, ठण्डे जल का प्रयोग करने के पूर्व गर्म जल का स्नान लेना भी बहुत लाभप्रद है"।

वेसले ने अपनी पुस्तक में बालकों के सभी रोगों में, सभी पुराने रोगों में तथा कई चीर-फाड़ के केसों में भी ठण्डे जल के स्नान को लाभदायक और उपयोगी बतलाया है। यद्यपि वेसले चिकित्सक नहीं था, पर उसने अपनी पुस्तक में उन्हीं सफल उपचारों का केवल वर्णन किया है जो अठारहवीं शताब्दी के मध्य में जन-साधारण के बीच समान्यतः प्रयोग में लाये जाते थे। पर ऊपर के उदाहरणों से पाठक स्वयं देख सकते हैं कि वेसले के निर्देशित उपचारों व बताये इलाजों में कितनी बुद्धिमानी व सूक्ष्म अन्तर्निहित है। इनसे स्पष्ट भासित होता है कि लेखक ने जलोपचार सम्बन्धी कितना विस्तृत और सही अनुवीक्षण किया था जिसके कारण विविध रोगों पर बताये उपचार आज भी बिना किसी तरमीम के लागू होते हैं।

इङ्गलैण्ड में सर जॉन फ्लायर और उनकी पुस्तक के पश्चात् जेम्स क्यूरी (James curie) और जैक्सन (Jackson) के नाम उल्लेखनीय हैं। इन दोनों डाक्टरों ने १८ शताब्दि के अन्तिम समय में **ज्वर में** जल के उपयोग का बहुत ही बुद्धिमत्तापूर्ण एवं वैज्ञानिक अध्ययन किया था। उनके अध्ययन के फलस्वरूप इङ्गलैण्ड के चिकित्सक वर्ग का ध्यान एक समय तक उनकी ओर ही खिंचा रहा। क्यूरी ने १७९७ में अपनी एक पुस्तक प्रकाशित की जिसमें उन्होंने ज्वर तथा अन्य रोगों में जल के प्रभाव पर विशेष लिखा। उन्हों ने जल-चिकित्सा सम्बन्धी कई आवश्यकीय सिद्धान्तों को खोज निकाला। जल के प्रयोग को नियमित करने के निमित्त उनके अनुसार एक परमावश्यकीय सिद्धान्त यह था कि जल का तभी निरापद प्रयोग होना चाहिये "जब कि ठण्डक की अनुभूति उपस्थित न हो, जब कि देह की गर्मी स्वाभाविक गर्मी से बराबर ऊपर रहे, और जब कि सामान्य अथवा अधिक स्वेदन न हो"। उनका कहना था कि शीतल को एकदम शरीर में उड़ेल कर उससे स्नान करना (A-cold pour) देर तक ठण्डे पानी से रगड़-रगड़ कर नहाना (cold sponging) विधि से अधिक निरापद है क्यों कि यह एक "स्फूर्तिदायक उपचार है"। इसके अतिरिक्त क्यूरी की यह भी हिदायत थी कि बाथ लेकर थकावट अथवा क्लान्ति न पैदा कर ली जाय। उनका कथन था कि स्नान के पश्चात् "तौलिये से फौरन" रोगी को सुखा दिया जाय तथा यदि स्नान के कारण बहुत अधिक शीतलता आ जाय व शरीर गिर जाय तो हथेलियों, से पैरों को रगड़ देना चाहिए और "गर्म पानी की एक थैली पेट पर रखनी चाहिए।" जेम्स क्यूरी ज्वर में गीले कम्बल या पट्टी का प्रयोग करता था और कहता था कि इससे सन्निपात (Delirium) का शमन होता है। फेफड़ों से रक्त का बहाव होने पर वह पैरों में जलीय शीतलता पहुंचाता था एक बार तो उसने एक ऐसे ही रोगी को सहसा कमर भ ठण्डे पानी में खड़ा कर दिया था।

एक साइलेशियन अपढ़ किसान बालक का अवतरण

उपर्युक्त सब बातें थी। ज्वरादि रोगों पर जन-साधारण में जहाँ तहाँ जल के उपचार सम्बन्धी छुटपुट प्रयोग होते थे। जेम्स क्यूरी एवं ज्वर सम्बन्धी बीमारियों के चिकित्सा हेतु जलोपचार के रूप में एक सचमुच अमूल्य और वैज्ञानिक उपचार पद्धति के योग्य प्रारम्भिक प्रवर्तक थे। प सभ्य संसार का ध्यान जल के इस अद्भुत एवं अनुपम गुण और अभी तक बिल्कुल ही नहीं गया था। और जेम्स क्यूरी व जैक्सन की यह सेवा तिमिर-गह्वर में ही पड़ी गई और उसका मूल्य बिना आंके ही रह गया था। जल के चिकित्स

म्बन्धी गुण की ओर समस्त सभ्य संसार व समाज ा ध्यान तभी आकृष्ट हुआ जब उसके कर्ण-कुहरों क एक साइलेशियन अशिक्षित किसान की ख्याति ल-चिकित्सक के रूप में ध्वनित हुई। तभी संसार के चेकित्सक-वर्ग ने जल के ओषधि गुण की ओर चम्भे से देखा और उनकी आंखें खुलने गीं।

चिकित्सा के रूप में जल की वर्तमान प्रसिद्धि का सेहरा प्रेसनीज के सिर बंधना था।

जल चिकित्सा का जनक

यदि सच कहा जाय तो उपर्युक्त डाक्टरों के समय क जल-चिकित्सा का प्रचार व्यावहारिक व सर्वव्यापक रूप जनता व चिकित्सक वर्ग में न हो सका था और न ल-चिकित्सा की किसी नियमित प्रणाली की ही स्थापना पायी थी। इस कार्य को किया जर्मन डाक्टर विन्सेण्ट सनीज़ ने (Vincent Pressnintz) । इसीलिए हुों की धारणा यही है कि आधुनिक चिकित्सा प्रणाली काया कहना चाहिए कि वर्तमान प्राकृतिक चिकित्सा का (जनक) ० प्रेसनीज ही है। इस तथ्य से भी इनकार नहीं किया सकता कि आधुनिक प्राकृतिक चिकित्सा का आन्दोलन ाज से प्रायः सवा सौ वर्ष पहिले प्रेसनीज के समय से प्रारम्भ हुआ है।

क हिरनी ने अपढ़ किसान बालक को सहसा डाक्टर बना दिया

नीचे अब पाठकों के लाभार्थ जल-चिकित्सा के जनक जीवन की कतिपय रोचक घटनाएं दी जाती हैं जिसने ाक प्रेसनीज को क्या से क्या कर दिया।

जर्मनी के साइलेशियन पहाड़ की तंग्टी में स्थित नबर्ग गांव में एक साधारण एवं अशिक्षित घराने में सन् ०० ई० में विसेण्ट प्रेसनीज का जन्म हुआ। कुछ बड़ा होने उसे भी अन्य किसान बालकों की तरह चरवाहे का काम ा गया। बालक प्रेसनीज दिन भर गांव के आसपास पहाड़ी लों में गायें चराया करता था। एक दिन की बात है। वह ठ वर्ष का हो चुका था। वह अपनी गायों को जङ्गल में चरा रहा था। इसी बीच उसकी दृष्टि एक अजीब दृश्य की ओर आकृष्ट हुई। उसने देखा कि एक हिरनी बुरी तरह लंगड़ाती हुई एक झरने के पास पहुंची और लगभग आध घण्टे तक पानी में खड़े रहने के बाद पानी से निकल कर जिधर से आयी थी उधर ही चली गयी। इस घटना से अष्टवर्षीय किन्तु कुशाग्र बुद्धि रखने वाले बालक प्रेसनीज के दिल में यह जानने की उत्कण्ठा हुई कि वह घायल हिरनी पानी में कुछ देर तक क्यों खड़ी रही और फिर चली क्यों गयी। उसने सोचा कि दूसरे दिन देखना चाहिए कि हिरनी फिर आती है कि नहीं। ऐसा सोचकर उसने दूसरे दिन भी उसी स्थान पर पहिले से छिपकर उसके आने की प्रतीक्षा करने लगा। हिरनी उस दिन भी पहिले दिन की तरह ही उसी समय पर फिर वहीं आयी और इस बार आध घण्टे से कुछ अधिक समय तक पानी में ठहरने के बाद फिर वापिस चली गयी। इसी प्रकार प्रतिदिन तीन सप्ताह तक ठीक समय पर नियमिति रूप से वह आती और पानी में खड़ी रहकर चली जाती। प्रेसनीज बराबर बहुत ही ध्यान-पूर्वक उसकी सम्पूर्ण गतिविधि नोट करता रहा। **अरे लीजिए बालक प्रेसनीज ने अब क्या देखा? उसने** देखा कि हिरनी के इस दैनिक क्रिया के कारण उसका लंगड़ाना दिनप्रति दिन कम होता जा रहा है। फिर एक दिन ऐसा आया कि पूर्ण रूप से अच्छी हो गई और एक दिन वह पानी से निकल कर चौकड़ी भरती हुई ऐसी भागी कि फिर वह जल में खड़ी होती दिखलायी ही नहीं दी।

हिरनी की इस अद्भुत घटना ने बालक प्रेसनीज को जल का डाक्टर बना दिया। यह घटना प्रेसनीज के जीवन की एक अपूर्व घटना थी और उसके लिए बहुत ही महत्वपूर्ण सिद्ध हुई। इसकी अमिट छाप उसके मस्तिष्क में सदैव के लिए अङ्कित हो गयी।

जब प्रेसनीज ने सत्रहवें वर्ष में पदार्पण किया था उस समय की बात है। वह एक दिन जङ्गल से लकड़ी काटकर लौट रहा था कि एकाएक बर्फ की इतने जोर की बौछार और आंधी आयी कि उसको विवश होकर रास्ते में ही एक छप्पर के नीचे शरण लेनी पड़ी। दैवयोग से वह छप्पर, जिसके नीचे प्रेसनीज बैठा था, आंधी-बौछार की उग्रता न सहन कर सकने के

कारण गिर पड़ी और बेचारा प्रेसनीज उसी के नीचे दब गया। जब वह निकाला गया तो देखा गया कि उसकी दो पसलियां बुरी तरह कुचल गयीं। इसके अतिरिक्त वे उसके शरीर में घुस भी गयी थीं। जब वह छप्पर के नीचे दबा पड़ा था उसके स्मृति-पथ में अचानक पिछली आठ वर्ष पहिले वाली हिरनी की घटना घूम गयी! उसने अपने मन में दृढ़ प्रतिज्ञा की यदि वह छप्पर से जीवित निकाल लिया गया तो वह हिरनी ही की तरह जल द्वारा अपना उपचार कर उसका प्रभाव अपने ऊपर देखेगा। पाठकों को यह जानकर आश्चर्य होगा कि छप्पर के नीचे से निकाले जाने के बाद उसने अपनी चिकित्सा उसी तरह की हां हिरनी की तरह पानी में खड़ा होकर उसको जल का प्रयोग न करना था, क्योंकि पसलियां टूटी थी, पैर नहीं लंगड़ा हुआ था। प्रेसनीज ने अपने उपचार में जल का किस प्रकार प्रयोग किया? सूती कपड़े की गद्दी पानी में भिगो कर वह अपने आहत अंग पर रखता था, और जब गद्दी सूख जाती तो उसे फिर पानी में भिगो कर वहीं पर रख देता। इस तरह करते रहने पर पाठकों को यह जानकर आश्चर्य होगा कि कुछ दिनों के बाद उसकी पीड़ा कम हो गई, क्षत-विक्षत अंग में शक्ति आ गई, हड्डियां ठीक स्थान पर बैठ गयीं और वह अन्त में बिल्कुल स्वस्थ हो गया!

"तुम्हें धैर्य धारण करना होगा"

इस प्रकार सभ्य जीवन से बहुत दूर रहने वाला, अनुभवशील, दीन, अशिक्षित पहाड़ी किसान-बालक के सर जल-चिकित्सा के जनक होने का मौर बंधा। प्रेसनीज ने ही सर्व-प्रथम जल-चिकित्सा प्रणाली की स्थापना की, जो आज समस्त सभ्य संसार में अचूक चिकित्सा का एक आवश्यक अंग मानी जाती है। सन् १८२६ में प्रेसनीज ने अपने घर पर ही जल-चिकित्सा करनी आरम्भ की। जब लोगों ने सुना कि प्रेसनीज ने अपने को स्वयं बिना किसी औषधि के, लोशन अथवा मलहम के इस अद्भुत तरीके से जल द्वारा ठीक कर लिया तो फिर क्या कहना था सैकड़ों की संख्या में घायल लोग और बाद को पुराने रोगों से पीड़ित रोगी भी दूर-दूर से उसके घर आते और पानी के उपचार से रोग मुक्त होकर उसका यशोगान करते घर वापस जाते। बाद में प्रेसनीज ने अपने ही जन्म स्थान ग्रैफेनबर्ग में एक चिकित्सा-गृह की स्थापना की जिसमें इलाज के लिये संसार के कोने-कोने से झुण्ड के झुण्ड रोगी आते थे। यह दुनिया में सबसे पहिला जल-चिकित्सा सम्बन्धी आरोग्य मन्दिर था जो धीरे-धीरे रोगियों के लिये यथार्थ में एक तीर्थ स्थान सा बन गया था। प्रेसनीज अपनी चिकित्सा पद्धति में जल को ही विशेष महत्व देता था। भोजन में वह सादगी के पक्षपाती था। वह अपनी चिकित्सा में रोगियों के धैर्य धारण करने पर अधिक जोर देता था। इसलिये उसने अपने स्वास्थ्य-गृह के बाहर अपना यह 'मोटो' एक पत्थर पर खुदवा दिया था कि **"तुम्हें धैर्य धारण करना होगा"**। इस प्रकार वह बताता था कि प्रकृति के गुणों को देखने के लिये समय की आवश्यकता है। प्रेसनीज अपना काम बहुत सफाई और ईमानदारी से व खुल्लम-खुल्ला करता था। वह मितभाषी, गम्भीर व उच्च चरित्र का व्यक्ति था। आडम्बर उसको छू तक नहीं गया था। बड़े धैर्यपूर्वक और बडी लगन के साथ प्रकृति का यह विद्यार्थी उन सिद्धान्तों के विकास के फिये परिश्रम करता था जिनको कि उसने पहिचाना था। उसके देशवासी तथा चिकित्सक-समुदाय उसका आदर करते थे। आस्ट्रियन सरकार ने उसके कार्यों व विधियों की सरकारी खोज करवा कर उसे डाक्टरी के डिप्लोमा से सुशोभित किया था। फ्रेंच सरकार ने बाद को अपने औषधि-विभाग के अध्यक्ष को उसके पास भेजा था कि वह जाकर उसके चिकित्सा-प्रणाली का अध्ययन करे और इस तरह आज से सवा सौ वर्ष पहिले फ्रांस की मिलिटरी सर्विस में जल-चिकित्सा का पदार्पण हुआ। दूसरे देशों की सरकारों ने भी फ्रांस का शीघ्र अनुसरण किया। इस प्रकार प्रकृति के विश्वविद्यालय में शिक्षा पाये हुये इस चिकित्सक द्वारा विकसित सिद्धान्त व विधियों का शीघ्र प्रचार व प्रसार हुआ।

प्रेसनीज की देन

प्रेसनीज की चिकित्सा-प्रणाली का आधार था पसीना निकालना और उसके पश्चात् शीतल जल के उपचारों का प्रयोग करना। शीतल जल के उपचारों की प्रयोग-विधियाँ उसकी अत्यन्त अपरिपक्व थीं। प्रेसनीज की खोज तो कोई बड़ी अथवा आश्चर्यजनक नहीं थी। उसकी चिकित्सा

7 [illegible], हर बार (
(Johann vat
John)

पद्धति में जल के प्रयोग को जो-जो भी विधियां सम्मिलित थीं वे सब उसे अपने देश के किसानों से विरासत के रूप में मिली थीं जो उन सब का प्रयोग १७३७ ई० या उससे भी पहिले से सामान्यतया करते आये थे। किन्तु प्रेसनीज ही **उन व्यक्तियों में से पहिला व्यक्ति था जिसने जलोपचार की विविध विधियों का संयोजन कर उन्हें एक चिकित्सा प्रणाली का रूप दिया।** यह ही उसका सब से बड़ा श्रेयपूर्ण कार्य है। इसके अतिरिक्त वह ही सर्व प्रथम व्यक्ति था जिसने चिकित्सा के तौर पर जल-प्रयोग की सरल विभिन्न विधियों की आश्चर्यजनक उपादेयता की ओर सब का ध्यान आकर्षित किया, जिसकी सार्थकता का लोगों को नहीं के बराबर ज्ञान था। प्रेसनीज ने इतना ही नहीं किया उसने और भी एक बड़ा उपकार किया और वह यह था कि उन दिनों के औषधि-चिकित्सक जिन पुराने रोगों को अच्छा करने में कोई असमर्थ थे ऐसे पुराने रोगों के अनेक रोगियों को रोग-मुक्त कर उसने जीवनदान दिया। इसके लिए प्रेसनीज को बहुत कठिनाइयां झेलनी पड़ी थीं। कितने ही उन्नायकों की भांति प्रेसनीज भी सर्व प्रथम पुरान-पन्थी डाक्टरों की आंखों का कांटा हो गया। उसका डाक्टरों द्वारा काफी विरोध हुआ। उपहास, गालियां, अदालतों में कानूनी कार्रवाई इन सब को बारी-बारी से उसे भुगतना पड़ा। पर अन्त में सत्य की विजय हुई। अनेकानेक रोगियों को सफलतापूर्वक दिन-प्रतिदिन अच्छे होते देख कुछ समय बाद रुढ़िवादी पर बुद्धिमान डाक्टर लोग भी उसका तथा उसकी चिकित्सा का लोहा मान गए। प्राचीन डाक्टरों द्वारा उपर्युक्त उत्पीड़न के फलस्वरूप प्रेसनीज की ख्याति व मान-प्रतिष्ठा में चार चांद लग गये। उसकी प्रसिद्धि उत्तरोत्तर उज्जवल व प्रखर हो गई। और इसका एक सबसे बड़ा परिणाम यह हुआ कि रोगी तो इलाज के लिए आते ही थे, **विद्यार्थी भी उसके पास आये जिन्होंने इस चिकित्सा पद्धति को बढ़ाया।**

सबसे पहिले थियोडोर हान (Theodor Hann) नामक अतार ने प्रेसनीज की शिष्यता ग्रहण की थी। यह उसके शिष्यों में प्रधान भी था। लुईकूने दूसरे थे। तीसरे शिष्य बवेरिया निवासी आर्नल्ड रिकली हुये। कूने जुलाहा और रिकली कारीगर था। चौथा शिष्य ~~कैम्प~~ क्नाप नामक पादरी था। हेनरिक लामान (Henrick Lahmann) नामक एक डाक्टर ने भी इसकी शिष्यता ग्रहण की। उसका छठा शिष्य एडोल्फ जुस्ट नामक एक शिक्षक था। यों प्रेसनीज के सैकड़ों शिष्य हुये पर ये छः उनमें विशेष प्रसिद्ध हैं। अमेरिका के प्रसिद्ध एलोपैथिक डाक्टर ट्राल, जैक्सन और केलाग भी प्रेसनीज के पास गये और उनके पास रह कर प्राकृतिक चिकित्सा सीखी।

Father Kneipp

जोहान श्रॉथ

प्रेसनीज के पश्चात् जोहान श्रॉथ (Johanneo schroth) दूसरा उल्लेखनीय व ख्याति प्राप्त व्यक्ति है जिसने जल-चिकित्सा प्रणाली को उन्नतिशील बनाने में विशेष योग दिया। इसका जन्म प्रेसनीज के जन्म स्थान से कुछ ही मील की दूरी पर हुआ था। कदाचित् यह प्रेसनीज का समकालीन भी थी। यह व्यक्ति पहिले आस्ट्रिया, वर्तमान चेकोस्लोवाकिया के अन्तर्गत लिण्डविज (Lindewiese) नगर में कोचवानी करता था। प्रेसनीज की तरह जोहान श्रॉथ को भी अपने निजी अनुभवों के विद्यालय में चिकित्सा सम्बन्धी शिक्षा ग्रहण कर डाक्टर बनने का सौभाग्य मिला था। **इसके जीवन की भी दो-एक रोचक घटनायें है जो बहुत ही महत्वपूर्ण हैं।** एक बार ऐसा हुआ कि उसके घुटने की गोल हड्डी पर इतनी जोर की चोट लग गई कि मालूम होता था कि वह सदैव के लिये लंगड़ा हो जायगा। चोट के उपचार के लिये उसने क्या क्या नहीं किया। अच्छी से अच्छी दवा लगायी, पर लाभ कुछ भी न हुआ। एक साधू ने उसे चोट पर ठण्डे जल के प्रयोग की सम्मति दी। सब तरह की दवाओं से निराश होकर उसने अन्त में पानी का इलाज करना तो पहले से ही निश्चय किया था, किन्तु अब साधु-द्वारा प्रोत्साहन मिलने पर, वह साधु के बताये ढंगों में कुछ अपनी सहज बुद्धि से हेर फेर कर अपनी चिकित्सा स्वयं करने लगा। उसने ठंडे जल की पट्टियाँ देनी आरम्भ की और कई अन्य सहयोगी उपचार भी किये। फल यह हुआ कि कुछ ही सप्ताह के बाद वह बिलकुल भला चङ्गा हो गया।

घोड़ों व कुत्तों पर भी प्रयोग किया

अब श्रॉथ को बहुत अधिक प्रोत्साहन मिला। और अब उसने अपने अनुभूत चिकित्सा-विधि का प्रयोग करना

आरम्भ किया। पशुओं पर इसलिए कि जिससे मनुष्यों पर इस चिकित्सा-प्रणाली के प्रयोग का सम्भवतः कोई खतरा न हो और सफलता अधिक मिले। अपने प्रयोगों के लिए उसने घायल घोड़ों और कुत्तों को चुना। जब इसके उपचार में उसने पूरी तरह सफलता प्राप्त कर ली और वह अपने को सिद्धहस्त समझने लगा तब उसने रोगी मनुष्यों का भी इलाज करना आरम्भ कर दिया और उनको अच्छा करने लगा।

श्रॉथ की अग्नि-परीक्षा

प्रेसनीज की तरह श्रॉथ की भी सफलता की ख्याति खूब फैली और दूर-दूर तक फैली। पर भला औषधि विज्ञान के अन्ध भक्त भला यह कब देख सकते थे। फलस्वरूप उसकी खूब निन्दा की जाने लगी, क्योंकि उसके नियम, उसकी चिकित्सा-विधियां औषधोपचारकों के लिए घातक थे। उन्हें अपना व्यवसाय नष्ट होता दिखायी देता था और ऐसे लोगों के हाथ से जो उनकी अपेक्षा अध्ययन व विद्वता में कोरे थे औषधि-शास्त्र के ज्ञान से पूर्णतया शून्य थे तथा जिन्होंने उनकी तरह वर्षों स्कूलों और कालिजों में कष्टपूर्वक एवं बहुत सा धन खर्च कर शिक्षा नहीं ग्रहण की थी। पूरे बीस साल तक उन लोगों ने श्रॉथ को खूब ही सताया। उसका जीवित रहना दूभर हो गया। अन्त में उस पर दोषारोपण कर उसे जेल की हवा भी खिला दी। पर सत्यता का सन्देश वहन करने वाले और निर्भीकता से अपने ढङ्ग पर जन-सेवा करने वाले सभी प्रवर्तकों और उन्नायकों को ऐसी ही अग्नि-परीक्षा होती है जिसमें उन्हें अपनी आहुति ही देनी पड़ती है। पर श्रॉथ के जीवन में एक ऐसी घटना हुई कि जिसने अचानक उसके प्राणों की रक्षा कर ही तो ली, साथ ही वह सदैव के लिए अपने विरोधियों से छुटकारा पा गया। १८४६ में वर्टम्बर्ग (Wurtemburg) का ड्यूक लड़ाई में बुरी तरह घायल हुआ। कई स्थानों पर उसका सारा शरीर क्षत विक्षत हो गया था। उस समय के बड़े-बड़े डाक्टरों ने तीन महीने तक उस ड्यूक की अच्छी से अच्छी चिकित्सा की, पर सब व्यर्थ रहा। वह जीवन से एकदम निराश हो चुका था। अन्त में उसको सूझा कि मरना तो है ही चलो कम से कम एक बार श्रॉथ के ही पास क्यों न चला जाय। यह सोचकर श्रॉथ का आश्रय ग्रहण किया। श्रॉथ ने बचन दिया कि उसने उसे अच्छा कर देगा। और उसकी चिकित्सा ने सचमुच कुछ महीनों में ही ड्यूक को भला चंगा कर दिया। इस सफल उपचार से तो विरोधियों को मुंह-तोड़ जवाब मिला जिससे फिर वे हमेशा के लिए शान्त हो गये। ड्यूक ने श्रॉथ के सफल उपचार की ख्याति समस्त आस्ट्रियन फौज में फैला दी। इसके फलस्वरूप उसके लिण्डविज के स्वास्थ्यगृह में सारे संसार से रोगियों की भीड़ जुटने लगी।

श्रॉथ अपनी चिकित्सा-विधि में, गीली पट्टी के ठण्डे गर्म रोग-निवारक प्रभाव को भी अधिक महत्व देता था, साथ-ही-साथ प्राकृतिक आहार का भी प्रयोग करता था। इसकी चिकित्सा को लोग श्रॉथ-चिकित्सा (Schroth Cure) के नाम से पुकारते हैं। श्रॉथ के बाद उसके पुत्र नुएल श्रॉथ ने भी इसी चिकित्सा-प्रणाली को अपनाया।

फादर सेबैस्टियन नीप

जोहान श्रॉथ के समय ही एक और व्यक्ति था जिसका ध्यान जल-चिकित्सा के मूल्यवान उपचार की ओर आकृष्ट हुआ। यह बवेरिया निवासी एक पादरी था जिसका नाम

फादर नीप

फादर सेबैस्टियन नीप (Father Sebastian Kneipp) है। फादर नीप ने अपने अदम्य उत्साह, असीम लगन के बल पर जल-चिकित्सा-विधि का बहुत अधिक प्रचार किया। उसको जल के प्रयोग सम्बन्धी बहुत से बहुमूल्य अविष्कार करने का भी श्रेय प्राप्त है। उसके द्वारा जल-चिकित्सा का इतना प्रचार व प्रसार हुआ कि जल-चिकित्सा का लाभ ही 'नीपवाद' (Kneippism) हो गया। उसकी जल-चिकित्सा-विधि में एक विशेषता भी थी। वह जलोपचार के साथ-साथ जड़ी बूटी के प्रयोग का भी हामी था। रोगी की बीमारी तथा उसकी शारीरिक दशा के अनुसार विभिन्न प्रकार के तापमान के जल का प्रयोग चिकित्सा में करना यही उसकी मुख्य चिकित्सा प्रणाली थी। आज भी जर्मनी में उसके नाम पर एक नहीं अनेक संस्थाएं स्थापित हैं जिनमें उसकी चिकित्सा पद्धति द्वारा रोगों का उपचार किया जाता है। इन संस्थाओं के पचास हजार से भी अधिक सदस्य हैं। उसने अपना एक आरोग्य मंदिर भी खोल रक्खा था जिसका संचालन उसने ४५ वर्षों से अधिक समय तक अद्भुत तत्परता एवं सफलता से किया। चिकित्सक की हैसियत से उसने प्रायः प्रत्येक तरह के रोग दूर करने में सफलता प्राप्त की। नीप ने जल-चिकित्सा पर एक उत्तम पुस्तक भी लिखी है जो आज भी व्यापक रूप से अध्ययन की जाती है।

फादर नीप के शिष्यों में डाक्टर बेनेडिक्ट लुस्ट (Binedict Lust) का नाम विशेष रूप से यहां उल्लेखनीय है। डा० बेनेडिक्ट लुस्ट वह व्यक्ति हैं जो अमेरिका के संयुक्त राज्य में "प्राकृतिक चिकित्सा के संस्थापक एवं अधिष्ठाता" थे। इनका जन्म जर्मनी में १८७२ ई० में हुआ था। अत्यधिक परिश्रमी एवं गहन अध्ययन के प्रेमी होने के कारण युवावस्था में ही ये बहुत ही कृश और दुर्बल काय हो गये थे। इनके फेफड़े बहुत कमजोर घोषित कर दिये गये थे। जिससे यह जीवन से एकदम निराश हो चुके थे। अन्त में आप फादर नीप की शरण में आये और अन्तिम उपचार की तौर पर उनकी सम्मति के अनुसार आपने उनकी जल-चिकित्सा का आश्रय लिया। फादर नीप के यहां आप पुनः अपना स्वास्थ्य लाभ करने में सफल हुए। बाद में जब ये केवल २० वर्ष के ही थे तो सन् १८९२ में नीप ने बड़े आग्रह से इन्हें अपने पास इस उद्देश्य से बुलाया कि वे जल-चिकित्सा का आरोग्यमय सन्देश अमेरिका तक पहुंचावें एवं समस्त संसार में इसका प्रसार करें। एक अग्रदूत व पथ-प्रदर्शक की भावना से ओतप्रोत होकर डा० लुस्ट अमेरिका आये और वहां उन्होंने जल-चिकित्सा सम्बन्धी एक मासिकपत्र, एक स्कूल और एक आरोग्य-मन्दिर की स्थापना की। मासिक का नाम सर्वप्रथम 'दि नीप वाटर क्योर मन्थली' (The Kneipp Water Cure mno hly) (नीप जल-चिकित्सा सम्बन्धी मासिक पत्र) था पर बाद में इसका नाम बदल कर 'नैचुरोपैथ' (प्राकृतिक चिकित्सक) कर दिया गया। कालान्तर में इन्होंने एक पत्र और निकाला जिसका नाम 'नेचर्स पाथ' (Natures path) प्रकृतिका पथ) है। योरप में अपनी लम्बी यात्रा के फलस्वरूप प्राकृति-चिकित्सा सम्बन्धी सब विधियों की अच्छाइयों का पूर्ण अध्ययन करने के बाद डा० लुस्ट ने १८९६ में अमेरिका में प्राकृतिक चिकित्सा व जल-चिकित्सा की नींव डाली। डाक्टर लुस्ट परम लोकसेवी व्यक्ति थे। अमेरिका में प्राकृतिक चिकित्सा की संस्थापना के लिए उन्होंने एक पैग़म्बर की दूरदर्शिता, अदम्य साहस, असीम एकनिष्ठा एवं अनवरत अध्यवसाय के साथ काम किया था। उन्हीं के दृढ़ संकल्प, अथक प्रयत्नों और त्याग के कारण ही प्राकृतिक चिकित्सा वहां जीवित रही और मासिक पत्रिकाएं निकलती रहीं। अंग्रेजी तथा अन्य कितनी ही विदेशी भाषाओं में उनकी प्रकाशित की हुई तत्सम्बन्धी पुस्तकें बहुत हैं।

उन्हीं के ऊपर स्थापित 'अमेरिकन स्कूल आफनैचुरोपैथी से पढ़कर निकले हुए अनेकानेक विद्यार्थी आज संसार के कोने-कोने में चिकित्सा करते मिलेंगे। अभी पिछले वर्ष सितम्बर मास में ही इस प्रसिद्ध अनुयायी लोकसेव का देहावसान हुआ है।

इस समय तक प्रीसनीज, आॅथ, फादरनीप—इन महान प्रवर्तकों ने अपने अनुभवों के बल पर जल-चिकित्सा की धाक योरोपीय देशों में काफी जमा दी थी। इनके चिकित्सा गृहों से दिन-प्रतिदिन जो विविध प्रकार के रोगों के मरीज भले चङ्गे होकर निकलते थे वह साक्षात् प्रमाण होते थे कि जल-चिकित्सा-विधि ही ऐसी अचूक सफल उपचार-प्रणाली है जो सचमुच सभी

रोगों से मुक्ति दिला सकती है । इसीलिए इन तीनों के बहुत से अनुयायी भी हो गये थे जिनमें मेलजर (Meltzer), थियोडोर हान (Theodor Hann) और रसे (Russe) आदि बहुत ख्याति प्राप्त कर रहे थे । मेलज़र ही के आश्रम में आकर रोगी कूने ने अपने रोग की चिकित्सा करवाई थी जिसके फलस्वरूप वे जल-चिकित्सा की उपादेयता पर निछावर हो गये और बाद में अपनी प्रतिभा, सूझ, बुद्धि व आविष्कारों द्वारा 'जल-चिकित्सा के आचार्य' बने ।

रोगी लुई कूने जल-चिकित्सा के आचार्य कैसे बने ?

लुई कूने (Louis Kuhne) का जन्म जर्मनी के अन्तर्गत लिपजिग नगर में एक जुलाहे के घर हुआ था ।

लुई कूने

उसके माता पिता रुग्णावस्था में औषधि-चिकित्सकों की औषधियों के शिकार हो चुके थे । लुई कूने अभी बीस वर्ष के नवयुवक थे कि स्वयं भी रोगी होकर मृत्यु की घड़ियां जोहने लगे । इन्हें सिर और फेफड़े के भयानक रोग लग गये थे और इनसे बुरी तरह पीड़ित होकर वे जीवन से निराश हो उठे थे । पेट के भीतर भयावह फोड़ा हो गया था जो किसी तरह अच्छा न होता था । डाक्टरों का बहुतेरा इलाज किया पर उससे कोई लाभ न हुआ । अन्त में सन् १८६४ में पुरान-पन्थी डाक्टरों ने जब उनके रोगों को असाध्य करार दे दिया तथा इनके रोगोपचार को अपनी शक्ति से बाहर समझकर इनकी चिकित्सा छोड़ दी, तब इसी समय इस जीर्ण-शीर्ण युवक के कानों में प्रेसनीज, श्राथ और नीप के प्रसिद्ध अनुयाइयों के जलोपचार द्वारा रोग-मुक्ति की भनक पड़ी । जल-चिकित्सा द्वारा लुई कूने ने कैसे रोग से छुटकारा पाया तथा जल-चिकित्सा की उन्होंने कैसे खोज की इसकी कहानी स्वयं उनके शब्दों में सुनना पाठकों के लिए अधिक रुचिकर और शिक्षाप्रद होगाः—

“सन् १८६४ के लगभग मैंने समाचार पत्रों में पढ़ा कि लिपजिग नगर में प्राकृतिक-चिकित्सा के कुछ प्रेमियों ने एक गोष्ठी कायम की है और वे हर प्रकार के रोगों का इलाज बिना औषधियों के करते हैं। इसके संचालक मेलजर (Meltzer) साहब थे । मैं साहस बांधकर इस सभा में शामिल हुआ और उपस्थित मण्डली के व्याख्यानों को सुनकर बड़ा प्रसन्न हुआ । इसदिन से मैं गोष्ठी को हर बैठक में पहुँचने लगा

“मेरे फेफड़े का दर्द क्रमशः बढ़ता गया । पेट में भी एकफोड़ा निकल आया । डरते-डरते मैंने एक सज्जन से पूछा कि भाई क्या मेरे रोग की भी दवा आप बता सकते हैं ? उन्होंने ने कहा, हां, प्रायः पानी की पट्टी फेफड़ों पर बांधिये । मैंने बांधना शुरू किया और पेट के ऊपर भी पट्टी बांधी और इस समय की प्राकृतिक चिकित्सा के अनुसार भीगी चादर लपेटी । पिचकारी लगायी, शरीर के अङ्गों को जल से तराबोर किया, किन्तु कुछ दर्द कम होने के के अलावा और कोई विशेष लाभ न हुआ ।

“इस बीच मैं अपना दिमाग़ प्रकृति की ओर दौड़ाता रहा और कुछ नियम निर्धारित किये, कुछ यंत्र बनाये और उनकी परीक्षा मैं अपने शरीर पर करने लगा । मुझे इससे सफलता हुई । मेरी दशा सुधरने लगी और जिन लोगों ने मेरे कहने के अनुसार चिकित्सा की उनको भी लाभ हुआ । मुझे इस बात का पूरा विश्वास हो गया कि मेरे सिद्धान्त बिल्कुल सत्य हैं ।

“मैंने जब इन सिद्धान्तों का जिक्र सर्वसाधारण में करना शुरू किया तो वे मेरी हंसी उड़ाने लगे । डाक्टरों ने तो कहना शुरू किया कि लुई कूने पागल हो गया है । वह सनक गया है । मैंने अपने यंत्र उनके सामने रक्खे और एकबार परीक्षा करने की प्रार्थना की, किन्तु उन्होंने उन यंत्रों को कमरे के एक कोने में फेंक दिया जहां थोड़े दिनों

में वे घुनकर खराब हो गये ।

"मैंने डाक्टरों की उपेक्षा की कुछ भी परवाह न की। मुझे पूर्ण विश्वास हो गया कि मैंने सब रोगों का कारण और उनके अच्छा करने की तरकीब ढूंढ़ निकाली है। मुझे इससे बड़ा सन्तोष हुआ। अब मैंने अपनी चिकित्सा का प्रसार सर्वसाधारण में करने का विचार किया। मैंने सोचा कि यदि कुछ रोगियों को मैं अच्छा कर सका तो जनता मेरी चिकित्सा पर अपने आप विश्वास करने लगेगी। मेरे घर में रोजगार होता था। मैंने सोचा यदि उसे छोड़ कर मैं जल चिकित्सा में अपना जीवन अर्पण करता हूँ तो इतने वर्षों का मेरा रोजगार नष्ट होता है। मेरे हृदय में उथल-पुथल होने लगी। अन्त में अन्तरात्मा की विजय हुई। मैंने अपना सब काम बन्द करके १० अक्तूबर सन् १८८३ ई० को अपना एक जल-चिकित्सालय खोला। धीरे-धीरे रोगी मेरे पास इलाज के लिए आने लगे और मैंने उन्हें चङ्गा करना आरम्भ कर दिया। सैकड़ों निराश रोगियों को मैंने अच्छा किया। वे ही अब मेरी चिकित्सा का गौरव चारों ओर बढ़ाने लगे।"

"मैंने अब जल-चिकित्सा में खोज करना शुरू किया। चेहरा देखकर मैं बीमारियों को पहिचानने लगा। इसमें मुझे शत प्रतिशत सफलता मिलने लगी। मैंने मेहन-स्नान (Sitz Bath) की खोज की, जिसने रोगों के हटाने में मेरी बड़ी सहायता की। अब तो मुझे अपने इलाज पर इतना विश्वास हो गया है कि मैं चुनौती देकर कह सकता हूँ कि मैं हर रोग को दूर कर सकता हूँ। हां, हर रोगी को नहीं अच्छा कर सकता। जिन रोगियों ने दवा खा-खाकर अपना सारा शरीर बिगाड़ रक्खा है जिनके शरीर में कुछ दम ही नहीं रह गया, उनको मैं अलबत्ता रोग मुक्त नहीं कर सकता, लेकिन उनके रोग को कम जरूर कर सकता हूँ।

पचीस वर्ष अथक परिश्रम करके मैंने अपने को अब बिल्कुल चङ्गा कर लिया है और दूसरे रोगियों को चंगा करने का दम भरता हूँ।"

यह है जल-चिकित्सा के आचार्य की राम कहानी, यह है एक असाध्य रोगी से एक कुशल चिकित्सक बनने की स्व-कथा, यह है जल-चिकित्सा के आधुनिक रूप के आविष्कारक का संक्षिप्त विवरण और है यह जल तत्व के अचूक चिकित्सक गुण का अकाट्य प्रमाण !

जल-चिकित्सा के इतिहास में कूने की इतनी बड़ी देन है कि आज जब जल-चिकित्सा के अतिरिक्त अन्य तत्व-चिकित्साओं का भी पूर्ण महत्त्व प्राकृतिक चिकित्सा के अन्तर्गत निर्विवाद रूप से स्वीकार कर लिया गया है तथा जल-चिकित्सा के साथ ही साथ अन्य तीनों या चारों प्राकृतिक तत्वों का भी उपचार में पूर्णोपयोग किया जाता है, उस समय भी प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति का दूसरा नाम 'कूने चिकित्सा प्रणाली' (Louis kuhne System of Healing) पड़ गया है। और आज भी, जब पाश्चात्य देशों में प्राकृतिक चिकित्सा-विज्ञान काफी उन्नत व अग्रसर हो चुका है, प्राकृतिक चिकित्सा का नाम सुनते ही प्रायः लोग अर्थ लगाते हैं कूने चिकित्सा प्रणाली के अन्तर्गत टब द्वारा विभिन्न स्नानों या बाथों का प्रयोग। प्रेसनीज, श्राथ, और नीप ने जलोपचार के पुर्नविकास तथा उसको आगे बढ़ाने व प्रचार करने में बहुत कार्य व परिश्रम किया। पर अभी तक जल-चिकित्सा के प्रयोग की विधियों का व्यापक रूप जनता के सामने नही आया था। जैसा कि पूर्व के पृष्ठों से पाठकों की धारणा हुई होगी, जल-चिकित्सा का रूप व प्रयोग, लुई कूने के पहिले तक, ठंडे व गर्म पानी के साधारण स्नानों, ठंडे व गर्म पानी की पट्टियों या गद्दियों तथा गीली चादर की लपेट तक ही सीमित व संकुचित था अभी तक जल-चिकित्सा का वैज्ञानिक आधार भी रहस्य के गर्भ में विलीन था। अभी तक जल-चिकित्सा के अन्तर्गत वर्तमान समय में प्रयोग में आने वाले पेड़ू स्नान, मेहन स्नान, सूर्य स्नान, वाष्प स्नान आदि विविध स्नानों का जन्म ही नहीं हुआ था। यह सब भी लुई कूने की विलक्षण प्रतिभा, अदम्य साहस ने किया। जल-चिकित्सा के प्रयोगों का आज जो रूप है उसके निर्माता आचार्य लुने कूने ही हैं। उन्होंने ही जल-चिकित्सा को पानी की पट्टियों, गद्दियों, गीली चादर की लपेट को साधारण स्नानों से कहीं ऊपर उठाकर उसे पेड़ू व मेहन स्नान, सूर्य व याष्प स्नान आदि टब-बाथ के विविध प्रयोगों का विशाल रूप दिया। विविध प्रकार के उपचार सम्बन्धी स्नानों के आविष्कारक वे ही हैं। उन्ही की बुद्धि ने सब से पहिले जल-चिकित्सा

वैज्ञानिक आधार को संसार के सामने प्रस्तुत किया। उन्होंने ही सबसे पहिले उच्चस्वर से घोषित किया कि सभी रोगों का कारण, उनकी जड़ एक ही है (Unity-of all diseases) और वह है शरीर में विजातीय द्रव्यों (Foreign matter) का एकत्र होना उन्होंने विज्ञान-सम्मत तर्कों के आधार पर समझाया कि इसी विजातीय द्रव्य को शरीर से निकाल फेंकने में रोग-मुक्ति है, आन्तरिक सफाई द्वारा ही रोगों से छुटकारा पाया जा सकता है और इस कार्य में जल-चिकित्सा का कोई दूसरा सानी नहीं है। उन्होंने रोगी के चेहरे व गर्दन का निरीक्षण कर रोगों के आश्चर्यजनक निदान का विज्ञान भी प्रस्तुत किया। उनकी दो पुस्तकें 'नवीन चिकित्सा विज्ञान (The New Science of Health) तथा आकृति निदान का विज्ञान' (The Science of Facial Expression) जल चिकित्सा-जगत के लिए अपूर्व युग-प्रवर्तक देन हैं जिनमें उनके वर्षों के अनेकानेक रोगियों की चिकित्सा सम्बन्धी अनुभव, उनके अपने सिद्धान्त, प्रयोग एवं आविष्कार सन्निहित हैं। उनकी 'न्यू साइन्स आव हीलिङ्ग' एक ऐसा ग्रन्थ है जिसके अनुशीलन करने के बाद कौन ऐसा व्यक्ति होगा जो जल-चिकित्सा के वैज्ञानिक गुण से मुग्ध होकर स्वयं एक बार उसका प्रयोग कर लाभ उठाने को लालायित न हो उठे! ऐसी है वह प्रामाणिक, एवं वैज्ञानिक पुस्तक। कूने की इन दोनों युग-प्रवर्तक पुस्तकों का अविकल अनुवाद संसार की प्रायः सभी भाषाओं में हो चुका है और उनके आज तक जाने कितने कितने संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं! इन पुस्तकों को पढ़ कर विश्व के कोने-कोने में असंख्य असाध्य रोगियों को आज जीवन दान मिल चुका है और अब भी केवल इन्हीं पुस्तकों के बल पर बहुत से रोगी जलोपचार का आश्रय लेते हैं और लाभ उठाते हैं! आज भी कूने के दिये हुए जल-चिकित्सा संबंधी रोग मुक्ति के वैज्ञानिक सिद्धांत व प्रयोग उसी प्रकार अक्षुण्ण बने हैं। उनमें किंचित परिवर्तन भी आवश्यक नहीं समझा जाता है। हां, विविध उपचारात्मक स्नानों के प्रयोग व विधियों में रोग व रोगी की अवस्थानुसार कुछ हेर-फेर अवश्य कर दिया जाता है।

जल चिकित्सा का परिवर्तित रूप

जलतत्त्व के आश्चर्यजनक रोग निवारक शक्ति को जब प्रेसनीज जैसे किसान, श्राथ जैसे कोचवान, नीप जैसे पादरी और कूने जैसे जुलाहे ने संसार के सामने सिद्ध कर दिखाया, तो शिक्षित तथा विद्वान व्यक्तियों तथा डाक्टरों का ध्यान प्रकृति के अन्य तत्वों में निहित उपचारात्मक शक्तियों की ओर भी गया। और इस तरह अब आगे जल-चिकित्सा केवल जल तत्त्व द्वारा ही चिकित्सा न रह गयी बल्कि उसके रूप में परिवर्तन हो गया और उसने अपना स्वरूप प्राकृतिक चिकित्सा के रूप में बदल कर व्यापक व विस्तृत कर लिया। जल के अतिरिक्त अन्य तत्वों द्वारा चिकित्सा के महत्व को सामने रखने वालों में बवेरिया निवासी ओरनाल्ड रिक्लरी जर्मन डा० हेनरिक लामान, एडोल्फ जुस्ट आरनल्ड एहरेट, डा० डिवी और डा० केलाग प्रमुख हैं। आज विदेशों में सर विलियम आर्बथनाट लेन, स्टैनली लीफ, हैरी बेनजैमिन, बर्नर मैकफेडन आदि प्रमुख जीवित-चिकित्सकों में कोई भी ऐसा नहीं है जो अपनी चिकित्सा में जल-चिकित्सा का उपयोग न करता हो पर इसका यह अर्थ नहीं है कि वह रोग मुक्ति के लिये अन्य प्राकृतिक तत्वों की उपेक्षा करता है। आज जल-चिकित्सा का उतना महत्त्व एक स्वतन्त्र चिकित्सा प्रणाली के रूप में नहीं रहा जितना कि प्राकृतिक चिकित्सा के अन्तर्गत एक प्रमुख सहयोगी उपचार पद्धति के रूप में।

स्टैनेली लीफ

हमारे देश में

हमारे देश में तो जल-चिकित्सा का सर्व प्रथम आगमन

(यदि वेद कालीन कथाओं को छोड़ देते हैं) तो कदाचित् गत प्रथम महायुद्ध के कुछ पूर्व ही लुई कूने की 'न्यू साइंस आव हीलिंग' (नवीन चिकित्सा विज्ञान) के हिन्दी-उर्दू अनुवाद के साथ ही हुआ कहा जा सकता है। और इसका श्रेय श्री श्रोत्रिय कृष्ण स्वरूप जी को ही है जिन्होंने सर्व प्रथम लुई कूने की इस युग-विधायक पुस्तक का हिन्दी व उर्दू अनुवाद जनता के सामने प्रस्तुत किया। और अपने जिले बिजनौर में एक जल-चिकित्सगृहा भी खोला। ये कूने से पत्र-व्यवहार भी करते रहते थे और बराबर मौके-बे-मौके उनसे सलाह लेते एवं अपनी शंकाओं का समाधान करते रहते थे। आगे चल कर इस पुस्तक का अनुवाद भारत की लगभग सभी प्रमुख भाषाओं में हो गय। जिन लोगों ने इस पुस्तक के आधार पर अपनी चिकित्सा कर कठिन रोगों से मुक्ति पायी है उनकी संख्या भी गिनना असम्भव है। वे देश के कोने-कोने में उपस्थित हैं। आज भी जल-चिकित्सा अथवा प्राकृतिक चिकित्सा के नाम पर भारत के बहुत से घरों में कूने की 'नवीन चिकित्सा-विज्ञान पुस्तक ही मिलती है जिसे अब भी लोग पढ़ते और लाभ उठाते हैं।

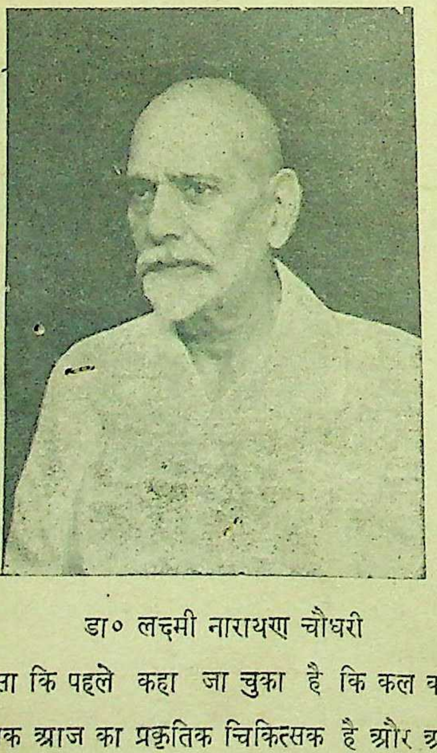

डा० लक्ष्मी नारायण चौधरी

जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि कल का जल-चिकित्सक आज का प्रकृतिक चिकित्सक है और आज का प्राकृतिक चिकित्सक कल का जल-चिकित्सक। आज दोनों का समागम हो गया है। आज दोनों में भिन्नता अथवा पृथकता मिलना असम्भव है। आज दोनों में भेद करना बहुत ही कठिन है। यही बात हमारे देश के चिकित्सकों के सम्बन्ध में भी पूरी तरह से चरितार्थ होती है। आज भारत में यह नहीं कहा जा सकता कि कौन प्रमुख जल-चिकित्सक है और कौन प्राकृतिक चिकित्सक अथवा कौन उनमें से एक ही है। आज हमारे देश

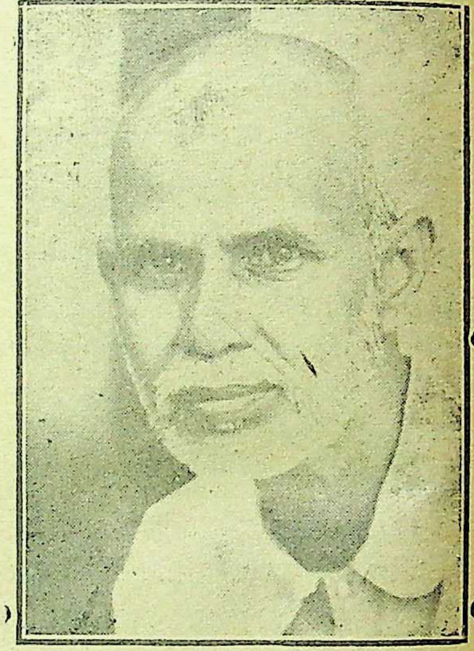

डा० के० लक्ष्मण शर्मा

डा० दीन शा मेहता

'प्राकृतिक चिकित्सक' कहलाने वाले ही चिकित्सक 'जल-चिकित्सक' हैं और प्रकृति के अन्य तत्त्वों के उपचार के भी। इन चिकित्सकों में स्वर्गीय डा० लक्ष्मीनारायण चौधरी, डा० के० लक्ष्मण शर्मा, डा० दीन शा मेहता डा० कृष्ण वर्मा डा० कुलरंजन मुखोपाध्याय, डा० विट्ठल दास मोदी, श्री जानकी शरण वर्मा, डा० बालेश्वर प्रसाद सिंह डा० खुशीराम दिलकश, सरदार जसवंत सिंह, डा० सुरेन्द्र प्रसाद गर्ग, डा० रामनारायण द्विवेदी, डा० वी० जी० हुण्डेकर तथा श्री युगुल किशोर चौधरी के नाम उल्लेखनीय हैं। इनमें से बहुत से कुशल चिकित्सकों ने अपने-अपने प्राकृतिक आरोग्य-मन्दिर स्थापित कर रक्खे हैं जिनके द्वारा

श्री जानकी शरण वर्मा

डा० कामेश्वर शर्मा

सरदार जसवंत सिंह

वर्नाड मैकफेडन

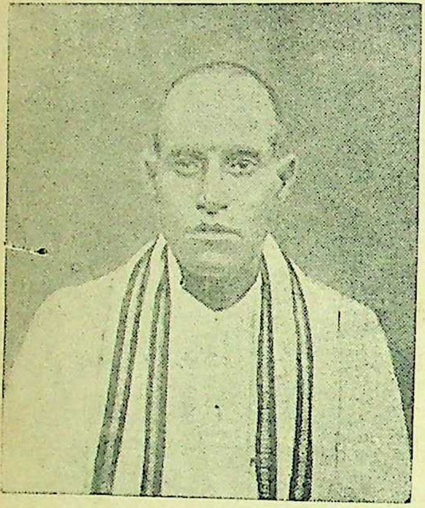

डा० वेंकट रमैया

रोग-पीड़ित मानव-समाज की अपूर्व सेवा हो रही है। उपर्युक्त महानुभावों के अतिरिक्त मद्रास, त्रिचनापल्ली, पूना, बम्बई की ओर भी अनेक प्रशंसनीय प्राकृतिक-चिकित्सक व जलोपचारक हैं जो अपनी अमूल्य सेवाएं सर्व साधारण को अर्पित कर रहे हैं। इनमें 'इण्डियन नेचुरोपैथ' (अंग्रेजी) और 'प्रकृति' (तेलगू) के सम्पादक डा० पूचा वेंकट रमैया का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

--:०:--

महेन्द्र रसायनशाला का अनुपम प्रकाशन

स्वास्थ्य सम्बन्धी सर्वोत्तम पुस्तकें

लेखक—कविराज, महेन्द्रनाथ पाण्डेय

स्वास्थ्य को उन्नत बनाने और बिगड़े हुए स्वास्थ्य को सुधारने में इन पुस्तकों से बहुत बड़ी सहायता मिलती है। इन पुस्तकों के घर में रहने से परिवार सुखी और प्रसन्न रहता है।

हमारा भोजन ४); स्वास्थ्य के लिए शाक तरकारियाँ १।।); फलाहार चिकित्सा २।); भोजन ही अमृत है १।।।); तपेदिक ४); दूध चिकित्सा ४); मठा ।।=); शहद के गुण और उपयोग ।।।); जुकाम १।।); आँख का अचूक इलाज २); जीवन तत्त्व १।।)।

मँगाने का पता :—महेन्द्र रसायनशाला, कटरा, इलाहाबाद

ग्राहकों को सूचना

'जीवन सखा' के विशेषांक (जनवरी का अंक) के प्रकाशन में अधिक विलम्ब हो जाने के कारण फरवरी और मार्च के अंक संयुक्तांक के रूप में प्रकाशित हो रहे हैं। अप्रैल से 'जीवन सखा' हर महीने नियमित रूप से निकला करेगा। —सं०

अपनी बात

यह विशेषांक

आज अपने प्रेमी पाठकों के सामने यह विशेषांक प्रस्तुत करते समय हमें जो हर्ष होना चाहिए था, वह हो नहीं रहा है। इसके कारण प्रत्यक्ष हैं। जो चीज जनवरी में ही प्रकाशित हो जानी चाहिए थी, वह पाठकों को मार्च में मिले, यह हमारे लिए कम लज्जा की बात नहीं है। इस असाधारण विलम्ब ने सचमुच हमारे स्वाभाविक हर्ष एवं उत्साह को पूरी तौर से ढक दिया है। किन्तु यह विलम्ब अक्षम्य होते हुए भी अकारण नहीं है। इसके अनेक कारणों में से दो कारण सब से प्रबल हैं।

विगत सितम्बर या अक्टूबर मास में हमने अपने जिन सहयोगियों एवं लेखकों के बल पर यह विशेषांक निकालने की योजना तैयार की थी, उन्हों ने अपना साहाय्य प्रदान करने में शिथिलता ही दिखाई। फल यह हुआ कि जनवरी में इस अंक के प्रकाशित हो जाने की तो बात ही अलग रही, मुश्किल से हमें उस समय तक दो या तीन फार्म की सामग्री प्राप्त हो सकी लेकिन हम हताश नहीं हुए। जो लेख मौजूद थे उन्हें प्रेस में दे दिया और अन्य लेखों के लिए हमने अपने सहयोगियों से वारम्बार निवेदन करते रहे। इस प्रकार फरवरी के अन्तिम सप्ताह तक १२ फार्म का मैटर इकठा कर सके, जब कि हमारा विचार २० फार्म का विशेषांक निकालने का था। विलम्ब का एक दूसरा कारण यह हुआ कि हमने दिसम्बर मास से 'जीवन सखा' अपने निजी प्रेस से प्रकाशित करने का निश्चय किया। किन्तु इसे कार्यान्वित करने में हमें असाधारण एवं अप्रत्याशित कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। किन्तु हमें तो यह अंक निकालना ही था, इससे हम पीछे हट नहीं सकते थे। फिर विलम्ब होना अनिवार्य ही था।

इतनी विघ्न-वाधाओं और कठिनाइयों को पार कर जाने के बाद, यह अंक कैसा निकला है, इसके बारे में हम कुछ नहीं करना चाहते। इसका निर्णय तो हमारे जिज्ञासु पाठक ही करेंगे। हाँ, हमें सिर्फ यही निवेदन करना है कि उसके प्रकाशन में असाधारण रूप से जल्दबाजी हुई है। जिस क्रम से हम लेखों को रखना चाहते थे, वह सम्भव नहीं हुआ।

हम इस विशेषांक का आरम्भ जल-चिकित्सा के इतिहास से करना चाहते थे, लेकिन देर से प्राप्त होने के कारण उसे अन्त में ही रखने के लिए विवश हुए। इसी प्रकार अन्य लेखों का भी क्रम यथोचित रीति से निर्वाह नहीं किया जा सका। इसके अलावा लेखों में बहुत सी प्रूफ की गलतियाँ रह गयी हैं, जिनके लिए हमें हार्दिक खेद है।

हाँ, तो इतने विलम्ब से और इसी रूप में यह 'जीवन सखा' का विशेषांक प्रिय पाठकों के पास पहुँच रहा है। जहाँ तक हमारा सम्बन्ध है, हम यह कह सकते हैं कि हमने इसे यथाशक्ति उपयोगी बनाने का प्रयत्न किया है। इसके लेखों में बहुत कुछ अंशों तक विविधता भी आपको मिलेगी, और कुल मिलाकर शायद यह आपको सुन्दर तथा उपयोगी ही जान पड़े, और तब आप इसके प्रकाशन सम्बन्धी विलम्ब एवं त्रुटियों को भुलाकर अपनी प्रसन्नता ही प्रकट करें।

× × ×

अन्त में हम अपने सहयोगियों एवं लेखकों के प्रति अपन हर्दिक कृतज्ञता प्रकट किए बिना रह नहीं सकते, जिनके सहयोग से हम यह विशेषांक प्रस्तुत कर सके हैं।

हम सेवा ग्राम आश्रम के डा० शंकरन् के प्रति विशेष रूप से कृतज्ञता प्रकट करते हैं, जिन्होंने अपने इतने गम्भीर, सुविस्तृत और उपयोगी लेख से इस अंक को विभूषित किया है। हाँ, हम यहां पर एक त्रुटि का परिहार कर देना चाहते हैं, जो उस लेख की परिचयात्मक टिप्पणी में हो गयी है। उसमें लिखा गया है कि 'आप वहां स्वास्थ्य एवं स्वच्छता सम्बन्धी विभाग के प्रधान हैं।' डा० शंकरन् ने इसका खण्डन करते हुए हमें सूचित किया है कि वह उस विभाग के प्रधान नहीं, प्रमुख कार्यकर्त्ताओं में हो सकते हैं। हमें इस भूल के लिए बड़ा खेद है। इसी प्रकार उस महत्वपूर्ण

एवं उपयोगी लेख में अन्य कई अनुवाद या प्रूफ सम्बन्धी गलतियाँ रह गयी हैं। जैसे—डा० कोच की जगह डा० कोड्रिन, माइक्रोब्स की जगह माइक्रोड्स आदि। किन्तु एक सबसे बड़ी त्रुटि हो गयी है पृष्ठ ५७ पर। उ लिखा है 'लेकिन जल का परिमाण ८ पौण्ड से (लगभग ४ सेर) से कम होना चाहिए'—जब कि होना चाहिए था कि '८ पौण्ड से कम न होना चाहिए।' इसी प्रकार उसके आगे की पंक्ति में छपा है '२४ घन्टे में होने वाले पेशाव की मात्रा ६४ औंस से कम होनी चाहिए—जब कि होना चाहिए था, 'कम न होनी चाहिए। अंग्रेजी के नौसिखिए कम्पोजीटरों के हाथों से अंग्रेजी शब्दों में अधिक त्रुटियां हुई हैं, इसे विज्ञ पाठक सुधार लेंगे।

× × +

डाक्टर शंकरन् के अलावा हम अपने अन्य सहयोगियों के भी प्रति उतनी ही गहरी कृतज्ञता प्रकट करते हैं। हम विशेषतः डा० कृष्ण वर्मा, डा० दिलकश, डा० विठ्ठल दास मोदी, श्री कामता प्रसाद अग्रवाल, श्री श्रीकृष्ण शर्मा के प्रति अपना आह्लादपूर्ण आभार प्रक करते हैं, जिनके विशेष सहयोग के ही फलस्वरूप यह विशेषांक निकल सका।

× ×

इस अंक के साथ-साथ 'जीवन सखा' अपने ११ वें वर्ष में पदार्पण कर रहा है। इस अवसर पर हम अपने सहयोगियों, 'जीवन सखा' के प्रेमी पाठकों, तथा अन्य सभी महानुभावों को हार्दिक बधाई देते हैं। मंगलमयी, लोक कल्याणकारी प्रकृति हमारे मार्ग को अधिक प्रशस्त, बाधा-रहित और प्रकाशमय बनावे, हम अपने लक्ष्य पर अपेक्षाकृत द्रुत गति से बढ़ें, यही हमारी हार्दिक प्रार्थना है!

'जीवन सखा' १॥) में

श्री देवेन्द्रदत्त गुप्त, केमिस्ट, नेवली शूगर फैक्टरी, एटा, ने अपनी स्वर्गीय पुत्री सुश्री वीणा रानी की स्मृति में हमारे पास २००) रु० इस उद्देश्य से भेजा है कि इस रकम से वाचनालयों क सस्ते मूल्य में एक साल तक 'जीवन सखा' दिया जाय। इसके अनुसार हमने २०० पुस्तकालयों को १॥) में (आठ आने की रियायत हमने अपनी तरफ से की है), साल भर तक 'जीवन सखा' भेजने का निश्चय किया है। आशा है, इसका समुचित लाभ उठाते हुए शीघ्र ही वे १॥) मनीआर्डर से भेज कर, साल भर के लिए 'जीवन सखा' के ग्राहक बन जायंगे।

व्यवस्थापक, 'जीवन सखा'

२८७, बादशाही मण्डी, चौक, प्रयाग।

इस

आरोग्य मंदिर में आकर

आरोग्य लाभ कीजिये !

यहां आपको प्राकृतिक चिकित्सा के साधन जल, धूप, मिट्टी, वायु, आसन, प्राणायाम, मालिश, उपवास, युक्त आहार की विधि करायी और बतायी जायगी। सूर्य-किरण-चिकित्सा, दूध-कल्प, बिजली, जड़ी-बूटियां और विचार-शक्ति के प्रयोग से भी आप परिचित होंगे। अपना स्वास्थ्य लौटाने के साथ-साथ अपने कुटुम्बवालों और इष्ट मित्रों को प्राकृतिक साधनों द्वारा रोगमुक्त और स्वस्थ रहने की सलाह देने लायक हो जायेंगे।

विशेष जानकारी के लिए

आज ही पत्र लिखिए—

संचालक--आरोग्य-मंदिर, गोरखपुर

'आरोग्य' (मासिक) एवं

'आरोग्य ग्रंथमाला' का प्रकाशन

दवा-दारू से पिंड छुड़ाने, खान, पान, व्यायाम का ज्ञान देने, भोजन सम्बन्धी नई खोजों से परिचित कराने, कुदरती उपायों द्वारा रोगों से छुटकारा पाने की रीति बताने एवं नामी प्राकृतिक चिकित्सकों के लेख एवं पुस्तकें उपलब्ध कराने के लिए 'आरोग्य मंदिर' द्वारा 'आरोग्य' (मासिक) के प्रकाशन का आयोजन हो रहा है एवं आरोग्य ग्रंथावली की चार पुस्तकें (१) सर्दी, जुकाम और खांसी (२) कुदरती जिंदगी (३) दुग्ध-कल्प, और (४) उपवास-चिकित्सा प्रेस में दी जा रही हैं। विशेष जानकारी के लिए लिखें-

प्रबंधक, 'आरोग्य', आरोग्य मंदिर, गोरखपुर

आपके यहा का अलकपरी तैल केशों को बड़ा लाभकारी है। ३ हफ्ते के इस्तेमाल से मेरे बाल ३ इञ्च बढ़ पाये हैं। आशा है मुझे और भी लाभ होगा। अस्तु, कृपा करके २ शीशी वी० पी० द्वारा भेजने का कष्ट करें।

—मायारानी सिठौले, दानावली, लश्कर, ग्वालियर

१-११-४५

अलकपरी
शुद्ध बादाम
रोगन पर बना

अलकपरी से मेरी स्त्री के बाल बहुत तेजी से बढ़ रहे हैं। कृपया २ शीशियाँ वी० पी० से और भेज दें।

—तिवारी आनन्द स्वरूप रईस, किशनी, मैनपुरी

× × ×

अलकपरी की ३ शीशियाँ मँगाई थीं। उनसे मुझे बहुत लाभ हुआ। कृपया ६ शीशियां वी० पी० से भेजने का शीघ्र कष्ट करें।

—लक्ष्मी तिवारी, आनन्द भवन, कामच्छा, बनारस

अलकपरी
का कोर्स

पहले सप्ताह में रूसी खुश्की दूर होती है।

दूसरे सप्ताह में केशों का झड़ना व उनके सिरों का फटना रुकता है।

तीसरे सप्ताह में नेत्रों की ज्योति व स्मरण शक्ति बढ़ती है।

चौथे सप्ताह के अन्त तक केश ३-४ इञ्च तक बढ़ जाते हैं। फिर इसी औसत से प्रतिमास बढ़ते रहते हैं।

६ महीने में केश एड़ी-चुम्बी बन जाते हैं।

मूल्य एक शीशी का २॥) है।

जो एक महीने को काफी होती है। डाकखर्च—पैकिंग पृथक्।

६ से अधिक शीशियां डाक से नहीं भेजी जा सकतीं। अधिक के लिए ५) पेशगी भेजिए और अपने रेलवे स्टेशन का नाम लिखिए।

व्यवस्थापिका—'अलकपरी,' नया कटरा, इलाहाबाद

Printed by M. L. Pandey at the Abhudaya Press Allahadad.
Published by Syt. Baleshwarprasad Sinha. 287, Badshahi Mandi,
Chowk, ALLAHABAD.

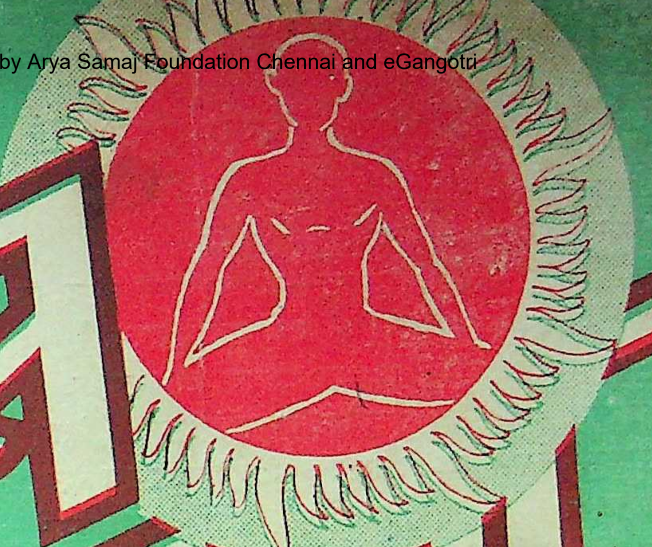

जीवन सखा

शारीरिक, मानसिक और नैतिक स्वास्थ्य का पथ-प्रदर्शक

वार्षिक चन्दा
३)

इस प्रति का
।।)

इस अंक के कुछ विशेष आकर्षण

१. जब जागे तभी सवेरा—महात्मा गांधी
२. ब्लड प्रेशर या खून का दबाव—श्री लियोनार्ड विलियम्स
३. देखने की कला—डा० आर० एस० अग्रवाल
४. विटामिन की खोज—श्री धन्वन्तरि
५. खाद्य-तत्वों पर सूर्यकिरणों का प्रभाव—श्री कैरोल पो० स्ट्रीटर
६. रंगों का महान उत्सव होली—श्री कृष्ण शर्मा

तथा अन्य उपयोगी लेखादि

१९४६

फरवरी-मार्च

संयुक्त। दो मास का अंक

ओ३म्

कांगड़ी गुरुकुल में ३ मै सन १९४६ ई० को प्राप्त

हस्ताक्षराणि। राम प्रसादस्य।

मेरी ग

सम्पादक — डॉ० बालेश्वरप्रसाद

विषय सूची

—:o:—

१—जब जागे तभी सवेरा—महात्मा गाँधी १०५
२—रोग और व्याधि का मनोवैज्ञानिक पहलू—डा० रामचरण महेन्द्र, एम० ए०, डी० लिट्० १०७
३—ब्लड प्रेशर या खून का दबाव—[श्री लिओनार्ड विलियम्स] ११०
४—स्वास्थ्य, सुरुचि और सुस्वाद—डा० श्यामाचरण, डी० एच० डी०, प्रकृति चिकित्सक ११४
५—आदमी की उम्र—डा० पुचा वेंकटरमैया, सम्पादक 'प्रकृति' (तेलगू) तथा 'इंण्डियन नेचुरोपैथ' ११८
६—मानसिक अवस्था का स्वास्थ्य पर प्रभाव—श्री जगेश्वर दयाल वैश्य, एम० ए०, बी० एस-सी० १२०
७—शरीर की आभ्यंतरिक स्वच्छता के लिए कुछ विशेष योगिक क्रियायें—डा० बालेश्वर प्रसाद सिंह १२२
८—स्वस्थ जीवन—श्री सुरेन्द्रनाथ तिवारी १२८
९—व्यसनों से बचिए—श्री स्वामी जगदीश्वरानन्द जी, वेदान्तशास्त्री, एन० डी० डी० वाई १३१
१०—देखने की कला—[डा० आर० एस० अग्रवाल, नेत्र-विशेषज्ञ] १३५
११—खाद्य-तत्वों पर सूर्य-किरणों का प्रभाव—(श्री कैरोल पी० स्ट्रीटर) १३९
१२—कुछ प्रसव-काल के सम्बन्ध में—डा० इन्दुमती सिनहा, एन० डी० डी० वाई० १४२
१३—विटामिन की खोज—श्री धन्वन्तरि १४६
१४—रंगों का महान उत्सव—होली—श्री० श्रीकृष्ण शर्मा बी० ए०, एन० डी० डी० वाई १५०
१५—प्रश्नोत्तर १५४
१६—अपने विचार (बापू का अगला कदम) १५७

'जीवन-सखा' के नियम

(१) 'जीवन-सखा' प्रतिमास इक्कीसवीं तारीख को प्रकाशित होता है।

(२) इसका वार्षिक मूल्य ३) तथा एक प्रति का ।=) है।

(३) ग्राहकों को चाहिए कि वे जनवरी या जुलाई से ग्राहक बनें; यों साल के किसी महीने से भी ग्राहक बना जा सकता है।

(४) यदि महीने के तीसरे सप्ताह तक किसी ग्राहक को 'जीवन-सखा' का अंक न मिले तो १५ दिन के अन्दर इसकी सूचना पोस्ट आफिस से प्राप्त उत्तर के साथ कार्यालय को दे देनी चाहिए।

(५) पत्र भेजते समय ग्राहक को अपनी ग्राहक-संख्या, नाम और पूरा पता साफ साफ अक्षरों में लिखना चाहिए। उत्तर के लिये टिकट भेजना आवश्यक है।

(६) प्रकाशनार्थ भेजे जाने वाले लेख कागज के एक तरफ हाशिया छोड़ कर साफ अक्षरों में लिखे जाने चाहिए। लेख सम्बन्धी चित्र भी भेजे जा सकते हैं।

(७) नमूने की प्रति के लिए ।=) का टिकट भेजना जरूरी हैं।

पता—मैनेजर, 'जीवन-सखा' कार्यालय, २८७ बादशाही मन्डी इलाहाबाद।

Reg. No. 1-172

शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्

NATURE ONLY HEALS

जीवन सखा

सम्पादक
डा० बालेश्वरप्रसाद सिंह

वर्ष ११] फरवरी-मार्च [अङ्क २-३

जब जागे तभी सबेरा

महात्मा गाँधी

जैसा कि मेरे कई साथियों ने देखा है और मैं खुद देख सका हूँ, ग़लतियाँ करके, उनको मंजूर करके और उन्हें सुधार कर ही मैं आगे बढ़ सकता हूँ। पता नहीं क्यों, किसी के बरजने से या किसी की चेतावनी से मैं उन्नति कर ही नहीं सकता। ठोकर लगे और दर्द उठे तभी मैं सीख पाता हूँ। जब हम सब बालक थे, तब तो इसी तरह सीखते थे। अपने ७६ वें साल में भी मेरी हालत बालक के समान ही है। अभी-अभी मुझे मालूम हुआ कि मैं अन्धा होकर दीवार से सिर टकराने चला था। यह दीवार इतनी बड़ी थी कि इसे देखने में कोई गलती नहीं हो सकती थी, फिर भी मैं तो नज़दीक पहुँचने पर ही इसे देख पाया।

मैं डॉक्टर दीनशा मेहता को एक अरसे से पहचानता हूँ। उन्हें ने अपनी जिन्दगी कुदरती इलाज को ही सौंप दी है और उनकी एक ही लालसा है कि हिन्दुस्तान में कुदरती इलाजों का एक विश्वविद्यालय बने। दुनियां में कहीं भी ऐसा विश्वविद्यालय नहीं है। पश्चिम में जो कुछ हैं, वे खास तौर पर धनवानों के लिए हैं। मगर वे भी विश्वविद्यालय तो हरगिज़ नहीं हैं। मुझे दृढ़ विश्वास है कि अगर ऐसा विश्वविद्यालय खुला, तो उसमें खासकर यह बताया जायगा कि गरीबों को बीमारियों का इलाज़ कुदरती तौर पर किस तरह किया जा सकता है।

मैं मानता हूं कि हिन्दुस्तान के देहाती लोगों की बीमारियों को कुदरती तरीके से मिटाने की चाबी मेरे हाथ में है। और इसलिए मुझे यह जानना चाहिए था कि पूना जैसे शहर में गाँव वालों की बीमारियों का कुदरती इलाज हो ही नहीं सकता। लेकिन ट्रस्ट तो बन गया। डॉ० दीनशा मेहता का उपचारगृह भी ट्रस्ट में शामिल कर लिया गया। डॉ० मेहता के और मेरे साथ बहुत व्यवहारकुशल जहाँगीर जी पटेल भी शामिल हुए। और, डॉ मेहता ने जिस उपचारगृह की रचना धनवानों के लिये की थी, गरीबों के लिए उसका उपयोग करने के ख्याल से मैं दौड़ा-दौड़ा पूना पहुँचा। मैंने कुछ बड़ी-बड़ी तब्दीलियां सुझाईं, लेकिन पिछले सोमवार को यानी ४ मार्च को अपने मौन में मुझे यह ज्ञान हुआ कि एक शहर में गरीब देहातियों के लिए कुदरती इलाज का ख्याल तक करने वाला मूर्खों का सरदार होना चाहिए। मैंने अपने आपको इस रूप में देखा और, मैं समझ गया कि अगर गांव के बीमारों का 'कुदरती इलाज' करना हो, तो मुझे उनके पास जाना चाहिये, न कि उनको मेरे पास आना। जहाँ फांकने को पुड़िया या पीने को दवा दी जाती है, वहाँ भी वैद्यों और डॉक्टरों को बीमारों के घर जाना पड़ता है। और, जो बीमार डॉक्टरों के पास जाते हैं, वे भी ज्यादातर डॉक्टरों के अपने गाँव या शहर ही में रहने वाले होते हैं।

कोई देहाती शहर में आए और उससे कहा जाये कि वह पेट या पीठ पर मिट्टी की पट्टी रक्खे, नंगा होकर धूप में सोये, कटिस्नान या घर्षण स्नान करे, और अपना भोजन इस तरह पचावे कि उसका कोई हिस्सा फ़जूल न जाय, तो यह निरी हिमाक़त न होगी तो और क्या होगा? देहाती मरीज़ 'जी हाँ' कहकर लौट जायगा, लेकिन साथ ही मनमें हँसेगा और कुदरती इलाज करनेवाले को बेवकूफ समझेगा। वह बेचारा मेरे पास एक पुड़िया फांकने या दवा की प्याली पीकर लोटने के ख्याल से आता है और यह श्रद्धा रखता है कि वह अच्छा हो जायगा।

कुदरती इलाज तो इस तरह नहीं होते। उनमें तो ज़िन्दगी जीनेका एक नया रास्ता सीखना पड़ता है। इन उपचारों के सफल होने के लिए यह ज़रूरी है कि उपचारक यानी इलाज करने वाला मरीज़ की झोंपड़ी के नज़दीक रहे, मरीज को उपचारक की 'हूँफ' मिले, उपचारक में अटूट धीरज हो और उसे मनुष्य स्वभाव का ज्ञान हो। जब उपचारक एक या एक से ज़्यादा गाँव वालों के मन को चुरा सकता है, अपने नए रास्ते को पहचान सकता है और उस रास्ते पर चलने लग जाता है, तभी ऐसे उपचार के विश्वविद्यालय की नींव डाली जा सकती है।

इस सीधी चीज़ को समझने के लिये मुझे ख़ास ११ दिन नहीं लगने चाहिए थे। मुझको फ़ौरन ही यह मालूम हो जाना चाहिये था कि ऐसे इलाज के लिए एक शहरी बँगले की ज़रूरत न होनी चाहिए। मैं नहीं जानता कि अपनी इस बेवक़ूफी पर मैं हँसूँ या रोऊँ। मैं तो हँसा हूँ और किसी भी तरह का खर्च करने से पहले मैंने अपनी ग़लती सुधार ली है।

शुरू किये काम को छोड़ना तो मैं सीखा नहीं, इसीलिए मेरे वास्ते एक ही रास्ता रह गया है। किस गांव में शुरू किया जाय?

मेरी इस भूल से पाठकों को सबक़ सीखना चाहिये। महात्मा-जैसे आदमी भी कुछ कहें, तो उसे मान ही लेन मनुष्यता नहीं। महात्मा की कही बात हमारे गले उतरे औ दिल में पैठे तभी हमें वैसा करना चाहिए।

इस मामले में तो मेरी मूर्खता इतनी स्पष्ट थी कि व लम्बे समय तक टिकी होती, तो भी सच्चे देहाती कभी पू आये न होते। अगर इलाज का थोड़ा भी काम शु करने के बाद मैंने अपनी यह भूल देखी होती, तो मे इज्ज़त धूल में मिल जाती। क्योंकि तब मेरे पास मे स्वाभिमान न रहा होता। और जिस आदमी का म उसके अपने ख्याल से मर चुका है वह जितना नुक़स अपने को पहुँचा सकता है, उतना दूसरा कोई उसे न पहुँचा सकता। इस ग़लती के बाद लोग मुझमें विश्व न रक्खें तो मैं समझूँगा कि मैं इसी लायक था। ले पाठक यह याद रक्खें कि इस उपचार के सिलसिले ग़रीबों के लिये जितने पैसे निकाले थे, उनमें से अ एक पाई भी ख़र्च नहीं हुई है।

मेरे अपने लिए तो यह बस होगा कि इस ग़फ़लत बाद मैं अपने आदर्शों तक पहुंचने में ज़्यादा साव रहूँ।। गाँव के ग़रीब क़ुदरती इलाज को अपनायेंगे नहीं, सो तो भविष्य पर निर्भर करता है। मगर इसमें शक की कोई गुंजाइश ही नहीं हो सकती कि उन्हें अपनाना चाहिए।

रोग और व्याधि का मनोवैज्ञानिक पहलू

डा० रामचरण महेन्द्र, एम० ए०, डी० लिट्०

['रोग, व्याधि, पीड़ा, वास्तव में हमारे मन की कुछ वृत्तियां हैं जिनपर घृणित संस्कारों की कलई चढ़ गई है। प्रत्येक चिन्ता हमारे मन में एक रेखा बनाती है। बारम्बार चिंता करते रहने से वही मानसिक रेखा पथ के रूप में परिवर्तित हो जाती है। कालान्तर से वह पथ इतना सुविस्तृत हो जाता है कि हम उसी ओर स्वभावतः मुड़ जाते हैं।'

और यही है मानव की सबसे बड़ी कमजोरी, जिसके कारण जीवन में सुख शान्ति, से रहित हो कर नाना प्रकार के कष्टों एवं रोग-व्याधियों से उसे सन्तप्त होना पड़ता है। हम अपने को पहचानें, इच्छा-शक्ति के महत्व को समझें, अपने मन में यह ध्रुव धारणा धारण करलें कि परमात्मा की बनाई यह सृष्टि, यह जग-जीवन मंगलमय भावना से सृजित हुआ है। प्रकृति इस जग-जीवन को सुखमय बनाने की चेष्टा करती है, और मानव अपने कर्मों से इसे दुखपूर्ण बनाता रहता है। हम इसे समझें। इसी में हमारा कल्याण है। विद्वान लेखक का यह लेख बस इसी रहस्य का क्या तथ्य का संकेतक है। इसे पढ़ें फिर विचार करें, फिर पढ़ें और विचार करें।

—सं०]

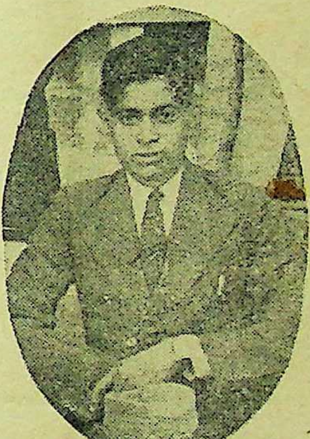

मनुष्य के मन की सामर्थ्य प्रचंड है। दैनिक जीवन के प्रत्येक कार्य में व्यक्त अथवा अव्यक्त रूप से मन की अनेक शक्तियां निरंतर कार्यशील रहती हैं। चुम्बक की आकर्षण शक्ति परिमित एवं अज्ञानमयी हैं किन्तु मानव मन की अद्भुत शक्तियाँ ज्ञानमयी और अपरिमित हैं। संसार में कितने ही व्यक्ति हैं जो केवल उदात मनोवृत्ति के कारण स्वर्ग का सुख भोग रहे हैं; अनेक ऐसे भी हैं जिनका जीवन अशांत एवं व्यग्र है, उनके जीवन में शान्ति एवं स्थिरता लेशमात्र भ नहीं है। ये शान्ति के लिए चिल्लाया करते हैं, सुन्दर गृह, वस्त्राभूषण, नौकर, सुस्वादु भोजन, ऐश आराम के अनेक उपक्रम करते हैं किन्तु फिर भी इनके अन्तर्जगत में भयानक संघर्ष (Mental Conflict) चलता रहता है। इस प्रकार की मन की अस्थिरता एवं चंचल वृत्ति हमारी आयु एवं जीवन-शक्ति का निरंतर क्षय कर रही है।

मन का शरीर पर अटूट, अविच्छिन्न, एवं, अकाट्य सम्बन्ध है। मानसिक अशान्ति, जर्जरता, उद्वेग, विकार अनिष्ट कल्पना का शरीर पर बड़ा बुरा प्रभाव पड़ता है अनेक व्यक्तियों की असमायिक मृत्यु का एकमात्र कारण असद् कल्पना ही रही है। शरीर में किसी प्रकार की अनुकूल अथवा प्रतिकूल अवस्था का निर्माण करने का म सामर्थ्य मनुष्य के मन में अन्तर्निहित है। अन्तःकरण दीवारों पर जो कुटिल अथवा भव्य संस्कार अंकित होते वही अप्रत्यक्ष रूप से वाह्यजगत् में प्रकट होते एवं तद् जीवन का निर्माण करते हैं। मनःशास्त्र का ऐसा नियम है।

मनुष्य के स्थूल शरीरप्रकट होने वाली वाह्य सत्ताएं

आन्तरिक संगठन की प्रतिच्छाया (Reflection) हैं। स्थूल शरीर का मन सूक्ष्म रूप है; शरीर मन का वाह्य स्वरूप। मन द्वारा विनिर्मित शरीर वह सांचा है जिसमें वह निरंतर अविच्छिन्न गति से अपनी क्रियाएं प्रकट किया करता है। मनोभावनाओं की प्रतिकृति मुख पर परिलक्षित होती है। जिस प्रकार जिह्वा द्वारा उदर की गतिविधि जानी जाती है, उसी प्रकार मुख मन का प्रतिबिम्ब है।

मन को शरीर पर क्रिया एवं शरीर की मन पर प्रतिक्रिया (Reaction) निरंतर होती रहती हैं। जैसा आपका मन वैसा आपका शरीर। जैसा शरीर वैसा मन का स्वरूप। यदि शरीर में पीड़ा है, तो मन भी क्लान्त अस्वस्थ एवं पीड़ित हो जाता है। किन्तु एक बात विशेष महत्व की है। वह यह कि शरीर एवं मन दोनों में मन अधिक शक्तिशाली एवं बलवान् है। शरीर को उसके हाथ में पड़कर हार माननी पड़ती है और कठपुतली की तरह घूमना पड़ता है। वेदांत के अन्तर्गत यह स्पष्ट किया गया है कि संसार की गतिविधि का निर्माण मन की शक्तियों द्वारा ही हुआ है, तदानुसार ही हमें यह पंच भौतिक शरीर प्रदान किया गया है। मनुष्य के माता पिता, परिस्थितियाँ, जन्मस्थान, आयु-स्वास्थ्य, किसी विशेष प्रकार से शरीर ग्रहण करना स्वयं हमारे मन के व्यक्तिगत संस्कारों (Impressions) पर अवलम्बित हैं। हम सब की दुनियां पृथक् पृथक है; इसका कारण यह है कि हमारा जगत् हमारे व्यक्त अथवा प्रसुत (Unconscious) संस्कारों की प्रतिच्छाया मात्र है।

संसार की चीज़, यहाँ के व्यक्ति, स्थान, परिस्थितियाँ न उतम हैं और न निकृष्ट। यह वैसी ही हैं जैसी उनकी प्रतिकृति हमारे अन्तर्जगत् में वर्तमान है। रोग, व्याधि पीड़ा वास्तव में हमारे मन की कुछ वृत्तियां हैं। यह मन के अंधकारमय भाग हैं जिन पर घृणित संस्कारों की कलई चढ़ गई है। प्रत्येक चिन्ता हमारे मन में एक रेखा बनाती है। बारंबार वही चिन्ता करते रहने से मानसिक रेखा पथ के रूप में परिवर्तित हो जाती है। कालान्तर से वह पथ इतना सुविस्तृत हो जाता है कि हम उसी की ओर स्वभावतः मुड़ जाते हैं। अपने आपको वैसा ही मानते हैं। अपने दूषित दृष्टिकोण में परिवर्तन करना नहीं चाहते।

दो वस्तुओं की समानता ही एक दूसरे पर प्रभाव डालती है। यदि हमारे मन में कुछ सन्देह होगा, भ्रान्ति की कुकल्पनाएं होंगी, या किसी मनोजनित उद्वेग से मनोबल क्षीण होगा, तो उन अभद्र आकांक्षाओं के कारण हम रुग्ण प्रतीत होने लगेंगे। यदि रोगी को यह भ्रम हो जाय कि मुझे रोग हो गया तो वास्तव में यह भ्रम रोग बन कर प्रकट होता है।

भूत प्रेत क्या है? केवल मानसिक भ्रम की कल्पित धारणाएं। ये ऐसी मनोजनित भ्रमात्मक कल्पनाएं हैं, जिन्होंने रूढ़िग्रस्त इच्छा शक्ति विहीन जनता को मृत्यु के मुख में ढकेला है। सामाजिक क्रिया, प्रतिक्रिया, आघात, प्रतिघात से भूत प्रेत के अन्ध विश्वास आज भी हमारे आन्तरिक जगत् में द्वंद उत्पन्न करते हैं। विवेक-बुद्धि परास्त हो जाती हैं। अतः अव्यक्त की उद्भूत अनिष्ट कल्पनाएं भ्रम या प्रमाद के रूप में व्यक्त होती हैं और व्यथा का कारण बनती हैं।

समस्त उपद्रव की जड़—वहम

हमारी अनेक बातें केवल वहम की प्रतिक्रियाएं हैं। अमुक तिथि को गृह से प्रस्थान न होना चाहिए; छींकने पर कोई भयंकर घटना होने का होती है; छिपकली शरीर पर गिर गई अतः मृत्यु अवश्यम्भावी है; जन्मपत्री नहीं मिली अतः दाम्पत्य जीवन में रोग शोक होना ही चाहिए—हमारी अनेक धारणाएं मन की निर्बलता की द्योतक हैं। भारतवासी अभी इतने प्रगतिशील नहीं हो पाए हैं कि अपनी पुरानी विचार धाराओं को छोड़ दें। अतः वे रोग और व्याधि को किसी चैतन्य शक्ति का व्यापार मान लेते हैं।

अनेक व्यक्ति चिन्ता, क्रोध, भय इत्यादि मानसिक उद्वेगों द्वारा अपने मनोबल की इतनी क्षति कर लेते हैं कि इनके द्वारा उनकी आन्तरिक स्थिति अत्यन्त विक्षुब्ध हो उठती है। ऐसे व्यक्तियों का मन सर्वदा किसी अज्ञात भय से उत्तेजित, गिरा हुआ और प्रकंपित रहता है; चित्त में अस्थिरता बनी रहती है, जरा जरा सी बातों में उद्विग्न हो जाते हैं, मन में कुत्सित कल्पनाएं उत्पन्न होती हैं; जीवन से घबराते हैं, रोगों से डरते हैं; रात्रि में सुख की

नींद नहीं आती ! इन सब उपद्रवों को जड़ मानसिक दुर्बलता ही है ।

मनोभावनाओं का प्रभाव

जब मन चिंता के जाल में फंस जाता है तो उसका क्या परिणाम होता है ? वह आशंका एवं उद्वेग के फंदों को तोड़ने की चेष्टा करता है किन्तु 'परिणाम क्या होगा' इस प्रश्न में उलझ कर वह इधर उधर के निष्प्रयोजन चिंतन में अपनी कार्य सम्पादन शक्ति क्षीण करता है। बारंबार ऐसे ही अनुचित अहितकर चिंतन में व्यस्त रह कर वह दुर्बल हो जाता है और प्रतिकूलता से युद्ध करने की शक्ति बहुत क्षीण हो जाती है ।

संसार में मनुष्य अपने आन्तरिक, अधम, अवांछनीय, भ्रमात्मक, कुत्सित चिंतन के कारण ही दुःखों का भार उठाता है और उसे यह विदित नहीं कि समस्त व्याधियों का मूल स्वयं उसी के अन्तर्जगत् में प्रस्तुत है । दुर्भाग्य एवं रोग की आँधियाँ बाह्यजगत् में नहीं चलतीं । विपत्ति, दुःख, पीड़ा, कष्ट, की आंधियाँ यदि बाह्य संसार में चलतीं रहें तो वे आपका कुछ भी नहीं बिगाड़ सकती क्योंकि आपको भीतर ही शक्तियों का विशाल केन्द्र है; उसी में सर्वभाँति की शक्तियाँ उत्पन्न होती न। उसी में विशालता, दृढ़ता मुक्ति, बल, बुद्धि के तत्त्व विद्यमान है । उसी में दीनता, कमजोरी, दुर्बलता, रोग-व्याधि के कीटाणु निहित हैं ।

अहितकर चिंतन के दुष्परिणाम

इसमें सन्देह नहीं कि अनिष्टकारी दुर्विचार एक बार मन में प्रवेश कर जाने के पश्चात् शीघ्र बहिर्गत नहीं होते प्रत्युत अधिकाधिक अपनी विष-बेलि को बढ़ाने का प्रयत्न करते हैं। कुछ व्यक्ति ऐसे वहमी होते हैं कि उन्हें रोगी बनने का शोक होता है; उनका ज्ञान दुःख भोगने का एक साधन है। वे अपने रोगों को प्रदीत करके देखने के आदी हैं। अनिष्ट चिंतन, अभद्र कल्पना द्वारा इन व्यक्तियों को दुःसह्य मानसिक वेदना होती है ।

तुम अपने स्वार्थपूर्ण, कलुषित, निकृष्ट विचारों द्वारा ही नारकीय यातनाएं भोगते हो, नीचे गिरते हो । अनिष्ट की कल्पनाओं के कारण ही तुम सर्वस्व नाश कर रहे हो । रात दिन छोटी छोटी चिंताएं तुम्हें विचलित मानसिक अवस्थाओं में ढकेलती हैं ।

मुझे स्मरण है कि एक मनुष्य खिन्नता की बीमारी से बड़ी बुरी तरह पीड़ित था। जब अकस्मात् उसके समक्ष आकस्मिक उद्वेग का आवरण आ जाता था, तब उसका मुख मंडल बिल्कुल विवर्ण हो जाता था। वह पहिचाना ही न जा सकता था। घोर मानसिक व्यथा उसके मुख पर दृष्टिगोचर होने लगती थी। यह बड़ा ही हृदय द्रावक दृश्य होता था।

रोगों के मानसिक उपचार

सब से महत्वपूर्ण तथ्य तो यह है कि हमारा आरोग्य तब तक ठीक नहीं रह सकता जब तक हम यह परिवर्तन मन से न प्रारंभ करें। मन से ही हमारा रोग निवारण कार्य प्रारंभ हो। वहीं से सब कुछ शुरू किया जाय। जब हम अपने मन को स्वास्थ्यप्रद, सुन्दर पौष्टिक विचारों से परिपूर्ण कर लेते हैं; निरंतर अपने चहुँ ओर स्वास्थ्य एवं आरोग्य शक्ति का अनुभव करने लगते हैं स्वास्थ्य की शुभ्र सूचनाएं (Suggestions) देने की आदत डाल लेते है, संक्षेप में, जब हम आरोग्य बनने का प्रयत्न 'मन' से करते हैं, तो स्थायी लाभ प्राप्त होता है और हमारा आरोग्य स्थिर भी रह सकता है।

जब कभी तुम्हें ऐसा अनुभव हो कि तुम बड़े कमजोर से हो रहे हो, शिथिलता क्रमशः तुम्हें परस्त करती जा रही है और निराश निर्बलता तुम्हें नेस्तनाबूद करने का उपक्रम कर रही है तो क्षण भर के लिये तुम्हें अपना कार्य रोक देना चाहिए और तुरंत सबल इच्छा-शक्ति (Will power) को जाग्रत करना चाहिए। जैसे ब्रांडी की कुछ बूंदे रग रग में दौड़ जाती है; उसी प्रकार तुम्हारे बलवान् संकेत (Forceful Suggestions) रक्त के अणु अणु में संचरित हो जायंगे और शरीर के रोम रोम में, नस नस में बल स्फूर्ति तथा उत्साह संचार होते हुए अनुभव होंगे। इस इच्छा को जाग्रत करने के लिए पूरी श्रद्धा से धीरे धीरे कहो—"मैं पूर्ण स्वास्थ्य का अनुभव करता हूँ। ईश्वर मेरे द्वारा स्वास्थ्य, शक्ति तथा महान् बल को व्यक्त करता है। मेरी शक्ति अनेक इन्द्र-बज्रों से अधिक है। मैं भीतर और बाहर सर्वत्र शक्ति का अनुभव करता

[शेष पृष्ठ १११ पर]

ब्लड प्रेशर या ख़ून का दबाव

[श्री लिओनार्ड विलियम्स]

ब्लड प्रेशर या खून के दबाव की शिकायत आज कल एक फैशन सी हो गई है। यह फैशन खास तौर से उन लोगों में है जो अपनी तन्दुरुस्ती के बारे में बहुत सोचा विचारा करते हैं और लोगों से कहते रहते हैं। किसी बीमारी के फैशन में शुमार होने से पहले वह जरूरी है कि वह किसी हद तक भेद की चीज़ हो। पढ़े लिखे लोगों में ऐसे आदमी कम मिलेंगे जो इस बात को खुशी से मान लें कि वे किसी मामूली बीमारी के शिकार हैं। आप सुनते सुनते थक जाँयगे कि किसी मोटर दुर्घटना में उन्होंने किस तरह तकलीफें सहीं और डाक्टर ने उनसे क्या क्या कहा मगर वह अपने दाँत के दर्द जैसे मामूली दुःख की बात भी न करेंगे और न अपने पेट दर्द के बारे में कुछ कहेंगे चाहे वे उससे कितने ही बेचैन क्यों न हों। किसी एक्सीडेन्ट या दुर्घट्ना के बारे में हमेशा कुछ न कुछ भेद या नयापन रहता ही है लेकिन दाँत या पेट के दर्द की वजह और उसकी हालत का सबको पता है। गठिया की बीमारी अब फैशन में नहीं शामिल की जाती क्योंकि यह नहीं कहा जा सकता कि हमारे वह पुरखे जो खूब खाते पीते थे और खूब बच्चे पैदा करते थे, गठिया के बीमार होते थे। वही आदमी जिन्हें पहलेअपनी गठिया का घमंड होता था अब आपसे बड़े गर्व से कहेंगे कि 'मुझे ब्लड प्रेशर है'। वह इतनी ही सच्चाई और ज़ोर के साथ यह भी कह सकते हैं कि मेरी नाड़ियों में खून चलता है' क्योंकि इनमें से बिना एक के दूसरी हो ही नहीं सकती और उनकी ज़िन्दगी के लिए यह जरूरी है कि उन्हें यह दोनों चीज़ें हों। ब्लड प्रेशर तो हर एक को होता है। ब्लड प्रेशर या ख़ून के दबाव के माने हैं ख़ून का उन नाड़ियों की दीवारों पर दबाव डालना जिनमें से होकर ख़ून सारे शरीर में चक्कर लगाता है। यह शरीर का एक ऐसा काम है जिसमें कोई भेद की या अनोखी बात नहीं है। भेद की बात अगर हो भी तो तब हो सकती है जब हम उस दबाव के घटने बढ़ने और उसके कारणों की जाँच करने लगें।

['ब्लड प्रेशर' पर इतना सुन्दर लेख 'जीवन सखा' के जिज्ञासु पाठकों को बहुत कम पढ़ने को मिला होगा। लेख की सुन्दरता, इसकी उपयोगिता के बारे में कहना ही क्या ?

इसके अनुवादक हैं श्री पुरुषोत्तम त्रिपाठी। त्रिपाठी जी का यह अनुवाद सहयोगी 'विश्ववाणी' में देख हम इसे अपने प्रेमी पाठकों के सामने प्रस्तुत करने के लोभ का संवरण नहीं कर सके। और इसके लिए हम अपनी कृतज्ञता प्रकट करते हैं। —सं:]

ब्लड प्रेशर का नापना

ब्लड प्रेशर के ठीक ठीक नापने के तरीक़े अभी हाल ही में ईजाद हुए हैं। इसके पहले डाक्टर लोग कलाई के ऊपर की नाड़ी में ख़ून के चाल की जाँच करके उसके दबाव का पता लगाया करते थे और मामूली तौर पर जब वह मरीज़ों की नब्ज़ देखते थे तो यह बात भी उनके ध्यान में रहती थी। पर आदमी की अंगुलियाँ चाहे कितनी ही नाज़ुक और तजरबेकार क्यों न हों यह तो मालूम कर सकती हैं कि ख़ून किस तरह दौड़ रहा है मगर इस चीज़ को ठीक ठीक नहीं भाप सकतीं कि बदन की सतह के एक ख़ास हिस्से पर ख़ून का कितना दबाव है। इसलिए ऐसे यन्त्र ईजाद किये गये जिनसे ख़ून का सही दबाव निकाला जा सके। अब सब मानते हैं कि ख़ून की किसी भी नाड़ी की माप अलग अलग आदमियों और अलग अलग परिस्थितियों में बदलती रहती है। किसी की नाड़ी मोटी होती है और किसी की पतली। इसीलिए ये यंत्र हमेशा इस्तेमाल किए जाते हैं। सर क्लिफोर्ड आलबट (Sir Clifford Allbutt) का यह कहना ठीक है कि जिस तरह बिना थर्मामीटर के आदमी के बदन की गरमी पर बहस करना बेमायने है उसी

तरह बिना यंत्र के ब्लड प्रेशर के बारे में बातचीत करना बेकार है।

पहला तजरबा

ब्लड प्रेशर को ठीक ठीक नापने के सबसे पहले तजरबे किसी साइन्सवाले या डाक्टर ने किसी साइन्स के कमरे में नहीं किये थे, बल्कि एक एग्लिकन पादरी ने यह तजरबा सबसे पहले गाँव के एक खेत में किया था। अब आगे की बात सुनकर हमारे उन भाइयों को सदमा होगा जो ज़िन्दा जानवरों पर किसी तरह की चीड़ फाड़ के ख़िलाफ़ हैं, लेकिन बात सच है। रेवरेण्ड स्टेफेन हेल्स डी० डी०, विकार आफ़ सेन्ट मेरी, टेडिङ्गटन (Rev Stephen Heles, D. D. Vicar of Sr. Marys Teddington) ने एक घोड़ी पर नीचे लिखा तजरबा किया—

घोड़ी को उसकी कमर जमीन से मिलाकर उल्टा फाटक से बाँध दिया गया और फिर एक लम्बे शीशे की नली को उसकी बाईं पैर की .खून की नाड़ी में घुसेड़ दिया गया। फ़ौरन नली में .खून ८ फ़ीट ३ इञ्च की ऊंचाई तक चढ़ गया और जब तक .खून जम नहीं गया तब तक बराबर साँस के चलने और दिल की धड़कन के साथ साथ नली में ऊपर चढ़ता और उतरता रहा। ज़ाहिर है कि जितनी ऊंचाई तक .खून नली में ऊपर चढ़ा था वहीं उस जानवर के .खून का दबाव था।

ब्लड प्रेशर बढ़ने के कुछ कारण

तब से अब तक बहुत तरक्क़ी हो चुकी है और अब हमारे पास ऐसे यंत्र हैं जिनकी मदद से हम किसी भी आदमी का ब्लड प्रेशर बिलकुल ठीक ठीक बता सकते हैं चाहे वह आदमी किसी भी हालत में क्यों न हो। शायद सबसे दिलचस्पी की बात जो लोगों के ब्लड प्रेशर नापने के दौरान में मालूम हुई है वह यह है कि किसी भी तरह का ज़रा सा भी जोश ब्लड प्रेशर को बढ़ा देता है यह बात ध्यान देने के क़ाबिल है। क्योंकि अगर किसी भी जल्दी से घबड़ाने वाले आदमी का खून का दबाव मालूम किया जा रहा हो तो आप देखेंगे कि उस आदमी का ब्लड प्रेशर महज़ उसके इस ख्याल से बढ़ जायगा कि 'मेरा

[पृष्ट १०६ का शेषांश]

हूँ और जानता हूँ कि उस महान् शक्ति की धाराएं मेरे शरीर, मन, एवं आत्मा का पुनरुद्धार, पुनरुज्जीवन एवं प्राणसंचार का कार्य कर रही हैं।" ऐसे पुष्ट एवं कल्याणकारी संकेतों से तुम घंटों तक बिना किसी थकावट या उचाट के कार्य कर सकोगे।

जब तुम अपने आप को हारे हुए, पतित, निर्जीव से मालूम पड़ो तो अपनी कल्पना के बल पर अपना सर्वोत्कृष्ट, स्वस्थ, निर्विकार, समृद्धशील चित्र अपने मानस पट पर खींचो। ऐसा करने से तुम अपने मन में अधिक उत्तमता, योग्यता, और निरोगता उत्पन्न कर सकोगे। मन को सर्वत्र स्वास्थ्य के उपकरणों से परिपूर्ण करने पर ही तुमको सब कुछ प्रिय एवं रमणीय भी भासित होता है।

जब अशान्ति, उद्वेग, थकान के शिकार बन रहे हो, तो ठन्डा पानी पीओ। हवा करो। अपने मन के अन्तर्भाग में पूर्ण शान्ति स्थापित होने की इच्छा करो। शरीर और मन के प्रत्येक भाग में शान्ति का अनुभव करो। इससे शरीर की थकावट मिट कर पुनः सरलता, ताजगी, उत्फुल्लता का संचार होता है। मन का उद्वेग शान्त होकर एकस्वरता (Harmony) आती है।

जब तुम सर्दी से ठिठुर रहे हो, कंपकपी दौड़ रही हो, तो इच्छाशक्ति को दृढ़ता पूर्वक इस विचार में जमा दो कि शरीर में रक्त का संचार तेज़ी से हो रहा है, नस नस में खून दौड़ रहा है और गर्मी आती जा रही है। मानसिक शक्ति इच्छानुसार गर्मी उत्पादन का कार्य करेगी।

तुम जैसी अन्तर्स्थिति की कामना करते हो, वैसी ही मूर्ति मन में स्थापित करो, दृढ़ता से उसमें विश्वास के प्राण फूंको, तुरन्त तुम्हें वही वस्तु प्राप्त हो जायेगी।

हमारे शरीर के जठर भाग में रक्त संचालन बराबर न होने से पाचन शक्ति कमज़ोर हो जाती है। यह पाचन शक्ति रोग निवारण के मानसिक प्रयोग द्वारा तुम पुनः शक्तिशालिनी बना सकते हो। इसके लिए मन एकाग्र करके उस ओर तीव्र ध्यान केन्द्रित करो और ऐसा विचार करो कि जठर भाग में रक्त-संचालन ठीक हो रहा है। पाचन-शक्ति पुनः अपनी वास्तविक स्थिति में आ रही है। पाचन का कार्य तेज़ी से चल रहा है। इन मानसिक प्रबोधों द्वारा तुम पुनः अपनी पाचन-शक्ति प्राप्त कर सकोगे।

ब्लड प्रेशर नापा जा रहा है और यन्त्र में उसका ब्लड प्रेशर जो बढ़ जायगा वह उसके असली ब्लड प्रेशर से कहीं ज्यादा होगा। सर क्लिफोर्ड आलवर्ट एक मरीज़ का क़िस्सा बतलाते हैं जिसका ब्लड प्रेशर मामूली से बहुत ही ज्यादा निकला क्योंकि वह आदमी ब्लड प्रेशर नापने वाले यंत्र को बिजली के बैटरी समझ बैठा था और उसे यह डर हो गया कि 'मुझे एक ज़ोर का धक्का लगने वाला है'। उसे समझा दिया गया कि डर ग़लत है और जब उसकी समझ में पक्की तौर से आगया कि वह बिजलो की बैटरी नहीं है तब उसका ब्लडप्रेशर लिया गया और मामूली निकला। आम तौर पर ब्लड प्रेशर के थोड़े से बढ़ जाने पर आदमी को बहुत ही अच्छा मालूम होने लगता है। खाना खाने के बाद मामूली तौर पर ब्लड प्रेशर बढ़ता है और इस लिए भरे पेट आदमी के दिमाग़ में जो मस्ती और ख़ुशी होती है उसकी एक वजह प्रेशर का बढ़ना भी है। आँख, नाक, कान किसी भी इन्द्रिय के जोश में आने से भी प्रेशर बढ़ता है। ज़ोर की बदबू या खुशबू से ख़ून का दबाव बढ़ जायगा। इसी तरह गैर मामूली नज़ारे, चाहे अच्छे हों या बुरे, प्रेशर को बढ़ा देंगे। कहा जाता है कि सड़क पर किसी भी दुर्घटना को देखने के लिए आदमी जो इकठा हो जाते हैं वह लोगों की एक कमज़ोरी या बीमारी है। एक दर्जे तकयह बात ठीक हो सकती है लेकिन ज्यादातर लोगों के बारे में होता यह है कि कोई ग़ैर मामूली बात देखने से, ख़ास कर जब वह डरावनी भी हो, लोगों का ब्लड प्रेशर बढ़ जाता है। उसे रोमांच कहते हैं और रोमांच आमतौर पर लोगों को अच्छा लगता है, जिसके लिए लोग हमेशा उत्सुक रहते हैं। इसीलिए ज्यादातर लोग किसी भी दुर्घटना को देखने के लिए बड़े शौक़ से जमा हो जाते हैं। अच्छे नाटक के देखने से जिसमें अच्छी तरह पार्ट अदा किए गए हों, जो ख़ुशी हमको महसूस होती है उसकी आमतौर से यही वजह होती है। जब कोई दुनिया के सुखों को तुच्छ समझने वाला आदमी कहता है कि आधे से ज्यादा मज़ा सुख में नहीं है बल्कि सुख के इन्तज़ार करने में है तो वह साइन्स की निगाह से सच्ची बात कहता है। इस बात को अब सब जानते हैं कि किसी भी आने वाली खुशी का सिर्फ़ ख्याल करने से आदमी के ख़ून का दबाव बढ़ जाता है। उसके रोंगटे खड़े होने लगते हैं। असली सुख के साथ बुराई भी हो सकती है लेकिन सिर्फ़ इन्तज़ार के साथ कोई बुराई नहीं होती। सिर्फ़ थोड़ी सी खुशी होती है

रोंगटे खड़े होना

रोंगटे खड़े होना बिलकुल एक जिस्मानी चीज़ है। रोंगटे खड़े होने की वजह ब्लड प्रेशर बढ़ना इतना नहीं है जितना कि वे बातें हैं जिनकी वजह से ब्लड प्रेशर बढ़ जाता है। बात यह है कि ख़ून की नलियाँ पतली हो जाती हैं। कोई भी चीज़ अगर किसी ज़ोर के साथ किसी नली से होकर बह रही हो तो नली जितनी पतली हो जावेगी बहाव का ज़ोर उतना ही बढ़ जावेगा। नसों में वह ताक़त होती है कि वे ख़ून की नलियों की मोटाई को जितना चाहे कम या ज्यादा कर दें और जब कभी ब्लड प्रेशर को बढ़ाने की ज़रूरत होती है तो वे नलियाँ आमतौर पर सिकुड़ जाती हैं। असल में नलियों के सिकुड़ जाने से ही रोंगटे खड़े हो जाते हैं। इसीलिए जब नल से ठंडे पानी की धार बदन पर पड़ती है तो रोंगटे खड़े हो जाते हैं क्योंकि सारे बदन की ख़ून की नलियाँ एकदम सिकुड़ जाती हैं। यही वजह है कि किसी भी जोश के वक्त बदन सफेद पड़ जाता है। सिर्फ़ डर ही की वजह से बदन पीला नहीं पड़ जाता बल्कि कोई भी चीज़ जो ब्लड प्रेशर को एकदम तेज़ी से बढ़ा दे, बदन को पीला कर देगी। आवाज़ें सुनने से ब्लड प्रेशर बढ़ जाता है, यह अब सब जानते हैं। यकायक आवाज़ों का होना, तेज़ आवाज़ें वे सब ब्लड प्रेशर बढ़ा देती हैं। जैसा हम ऊपर बता चुके हैं ये चीज़ें डर पैदा करती है और कुछ न कुछ करने को रमक दिल में पैदा कर देती है। इससे आदमी या तो लड़ने के लिए तैयार हो जाता है या भागने लगता है।

फ़ौजी गानों के असर से 'कुछ न कुछ करने की' इच्छा होती ही है। सिपाही जो थक जाते हैं और जिनके पैर सूज जाते हैं वह फ़ौजी बैण्ड के बजते ही फिर के ताज़े हो जाते हैं। अच्छी कविता का भी किसी हद तक यही असर होता है। कविता के बारे में मैथ्यू अर्नाल्ड (Mathew Arnold) का कहना है कि अच्छी कविता में जब

साफ़ और जीती जागती बातें होती है तो पढ़ने वाले के रोंगटे खड़े हो जाते हैं।

लकवा

जो लोग यह कहते हैं कि 'हमें ब्लड प्रेशर है' उनका असली मतलब यह होता है कि उनका ब्लड प्रेशर मामूली से ज्यादा है। यह सचमुच अच्छी चीज़ नहीं है। कोई पतली चीज़ नलियों में होकर बह रही हो और उन नलियों पर बेजा दबाव डाल रही हो तो नली के टूट जाने या फट जाने का डर रहता है और अगर नली की दीवाल में कहीं पर कोई कमज़ोर जगह हो तो वहीं पर फटने का डर रहता हैं। आदमी की नाड़ियो में ऐसी एक कमज़ोर जगह है और दुर्भाग्य से वह जगह दिमाग़ में है। ऊंचे ब्लड प्रेशर वाले आदमी के किसी भी जगह से ख़ून गिरना शुरू हो सकता है लेकिन सब से ज्यादा डर दिमाग़ से ख़ून फूट निकलने का होता है। दिमाग़ से ख़ून फूट निकलने के पहले एक दो दफे शायद आदमी की नाक से ख़ून गिरे। इसलिए ज़रा से भी जोश के किसी अधेड़ आदमी की नाक से यदि ख़ून गिरना शुरू हो जाय तो उस आदमी को डाक्टर से सलाह लेनी चाहिये। इससे कोई इनकार नहीं कर सकता कि दिमाग़ से ख़ून फूट निकलना ख़तरनाक हो सकता है। आमतौर से इसे लकवे का दौरा कहते हैं। अंग्रेज़ी में इसे स्ट्रोक यानी एकाएक चोट भी कहते हैं क्योंकि ये बातें एकाएक होती है, बिलकुल जैसे किसी छिपे हुए आदमी ने पीछे से ज़ोर का घूंसा मारकर गिरा दिया हो। अगर मरीज़ बच जावे तो इसका असर बाद में हमेशा यह होता है कि एक तरफ़ से बदन के हिस्से में लक़वा मार जाता है और यह भी मुमकिन है कि आदमी का बोलना बिलकुल बन्द हो जाय। यह सब चीज़ें आदमी को बेहद कमज़ोर बना देती हैं और मरीज़ को ज्यादा दिन तक नहीं चलने देती। रोगी की नाड़ियाँ ऐसी कमज़ोर हो जाती हैं कि वह दिमाग़ से ख़ून फूट निकलने को बरदाश्त नहीं कर पातीं और आदमी की ज़िन्दगी को बहुत जल्द ख़तम कर देती है। इस तरह आदमी बहुत सी तकलीफ़ों से बच जाता है। याद रखना चाहिये कि ब्लड प्रेशर का ऊँचा जाना शैतान का बहाना है। यह पहले ही बताया जा चुका है कि जब ब्लड प्रेशर कुछ ऊँचा जाता है तो तन्दुरुस्ती अच्छी है और कुछ न 'कुछ करने या सोचने' को जी चाहता है। इस लिए ऊँचे ब्लड प्रेशर वाला आदमी ज़रूरत से ज्यादा ख़ुश मालूम होता है और यह मुमकिन है कि कोई भी ऐसी ऊपरी हालत न पैदा हो या न दिखाई दे जिससे उसे अपने ख़तरे का पता आसानी से लग जावे। यह एक और ज़बरदस्त वजह है कि हर साल हमें अपने जिस्म की अच्छी तरह जाँच कराकर उसे दुरुस्त रखना चाहिये। इस चीज़ के लिए मैं बराबर ज़ोर देता आ रहा हूँ। जहाँ तक नाड़ियों का ताल्लुक़ है कभी कभी अपने जिस्म की अच्छी तरह जांच करा लेना बहुत ज़रूरी और फ़ायदेमन्द है बमुकाबले अपने दाँतों की जाँच कराने के। ऐसे बहुत से लोग हैं जो अपने दाँत के डाक्टर के पास साल में कम से कम एक बार ज़रूर जाते हैं लेकिन बहुत कम लोग ऐसे मिलेंगे जो डाक्टर से अपने जिस्म की अच्छी तरह जाँच कराके उसे दुरुस्त रखने की कोशिश करते हों। पचास बरस के ख़ूब तन्दुरुस्त आदमी के लिए जिसे इस बात का घमण्ड है कि वह ज़िन्दगी में कभी भी इतना अच्छा नहीं रहा इसका बड़ा डर है कि कहीं वह इस रोग के नज़दीक न हो।

औसत ब्लड प्रेशर

जिस यंत्र से ब्लड प्रेशर मालूम किया जाता है उसे स्फ़ाइगनो मैनोमीटर (Sphygnomanometer) कहते हैं। जो लोग इस यंत्र से अच्छी तरह वाकिफ़ हैं वे इसे मैनोमीटर (Manometer) भी कहते हैं। लाखों आदमियों का ब्लड प्रेशर इस यंत्र से पढ़ा गया है। इससे यह बात मालूम हो गई है कि आदमी का औसत ब्लड प्रेशर क्या होना चाहिये। यहां पर औसत दबाव का मतलब ठीक यानी तनदुरुस्त आदमी का ब्लड प्रेशर नहीं है। ऊपर जो तजरबे बताये गए हैं उससे पता चलता है कि किसी तन्दुरुस्त बीस बरस के जवान आदमी का ब्लड प्रेशर आमतौर पर १२० मिलीमीटर होता है। इस तरह की हालत में यह आँकड़ा औसत ब्लड प्रेशर और मुनासिब ब्लड प्रेशर दोनों बताता है। तजरबे से मालूम हुआ है कि जैसे उमर बढ़ती जाती है वैसे ही वैसे ब्लड प्रेशर आम तौर पर इस तरह बढ़ता है कि अगर किसी आदमी की

(शेष पृष्ठ १२ पर)

स्वास्थ्य, सुरुचि और सुस्वाद

डा० श्यामाचरण डी० एच० डी०, प्रकृति चिकित्सक

'प्रकृत पाक प्रणाली' नामक अप्रकाशित पुस्तक का यह दूसरा अध्याय है। इसमें स्वास्थ्य, सुरुचि और सुस्वाद का स्वाभाविक सामञ्जस्य विद्वान लेखक ने बड़ी खूबी से दिखाया है। —सं० 'जीवन-सखा'।]

स्वास्थ्य के लिए पकाइये !—

यह हुआ हमारा सूत्र जो हर रसोई घर के दरवाजे पर चमकते अक्षर में लिखा होना चाहिए।

जो कुछ भी हम पकायेंगे उसके विषय में यह प्रश्न हमारे मन में उठे बिना नहीं रहना चाहिए कि वह स्वास्थ्यकर तो होगा ? हमारे रसोईघर से कोई ऐसी चीज तो नहीं निकलेगी जो इस प्रश्न का उत्तर 'हाँ' में न दे सके ?

तो आप पूछेंगे कि हर रोज दोनों वक्त क्या हमको मरीज का पथ्य बनाना होगा ? लोगों को क्या केवल 'परहेजी' खाना ही साल के बारह महीने और महीने के तीसों दिन खिलाना होगा ? क्या ऐसा खाना लोग खायेंगे ? क्या स्वाद और सुरुचि का मनुष्य के भोजन में कोई स्थान नहीं है ?

यह प्रश्न वाजिब है पर ऐसी शंका होने की जरूरत नहीं। क्योंकि प्रकृति के नियमानुसार स्वास्थ्यकर स्वाभाविक आहार का सुरुचि और सुस्वादपूर्ण होना अनिवार्य है।

याद रहे हम भोजन की बात कर रहें हैं, दवा दारू की नहीं। दवा दारू के विषय में भले ही यह प्रसिद्ध हो कि जितनी वह कड़वी होगी उतना ही गुण करेगी। पर स्वास्थ्यप्रद प्राकृत भोजन के विषय में ठीक उल्टी बात है। मनुष्य के प्राकृत आहार की यही पहिचान है कि प्रकृत दशा में वह मनुष्य के चित्त को आकर्षित करने वाले रंग-रूप सुगन्ध और सुस्वाद से युक्त हो। भला अंगूर के गुच्छे, आम के फाँक, अमरूद-लीची-जामुन-फालसा आदि की डलिया देख कर किसका मन प्रसन्न नहीं हो उठेगा ? प्रकृति ने मनुष्य के लिए ऐसी मनमोहक, चित्ताकर्षक, सुरुचि- सुस्वाद-युक्त और सप्राण भोजन की व्यवस्था की है। जब हम प्रकृति का अनुसरण करेंगे तो इस बात को कैसे भूल सकते हैं ?

हाँ, यह बात और है कि कृत्रिम स्वाद के जो वशीभूत हैं उन्हें अपनी स्वाद वृत्ति को सुधारना होगा। और अब तो पाकपटुता इसी में मानी जायेगी कि अज्ञात रूप से खाने वाले की स्वाद-वृत्ति में सुधार होता जाय।

सुस्वाद और सुरुचि का स्वास्थ्यप्रद आहार से विरोध है, यह भ्रम है।

हम रुग्णावस्था से चिकित्सा की बात नहीं कर रहे हैं और न दवा दारू की तरह विशेष उपयोग में आने वाले किसी खाद्य विशेष की ही बात कर रहे हैं।

हम सामान्य अवस्था में सामान्य दैनिक भोजन में व्यवहार्य खाद्यों की बात कर रहे हैं। ऐसे के लिए यह याद रखने की बात है कि प्रकृत दशा में जो खाद्य मनुष्य को सुरुचिपूर्ण सुस्वादु और आकर्षक प्रतीत होता है वह उसके लिए लाभप्रद होगा। यह बात कृत्रिम रूप से स्वादिष्ट और आकर्षक बने पदार्थ के विषय में इतने ही निश्चय के साथ नहीं कही जा सकती। उनमें कुछ लाभदायक हो सकते हैं तो कुछ हानिकारक भी। क्योंकि उनके अपने प्रकृत स्वाद एवं गन्ध को छिपाकर उनमें कृत्रिम स्वाद एवँ गन्ध पैदा किए जाते हैं, इसलिए वह कृत्रिम स्वाद या गन्ध उनके अपने प्रकृत गुण-दोष के परिचायक नहीं रह जाते। फलतः पकाने में यह दृष्टि रखना आवश्यक हो जाता है कि जो कुछ हम पकावेंगे वह स्वास्थ्यकर होगा। सुरुचि पूर्ण और सुस्वाद युक्त होना भी उसके लिए जरूरी है परन्तु सुरुचि और सुस्वाद लाने के नाम पर स्वास्थ्य की दृष्टि नहीं छोड़ी जानी चाहिए। यह

केवल प्रकृति का ही अपना प्रबन्ध है कि जिसके लिए जो प्रकृत स्वास्थ्यकर आहार है वह उसके लिए अकृत्रिम दशा में स्वयमेव सुरुचिपूर्ण एवं सुस्वादु होता है । मनुष्य ने न मालूम कब से अपने प्रकृत आहार को प्रकृत रूप में ही खाने को गौण स्थान देकर कृत्रिम रूप से पकाये पदार्थ खाने का ही मुख्यतया अभ्यास डाला है ।

इसलिए उसे यह भी देखना जरूरी होगया है कि जो कुछ भी वह खायेगा वह सचमुच ही उसके शरीर के लिए गुणकारी होगा, केवल जीभ को तृप्त करने वाला नहीं होगा ।

स्वास्थ्य और सुरुचि एवं स्वाद का एक साथ सम्मेलन कराना ही वास्तव में पाक कौशल है और इसी के लिए पकाने के काम को पाक विद्या का शास्त्रीय रूप मिला है ।

ऊपर बताया जा चुका है कि मनुष्य का जो प्रकृति प्रदत्त आहार है वह अपनी प्रकृत दशा में ही खाने योग्य होता है और उसमें सुस्वाद, सुगन्ध एवं सुरुचि की कोई कमी मालूम नहीं पड़ती; जैसे—वनस्य फल, मेवे, मीठे तेल-युक्त बीज, कई तरह की पत्तियाँ कितनेक्व फूल, कई तरह के कन्दमूल और तरकारियाँ कितनी फलियाँ और डाँट तथा कितने हरे और सूखे अनाज आदि । कालान्तर से मनुष्य ने कितने ऐसे पदार्थों को अपने आहार की सूची में जोड़ लिया जो अपनी प्रकृत दशा में वैसे ही आकर्षण, सुगन्ध सुस्वाद से युक्त या सुरुचिपूर्ण नहीं थे, और उनको पकाकर तथा नमक मसाला मिलाकर खाना आरंभ किया । इनमें कई श्रेणी या वर्ग के पदार्थ हैं—कुछ ऐसे हैं जिनमें सुस्वाद की थोड़ी कमी है, तो कुछ ऐसे कि जिनमें न तो सुस्वाद है और न कुस्वाद और तीसरे ऐसे हैं जो स्पष्ट रूप से दुर्गन्ध एवं कुस्वाद से युक्त हैं और बिना लम्बे अभ्यास के या तेल नमक मसाले के संयोग के खाये ही नहीं जा सकते । इन तीनों वर्गों को हम क्रमशः सामान्य, हीन और त्याज्य खाद्य पदार्थ कह सकते हैं ।

कोई कृत्रिम खाद्य पदार्थ जैसे—'हार्लिक' का 'माल्टेड मिल्क, साधारण खाद्य पदार्थ में नहीं लिया जा सकता । वह तो दवा की तरह विशेषज्ञों की राय से व्यवहार करने की वस्तु है । सामान्य रसोई घर में उसका कोई स्थान नहीं माना जाना चाहिए ।

अतएव । स्वाद और स्वास्थ्यप्रदता का सामंजस्य करने में कोई बाधा नहीं होनी चाहिए, यदि हम प्रकृति के दिखाए पथ से चलें । श्रेष्ठ खाद्यों को स्वाद-पूर्ण बनाने का कोई प्रश्न ही नहीं होता है क्योंकि वे स्वयं ही बड़े आकर्षक और सुस्वाद होते हैं । सामान्यवर्ग के स्वाद भी बहुत छेड़ छाड़ नहीं चाहते, बहुत थोड़ी ही पाकक्रिया और उचित मिलावट से उनका स्वाद यथेष्टरूप से बढ़ जाता है । अब रही हीनवर्ग के खाद्यों की बात । इनके ही उपयोग में पाक कौशल की जरूरत पड़ती है जिससे कि उनके स्वास्थ्यप्रद गुणों को ठीक रखतेहुए सुरुचिपूर्ण बना दिया जाय । त्याज्य वर्ग तो त्याज्यही है—उसके विषय में कोई उद्योग करने की जरूरत नहीं है ।

यहाँ इतना कह देना आवश्यक है कि स्वाद का प्रश्न सामान्यतः प्रचलित धारणा और अभ्यास से ही अधिक सम्बन्ध रखता है । उदाहरण के लिए कोई भी छोटा बच्चा मिर्चा नहीं खायेगा । लेकिन बराबर मिर्चे को बड़ाई सुनते सुनते और थोड़ा मिर्चेदार तरकारी यदा कदा चाटते चाटते वह मिर्चे का अनन्य भक्त बन जाता है । इसी तरह नित्य की रसोई में थोड़ा-थोड़ा स्वास्थ्यप्रद परिवर्तन क्रम क्रम से किया जाय तो कोई भी उसको महसूस नहीं कर सकेगा और क्रमशः खानेवाले की स्वाद-वृत्ति सुधर जायेगी । तेल, नमक, मसाला, चीनी आदि खाने के अभ्यास में सुधर. नित्य की रसोई पकाने वाला यदि वह अपने काम में पूर्ण कुशलता रखता हो तो बड़ी आसानी से कर सकता है । इसी प्रकार ताजे शाक, फल आदि का अभ्यास भी क्रम-क्रम से बढ़ाया जा सकता है ।

हिन्दुस्तान में रुचि और स्वाद का व्यक्ति व्यक्ति में समाज समाज में और देश-देश में इतना भेद है कि दस बीस व्यक्तियों को यदि एक साथ खिलाना हो तो, थाली की हर एक चीज को हर आदमी के लिए पूरी तरह सन्तोषप्रद बनाना असंभव नहीं तो कठिन काम अवश्य है । अपने यहां तो मसल मशहूर ही है,—'आप रुचि भोजन'।

वास्तव में व्यक्तिगत स्वातंत्र्य को अगर कहीं भी हम-लोगों ने खूब खेलने दिया है तो वह भोजन के स्वाद के मैदान में । परन्तु यह स्वन्त्रता नहीं उच्छृंखलता है, जो भोजन के सबसे प्रधान उद्देश्य को पीछे ठेल कर हम

बिगड़ी हुई जीभ की इस तरह खुशामद में लगे रहते है। यह एक घोर दुर्व्यसन है जिसमें हम सब डूब रहे हैं। परन्तु यह एक बात विचारणीय है कि यह स्वाद का प्रश्न कोरा अभ्यास वा संस्कार पर निर्भर करता है। जैसे नहीं तो इतना रुचि वैचित्र्य देखने में नहीं आता। बंगाल और बिहार में लोग सरसों का तेल बहुत सराह कर खाते हैं तो बम्बई की ओर तिल-तेल का सामाज्य देखा जायेगा और मद्रास और दक्षिण के प्रान्तों में नारियल के तेल की ही पूरियाँ और पकौड़ियाँ चलती है। एक बिहारी को बनी चीज़ तिल और नारियल के तेल में बनी अग्राह्य प्रतीत होती है। दक्षिणी लोग प्रायः इमली की खटाई को बहुत प्रिय मानते हैं और उसका खूब व्यवहार करते है तो मारवाड़ी भाई लाल मिर्च का सफ़ूफ़ हर चीज़ों में भरपूर मात्रा में डाला करते हैं। बिहार प्रान्त में जिस तरकारी के रस में मसाले का जितना ही गाढ़ा घोल होता है वह उतना ही बढ़िया माना जाता है। इसके विपरीत सभी अग्रवालों में खट्टे-मिर्च-हींग से युक्त पतले रस की चलन है। इसके अलावा अलग-अलग परिवार, का एवं व्यक्ति का अपना अलग-अलग अभ्यास बन गया है। चूँकि स्वाद के अतिरिक्त कोई भी भोजन विषयक आदर्श लोगों के समाने नही है इसलिये जिसे एक बार जो स्वाद पसन्द पड़ गया वह उसे छोड़ता नहीं। यह बात उसके ध्यान में नहीं आती कि इस प्रकार केवल स्वाद की दृष्टि रखने से खानेवाले के स्वास्थ्य को तो नुकसान पहुंचता ही है, पकाने वाले का झंझट बेहद बढ़ जाता है। घर में यदि दस व्यक्ति हों और सब अपनी अपनी विभिन्न रुचि के अनुसार खाना मांगे तो पकानेवाले की जो दशा होगी वह अनुमान ही करने की बात होगी। अक्सर ऐसा देखा गया है कि यदि घर में दो तीन मेहमान आ जायँ तो हर एक के लिये अलग अलग जलपान एवं तरकारी का प्रबन्ध करना पड़ जाता है। यह एक ऐसी बात है जो बिलकुल असहनीय स्थिति पैदा कर देती है। और यह सब इसलिये होता है कि हमारी केवल स्वाद-दृष्टि है,—खाने वाले और खिलाने वाले दोनों की ही। यदि हम व्यक्तिगत स्वाद के आग्रह को स्वास्थ्य-दृष्टि के नीचे कर दें तो इसके भीतर एक ऐसा रास्ता निकल सकता है जो इस कठिनाई को हल कर सके। जैसा हम पहले कह चुके हैं प्रकृति प्रत्त खाद्यपदार्थों का स्वाद सामान्यतः सब को प्रिय होता हैं—कम से कम उन अप्रियता नहीं होती है। सादे अन्न जो पकाये जाते हैं जैसे भात, रोटी, दाल, उनमें भी बहुत झगड़ा नहीं उठता है। असल झगड़ा उठता है वहां जहां हम ऊपर से नमक मसाले, चीनी, घी, तेल आदि मिलाकर कृत्रिम स्वाद पैदा करना चाहते हैं। इसका मतलब यह होता है कि हम नमक मसाले आदि के स्वाद के ही अभ्यासी बन गये हैं। शाक-तरकारी, दूध, दही आदि के अकृत्रिम स्वाद का आनन्द हम भूल से गये हैं। बहुत लोगों की यह धारणा हो गई है कि स्वयं शाक-तरकारियों में, सादे दूध-दही में कोई अच्छा स्वाद नहीं होता है। ऐसी धारणा गलत है, और यह इस लिये है कि हम लोग नमक, मसाले, चीनी आदि के तेज स्वाद का ही व्यवहार करते रहे हैं इसलिये शाक तरकारियों के और दूध दही, और सादे अन्न के सूक्ष्म किन्तु विविध स्वाद का अनुभव करने का अवसर ही नहीं पाते हैं और न रसना को इस सूक्ष्म स्वाद का रस लेने का अभ्यास ही है। परन्तु ऐसी बात नहीं है कि यह अभ्यास बदल नहीं सकता है या रसना को उस रस में आनन्द नहीं मिलेगा। मन की और इन्द्रियों की यही वृत्ति है कि जिस ओर उन्हें झुकाया जाय क्रम क्रम से उसी ओर झुक जाते हैं और फिर उसी में आनन्द मनाने लगते हैं। फिर हम लोगों के खाद्य पदार्थों के पकाने का जो ढङ्ग है वह भी ऐसा ही है कि उनका प्रकृत स्वाद नष्ट हो जाता है। जैसे, फूल गोभी या पात गोभी को उबाल कर उसका पानी फेंक देते हैं जिससे उनमें कोई भी स्वाद नहीं रह जाता और तब यह जरूरी हो जाता है कि ऊपर से नमक मसाला आदि देकर कृत्रिम स्वाद पैदा किया जाय। जो लोग कच्ची ताजी गोभी को खा चुके हैं वे जानते हैं उसमें उसकी एक अनोखी मिठास और स्वाद होता है जो ठीक तरह से पकाने पर बिना मसाले के भी उन्हें काफी स्वादिष्ट रखता है। यह इतनी सच्ची बात है कि यदि कोई निरपेक्ष बुद्धि से, पूर्व धारणा को छोड़ कर इसकी परीक्षा करना चाहे तो स्वयं परीक्षा कर देख सकता है। परन्तु यहां पर एक दूसरी कठिनाई पैदा हो जाती है।

यदि वास्तविक स्वाद की खोज ही हम करें तो बहुत सी चीजों को जिस रूप में हम व्यवहार करते हैं वैसा करना हम छोड़ देंगे। पर हम केबल जीभ से ही नहीं चखते हैं

आंखों से और फैशन की मान्यता से भी चखते से जान पड़ते हैं जैसे मैदे और हाथ की चक्की के चोकरदार आटे में चक्की के आटे की रोटी या पूड़ी अधिक मीठी और स्वादिष्ट होते हुये भी लाल रंग की होती है इस लिये दावतों में बहिस्कृत की जाती है। यही हाल हाथ की बनी चीनी या भूरे की है। मिल के दोबारे चीनी से अधिक मीठी और सुस्वादु होने पर भी वह मिठाई या शर्बत-मुरब्बे आदि में व्यवहृत नहीं की जाती, केवल इसलिये कि उसकी चाशनी ज़रा लाल होती है। पर इस धारणा में भी कोई विचार-सम्बद्धता नहीं है। जलेबी में, मक्खन में और तरह-तरह की मिठाइयों और शर्बतों में जो रंग बाजार में दिये जाते हैं उन्हें हम बहुत पसन्द करते हैं—बिना यह सोचे कि यह रंग खाने योग्य होगा या नहीं! इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि स्वाद का कोई स्वयं माप-दण्ड 'स्टैन्डर्ड' नहीं है—यह अधिकांश में अभ्यास, मान्यता, चलन आदि पर निर्भर करने वाली बात है। यदि लोग केवल इस बात को ही समझ लें तो आहार को समझदारी का बना रखने में सब से बड़ी दिक्कत दूर हो जायेगी।

(सर्वाधिकार लेखक के अधीन)

ब्लड प्रेशर या खून का दबाव

(पृष्ठ ९ का शेषांश)

उमर में १०० जोड़ दें तो उसका ब्लड प्रेशर मालूम हो जायगा। अगर हम मैनोमीटर में देखें तो यही ब्लड प्रेशर उसमें भी निकलेगा। इसके मुताबिक ४० बरस की उमर में ब्लड प्रेशर १४० होगा और ६० बरस की उमर में १६० होगा। हाल के डाक्टर इस बात से सहमत नहीं हैं कि उमर के साथ जो ब्लड प्रेशर बराबर बढ़ता जाता है वह मुनासिब ब्लड प्रेशर होता है। उनका ख़याल है कि जैसे जैसे नाड़ियां पुरानी होती जाती हैं वैसे वैसे वह कमज़ोर भी होती जाती हैं इसलिए यह मुमकिन नहीं है कि उनकी दीवारों पर बराबर दबाव बढ़ता ही चला जावे और वह उसे बरदाश्त करती रहें। इससे यह नतीज़ा निकला है कि इस बराबर बढ़ते रहनेवाले ब्लड प्रेशर की कोई हद होनी चाहिये। फिलहाल इस हद को १५० से ज्याद किसी का ब्लड प्रेशर हो तो उसे बहुत ज्यादा तन्दुरुस्त नहीं समझना चाहिये। उसका ब्लड प्रेशर कम करने की कोशिश करना चाहिए। और हर हालत में उसे बढ़ने नहीं देना चाहिये।

YOUR DIET IN HEALTH AND DISEASE

By Harry Benjamim

हैरी बैनजा मिन इंगलैण्ड के सुप्रसिद्ध जीवित प्राकृतिक चिकित्सकों में हैं।

स्वास्थ्यार्थियों के लिए यह आहार-विज्ञान सम्बन्धी आपकी पुस्तक एक अनुपम भेंट है। यदि आप आहार-चिकित्सा के द्वारा समस्त रोगों को निर्मूल करके अपने खोये हुए स्वास्थ्य एवं आरोग्य को बिना किसी चिकित्सक की सहायता के पुनः प्राप्त कर लेना चाहते हैं तो इस पुस्तक की एक प्रति आज ही मंगा लीजिए। पुस्तक का मूल्य सिर्फ १।) है। हमारे स्टाक में इस अनुपम पुस्तक की परिमित प्रतियां ही हैं, अतः शीघ्रता करें। विलम्ब से आर्डर भेजने पर सम्भव है कि आपको निराश होना पड़े।

मैनेजर, स्वास्थ्य ग्रंथ भंडार

२८७, बादशाही मण्डी, चौक प्रयाग

आदमी की उम्र

डा० पुच्चा वेंकटरमैया, सम्पादक 'प्रकृति' (तेलगू) तथा 'इंडियन नेचुरोपैथ'

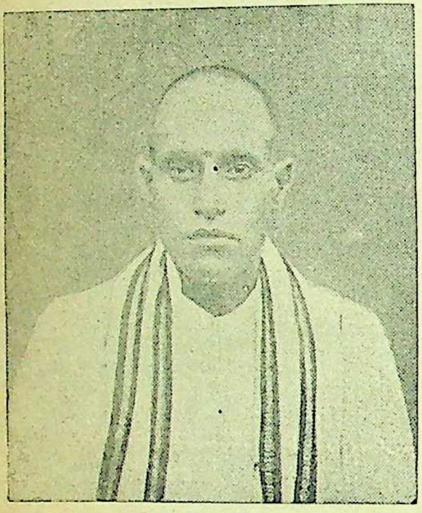

'मनुष्य असंतुलित भोजन, अल्प भोजन अथवा अति भोजन का आदी होकर अपनी मृत्यु का आपही कारण बनता है। मां के अपने बच्चे को प्यार के कारण ठूंस-ठूंस कर खिला देने पर अकाल मृत्यु का अभियोग किस पर चलाया जाय ? भूख लगे या न लगे, दोस्तों के अनुरोध से या अपने नियत समय का ख्याल करके जो आदमी भोजन की थाली खाली कर देता है, वह अपनी हत्या आपही कर लेता है। कहने का मतलब यह कि आज समाज में विरला ही कोई ऐसा मिलेगा जो अपनी समूची आयु को भोगता हो। हर कोई अपने या पराए के हाथों से अकाल में ही काल-कवलित हो जाता है।'—लेखक। अपने इसी विचार का प्रतिवादन इस लेख में सुन्दरता के साथ किया है। सं०]

मैं एक बार मद्रास से दो चटाइयां खरीद लाया जिन में से एक मेरी बहिन अपने लिए ले गयी। मेरी चटाई उसी साल में खराब हो गई। उसके बाद दूसरी चटाई भी खरीदी गई। लेकिन मेरी बहिन के यहां वही चटाई अब भी मौजूद है। दोनों चटाइयां एक ही दूकान से, एक ही कीमत देकर खरीदी गई थीं। दोनों का टिकाऊपन भी समान था। फिर भी दोनों के जीवन काल में भारी अन्तर साबित हुआ। तब मैं पहले कैसे निर्णय करता कि किसके लिये कितनी उम्र बदी है।

एक ही दूकान से एक ही दिन दो ग्रामोफोन या दो पेट्रोमैक्स लाइट खरीदी जाती है। उनमें से एक थोड़े ही दिनों में खराब हो कर निकम्मी हो जाती है। दूसरी बराबर कई साल तक काम देती है। तब हम कैसे माने कि किसकी उम्र कितनी है ?

दो भाई अपने पिता की जायदाद को बराबर बराबर बांट लेते हैं। उनमें से एक अपना हिस्सा थोड़े ही दिनों में खो बैठता है और अन्न के लिये मारा मारा फिरता है दूसरे की सम्पत्ति दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ती ही जाती है। फिर हम कैसे जान सकें कि किसके यहां कितने दिन तक सम्पत्ति टिक पायेगी ?

मेरे एक सन्निकट मित्र ने मुझे यह चिट्ठी लिखी—"दो साल के पहले जब आप मेरे मेहमान बने थे, मेरे यहां एक बालिका का जन्म हुआ था। उस बच्ची ने पिछले दो साल के मेरे घर को आनन्द-निकेतन बना रक्खा था। वह केवल हमें ही नहीं, बल्कि पड़ोसियों को भी अपनी बाल-लीलायें दिखा कर खुश करती थी। लेकिन क्या कहूँ ? चार दिन हुए; वह हमें शोक सागर में डुबो कर इस दुनियां से सिधार गई है। अब मैंने एक नया सबक यह सीख लिया है कि विधि-विधान में किसी का दखल नहीं होता, हम लोग कारण मात्र होते हैं।"

इसका जवाब मैंने यह दिया—

"प्रिय मित्र! आपको पहाड़-सा जो दुख सहना पड़ा है, उसमें मैं अपनी हार्दिक समवेदना प्रकट करता हूँ। मैं यह बात अच्छी तरह जानता हूँ कि हम अपने इस शोक का कारण अपनी असावधानी या अज्ञान को मान कर दुखी होने की अपेक्षा, उसका कारण विधि विधान को मानने से शीघ्र ही शांत चित्त होते हैं। यदि आपका जीवन उस बालिका के पीछे समाप्त होता, तो आपको यही सोच

कर दुख को भूल जाना उचित होता। लेकिन आप का जीवन अभी बहुत लम्बा है। अगर आप अपने शेष जीवन में ऐसे दुख की घाटियों से बचना चाहें, तो शिशु-पोषण विज्ञान जानना आपको अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगा। आज का शिक्षित समुदाय तर्क, व्याकरण, दर्शन, पिंगल, अर्थशास्त्र, कृषि-विज्ञान, खगोल शास्त्र, आदि के पीछे दौड़ता है लेकिन किसी का ध्यान इस विज्ञान की तरफ़, जो जीवन में अत्यन्त महत्व रखता है, नहीं जाता। लोग इस उपयोगी विज्ञान को सीख लेने की कोशिश भी नहीं करते। 'प्रकृति' (तेलगू पत्र) में इस सम्बन्ध के लेख बराबर छपा करते हैं। उनमें से कुछ आपके यहां भेज रहा हूं। आपको चाहिये कि उनको आप मनोयोगपूर्वक अध्यन कर लें और अपनी गर्भिणी पत्नी जी को सुनायें जिससे आपको पहले की तरह दुख न भोगना पड़े। मैं यह तर्क कतई पसन्द नहीं करता कि हमारे सुख दुख का कारण पूर्व-जन्म का कर्म होता है और इस जन्म के सत्कर्म या दुष्कर्मों से कोई सम्बन्ध नहीं रखते। क्योंकि मिर्च आंखों में लगाकर तत्काल उसका दुख भोगते हैं। कल परसों के भोजन की अति से आज पेट दुखता है, बदहज़मी होती है। मैं आपको अपने अनुभव की एक बात बताऊं ? एक स्त्री की चार सन्तानें अकाल में ही नष्ट हुईं। उस शोकातुरा स्त्री से इसका कारण पूछा तो उसने बताया कि 'उसके यहाँ काफ़ी दूध नहीं होता था। गाय या बकरी का दूध पिलाने से उन्हें (बच्चों को) बदहज़मी होती थी जो उनकी मौत का कारण बनती थी।'

पाँचवें दफ़े मैंने प्रकृति विज्ञान के अनुसार उसके प्रसव का प्रबन्ध कराया। अबकी बार नवजात शिशु को एरण्ड का तेल नहीं पिलाया गया [आंध्र प्रांत में शिशुओं को रोज एरण्ड का तेल पिलाया जाता है जिससे कि पाखाना हो]। दिन में चार बार सिर्फ़ मां का दूध पिलाया जाता था। बाकी समय जब कभी बच्चा जोर से रो उठता था, तो ठण्डा पानी पिला दिया जाता था। सिर्फ़ एक बार साफ़ दस्त होता था। माँ को दिन में दो बार कनीदार चावल का गिलास भर धोवन पीने का निर्देश किया गया। इसके सिवाय मां के भोजन में उबाली शाक-तरकारियाँ, कनीदार चावल का भात और छांछ होती थी। दो चार नारंगी भी खा लेती थी। उसका शिशु स्वस्थ और सुन्दर होकर छठे महीने में ही बैठने लगा, जब कि पहली सन्तानों में से कोई भी दस महीने की उम्र में भी नहीं बैठ सकती थी। यदि यह बचा अपने स्वास्थ्य के कारण चिरंजीवी बन जाय, तो उसकी आयु का निर्णय कोई क्यों कर सके ? इसके जैसा स्वास्थ्य और उम्र पूर्व सन्तान को ईश्वर से क्यों नहीं प्राप्त हुई थी ?

इस प्रकार की हज़ारों दलीलें दी जा सकती हैं। इससे यही सिद्ध होता है कि आज की सो की सौ मौतों का कारण मनुष्य का अज्ञान, मूर्खता, या उदासीनता के सिवाय और कुछ नहीं है। मृत्यु का कारण विधि या पूर्व-जन्म के मत्थे मढ़ कर हम अपनी व्यथा को भूलने की चेष्टा में रहते हैं। वास्तव में कोई भी मनुष्य आकाश की चिड़ियें, वन पशुओं और जंगली पेड़ों की तरह अपनी पूर्ण आयु का, जो उसे ईश्वर ने दी है, उपभोग नहीं कर पाता। मनुष्य असंतुलित भोजन, अल्प भोजन अथवा अति भोजन का आदी होकर अपनी मृत्यु का आपही कारण बनता है। मां के अपने बच्चे को प्यार के कारण ठूंस ठूंस कर खिला देने पर अकाल मृत्यु का अभियोग किस पर चलाया जाय। भूख लगे या न लगे दोस्तों के अनुरोध से या अपने नियत समय का ख्याल करके जो आदमी भोजन की थाली खाली कर देता है, वह अपनी हत्या आप ही कर लेता है, यह कहने में कौन सी अत्युक्ति है ?

कहने का मतलब यह है कि आज समाज में बिरला ही कोई ऐसा मिलेगा जो अपनी समूची आयु को भोगता है। हर कोई अपने या पराये के हाथों से अकाल में ही काल के कवलित हो जाता है।

घड़ी रखने के शौक से कोई देहाती नयी घड़ी खरीद लेता है, लेकिन उसे चाभी की लगाने की कला से अनभिज्ञ होने के कारण चाभी खूब कस कर देता है जिससे उसकी मेन स्प्रिंग टूट जाती है और वह निकम्मी हो जाती है। दिन दिन होने वाले असंख्य-शिशु मर्ज के साथ यह उदाहरण देने में क्या कोई अत्युक्ति है ?

(शेष पृष्ठ 120 पर)

मानसिक अवस्था का स्वास्थ्य पर प्रभाव

श्री जगेश्वर दयाल वैश्य, एम० ए०, बी० एस-सी०,

[मानसिक अवस्थाओं का हमारे शारीरिक स्वास्थ्य का कितना जबर्दस्त प्रभाव पड़ता है, यह 'जीवन-सखा' के जिज्ञासु पाठकों को पहले भी पढ़ने को मिल चुका है, लेकिन इसे लेख को पढ़कर आपको ऐसा लगेगा, जैसे कोई बिलकुल नयी चीज़ आपके सामने आई हो। और यही इस लेख की सबसे बड़ी विशेषता है। —सं०]

वर्तमान औषधशास्त्र भी इस बात को स्वीकार करने लगा है कि शारीरिक स्वास्थ्य कुछ हद तक मानसिक स्वास्थ्य पर भी अवलम्बित है। जब तक मानसिक स्वास्थ्य की ओर समुचित ध्यान नहीं दिया जायगा पूर्ण शारीरिक स्वास्थ्य प्राप्त नहीं हो सकता। स्वास्थ्य के मानसिक और शारीरिक, दोनों पहलुओं पर ध्यान देना अति आवश्यक है। प्रत्येक शारीरिक अवस्था का प्रतिबिम्ब मानसिक दशा पर पड़ता है और प्रत्येक मानसिक भँवर अपनी छाप शारीरिक स्वास्थ्य पर अवश्य ही अंकित कर देती है।

भय

भय एक भंयकर विष है, इस का आघात भयंकर और सर्वव्यापी होता है। इसके कारण नेत्रों की ज्योति मन्द पड़ जाती है, मुख की कान्ति गायब हो जाती है, स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाता है, भूख कम हो जाती है; दस्त आने लगते हैं, कार्य-शक्ति एक दम क्षीण हो जाती है, कमर झुक जाती है, बाल गिरने लगते हैं आदि।

भय के अनेक रूप पाए जाते हैं—अपने काम का भय, असफल होने का भय, जीवन से भय, कल क्या होगा इसका भय। भय का विष धीरे-धीरे जीवन को नष्ट कर देता है।

भय और स्वास्थ्य में परस्पर ३ और ६ का नाता है। भय की दवा है श्रद्धा और आत्म-विश्वास।

भय जीवन को बन्दी बनाता है, श्रद्धा उसको मुक्त करती है; भय जीवन को पंगु बनाता है, श्रद्धा उसे शक्तिशाली बनाती है; भय जीवन को निराशमय बनाता है, श्रद्धा जीवन में आशा का संचार करती है; भय जीवन को रोगी बनाता है, श्रद्धा जीवन को रोगों से मुक्त करती है; भय जीवन में संकीर्णता, कपटता, और ओछापन पैदा करता है, श्रद्धा जीवन को सच्चा और उदार बनाती है; भय जीवन को उत्साहहीन और दुःखी बनाता है, श्रद्धा जीवन को उत्साह से भर कर सुखी बनाती है।

क्रोध

रोग का दूसरा प्रमुख कारण क्रोध है। यह नाना रूप में दृष्टिगोचर होता है। कुछ रूप यह हैं—द्वेष, बदले की भावना, घृणा, ईर्षा, नाराज़गी आदि। यह एक तीव्र विष है जो शीघ्र ही सारे शरीर में फैल जाता है।

क्रोधावस्था में मनुष्य शरीर की ग्रन्थियों से निकलने वाले रसों के रासायनिक तत्त्वों में एक दम परिवर्तन हो जाता है। सब ग्रन्थियाँ एड्रालीन नामक एक रासायनिक द्रव एकदम रुधिर के अन्दर छोड़ने लगती हैं। यह एक शक्तिशाली उत्तेजक द्रव है। प्राचीन काल में जिस समय मनुष्य को अपने शत्रु का सामना करना पड़ता था, उस समय वह आवश्यक था कि उसकी तमाम शक्ति शारीरिक शक्ति के रूप में एकत्रित हो जाय, उसके अन्दर जोश भर जाय और बदला लेने की भावना पैदा हो जाय ताकि वह अन्धा हो कर अपने शत्रु से द्वन्द कर सके। ज्ञात होता है कि इसी उद्देश्य से सफलता प्राप्त करने के लिये क्रोधित अवस्था में एड्रालीन रुधिर में ग्रन्थियों द्वारा छोड़ा जाता है।

आज कल स्थिति कुछ बदल गई है। जब क्रोध आता है तो शारीरिक मुठभेड़ का अवसर बहुत कम आता है जिसके कारण एड्रालीन का विषाक्त प्रभाव बना रहता है और यह विष चित्त को शान्त नहीं होने देता।

हमारे अच्छे विचार

दूसरों के प्रति अपने हृदय में अच्छे और उदार विचारों का रखना धार्मिक ढंग नहीं है बल्कि स्वास्थ्य के दृष्टिकोण से यह एक अमूल्य तथा अमर नियम का पालन करना है।

यह आप सब ही देखते हैं कि प्रसन्नचित्त रहने वाले, उदार वृत्ति वाले, सहन शक्ति रखने वाले लोगों का शारीरिक स्वास्थ्य भी अच्छा रहता है; इसके विपरीत कुढ़ने वाले, स्वार्थी, एक दम क्रोधाग्नि से भभक उठने वाले प्रायः स्वास्थ्य की दृष्टि से मरियल ही रहते हैं।

स्वास्थ्य और शत्रु

कुछ मनुष्यों का स्वास्थ्य उस समय तक कदापि अच्छा नहीं हो सकता जब तक कि वे अपने शत्रुओं को क्षमा कर के हृदय को साफ न कर लें; या अपने चिड़चिड़े स्वभाव पर विजय प्राप्त न कर लें; या उनके हृदय में जो बदला लेने की अतृप्त भावना भरी हुई है उसे प्रेम में न बदल दें।

स्वास्थ्य और स्वार्थ

दिन प्रति दिन का स्वार्थभाव भी स्वास्थ्य को गिराने वाला ही होता है। कुछ मनुष्य अपने बारे में इतना अधिक सोचते हैं कि उनके अन्दर ज़रा ज़रा सी बातों से घबड़ाने की आदत पैदा हो जाती है जो वहम का रूप धारण कर लेती है।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, यदि वह अपने को समाज, कुटुम्ब, अपने बच्चे, अपने मित्र, सेवा आदि में बिलकुल भुला दे तो जीवन की कठिनाइयों का सामना करने के लिये उस में समुचित शक्ति अपने आप ही पैदा होती रहेगी और उसका स्वास्थ्य भी ठीक ही रहेगा।

आदमी की उम्र

(पृष्ठ ११६ का शेषांश)

घड़ी को बिलकुल ही चाभी न लगा कर रख देने से उसके कल-पुर्जों में जंग चढ़ जाती है और वह खराब हो जाती है। इसी तरह मनुष्य के अंग प्रत्यंग को सुस्त बना दिया जाता है तो शीघ्र ही शिथिल हो जाते हैं जिससे आदमी की उम्र जल्दी ही समाप्त हो जाती है। इस प्रकार की सभी बातें ऐसी हैं जो ईश्वर दत्त मानव-आयु को इधर उधर कर देती हैं। (क्रमशः)

'जीवन-सखा' के ग्राहकों से

'जीवन सखा' के अधिकांश ग्राहक कार्यालय से पत्र-व्यवहार करते समय अपना पूरा पता तथा ग्राहक संख्या लिखना भूल जाते, या उसकी आवश्यकता ही नहीं समझते हैं। इससे हमें पत्रोत्तर देने में बड़ी असुविधा होती है और हम इच्छा रखते हुए भी ठीक समय से उनके पत्र का जवाब देने में असमर्थ होते हैं। अतः ग्राहकों से नम्र निवेदन है कि वे समय की बचत और सहूलियत के लिए पत्र भेजते समय साफ-साफ अक्षरों में अपना नाम, पूरा पता और ग्राहक संख्या लिखना न भूलें।

मैनेजर—

शरीर की आभ्यंतरिक स्वच्छता के लिए कुछ विशेष योगिक क्रियायें

डा० बालेश्वर प्रसाद सिंह

आसनों से पूर्ण लाभ उठाने के लिये शरीर की अंदरूनी सफाई जरूरी है। क्या आधुनिक वैज्ञानिक स्वास्थ्य, व्यायाम और चिकित्सा विशारदों के अनुसार और क्या प्राचीन (योगासनों के आविष्कर्ता) योगियों के अनुसार पूर्ण स्वास्थ्य और कार्य-सिद्धि × के लिये शरीर की भीतरी स्वच्छता सबसे अधिक आवश्यक है।

इस सम्बन्ध में प्राचीन ऋषियों का कथन तो यह है कि नाड़ियों में मल अथवा विकार एकत्र हो जाने के कारण श्वास बीच (इड़ा और पिंगला बीच की सुषुम्ना) से नहीं चल पाता, और जबतक बीच से प्राण वायु का आवागमन नहीं स्थापित होत तब तक न तो मन में शांति आती है और न कोई कार्य सिद्ध होता है। जब शरीर को भीतर स्वच्छ कर साधक सुषुम्ना में प्राण का संचार कर लेता है तब शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य तो बायें हाथ का खेल हो जाता है, उसे दिव्य आलोक प्राप्त होकर अतिमानवी कार्य सिद्ध करने की शक्तियां प्राप्त होने लगती हैं।

पर इस स्वच्छता को प्राप्त करने की कुछ विशेष क्रियायें योगियों ने बताई हैं और वह ऐसी हैं जिसे सभी + कर सकते हैं। योगिक क्रियाओं की विशेषता यही है कि वह सबके लिये सुलभ हैं। इसके लिये ऐसी कोई कैद नहीं है कि आदमी पूर्ण स्वस्थ, तगड़ा या युवा हो वही इनकी कसरतों या क्रियाओं को कर सकता है। वह कहते हैं कि जवान हो या बूढ़ा या बहुत बूढ़ा हो और चाहे कमजोर और दुबला ही क्यों न हो, अगर निरालस होकर नियम से अभ्यास करता चले तो उसे सिद्धियाँ अवश्य प्राप्त होंगी। इनमें टके का खर्च नहीं, न कोई औज़ार या खास साधन की जरूरत हैं न खाने पीने में कोई ख़ास खर्चीली चीज की जरूरत है। बस शर्त यह है कि आप नियम से ठीक समय पर नित्य अभ्यास करते चलें और क्रम-क्रम से बढ़ावें। केवल किताब पढ़ने से नहीं होगा* योगसिद्धि करने के लिये इन क्रियाओं को पहले सिद्ध करना होगा।

शरीर की सफाई के लिये योगियों ने छः क्रियायें (षट् क्रिया) बताई हैं जो बहुत सरल हैं और सब उनसे लाभ उठा सकते हैं। इनके नाम हैं—

नौलि नेति, धौति, वस्ति, कपालभाति और त्राटक। इनके सिद्धि करने के बाद 'व्रजौलि' और 'शंखप्रक्षालन' नाम की दो क्रियाएं और हैं पर इनसे हमको अभी प्रयोजन नहीं है और उक्त छः क्रियाओं में भी प्रकार भेद है। जैसे तीन प्रकार की धौति और दो प्रकार की नौलि। पहले हम नौलि को लेते हैं।

× मलाकुलासु नाडीषु मारुतो नैव मध्यमः। कथं स्यादुन्मनी भावः कार्य सिद्धिः कथं भवेत्॥

+ युवावृद्धोऽति वृद्धोवा व्याधितो दुर्बलोऽपिवा। अभ्यासात्सिद्धिमाप्नोति सर्व योगेष्ववंदितः॥

* क्रियायुक्तस्तु सिद्धिः स्यादक्रियस्थः कथं भवेत्। न शास्त्रपाठमात्रेण योगसिद्धिः प्रजायते॥

उड्डीयान और नौलि

उड्डीयान

विश्लेषण करने पर ज्ञात होगा कि उक्त छः क्रियाओं में कुछ का संबंध पेट की सफाई से और कुछ का ब्रह्मांड की सफाई यानी गर्दन से ऊपर जितनी ज्ञानेंद्रियाँ हैं उनकी सफाई से हैं।

नौलि पेट की सफाई के लिये संसार में बेजोड़ क्रिया है और इसकी पहली सीढ़ी है 'उड्डीयान', जिसकी विधि हम पहले ही उड्डीयान बंध के सिलसिले में बता चुके हैं।

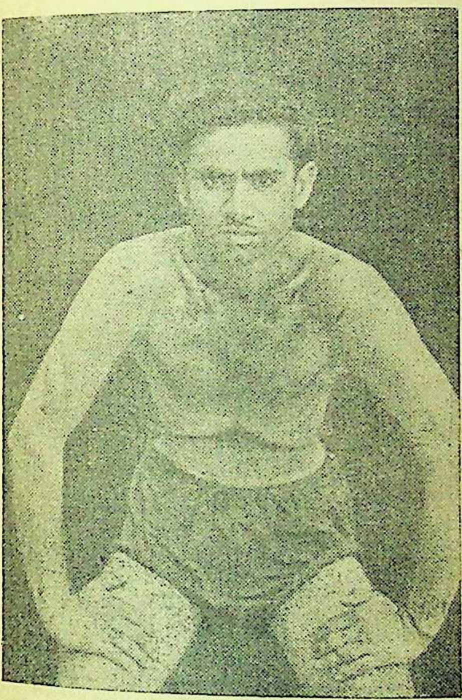

उड्डीयान

उड्डीयान दो प्रकार से किया जाता है, एक बैठ कर पद्मासन लगा कर और दूसरा खड़े हो कर। जब उड्डीयान के बाद नौलि करना हो तो खड़े होकर ही करना ठीक होगा।

पहले दोनों पाँवों को एक या डेढ़ फुट के फासले पर रख दोनों हाथ रान पर घुटने के पास (चित्र देखिए) स्थापित करते हुए सामने की ओर जरा झुककर खड़े हो जाइये और फिर पूर्वोक्त विधि से उड्डीयान बंध लगाइये। पहले फेफड़ों से सारा प्राण वायु बाहर निकाल दीजिये। फिर नकली या झूठी श्वास क्रिया करते हुये कुछ देर उड्डीयान कीजिये। पेट की जितनी नसें और पेशियाँ हैं उनका, पूर्ण शिथिलीकरण पहले नितांत आवश्यक है और उससे भी पहले झुकते समय कंधे और गर्दन की पेशियों को बताये अनुसार दृढ़तापूर्वक जमा लेना जरूरी है। इतना कर चुकने के बाद नौलि की क्रिया शुरू होती।

नौलि

उड्डीयान बंध लगाकर खड़े होना ही नौल क्रिया के लिये मानो तैयार हो जाना है। उड्डीयान करना आसान है पर नौलि काफी कठिन है। पहले एक साल या कम से कम छः महीने तक केवल उड्डीयान सिद्ध करना चाहिए और जब उड्डीयान बिलकुल सिद्ध हो जाय तो नौलि बहुत आसानी से होने लगती है। हम नौलि को उड्डीयान का ही एक विकास कहेंगे।

नौलि की ख़ास क्रिया पेट के दोनों बड़े नलों को बाएँ से दाहिनी और दाहिनी से बाईं ओर घुमाने या 'मथने' की है। जब उड्डीयान बंध ऐसा लगने लगे कि महाप्राचीरा काफ़ी ऊपर उठकर भीतर घुस जाय, और निचला पेट पीठ से एकाकार दिखने लगे और पेट के दोनों नल बीचों-बीच साफ़ बाहर निकल कर दिखाई पड़ने लगें तो समझिये कि आप नौलि के योग्य अब हो रहे हैं और अब आप इसकी क्रिया का अभ्यास शुरू कर सकते हैं।

नौलि की विधि उड्डीयान की ही विधि है; नई बात केवल इतनी ही है कि खड़े हो, उड्डीयान बंध लगाए हुये पेट के उन दोनों नलों को घुमाना है। पर सुविधा के लिये हम पूरी विधि संक्षेप में लिखेंगे—

यदि वस्ति क्रिया नहीं करनी हो तो नौलि खड़े होकर करना ही ठीक है और इसके लिये कम से कम छः महीने पहिले से खड़े होकर उड्डीयान का अभ्यास करते आना ज़रूरी है जिससे पेट इतना पतला हुआ रहे कि नौल का निकलना, दिखाई पड़ना और अन्त में फिर उनका चलना सम्भव हो। जिनका पेट मोटा है या जिनकी अवस्था अधिक है उन्हें उड्डीयान के अभ्यास में ही एक दो साल तक लगाना पड़ सकता है।

सीधे खड़े हो जाइये। पैरो को डेढ़ फुट के फाँसले पर रख सामने जोर झुक दोनों हाथ रानों पर जमा दीजिये और उन पर (हाथों पर) गर्दन और कंधों का पूरा भार आने दीजिये। फिर सारी साँस बाहर फेंकते हुये पेट खलाइये और महाप्राचीरा को ऊपर (छाती की ओर) चढ़ जाने दीजिये।

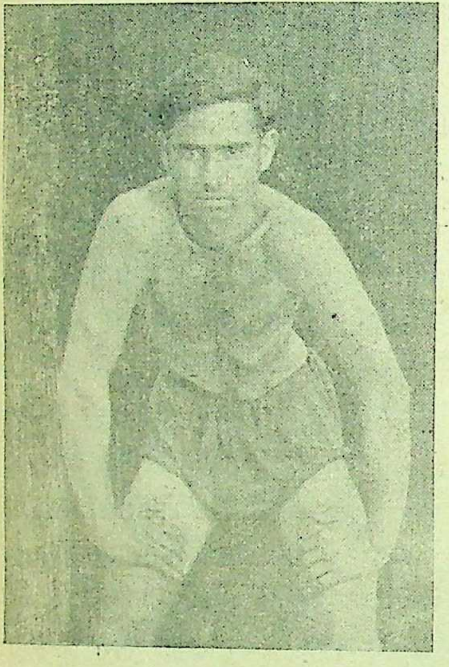

वाम नौलि

फिर धड़ को थोड़ा सीधा करते हुये और कुछ इच्छाशक्ति सहारे पेट के दोनों नलों को बीचोंबीच बाहर निकालिये।

यही नलों को बाहर निकालना ही नौलि की मुख्य क्रिया है और ठीक जगह पर भीतरी धक्का देकर जिसने नलों को उभाड़ देना सीख लिया उसने मानों पूरी क्रिया सीख ली फिर आगे के सब काम आसान हो जाते हैं। बस शर्त यह कि ठीक जगह पर धक्का या दबाव पड़ना चाहिये। इसमें आधी सफलता उस ठीक जगह के ज्ञान (जहाँ से यह दोनों नल शुरू होते हैं यानी कामद्रि के ऊपर और नाभि के नीचे से और आधी प्रबल इच्छाशक्ति के ऊपर निर्भर करती है। ठीक उसी जगह पर भीतर धक्का या ठेलाव पड़ते ही दोनों नल उभड़ आवेंगे और शेष सब पेशियाँ शिथिल हो जायँगी।

प्रारंभ में एक साधारण भूल जो प्रायः सभी नौसिखिये साधक करते हैं वह यह है कि ठीक जगह दबाव डाल नहीं पाते और नलों की जगह पूरा पेट उभाड़ देते हैं, नल निकलता ही नहीं और असाध्य समझ कर छोड़ देते हैं। छोड़ना न चाहिये और न कभी निरुत्साह होना चाहिये। जैसे ही मालूम हो कि ठीक जगह धक्का नहीं पड़ा और नल न निकलकर पूरा पेट निकल रहा है, वहीं पर छोड़ देना और सीधे होकर साँस लेकर फिर से पूरी साँस निकाल कर दुबारा उड्डीयान बंध लगाकर कोशिश करना चाहिये। बड़े आइने के सामने खड़े होकर अभ्यास करने से जल्दी सफलता होगी।

एक बार जहाँ नल पकड़ में आया फिर तो वह कामाद्रि से लेकर पसलियों तक (जहाँ ये नल खतम होते हैं) बड़ी आसानी से सिकुड़ कर उभड़ आवेंगे। ठीक जगह पर दबाव पड़ने की जरूरत है।

यह धक्का या दबाव कुछ कुछ ऐसा होता है जैसा कि कब्ज वालों को पाखाने के वक्त लगाना पड़ता है। फर्क इतना ही है कि पखाना निकालने वाला सिर्फ नीचे की ओर दिया जाता है और यह नीचे तथा सामने दोनों ओर।

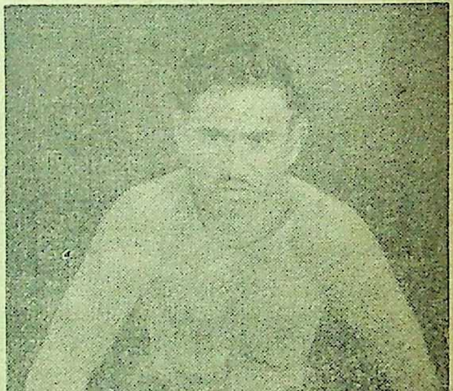

मध्यम नौलि

पहले नल बीचो बीच निकलेंगे और इसे मध्यम (बीच) (चित्र नं० २ देखिये) नौलि कहते हैं। जब यह निकलने लगे तो

मध्यम नौलि

पहले इतने ही पर संतोष कर एकाध महींने केवल इसी को पूर्ण रूप से सिद्ध करने में लगाना चाहिये। क्योंकि सबसे महत्व पूर्ण यह मध्यम नौलि ही है। यह है नौलि की प्रथम क्रिया। मध्यम नौलि सिद्ध होने पर दक्षिण और बाम नौलि निकालने की चेष्टा करनी चाहिये, और यह तीनों (मध्यम; दक्षिण तथा बाम) खूब सध जाने पर तब इसकी अंतिम क्रिया, यानी चक्कर देते हुये नौलि की तेजी से घुमाना, आरम्भ करना चाहिये। वास्तव में 'नौलि' उन दोनों नलों को बारी-बारी से दायें बायें घुमाने को ही कहते है।

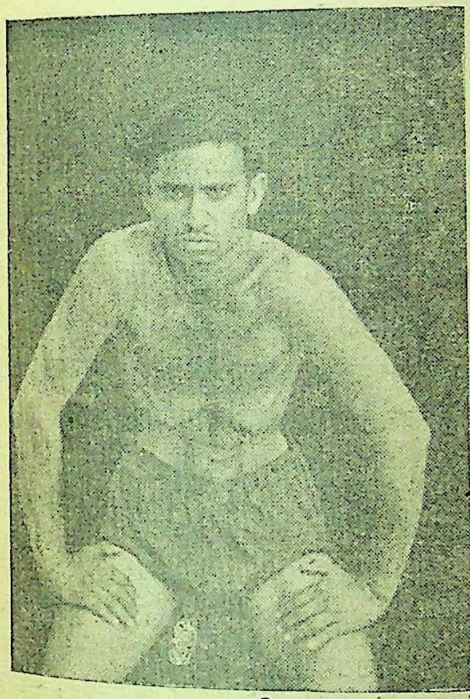

दक्षिण नौलि

एक बार के उड्डीयान में कई बार मध्यम नौलि निकलने और बैठाने का अभ्यास जब हो जाय तब दक्षिण नौलि उभाड़ने की कोशिश करनी चाहिये।

दक्षिण नौलि

जब दक्षिण यानी दाहिनी नौलि उभाड़ना हो तो पहले दाहनी ओर जरा झुककर और बाईं ओर का धड़ जरा सीधा रखते हुये दाहनी ओर दबाव डालकर दाहना नल (प्रबल इच्छाशक्ति का उपयोग करते हुये) उभाड़िये और बायें नल को सुप्तावस्था (ढीला) में रहने दीजिये। सिर्फ दाहिना नल निकलेगा और बायाँ बिलकुल न दिखाई पड़ेगा।

जब दक्षिण नौलि सिद्ध हो जाय तो ठीक उसी विधि से बाम नौलि निकालिये। कायदा यह है कि जिधर का नल उभाड़ना हो उस ओर जरा झुककर तिरछे खड़े होइये और उसके उल्टी ओर का धड़ जरा सीधा तान दीजिये बस उस तरफ का (यानी जिधर का धड़ सीधा है उसकी उल्टी ओर का) नल उभड़ आवेगा।

जब इतना होने लगे तो बारी-बारी से दाहना और बायाँ नल उभाड़ने का अभ्यास आरंभ कर दीजिये। यानी दाहना नल जब उभड़े तो वह पेट के बिलकुल दाहने किनारे किनारे पर दिखाई पड़े (आइने में देखते चलिये) और बायाँ बिलकुल ढीला और गुप्त रहे और जब बायाँ निकले तो वह एकदम पेट के बाएँ छोर पर (इच्छाशक्ति द्वारा ठेलकर और भीतरी दबाव के सहारे) दिखे।

चक्र नौलि

जब मध्यम, दक्षिण और बाम, यह तीनों (नौलियां) सिद्ध हो जायें तो एकाध महीने यहीं तक रहिये। फिर कुछ दिन में स्वतः आप को इन नलों को चक्राकर घुमाने की प्रवृति होगी, यहाँ तक कि आप किसी प्रकार उस प्रवृत्ति को रोक न सकेंगे और एक दिन स्वतः इसकी चतुर्थ या पूर्णावस्था की क्रिया आप कर लेंगे।

इसकी विधि यों है। दोनों नलों को बारी-बारी एक बार दाहने और एक बार बाएँ इतनी जल्दी से ले जाया

जाय कि पता न चले और ऐसा ज्ञात हो कि मथानी चल रही है पेट के बीच से। कायदा यह है कि बीच से बायें को बिलकुल बांई ओर ले जाइये और दाहने को बिलकुल ढीला रखिये। साथ ही जैसे ही बायां नल डूबे वैसे दाहिने नल को उभाड़ और लुढ़का कर एक दप दाहिनी ओर ले जाकर फिर बीच में लाइये। बीच में आते ही दाहिना नल डूबेगा और तुरन्त बायां उभड़ेगा।

इसी तरह सांस बाहर फेंके हुए एक उड्डीन में तेज़ी से कई बार नलों को उभाड़ने को ही चक्र-नौलि कहते हैं। नल अपने आप इतनी तेजी से डूबने उतराने लगते हैं और दाहिने से बाएं या बाएं से दाहिने आने जाने लगते हैं कि जान पड़ता है पेट में लहरें उठ रही हैं और बैठ रही हैं। दोनों नलों को परस्पर सहयोग करना सिखाना पड़ता है शुरू में।

एक बार में सात चक्कर से ज्यादा न देना चाहिए। पर अभ्यास बढ़ जाय और साधक हृष्ट पुष्ट हो तो इक्कीस चक्कर तक बढ़ाये जा सकते हैं।

नौलि बिलकुल खाली पेट में करनी चाहिये।

(ये उड्डियान और नौलि) वास्तव में पेट की सफाई के व्यायाम हैं।

व्यायात्मक लाभ

और पाश्चात्य देशों में इनकी उपयोगिता पर मुग्ध हो व्यायात्मक लाम इतना ज़्यादा अपनाया जा रहा है कि आश्चर्य होता है। सबसे पहले जर्मनी में इसका प्रचार बढ़ा था। सबसे पहले मैक्सिक नाम के एक जर्मन सर्कस व्यायामवीर ने यूरोप में नौलि का खेल दिखा कर (सन् १९१०) दर्शकों को चकित कर दिया था। तमाशा यह है कि आज कल भारतीयी व्यायामी प्रायः पाश्चात्य शिक्षकों से नौलि सीखते देखे गये हैं। यह काल की विडम्बना है और क्या!

यह निश्चय है कि पेट की सफाई, मालिश और व्यायाम के लिए उड्डीयान और नौलि से बढ़ कर कोई चीज़ नहीं।

चिकित्सात्मक प्रयोग

(१) अजीर्ण और पुरानी कोष्टबद्धता इससे सदा के लिये दूर हो जाती है। जिनको घोर कब्ज़ियत हो वह पाखाना जाने के पहले गुनगुने (पाव आध पाव) पानी में आधा नींबू निचोड़ कर या दो रत्ती नमक डाल कर पी लें और फिर उड्डीयान और नौलि करें तो विशेष फ़ायदा हो सकता है।

(२) यकृत, प्लीहा और गुर्दें की सारी शिकायतें इनसे दूर होती हैं।

(३) आमाशय, मलाशय तथा कोष्ठ की शुद्धि के लिए ये चोटी की क्रियायें हैं।

(४) स्त्री और पुरुष दोनों के लिए ये समान रूप से उपादेय हैं।

(५) ऋतु की अनियमितता, समय पर न होना, कष्ट से होना, थोड़ा या बहुत ज्यादे या कई दिन तक लगातार होते रहना आदि दोष तथा प्रदर आदि स्त्रियों के गर्भाशय सम्बन्धी वे सभी रोग जो 'गुप्तरोग' के नाम से प्रसिद्ध हैं, इनसे दूर होते हैं।

(६) पुरुषों के भी गुप्त रोगों (वीर्य रोगों, नपुंसकता आदि) में इन से लाभ देखा गया है।

निषेध

चालीस से ऊपर की उम्र वालों को नौलि के 'चक्कर' में न पड़ना ही अच्छा, यदि वे बहुत पहले से नियम पूर्वक इसका अभ्यास नहीं करते आ रहे हैं। और चालीस के ऊपर वाले यदि उड्डीयान और उसका विकास (यानी नौलि) शुरू करना ही चाहें तो पहले विशेषज्ञ से अपनी परीक्षा करवा लें और उसकी देखरेख में अभ्यास करें यदि वह राय दे।

(२) जिनके पेट में 'टी बी' के किस्म का कोई रोग हो या जिनको 'एपेंडिसाइसिट' हो, या नौलि निकालने में जिनको दर्द होता सो उन्हें तब तक उड्डीयान न शुरू करना चाहिये जब तक ये शिकायतें बिलकुल दूर न हो जायँ।

(३) बढ़े हुए रक्तचाप वालों को कभी ये व्यायाम न शुरू करना चाहिए।

(४) जिनको उड्डीयान या नौलि करने में कोई विशेष कष्ट या दर्द मालूम हो तो उन्हें भी तब तक के लिये इससे बचना ही अच्छा है।

धौति और वस्ति

शरीर की अंदरूनी सफ़ाई के लिये जो षट् क्रियायें कही गई है उनमें से नौलि धौति और वस्ति ये पेट की सफ़ाई के लिये हैं तथा शेष दिमाग की स्वच्छता के लिये हैं। नौलि का वर्णन ऊपर हो चुका अब यहां धौति और वस्ति की क्रियायें बताई जाती हैं। ये दोनों योगियों के लिये जुलाब या एनीमा का प्रतिनिधित्व करती हैं। हम पहले धौति क्रिया बताते हैं—

धौति

कोई २१॥ फुट लम्बा और चार इंच चौड़ा बारीक और मुलायम धुला हुआ कपड़ा लीजिए। इसको स्वच्छ गरम जल में उबाल कर कीटाणु-रहित कर लीजिये। फिर ठंडे होने पर धीरे-धीरे चबाते हुये पेट में रख लीजिये और फिर धीरे-धीरे निकाल दीजिये।

जलधौति

जिनको इसमें कठिनता मालूम होती है वह जल धौति करते हैं। इसमें कपड़े की जगह गुनगुना पानी (सेर, सवा सेर) पी लिया जाता है और कुछ देर पेट में रख फिर धीरे धीरे उलटी की तौर पर निकाल दिया जाता है।

ये दोनों क्रियायें ऐसी हैं जिनसे पेट स्वच्छ हो जाता है और पाख़ाना साफ़ आया करता है। हफ्ते या दो हफ्ते में एक बार इनको कर लेने से पेट की कोई शिकायत नहीं हो सकती है न और कब्ज़ रह सकता है।

वस्ति

वस्ति क्रिया प्रत्यक्ष किसी विशेषज्ञ द्वारा ही सीखी जा सकती है। संक्षेप में इसकी क्रिया यही है कि कुक्कुट (या उकड़ू) आसन में बैठ कर पहले उड्डीयान बंध लगाकर फिर मध्यम नौलि किये हुए गदा मार्ग से छः इंच लम्बी खोखली एक नरई की टोटी द्वारा नीचे रक्खा हुआ जल आमाशय में खींच लेना होता है। और फिर शौच जाना और फिर पाँव फैला कर मयूरासन द्वारा बचे हुये जल को पेट से निकाल देना। यह योगियों का एनिमा ही है।

नेति

नेति

मस्तिष्क की सफाई के लिये नेति क्रिया से बढ़कर कोई चीज़ नही। पर इसको भी शुरू में किसी गुरू से ही सीखना ठीक होता है।

इस में १॥ बालिश्त कच्चे सूत की बँटी हुई एक डोरी (पतली) होती है जिसे पहले मोम लगा कर कड़ी कर लेते हैं फिर जल में भिगो मुलायम कर नाक से डाल मुँह में से निकाल लेते हैं। इस के द्वारा ब्रह्मांड में जमा हुआ मल, कफ़ आदि निकल जाता है। आंख, कान, नाक की सारी शिकायतें दूर होकर नज़ला, जुकाम आदि इससे कभी नहीं होते।

जलनेति

जो लोग सूतनेति नहीं कर सकते वह जलनेति करें और इसके लिये कोई गुरू की भी ज़रूरत नहीं। सवेरे मुँह हाथ धोने के बाद एक गिलास ताज़ा पानी लेकर नाक से सुड़किये और उसे मुँह से निकालते जाइये। शुरू में जुकाम सा हो जायगा पर बाद में कभी जुकाम, सर्दी कफ़ आदि ही हो नहीं सकते। दृष्टिशक्ति तथा श्रवणशक्ति नेति द्वारा बढ़ाई जा सकती है।*

---

*लेखक की स्वास्थ्य और योगासन' शीर्षक पुस्तक का एक अंश।

स्वस्थ जीवन

श्री सुरेन्द्रनाथ निवारी

शक्तिशाली राष्ट्र का निर्माण शारीरिक शक्ति के ही आधार पर सम्भव है। शक्तिहीन मनुष्य स्वयं अपने बोझ को नहीं सम्हाल सकता, फिर वह राष्ट्र का बोझ क्या सम्हाल सकेगा। अतः हमारी राजनीतिक महत्वाकांक्षाओं के लिए सार्वजनिक स्वास्थ्य के एक ऊंचे स्तर पर प्रतिष्ठित करने की समस्या अन्य समस्याओं के ही समान महत्वपूर्ण एवं चितनीय है जिसकी अपेक्षा नहीं की जा सकती।

यहाँ पर शारीरिक स्वास्थ्य के विकास के लिये कुछ सुझाव रक्खें हैं। आशा है इनका समुचित स्वागत होगा। —सं]

स्वास्थ्य क्या वस्तु है? इस पर लोग कम विचार करते है। जब कभी कोई बीमार पड़ता है तभी इसका नाम लिया जाता है, अन्यथा लोग इस पर प्रायः ध्यान ही नहीं देते। स्वास्थ्य की परिभाषा साधारण नहीं है। किसी मनुष्य के जाहिरा कोई रोग या शारीरिक कष्ट न हो अथवा वह सर्वांग सुडौल हो इसी से वह स्वस्थ नहीं कहा जा सकता। किन्तु स्वास्थ्य हमारी शारीरिक और मानसिक समुन्नति का एक ऐसा सम्मिश्रण है जिससे हम, अपनी स्थिति के अनुसार, अपने शरीर का सुन्दर उपयोग करते हुए, दीर्घकाल तक इससे काम ले सकते है। स्वास्थ्य हमारे शरीर के लिए एक सब से उपयोगी वस्तु है। इसके बिना अपार धन-धान्य, सुख-सम्पत्ति, विद्या-वैभव आदि सब कुछ होते हुए भी कुछ नहीं के बराबर है। अस्तु, यदि यह कहा जाय कि स्वास्थ्य ही जीवन है, तो अत्युक्ति न होगी। 'तन्दुरुस्ती हज़ार नियामत' और 'दैवी देन' है, यह निर्विवाद है।

सुन्दर स्वास्थ्य कौन नहीं चाहता? परन्तु ऐसा स्वास्थ्य क्या सबको मिलता है? पूर्ण स्वस्थ-जीवन तो मेरी समझ में बहुत कम लोगों का होता है। कोई न कोई स्वास्थ्य-व्यतिक्रम सभी के पीछे लगा रहता है। कोई ज्वर से पीड़ित है तो कोई जुकाम से, किसी के जन्म से ही कोई व्याधि लगी है तो किसी के आगे चल कर कोई व्याधि पैदा हो जाती है जो आजीवन बनी रहती है।

आयुर्बल का हास

हमारे देश में आयुर्बल निरन्तर घटता ही चला जा रहा है। अपने प्राचीन इतिहास को देखने से पता चलता है कि यहाँ लोग बड़ी आयु के होते थे। साधारण सीमा तो १०० वर्ष की थी ही परन्तु इस समय घटते-घटते औसत में २३ वर्ष की हो गई है। इतनी कम औसत आयु आज संसार के किसी भी भाग में नहीं देखने को मिलेगी। तो फिर हमारे ही देश में आयुर्बल का यह हास क्यों? क्या आपने इस प्रश्न पर कभी विचार किया है? यदि हम अपने राष्ट्रीय अभ्युत्थान की आकांक्षा रखते हैं तो देश के अन्य सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक पहलुओं के साथ-साथ सार्वजनिक स्वास्थ्य की इस चिन्तनीय समस्या पर भी ध्यान देना ही होगा, इस प्रश्न पर विचार करना ही होगा कि सुन्दर-स्वास्थ्य कैसे प्राप्त हो। और उसे हम कैसे बनाये रख सकते हैं?

अस्वस्थता दूर करने, मिटाने या कम करने का उपाय सोचने के पहिले यह जान लेने की आवश्यकता है कि आखिर इसके कारण क्या हैं। मेरी समझ में स्वास्थ्य की खराबी के तीन कारण हैं:—

१—सन्तान के स्वास्थ्य के संबन्ध में अभिभावकों की उदासीनता।

२—सार्वजनिक स्वास्थ्य के प्रति शासक वर्ग में पर्याप्त कर्त्तव्यपरायणता का अभाव।

३—अनियमित तथा दोषपूर्ण आहार-विहार और रहन सहन।

स्वास्थ्य की नींव तो माता-पिता से ही पड़ती है। यदि वे स्वस्थ हुये तो उनकी सन्तानें प्रायः स्वस्थ ही होंगी। और यदि उनमें कोई रोग हुआ अथवा वे अस्वस्थ हुए तो उनकी सन्तानें भी वैसी ही होंगी। जन्म लेने के अनन्तर बालक के स्वास्थ्य की सम्बृद्धि उसके माता-पिता पर ही

अवलम्बित होती है । अपने आराम के आगे बहुत कम माता-पिता अपनी सन्तान के स्वास्थ्य पर समुचित ध्यान देते हैं । सन्तान जब तक अबोध रहती है तब तक तो थोड़ा बहुत प्रयत्न इस विषय में होता भी है, परन्तु सन्तान ज्यों-ज्यों सुबोध होती जाती है, प्रयत्न में शिथिलता होती जाती है । नियमित रीति से समय पर स्वास्थ्य-वर्धक आहार मिलने में कोताही होने के कारण बच्चों के शरीर में बचपन से ही रोग घर कर लेते हैं । आगे बुरी सोहबत का वातावरण, बाल विवाह और ब्रह्मचर्य की कमी रोगों की जड़ को शरीर में और भी मजबूत कर देती हैं । अतः सन्तान पैदा कर देने और एन-केन प्रकारेण उसे बड़ा कर देने से ही सन्तान के प्रति हमारे कर्त्तव्य की पूर्ति नहीं हो जाती, प्रत्युत जब तक संतान पूर्ण सबोध न हो जाय, अपने भले बुरे को भली भांति समझने न लगे और समर्थ हो कर अपने पैरों खड़ी न हो जाय, तब तक निरन्तर उसके प्रति हमारा कर्त्तव्य यह होना चाहिए कि हम अपने आराम को भूल कर उसकी शारीरिक और मानसिक हर प्रकार की उन्नति के लिए प्रयत्न करते रहें ।

माता-पिता के बाद हमारे स्वास्थ्य की जिम्मेदारी आती है शासन-व्यवस्था के कर्णधारों पर। माता पिता के समान राज्य भी हमारे यहां पूज्यनीय माना गया है । इसका कारण यह है कि हमारी हर प्रकार की उन्नति का भार राजा पर रहता है । इसमें भी कमी हो गई । राज्य की ओर से हमको स्वास्थ्यमय जीवन व्यतीत करने के लिये समुचित प्रबन्ध, प्रोत्साहन या सहारा नहीं । शिक्षालायों में हमारे स्वास्थ्य के लिए जो योग हैं वे किसी मतलब के नहीं । नीची कक्षाओं में ही इसका प्रचार है और वह भी ऐसे ढंग से कि हम उसका कोई मूल्य ही नहीं समझते । औषधालय तो हैं परंतु ये रोग उत्पन्न हो जाने के बाद के ही सहायक हैं । रोग होने ही न पाये, इस पर हमारे शासकवर्ग ने कहां तक ध्यान दिया है? हमारे यहां डाक्टरों की संख्या दिन-दिन बढ़ने के साथ ही रोगों की संख्या भी बढ़ती जा रही है—प्रतिवर्ष अनेकानेक नए-नए रोगों के नाम सुनने को मिलते ही रहते हैं । यह सब स्वास्थ्य की खराबी के कारण ही तो है ?

अतः यह आवश्यक है कि सरकार की ओर से ऐसा प्रबन्ध हो कि जिससे रोग उत्पन्न होने की नौबत ही न आये । इसके लिए शिक्षा, सफ़ाई और व्यायामशालाओं की आवश्यकता है । हमारे देश में कुछ सभा-समितियां काम करती हैं और कुछ सरकार की ओर से भी ऐसे प्रबन्ध हैं । इलाहाबाद की स्वनामधन्य 'सेवासमिति' का ध्यान इस ओर विशेष रूप से आकर्षित है । बड़ौदा-राज्य में भी एक सुन्दर व्यायामशाला है जो बड़ा उपयोगी कार्य कर रही है । ऐसे ही और भी कई आदर्श संस्थाएं हैं । बड़े-बड़े नगरों में बहुत से क्लब कायम हैं । समय-समय पर उनमें प्रतियोगिता के रूप में प्रदर्शन भी हुआ करते हैं । परन्तु क्या ये क्लब स्वास्थ्य-वर्द्धन की दिशा में हमें अग्रसर करने वाले हैं ? मेरे विचार से तो इनका ध्येय चाहे भले ही ऐसा रहा हो परन्तु अब उन्होंने व्यापारिक रूप ही धारण कर लिया है—स्वास्थ्य साधना का भाव तो उनमें विलीन-सा हो गया है । ये क्लब अब तो मनोरंजन के साधन हो गए हैं और यद्यपि इससे भी स्वास्थ्य में कुछ न कुछ लाभ होता है फिर भी मूल ध्येय तो जाता ही रहता है ।

यह कार्य सामूहिक रूप में होने की आवश्यकता है । प्रत्येक गांव और नगर में व्यावहारिक रूप में इसकी शिक्षा होनी चाहिए । इसके लिए ऐसी समितियां बनें जो निरंतर इस बात पर ध्यान दें कि सर्वसाधारण का स्वास्थ्य कैसे ठीक रह सकता है और उसके लिए क्या-क्या उपक्रम होना चाहिये, इसकी एक विस्तृत रूप से योजना तैयार की जा सकती हैं जो आसानी से व्यावहारिक रूप में लाई जा सके । इसका प्रचार भी स्वास्थ्य सम्बन्धी पत्रों द्वारा उत्तम रीति से किया जा सकता है ।

हमारे स्वस्थ न होने का तीसरा कारण है हमारी अप्रयत्नशीलता । हमारे जीवन में यह आलस्य बहुत समय से चला आ रहा है । हम लोगों के पास सब साधन होते हुए भी हम आलस्य के कारण इनका उपयोग नहीं कर पाते । इसके लिए हमें प्रयत्नशील होने की आदत डालनी पड़ेगी । एक बार जिसे सुन्दर स्वास्थ्य का आनन्द मिल जाता है फिर उसकी काहिली सदैव के लिए दूर हो जाती है । इसके लिए तो प्रचार की आवश्यकता है । मोटे रूप में स्वास्थ्यमय जीवन व्यतीत करने के लिए हमें निम्न-लिखित बातें जानने और उन पर अच्छी तरह से अमल करने की आवश्यकता है :—

(१) जीवन अमूल्य है। मनुष्य जीवन के मूल्य को आँक नहीं सकता। इसको वह आँक सकता, यदि वह किसी को जीवन दे सकता। इसी कारण जीवन अमूल्य है। हमारे श्वास-प्रश्वास के साथ जो भी घड़ियाँ बीतती हैं उनके साथ हमारा जीवन व्यतीत होता जाता है। जो इन घड़ियों का मूल्य नहीं जानता वह स्वास्थ्य का मूल्य भी नहीं जानता। प्रत्येक व्यक्ति के जीवन का कोई न कोई लक्ष्य होता है, चाहे वह उसको महसूस करता हो या नहीं। ऐसा समझ कर अपने लक्ष्य को सामने रखते हुए जीवन के किसी पल को भी व्यर्थ न खोकर उसका सदुपयोग करना चाहिए। इसी से हम जीवन-लाभ प्राप्त कर सकेंगे। जीवन का प्रतिपल जीवन के उद्देश्य की पूर्त्ति की ओर ही लगना चाहिए।

(२) निश्चित कार्य-क्रम बहुत आवश्यक है। जीवन का मूल्य समझ जाने पर यह आसान-सा हो जाता है। जीवनोद्देश्य की पूर्ति के लिए हम जो भी करें उसका एक दैनिक क्रम रहना चाहिए और फिर उसी पर पूर्ण रूप से चलना चाहिए। हमारा स्नान-ध्यान, आहार-विहार, काम-काज इत्यादि निश्चित रूप से क्रमानुसार चलना चाहिए। उसमें बिना किसी विशेष कारण के परिवर्त्तन नहीं होना चाहिए। इसके प्रति निरन्तर प्रयत्नशील रहते हुए हम इस आवश्यक आदत को भी प्राप्त कर सकते हैं। कुछ समय तक इसका अभ्यास कर लेने फिर श्वास-प्रश्वास की तरह सभी बातें स्वतः प्रकृत रूप में होने लगती हैं।

अपने कार्य-क्रम को निश्चित करने में हमें विशेष सावधान रहने की आवश्यकता है। यह ऐसा होना चाहिए जिससे शारीरिक लाभ हो, हमारी मानसिक उन्नति हो और साथ ही अपने जीवन के लक्ष्य की ओर अग्रसर होते हुए जीवन-यापन की समस्या भी हल होती रहे। इन सभी बातों को ध्यान में रखते हुए अपना दैनिक कार्य-क्रम बना कर उस पर चलना चाहिए।

इस प्रकार यदि हम अपने जीवन का क्रम बना लें और उसका अनुसरण करें तो हमारा जीवन पूर्ण स्वस्थ हो सकता है। केवल शारीरिक व्यायाम अथवा कसरत से ही हमारा स्वास्थ्य नहीं बन सकता, यद्यपि शारीरिक व्यायाम हमारे स्वास्थ्य का एक आवश्यक अंग है। सुन्दर स्वास्थ्यमय जीवन के लिए परिपुष्ट मन, शक्ति तथा स्वास्थ्यवर्धक और साथ ही परिमित आहार की भी विशेष आवश्यकता है, जिसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती।

'जीवन सखा' १।।) में

को श्री देवेन्द्रदत्त गुप्त, केमिस्ट, नेवली शूगर फैक्टरी, एटा, ने अपनी स्वर्गीय पुत्री सुश्री वीणा रानी की स्मृति में हमारे पास २००) रु० इस उद्देश्य से भेजा है कि इस रकम से वाचनालयों का सस्ते में एक साल तक 'जीवन सखा' दिया जाय। इसके अनुसार हमने २०० पुस्तकालयों को १।।) में (आठ आने की रियायत हमने अपनी तरफ से की है), साल भर तक 'जीवन सखा' भेजने का निश्चय किया है। आशा है, इसका समुचित लाभ उठाते हुए शीघ्र ही वे १।।) मनीआर्डर से भेज कर, साल भर के लिए 'जीवन सखा' के ग्राहक बन जायंगे।

व्यवस्थापक, 'जीवन सखा'
२८७, बादशाही मण्डी, चौक, प्रयाग।

व्यसनों से बचिए

श्री स्वामी जगदीश्वरानन्द जी, वेदान्तशास्त्री, एन० डी० डी० वाई 9 [illegible] मुक्ति

[कुछ समय पूर्व एक स्थान पर स्वामी जा का प्रवचन हुआ था। आपने व्यसनों [illegible] मुक्ति पाने के लिये श्रोताओं से अनुरोध करते हुए प्राकृतिक चिकित्सा-विधि की उपयोगिता एवं प्रभावकारिता पर भी प्रकाश डाला था। यह लेख उपयुक्त प्रवचन की रिपोर्टी के रूप में ही है, किन्तु इसमें आपको अनेक उपयोगी बातों की जानकारी के साथ-साथ कुछ अनुभूत प्रयोग भी मिलेंगे जिनके द्वारा अनेक रोग -व्याधियों से सहज ही छुटकारा पाया जा सकता है। —सं०]

जिन वस्तुओं के साथ हमारा जन्मजात सम्बन्ध होता है, उनको हम सहज ही ग्रहण कर लेते हैं, किन्तु जो प्रतिकूल होती हैं, उन्हें नहीं। ठीक इसी प्रकार बच्चा भी प्रारम्भ में प्रत्येक वस्तु को उलट-पलट करके देखता और उसे अपने मुंह में रख कर उसके उपयोगी या निरुपयोगी होने का निर्णय करता है। बड़ा होने पर वह अपने माता-पिता को जैसा करते देखता है उसी की नकल करने लगता है। अर्थात् जिस वस्तु को स्पर्श करने से उसे कष्ट होता है, उससे प्रथमतः वह बचता है। किन्तु बार-बार के देखने, स्पर्श या अनुभव करने से वह उसे स्वीकार कर लेता है। इस प्रकार बच्चों को भला बुरा बनाने की जिम्मेदारी माता-पिता पर ही होती है।

लोग अनेक प्रकार के दुर्गुणों या व्यसनों में फँसे हुए हैं। इनमें चाय, तम्बाकू, भांग, गाँजा, अफीम आदि मुख्य हैं। इनमें सब से प्रथम आपके सामने तमाखू के दुर्गुणों पर प्रकाश डाला जाता है। सबसे प्रथम इसके जो अनुभव नशे के रूप में होते हैं उन्हें एक मात्र भुक्त भोगी ही बता सकते हैं। विहार और युक्त प्रान्त में जब तम्बाकू के पत्ते रोगी के शरीर पर बाँधे जाते हैं, तब रोगी को बेतरह नशा आते हमने अपनी आँखों से देखा है। केवल पत्ते रगड़ने से ही रोगी को बहुत कष्ट होता है, साथ ही उससे हानि भी कम नहीं होती। पिछले महायुद्ध में कुछ सिपाहियों ने छुट्टी पाने और अपने आपको 'अनफिट' बनाने के लिए तम्बाकू के पत्ते रगड़ लिए थे। इसी प्रकार और भी कई प्रयोग इसके हो सकते हैं। तम्बाकू में 'निकोटिन' नाम का विष होता है, जिसकी थोड़ी सी बूंदें ही कुत्ते बिल्ली के प्राण ले सकती हैं। अर्थात् जब इन छोटे-छोटे जीवों पर भी इतना भयंकर असर होता है; तब मनुष्य जैसे प्राणी पर तो निश्चित रूप से ही इसका बुरा प्रभाव पड़ना चाहिए।

आप लोग प्रतिक्षण अनुभव करते हैं कि तम्बाकू सेवन करने अर्थात् उसे चिलम-हुक्के पर रखकर पीने वाले को खाँसी-दमा और कफ के रोग हो जाते हैं और वह बेतरह कष्ट भोगने पर भी इन्हें छोड़ना नहीं चाहता। इसी प्रकार इससे हृदय की धड़कन भी बहुत बढ़ जाती है। काशी के एक महात्मा को हृद्रोग ने बुरी तरह सता रक्खा था और मेरे कहने पर जब उन्होंने तमाखू का सेवन करना छोड़ दिया तो वे शीघ्र ही रोग मुक्त भी हो गये। आप निश्चय जानिये कि हृद्रोग का एक मात्र कारण है तम्बाकू का सेवन और इसको दूर करने का उपाय है उसका त्याग। इसी प्रकार अनेक तरह की हानियाँ तम्बाकू खाने या सूंघने से होती है। अतएव इस दुर्व्यसन से मुक्त होने का प्रत्येक मनुष्य को दृढ़ संकल्प कर लेना चाहिए और स्वास्थ्य रक्षा में सहायक होना चाहिए।

दूसरा दुर्व्यसन चाय है। इसका आज घर-घर में प्रचार हो रहा है। जो लोग इसके प्रेमी हैं, वे इसे अग्नि वर्धक बताते हैं और कई लोग इसको कफ नाशक मानते हैं। किन्तु वास्तव में वे लोग भूल ही करते हैं। वास्तव में चाय अग्नि को उद्दीप्त करने के बदले भूख को नष्ट कर मंदाग्नि पैदा करती है। अतएव इसे लाभप्रद समझना या समझाना भूल ही है। जो भी चाहें इसका निर्णय स्वयं कर सकते हैं कि वे चाय बनाने में जो दूध, शक्कर और चाय तथा पानी उप-

योग करते हैं, क्रमशः इन चारों में से एक एक वस्तु कम करके देखें कि किस वस्तु की कमी तथा उसके उपयोग से क्या प्रभाव पड़ता है ? वास्तव में चाय में केवल गर्म पानी से ही जितना लाभ हो सकता है, उतना अन्य किसी वस्तु से नहीं। अतः यदि आपको पीना है तो चाय के बदले केवल गर्म पानी पीजिये। यदि चाहें तो उसमें नींबू का रस या नमक डालकर पी सकते हैं। हम अन्वय और व्यतिरेक के न्यायानुसार इसके गुण-दोष का पता स्वयं लगा सकते हैं। अर्थात् जब हम प्रयोग कर के देखेंगे तो पता लगेगा कि जिसे हम चाय का गुण समझे हुये हैं, वह वास्तव में उसकी पत्तियों का नहीं, वरन् शुद्ध गरम पानी का ही प्रभाव है। इसी प्रकार आप उसमें क्रमशः गुड़-शक्कर या दूध को कम करके देखेंगे तो इस सिद्धांत की सचाई का पता लग जायगा कि वास्तव में चाय की पत्ती में कुछ भी गुण नहीं है। वह तो एक प्रकार का हलका सा विष ही है, जिसका प्रभाव धीरे धीरे होता है और अन्त में चाय के पीने वाले सर्वदा शक्तिहीन एवं अनेक कारणों से गृहस्थी के जीवन को अत्यन्त कष्ट से बिताते हैं। इसलिए इस व्यसन से शीघ्र छुटकारा पाने का यत्न कीजिये। यदि इसके दुर्गुण जान लेने पर भी आप इसे छोड़ने का एक दम ही साहस नहीं कर सकते तो चाय की पत्तियां के बदले गेहूँ भुना कर उसे गर्म पानी में उबालिए और उसमें गुड़ खा या दूध मिला कर पीजिये, अथवा गरम पानी में दूध और शहद मिला कर पीजिये। चोकर की चाय भी इसी प्रकार शहद मिला कर पीजिये और उसका प्रभाव देखिये।

इस प्रकार हितकर खाद्य-पेयों का सेवन करते हुये आप थोड़े ही दिनों में सुगमता-पूर्वक चाय तम्बाकू भंग, अफीम आदि घातक व्यसनों से मुक्त हो सकते हैं। अतः जिन भाइयों की इच्छा इन व्यसनों के छोड़ने और मानस रोग से मुक्त होने की हो; उन्हें ये उपाय अवश्य ही अच्छी सहायता दे सकते हैं। अतः आज ही इन्हें त्यागने का संकल्प कीजिये।

[इसके बाद आपने प्रस्तावित साधन सप्ताह की योजना सुनाई और जो जो भाई उसमें भाग लेना चाहें उन्हें नाम लिखवाने के लिए अनुरोध किया]

आपने बताया कि "साधन सप्ताह में घर से बाहर रह कर सात दिन तक अभ्यास कर लेने से हमारी दिनचर्या ठीक ढंग से बन जायगी और व्यसनों से छुटकारा पाकर हम मानवत्व से देवत्व की ओर अग्रसर हो सकेंगे। क्योंकि यही हमारे इस मानव जीवन का मुख्य उद्देश्य है। इसकी साधना आपको कुछ भी कष्ट नहीं होगा और एक बार अभ्यास हो जाने पर सब प्रकार अनुकूलता ही जान पड़ेगी।

बात बात में हम लोग अपनी त्रुटियों, न्यूनताओं, को कलियुग का नाम लेकर टालते रहते हैं। परन्तु वास्तव में यह कलियुग नहीं 'कर युग' है। इसमें तो 'इस हाथ दे, उस हाथ लें' की उक्ति प्रत्यक्ष अनुभव में आती है, इसे देखते हुये प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है कि जो कुछ वह करना चाहता है, उसे तुरन्त कर डाले, भविष्य पर न टाले।

प्राकृतिक चिकित्सा के सरल प्रयोग

प्राकृतिक चिकित्सा के सरल प्रयोग पर विचार करने से पहले हमें यह देखना चाहिये कि 'रोग' क्या है? अर्थात् रोग और उसके कारण को समझ लेने पर उसे दूर करने की विधि (प्राकृतिक चिकित्सा) दुस्तर प्रतीत होने पर भी थोड़े से अभ्यास से स्वाभाविक जान पड़ेगी। जो लोग इसमें किए जाने वाले प्रयोगों में समय नष्ट होने की बात कहते हैं, वे यदि वैद्यों या डाक्टरों से दवाई लेते हैं तो उसमें भी तो समय और द्रव्य खर्च करते ही हैं। उसके मूल्य के सम्मुख तो इस सब प्रकार की निर्दोष चिकित्सा प्रणाली में कुछ भी खर्च नहीं होता।

अब हम आंतों के रोग पर विचार करना चाहते हैं। इसमें भी दो प्रकार से औषध-उपचार किये जाते हैं— एक तो पेट में दवाई पहुंचा कर दूसरे ऊपर से दवाई लगाकर। किन्तु इसमें भी कभी कभी पूरा लाभ नहीं होता। जब कि प्राकृतिक चिकित्सा में केवल एक ही उपाय से काम किया जाता है, और वह पेड़ू पर गीली मिट्टी की पट्टी बनाकर रखना। आप इस उपाय को करके देखिये कि किस प्रकार वह अचूक प्रभाव दिखाता है। इसी प्रकार मूत्राशय के रोगों

में भी यही मिट्टी की पट्टी अपना असर साथ दिखाती है। जो काम बड़ी बड़ी दवाइयां नहीं कर सकतीं, वह केवल मिट्टी की पट्टी के द्वारा सहज ही में किया जा सकता है।

अन्य चिकित्सा-पद्धतियों में रोग का निदान करने में यदि जरा भी भूल हो जाय और गलत दवा दे दी जाय तो रोगी को बहुत कष्ट उठाना पड़ता है, साथ ही रोग भी बढ़ जाता और संकट उपस्थित हो जाता है; जब कि प्राकृतिक-चिकित्सा में इसकी कोई आशंका ही नहीं रहती। औषधि-चिकित्सा पद्धति में निदान की भूल से रोग तो दूर होता ही नहीं, प्रत्युत समय भी बहुत अधिक लग जाता है; जब कि प्राकृतिक चिकित्सा के द्वारा बहुत ही थोड़े समय में रोग समूल नष्ट किया जा सकता है।

एक ही रोगी अलग-अलग डॉक्टर से मिलने पर अपने रोग का अलग-अलग निदान एवं औषधोपचार होते देखकर संकट में पड़ जायगा; जब कि प्राकृतिक-उपचार पद्धति में सब जगह एक ही निदान और उपचार पद्धति होने से वह सहज ही में संकट से मुक्त हो सकेगा। इस प्रकार यह चिकित्सा पद्धति "एकमेवाद्वितीयम्" के ईश्वरीय आदेश को भी सूचित करती है। अतएव यही चिकित्सा हमारे लिए सब प्रकार स्वाभाविक एवं हितकर हो सकती है। यहां स्वामी जी ने एक थाली में मिट्टी का ढेर लगा कर उस पर पिचकारी से पानी छिड़कते हुए एक बालक को बुलाकर पूछा कि इस मिट्टी को सुखाने के लिए हमें क्या करना चाहिए? इस पर उसने आग जलाने की बात कही और कपड़े की चिन्दी भी सुलगाई परन्तु पानी की धारा के आगे उसको हार मान कर कहना पड़ा कि इसे सुखाने के लिए पानी की धारा बन्द करना ही उपाय हो सकता है।]

ठीक इसी प्रकार रोग के मूल कारण को जानकर जब तक उसे दूर नहीं किया जायगा, तब तक रोग कभी दूर नहीं हो सकता। इस लिए इधर-उधर न भटक कर प्रकृति का सहारा लीजिए और रोग की उत्पत्ति के कारण को जान कर पथ्य का पालन कीजिए। क्योंकि भयंकर से भयंकर रोग से मुक्त होने में भी पथ्य का पालन प्रधान रूप से सहायक हो सकता है। अतएव रोगोत्पत्ति के मुख्य कारण रूप मिथ्या आहार-बिहार से बचकर युक्ताहार-बिहार का सेवन कीजिए। क्योंकि रोग के मुख्य कारण, कुपथ्य, के रहते हुए हम किसी भी प्रकार और किसी भी पद्धति से रोग मुक्त नहीं नहीं हो सकते। अन्य चिकित्सा-पद्धतियों में इस पर विशेष ध्यान नहीं दिया जायगा, जब कि प्राकृतिक-चिकित्सा में पथ्य का सेवन ही मुख्यता से करना पड़ता है। साथ ही यदि सहायता के रूप में हम आयुर्वेदिक या अन्य प्रकार की चिकित्सा यदि साथ साथ की जाय तो उसे हम स्वीकार कर सकते हैं। किन्तु जहां पानी ही बहना बन्द न किया जाय, अर्थात् कुपथ्य किया जाता रहे, उस रोगी के जीवन की आशा नहीं की जा सकती। क्योंकि उस दशा में तो 'एकस्य-दुःखस्य न यावदन्तम् तावद्द्वितीयं समुपस्थितं मे" के अनुसार एक दुःख का अंत होने भी नहीं पाता कि तब तक दूसरा उपस्थित हो जाता है।

यदि किसी के सिर में बहुत से रोग हैं तो आप निःसंकोच केवल मिट्टी का उपचार शुरू कर दीजिये। सिर गंजा हो और बाल उड़ गये हों तो चिकनी काली मिट्टी का लेप कीजिये। नींद न आती हो तो भी काली मिट्टी की पट्टी रखिये, मस्तक सम्बन्धी समस्त रोग अवश्य दूर हो जायँगे। किन्तु इस ऊपरी चिकित्सा के ही साथ-साथ प्राकृतिक एवं सात्विक अहार का भी सेवन करना उचित होगा। मिट्टी की चिकित्सा से रक्त शुद्ध होकर उसका उचित रूप में संचार होने लगेगा और ये रोग दूर हो जायेंगे, क्योंकि उचित रूप में रक्त का संचार न होना ही इन रोगों का मुख्य कारण हो सकता है। इस रोग में टमाटर (पके हुये लाल सुर्ख) का ही सेवन विशेष रूप से करना चाहिये। यह रक्त को शुद्ध कर तमाम विकारों को दूर कर देगा। इसके रस के साथ-साथ मूली का रस भी काम में लाया जा सकता है। मूली की पत्ती का शाक भी इसमें हितकर सिद्ध हो सकेगा। मूली, रोटी आदि सात्विक आहार ग्रहण करने के साथ-साथ आसनादि के व्यायाम भी करना आवश्यक है। सारांश यह कि समस्त शिर रोगों में मिट्टी की पट्टी का उपचार निश्चित रूप से लाभकारी सिद्ध होगा।

इसी प्रकार आँख के समस्त रोगों पर भी यही उपचार लाभकारी सिद्ध होगा। मिट्टी की पट्टी दो-तीन प्रकार से काम में लाई जा सकती है। साथ ही यदि संभव हो तो दूध

की लपसी बनाकर उसकी पट्टी चढ़ा सकते हैं। अथवा फिटकरी का चूर्ण जल में या गुलाब जल में मिलाकर आँखों में डालने से भी लाभ हो सकता है। यदि रतौंधी आती हो, अर्थात् रात में न दीखता हो तो आंखों पर मिट्टी की पट्टी बांधने के साथ-साथ सायंकाल को ठंडे पानी से स्नान कराने पर रोग मुक्त हो सकते हैं। किन्तु आहार सात्विक ही होना चाहिये।

यदि प्याज को लेकर उसके दो टुकड़े करके गर्दन के पीछे की ओर बांध दिये जायँ तो इसके द्वारा इतनी गहरी नींद आने लगेगी कि मार्फिया जैसी नशीली वस्तु के सेवन करने की आवश्यकता ही नहीं रहेगीं। नकसीर फूटने पर भी प्याज के टुकड़े कान के नीचे बांधने तथा उन्हें सुघांने से तत्काल लाभ हो सकता है। मिट्टी में फिटकरी और मीठा तेल मिलाकर दांत मांजने से भी दांत के रोग में लाभ पहुँचेगा।

ताजे जुते हुए खेत की मिट्टी की भाफ से भी इसमें लाभ पहुंचता है। कान के दर्द में मिट्टी को गर्म कर के बांधने से तत्काल लाभ होता है।

हृदय रोग तथा आंखों की खराबियों एवं पेट सम्बन्धी समस्त विकारों में भी मिट्टी की पट्टी का प्रयोग अवश्य लाभकारी सिद्ध होगा मूली का रस और टमाटर का प्रयोग समस्त उदर-विकारों को दूर करता है।

दाद-खुजली आदि चर्म रोगों पर भी यही रस काम देगा। २०-२५ वर्ष पुराने चर्म-रोग भी गो मूत्र में मिट्टी मिला कर काम में लाने से दूर हुए हैं। सारांश, प्राकृतिक चिकित्सा में उपचार के साथ-साथ पथ्य का सेवन करने पर ही पूर्ण रूप से लाभ पहुंच सकता है। चर्म रोगों में मिट्टी के साथ त्रिफला या नीम के पत्ते को उबाल कर उस पानी का उपयोग करने से वह विशेष लाभकारी सिद्ध हो सकता है।

इस
आरोग्य मंदिर में आकर
आरोग्य लाभ कीजिए !

यहाँ आपको प्राकृतिक चिकित्सा के साधन जल, धूप, मिट्टी, वायु, आसन, प्राणायाम, मालिश, उपवास, युक्त आहार की विधि करायी और बतायी जायगी। सूर्य-किरण-चिकित्सा, दूध-कल्प, बिजली, जड़ी-बूटियां और विचार-शक्ति के प्रयोग से भी आप परिचित होंगे। अपना स्वास्थ्य लौटाने के साथ-साथ अपने कुटुम्बवालों और इष्ट मित्रों को प्राकृतिक साधनों द्वारा रोगमुक्त और स्वस्थ रहने की सलाह देने लायक हो जायेंगे।

विशेष जानकारी के लिए
आज ही पत्र लिखिए—
संचालक—आरोग्य-मंदिर, गोरखपुर

देखने की कला

[डा० आर० एस० अग्रवाल, नेत्र-विशेषज्ञ]

डा० अग्रवाल दिल्ली के प्रसिद्ध नेत्र-रोग विशेषज्ञ हैं। पहले आपके अनेक उपयोगी लेख हम 'जीवन सखा' में प्रकाशित करके प्रेमी पाठकों के सामने प्रस्तुत कर चुके हैं। आशा है, स्वास्थ्य-जिज्ञासुओं को यह लेख बड़ा उपयोगी जान पड़ेगा। —सं०]

देखने की कलात्मक क्रिया में मस्तिष्क का महत्वपूर्ण भाग होता है। ठीक एक केमरा की भांति नेत्र वाह्य वस्तुओं के आकार को ग्रहण और अंकित करता है। मस्तिष्क का कार्य उन आकारों को विवेक द्वारा समझना है। चक्षु गोलक के स्नायविक स्तर (Retina) पर प्रतिविम्बित आकारों का मस्तिष्क द्वारा ज्ञान प्राप्त करने का कार्य होता है। उदाहरण के लिए अंग्रेजी के O अक्षर के बीच के स्थान को देखिये। O की वृत्ताकार काली लकीर के बीच का श्वेत स्थान देखिये और इसकी तुलना इस कागज के हाशिये की सफेदी से कीजिए। आप देखेंगे कि O के बीच का सफेद भाग कागज के हाशिये की सफेदी से अधिक सफेद दिखाई पड़ता है। वास्तव में O के बीच की सफेदी ठीक उतनी ही है जितनी हाशिये की सफेदी, किन्तु देखने में यह बीच वाली सफेदी अधिक सफेद मालूम होती है। ऐसा इस लिए होता है कि मस्तिष्क आँखों द्वारा ग्रहण किये गए आकारों को इसी रूप में ग्रहण करता है। आँख और मस्तिष्क दोनों की स्वाभाविक कार्य प्रणाली नाक और कान जैसी ज्ञानेन्द्रियों की भांति ही अपने आप होती रहती है, इसके लिये किसी प्रयत्न की आवश्कता नहीं होती, इमें सुनने और सूँघने के लिए कोई प्रयत्न नहीं करना पड़ता। ठीक इसी प्रकार आँखें भी अपना कार्य करती हैं। आँखों और मस्तिष्क का कार्य, अर्थात् देखने और समझने का कार्य जब बिना किसी प्रयत्न के स्वाभाविक रीति से अपने आप होता रहता है तब देखने की कला एक दम पूर्ण समझनी चाहिए। परन्तु यदि इन कार्यों को करने के लिए कारणवश किसी विशेष प्रयत्न की जरूरत पड़ती हो तो समझना चाहिए कि देखने के कलात्मक कार्य में कोई बाधा या दोष उपस्थित हो गया है। जब देखने का कार्य निर्दोष और स्वाभाविक रीति से होता है तो उस अवस्था में आँख ठीक तरीके से दूर और नज़दीक के भिन्न-भिन्न दूरी की वस्तुओं के चारों ओर अपना (Focus) दृष्टि-विन्दु डालती है और मस्तिष्क आँखों द्वारा ग्रहण किये गए आकारों को ठीक तौर पर समझने में समर्थ होता है। किन्तु जब आँख की यह दृष्टि-एकाग्रता अर्थात फोकस (Focus) करने की शक्ति नष्ट हो जाती है अथवा जब मस्तिष्क किसी कारण से थक जाता है तो दृष्टि शक्ति दोषपूर्ण हो जाती है। अगर दूरी के हिसाब से उसी अनुपात में सही तौर पर फोकस करने की आँख की शक्ति किसी प्रकार नष्ट अथवा दूषित हो जाती है, जैसा की निकट दृष्टि वाले रोगियों में पाया जाता है, तो दूरी के सम्बन्ध में दृष्टिशक्ति दोष पूर्ण समझी जाती है। यदि पढ़ने के लिए आँखों की दृष्टि-एकाग्रता (Focus) की शक्ति विकृत हो जाती है, जैसा की वृद्धावस्था में अक्सर देखा जाता है, उस समय निकट की वस्तुओं के देखने की शक्ति दोषपूर्ण समझी जाती है। जब दूर और नज़दीक दोनों के सम्बन्ध में आंखों की फोकस करने की शक्ति विकृत हो जाती है, (जैसा कि Hypermetropia, Astigmatism आदि अन्य दृष्टि रोगों में पाया जाता है) उस तो हाल तमें दूर और नज़दीक दोनों प्रकार से देखने का कार्य दोषपूर्ण हो जाता है।

आँख एक छोटा केमरा है और ठीक केमरों की ही तरह भिन्न-भिन्न दूरी की वस्तुओं के चारों ओर अपनी दृष्टि एकाग्र करने (Focus) की क्रिया सम्पादित करती है। हम लोग केमरे का फोकस दुरुस्त करने के लिए उसे आगे या पीछे घटा बढ़ाकर तैयार करते हैं। आँख भी केमरा की तरह चक्षु-गोलक को आगे पीछे हटा कर वस्तुओं के ठीक फोकस लेने के लिए तैयारी करती है। किन्तु एक बात में आंख और केमरा में एक बड़ा अन्तर है। केमरे के प्लेट का प्रत्येक भाग

समानरूप से संवेदनशील (प्रभाव ग्रहण शील) होता है किन्तु चक्षु-गोलक के स्नायविक स्तर की अधिक से अधिक संवेदनशीलता की एक सीमा होती है और इस स्तर का प्रत्येक भाग इस अधिक से अधिक संवेदनशील भाग से अनुपात में कम संवेदनशील होता है। अधिक से अधिक संवेदनशीलता की सीमा का यह बिन्दु चिकित्सा शास्त्र में Macula Lutea के नाम से पुकारा जाता है। यह विन्दु सब से अधिक स्पष्ट दृष्टि का केन्द्र है। इस विन्दु से जब हम चक्षु गोलक को इधर उधर हटाते है तो आंखों के देखने की सूक्ष्म शक्ति तेजी से घट जाती है। निर्दोष और स्वाभाविक अवस्था में आँख प्रत्येक वस्तु के एक भाग को बहुत अच्छी तरह और स्पष्ट देखती है और पास ही के दूसरे भाग और दूसरी वस्तुओं को उतना स्पष्ट नहीं देखती, क्योंकि सबसे अधिक स्पष्ट दृष्टि का केन्द्र विन्दु जिस स्थान पर पड़ता है वह तो बहुत स्पष्ट दिखाई पड़ता है और दूसरे स्थान अनुपात में कम। इसका कारण यह है कि सब से अधिक स्पष्ट देखने वाले केन्द्र विन्दु को जब हम हटाते हैं तो वह वस्तु या उसके दूसरे भाग उतना अधिक स्पष्ट नहीं दिखाई पड़ते। उदाहरण के लिये इस पृष्ट के दाहिने वाले किनारे को देखिये। जब आप इस दाहिने किनारे को देख रहे हों तब आप देखेंगे कि उस समय उसके दूसरे किनारे उतने स्पष्ट नहीं दीखते। इसलिये निर्दोष आँख किसी वस्तु के उस भाग को सब से अच्छी तरह देखती है जिस पर वह अपनी दृष्टि केन्द्रित करती है और उस वस्तु के बाकी भाग उतने स्पष्ट नहीं दिखाइ पड़ते। आंखों का यह कार्य Central fixation अर्थात् दृष्टि विन्दु केन्द्रीकरण कहलाता है।

देखने के कलात्मक कार्य में दृष्टि विन्दु केन्द्रीकरण का एक महत्व पूर्ण स्थान है। जब तक आँखों का यह गुण नष्ट नहीं होता 'देखने का कार्य निर्दोष और पूर्ण समझा जाता है। ऐसी अवस्था में आँखों को आराम मिलता है और बिना थकान के उनका व्यवहार चिरकाल तक किया जा सकता है। दृष्टि विन्दु का केन्द्रीकारण उस समय पूर्ण समझा जाता है जब आँख किसी एक विन्दु को उसी के बगल वाली दूसरी विंदु से अधिक स्पष्ट देख सकती है।

दृष्टि विंदु के केन्द्रीकरण शक्ति के नष्ट होने का अर्थ अपूर्ण दृष्टि होता है। और जब ऐसा स्वाभावतः होता है उस समय इसके कारण अनेक असाधारण अर्थात् दोषपूर्ण अवस्थाएँ उत्पन्न हो जाती हैं और वस्तुतः इसीके कारण आँखों के अनेक रोग उत्पन्न हो जाते हैं दृष्टि विंदु के केन्द्रीकरण की शक्ति को उन्नत करने से देखने की कलात्मक क्रिया भी उन्नत हो जाती है किन्तु इस प्रकार की उन्नति की सीमा दृष्टि विन्दु के केन्द्रीकरण की सीमा पर निर्भर करता है दृष्टि विंदु के केन्द्रीकरण के लाभ देखने की कलात्मक क्रिया में इतना महत्वपूर्ण स्थान रखते है कि मैं उसकी सम्भावनाओं की कोई निश्चत सीमा निर्धारित करने में असमर्थ हूँ। इस विषय पर अधिक से अधिक खोज करने की आवश्यकता है।

दृष्टि विन्दु के केन्द्रीकरणकी शक्ति नष्ट होने के कारण

जिस किसी कार्य से मस्तिष्क पर जोर पड़ता है उसका आँखों पर भी असर होता है या जिस कार्य से आँखों पर जोर पड़ता है उसका प्रभाव मस्तिष्क पर भी होता है। जब मस्तिष्क और आँख दोनों पर ही जोर पड़ता है और वे थक जाते है तब दृष्टि विन्दु केन्द्रीकरण शक्ति भी प्रभावित हो जाती है। दृष्टि विन्दु केन्द्रीकरण का नष्ट होना इस प्रकार की थकान की मात्रा पर निर्भर है। इस प्रकार की थकान बिना किसी तकलीफ और दर्द के भी हो सकता है और ऐसा भी हो सकता है कि रोगी को कोई ज्ञान भी न हो। किन्तु इस प्रकार की थकान से तकलीफ और दर्द भी पैदा हो सकती है। मस्तिष्क की थकान का अर्थ होता है मानसिक शक्ति का नष्ट होना। जैसा कि अकसर चिन्ता, परेशानी, शोर गुल, डर, अपरिचत शब्दों के सुनने के कारण शारीरिक तकलीफों के कारण, अशांति निद्रा के कारण, रोषपूर्ण कल्पनाओं की अवस्था आदि में अनुभव होता है।

आँखों पर जोर पड़ने का अर्थ होता है दृष्टि विन्दु के केन्द्रीकरण की शक्ति का ह्रास होना जैसा कि अधिकतर अपरिचित वस्तुओं, नकशों, छापों आदि के देखने से होता है और यही कारण है कि किसी अजायब घर में चित्रों या अन्य वस्तुओं के देखने से थकान पैदा हो जाती है। इस बात का प्रयत्न करने से कि एक वस्तु के सभी भागों को हम समान रूप से स्पष्ट देखें अथवा दो या दो से अधिक वस्तुओं या अक्षरों को एक ही समय में समान रूप से स्पष्ट देखें Recula Lutea की संवेदन शीलता न्यून हो जाती है। इस बात

की आदत भी आँखों पर काफी जोर डालती है कि हम दूर या नजदीक, गलत तौर से (Focus) करने का प्रयत्न करते हैं। एक विन्दु पर एक सेकेन्ड से अधिक देर तक दृष्टि गड़ाये रखने से दृष्टि शक्ति की सूक्ष्मता कम हो जाता है। कोई भी इस बात का अनुभव असानी से अपनी दृष्टि किसी किताब के एक छोटे अक्षर पर गड़ा कर कर सकता है।

दृष्टि विन्दु की केंद्रीकरण-शक्ति कैसे उत्पन्न की जाय

आप किसी भी वस्तु को पूर्ण दृष्टि से नहीं देख सकते जब तक कि आपने उसे पहिले न देखा हो। जब आंख किसी अपरिचित वस्तु को देखती है तो सदा कमोबेश वह उस वस्तु को देखने के लिए जोर डालती है और परिणाम यह होता है कि दृष्टि विन्दु के केन्द्रीकरण शक्ति सदा ही ऐसी अवस्था में नष्ट हो जाती है और वह अस्थायी रूप से विकृत हो जाती है। जब आंख किसी परिचित वस्तु को देखती है तो ठीक इसके विपरीत होता है। ऐसी अवस्था में आँख विना जोर डाले हुए ही केवल उस वस्तु को देख सकती है बल्कि इस प्रकार की क्रिया के (अर्थात् परिचित वस्तु को देखने की क्रिया से) पश्चात् अपरिचित वस्तुओं को देखने की थकान भी कम हो जाती है।

इस तथ्य से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि हम कैसे जीवन की भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में थकान पैदा होने के कारण दृष्टि विन्दु के केंद्रीकरण की शक्ति के अनिष्टकारी प्रभाव को दूर कर सकते हैं। स्नेलेन टेस्ट कार्ड (Snellen Test Card) को १०-१५ फीट दूरी पर रख कर दूर दृष्टि आंखों की कसरत रोजाना करने से दृष्टि विन्दु के केंद्रीकरणशक्ति की बहुत उन्नत हो जाती है। इस प्रकार की कसरत करने से शीघ्र ही और अत्यन्त सफलता पूर्वक दृष्टि की इस शक्ति में सुधार होता है तथा देखने की त्रुटियाँ तथा थकान के कारण पैदा होने वाली खराबियाँ दूर हो जाती हैं।

पहले इस स्नेलेन चार्ट को इतनी दूरी पर रखिये जहां से आप बीच के अर्थात् न बड़े न छोटे—मध्य आकार के अक्षरों को भली भांति देख सके। प्रत्येक अक्षर के निम्न भाग को अथवा ऊपरी भाग को (सिरे को) देखिये और गौर कीजिए कि अक्षर के जिस भाग को आप ध्यान पूर्वक देख रहे हैं वह अधिक स्पष्ट दिखाई पड़ता है। यदि जिस भाग को आप ध्यान पूर्वक देख रहे हैं अधिक स्पष्ट न दिखाई पड़े तो आंखों को बन्द कर लीजिये और श्वेत या काले रंग का बिना किसी प्रयत्न के ध्यान (स्मरण) कीजिये और आपको उस समय विश्राम की अवस्था का अनुभव होगा। इसके बाद एक क्षण के लिए आँखों को फिर खोलिये और आपको मालूम होगा कि उस अक्षर का वह भाग जिसे आप देखना चाहते हैं अक्षर के और भागों से अधिक स्पष्ट प्रतीत होता है। इसी प्रकार पश्चात् आप क्रमशः छोटे अक्षरों पर भी दृष्टि केन्द्रीकरण-शक्ति को बढ़ाने का अभ्यास कर सकते हैं। धीरे-धीरे चार्ट की दूरी को बढ़ाइये ताकि दूरी १० से १५ फीट तक पहुँच जाय और उस दूरी पर से दृष्टि-केन्द्री-करण शक्ति को बढ़ाने का अभ्यास छोटे अक्षरों पर कीजिये। बीच-बीच में बहुधा अधिक स्पष्ट देखने के लिये अथवा आंखों की थकावट को आराम देने के लिये आंखों को बन्द करके काले या श्वेत रंग का ध्यान आप कर सकते हैं।

एक स्कूल के विद्यार्थी की दृष्टि शक्ति साधारण दृष्टि शक्ति से घट कर एक तिहाई रह गई थी। उससे कहा गया कि पूर्ण दृष्टि प्राप्त करना केवल तभी सम्भव हो सकता है जब दृष्टि केन्द्रीकरण। शक्ति दूर के वस्तुओं पर प्रयोग कर करके बढ़ाई या उन्नत की जाय। ऐसी सफलता प्राप्त करना उस अवस्था में सम्भव हो सकता है जब दूर रक्खे हुये उस चार्ट के एक अक्षर को एक समय में ध्यान पूर्वक देखा जाय अथवा प्रत्येक अक्षर के एक छोटे भाग को बारी-बारी से गौर करके देखा जाय। यह आवश्यक बताया गया कि एक सतर के एक अक्षर को इस प्रकार गौर से देखा जाय कि उसके बाद दिखाई पड़ने वाला अक्षर उतना स्पष्ट न दिखाई पड़े। कुछ ही मिनटों में ऐसा करना उसे आ गया। इसके आगे के उपाय अर्थात् एक छोटे अक्षर के सिरे के भाग को उसके निम्न भाग से अधिक स्पष्ट देखने अथवा उस अक्षर के बायें भाग को उसके दायें भाग से अधिक स्पष्ट देखने, के लिए अधिक एकाग्रता की आवश्यकता थी। यह उस लड़के के लिए कठिन कार्य था क्योंकि उसकी जबर्दस्त आदत या झुकाव कई अक्षरों

को क्रमशः देखने की थी और वह सदैव ऐसा ही प्रयत्न किया करता था। उसकी आदत एक अक्षर के सभी भागों को एक ही साथ गौर से देखने की भी थी। बार बार आंखों को बन्द कर के और काले या श्वेत रंग का ध्यान कर के प्रयत्न करने पर वह एक अक्षर के एक ही भाग को अधिक स्पष्ट देखने में सफल हो सका। पहले वह चार्ट को ३ फीट दूरी पर रख कर यह अभ्यास किया करता था परन्तु क्रमशः दूरी बढ़ाते बढ़ाते १० फीट तक किया केवल एक सप्ताह ही में यह मालूम पड़ा कि उसकी दृष्टि शक्ति १/३ से बढ़कर साधारण अर्थात् सम्पूर्ण हो गई।

अस्तु, स्नेलेन टेस्ट कार्ड पर अभ्यास करने के लिए उस चार्ट को दीवाल पर लटका देना चाहिए। परिवार का प्रत्येक सदस्य उस पर कुछ मिनटों के लिये अभ्यास कर सकता है। स्कूल और कालेजों में प्रत्येक कक्षा के कमरे की दीवारों पर यह चार्ट लटकाये रखना चाहिये और विद्यार्थियों को उसे नित्य ही पढ़ना चाहिये अपनी जगहों पर बैठे हुये अलग अलग दोनों आंखों से।

दृष्टि को उन्नत करने के लिये क्यों स्नेलेन टेस्ट कार्ड को महत्व दिया गया? इसका कारण यह है कि स्नेलेन टेस्ट कार्ड से एक निश्चित माप के अनुसार भिन्न भिन्न आकार के अक्षर हैं और इसके कारण उस पर अभ्यास करने वाले व्यक्ति को तुरन्त पता लग जाता है कि कब देखने के लिये आंखों पर अनुचित जोर पड़ता है और अनुचित प्रयत्न करना पड़ता है। जब आंखें दूर की वस्तुओं को देखने के लिए ठीक सधी रहती हैं तभी दृष्टि-केन्द्रीकरण सम्भव है और तभी छोटे अक्षर पढ़े जा सकते हैं। बच्चों पर दूसरों के लिए दूसरी दूर की वस्तुओं पर (स्नेलेन टेस्ट कार्ड के अलावा) अभ्यास करने से यह पता लगना असम्भव नहीं तो अत्यन्त कठिन अवश्य है कि कब ठीक-ठीक फोकस सधा। यदि स्नेलेन आई चार्ट न उपलब्ध हो सके तो कैलेन्डर के अक्षरों पर भी अभ्यास किया जा सकता है।

अधिक जानकारी के लिए 'माइन्ड और विजन' मस्तिष्क और दृष्टि नामक पुस्तक का अध्ययन बहुत सहायक होगा।

स्वास्थ्य सम्बन्धी तीन नए प्रकाशन

कविराज महेन्द्रनाथ पाण्डेय की स्वास्थ्य सम्बन्धी महत्वपूर्ण कृतियाँ प्राकृतिक रोगोपचार के प्रेमियों के बीच कितनी लोकप्रिय हुई हैं, यह कहने की बात नहीं इनकी प्रत्येक पुस्तक की अधिकाधिक मांग ही उनकी लोकप्रियता का सहज प्रमाण हैं। आपकी नयी युक्तियाँ निम्नलिखित हैं:—

(१) तपेदिक—तपेदिक के सम्बन्ध में सारी जानकारी की बातें, तथा इस भयंकर रोग से बचाव का उपाय इस पुस्तक के द्वारा आप बिना किसी की सहायता के जान सकते हैं। इसकी एक प्रति तो प्रत्येक घर में रहनी ही चाहिए। मूल्य ४) रु०

(२) जुकाम—इसमें जुकाम, ब्रोंकाइटिस, दमा, खांसी, निमोनिया; एनफ्लुएञ्जा आदि का अचूक इलाज बताया गया है। बड़े काम की चीज़ है। मूल्य १॥) रु०

(३) हमारा भोजन—आहार सम्बन्धी यह अनूठी पुस्तक प्रेस में छप रही है। शीघ्र ही प्रकाशित हो जायगी।

इन पुस्तकों के लिए आज ही लिखें—

मैनेजर—स्वास्थ्य ग्रंथ भण्डार, 'जीवन सखा' कार्यालय
२८७ बादशाही मंडी, चौक, इलाहाबाद।

खाद्य-तत्वों पर सूर्य-किरणों का प्रभाव

(श्री कैरोल पी० स्ट्रीटर)

एक दिन ऐसा भी आने वाला है, जब सूर्य-रश्मियों का—धूप का—मूल्य रुपयों में आंका जाने लगेगा। आजकल अमेरिका में खाद्य तत्वों पर पड़ने वाले सूर्य-किरणों के प्रभाव के सम्बन्ध में जो अनेक अनुसन्धान हो रहे हैं उनका यदि कोई निश्चित परिणाम निकला तो आहार-शास्त्र के क्षेत्र में उनको वरदान के रूप में ही समझा जायगा। सूर्य-किरणों के संयोग के टमाटर में पाये जाने वाले विटामिन 'सी' की मात्रा में वृद्धि कैसे हो जाती है, अन्य खाद्य तत्वों पर इसका क्या प्रभाव पड़ता है, इसकी जानकारी इस लेख को एक बार पढ़ लेने पर आपको भली-भांति हो जायगी। —सम्पादक]

यह बात तो खेतिहरों को धरणी के पहली बार जोती बोयी जाने के ही समय से मालूम है कि सूर्य-किरणों के ही प्रभाव से पौधे उगते हैं। किन्तु अब हमें वैज्ञानिक अन्वेषणों से ज्ञात हुआ है कि सूर्य-किरणों का इतना ही नहीं, बल्कि इससे भी कहीं अधिक प्रभाव पड़ता है।

बरसाती क्षेत्रों, या बरसात के मौसम में बोये जाने वाले खाद्यों के बनिस्बत कुछ खाद्यों में, जिन पर पूरी तौर से सूर्य की रोशनी पड़ती हैं, अधिक खाद्य-तत्व, अधिक शक्ति, अधिक स्वास्थकारक गुण पाये जाते हैं। किसानों को अपनी खेती बारी के लिए जितने परिमाण में सूर्य की रोशनी मिलती है उस पर वे अपना कोई नियंत्रण नहीं कायम कर सकते लेकिन अगर वे चाहें तो इसे आमदनी का अच्छा-खासा जरिया जरूर बना सकते हैं। बहुत मुमकिन है कि एक दिन ऐसा भी आए जब जमीन का भी मूल्य उस पर पड़ने वाली धूप के लिहाज से आंका जाने लगे और इस तरह मुनाफे के लिए एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में होड़ लग जाय! गरमी के दिनों में संयुक्त राज्य अमेरिका के अधिकतर हिस्से में जितनी धूप होनी चाहिए उसकी सिर्फ ६०-७० प्रतिशत धूप मिल पाती है, जबकि देश के अधिकांश भाग को ७० से ८० प्रतिशत तक धूप मिलती है और कैलीफोर्निया की इम्पीरियल घाटी में ९० प्रतिशत।

टमाटर, शलजम, सेब, नारंगी, सूखीघास, और दूध पर सूर्य-किरणों का कितना असर पड़ता है, यह बात अब साबित हो चुकी है और यह कोई नहीं जानता कि इसी प्रकार और भी कितनी ही चीज़ों पर सूर्य का प्रभाव पड़ता होगा। अगर आपको यकीन न हो तो उन वैज्ञानिक प्रयोगों पर ध्यान दें जो कि संयुक्त राज्य अमेरिका के पौधा, मिट्टी, और पोषक-तत्व सम्बन्धी प्रयोगशाला के डन० कार्ल सी० हैमर और डा० जी० एफ० सोमर्स ने अभी हाल ही में किए हैं।

उस प्रयोगशाला में आपको इतने अधिक तरह के टमाटर दिखायी देंगे, जैसा कि आपने कभी देखा भी न होगा। वहाँ पर सैकड़ो टमाटर के पौधे अलग अलग शीशे के बर्तनों में बालू और रासायनिक पदार्थों के घोल रखकर उगाए गए हैं। उनमें कुछ पौधे बराबर साये में ही रहकर उगे हैं तो कुछ पौधों का विकास धूप में हुआ है। कुछ पौधों को सफेद कपड़े से ढक कर रक्खा गया है, तो कुछ पौधों में लगे फल को तो खुला और बाकी समूचे हिस्से को ढक कर रक्खा गया है। इसी प्रकार एक तरफ आपको ऐसे भी पौधे दिखायी देंगे जिनमें लगे टमाटर तो ढककर लेकिन बाकी समूचे भाग को खुला रक्खा गया है। उन पौधों के बीच में एक ऐसा विद्युत-चालित यंत्र लगा रक्खा गया है जो उन पौधों पर प्रतिदिन पड़ने वाली धूप का घनत्व बताता है—उससे आप मालूम कर सकते हैं कि उन पर रोजाना कितनी धूप पड़ती है। इसी तरह के और भी कई वैज्ञानिक प्रयोग इस समय अमेरिका में हो रहे हैं।

टमाटर में पाए जाने वाले विटामिन 'सी' पर धूप का असर

टमाटर में पाए जाने वाले विटामिन के मात्रा प्रत्यक्ष रूप से उसे डाल के तोड़े जाने के २-३ सप्ताह पहले पड़ने वाली सूर्यकिरणों की मात्रा पर निर्भर करती है, मतलब

यह कि पकने के २-३ सप्ताह पहले उस पर जितनी धूप पड़ती है उसी के अनुपात में उसके विटामिय 'सी' पाया जाता है। वैज्ञानिक प्रयोगों से यह साबित हो गया है कि सूर्य-किरणों के विभिन्न परिमाण से टमाटर के विटामिन 'सी' की वृद्धि की जा सकती है।

टमाटर के खाद्य-तत्व में यह महान अन्तर पड़ने का एक मात्र कारण उस पर—टमाटर के पौधे पर नहीं—पड़ने वाली सूर्य-रश्मियाँ ही हैं। डाल से तोड़ लिए गए टमाटर पर भी सूर्य किरणों का इस प्रकार का प्रभाव पड़ता है या नहीं, इस पर अभी प्रयोग किया जा रहा है, अभी देखना है कि इन प्रयोगों से क्या साबित होता है।

अब आप सूर्य-किरणों के महत्व पर विचार करें। टमाटर उन अत्यधिक महत्वपूर्ण खाद्यों में है जिनमें विटामिन 'सी' प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। इसके अलावा यह इतना सस्ता भी है कि इसे हर कोई खरीद सकता है।

अधिकांश लोगों के आहार में अन्य विटामिनों के बनिस्बत 'रिबोफ्लेविन' (एक प्रकार का विटामिन 'बी') और विटामिन 'सी' का ही अधिक अभाव रहता है। और संयोग वश केवल ३ प्राणधारियों—मनुष्य, बन्दर और गाइना का सुअर—को ही विटामिन 'सी' खाने की जरूरत पड़ती है। बाकी अन्य समस्त प्राणधारी अपने लिए ये विटामिन स्वयं तैयार कर लेते हैं।

हमारे लिए विटामिन 'सी' की सबसे मुख्य उपयोगिता यह है कि यह कैशिकाओं (Capillaries) के निर्माण में सहायक होता है। जब यह उचित मात्रा में नहीं मिलता तो शरीर के भीतर ही भीतर रक्त-कोषों से रक्तस्राव होने (Hemorrhages) की शिकायत पैदा होती है जो अनेक प्रकार के उपद्रवों का कारण बन जाती है। 'स्कर्वी' (Scurvy) नामक भयानक रोग का भी कारण विटामिन 'सी' का अभाव ही होता है। इस रोग से बचने के लिए अधिकांश मनुष्यों को प्रतिदिन २५ से ३० मिलीग्राम तक विटामिन 'सी' की आवश्यकता होती है। वैज्ञानिक लोग अभी इस बात को निश्चित रूप ज्ञात नहीं कर सके हैं हमें पूर्ण स्वास्थ्य प्राप्त करने के लिए कितने परिमाण में विटामिन 'सी' की आवश्यकता होती है— अलग-अलग व्यक्ति की आवश्यकतानुसार इसके परिमाण में अन्तर पाया जाता है। लेकिन वैज्ञानिकों की राय है कि शायद ७० मीलिग्राम पूर्ण स्वास्थ्य के लिये काफी होगा।

कुछ औसत आकार के टमाटरों में सिर्फ २० मिलीग्राम विटामिन 'सी' होता है, जब कि उसी आकार के दूसरे टमाटरों में यह ६० मिलीग्राम तक पाया जाता है। इससे जाहिर है कि अगर आप सिर्फ टमाटर खाकर विटामिन 'सी' की जरूरत पूरी कर देना चाहते हैं तो आप आसानी समझ सकते हैं कि तन्दुरुस्ती के लिहाज से आपके लिए एक टमाटर या तीन टमाटर खाने में कितना फर्क पड़ सकता है।

किसी किसी टमाटर में कम किसी किसी में अधिक विटामिन 'सी' पाए जाने की एक वजह टमाटर की किस्म भी हो सकती है। एक खास किस्म के टमाटर में किसी दूसरे किस्म के टमाटर के बनिस्पत बहुत अधिक यह विटामिन पाया जा सकता है लेकिन उनमें जो हम इतना अधिक अंतर देखते हैं उसका एक बहुत बड़ा कारण धूप भी होती है। यह भी कोई मानी हुई बात नहीं कि ऐसा मिट्टी-मिट्टी के प्रभाव से होता है। एक जगह की मिट्टी से दूसरे जगह की मिट्टी में फर्क होने से ही उसमें पाए जाने वाले विटामिन की मात्रा इतनी अधिक घट-बढ़ नहीं सकती। अमेरिका में ऊपर बताए गए उन दोनों वैज्ञानिकों ने मिट्टी के इस प्रभाव के भी सम्बन्ध में प्रयोग करके असलियत को मालूम कर लिया है।

हैमर और सोमर्स ने कैलोफोर्निया, अमेरिका के दक्षिणी भाग के कुछ क्षेत्रों, विसकानसिन और न्यूयार्क में बोए गए टमाटरों की जाँच की और उन्हें इनमें से हर स्थान के टमाटर में पाए जाने वाले विटामिन 'सी' की मात्रा में एक दूसरे के बनिस्बत खास फर्क देखने को मिला। इसके बाद उन वैज्ञानिकों ने उन सभी स्थानों की अलग-अलग मिट्टी लाकर उसी में, किन्तु एक दूसरे स्थान, कार्नेल में ले जाकर टमाटर बोया। टमाटर के उन सभी पौधों पर एक सी धूप लगने पर उनमें से हर एक पौधों के टमाटरों में समान रूप से बहुत अधिक मात्रा में यह विटामिन पाया गया। पहले जो उनके विटामिन की मात्रा में अलग अलग अन्तर देखा गया था वह अब जाता रहा!

जैसा कि पहले बताया जा चुका है, इसी तरह धूप का असर कुछ दूसरी फसलों पर भी पड़ता है। जैसे सेब के जिस हिस्से पर धूप पड़ती है उसमें उस हिस्से के बनिस्बत अधिक विटामिन 'सी' पाया जाता है जो कि साए में रहता है, जिस पर सूर्य की रोशनी नहीं पड़ती। इससे आपको यह सबक सीखना चाहिये कि अगर आप आधा सेब ही खाते हैं तो उसी हिस्से को खायं जो लाल रंग का है। इसी तरह यह देखा गया है कि पेड़ के भीतरी भाग—में साए—में पकने वाली नारंगी में, ऊपरी भाग में—जिसपर धूप पड़ती हो—पकने वाली नारंगी के मुकाबले में विटामिन 'सी' की मात्रा कम होती है।

धूप में विटामिन कैसे तैयार होता है, यह वैज्ञानिकों को मालूम नहीं, न वे यही जानते हैं कि टमाटर में विटामिन 'सी' होता ही क्यों कर है? टमाटर के बीज में विटामिन सी, बिलकुल ही नहीं होता। टमाटर को विटामिन 'सी' की जरूरत ही किस लिए पड़ती है? कार्नेल में इस समय टमाटर पर जो प्रयोग हो रहे हैं उनसे अगर इन प्रश्नों का कोई जवाब मिल सका तो पौधों के बारे और भी बहुत सी बुनियादी बातें, जिनपर अभी तक रहस्य का पर्दा पड़ा हुआ है, मालूम हो सकेंगी।

क्या विटामिन 'सी' के अलावा दूसरे खाद्य-तत्वों का मूल्य भी बढ़ सकता है?— बेशक बढ़ सकता है। धूप जब गाय की सींग पर पड़ती है तो उसके दूध में विटामिन 'डी' (जिससे हड्डियाँ बनती हैं) की मात्रा और भी बढ़ जाती है।

चारे के लिए काटकर रक्खी गयी सूखी घास के ढेर पर अगर सूर्य की रोशनी पड़ती रहे तो उसमें विटामिन 'डी' पैदा हो जायगा, जो गाय के लिए लाभदायक है। यह एक दिलचस्प बात है कि सूखी घास पर सूर्य की धूप का यह प्रभाव तभी तक पड़ता है जबतक कि वह काटी नहीं जाती। जब कोई किसान घास को सुखा डालता है तो उसमें कुछ विटामिन तो रहता है, लेकिन विटामिन 'डी' जाता रहता है। डा० मेनार्ड का कहना है कि यह एक अच्छी बात है क्योंकि मवेशियों को विटामिन 'डी' की जरूरत तभी तक होती है जब तक वे बछड़े हैं। लेकिन विटामिन 'ए' की जरूरत उन्हें जीवन भर पड़ती है। बछड़े को अगर विटामिन 'डी' पहुँचाना है तो वह ऊपर बताए जा चुके तरीके से सूखी घास में पैदा किया जा सकता है।

जिस दिन चमकती हुई धूप होती है, उस दिन की सूखी घास में कारबोहाइड्रेट (श्वेतसार) भी अधिक पाया जाता है। बनिस्पत उस दिन के जिस दिन बदली छाई रहती है। क्या सूखी घास में, उसे रोजाना धूप में सुखा कर, कारबोहाइड्रेट को सुरक्षित रक्खा जा सकता है? बहुत से वनस्पति-शास्त्र के वैज्ञानिकों का यही कहना है, कि 'हाँ रक्खा जा सकता है।'

मुमकिन है कि धूप का विटामिन 'सी' और 'डी' पर असर पड़ने के अलावा और दूसरे विटामिनों— जैसे केरोटिन (Carotene) जिससे विटाम्नि 'ए' बनता है, नियेसिन (Niacin) जिससे विटामिन 'बी' बनता है, और थियेमिन (Thiamine) जिससे विटामिन 'ई' बनता है) पर भी पड़ता हो। इस सम्बन्ध में अभी कुछ निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। लेकिन डा० मेनार्ड का कहना है—यह बिलकुल सम्भव है। उधर डा० हैम्बर कहते हैं, ऐसा होने की बड़ी सम्भावना जान पड़ती है।

जाहिर है, यह बात दूसरों की अपेक्षा किसानों—खेतिहरों के लिए अधिक मतलब रखती है।

कुछ प्रसव-काल के सम्बन्ध में

डा० इन्दुमती सिनहा, एन० डी० वाई०

आमतौर से लोगों का यही ख्याल है कि प्रसव के समय बच्चा जितना ही बड़ा हो उतना ही वह उसके स्वस्थ होने की निशानी है। लेकिन लोगों की इस तरह की धारणा सरासर गलत है। ग्रामीण अथवा असभ्य स्त्रियों के नव-जात शिशुओं तथा जंगली जानवरों के बच्चों की जो जाँच की गई है उससे प्रकट होता है कि प्राकृति का नियम यही है कि वह अस्थि-चर्म मात्र से कुछ ही अधिक हो और उसके शरीर पर कम से कम मांस हो। गर्भ में बच्चे की इस प्रकार की स्थिति होने से गर्भ का प्रसव बड़ी आसानी के साथ और निरापद होता है और जच्चाओं को कोई तकलीफ नहीं उठानी पड़ती। इसके विपरीत प्रसव के समय बच्चा किसी ख़ास औसत से जितना ही अधिक वजन का होगा उतना ही अधिक माता को प्रसव काल में कठिनाई होगी।

पैदाइश के समय बच्चे की तौल या वजन ६॥ पौण्ड से ७ पौण्ड तक (३। से ३॥ सेर तक) होना चाहिए। लेकिन अक्सर (९ या १० पौण्ड के बच्चों की पैदाइश होने के समाचार मिलते हैं और इस तरह के बच्चे पैदा होने पर उसके माता पिता को अपार हर्ष भी होता है। लेकिन कल्पना कीजिए कि इस तरह के शिशुओं का प्रसव करना माता के लिए कितना कष्टकारक होता होगा। इस तरह के बच्चे का शरीर अनावश्यक चरबी और जलीय तन्तुओं से भरा होता है जो कि वास्तव में मल अथवा विकार तथा स्वास्थ्य के लिए बाधक होने के सिवाय और कुछ नहीं होता। हम आम तौर से देखते हैं कि इसी तरह के बच्चे पैदा होने के कुछ ही हफ्तों के भीतर २ या ३ पौण्ड (सेर-डेढ़ सेर) वजन में घट जाते हैं। इससे यह साफ जाहिर होता है कि पैदाइश के समय जो बच्चा बहुत मोटा-ताजा दिखाई देता था वह उसके गठेस माँसल शरीर का सूचक नहीं था जैसा कि उसके माता-पिता समझ बैठे थे, बल्कि इसके विपरीत वह उसके अस्वस्थ तन्तुओं का ही परिचायक था जो कि गर्भावस्था में उनकी माता का खान-पान सम्बन्धी गड़बड़ी और शरीर में विजातीय द्रव्यों की अधिकता के कारण उत्पन्न हुआ था।

समुचित ढंग से प्रसव के लिये यह अत्यन्त आवश्यक है कि गर्भाशय (womb) और तलपेट (Pelvis) की पेशियाँ अच्छी दशा में हों, और वे ऐसा तभी रह सकती हैं जबकि हर रोज पर्याप्त रूप से टहला जाय या कोई अन्य व्यायाम किया जाय। लेकिन बहुत सी स्त्रियाँ डाक्टरी सलाह के मुताबिक सगर्भावस्था में कत्तई कोई व्यायाम नहीं करतीं। सगर्भावस्था में तो डाक्टर लोग उन्हें यही सलाह देते हैं कि वे जो चाहें खायं और जहां तक मुमकिन हो कम मेहनत करें। फिर अगर आजकल की स्त्रियाँ प्रसवकाल से आतंकित रहती हैं, तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं। क्योंकि जहां नारी जीवन के एक सबसे सुखद अनुभव के रूप में उसका स्वागत करना चाहिए उन्हें वहां डर रहता है कि प्रसव काल में उन्हें अत्यधिक कष्ट सहन करना पड़ेगा।

अगर हम यह चाहते हैं कि माताएं बिना किसी खटके के और आसानी के साथ प्रसव करें तो इसके लिए सब से जरूरी बात यह है कि उन्हें समुचित आहार पर रक्खा जाय। लोगों में जो यह धारणा आमतौर से फैली हुई है कि सगर्भा स्त्रियां 'दो प्राणियों के लिए'—स्वयं अपने लिए तथा अपने गर्भस्थ शिशु के लिए—भोजन करती हैं। वह धारणा जितनी मूर्खतापूर्ण हैं उतनी ही खतरनाक भी। कारण यह कि अत्यधिक भोजन करने से पेट में बच्चे का वजन असाधारण रूप से बढ़ जाता है जिसके परिणाम माता के लिए अक्सर अत्यन्त भयानक होते हैं। सगर्भावस्था में गर्भिणी का भोजन प्राकृतिक, प्राणधारक खाद्य होने चाहिये और उन्हें अप्राकृतिक तथा आजकल के निष्प्राण भोजन जहाँ तक हो सके कम करना चाहिये। गर्भस्थ शिशु को उसकी हड्डियों और तन्तुओं के निर्माण के लिए अपनी माता से बहुत अधिक मात्रा में खनिज-पदार्थ (Organic mineral matter) प्राप्त करने की आवश्यकता होती है। और गर्भिणी माता अपने गर्भस्थ शिशु के इस आवश्यकता की पूर्ति

प्राकृतिक आहार जैसेः—फल, हरी कच्ची या उबाली हुई शाक-भाजियाँ, चोकर सहित आटे की रोटी, दूध आदि के द्वारा कर सकती है। मैदा, चीनी, मांस, आदि भोजनों में खनिज तत्वों (Minerac matter) का बिलकुल अभाव रहता है। इस तरह के अप्राकृतिक आहार लेने का ही यह परिणाम होता है कि हमारे यहाँ की अधिकांश माताओं के लिए प्रसव के बाद दाँत खराब हो जाने, 'स्वास्थ्य गिर जाने तथा अन्य प्रकार के रोगों के चंगुल में फँसने और अक्सर क्षय रोग का भी शिकार बन जाने की आशंका बनी रहती है। जब माता के भोजन में खनिज़ पदार्थों का अभाव होता है तो स्वयं उसके शरीर के तन्तुओं में एकत्र खनिज तत्वों को प्रकृति गर्भस्थ शिशु के निर्माण के लिए खींच लेती है और इस तरह हर बार गर्भधारण करने पर माता का स्वास्थ्य उत्तरोत्तर गिरता ही जाता है, क्योंकि शरीर का स्वस्थ रहना बहुत अधिक अंशों में इस बात पर निर्भर करता है कि उसके अन्दर कितना अधिक खनिज-पदार्थ मौजूद है।

इसलिए यह आवश्यक है कि भावी माताके भोजन की एक तालिका बना ली जाय और उसका कठोरता पूर्वक पालन किया जाय।

प्रसूतिका गृह

हमारे देश में और ज्यादातर देहातों में प्रसूतिका गृह के लिये घर का सबसे अन्धकारमय और मैला कमरा चुना जाता है। जाड़े के दिनों में उसमें आग की अंगीठी रख दी जाती है। सारा गन्दा सामान इकट्ठा किया जाता है। यह सब अवस्थाएं माता तथा नवजात शिशु के लिए हानिकर सिद्ध होती है। साधारणतः इस कार्य के लिए एक स्वच्छ तथा हवादार और बड़ा सा कमरा चुनना चाहिये जिसमें खुल कर प्रकाश जाता हो। उस कमरे से आवश्यक और उपयोगी सामान के सिवाय और सब चीजें हटा देनी चाहिए। घर का दरवाजा पूरब या उत्तर दिशा में होना चाहिए। प्रसूतिका गृह इस प्रकार का होना चाहिए जो हर मौसम सुख कर हो सके।

सूतिकागृह में तैयार रखने योग्य वस्तुएं

(१) बिस्तर के लिए २-३ वाटर प्रूफ। यदि यह न मिल सके तो नरम, कोमल वस्त्र, नया गद्दा, कम्बल, एक सफेद चद्दर। मैला, दुर्गंधित वस्त्र बिलकुल न रखा जाय (२) दो चौड़ी, लम्बी पट्टियाँ (३) २-४ अंगोछे (४) उत्तम धार वाली कैंची।

नवजात शिशु के लिए तैयार रखने योग्य वस्तुएं

१—२-४ गरम फालालेन के कपड़े।

२—छोटा सा पलंग और उसकी गद्दी।

प्रसव के लक्षण

१—प्रसव होने से दो तीन दिन पूर्व पेट में हल्कापन मालूम होता है उदर नीचे की ओर, सामने उतर आता है। पेशाब करने की बार बार इच्छा होती है। २—योनि से चिकना स्राव होने लगता है, जिससे योनि नली तरल (गीली) रहती है।

बिस्तर—प्रसव के लक्षण दिखाई देने पर बिस्तर तैयार करना चाहिए। एक कड़ा गद्दा बिछा कर उस पर सफेद चद्दर डाल देनी चाहिये। चद्दर के ऊपर ४-५ तहें लगा कर कम्बल बिछा देनी चाहिये। यदि सम्भव हो तो कम्बल के नीचे 'वाटर प्रूफ' (मोमजामा) बिछाना चाहिये। प्रसव हो जाने के बाद कम्बल आदि हटा देने पर बिस्तर सूखा हुआ मिल सकता है। एक लम्बा अंगोछा पायंत पर बाँध देना चाहिये। इस अंगोछे के सहारे प्रसूता को आराम मिल सकता है। इसको पकड़ कर प्रसव के लिए वह जोर लगा सकेगी। दर्द के समय वह इसको पकड़ कर विश्राम ले सकेगी।

गर्भिणी के वस्त्र—प्रसव के समय वस्त्र इस प्रकार के होने चाहिये, जो सुगमता से हटाये जा सकें। उत्तम यही है कि कोई वस्त्र शरीर पर न रक्खा जाय, सिवाय एक चद्दर के। रात की पोशाक भी काम दे सकती है, जबकि इसको कोष्ठ पर लपेट दिया जाय, जिससे खराब न हो।

यदि छः घन्टे के बीच में पाखाना न हो हुआ तो एनिमा दे देना चाहिए। आंतों के स्वच्छ होने से गर्भाशय की क्रिया बहुत सरल हो जाती है।

प्रसव का आरम्भ दर्द से होता है। यह दर्द उदर से आरम्भ हो कर कटि, नितम्ब, वंक्षण और योनि में आने लगता है। इस समय योनि से पानी जैसा तरल पदार्थ भी निकलने लगता है। इस समय गर्भिणी को चाहिये कि वह बैठ जाय, या घूमना आरम्भ करे जिससे प्रसव में

सहायता पहुँचे। अगर जरूरत हो तो मल और मूत्र का त्याग कर लेना चाहिए। ज्यों-ज्यों दर्द का वेग बढ़ता जायगा, त्यों-त्यों दर्द के, जो पहले रुक-रुक होता है, बीच का अन्तर कम होता जायगा। अर्थात् प्रायः लगातार दर्द होने लगेगा।

प्रसव के समय गर्भिणी की स्थिति—प्रसव के समय गर्भिणी को किस स्थिति में रहना चाहिए, इसके बारे में चिकित्सकों में मतभेद पाया जाता है। फ्रांस में स्त्रियाँ चित लेट कर बच्चा जनती हैं, और किसी देश में घुटनों के ऊपर हाथों का जोर देकर, आसन से बैठ कर जनतीं हैं। किसी देश में बायीं करवट लेट कर पाँव को पेट पर मोड़ कर, जंघाओं के बीच तकिया रख कर बच्चा जनतीं हैं तो कोई दाहिनी करवट लेट कर जनती हैं।

प्रसव क्रिया—सम्पूर्ण प्रसव क्रिया को तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है। जैसे—

१—दर्द आरम्भ होने के समय से लेकर गर्भाशय का अन्तः मुख खुलने का समय तक।

२—गर्भाशय के अन्तः मुख के खुलने से लेकर शिशु के बाहर आने तक।

३—शिशु के बाहर आने के समय से लेकर कमल के गिरने तक।

पहिली अवस्था—इस अवस्था में प्रायः झूठा दर्द उत्पन्न होता है, अथवा दर्द इस प्रकार का होता है, जो जरा मन को दृढ़ करने, साहस बटोरने से, सहा जा सकता है। इसलिए इस अवस्था में बिस्तर पर न लेट कर थोड़ा घूमना-फिरना चाहिए। जब दर्द बढ़ने लगे, तब गर्भिणी को चाहिए कि बायीं करवट बिस्तर के किनारे इस तरह से लेटे कि उसके नितम्ब बिस्तर के किनारे पर आ जाय। घुटने पेट पर मुड़ जायँ, दोनों घुटनों के बीच तकिया दबा लेना चाहिए। अथवा पीठ के बल लेट कर दोनों घुटनों को पेट पर मोड़ लेना चाहिए। जब जोरों का दर्द होने लगे तब गर्भिणी को चाहिए कि वह श्वास को रोक ले और पांवों पायंत पर बंधे तख्ते के साथ या पायंत की ओर बैठे हुए कष्टि की ओर तान दे, और हाथों से पायंत पर बंधे अंगोछे को खींचना चाहिए। इस तरह करने से मांस पोशियों को सहायता पहुँचेगी।

यदि गर्भाशय का अन्तः मुख खुल जाय और कलाएं न फटें तो दाई को चाहिए कि उनको साफ कैंची से फाड़ जिससे गर्भोदक बह जाय। बहुत बार यह जरायु में लिपटा हुआ ही बाहर आता है। उस समय प्रसव कठिन और दुखदायी हो जाता है। जब स्वाभाविक दर्द उठ रहा हो, तभी गर्भिणी को बल प्रयोग (कांखना) करना चाहिए।

दूसरी अवस्था—कलाओं के फटने और गर्भोदक के बाहर निकल आने पर दर्द कुछ समय के लिए रुक-सा जाता है। लेकिन थोड़ी ही देर बाद फिर जोरों से होने लगता है। इस बार दर्द का वेग बहुत तीव्र होता जाता है और दर्द होने के बीच का अन्तर घटता जाता है। अन्त में एक तीव्र आह भरी वेदना के साथ गर्भ का शिर योनि-मुख में आ जाता है। इस समय फिर दर्द रुक जाता है, जिससे गर्भिणी को क्षणिक विश्राम मिल जाता है। इसके बाद फिर दर्द आरम्भ होता है और शिर योनि-मुख से निकल कर सीवन की ओर जाता है। शिर के बाद स्कन्ध और धड़ तथा अन्त में पांव निकल आते हैं। इस समय हाथ रखकर सीवन, गुदा और योनि के बीच के स्थान को बचाना चाहिए। प्रायः फी सैकड़ा ९५ पुरुषों में पहले शिशु का शिर ही बाहर आता है। इसका मुख्य कारण इसका गुरुत्व है।

तीसरी अवस्था—गर्भ के निकल आने के बाद दर्द रुक जाता है। गर्भाशय नीचे की ओर संकुचित होने लगता है। इस संकोच के कारण गर्भाशय में लगा हुआ कमल पृथक हो जाता है, जो एकतीव्र संकोच के कारण गर्भाशय के बाहर निकल आता है। साधारणतः यह क्रिया बच्चे के बाहर आने के १० से २० मिनट के बाद समाप्त हो जाती है और कमल बाहर निकल आता है। लेकिन बहुत बार देरी भी हो जाती है। यदि देरी हो जाय तो इसको खींचना नहीं चाहिए, बल्कि गर्भाशय को हाथ के पेड़ू की ओर दबाना चाहिए।

नाल कटना—जब तक नाल में धड़कन प्रतीत होती रहे, तब तक उसको नहीं बांधना चाहिए। धड़कन बन्द होने पर नाभि के ३ अंगुल ऊपर एक बन्द लगाना चाहिए, और दूसरा बन्द नाभि के १॥ अंगुल ऊपर। इन दोनों के बीच में से नाभि को तेज चाकू से काट देना चाहिए। यदि

नाल ठीक तौर से काटी जायगी, तो किसी प्रकार का रक्त-स्राव नहीं होगा।

प्रसव-काल में दाई का कर्त्तव्य—दाई का सबसे पहला कर्त्तव्य है कि वह सीवन की रक्षा करे। दूसरा यह कि शिशु के उत्पन्न होने पर उसके श्वास-प्रश्वास का ध्यान रक्खे। जिस समय शिशु उत्पन्न होता है, वह रोता है। रोने से उसके फेफड़े काम करने लगते हैं। उसका पहला खास काम अन्तः श्वास होता है। यदि उसका मुँह पहले से साफ नहीं कर दिया जायगा तो बलगम अन्दर चला जायगा। इसलिए सब से पहले उसके मुँह आदि को रुई के फाहे से साफ कर देना चाहिए। तीसरा कार्य शिशु के उत्पन्न हो जाने के बाद गर्भ की परीक्षा करना है। जब तक गर्भाशय पेडू में आकर एक कठोर गेंद की भांति न मालूम होने लगे, तब तक उसको अपने हाथों के दबाए रखना चाहिए। यदि गर्भाशय संकुचित नहीं होगा, तो तीव्र रक्त स्राव होने का भय है। चौथा काम नाल का काटना है।

प्रसव-क्रिया के समय—दूध, ठण्डा या गरम पानी प्रसूता को दिया जा सकता है किसी भी प्रकार का ठोस भोजन हानिकारक होता है यदि दर्द के समय गर्भिणी सो जाय तो उसे जगाना अच्छा नहीं।

आमतौर पर प्रसव में ६ से १२ घन्टे लगते हैं, परन्तु प्रथम बार गर्भ धारण करने वाली स्त्रियों में बहुत समय लग जाता है। बहुत बार प्रसव-क्रिया झूठे दर्दों के कारण कई दिन और कई घन्टे ले लेती है। हर प्रकार का दर्द पेट में मालूम होता है, पीठ में नहीं। झूठे दर्द प्रायः आँतों के विक्षोभ से होते है जो रेंड़ी तेल या मृदु विरेचन से सुगमता से दूर हो सकते हैं।

प्रसूता की देखभाल—(१) बच्चे की पैदाइश हो जाने के बाद माँ की देखभाल विशेष रूप से करने भी आवश्यकता है। उसे पूर्ण विश्राम देना चाहिए। प्रसव के बाद दो चार घन्टे तक हिले-डुले बिनापार्श्व केभार सोते रहना चाहिए। पहले दो तीन दिन तक विशेष आराम की जरूरत है।

(२) प्रसव के बाद योनि से १०-१२ दिन तक रक्त तथा अन्यद्रव पदार्थ निकलता रहता है। यदि पूरी तौर से सफाई का ध्यान न रक्खा गया तो इसमें से बहुत दुर्गन्धि आती है। इससे दुर्गन्धि का होना इसबात का चिन्ह है कि प्रसूता की दशा भय से खाली नहीं है।

(३) पेट के ऊपर तैयार रक्खी हुई पट्टियाँ बांध देनी चाहिए, जिससे वायु कुपित होकर पेट फुला न दे। हमारे यहां पेट पर पट्टी बाँधने की प्रथा नहीं परन्तु चलानी चाहिए।

४—प्रसव हो जाने के बाद ज्यादातर प्रसूता को पाखाना नहीं होता, इसके लिए या एनिमा काप्रयोग किया जा सकता है।

५—प्रसूता को पूर्ण विश्राम देना चाहिए। पति या अन्य आवश्यक आदमियों के सिवाय और किसी को ५-६ दिन तक घर में न जाने देना चाहिए।

६—यदि प्रसूता थक गई हो गरम दूध आदि पिला कर उसे सुला देना चाहिए।

७—प्रसव के ६ घन्टे तक प्रसूता को पेशाब हो जाना चाहिए। और यदि न हो तो पेड़ू पर सेंक करना चाहिए।

८—साधारणतः प्रसव के ३६ या ४८ घन्टे बाद पाखाना हो जाता है। यदि आँतों का निचला भाग अवरुद्ध हो तो एनिमा देना चाहिए। यदि माता बच्चे को दूध न पिलाती हो तो उसे मृद विरेचन दिया जा सकता है।

९—जबतक स्तनों में दूध न आ जाय और ज्वर का समय बीत न जाय तबतक माता को दूध देना चाहिए। इसके बाद हल्का और सुपथ्य भोजन दिया जाय। जैसे-जौ की दलिया।

१०—स्राव की ओर अवश्य ध्यान देना चाहिए। साधारणतः प्रसव को समाप्त होने के आध घन्टे बाद तक तक भो स्राव होता है। बिस्तर से उठते समय वा मूत्र-त्याग करते समय यह बढ़ जाता है। जबतक स्राव या दर्द बहुत न हो, किसी इलाज की आवश्यकता नहीं है। पहले इसका रंग लाल होता है, फिर पतला पानी जैसा; फिर रंग बदल कर हरा पीला सा हो जाता है और अन्त में गदले पानी सा होकर बन्द हो जाता है। कइयों में थोड़े दिनों में बन्द हो जाता है। निर्बल स्त्रियों में महीने भर तक चालू रहता है। योनि-भगों को दोनों समय साफ करना चाहिए। गर्भाशय को धोना नहीं चाहिए।

११-माता को १२ दिन तक बिस्तर पर रहना चाहिए। उसके खराब कपड़ों को बदल देना चाहिए। उसको एक मास तक बिस्तर पर रहना चाहिए।

१२-उसकी छाती का वस्त्र इस प्रकार का होना चाहिए जो छाती और स्तनों को दबाए नहीं।

विटामिन की खोज

श्री 'धन्वन्तरि'

['विटामिन' शब्द की उत्पत्ति कैसे हुई, इसके आविष्कारक कौन थे, खाद्य-तत्व सम्बन्धी इस महत्वपूर्ण सिद्धान्त का विकास कैसे हुआ, आदि अनेक प्रश्नों का उत्तर आपको इस लेख में मिलेगा। साथ ही इस में आप उस मूलाधार का भी दिग्दर्शन पायेंगे जिस पर विटामिन का सिद्धान्त अवलम्बित है। अतः इसकी उपयोगिता के बारे में हमें कुछ विशेष कहना नहीं, इस लेख से यह आपको अपने आप मालूम हो जायगा। इसी आशा से सहयोगी 'आजकल' ये उद्धत कर इस हमें 'जीवन सखा' के प्रेमी पाठकों के साम प्रस्तुत करते हैं। --सं०]

विटामिन क खोज केसीमिर फंक नामक एक पोलिश महोदय ने की थी जो पिछले महायुद्ध के प्रारम्भ होने से कुछ वर्ष पूर्व लन्दन में लिस्टर इन्स्टीट्यूट में काम किया करते थे। वहीं उन्होंने इस शब्द का निर्माण किया। १९२० में प्रोफेसर ड्रूमंड, (अब सर जैक ड्रूमंड, ब्रिटिश खाद्य विभाग के वैज्ञानिक सलाहकार) ने यह सुझाव पेश किया कि अंग्रेजी शब्द विटामिन (vitamine) के अन्तिम अक्षर "ई" को गिरा दिया जावे, क्योंकि उन दिनों जितने विटामिन विद्वानों को ज्ञात थे, उनमें से कोई भी रासायनिक तत्वों की श्रेणी में नहीं थे। ड्रूमंड महोदय का प्रस्ताव स्वीकृत हुआ और यह शब्द अपने वर्तमान रूप में प्रचलित हो गया।

विटामिन साधारणतः उन खाद्य तत्वों को कहते हैं जो कि जीवन के लिये अत्यन्त आवश्यक हैं। इन खाद्य तत्वों को बड़े प्राणी अपने तौर पर नहीं बना सकते। ये पौष्टिक तत्व निम्न कोटि के प्राणियों द्वारा तैयार किये जाते हैं।

विटामिन की कहानी का आरम्भ कहां से किया जाय यह निश्चय करना सरल नहीं। एबर की पुस्तक पेपीरस (Papyrus) में, जो कि औषध सम्बन्धी पुस्तकों में बहुत प्राचीन मानी जाती है, विटामिन 'ए' का उल्लेख हुआ है। कभी-कभी खाद्य सम्बन्धी जनश्रुतियों के आधार पर आगे चल कर वैज्ञानिक खोजें हो जाया करती हैं परन्तु विटामिन का वास्तविक इतिहास तभी से प्रारम्भ होता है, जब अठारहवीं शताब्दी के ब्रिटिश जहाज़ियों ने यह प्रमाणित कर दिया था कि समुद्र में जहाज़ चलाने वाले लोगों को रक्त विकार के कारण होने वाली सब से बुरी बीमारी स्कर्वी ताज़ी, हरी सब्ज़ियों तथा फलों के खाने से रोकी जा सकती है।

१७९५ में सर गिलबर्ट ब्लेन ने एक नौ-सेना सम्बन्धी कानून पास कराया जिसके अनुसार समुद्र में काम करने वाले नौसैनिकों के लिये नीबू का रस पीना अनिवार्य बताया गया था। इस रस को शर्बत के समान गाढ़ा करके मद्यसार द्वारा सुरक्षित रखा जाता था इस सुधार का परिणाम यह हुआ कि ब्रिटिश सैनिक स्कर्वी रोग से सर्वथा मुक्त हो गये तथा उनकी क्षमता में भी वृद्धि हो गयी।

रोगियों के अतिरिक्त कुछ ऐसे जहाजी भी थे जिनके शरीर में प्रत्यक्ष रूप से तो स्कर्वी का कोई लक्षण नहीं था, परन्तु यह रोग अपनी प्रारम्भिक अवस्था में उन्हें अवश्य हो रहा था। जेम्स लिंड का, जो कि ब्रिटिश नेवी में सर्जन थे तथा जिन्होंने इस रोग के कारण तथा उपचार का सब से पहले पूर्ण वैज्ञानिक ढंग से उल्लेख किया है, मत है कि इस रोग के साथ मनुष्य में सुस्ती तथा आलस्य असाधारण रूप से बढ़ जाते हैं। इसके सम्बन्ध में कुछ लोगों की यह भ्रान्त धारणा है कि यह रोगी की प्रकृति का ही प्रभाव है। यह धारणा कई जहाज़ियों के लिये प्राणघातक सिद्ध हुई है। बहुत से ऐसे रोगी जहाज़ी अपने अफ़सरों की आज्ञा मानकर मस्तूल बांधने के रस्सों पर जा चढ़ते हैं उसका ऊपर ही दम निकल जाता है और वे मस्तूल की चोटी से नीचे गिर पड़ते हैं।

आज से ३० वर्ष पूर्व प्रयोगशालाओं में विटामिन के ज्ञान में कोई उन्नति न हुई थी। मेगेन्डी ने अपने एक लेख में लिखा है कि १८२० में एक प्रयोग किया गया था। लन्दन के 'लेन्सिट' पत्र के ११ मार्च १८२६ के अंक में यह रिपोर्ट प्रकाशित हुई है—

एक अच्छी सफेद रोटी और पानी पर पला हुआ कुत्ता १५ दिन के अधिक नहीं जी सका लेकिन फौजी रोटी पर पला हुआ कुत्ता जीवित तथा स्वस्थ है।

मेगेन्डी ने इन दोनों जानवरों के भाग्य के अन्तर का का कारण बताने का कहीं प्रयत्न नहीं किया है। इसका परिणाम यह हुआ कि वह प्रयोग भी जो आज भी केवल चपाती द्वारा रोग का निवारण करने के स्वप्न देखने वालों को कुछ अपील कर जाता, सर्वथा विस्मृत हो गया है।

उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त से कुछ ही समय पहले आइकमैन नामक एक डच डाक्टर ने जावा द्वीप में कुछ मनोरंजक निरीक्षण किये। वहाँ जेल के अस्पताल के वार्ड ऐसे रोगियों से भरे हुये थे जिन्हें "बेरीबेरी" की बीमारी हो गयी थी। यह रोग उष्ण कटिबन्ध के प्रदेशों में आमतौर से पाया जाता है। उस समय बहुत से उत्सुक विद्वानों ने इस रोग का कारण का जानने का प्रयत्न किया था। १८९७ में इस रोग केवल एक ही कारण ज्ञात था कि यह रोग जीवाणुओं द्वारा फैलता है। सच तो यह कि वह युग ही जीवाणु खोज निकालने का युग था। कोई भी व्यक्ति किसी खून के धब्बे पर माइक्रोस्कोप लगाकर रातोंरात नाम पैदा कर सकता था। वैज्ञानिकों में इस सम्बन्ध में होड़ लगी हुई थी कि बेरीबेरी रोग के जीवाणु सम्बन्धी कारण का सबसे पहले पता कौन लगाता है। इस सम्बन्ध में कुछ आविष्कारों की घोषणा इससे पहले भी हो चुकी थी। यह सच है कि इनमें अधिकांश दावे सूक्ष्म अन्वेषण के समक्ष ठहर नहीं सके। फिर भी आम डाक्टरों की राय थी कि बैक्टीरिया के रहस्य पर से पर्दा उठाने में थोड़े ही समय की देर है।

बेरीबेरी के रोगी का सबसे स्पष्ट लक्षण यह है कि उसकी टाँगों को लकवा मार जाता है। आइकमैन ने एक दिन चलने-फिरने में असमर्थ आदमियों के वार्ड में यह देखा कि जेलखाने की मुर्गियाँ भी इस रोग से पीड़ित हैं। वे चलती-चलती लड़खड़ा कर भूमि पर गिर पड़ती हैं और बेरीबेरी के रोगी के समान ही वहीं दम तोड़ देती हैं। इससे डाक्टर इस परिणाम पर पहुँचे कि इन मुर्गियों को भी जेल के कैदियों से छूत की बीमारी लग गयी है। परन्तु खाद्य में आकस्मिक परिवर्तन करने के पश्चात् मुर्गियाँ नीरोग हो गयीं। इससे डाक्टर महोदय के मन में और ही विचार उठने लगे। वार्डों के रोगियों तथा आँगन की मुर्गियों को एक ही खुराक दी जाती थी। वह थी कारखानों में कुटे हुये चावल। सम्भव है कि आदमियों और मुर्गियों के रोग का कारण उनकी खुराक ही हो। उन दिनों भी मशीन में कुटे हुये चावलों को पूर्ण खाद्य कहने का किसी में साहस नहीं था।

बस फिर क्या था! आइकमैन महोदय ने कुछ स्वदेशी प्रयोग प्रारम्भ कर दिये। उन्हें इस बात का ज्ञान हो गय कि केवल मशीन से साफ किए गए चावल पर रहने से मुर्गियों को भी लकवे की बीमारी हो सकती है। तथापि जब उन्होंने मुर्गियों को हाथ से कुटे हुये चावल पर, जिनमें कि चावलों के अंकुर तथा भूसी भी मिली हुई थी पाला, तो वे सर्वथा स्वस्थ्य रहीं। उन्होंने इस बात को सिद्ध कर दिखाया कि मशीन से साफ किए गए चावल के अतिरिक्त अन्य प्रकार के चावल लकवे को रोकते भी हैं तथा उसे दूर भी कर देते हैं। उन्होंने बताया कि चमकदार चावल में, जिनके कारण उनकी मुर्गियों को लकवा हो गया था, विष नहीं है तथा इनका दुष्प्रभाव प्रोटीन जन्य लवण के अभाव के कारण नहीं। इसके पश्चात् इनके एक सहकारी श्री ग्रिन्स ने बताया कि मशीनी चावलों पर पली हुई मुर्गियों में लकवा को रोकने के लिए सेम की फलियाँ भी उतनी ही गुणकारी हैं। उन्होंने सेम की फलियों के क्वाथ से न केवल मुर्गियों के लकवे का, बल्कि बेरीबेरी से पीड़ित मनुष्यों का भी सफलतापूर्वक उपचार किया।

आइकमैन सबसे पहला डाक्टर था जिसने प्रयोग द्वारा यह सिद्ध किया कि खाद्य में किसी भी विशेष तत्व के अभाव से भी रोग हो जाता है तथा उसी सत्व के प्रभाव से उस रोग का निदान भी हो जाता है। सब से पहले उन्होंने विटामिन सम्बन्धी प्रयोग किये। उन्हें यह सन्देह था बेरीबेरी अनुपयुक्त भोजन का परिणाम है। अतः वे इस सम्बन्ध में एक प्राचीन किम्वदन्ती पर विश्वास करने लगे थे। पाश-

चर की सफलताओं के पूर्व डाक्टरों की यही राय थी कि बेरीबेरी का रोग भोजन की त्रुटि से ही होता है। १८८५ में जापानी एडमिरल तकाई ने खाद्य में सुधार करके जापनी नौसैनिकों में से बेरीबेरी रोग का मूलोच्छेदन कर दिया था। परन्तु ऐसे समय जब कि संसार के मनीषी लोग कीटाणुओं की खोज निकालने में लगे हुये थे, आइकमैन कुछ नवीन सुझाव संसार के सम्मुख उपस्थित किए। १९३० में उन्हें नोबेल पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

विटामिन के इतिहास में १९०६ में किया गया विस्कान्सिन प्रयोग बड़ा महत्व रखता है। इस उल्लेखनीय प्रयोग की कहानी डाक्टर डी क्रूव ने अपनी पुस्तक 'हंगर फाइटर्स' में दी है। यह पुस्तक बहुत मनोरंजक है तथा इसका लेखक बड़ा उत्साही है। पर प्रयोग का श्री गणेश करने वाले श्री बैबकॉक ने अपनी युवावस्था में वायट महोदय के चरणों में बैठकर जर्मनी में अध्ययन करके यह सीखा था कि खाद्य कार्बोहाइड्रेट, चरबी तथा प्रोटीन से मिलकर बनता है अतः शरीर को पुष्ट बनाने वाले तत्व अपेक्षाकृत सहज एवं रासायनिक समस्या के सुलझाव पर अवलम्बित हैं। किसी भी खाद्यपदार्थ के रासायनिक विश्लेषण द्वारा ही यह पता चल सकता है कि अमुक खाद्य पदार्थ मनुष्यों के लिए अधिक उपयोगी है, अथवा पशु के लिए। परन्तु बैबकॉक महोदय, किसी कारणवश, इस बात पर विश्वास नहीं करते, थे अतः उन्हों ने इस प्रश्न की परीक्षा की। उन्हों ने कुछ गायें खरीदीं। उनके तीन दल बना लिए। एक दल की गायों को मक्का, दूसरे दल की गायों को गेहूँ तथा तीसरे दल की गायों को जई की चारा देने लगे। उन्होंने इस बात का ध्यान रक्खा कि उनके चारे में प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट तथा चरबी का परिमाण उचित मात्रा में रहे। शास्त्रीय दृष्टिकोण से ये तीनों प्रकार के चारे समान एवं पर्याप्त थे और इसमें भी संदेह नहीं कि काफी समय तक गायें सर्वथा नीरोग एवं भली-चंगी रहीं। परन्तु बैबकॉक महोदय धैर्य से यह सब देखते रहे। अन्त में, एक वर्ष पश्चात् तीनों दलों की गायों के स्वास्थ्य में पर्याप्त अन्तर स्पष्ट दिखाई देने लगा। जिन गायों को मक्का का चारा खिलाया जाता था, उन्होंने पूरे समय के बाद स्वस्थ तथा हृष्ट-पुष्ट बछड़ों को जन्म दिया, जिन गायों को जई का चारा खिलाया जाता था, उनके कुछ बछड़े, जो ब्याने पर पूरे वज़न के थे, कुछ ही महीने में मर गये। जिन गायों को गेहूँ का चारा दिया जाता था उनके या तो मृत बछड़े हुये, या ब्याने के कुछ ही घन्टे बाद उनकी मृत्यु हो गई। इसके पश्चात् हमें जो अनुभव प्राप्त हुए हैं, उनके आधार पर यह कहा जा सकता है कि बछड़ों के तीनों दलों की एक दूसरे से विभिन्न दशा का कारण चारे में विटामिन 'ए' की विभिन्न श्रेणियों का होना है।

अत्यन्त उन्नत जीव-विद्या संबन्धी रसायन-शास्त्र भी इस अन्तर का व्याख्या नहीं कर सका। उस समय लोगों ने इस पर इतना ध्यान भी न दिया जितना कि देना चाहिए था। परन्तु इस प्रयोग से कई अमेरिकन वैज्ञानिकों को प्रेरणा मिली। अतः वे लोग खाद्यपदार्थों के तत्वों के उस अन्तर का अध्ययन करने लगे जिसका पता प्रयोगशालाओं में विश्लेषण द्वारा नहीं लग सकता था। आहार क्षेत्र में खोज करने वालों में सुप्रसिद्ध दो अमेरिकन महानुभावों, श्री मैक्कालम तथा स्टीनबॉक, ने विस्कॉन्सिन में बैबकॉक के साथ मिल कर काम किया।

अनुसन्धान के क्षेत्र के प्रारम्भिक दिनों में भी इंगलैण्ड हालैण्ड अथवा अमेरिका से पीछे नहीं था। कैम्ब्रिज के प्रोफेसर (अब सर) फ्रैड्रिक गोलैण्ड हॉपकिन्स का भी बैबकॉक के समान यही विश्वास था कि पूर्ण आहार में शक्ति उन्नति करने वाले शास्त्रीय तत्वों तथा जल से कुछ अधिक चीजें होनी चाहियें। उन्होंने पता लगाया कि जब चूहों को दूध के प्रोटीन, मैदा, चीनी तथा सुअर की चर्बी के मिश्रित भोजन पर जिसमें कि प्रोटीन, चरबी तथा कारबोहाइड्रेट् उचित तथा पर्याप्त मात्रा में हों, पाला जाय तब तो वे जीवित रहते हैं और यदि इन मिश्रित पदार्थों को शुद्ध करके उन्हें खिलाया जाय, तो वे मर जाते हैं। इस पर हॉपकिन्स ने उस शुद्ध किये हुए भोजन में थोड़ा सा दूध मिला दिया। यद्यपि वह इतना नहीं था कि उसमें प्रोटीन तथा चरबी उचित मात्रा में होती, फिर भी इसके कारण ही चूहे जीते रहे।

इसके पश्चात् तो विटामिन संबन्धी अनुसन्धान में बड़ी शीघ्रता से उन्नति होने लगी। फंक महोदय ने मुर्गियों को

मशीनी चावल खिला कर आइकमैन के प्रयोग को दुहराया और विटामिन के तत्त्वों से लकवा पीड़ित मुर्गियों का उपचार करके लंदन के डाक्टरों को अचम्भे में डाल दिया। आइकमैन महोदय ने विटामिन सम्बन्धी प्रयोग जावा में किए थे, उनका उल्लेख अधिकतर डच भाषा में ही मिलता था, अतः इधर के विद्वानों ने उन पर कुछ अधिक ध्यान नहीं दिया। परन्तु फंक महोदय बात की तह तक पहुंच गये थे उनकी कल्पना बड़ी सजीव थी वे बेरी-बेरी अवरोधक विटामिन का रासायनिक तत्त्व ढूँढ़ निकालने को उत्सुक थे। क्रियात्मकता की दृष्टि से उनका कार्य केवल उस अनुसंधान का सूक्ष्म सम्पादन मात्र था जिसे डच, ब्रिटिश तथा अमेरिकन डाक्टर बेरीबेरी की समस्या हल करने के लिए अपनी बस्तियों कर रहे थे। उन्होंने संसार के सम्मुख यह सुझाव पेश किया कि मनुष्यमात्र के अधिकतर रोगों का कारण विटामिनों की कमी है। यह सुझाव आगे चल कर बड़ा महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुआ।

प्रथम महायुद्ध के कुछ वर्ष पूर्व विटामिन के सम्बन्ध में बहुत से महत्त्वपूर्ण अनुसंधान हुए। क्रिश्चियाना में, होल्स्ट तथा फ्रालिश महोदय ने पता लगाया कि यदि दक्षिणी अमेरिका के गिनी प्रान्त के सुअरों को केवल रोटी पर पाला जाय, तो उन्हें स्कर्वी के ढंग का रोग हो जाता है जो केवल सब्जियों तथा फलों के सेवन से ही दूर हो सकता है। आप कह सकते हैं कि सुअरों में स्कर्वी का रोग उत्पन्न कर देने मात्र से जीवविज्ञान सम्बन्धी खोज में किसी उन्नति का लक्षण नहीं माना जा सकता क्योंकि कुछ शताब्दियां पूर्व कप्तान कुक ने ताज़ा फलों और सब्जियों से अपने नाविकों में स्कर्वी फैलाने से रोक दी थी। उन्हें इसी बल पर रायल सोसाइटी ने कॉपले पदक भी प्रधान किया था। १७४७ में सर्जन लिन्ड ने स्कर्वी रोग से ग्रस्त ब्रिटिश नाविकों पर सराहनीय प्रयोग किये। यद्यपि स्कर्वी सम्बन्धी मोटी-मोटी बातों का तो विद्वानों को बहुत समय पहले से ज्ञात था, तथापि होल्स्ट तथा फ्रोलिश महोदय के अनुसंधान का फल यह हुआ कि लोग उत्तरी ध्रुव अथवा केप वार्न में युद्धपोत में सवार होकर गये बिना ही इसका बड़े मनोयोग से अध्ययन करने लगे। स्कर्वी के अनुसंधान सम्बन्धी प्रारम्भिक कार्य नार्वेजियन प्रयोगशाला में आकस्मिक ही नहीं हो गया। बात यह है कि नार्वे का तट उत्तर की ओर उत्तरी ध्रुव तक फैला हुआ है, अतः वहाँ स्कर्वी रोग की समस्या कुछ कम महत्त्वपूर्ण नहीं है।

इसी बीच में बहुत से अमेरिकन वैज्ञानिक हॉपकिन्स के समान इसी समस्या पर विचार कर रहे थे कि क्या पशुओं को प्रोटीन, चरबी तथा कार्बोहाइड्रेट के देशी मिश्रण पर, पाला जा सकता है।

१९०९ में बाल्टीमोर के जान्स हॉपकिन्स विश्वविद्यालय के मैककालम महोदय ने यह घोषणा की कि चूहों को शुद्ध किये हुए खाने पर पाला जा सकता है, शर्त यह है कि वह स्वादिष्ट हो एवं नित्यप्रति उसमें थोड़ा परिवर्तन होता रहे। उनके सुझाये हुए मिश्रित भोजन में मक्खन तथा दूध की चीनी शामिल थी। परन्तु येल के योस्वार्न तथा मेन्डेल महोदयों ने, जो किसी अन्य प्रकार की चरबी तथा चीनी का प्रयोग करते थे, यह मालूम किया कि उनके सब चूहे मर गये हैं। बाद को ओसबार्न तथा मेन्डेल ने भी मैककालम और उसके सहयोगी डेविस की मान्यताओं को स्वीकार कर लिया।

प्रथम विश्व-युद्ध से विटामिन के अध्ययन को बड़ा बल मिला। मैसोपोटेमिया स्थित ब्रिटिश सैनिकों को स्कर्वी तथा बेरीबेरी का और जर्मन कैदियों को मिस्र में पलाग्रा रोग हो गया। यूरोप में भी बुरे भोजन के कारण दूसरे लोगों को नाना प्रकार के रोग हो गये। युद्ध के पश्चात् वियना में विटामिन सम्बन्धी अध्ययन के बड़े अवसर मिलने लगे। इसका एक कारण यह भी है कि आस्ट्रियन बच्चों को सूखा रोग की आम शिकायत हो गयी थी। उसका उपचार भी बहुत थोड़े समय में कर दिया गया।

पिछले १५ वर्षों में वैज्ञानिक पत्रों में विभिन्न विटामिनों की प्रकृति के सम्बन्ध में कई लेख प्रकाशित हुए हैं। उनमें आहार सम्बन्धी समस्याओं पर प्रकाश डाला गया है।

नवीन क्षेत्रों में खोज करने वालों के सम्बन्ध में वैज्ञानिकों की यह धारणा बन गयी थी कि उनका उपदेश बहरे कानों पर पड़ रहा है। पुराने विचार के एक व्यक्ति ने तो यहां तक कह दिया था कि विटामिन के अनुसंधान में कम से कम दिमाग लगाने की ज़रूरत पड़ती है। यह सच है कि विटामिन सम्बन्धी कुछ प्रयोगों में अधिक विचारशीलता अपेक्षित नहीं, परन्तु इससे दूसरे लोगों के लिये एक महत्वपूर्ण तथा मनोरंजन वैज्ञानिक क्षेत्र खुल जाता है। सारांश यह कि इस समय लोगों ने प्रयोगशाला में ज्ञान का पर्याप्त संचय कर लिया है, उसे क्रियात्मक रूप देना ही शेष रहता है।

रंगों का महान उत्सव—होली

श्री श्रीकृष्ण शर्मा, बीं० ए०, एन० डी० डी० वाई

होली-रंग प्रधान उत्सव है और रंग है स्वतः जीवन का प्रतीक; क्योंकि यदि रंग में जीवन न होता तो वह जीवन में उत्साह, दिलचस्पी और माधुरी कैसे उत्पन्न कर सकता था ? रंग में जीवन के प्रत्येक विभाग में रोचकता उत्पन्न करने की शक्ति है। प्रस्तुत लेख का यही मनोवैज्ञानिक आधार है जिसका प्रतिपादन विचार शील लेखक ने बड़े युक्ति युक्त ढंग के किया है। आप की विचारणा सुस्पष्ट और शली, आर्षकक, मस्ता और सजीव है ! आपका यह सुन्दर लेख लेख मनोरंजक होने के साथ ही होली में प्रयुम्क्त रंगों की मसप्त पर भी प्रकाश डालने वाला है। हम यह कह सकते हैं कि लेखक ने इस रंगीले त्योहार का जो मनोज्ञानिक पहलू प्रस्तुत किया है. वह अपने ढंग की एक बिलकुल नयी चीज है। [सं०—]

मनुष्य सामाजिक प्राणी है। उसके सभी कार्य उसी तक सीमित नहीं रहते। यहां तक वह अपने विचारों और भावों तक का साथी खोजा करता है। परन्तु जब कोई असाधारण सुख या दुख की बात उसके जीवन में घटित होती है तो व्यक्ति का रहा सहा बन्धन भी टूट जाता है। मनुष्य का चंचल मन और हृदय सदैव इतना गम्भीर नहीं होता कि वह अपने कौतूहल युक्त दुख या सुख के बोझ को अकेला संभाल सके। दूसरे जब वह देखता है कि उन्हें छिपाने में कोई हानि नहीं वरन् लाभ ही होता है तो ऐसा अस्वाविक दमन वह क्यों करे ? दुख बाँटने से बट जाता है और जीवन के भार को हल्का कर देता है। और सुख दूसरों को लुटाने से घटता नहीं वरन् और फैलकर विस्तृत हो जाता है !

सभी त्योहारों के मूल में यही मनोव्रैज्ञानिक रहस्य छिपा हुआ हैं कि सामाजिक होने के कारण मनुष्य अपने सुख को एक दूसरे को बाँटना चाहता है। आनन्द मनुष्य के हृदय में समाता नहीं वह निकलना (Over flow) चाहता है। हर्षो उन्माद का छलकता हुआ प्याला व्यक्ति के हाथ में ठहर नहीं पाता, वह नाचना चाहता है। व्यक्ति के काँपते हुए हाथ उसे अकेले नहीं सँभाल सकते। अतः वह एक हाथ से दूसरे और दूसरे से तीसरे में जा जा कर समस्त समाज में होकर स्वयं अपना व्यक्तित्व खो देता है, उस विशाल आनन्द की लहरों में मिल जाता है जहां किसी का व्यक्तिगत अस्तिव ही नहीं। हिन्दुओं के त्योहारों में मुख्य दो ही हैं। पहला तो नव वर्ष का शुभागमन सूचक हुआ रगींला उत्सव होली का है और दूसरा वर्ष के आखिरी भाग में सुशोभित दीप मालिका का त्योहार है। होली बहुत मरदाना और जीवित त्योहार है। यह दिन का उत्सव है, जबकि सूर्य शासन करता है। दीपमालिका के नाम से ही नारीत्व का भान होता है। यह रात का त्योहार है। पहले का माध्यम रंग है और दूसरे का झिलमिल प्रकाश की लहरों में लहराती दीपमालिका——दीवाली-मायायुक्त है, उसमें अंधकार का आवरण है और नारी की ही भांति तारों से सुसज्जित काली साड़ी पहन कर आती है। उसे लक्ष्मी का आशिर्वाद प्राप्त है। परन्तु होली में यौवन का उन्माद, अदम्य साहस और उत्साह तथा शक्ति का सन्देश है, इसमें क्रान्ति की झलक है और है स्वतंत्रता का सन्देश। होली में राग रंग की तरंग, यौवन की उमंग और जीवन का मधुर संगीत भरा हुआ है।

अभी कहा गया है कि होली का माध्यम रंग है, इसका समर्थन प्रकृति स्वयं करती है। होली के आगमन के पूर्व ही प्रकृति में सर्वत्र रंगों का साम्राज्य स्थापित हो जाता है। ऋतु-परिवर्तन और वसंत के आगमन के साथ ही चहुंओर एक रंगींन और वैभव पूर्ण लीला फैल जाती है। प्रकृति नववधू की भांति श्रृंगार किये हुए आती है। उस आकर्षक सृष्टि की झलक कविश्रेष्ठ श्री मैथलीशरण गुप्त की पंक्तियों में स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ती है।

काली काली कोयल बोली,
होली होली होली !
हंस कर लाल लाल होठों पर,
हरियाली हिल डोली !!
फूटा यौवन फाड़ प्रकृति की,
पीली पीली चोली-होली
होली-होली ।
अलस कर्मीलनी ने कलरव सुन,
उन्मद अखियाँ खोली
मल दी ऊषा ने अम्बर से दिन के,
मुख पर रोली-
होली-होली-होली ।
रागी फूलों ने पराग से,
भर ली अपनी झोली
और ओस ने केसर उनके स्फुट,
सम्पुट में घोली !
होली होली होली !!

किसी ने ठीक कहा है कि 'रंग जीवन है'। अगर रंग में जीवन न होता तो वह जीवन में उत्साह, दिलचस्पी और माधुरी कैसे उत्पन्न कर सकता ? रंग में जीवन के प्रत्येक विभाग में रोचकता उत्पन्न करने की शक्ति है । रंगों में हमारे वातावरण, वस्त्र, भोजन, इत्यादि के प्रति रुचि तथा आकर्षण पैदा करने की क्षमता है । रूप में शक्ति पैदा करने वाला रंग ही है। यह हमारे भावुक तथा मानसिक दृष्टिकोण को बदल सकता है। रंग **केवल हमारे शरीर पर ही नहीं वरन् हमारे मन तथा हृदय पर भी विशेष प्रभाव** डालता है। दैनिक जीवन में इसीलिये इसका इतना महत्व है। रंग वास्तव में शरीर और मन दोनों के लिये टानिक है। शारीरिक और मानसिक वातावरण को स्वस्थ बना सकने के कारण ही रंग इस दिव्य उत्सव का माध्यम बन गया है। हमारे पूर्वज मनुष्य के स्वभाव, मनोविज्ञान तथा भौतिक विज्ञान से भली भांति परिचित थे। **रंग से बढ़ कर नव जीवन-सुधा और क्या हो सकती है ?** सालभर के लिये मनुष्य के शरीर और मन की कर्तव्य क्षेत्र की जिम्मेदारी को तैयार करने के लिए यह आदर्श साधन है ।

होली के अवसर पर पुराना वर्ष विदा होना चाहता है । नये वर्ष के आगमन के लिये उचित वातावरण भी होना चाहिए । दीवाली के लिये घर घर सफाई होती है, कलई होती है, दिये जलाये जाते हैं और तब सारा वातावरण जगमगा उठता है होली पर तो विशेष रूप से दाह-संस्कार होना चाहिये क्योंकि सालभर के दूषित वायु मडंल को पवित्र करना आवश्यक है। होली का महत्व और भी गम्भीर है । इस अवसर पर हम केवल ऊपरी सफाई ही नहीं आन्तरिक शुद्धि भी करते है। बाहरी कूड़े-कर्कट, गर्द गुब्बार, जालों झंखाड़ों से विकट तो हमारे मन की गन्दगी होती है जहां अनेक दूषित संस्कार, भ्रम, प्रवंचनाएँ, दुर्वासनाएँ इत्यादि का आवरण चित की ढके रहता है । इन संचित संस्कारों को ज्ञानाग्नि ही भस्म कर सकती है । किन्तु प्रेम तथा त्याग की आहुति पाये बिना यह अग्नि प्रज्वलित नहीं होती । नई व्यवस्था (Structure) का निर्माण पुरानी व्यवस्था की समाधि पर ही होता है। विनाश में ही सृजन का रहस्य छिपा हुआ । है बिना बीज **के मिट्टी में मिला हुआ हुआ नया अंकुर नहीं फूटता ।** अतः यह परमावश्यक है कि नव वर्ष के **अवसर पर नवीन-संदेश को दीक्षा के लिये पुराने संस्कारों का निराकरण हो और पुराने वातावरण को बदला** जाय । हिन्दुओं के प्रत्येक शुभ संस्कारों में वातावरण को शुद्ध करने के लिये हवन किया जाता हैं जिससे कि वायु मडंल पवित्र हो जाय और कीटाणु आदि नष्ट हो जायँ ।

होली एक **सामूहिक उत्सव** है। इसीलिये व्यक्तिगत हवन की जगह एक विशाल-अग्नि पुंज प्रदीप्त किया जाता है । इससे वातावरण तो शुद्ध होता ही है परन्तु हम को अपने अन्दर भी ऐसी अग्नि जला कर अपनी दुर्वासनायें, बुराइयां, आलस्य, भय, इत्यादि को भी इसी में भस्म कर देना चाहिये । अग्निदेव का काम ही है पवित्र करना। वे कंचन नहीं कीच को ले कर ही संतुष्ट हो जाते हैं । शरीर में ज्वर का रूप धारण कर के संचित विकारो की भस्म करते हैं। ज्ञानी के मन में ज्ञान के रूप में

वृत्तियों को शुद्ध करते हैं। और भक्तों के हृदय में प्रेम-ज्वाला बनकर तन मन दोनों को निर्मल कर देते है। विना अग्नि परीक्षा द्वारा पवित्र हुए हम रंगों के दिव्य संदेश का ग्रहण नहीं कर सकते। पहले हमें जल की तरह ग्रहणशील बनना पड़ेगा। जल कितना दीन उदार निगुर्ण और शान्तियुक्त है।

इसी प्रकार अगर हम भी बन जायें तो रंगों के रंग में रंग सकते हैं। होली में भी रंग के अतिरिक्त जल का प्रयोग भी खूब होता है। अगर जल में पवन की सी निगुर्णता न हो तो रंग का वाहक नहीं बन सकता था। देश के वातावरण का उसके रंगों के अनुसार विकास होता है। प्रत्येक देश की प्रकृतिक रचना रंग-व्यवस्था के अनुसार भिन्न भिन्न होती है। देश के फूल फल गिरिकानन नदी झील इत्यादि एक विशिष्ट रंग-व्यवस्था (Colour-Pattern) को जन्म देते हैं जिसका प्रभाव वहां के निवासियों के आचार विचार रहन सहन पर पड़ता है। भिन्न-भिन्न ऋतुओं में यह परिवर्तन होता रहता है; परन्तु मूल में एक विशिष्ट रंग छटा अवश्य रहती है जो उस देश के व्यक्तित्व का परिचायक होती है। भारतवर्ष में लाल, पीला नारंगी रंग का प्रयोग नीला-बैगनी वर्ग के रंगों से अधिक होता है और इसके विपरीत पाश्चात्य देशों में नीले बैगनी वर्ग के रंगों को अधिक प्रिय समझा जाता है। इसका रहस्य यही है कि लाल-पीले वर्ग के रंग भौतिक हैं और उनकी तरफ रुचि भारतवासियों की आध्यात्मिकता की परिचय देती हैं। इसके विपरीत भौतिक उन्नति में रत पश्चिमी देशों के निवासियों की प्रवृत्ति अध्यात्मिकता का उन्नति की ओर होना अनिवार्य है जो नीले बैगनी वर्ग के अध्यात्मिक रंगों की ओर रुचि से प्रतीत होता है। होली में भी देखा गया है कि लाल-नारंगी का व्यवहार काफी होता है। अबीर गुलाल का प्रयोग यही सूचित करता है। परन्तु इसके अतिरिक्त चन्दन, गुलाबजल, इतर आदि का भी प्रयोग होता है। इन रंगों के महत्व पर विचार करना चाहिये। हम केवल गुलाबी पीले, और श्वेत (बुक्का का रंग) वर्ण पर विचार करेगें। इन तीनों में होली का रहस्य निहित है। गुलाबी रंग कोई स्वतंत्र रंग नहीं है वरन् लाल रंग की एक हल्की छटा (Tint) है। इसका जन्म लाल रंग की अरुण (Ruby) शाखा से हुआ है। लाल रंग भौतिक शक्ति का चिन्ह है। सर्वत्र शक्ति का केन्द्र यही है। अग्नि की ज्वाला में, मनुष्य के रक्त में यह निवास करने वाला सूक्ष्म अंश मूल प्रारम्भिक शक्ति (primordial Energy) का आधार है। इसके अनेक गुणों में उत्तेजना और उष्णता प्रधान है। लाल रंग की तीव्रता में वासना शयन करती है। यह काम और क्रोध का परिचायक और सृष्टि में सृजन (Creation) और प्रनन (procreation) क्रिया को संचालित करता है परन्तु इसी रंग को यदि हल्का करके गम्भीर बना लिया जाय तो विशुद्ध विश्वव्यापी प्रेम की गुलाबी छटा उत्पन्न करता है। होली में इसी रंग की व्यापकता है। परन्तु वासना के कारण जनता इसे विकृत कर देती है। गुलाबी रंग का महान सन्देश विश्व-प्रेम और विश्व-बन्धुत्व का है। मानव हृदय अगर इस रंग से प्रभावित हो जाय तो समस्त द्वेष-झगड़ों का लोप हो जाय और सुख-शान्ति की वर्षा होने लगे। होली के अवसर पर इसके प्रभाव के कारण सभी साल भर के द्वेष क्लेश भूल कर आपस में गले मिलते हैं। इस रंग में जनता को परस्पर निकट लाने की अद्भुत शक्ति है। हमारा यह कर्तव्य है कि प्रेम के सम्बन्ध को स्थायी रखें और गुलाबी रंग की कोमल रश्मियों से अपने हृदय को रंग लें।

उसके बाद पीला रंग आता है। शक्ति का निर्माण लाल रंग करता है तो उसका संचालन पीला रंग। पीला रंग विश्व व्यापी चैतन्य सत्ता का अंश है जो बुद्धि के रूप में स्फुरित होती है। अगर हृदय की प्रेममय भावनाओं को नियंत्रित न किया जाय तो वे मनुष्य को पथ भ्रष्ट कर देगी।

शक्ति के उत्पादन से बढ़ कर उसका संचालन है। यह कार्य हृदय नहीं वरन् मस्तिष्क अच्छी तरह करता है पीला रंग बौद्धिक है और सजगता तथा स्फूर्ति का सूचक है। इसमें मस्ती है, उन्माद नहीं; यह मस्ती भाव जन्य नहीं वरन् विचार जन्य है। यह दार्शिनिकों का रंग है जो सदैव मनन और चिन्तन करते हुए भी मस्त रहते हैं। पीला रंग त्याग और वैराग्य का है। होली के अवसर पर हम सब अपना मिथ्या अहंकार और दम्भ त्याग

कर सब से मिलते हैं। छोटे-बड़े ऊंच-नीच का भेदभाव भूल जाते हैं और साम्यवाद के रंग में रंग जाते हैं।

इसके पश्चात् श्वेत वर्ण पर विचार करना चाहिये श्वेत रंग नहीं वरन् रंगों का सन्तुलित समूह (Equlibrium of Colours) है यह रंगों का जन्मदाता है। यह श्रोत भी है तथा सागर भी अर्थात् आदि और अन्त दोनों इसी में निहित हैं। यह समानता और स्वतंत्रता का प्रतिनिधि है। हम अपने मन ही के दास हैं। दुनियां भर के भेद भाव, शंकायें भय इत्यादि बातें मन में लाद लेते हैं और कोल्हू के बैल की तरह उस संकुचित दुनियां में चक्कर काटते रहते हैं। ऐसे दिव्य उत्सव में थोड़ी देर के लिये आनन्द के प्रवाह में यह सब बन्धन टूट जाते हैं। बच्चे भी डर, भय, संकोच को भूल कर निर्द्वन्द होकर रंग फेकते हैं। एक महान एकता का सागर उमड़ आता है जिसमें तुच्छ भेद भाव या मर्यादा बह जाती है और स्वतन्त्रता की एक विशाल लहर उस संयुक्त शक्ति के फल स्वरूप लहराती हुई प्रेम-ध्वनि गुंजरित करती है। विभिन्नता का नाम ही माया है जो शक्ति का ह्रास करती है। एकता ही में शक्ति का सन्देश निहित है। श्वेत रंग इसी मूल एकता की ओर संकेत करता है जो सम्पूर्ण शक्तियों का उद्गम स्थान है। लाल रंग से शक्ति की उत्पत्ति, पीले रंग से संचालन और श्वेत से पुनः संकलन होता है। परन्तु विश्व का नियम है जब शक्ति का उचित प्रयोग होता है तभी वह विछिन्न न होकर पुनः केन्द्र में लौट आती है, हम रंगों से वस्त्र भले रंग लें परन्तु हृदय नहीं रंगता, सच्ची होली तो हृदय की होती है। एक दिन तो सबसे होली मिलते हैं, परन्तु दूसरे दिन फिर वही पुराना व्यवहार बर्तने लगते हैं। उत्सव के महत्व को हम तभी समझ सकते हैं जब कि दैनिक जीवन में नित्य ही उसका प्रयोग करें। होली को हम अधिक महत्वपूर्ण बना सकते हैं, यदि अत्यधिक रसिकता और स्थूलता को कम करके हम आनन्द की और सूक्ष्मरीति से मनाने का प्रयत्न करें। पहले हम होली के अवसर पर अपने घरों को सुन्दरता पूर्वक सजावें। उसको आकर्षक रंगों से रंग कर वहां की शोभा की वृद्धि करें। सड़कों पर भी फूल पत्तियों का सजाव करें। घरों में सुगंधित पदार्थ जला कर वायु-मडंल शुद्ध करें। केवल रंग फेकने से ही हर्ष नहीं प्रकट किया जाना चाहिये किन्तु मुहल्लो में सामूहिक समारोह होना चाहिये जिसमें गाना, बजाना कविताएं पढ़ना, नाच, इत्यादि कला का प्रदर्शन हो तो बहुत अच्छा हो। ऐसे जशन में सभी स्त्री पुरुष भाग लें और जाति-पाँत इत्यादि का कोई भेद न रहे। ऐसे अवसर पर देशी कला का प्रचार अधिक होना चाहिए जन साधारण के गाने और नाच; (Folk songs and dances) हम बिलकुल भूल से गये हैं। इन्हें प्रोत्साहन देकर पुनः जीवित करना आवश्यक है। ऐसे सुअवसर पर बड़े आदमियों को दम्भ छोड़ कर सब से मिलना चाहिये। एक दूसरे से परिचय बढ़ा कर पारस्परिक मेल मुहब्बत पैदा करना चाहिये। जिस व्यक्तियों से मन मुटाव हो गया हो उनको अवश्य यह गांठ खोलने पर बाध्य करना चाहिये और निबटारा हो जाना चाहिए।

होली के प्रदाह में क्रान्ति धधकती है। इसमें से स्वतंत्रता की चिनगारी निकलती है। इसकी ज्वाला में पवित्र करने की शक्ति है। यह साहसी और वीरों का स्वतंत्रता दिवस है जिसे स्वतंत्र और वीर भारत युग-युग से मनाता चला आ रहा है।

होली के लाल रंग से है—स्वतंत्रता, समानता, और बन्धुत्व (Liberty Equality and Fraternity) का सन्देश निहित है!

प्रश्नोत्तर

प्रश्न—मैं करीब ४-५ वर्ष से टान्सिल से ोड़ित हूँ। मेरी उम्र १८ साल की है। यह टान्सिल २-३ महीने के बाद उठता है और नमक के पानी से कुल्ला व 'थ्रोट ेण्ट' लगाने से ठीक हो जाता है। मुझे खांसी नहीं आती रन्तु माथे में दर्द और सुस्ती आ जाती है। डाक्टरों का हना है कि बिना आपरेशन के यह ठीक नहीं हो सकता। सका प्राकृतिक इलाज क्या है?

——बृजमोहनदास टकसाली, बनारस सिटी।

उत्तर—चूंकि आप टान्सिल के पुराने रोगी हैं इस ़लए आपको अपने सच्चे इलाज के लिए यह जान लेना रमावश्यक है कि टान्सिल के रोगी होने का असली कारण या होता है। आपको यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिए क टान्सिल का रोग एक स्थानिक रोग (Local Trouble) मात्र नहीं है, वरन् इसका सम्बन्ध समूचे रीर से है। भोजन में अधिककाल तक वेतसार पदार्थों और शर्करामय खाद्यों ो प्रधानता एवं आधिक्य रहने के कारण तथा इनकी पेक्षा क्षारमय भोज्य पदार्थों का दैनिक आहार में बिल्कुल भाव अथवा बहुत कम मात्रा में समावेश होने पर जब रीर में विष इकट्ठा होने लगता है एवं वह विजातीय दार्थों से लदने लगता है तो शरीर रोगी ने लगता है और इस ख़तरे की सूचना हमको रीर देता है अपने किसी मल निस्सारक अंग या अवयव असाधारण लक्षणों द्वारा। किन्हीं किन्हीं व्यक्तियों को ख़तरे की सूचना मिलती है उनके टान्सिल की वृद्धि, थ अथवा सूजन द्वारा। प्राकृतिक चिकित्सा में किसी ङ्ग विशेष के रोग का कारण सदैव शरीर की गड़बड़ी में निहित समझा जाता है। अतएव टान्सिल की अस्वस्थता उपचार भी सम्पूर्ण शरीर की सफाई करना एवं रक्त क्षारमय बनाना है। 'थ्रोट पेण्ट' करवाने अथवा नमक नी से कुल्ला करने-मात्र से तो, जैसा आपका खुदका अनुमान टान्सिल की गड़बड़ी अल्प काल के लिये शमन भर हो ती है लेकिन उसका निर्मूल होना इन स्थानिक उपचारों से कभी भी सम्भव नहीं है। इन उपचारों के अतिरिक्त डाक्टरों द्वारा पुराने टान्सिल-रोग के इलाज में शल्य-क्रिया का तुरन्त सहारा लिया जाता है। वह इसलिए कि शरीर में टान्सिल की उपयोगिता एवं रोग के मूल कारण से वे अपने को सदैव अनभिज्ञ ही रखते हैं। टान्सिल रोग के संक्रमण से बचाव के लिए हमारे शरीर की रक्षात्मक यन्त्र रचना के आवश्यक अङ्ग हैं। टान्सिल का कार्य लसीका ग्रन्थियों के समान हैं। वे रक्त के श्वेतकणों के निर्माण में सहायक होते हैं। शरीर में कीटाणुओं के प्रवेश को रोकने और शरीर से दूषित द्रव्य या विष को दूर करने में उनका महत्वपूर्ण कार्य होता है। टान्सिल मल-निस्सारक ग्रन्थियां हैं और वे देह के निस्सरण-संस्थान की बहुमूल्य अंग हैं। प्रकृति ने उनकी रचना या स्थापना इसी प्रयोजन से की है वे देह को मलों से शुद्ध करते रहे। टान्सिल को शल्य-चिकित्सा द्वारा अलग करवा देना तो मरम्मत होती हुई सड़क पर सम्हल कर चलने के लिये लगायी गयी लालटेनो को हटा देना है। टान्सिल के निकलवा देने के बाद भी तो शरीर में विषका इकट्ठा होना तो रुक नहीं जाता (क्योंकि रोग का जो प्रधान या मूल कारण असन्तुलित वा क्षार हीन भोजन है वह तो व्यक्ति का वैसा ही चलता रहता है डाक्टर के मस्तिष्क कोष में आहार के नाम पर रोगी के लिए कोई हिदायत नहीं रहती) वह तो फिर निकल कर ही रहेगा चाहे वह किसी दूसरे रोग का रूप ही क्यों न धारण करे। इसीलिए टान्सिल का आपरेशन निरी मूर्खता है। आपको टान्सिल की शिकायत कई वर्षों से है इसलिए इस व्याधि से छुटकारा पाने के लिए आपके रोग की जड़ पर ही कुठाराघात करना चाहिए। उसके मूल कारण को ही दूर कर आप टान्सिलों एवं समस्त शरीर को स्वस्थ कर सकते हैं। इस हेतु निम्नलिखित प्राकृतिक इलाज आपके लिए सर्वथा उपयुक्त होगा जब टान्सिल में सूजन आवे तो आप तुरन्त श्वेतसारमय एवं कृत्रिम शर्करा पूर्ण अन्न के खाद्य पदार्थों का सेवन एकदम बन्दकर दें तथा तीन चार दिन केवल प्रकृति-प्रदत्त क्षारमय खाद्यों—अर्थात्

मौसमी रसीले फलों अथवा फलरस—पर रह जायं। सबसे अच्छा तो यह होगा कि आप उपवास करना आरम्भ कर दें और तब तक ऐसा करें जब तक टान्सिल साधारण स्थिति में न आजायँ। डरने की कोई आवश्यकता नहीं क्योंकि दो चार दिन से अधिक उपवास नहीं करना होगा। यथार्थ में जब टान्सिलों में सूजन आ जाती है तो भोजन अच्छा ही कहाँ लगता है और खाने का ज़ायका तो ग़ायब ही हो जाता है। उपवास के दिनों में इच्छा भर फलों का रस तो लिया ही जा सकता है पर तरकारियों का रस लेना भी बड़ा लाभदायक है। उपवास के कारण शरीर से निकलता हुआ बहुत सा विष और मल आंतों में एकत्रित हो जाता है, जिसे धों देना बहुत ही जरूरती होता है। अतएव उपवास के समय प्रतिदिन गुनगुने पानी से एनीमा द्वारा आंतें साफ करना कभी मत भूलिए। स्थानिक उपचार के लिए आप को चाहिए कि आप प्रति दिनक ाग़जी नीबू का रस ठण्डे पानी में मिलाकर उससे चार पाँच बार कुल्ल। करें। ठण्ढे पानी में सूजन को कम करने की अदभुत शक्ति है। दोनों घाँटियों या टान्सिलों पर आप शहद व नींबू का लेप भी कर सकते हैं। घांटियों पर मुंह खोल कर भाप देना कम लाभदायक नहीं होता। इसके अतिरिक्त गले में ठण्ढे कपड़े की ट्टी के प्रयोग से भी इस रोग में विशेष लाभ पहुँचता है। उसकी विधि इस प्रकार है तीन अंगुल चौड़ी और आध अंगुल मोटी कई तह कपड़े की यही ठण्ढे पानी में भिगोलें और गले पर आध घण्टे के लिए लपेटे रहें। उसके ऊपर ऊनी कपड़ा भी लपेटना आवश्यक है। पर असली उपचार तो शरीर की शुद्धि ही है और इसका सर्वोत्तम साधन उपवास ही है। उपवास के बाद दो-तीन दिन फल खाकर रहिए और फिर तीन-चार दिन फल व दूध पर। इसके बाद सवेरे फल व दूध, दोपहर को रोटी तरकारी और सन्ध्या में फल-दूध के साधारण भोजन पर आ जाइए। यदि फिर कभी टान्सिल की शिकायत हो तो इसी उपवास-क्रमको फिर से नये सिरे से दुहरा दीजिये। आप पुराने रोगी है, आपके आहार में अवश्य ही अत्यधिक गड़बड़ी है। यदि उपयुर्क उपचार क्रमसे अपने आहार को सुधार लें तथा भविष्य में कढ़ी, मलाई, मिठाई, सफेद शक्कर, गुड़ अलु, चाय, बिस्कुट, छने हुए आटे की रोटी, बेसन व मैदे के बने हुए पकवान आदि अम्लमय श्वेतसार वर्गीय एवं कृत्रिम शर्करामय भोज्य-पदार्थों की बहुलता रोजाना न रक्खें तो टान्सिल क्या शायद किसी भी रोग का आक्रमण आप पर न हो सकेगा।

प्रश्न—मेरी उम्र ३० साल की है। परन्तु सिर के बाल लगभग ६ महीने से सफ़ेद होते जा रहे हैं। पिछले साल एक महीने तक सिर में बड़ा दर्द रहा और आँखें कमज़ोर हो जाने की वजह से चश्मा भी लगाना पड़ा। इन सब बीमारियों के अलावा मेरा मासिक धर्म भी अनियमित रहा। इससे बदन भी फूल गया है और पेट भी बढ़ गया है। मैंने बीमारी को ठीक तौर पर न समझ कर सिर्फ़ आँखों का ही एलोपैथिक इलाज किया। अब भी कभी-कभी सिर में दर्द होता है। मासिक धर्म मेरा कभी तो दो मास से कुछ कम दिन पर होता है कभी डेढ़ मास में, पूरी तरह नहीं। बाल झड़ कर छोटे भी हो गये हैं। अतः आप केश-विन्यास सम्बन्धी उत्तर द्वारा बताएँ की बालों को काला और लम्बा कैसे किया जाय। इसके किए कौन से आसन किये जा सकते हैं? उनकी विधि या आसन सम्बन्धी कोई पुस्तक का नाम बताएँ।

—श्रीमती विशेश्वर कुमारी भगत, लुधियाना।

उत्तर—आप के बताए लक्षणों से स्पष्ट है कि आपके शरीर में विषैला एवं अनावश्कीय पदार्थ बहुत अधिक मात्रा में जमा हो गया है और आपका दैनिक आहार-विहार शरीर की आवश्यकता से कोसों दूर रहा है जिससे आये दिन आप एक-न-एक रोग की शिकार होती रहती हैं और जिस कारण ईश्वर से वरदान स्वरूप प्राप्त एक ऐसी शारीरिक क्रिया (मासिक धर्म) की आपको गड़बड़ी होने लगी है जो अब सब रोगों का मूल बन गई है। जब तक आपका मासिक धर्म नियमित रूप से व जैसा चाहिए वैसा न होगा तब तक आप अपने किसी रोग से छुटकारा न पा सकेंगी, निश्चित जानिए। इसके लिए प्राकृतिक इलाज सर्वोत्तम है साथ-ही-साथ प्राकृतिक आहार का उपयोग भी। शरीर की, सफ़ाई के लिए पेड़ू-स्नान तथा मेहन स्नान तथा एनीमा से बढ़ कर दूसरी चीज़ें नहीं हैं। इसके उपयोग की विधि आप किसी भी प्राकृतिक-चिकित्सा की पुस्तक में अच्छी तरह समझ लीजिए और इनको समुचित तरीके से दैनिक

जीवन में कुछ समय तक प्रयोग में लाइये। आपके भोजन में सुधार होना बहुत ही ज़रूरी है। क्योंकि उचित व प्राकृतिक लवणों में भरपूर आहार से ही शुद्ध रक्त बनता है और उसका शरीर में सब जगह सञ्चालन भी होता है। इसलिए रोग-मुक्ति के लिए, भोजन पर ध्यान देना ही पड़ेगा। अपने भोजन में हरी शाक-सब्जी, तरकारी (आलू को छोड़कर) केले को छोड़ कर सभी मौसम की रसीले व गूदेदार फलों को विशेष स्थान दीजिये। कब्ज़ करने वाली तथा अन्न, मैदे, बेसन व मेदे में गुठल बन जाने वाली चीज़ों का कुछ महीनों तक बहिष्कार कर दीजिए। रात में अन्न का प्रयोग यदि बिल्कुल न करें तो बहुत अच्छा रहेगा। व्यायाम के तौर पर टहलना आप के लिए बहुत ही लाभदायक सिद्ध होगा। सप्ताह में एक दिन निराहार भी रहना उपयोगी होगा। उपर्युक्त प्राकृतिक उपचारों को अच्छी तरह समझ-बूझकर तथा लगन के साथ एवं भोजन में फौरन आवश्यक सुधार कर यदि आप प्रकृति की शरण में ५-६ महीने धैर्यपूर्वक जीवन-यापन करेंगी तो निश्चय ही आपके सारे रोग दूर हो जायँगे। क्योंकि आपका मासिक धर्म नियमित होने लगेगा। फिर तो आपकी स्थूलता दूर हो जायगी, आपका पेट सामान्य पर आ जायगा, आपकी आँखों की ज्योति बढ़ेगी, सिर का दर्द हवा हो जायगा। इसके अतिरिक्त आपके बालों का झड़ना भी बहुत हद तक रुक जायगा। केशों को लम्बा, आकर्षक, सौन्दर्यमय व दृढ़ बनाने के लिए उन विशेष खाद्य-पदार्थों एवं उपयोगी कसरतों को विस्तार में जुलाई-अगस्त सन् ४५ के 'जीवन सखा' में बताया जा चुका है। यह अङ्क यदि आपके पास नहीं हो तो आप मँगा लें और बताई हिदायतों को भरसक पालन कर लाभ उठावें। आसन सम्बन्धी इस समय सर्वोत्तम पुस्तक 'हठयोग' है। उसे आप मँगाकर पढ़ सकती हैं पर उसमें भी लाभदायक आसनों की प्रयोग विधि वैज्ञानिक अथवा निरापद ढङ्ग से नहीं दी गई है। आसनों के प्रयोग की उचित व खतरे से रहित सचित्र विधि तो आपको 'जीवन सखा' के कुछ पिछले वर्षों के फाइलों में मिलेगी। उन विशेष अङ्कों को भी आप मँगा सकती हैं। पर आसनों को बिना किसी गुरु से पूरी तरह सीखे सहसा न आरम्भ करना चाहिए!

—कामताप्रसाद अग्रवाल एम० ए०।

लेखकों से नम्र निवेदन

'जीवन सखा' के लिये जो लेख भेजें वे सरल, सुबोध शैली और साफ अक्षरों में होने चाहिये। जहाँ तक हो सके अपने विचारों को स्पष्ट किन्तु संक्षेप में प्रकट करें। लेख को अनावश्यक रूप से लम्बा बनाने की प्रवृत्ति की सर्वथा उपेक्षा की जानी चाहिये। लेख की पंक्तियाँ घनी न होनी चाहिये। इससे सम्पादन करने में बड़ी असुविधा होती है। लेख के आदि अथवा अन्त में लेखक का नाम अवश्य लिखा होना चाहिये, पर साथ ही उस पर अपना पता भी लिख दें त वह हमारे लिये और भी सुविधाजनक होगा।

—सम्पादक।

अपने विचार

बापू का अगला कदम

अभी हाल ही में कांग्रेस वर्किंग कमेटी के सिलसिले में बापू जब बम्बई पहुँचे थे तो एक दिन उन्होंने वह सरदार पटेल को अपनी गति-विधियों की एक नयी दिशा की ओर संकेत किया। बापू ने कहा, 'मैं देखता हूँ कि पिछले ५० वर्षों से जो मेरा 'हाबी'—प्रिय विषय––रहा वह अब तीव्र अनुराग बन गया है। इसी प्रकार उन्होंने अपने एक दूसरे मित्र से कहा यदि मुझे ऐसा लगे कि मैं गरीबों की सेवा करने की क्षमता रखता हूँ, फिर भी मैं उसे काम में न लाऊं तो मैं मूर्ख ही कहलाऊंगा।' बापू की इन दोनों बातों से यही संकेत मिलता है कि अपने जीवन के संध्याकाल में, जबकि ७६ साल के हो चुके हैं, बापू ने अपनी बहुमुखी गति-विधियों के इतिहास में एक नया अध्याय जोड़ने का निश्चय किया है।

बापू बहुत पहले से अपने जीवन को दरिद्रनारायण की सेवा में अर्पित कर चुके हैं—दरिद्र के ही रूप में नारायण हैं। भारत गरीबों का देश है। गरीब भारत वैभव विलासपूर्ण बड़े-बड़े नगरों में नहीं यहाँ के सात लाख गाँवों में बसता है। करोड़ों ग्रामीण, निर्धन, मूक पशुओं-से अन्य दारुण कष्टों के साथ-साथ शारीरिक रोग-व्याधि से सन्तप्त हो रहे हैं। उनकी पुकार बापू को गांवों की ओर खींच रही है, वह अब वहाँ तक पहुँचना चाहते हैं। इस अंक में 'जब जागे तभी सबेरा' शीर्षक बापू का जो लेख 'हरिजन' से उद्धृत किया गया है, वह इसी का संकेतक है।

बापू का जीवन ही सत्य के प्रयोग का एक ज्वलन्त उदाहरण है। वह पहले भी कई बार कह चुके हैं कि नैसर्गिक चिकित्सा क्या अमीर, क्या गरीब, सभी के लिये है। अमीरों को रोगोंपचार के वेशकीमती साधन प्राप्त हैं। लेकिन गरीबों के लिये यह सुख-सुविधा कहाँ? इसी लिये उन्होंने गरीबों तक प्रकृति के संदेश को पहुंचाने के लिये अपना कदम बढ़ाया है और आखिरी मंजिल तक पहुँचते पहुँचते इस कार्य को भी पूरा कर डालना चाहते हैं।

गरीबों की सेवा की ही भावना से प्रेरित होकर उन्होंने कुदरती इलाज के लिए एक ट्रस्ट कायम किया, डा० दीनशा मेहता का उपचार-गृह, जहां गरीबों की तो बात ही अलग रही औसत मध्य वर्ग के लोगों की भी पहुंच होना प्रायः असम्भव ही था, गरीबों के लिये खुल गया। लेकिन इसके कुछ ही दिनों बाद बापू की अन्तरात्मा पुकार उठी 'शहर में गांव वालों का कुदरती इलाज हो ही नहीं सकता।' उन्हें ऐसा लगा कि 'मैं अन्धा होकर दीवार से सिर टकराने चला था।' और बापू के ही शब्दों में 'गलतियां करके, उनको मंजूर करने और उन्हें सुधार करके ही मैं आगे बढ़ सकता हूँ।' फिर उनके हृदय में इस सत्य का उदय हो जाने पर वह भला कैसे खामोश रह सकते थे, उनके चरण पूना को छोड़ कर एक निकटवर्ती ग्राम, उरुली, की ओर बढ़ गए। वहाँ पहुँचते ही उन्होंने एक प्राकृतिक उपचार-गृह की नींव डाली। ग्रामीणों को जग-जननी प्रकृति का नैसर्गिक सन्देश सुनाया। बात-बात में वहाँ कुदरती इलाज का अस्पताल खोलने के लिए १०,००० रु० के वचन मिल गये। काम तो अस्थाई रूप से एक मकान लेकर फौरन शुरू हो गया है। इस समय महात्मा जी वहाँ पर अपने तीन प्रिय चिकित्सक छोड़ गए हैं, जिन्होंने बड़ी लगन और तत्परता के साथ अपना काम शुरू कर दिया है। यहां के गरीबों ने इसके लिये विशेष उत्साह दिखाया है। अब उरुली का नाम कंचन पड़ गया है—यह नामकरण बापूने ही किया है। इस प्रकार उरुली कंचन भारत का पहला गांव है जहां पर बापू ने नैसर्गिक उपचार की यह अमर बेलि आरोपित की है। यह अमर बेलि, परिपल्लवित, विकसित और कुसुमित हो, भारत का गाँव-गाँव उरुली कंचन बने, यही हम सब की अभिलाषा है। जिस कार्य में बापू का वरद हस्त लगा उसमें सफलता तो मिलकर ही रहेगी, यह बापू के सत्य और अहिंसा की ही भाँति अटल है।

प्राकृतिक चिकित्सा की शिक्षा प्राप्त करने का अनुपम अवसर

प्राकृतिक चिकित्सा प्रणाली का सार्वभौमिक प्रचार करने के उद्देश्य से हमने शिक्षार्थियों को ट्रेनिंग देने को एक योजना बनाई है। इसके अनुसार आगामी जुलाई अगस्त में पूरे एक महीने तक ट्रेनिंग देने की व्यवस्था की गई है। इसमें प्राकृतिक चिकित्सा के मूल सिद्धान्तों तथा उसकी व्यावहारिक शिक्षा का पूर्ण आयोजन हुआ है इस तरह साल भर में एक-एक महीने के तीन कोर्स होंगे। शिक्षा का कोर्स समाप्त हो जाने पर साल के अन्त में शिक्षार्थियो की परीक्षा होगी, और जो उसमें उत्तीर्ण होंगे, उन्हें एन० डी० डी० वाई का डिप्लोमा प्रदान किया जायगा। जो शिक्षार्थी इस योजना से लाभ उठाना चाहते हैं वे अपना आवेदन-पत्र १ जून तक, अपना नाम, पता और शिक्षा सम्बन्धी योग्यता के सहित **अवश्य** भेज दें। **इन्टरमीडियेट अथवा उससे ऊंचे दर्जे की शिक्षा प्राप्त व्यक्ति ही आवेदन-पत्र** भेजें।

नियम—इन्टर से कम शिक्षा प्राप्त व्यक्तियों को ट्रेनिंग देने का नियम नहीं है। प्रत्येक शिक्षार्थी से १०) मासिक फीस और १५ रु० मासिक खर्च लिया जायगा। प्राकृतिक चिकित्सा की व्यावहारिक शिक्षा प्राप्त करने के अभिलाषी व्यक्ति अपनी इच्छानुसार किसी भी महीने में आ सकता है। पर उन्हें उपयुक्त शुल्क प्रति मास देना अनिवार्य होगा।

संचालक, प्राकृतिक स्वास्थ्यगृह २८७, बादशाही मन्डी इलाहाबाद।

महेन्द्र रसायनशाला का अनुपम

प्रकाशन

स्वाथ्य सम्बन्धी सर्वोत्तम पुस्तकें

लेखक—कविराज, महेन्द्रनाथ पांडेय

स्वास्थ्य को उन्नत बनाने और बिगड़े हुए स्वास्थ्य को सुधारने में इन पुस्तकों से बहुत बड़ी सहायता मिलती है। इन पुस्तकों के घर में रहने से परिवार सुखी और प्रसन्न रहता है।

हमारा भोजन ४); स्वास्थ्य के लिए शाक तरकारियाँ १।); फलाहार चिकित्सा २); भोजन ही अमृत है १।।); तपेदिक ४); दूध चिकित्सा ४); मठा ।।=); शहद के गुण और उपयोग ।।); जुकाम १।); आँख का अचूक इलाज २); जीवन तत्त्व १।)।

मँगाने का पता :—

महेन्द्र रसायनशाला, कटरा, इलाहाबाद

रबर की मोहर

और

पीतल की सील, चपरास, डाई, स्टैन्सिल, स्टली स्टैम्प तथा साइनबोर्ड अच्छे व सस्ते बनते है।

हमारी तैयार की हुई मोहरों की एजेन्सी लेकर लाभ उठाइये।

मुन्नूलाल वर्मा एण्ड सन्स

४८, जानसेन गंज, इलाहाबाद

अरोग्य-शास्त्र का प्रतिनिधि पत्र

जीवन सखा

सभी सम्मितियों का एक ही स्वर

Dr. S. C. Das, L. M. S. (Cal.) L. R. C. P. & S. (Edin.), L. R. F. P. & S. (Glas) L. M. (Dub.) Sewagram, Wardha, C. P.

"A splendid and noble attempt to spread correct views about health & its preservation."

पं० बनारसीदास जी चतुर्वेदी, टीकमगढ़

"मुझे इस समय जितने पत्र निकल रहे हैं उनमें जीवन-सखा अत्यन्त महत्वपूर्ण जँचता है !',

श्री सीताराम जी सेकसरिया, कलकत्ता

'जीवन सखा' निकाल कर आप लोग देश की सेवा कर रहे हैं। ऐसे पत्रों से पढ़नेवालों का भला होता है।"

जनार्दन राय नागर, सम्पादक 'बालहित', उदयपुर

'जीवन सखा' ने तो मेरी माँ का जीवन ही बदल दिया है। उन्होंने इसी को पढ़कर अपने शरीर का कल्प-सा कर दिया है। 'जीवन सखा'......ने मेरी माँ को स्वास्थ्य बख्शा है।"

'सरस्वती', प्रयाग

"प्रत्येक साध्य तथा असाध्य मर्ज का निवारण प्रकृति द्वारा हो सकता है, यही इस पत्र का संदेश है।"

'नवशक्ति', पटना

"यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि स्वास्थ्य सम्बन्धी पत्र-पत्रिकाओं में 'जीवन सखा' का सर्वोच्च स्थान है।

'विशाल-भारत', कलकत्ता

"जीवन सखा' सब तरह से उपयोगी है।"

'जीवन-साहित्य', नई दिल्ली

"आरोग्य शास्त्र का सुन्दर मासिक होने से यह वास्तव में 'जीवन-सखा' ही है।"

YOUR DIET IN HEALTH AND DISEASE

By Harry Benjamin

हैरी वैनजामिन इंगलैण्ड के सुप्रसिद्ध जीवित प्राकृतिक चिकित्सकों में हैं।

स्वास्थ्यार्थियों के लिए यह आहार-विज्ञान सम्बन्धी आपकी पुस्तक एक अनुपम भेंट है। यदि आप आहार-चिकित्सा के द्वारा समस्त रोगों को निर्मूल करके अपने खोये हुए स्वास्थ्य एवं आरोग्य को बिना किसी चिकित्सक की सहायता के पुनः प्राप्त कर लेना चाहते हैं तो इस पुस्तक की एक प्रति आज ही मंगा लीजिए। पुस्तक का मूल्य सिर्फ १।) है। हमारे स्टाक में इस अनुपम पुस्तक की परिमित प्रतियां ही हैं, अतः शीघ्रता करें। विलम्ब से आर्डर भेजने पर सम्भव है कि आपको निराश होना पड़े।

मैनेजर, स्वास्थ्य ग्रंथ भंडार

२८७, बादशाही मण्डी, चौक प्रयाग

जीवन सखा में विज्ञापन देना अपने व्यापार की वृद्धि करना है। पत्र व्यवपार करें।

--व्यवस्थापक

जीवन सखा प्रेमियों से

जनवरी के जल-चिकित्सांक के प्रकाशनवश फर्वरी मार्च का सयुक्तांक पाठकों की सेवा में ज़रा विलम्ब से पहुँच रहा है--इसके लिए हमें खेद है। अप्रैल का अंक भी तैयार हो रहा है, पाठक चिता न करें, अति शीघ्र ही उन्हें मिल जावेगा।

व्यवस्थापक—

पढ़िये ! **लाभ उठाइये !!**

सुन्दर, स्वस्थ और सुखी जीवन के इच्छुकों को
ये पुस्तकें पढ़नी चाहिए

(१) रोगों की अचूक चिकित्सा (चतुर्थ संस्करण) :श्री जानकी शरण, वर्मा, बी० ए०	५)
(२) बच्चों की रक्षा—लुई कूने	।=)
(३) मैं निरोग हूँ या रोगी ?—लुई कूने	।=)
(४) स्वास्थ्य के नुस्खे—'जीवन सखा' कार्यालय	।)
(५) क्या और कैसे खायं—डा० बालेश्वर प्रसाद सिंह	।=)
(६) ब्रह्मचर्य ही जीवन है—स्वामी शिवानन्द	१॥)
(७) आनन्दमय जीवन--श्री शंकरलाल तिवारी	॥)
(८) कब्ज या कोष्ठबद्धता : डा० बालेश्वरप्रसाद सिंह	१)
(९) तपेदिक—श्री एम० एन० पांडेय	४)
(१०) शाकों के गुण—श्री नारायणप्रसाद अरोड़ा	२)
(११) फलाहार—श्री नारायणप्रसाद अरोड़ा	२)
(१२) वैज्ञानिक जल-चिकित्सा--श्री कुलरंजन मुखोपाध्याय	२)
(१३) सचित्र हठयोग—स्वामी शिवानन्द	२।)
(१४) मन और उसका निग्रह (प्रथम भाग)--स्वामी शिवानन्द ...	२)
(०५) मन और उसका निग्रह (द्वितीय भाग) ,, ...	३)
(१६) हम सौ वर्ष कैसे जीवें : श्री केदारनाथ गुप्त, एम० ए०	१॥।)
(१७) आरोग्य-साधन—महात्मा गाँधी	॥।)
(१८) स्वास्थ्य साधन—श्री रामदास गौड़	३॥)
(१९) आहार ही औषध है : डा० एल० एन० रतरा	२।)
(२०) दवाओं से बचो—श्री गंगाप्रसाद गौड़,'नाहर'	१)
(२१) Your diet in health & disease by Harry Benjamin ..	1-4-0
(२२) Food-de-Medicine by Dr, L. N. Ratra, H. M. B. ..	1-2-0
(२३) Universal un-cooked food	3-8-0
(२४) Nature Cure of Eye defect by Dr. K. L. Sharma.	2-0-0
(२५) Practical Nature cure ,, ,, ,,	8-8-0
(२६) Constipation and Dyspepsia	1-8-0
(२७) Gems of health	2-0-0
(२८) Drugless healing	1-0-0

स्वास्थ्य सम्बन्धी पुस्तकें मिलने का पताः—

मैनेजर, स्वास्थ्य ग्रंथ-भंडार २८७, बादशाहीमंडी, चौक, प्रयाग ।

वे जीवन से निराश हो चुके थे !

किन्तु वही अब देखिए क्या कहते हैं !

"दमा का दम तोड़ने के लिए मैंने क्या नहीं किया ? डाक्टरों और वैद्यों का इलाज विफल रहा।...मैं बिलकुल ही नाउम्मीद होकर **प्राकृतिक स्वास्थ्य गृह के संचालक डा० बालेश्वर प्रसाद सिंह,** के पास पहुँचा।...पेट की सफाई कर मैं लग गया अपनी चिकित्सा में। वस्त्रधौति की आज्ञा दी गई।...यह तो जारी था ही मैंने कुछ आसन और प्राणायाम भी शुरू किया...वहीं अस्पताल में ही ये सब उन लोगों की निगरानी में करता रहा। धीरे धीरे दमा की शिकायत जाती रही।...इस तरह कड़े नियम से रह कर मैंने उस रोग से छुटकारा पाया जसे बड़े बड़े नाम वाले डाक्टर लाइलाज और वैद्य असाध्य बतलाते हैं। यह सब कृपा है प्राकृतिक चिकित्सा की और उसके प्रचारकों की भी।

—कुँवर के शलेश प्रसाद शर्मा, बरांव राज्य

इसी तरह के न जाने कितने असाध्य और निराश रोगियों को प्राकृतिक चिकित्सा-विधि से नया जीवन मिला है।

यदि आप भयानक से भयानक, व्याधि, अथवा जीर्ण रोग से पीड़ित हो रहे हैं तो उससे छुटकारा पाने के लिए नीचे लिखे पते से पत्र-व्यवहार करें। हमारे स्वास्थ्य गृह में प्रायः सभी प्रकार के रोगों का नैसर्गिक विधियों से सफलतापूर्वक इलाज होता है।

स्वास्थ्य गृह में रोगियों के रहने का प्रबन्ध

स्वास्थ्य-गृह में रोगियों के आराम और सुविधा के ख्याल से दो श्रेणियां निर्धारित कर दी गई हैं। प्रथम श्रेणी के रोगी से १००) मासिक और द्वितीय श्रेणी के रोगियों से ७५) मासिक लिया जाता है, जिसमें चिकित्सा दूर करने की फीस भी शामिल है। रोगियों को अपने भोजन का प्रबन्ध अलग से करना पड़ेगा। पूरा विवरण पत्र भेजकर प्राप्त करें। पत्र के साथ टिकट भेजना जरूरी है।

नोटः—हमारे यहां संक्रामक रोगों से पीड़ित रोगियों के रखने का प्रबन्ध नहीं है।

व्यवस्थापक—

प्राकृतिक स्वास्थ्यगृह, लूकरगंज, इलाहाबाद।

Printed by R. N. Avasthi at the K. P Press and Printing School, Alld.
Published by Syt. Baleshwar prasad Sinha. 287, Badshahi Mandi,
Chowk, ALLAHABAD.

ीवन सखा

रिक, मानसिक और नैतिक स्वास्थ्य का पथ-प्रदर्शक

अप्रैल सन १९४६ वर्ष-११ अङ्क ४

इस अंक के कुछ विशेष आकर्षण

- १. सब्जियाँ ठीक तरह बनाइए—श्री रामेश बेदी १
- २. विश्वास-चिकित्सा (फेथ क्योर—डा० रामचरण महेन्द्र, ६
- ३. ध्यानात्मक तथा व्यायामात्मक आसन—डा० वागीश्वर प्रसाद सिंह ४
- ४. भावी माता के लिये सक्रिय तथा निष्क्रिय व्यायाम—डा० इन्दु ६

तथा अन्य उपयोगी लेखादि

वार्षिक चन्दा ५) इस प्रति का ।=)

३० मै सन् १९४६ ई. को कांगड़ी [illegible] से प्राप्त

विषय सूची

—:o:—

१—हम जो साँस लेते है—(हेल्थ) १५८
२—भारत की अपर्याप्त भोजन-सामग्री—श्री का० न० रामन्ना शास्त्री १५९
३—सब्जियाँ ठीक तरह बनाइए—श्री रामेश वेदी-आयुर्वेदालङ्कार १३२
४—विश्वास-चिकित्सा (फेथक्योर)—प्रोफेसर रामचरण महेन्द्र एम० ए० डी० लिट्०, डी० डी०] १६४
५—ध्यानात्मक तथा व्यायामात्मक आसन—[डा० बालेश्वर प्रसाद सिंह] १६६
६—बायोकेमिक चिकित्सा प्रणाली और प्राकृतिक चिकित्सा—डा० रामजीवन एम० बी० (बायो०) बी० एस० सी० (बयो०) १७२
७—भावी माता के लिए सक्रिय तथा निष्क्रिय व्यायाम—डा० इन्दुमती सिनहा, एन० डी० डी० वाई १७४
८—हिप्नोटिजम द्वारा रोगोपचार—श्री कृपाराम 'किंकर' १७८
९—प्राकृतिक चिकित्सा का चमत्कार—श्री शारदा प्रसाद गुप्त १८१
१०—विहार प्रान्तीय प्राकृतिक चिकित्सा सम्मेलन—मनोतीत अध्यक्ष का भाषण १८२
११—अपने विचार—घी की समस्या १८५
१२—प्रश्नोत्तर १८६

'जीवन-सखा' के नियम

(१) 'जीवन-सखा' प्रतिमास इक्कीसवीं तारीख को प्रकाशित होता है।

(२) इसका वार्षिक मूल्य ३) तथा एक प्रति का ।=) है।

(३) ग्राहकों को चाहिए कि वे जनवरी या जुलाई से ग्राहक बनें; यों साल के किसी महीने से भी ग्राहक बना जा सकता है।

(४) यदि महीने के तीसरे सप्ताह तक किसी ग्राहक को 'जीवन-सखा' का अंक न मिले तो १५ दिन के अन्दर इसकी सूचना पोस्ट आफिस से प्राप्त उत्तर के साथ कार्यालय को दे देनी चाहिए।

(५) पत्र भेजते समय ग्राहक को अपनी ग्राहक-संख्या, नाम और पूरा पता साफ साफ अक्षरों में लिखना चाहिए। उत्तर के लिये टिकट भेजना आवश्यक है।

(६) प्रकाशनार्थ भेजे जाने वाले लेख कागज़ के एक तरफ हाशिया छोड़ कर साफ अक्षरों में लिखे जाने चाहिए। लेख सम्बन्धी चित्र भी भेजे जा सकते है।

(७) नमूने की प्रति के लिए ।=) का टिकट भेजना जरूरी हैं।

पता—मैनेजर, 'जीवन-सखा' कार्यालय, २८७ बादशाही मन्डी इलाहाबाद।

Reg. No. 1-172

शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्
NATURE ONLY HEALS

जीवन सखा

सम्पादक

डा० बालेश्वरप्रसाद सिंह

वर्ष ११] अप्रैल [अङ्क ४

हम जो सांस लेते हैं–

मनुष्य प्रतिपल १६ से १८ बार सांस लेता है—इस प्रकार दिनभर में २६००० बार, सामान्य रूप से (यदि उसका स्वास्थ्य औसत दर्जे का है और उसे कोई कष्ट नहीं है) बिना किसी प्रयास के, बिना इस बात की जानकारी के कि उसे दिन भर में कितनी बार सांस लेनी पड़ती है। सांस लेने की प्रत्येक क्रिया का सम्बन्ध शरीर की एक सौ से अधिक मांस-पेशियों से होता है। एक बार सांस लेने में २५-३० घन इंच यानी एक दिन में ३२ से ३७ पौण्ड (एक पौण्ड लगभग आधा सेर का होता है) तक—अर्थात् प्रतिदिन हम जितना भोजन करते और जल पीते हैं उसकी लगभग सातगुनी—हवा की जरूरत पड़ती है।

हम सांस के जरिये जो हवा भीतर खींचते हैं वह फेफड़ों में १५ वर्ग फीट से अधिक का चक्कर लगाती है और ज्यादातर खून की सफाई करने के काम में आती है। फेफड़ों में लगभग ६० घन इंच हवा बराबर मौजूद रहती है और २५ से ३३ घन इंच हवा निःश्वास के रूप में बाहर निकल जाती है। इस प्रकार आप समझ सकते हैं कि आप के लिए अधिक से अधिक शुद्ध वायु-सेवन कितना आवश्यक और उपयोगी है।

—'हेल्थ'

भारत की अपर्याप्त भोजन-सामग्री

श्री० का० न० रामन्ना शास्त्री

शारीरिक स्वास्थ्य एवं आरोग्य के लिये आहार का अत्यधिक महत्व है, जिसकी उपेक्षा किसी भी हालत में नहीं की जा सकती। किन्तु भारत की अधिकाधिक बढ़ती हुई आबादी, देश की गरीबी, राजनीतिक पराधीनता आदि ऐसे प्रबल कारण हैं जिनसे हमारे देशवासियों के स्वास्थ्य की समस्या चिन्तनीय बन गयी है। हमारे यहां के सार्वजनिक स्वास्थ्य के इस शोचनीय पहलू का विवेचन लेखक ने अनेक आंकड़े देकर किया है जो विचारणीय है।
—सं०]

भारत में जब से अंग्रेजों के पैर जमे, तब से भारतवासियों को लगातार अकालों का सामना करना पड़ रहा है। फिर चाहे, खाद्य-पदार्थों की उपज पर्याप्त हुई हो अथवा अपर्याप्त, लेकिन इधर ४०-५० वर्षों से तो वस्तुतः भारतीय भूमि से खाद्य सामग्री की उपज बढ़ती हुई जन संख्या के लिए अपर्याप्त ही हो रही है। मिसाल के लिए, गेहूँ की खेती को ले लीजिये। गत ४०-५० वर्षों में गेहूँ की खेती का रकबा ५० प्रतिशत बढ़ाया गया। किन्तु रकबा बढ़ाने पर भी गेहूँ की उपज २० प्रतिशत घट गई है। अर्थात् गेहूँ की जो उपज ४०-४५ वर्ष पहले प्रति एकड़ ०.३० टन होती थी, वह घटने घटते ०.२० टन रह गई। इसी अवधि में जनसंख्या ३८ प्रतिशत बढ़ गई है। इधर ५-६ वर्षों से तो यह उपज इतनी घट गई है कि वह बढ़ती हुई जनसंख्या के लिये बिलकुल अपर्याप्त है। पिछले ५-६ वर्षों से भारत की औसत उपज इस प्रकार है :—

चावल	२	करोड़	४०	लाख	टन
गेहूँ	१	”	३	”	”
तेलहन	०	”	३६	”	”
दूसरे अनाज	१	”	९१	”	”

ये अंक भारत सरकार द्वारा हाल के प्रकाशित अंकों से मिलते जुलते हैं। ६ करोड़ टन अनाज की पूर्वोक्त उपज १९४१ की जनगणना के हिसाब से यदि प्रत्येक भारतवासी को बांट दी जाय, तो प्रत्येक के हिस्से में प्रति-दिन ६ छटांक अनाज पड़ेगा। विशेषज्ञों का अनुमान है कि इस समय भारत की आबादी ४३ करोड़ के लगभग पहुँच गई है। इस हिसाब से प्रत्येक व्यक्ति के हिस्से में और भी कम अनाज पड़ेगा।

प्रिन्सिपल धनंजयराय गाडगिल ने हिसाब लगा कर बताया है कि यहां के प्रत्येक ग्रामीण को एक साल में साढ़े पांच मन और नगर-निवासी को साढ़े चार मन अनाज की आवश्यकता है। इस हिसाब से भारत के औसत आदमी को प्रतिदिन १ सेर १.४० छटांक अन्न की आवश्यकता है। इसका यह अर्थ है कि पिछले ५-६ वर्षों से यहां के व्यक्तियों को आवश्यकता का आधा भी अन्न नहीं मिल रहा है। क्या ५-६ वर्ष के पहले कम से कम १ सेर भी अन्न मिलता था? सन् १९३१ से १९४० तक दस साल का प्रान्तवार हिसाब देखा जाय कि प्रत्येक प्रान्त के औसत आदमी के हिस्से में प्रतिदिन कितना अनाज पड़ता था:—

मद्रास	०.६३	पौण्ड
बम्बई	१.०७	”
बंगाल	०.९४	”
पंजाब	१.२०	”
युक्त प्रान्त	१.०९	”
मध्य प्रान्त	१.४४	”
आसाम	१.०४	”
बिहार	१.३०	”
सिंध	१.५१	”
उड़ीसा	१.२५	”

इन अंकों को देखने से मालूम होगा कि सन् १९३१ के बाद से किसी भी वर्ष भारत के किसी भी प्रान्त के

औसत आदमी के पल्ले १२-१३ छटाँक से अधिक अन्न नहीं पड़ा, यद्यपि चाहिये कम से कम १ सेर अन्न। इस तरह आज आवश्यकता के आधे से भी कम खाकर कोई आदमी कैसे स्वस्थ और बलिष्ठ रह सकता है ?

दूध-घी

मानव शरीर को स्वस्थ बलिष्ठ रखने के लिए अनाजों के साथ-साथ दूध-घी, मांस-मछली, अंडे साग-सब्जी और फलों की आवश्यकता है। भारत में अनाजों की जो अवस्था है, लगभग वही अवस्था इन खाद्य-पदार्थों की है।

हिन्दुस्तान के दूध देने वाले पशुओं की जैसी दुर्दशा है, वैसी दुर्दशा शायद ही और किसी मुल्क में हो। यद्यपि भारत अधिक भावुक है, और पशुपालन तथा पशु रक्षा में वह अपने को किसी भी मुल्क के पीछे नहीं समझता, तथापि वास्तविक स्थिति यह है कि पर्याप्त चारे के अभाव में यहां के पशुओं की हड्डियां निकलती जा रही हैं और दूध सूखता जा रहा है। इस तथ्य की कल्पना तब हो सकती है जब हम यहाँ की गाय के दुग्ध उत्पादन की तुलना अन्य मुल्कों की गायों से करें:—

गाय-देश	दुग्ध- उत्पादन (पौंड में)
डेनमार्क	७००५
इंगलैण्ड	५५७६
हालैण्ड	७५५६
स्काटलैण्ड	५३८६
स्विट्जरलैण्ड	६४९८
कनाडा	३१९४
अमेरिका	४१२६
न्यूजीलैण्ड	५११८
मिस्र	२६६३
हिन्दुस्तान	**५२५**
” भैंस	**११७७**

इन आंकड़ों से पता चलता है कि यहां की औसत भैंस भी दूध देने में अन्य मुल्कों की औसत गाय का मुकाबला नहीं कर सकती। जो उत्पादन भारत में हो रहा है उस हिसाब से प्रत्येक भारतवासी के हिस्से में प्रतिदिन कम से कम ७ औंस दूध आना चाहिये। लेकिन इतना भी दूध यहाँ की बहुसंख्या को नसीब नहीं है। सन् १९४४ में बंगाल सरकार ने कलकत्ते के बारे में कुछ आंकड़े प्रकाशित किये है। उन आंकड़ों को देखने से मालूम होता है कि औसत कलकत्ता-वासी को प्रतिदिन लगभग २ छटांक दूध मिलता हैं। बम्बई और कलकत्ता के मजदूरों की हालत देखी जाय तो आश्चर्य होता है। मजदूर परिवारों की जांच करते पर मालूम हुआ है कि उक्त शहरों के औसत, मजदूरों को मुश्किल से एक या डेढ़ औंस दूध मिलता है, अर्थात् एक छटांक से भी कम।

८७ प्रतिशत पानी

लेकिन क्या यह दूध भी बिलकुल शुद्ध रूप में मिलता है ? सरकारी जांच के अंकों से मालूम होता है कि कलकत्ते के दूध में ८७ प्रतिशत तक पानी मिला हुआ रहता है। हाट स्प्रिंग सम्मेलन के प्रस्तावानुसार मनुष्य को स्वस्थ रहने के लिए प्रतिदिन कम से कम २१ औंस, अर्थात् १०॥ छटांक दूध लेना चाहिये। इस हिसाब से विदेशों के लोगों को पर्याप्त मात्रा में दूध मिलता है। इंगलैण्ड का औसत आदमी प्रतिदिन ३९ औंस, अमेरिका का ४३ औंस आस्ट्रेलिया का ४४ औंस, स्विटजरलैण्ड का ४९ औंस, और स्वेडन का ६१ औंस दूध पीता है, जब कि अभागे भारतवासी के हिस्से में मुश्किल से ७ औंस दूध पड़ता है।

दूध के समान ही घी भी दुष्प्राप्य हो गया है। जब से बनस्पति का प्रयोग चला है तब से घी की अशुद्धता तो और बढ़ गई है। सन् १९३३ में १९.३ प्रतिशत नमूनों में मिलावट पाई गई थी। सन् १९३४ और ३५ में क्रमशः ३० और ३७ प्रतिशत नमूनों में मिलावट पाई गई। अनुमान है कि युद्ध-काल में ९० प्रतिशत से अधिक नमूनों में मिलावट रही होगी। बनस्पति से होने वाली हानि के बारे में वैद्यों डाक्टरों और हकीमों के विभिन्न सम्मेलनों में अनेक प्रस्ताव पास हुए हैं। लेकिन गरीबी की वजह से लोग बनस्पति का ही अधिक उपयोग करते हैं।

कुछ लोगों का खयाल है कि यहां पशु-धन की कमी है। लेकिन उपलब्ध आंकड़े इनके अनुमान को निराधार बताते हैं। भारत सरकार के 'मिल्क मारकेटिंग' सलाहकार

आर०ए०पेयर आल के हिसाब से २-३ वर्ष पहले भारत में दूध देने वाले पशुओं की संख्या २२ करोड़ थी। २५ अक्तूबर १९४० के 'हिन्दुस्तान टाइम्स के अनुसार संसार का ३० प्रतिशत पशुधन हिन्दुस्तान में है। यह सत्य है कि इस युद्ध में यहां का पशुधन काफी बर्बाद हुआ है। लेकिन यह बात अन्य मुल्कों के लिए भी उसी प्रमाण में लागू है। जो आंकड़े यहां दिए गए हैं, वे लगभग ५-६ वर्ष पहले के हैं। इस तरह युद्ध के पहले दूध-घी की जो कमी थी, वह युद्ध काल में और बढ़ गई तथा आज युद्धोपरान्त-काल में तो वह और भी बढ़ गई है।

मांस-मछली

भारत में जन-संख्या का दो तिहाई हिस्सा मांसाहारी है। लेकिन इन मांसाहारियों को न पर्याप्त मात्रा में मांस-मछली मिलती है, न अण्डे। पशुओं का उत्पादन बढ़ाने पर ही मांस की मात्रा बढ़ाई जा सकती है। लेकिन भारत की वर्तमान अवस्था में मछलियों की कमी नहीं होनी चाहिए। क्योंकि यहां बारहों महीने बहने वाली नदियों की कमी नहीं है। तालाबों की संख्या गिनती से भरे है। इनके अलावा यहां ४० हजार मील का समुद्र-तट है। लेकिन, शासकों की लापरवाही की वजह से भारत में मछलियों का सदा अकाल रहता है। इस युद्ध के दौरान में पिछले साल आसाम के अन्दर पांच रुपया सेर तक मामूली मछली बिकी है। 'हिल्सा और 'रोहू मछली के दाम तो ७-८ रुपये सेर तक चढ़ गये थे।

फल

भारत के अन्दर अति उष्ण से लेकर अति शीत तक सभी तरह का जलवायु है। अतः यहां संसार भर के लगभग सभी तरह के फल पैदा होते हैं। अंगूर, आम संतरा, केला, सेब, नाशपाती, पपीता, आदि फलों के लिए भारत प्रसिद्ध है। बम्बई प्रान्त और मैसूर रियासत की अंगूर की बेलों में संसार भर में सबसे अधिक अंगूर लगते हैं। इन प्रदेशों में प्रति एकड़ क्रमशः ११,६१० और १११६० पौंड अंगूर उत्पन्न होते हैं, जब कि केलिफोर्निया की अंगूर की बेलों में प्रति एकड़ केवल ७६७८ पौंड निकलते हैं। फिर भी यहां अंगूर की बेलों का विस्तार बढ़ाने की ओर बहुत ही कम ध्यान दिया जा रहा है। अब तक भारत में कुल ४,२०० एकड़ भूमि में ही अंगूर की बेलें हैं। इस रकबे से भारत की आवश्यकता की केवल आधी आवश्यकता पूरी होती है। 'कृषि-जन्य हाट व्यवस्था के अनुसार अंगूर की फसल तिगुनी बढ़ाई जा सकती है। आम, सेब, संतरा आदि अधिक मात्रा में बाहर भेज दिए जाते हैं। इस तरह फलों की कमी तो हो ही रही है, साथ ही ज्यों-ज्यों आबादी बढ़ रही है त्यों-त्यों फलों की खेती का रकबा घटाया जा रहा है। पिछले ४०-४५ वर्षों में फल और साग-सब्जी की खेती का रकबा ५७ लाख एकड़ भूमि से ४८ लाख एकड़ भूमि कर दिया गया है। इसका नतीजा यह हो रहा है कि जितनी मात्रा में फल और साग-सब्जी भारतवासी को मिलनी चाहिए उतनी मात्रा में मिल नहीं रही है।

दूध-घी, मांस-मछली, फल तथा अंडों की भारत में कितनी कमी है इसका स्पष्टीकरण प्रो० अफजल हुसेन ने इसी साल २ जनवरी को भारतीय विज्ञान परिषद् में किया है। प्रो० अफजुल हुसेन द्वारा दिये हुये आंकड़े काफी महत्वपूर्ण हैं, क्योंकि वह कृषि-विज्ञान के विद्वान हैं और दुर्भिक्ष जांच कमीशन के सदस्य रह चुके हैं। उनका कहना है कि भारत में इस समय २५ प्रतिशत चिकनाई (चर्बी, तेल आदि), ५० प्रतिशत फल, १०० प्रतिशत साग-सब्जी, ८०० प्रतिशत दूध-घी और ३०० प्रतिशत मांस-मछली की कमी है। उनका कहना है कि उपरोक्त खाद्य-पदार्थों का उत्पादन जब तक बढ़ाया नहीं जाता, अथवा इन खाद्य-पदार्थों की कमी को बाहर से लाकर पूरा नहीं किया जाता, तब तक भारत स्वस्थ और बलिष्ठ नहीं हो सकता।

खाद्य-इकाई (केलोरी) की कमी

इस तरह अपर्याप्त खाद्य-पदार्थों का भारत पर किस तरह असर पड़ रहा हैं उसका प्रमाण खाद्योत्पन्न ताप की इकाई अथवा 'केलोरी * के हिसाब से मिलता है।

---

*शरीर में भोजन से उत्पन्न होने वाली गर्मी की इकाई को 'केलोरी' कहते हैं। एक ग्राम पानी को १ डिग्री सेन्टिग्रेड तपाने से १ 'केलोरी बनती है।

(शेष पृष्ठ १६३ पर)

सब्जियाँ ठीक तरह बनाइये

श्री रमेश वेदी आयुर्वेदालङ्कार, लाहौर।

[श्री रमेश वेदी, हिमालय हर्बल इंस्टीच्यूट, बादामी बाग, लाहौर, के एक अनुभवी चिकित्सक एवं आहार शास्त्री हैं। आपके उपयोगी लेख अनेक मासिक साहित्य में समय-समय पर प्रकाशित होते रहते हैं। आशा है 'जीवन सखा' के पाठक भी आपके लेखों का रसास्वादन करते रहेंगे। इस हार्दिक सहयोग के लिए हम वेदी जी के विशेष आभारी हैं। —सं]

आपके भोजन में साग सब्जियों का क्या स्थान होना चाहिये और क्या आपकी पत्नी बढ़िया सब्जी बनाना जानती है? बताइये। मेरा ख्याल है, दोनों बातों का ठीक जवाब आप नहीं जानते। खूब अधिक मिर्च मसाले और बहुत घी में भून कर बनाई गई और खुशबूदार सब्जियां आप की बिगड़ी जबान को जरूर भली लगती है, लेकिन वे आपको पूरा पोषण नहीं दे रहीं। उन्हीं सब्जियों को उतने ही पैसे में और उतनी ही मेहनत में आपकी पत्नी ऐसा बना सकती हैं कि आप उससे कई गुना अधिक लाभ प्राप्त करने लगें। इसके लिए आपको और आपकी पत्नी को ये बातें मालूम रहनी चाहिये।

सब्जी खरीदते हुये ताज़ी से ताज़ी चीज चुनने की कोशिश कीजिये। जब आपको जरूरत हो तभी खरीदें और उसे तुरन्त इस्तेमाल कर लें। रोज ताजी सब्जी लें। घर में पड़ी रहने दे कर इसे बासी मत कीजिये।

बाजार या बागीचे से लाते हुए अपनी लापरवाही के कारण इसे चोट खा कर कुचलने न दीजिये। बहुत बार, अगले समय का काम हलका करने के लिये रसोई की स्वामिनी दोनों समय की सब्जियों को एक समय ही चीर कर रख छोड़ती है। पकाने से बहुत देर पहले इन्हें चीर कर नहीं रखना चाहिए। कटी हुई, चोट खाई हुई, पिसी हुई या सड़ी हुई सब्जियों में एक किस्म के खमीर पैदा हो जाते है जो जीवन के तत्व खाद्योजों (विटामिनों) को नष्ट कर देते है।

सूखी और गरम जगह पर सब्जियां पड़ी रहें तो गरमी खमीरों की प्रक्रिया को बढ़ाती है जिससे इन में तेज़ी से सड़न होने लगती है। इसलिए सुबह लाई गई सब्जी को जब शाम को बनाना हो और इतने समय के लिये उसे सूखने से बचाने के लिए पानी में भिगोने की जरूरत हो तो उसे ठण्डे नमकीन पानी में (बारह छटांक पानी में दो चाय के चम्मच भर नमक) भिगो छोड़ें। सादे पानी में नहीं। सब्जियों में विद्यमान खाद्योज पानी में विलेय हैं इसलिए सादे पानी में वे घुल कर नष्ट हो जायँगे परन्तु नमकीन पानी उनकी रक्षा करेगा।

सब्जियों के पत्ते नहीं फेंकने चाहिये। मूली, शलजम, हरा प्याज आदि के कोमल पत्तों को भी पका कर खा लेना चाहिए। सब्जियाँ उबाल कर उनका पानी फेंकना ठीक नहीं क्योंकि इससे पानी में घुले हुए खाद्योज और खनिज लवण निकल जाते हैं और ये सारहीन हो जाते हैं। सोडा, 'बेकिंग पाउडर' आदि डाल कर सब्जियाँ न पकाएँ इससे खाद्योज नष्ट हो जाते है।

खाद्योजों और खनिज लवणों को अधिक से अधिक परिमाण में प्राप्त करने के लिए साग-सब्जियों को पकाने की विधि यह है सब्जी में जितना पानी और नमक गलना है उसे अलग पतीले में ले कर चूल्हे पर रखें। पानी उबल जाने पर चीरी हुई सब्जी को उसमें छोड़ दें। इसे पकने के लिये कम से कम जितने समय की जरूरत होती है उससे अधिक देर तक आग पर न रखें। यदि पानी ज्यादा पड़ गया है तो उसे फेंके नहीं, दूसरी सब्जी को बनाने में बरत लें, अथवा रसदार सब्जी की तरह इसे खा लें। पकाने से पहले पानी में जो नमक मिलाया था उसका उद्देश्य यह था कि खाद्योज 'सी' को कम से कम क्षति पहुंचे। यह खाद्योज पानी में घुलन शील है और गरमी से नष्ट हो जाता है। यह नाश इस बात पर निर्भर करता है कि सब्जी को कितनी देर तक आग पर रक्खा गया था और यह गरमी कितनी अधिक थी। इसलिए स्मरण रखिए

(शेष पृष्ट १६५ पर)

(पृष्ठ १६१ का शेषांश)

भारत की आबोहवा में रहने वाले औसत आदमी को स्वस्थ और बलिष्ठ रहने के लिए २६०० 'केलोरियों' की आवश्यकता है। जो खाद्य सामग्री भारतवासियों को मिल रही है, उसमें प्रत्येक औंस में कितनी 'केलोरियां, पैदा होती हैं, यह निम्नलिखित आंकड़ों से मालूम होगा :—

खाद्य	**'केलोरी'**
चावल	१०४
गेहूँ	१०४
बाजरा	९४
दूध (गाय)	१९
दूध (भैंस)	२८
ताजी मछली	२४
मछली सूखी	९२
अण्डा	४५
घी, मक्खन, तेल, शुद्ध	२१६
बकरे का मांस चर्बीदार	१६०
आलू	२०
प्याज	१४
शकरकन्द	२८
दाल मसूर	१०४
बम्बई का आम	२२
संतरा	१५
केला	२८
सेब	१८

अब इन खाद्य-इकाइयों (केलोरियों) को उस खाद्य सामग्री से मिलाइये जो भारत के औसत आदमी के हिस्से में आती है। सन् १९३१-३२ में प्रतिशत ४७३ खाद्य इकाई की कमी हो रही थी। मद्रास के गवर्नर के सलाहकार श्री एस० वी० राममूर्ति ने अभी हाल में कोकोनाडा के अन्दर अपने एक भाषण में बताया है कि मद्रास प्रान्त में तथा साधारण रूप से समस्त भारत के अन्दर औसत आदमी की खुराक घटते-घटते इतनी हो चली है कि उसे केवल १,६०० खाद्य इकाइयों पर ही जीना पड़ रहा है। डाक्टरों का कहना है कि भारत में १७०० खाद्य इकाई खर्च करने वाले व्यक्ति को चारपाई पर लेटे रहना होता है। लेकिन आज की अवस्था में उसे १६०० खाद्य इकाई पर कड़ी मशक्कत करनी हो रही है। भारत के मुकाबले में अब इस युद्धोत्तर काल में भी इङ्गलैन्ड का औसत आदमी ३००० और अमेरिका का औसत आदमी ३३०० खाद्य इकाइयों का भोजन कर रहा है।

स्वास्थ्य पर असर

पर्याप्त भोजन सामग्री के अभाव में भारत का स्वास्थ्य दिन पर दिन गिरता जा रहा है। गिरता हुआ स्वास्थ्य हलकी से हलकी बीमारी का भी प्रतिकार करने में असमर्थ हो रहा है। यही वजह है कि आज केवल ब्रिटिश भारत में औसतन् ६२-६३ लाख आदमी प्रतिवर्ष मर रहे हैं दस में आधी संख्या ऐसे बालकों की होती है जिनकी आयु १० वर्ष से कम है। दो लाख औरतें प्रसूति काल में ही मर जाती हैं। जो स्त्रियाँ प्रसूति-काल की अवस्था से मरने से बच जाती हैं उनमें से ४० लाख विभिन्न तरह की व्याधियों से आजीवन पीड़ित रहती हैं। भारत में १० करोड़ आदमी मलेरिया से पीड़ित रहते हैं, जिनमें लगभग २० लाख तो किसी भी हालत में मरने से बच नहीं पाते। २५ लाख जान तपेदिक से पीड़ित रहते हैं, जिनमें प्रतिवर्ष ५ लाख मर ही जाते हैं। चेचक, हैजा, प्लेग आदि मौसमी बीमारियों से पीड़ित होकर मरने वालों का तो कहना ही क्या है।

अपर्याप्त खाद्य-सामग्री का प्रभाव भारत की औसत आयु पर भी पड़ रहा है। आज भारत की औसत आयु घटते-घटते २६ वर्ष रह गई है, जब कि आस्ट्रेलिया की ७६, इङ्गलैन्ड की ६३ और जापान की ४७ वर्ष है।

विश्वास-चिकित्सा (फेथक्योर)

[प्रोफेसर रामचरण महेन्द्र एम० ए० डी० लिट्०, डी० डी०]

'विश्वासं फलदायकं' की लोकोक्ति निस्सार नहीं। मनुष्य का विश्वास ही वह आधार शिला है जिस पर स्वस्थ, सबल एवं रोग-रहित जीवन की इमारत खड़ी की जा सकती है। इसी तरह का विवेचन विद्वान लेखक ने यहां पर बड़े सुन्दर ढंग से किया है। इसमें आप देखेंगे कि हमारे समस्त रोग, शोक और चिन्ताओं का सही और अचूक इलाज डाक्टरों या वैद्यों की दवाइयों में नहीं हमारे विश्वास में ही निहित है। अतः यह आवश्यक है कि रोगी का इलाज करने के पूर्व उसकी मानसिक-स्थिति में सुधार किया जाय, उसमें दृढ़ विश्वास की भावना उत्पन्न की जाय—बस यही है वह विश्वास-चिकित्सा जिसके लिए लेखक ने जोर दिया है।

—सं०]

मनुष्य विश्वास (Faith) का दास है। जैसा विश्वास उसके दिमाग में एक बार घर कर गया, उसी के अनुसार उसकी शरीर रूपी मशीन चलती रहेगी। अतः आधुनिक मनोविज्ञान वेत्ता प्रत्येक रोग का मूल कारण मन को मानते हैं और मन की चिकित्सा से उपचार शुरू करने का आदेश करते है। मन का शरीर पर अद्भुत प्रभाव पड़ता है। मन चंगा तो शरीर चंगा। 'फेथक्योर' या विश्वास-चिकित्सा इसी सत्य के ऊपर अवलम्बित है।

किसी तथ्य के निर्धारण में मन की तीन वृत्तियाँ कार्यशील होती हैं—विश्वास, सन्देह, तथा अविश्वास। सर्व प्रथम मन निर्धारण की क्रिया होती है। अनेक एक-से उदाहरण अवलोकन कर, मनुष्य एक विशेष उपचार को सत्य मानने लगता है। इस सत्यता में जहाँ विश्वास हुआ वहां उस सत्य में दृढ़ता का संचार होने लगता है। जब एक बार मन में किसी बात में विश्वास जम जाता है तो उसके खिलाफ वह कुछ नहीं सुन सकती। प्रारम्भिक स्थिति में हम जैसे चाहें सत्य (Truth) को तोड़ मरोड़ सकते हैं किन्तु पूर्ण निर्धारण के उपरान्त मन में एक ऐसा स्थायी पथ या लकीर विनिर्मित हो जाती है जैसीकि ग्रामोंफोन के रिकार्ड पर हम देखते हैं। हम सब अपने अपनेविश्वासों के हाथों में हैं बाल्यकाल में अपने माता-पिता प्रति डर या आदर-सूचक हमारे भाव भी एक प्रकार के विश्वास ही हैं जो जीवन पर्य्यन्त नहीं दूर होते। एक बार किसी खास चीज में विश्वास जम जाने पर मनुष्य का मन उस विश्वास के विरुद्ध कोई भी तर्क स्वीकार नहीं करता।

वास्तव में दवाई नहीं, हमारे विश्वास ही समस्त रोग, शोक और चिन्ताओं की महौषधि है। विश्वास एक रचनात्मक शक्ति है। सद् विश्वास, सदा मुक्ति, अभ्युदय, आरोग्यता, सुख, शान्ति,पवित्रता, दीर्घ जीवन देने वाला देवदूत हैं। अनुभव हमें बताता है कि चिकित्सा से पूर्व हम रोगी के विश्वासों को टटोलें।

क्या कारण है कि साधुओं की धूनी की राख से अमृत जैसा लाभ होता है? क्या कारण है कि केवल अध्यापक एवं विशेषज्ञ द्वारा निर्दिष्ट बात ही विद्यार्थी के मन में बैठती है? क्या बात है कि माता के पास ही आकर शिशु चुपचाप खेलता है? क्या कारण है कि झाड़ फूंक, जादू, टोना, नजर उतारना, गंड़ा ताबीज; दाँत कीलना, मेस्मेरैजम, हिप्नोंटिज्म सजेश्चन (Suggestion) इत्यादि मानसिक चमत्कारों से आश्चर्यमय लाभ होता है? डाक्टर आकर नब्ज देखता है और कहता है, "कुछ नहीं मामूली हरारत है। शाम तक ज्वर उतर जायगा।" और शाम तक वास्तव में बुखार उतर जाता है। वैद्य जी आते हैं।

नाखून और नेत्रों का वर्ण देख कर कहते है—" एनीमिया है; दूध मुनक्का दीजिए। दस दिन में आराम हो जायगा।" ऐसा कहते ही रोगी का विश्वास (Faith) सुदृढ़ है। मन में यह धारणा होती है कि दस दिन में ठीक हो जायंगे। आशाप्रद संकेतों से दस दिन में स्वास्थ्य ठीक हो जाता है।

चिकित्सा, दवाई, इन्जेक्शन में आदिकाल से जमे हुए मानव समूह के विश्वास ही हैं। इन लाल पीली बोतलों में भरी दवाइयों में मनुष्य का विश्वास ही भरा है। गुणकारी तत्व रोगी का अपना ही विश्वास है। दवाइयों के रूप में आपके अन्दर विश्वास पैदा हो जाता है। उसी के अमृतोपम संकेत से लाभ होता है। अन्तर्मन (Unconscious Mind) का आन्तरिक सामर्थ्य उत्तेजित होता है और मनुष्य की कष्ट-निवारक प्रेरणा रोगी को पुनः स्वस्थ्य कर देती है।

कितने ही व्यक्तियों को यह विश्वास जम जाता है कि तम्बाकू, भाँग, इत्यादि से उदर के रोग दूर होते हैं या चाय काफी से ताकत आती है। कुछ दिन सेवन के पश्चात् न जाने कैसे वास्तव में ऐसा ही होने लगता है। उन्हें स्वास्थ्य विनाश को इन मादक उत्तजक पदार्थों (Stimulants) से ही लाभ दिखाई देने लगता है इसका कारण कुछ नहीं, हमारा पुराना आत्म विश्वास ही है।

हमने अनेक बार देखा है कि कितनी ही बीमारियों में किन्ही विशेष औषधियों में जब विश्वास जम जाता है। फिर उन्हीं से लाभ दिखाई देने लगता है। अन्य कोई प्रसिद्ध डाक्टर दवाई करे तो कुछ भी लाभ नहीं दीखता। कभी कभी किसी पंडित, मुल्ला के स्पर्श मात्र से रोग दूर होता है। महात्मा ईसा महान् के व्यक्ति की आत्मा की तरंगों से अनेक रोगी भले चंगे हुए थे। झाड़ फूंक करने वाले अनेक लोग पहुँचे हुए फकीर माने जाते हैं और दूर दूर से लोग उनके पास चिकित्सा कराने आते हैं। इन सब में विश्वास का ही बल कार्य करता है।

आत्म-संकेतापचार पद्धति भी और कुछ नहीं विश्वास चिकित्सा ही है। विश्वास का सीधा सम्बन्ध मानव मन के अचेतन जगत् से है। इन अचेतन तरंगों का विद्युत प्रभाव ही मनुष्य के रोग, शोक, चिन्ता, व्याधि दूर करता है। चिकित्सा रोगी के अन्तर्मन (Sub-conscious Mind) में यह विचार दृढ़ता से जम जाता है कि वह वास्तव में स्वस्थ है। क्रमशः दशा में परिवर्तन होता है और रोगी को आराम हो जाता है।

बलवान् विचार ही रोग, शोक, दुःख और चिन्ताओं से मुक्त करने वाला है; किन्तु यह वह विचार है जो दृढ़ इच्छाशक्ति से प्रेरित किया जाता है। इस विचार के पीछे आत्मा की अनन्त शक्ति विद्यमान रहती है। विश्वास द्वारा हम अन्तर्मन की प्रबल शक्ति खोल लेते हैं।

आपको उसी चिकित्सक; दवाई, देश, जल, वायु, अथवा स्थान से लाभ हो सकता है। जिसके प्रति आपके हृदय में विश्वास है प्रत्येक व्यक्ति के विश्वास भिन्न भिन्न हैं। सद् विश्वास, स्वास्थ्य प्रद विश्वास जीवन के सभी तत्वों से मेल, एकता, व शान्ति स्थापित कर मनुष्य के शरीर और चरित्र को सुदृढ़, मन को प्रबल, तथा आत्मा को अदम्य बना देता है।

सब्जियाँ ठीक तरह बनाइए

(शेष पृष्ठ १६१ से आगे)

कि इसे जितनी जल्दी पकाया जा सकता है उतनी जल्दी पका लें, क्यों कि खाद्योज को सुरक्षित रखने का यही तरीका है। अनावश्यक आग के सम्पर्क में रख कर खाद्य पदार्थों को खराब नहीं करना चाहिए।

पकाने के बाद साग-सब्जियों को देर तक पड़ा न रहने दें। तुरन्त परोस लें। घरों में, स्कूलों में, आश्रमों में और होटलों में प्रायः देखा जाता है कि बहुधा भोजन करने के समय से बहुत पहले ही साग-सब्जियाँ बना कर रख दी जाती है। ठण्डी न हो जाय इस लिये इन्हे आग के पास टिका दिया जाता है। फिर भी यदि ये ठण्डी हो गई है तो परोसने से पहले इन्हे दुबारा गरम कर लेते हैं। हरी सब्जियाँ या पकाये हुए आलू गरम रखे रहने दिये जायं तो इनमें से बहुत अधिक खाद्योज नष्ट हो जाते हैं। आलू को छिलके समेत उबालिये। यह खाद्योजों को ध्व होने से बचाता है।

आपकी जरूरत

आपके भोजन में हरी साग सब्जियों का जितना परिमाण होना चाहिए उतना शायद आप नहीं खा रहे। शरीर की आवश्यकता पूरी करने के लिए एक जवान आदमी के समतुलित भोजन में पत्ते वाली सब्जियों का परिणाम प्रति दिन दो छटांक तो अवश्य रहना चाहिए। पत्ते वाली हरी सब्जियों से हमारा मतलब पालक, मेथी, सलाद, पात गोभी, मूली, शलजम और प्याज के पत्ते, सरसों, चौलाई, बथुआ, पोई, कुल्फा, सेहजी आदि से है। बिना पत्ता वाली ताज़ी सब्जियां इस दो छटांक के अलावा हैं। ये भी रोज तीन छटांक तो लेना ही चाहिए। ऐसी कुछ सब्जियों के नाम है—गाजर, शलजम, मूली, चुकन्दर, आलू, आदि कन्द और जड़ें, बैंगन, करेला, तुरई, घिया, टिण्डा, खीरा, ककड़ी, परवल, टमाटर, आदि फल, सेम, मटर, ग्वार, लोबिया, आदि फलियां।

ध्यानात्मक तथा व्यायामात्मक आसन

[डा० बालेश्वर प्रसाद सिंह]

[आसन प्रधानतया दो प्रकार के बताए गये हैं—(१) ध्यानात्मक तथा (२) व्यायामात्मक ध्यानात्मक आसन मानसिक तथा आध्यात्मिक लाभ के लिए और व्यायामात्मक आसन,—जैसा कि उसके नाम से ही प्रकट है—शारीरिक लाभ के लिए बताये गये हैं। इन आसनों के लिये उपयुक्त स्थान और समय, इनकी विधि तथा तत्सम्बन्धी अन्य आवश्यक बातों की जानकारी स्वास्थ्यार्थियों को इस लेख से प्राप्त हो सकती है। आप देखेंगे कि ध्वजभंग, शीघ्र वीर्यपात, क्लीवत्व आदि वीर्य-सम्बन्धी रोगों को नष्ट करने के लिये ये योगिक क्रियाएं रामबाण ही हैं। इन रोगों से मुक्ति पाने के लिये, झूठे विज्ञापनों, मारक औषधियों के चक्कर में न पड़कर यहाँ बताई गई विधियों का अनुसरण करें तो न केवल इन रोगों से सहज ही छुटकारा पा जायँगे, बल्कि वे स्थायी एवं सुदृढ़ आधार पर अपना शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक विकास करने में समर्थ होंगे।

प्रस्तुत लेख 'स्वास्थ्य तथा आसन' शीर्षक पुस्तक का, जो अब शीघ्र ही प्रकाशित हो जायगी, एक अंश है।—सं०]

हमें यह जान रखना चाहिये कि मोटी तौर से सारे आसन दो भागों में विभक्त किये जा सकते हैं :—

(१) ध्यानात्मक।

(२) व्यायामात्मक।

जिन आसनों का उद्देश्य केवल चित्त को एकाग्र करना है उन्हें हम ध्यानात्मक कहेंगे। इनमें शारीरिक मेहनत बरायनाम होती है, पर चित्त में शांति, उत्साह तथा आनन्द का उद्रेक होता है।

ध्यानात्मक

इन में रीढ़ को सीधा रख दृष्टि को नासाग्र या भ्रूमध्य में केंद्रित करना होता है। इनमें कसरत तो कोई ख़ास नहीं, पर मानसिक, और इच्छा रखने वाले के लिये आध्यात्मिक लाभ बहुत अधिक होता है। इनमें पद्म, स्वस्तिक, सिद्ध, तथा सम आसन यही ४ मुख्य आसन हैं। ये वास्तव में ध्यान के आसन हैं। इनके लिये एकान्त स्थान, हवादार खुला हुआ साफ़ कमरा या नदी तट सर्वोत्तम है। सूर्योदय से कुछ पहले इसके लिये सब से अच्छा समय है। इसके लिये सुविधानुसार १० या १५ मिनट से लेकर १ या २ घंटे तक समय दिया जा दिया जा सकता है। पर इस बात की पूरी सावधानी रखनी चाहिये कि जब तक ध्यानात्मक आसन किये जायं तब तक आदमी बाहरी दुनिया से अलग रहे। कोई सांसारिक झंझट इस समय उसका ध्यान भंग न करे। कोई छेड़े न उसको। स्नान के बाद ही इनको

करना उत्तम होता है। क्योंकि ठंढे स्नान से रक्त-संचार बढ़ जाता है और आसनों से उसके बाद अधिक लाभ होता है।

भुजंग, शलभ आदि आसनों को जिनमें अच्छी ख़ासी, कसरत होती है, हम व्यायामात्मक कहेंगे। ये रुचि या सुविधानुसार ध्यानात्मक आसनों के पहले व्यायामात्मक या पीछे भी किये जा सकते हैं। पर योगियों का नियम यही है कि पहले व्यायामात्मक आसनों को कर लिया जाय। फिर इत्मिनान से ध्यानात्मक आसनों में बैठ कर प्राणायाम करना और फिर ध्यानस्थ होकर किसी एक आसन (जैसे पद्मासन) में १, २ घंटे चित्त को एकाग्र करना या त्राटक का अभ्यास करना।

प्रातःकाल का समय संध्या से अच्छा पड़ता है। उचित तो यह है कि थोड़ा-थोड़ा वक्त दोनों समय साधन में दिया जाय या एक वक्त ध्यान और दूसरे समय व्यायाम किये जायँ।

अन्य व्यायाम

जो लोग उभड़ी हुई मांस पेशियों वाले व्यायाम करना चाहते हैं उनके लिये सर्वोत्तम नियम यही है कि एक वक्त आसन करें और दूसरी वक्त कोई दूसरी कसरत। दोनों को एक साथ करना ठीक नहीं। जो दोनों वक्त समय नहीं निकल सकते, उनके लिए ज़रूरी है कि कसरतों के बीच में कम से आध घंटे का अंतर डाल दें; या स्नान से पहले पेशीवाली कसरत करलें और स्नान के बाद आसन।

ध्यानात्मक आसन

व्यायामात्मक आसनों को प्रारंभ करने के पहले ध्यानात्मक आसनों का वर्णन आवश्यक है। जो लोग आसनों के साथ प्राणायाम भी करते हैं उनके लिये तो ध्यानात्मक आसमों का अभ्यास बहुत ही उपयोगी है। पर ध्यानात्मक आसनों के विशेष अंग हैं दो दृष्टियाँ और तीन बंध। चित्तको एकाग्र तथा रक्त-संचालन तथा श्वास क्रिया को शुद्ध करने के लिए योगियों ने कई अचूक उपाय निकाले हैं जिनमें से ये दृष्टियाँ और बंध मुख्य हैं।

ये दृष्टियाँ सध जाने पर फिर आगे चल त्राटक सिद्ध करने में बड़ी आसानी हो जाती है। जिसको त्राटक सिद्ध हो जाय, उसकी दृष्टि में आकर्षण-शक्ति इतनी बढ़ जाती है कि वह चलती हुई ट्रेन तक को रोक सकता है। योगियों का यह दावा कहाँ तक सही है इसकी छान बीन हम यहां न करेंगे; पर इतना निस्संदेह है कि दोनों दृष्टियाँ साधने वाले को मन पर काफी नियंत्रण (काबू) हो जाता है और कोई नेत्र-रोग उसके पास नहीं फटक सकते और आगे चल कर साधक इस अवस्था में पहुँच जाता है कि घंटे दो घंटे किसी एक ध्यानात्मक आसन में बैठ कर प्राणायाम या केवल ध्यान (बंधों के साथ) करता हुआ बैठ सकता है। हम पहले दृष्टियों को लेते हैं। इनके नाम हैं :

(१) नासाग्र दृष्टि तथा

(२) भ्रूमध्य दृष्टि।

नासिका के अग्र भाग (नोक) पर दृष्टि को केंद्रित कर देना और इसी अवस्था में दोनों आंखों को केंद्रित रखना नासाग्र दृष्टि कहलाता है (चित्र-नासाग्र दृष्टि नं० १ देखो) पद्मासन के साथ उसी के एक अंग के रूप में या स्वतंत्र रूप में इसका अभ्यास किया जा सकता है।

बहकते, भटकते हुए मस्तिष्क या बे-लगाम दिमाग़ को काबू में लाने के लिये नासाग्र-दृष्टि बहुत अच्छी चीज है। कुछ महीने लग कर इसका अभ्यास करने से मन पर काफ़ी प्रभुत्व हो सकता है।

पर जो लोग बहुत कमजोर (शरीर और दिमाग दोनों से) उनको किसी विशेषज्ञ की देख-रेख में इसका अभ्यास आरंभ करना चाहिये। क्योंकि नासाग्र दृष्टि का प्रभाव चक्षु-तंतुओं के द्वारा सीधे मस्तिष्क पर पड़ता है। शुरू में बहुत सावधानी सब के लिये अनिवार्य है। सब से बड़ा विषय यह है कि जितनी देर तक मजे के साथ अभ्यास किया जा सके उतनी ही देर तक करना और धीरे-धीरे बढ़ाना अपनी शक्ति को देखते हुए। जब यह मालूम हो जाय कि अभी हम और कुछ देर तक आनन्द के साथ कर सकते हैं तब भी कुछ दिन तक न बढ़ाना। जब

बढ़ाये बिना संतोष न हो तभी अभ्यास बढ़ाना। इससे यह होता है कि कभी लौटने की या नुकसान होने की नौबत नहीं आती। यह नियम सभी आसनों या व्यायामों के लिये ठीक है।

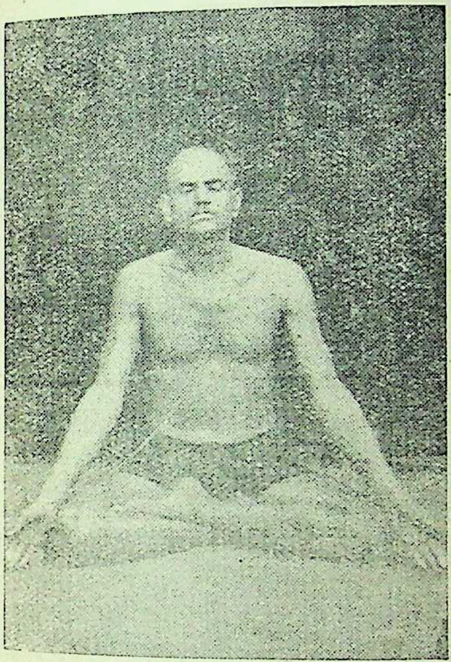

(चित्र नं० १)

नासाग्र दृष्टि

भ्रूमध्य दृष्टि दृष्टि को दोनों भौंह के बीचोबीच केंद्रित कर देना और शक्ति अनुसार वहीं अर्से तक केंद्रित रखना, भ्रूमध्य दृष्टि कहलाती है।

इसका अभ्यास सिंहासन के अंग के रूप में या स्वतंत्र रीति से किया जा सकता है।

नासाग्र दृष्टि की भांति यह भी चित्त को वश में करने का एक सुन्दर साधन है और जो नियम तथा सतर्कता नासाग्र दृष्टि के संबंध में कही गई है वही इसके लिए भी समझनी चाहिये।

इन दृष्टियों के करते समय बलात् मन को सब ओर से समेट कर किसी एक स्थान पर केंद्रित करना पड़ता है। जब तक आपकी दृष्टि नाक की नोक या दोनों भौंहों के बीच जमी हुई है तब तक आपका दिमाग किसी दूसरी ओर भटक नहीं सकता। और साल छः महीने इस तरकीब के सहारे चित्त को एकाग्र करने की आदत डालने के बाद फिर स्वतः इतनी शक्ति हो जाती है कि इच्छानुसार मन से काम लिया जा सकता है। फिर इन साधनों से सहारा लेने की जरूरत नहीं रह जाती।

बंध

ध्यानात्मक आसनों से पूर्ण लाभ उठाने के लिये उनके साथ साथ तीन बंध साधते चलने की व्यवस्था योगियों ने की है। ये आगे चल कर प्राणायाम के लिये बड़े उपयोगी सिद्ध होते हैं। ये यों तो स्वतंत्र रीति से भी साधे जा सकते हैं, पर ध्यानात्मक आसनों और प्राणायाम के साथ करने से ही पूर्ण फल होता है तथा शारीरिक से अधिक मानसिक और आध्यात्मिक उत्कर्ष के लिये ये नितांत आवश्यक हैं। ये कुल तीन हैं—

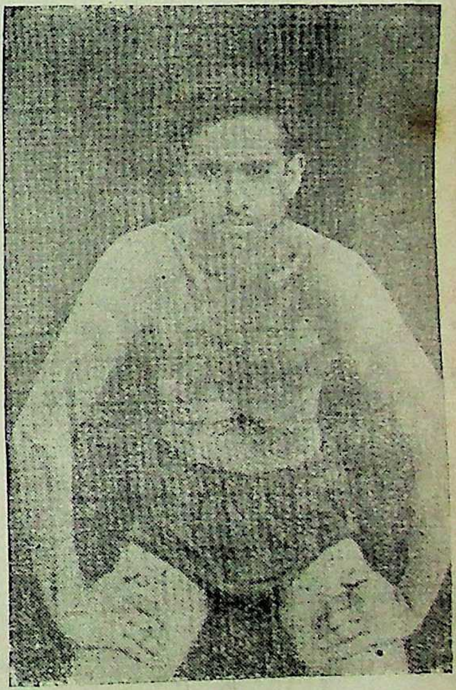

(चित्र नं० २)

उड्डीयान-बंध

(१) उड्डयान-बंध

(२) जालंधर बंध

(३) मूल बंध।

उड्डीयान बंध बैठ कर या खड़े होकर दोनों प्रकार से साधा जा सकता है। (चित्र नं० २ देखो) बैठ कर यह पद्मासन में किया जाता है। दोनों हाथ घुटने या जंघे पर रहें और गर्दन तथा कंधों का पूरा भार हाथों पर रहे। फिर जहां तक संभव हो, गहरी सांस बाहर निकालिये ताकि फेफड़ों में बिलकुल वायु न रह जाय, और ऐसा करते समय पेट सिकुड़ कर बिलकुल पीठ से मिला दें। (जहां तक संभव हो) हवा बाहर निकालनें के बाद गर्दन व कंधों की पेशियां दृढ़ता से जमी रहें और छाती भी संकुचित रहे, पर हवा भीतर न आने पावे और इसके बाद पसलियों को ऊंचे उठा कर नकली तौर पर सांस खींचने की कोशिश कीजिये और साथ ही फेफड़ों में हवा धीरे धीरे भरने दीजिये। ऐसा करने के साथ ही साथ पेट की तनी हुई पेशियां बिलकुल ढीली हो जायंगी।

उड्डीयान

उड्डीयान में तीन मुख्य क्रियायें

(१) गर्दन और कंधों की पेशियों का जमाना।

(२) सारी हवा बाहर फेंकने के बाद नकली या झूठी तौर से सांस लेना।

(३) और साथ ही साथ पेट की पेशियों का पूर्ण शिथिलीकरण या ढीला होना।

ऐसा करने के साथ ही साथ महाप्राचीरा (धुकधुकी) ऊंचे उठ जायगी और पेट में गहरा गड्ढा जिसको 'पेट खलाना, कहते हैं ठेठ बोली में) बन जायगा। जरा सा आगे की ओर झुके रहने पर पेट खलाने में आसानी होती है। क्योंकि वास्तव में पेट खलाने का ही अभ्यास यह है।

पेट की अंदरूनी मालिश और सफाई के लिये उड्डीयान और नौलि से बढ़ कर संसार में कोई व्यायाम नहीं है; और जीर्ण क़ब्जियत, बदहज़मी, भूख की कमी आदि का इससे बढ़ इलाज भी नहीं है। पर इस का अभ्यास धीरे-धीरे और शुरू में किसी जानकार की देख-रेख में करना अच्छा होगा। सब से सहज उपाय यह है कि जब तक आराम से हवा बाहर रोकी जा सके तभी तक रोकिये, फिर इसके बाद कंधों और गर्दन को ढीली छोड़ दीजिये ताकि धीरे-धीरे फेफड़ों में ताजी हवा भर जाय। जब पूरी हवा भर जाय तब तक एक उड्डीयान पूरा हुआ मानना चाहिये। आरंभ में एक हफ्ते तक एक ही काफ़ी है। फिर छः महीने में सात तक बढ़ा सकते हैं और प्रत्येक में एक से तीन मिनट तक, शक्ति के अनुसार हवा बाहर रोक सकते हैं।

इस क्रिया के शारीरिक लाभ ऊपर बता चुके हैं। घोर कोष्ठबद्धता वालों को इसे प्रातःकाल शौच जाने से पहले ही कर लेना चाहिये। पर इसके आध्यत्मिक लाभ इससे कहीं ज्यादे हैं। संस्कृत में 'उड्डीयान' शब्द का अर्थ है 'उड़ना'। कुंडलिनी को जाग्रत करने यान चित-वृत्तियों को अधोमुखी से ऊर्ध्वमुखी करने, दूसरे शब्दो में मनुष्य का 'ऊँचा' उठाने के लिये योगियों की पहली सीढ़ी यही है।

फिर पेट की सारी नसों को ऐसी सुन्दर अंदरूनी मालिश हो जाती है कि दिन भर के लिये तबीयत खुश हो जाती है। करने वालों को क्रमशः मालूम हो जायगा कि पाख़ाने के वख्त जब मल नहीं उतरता तब प्रकृति अपने आप एक हलका उड्डीयान करा देती है और फिर तुरन्त बँधा हुआ साफ पाख़ाना हो जाता है।

पर जिन लोगों को पेट की ख़ास बीमारी हो उनको यह व्यायाम विशेषज्ञ से परामर्श किये बिना न आरंभ करना चाहिये।

जालंधर-बंध

उड्डीयान बंध के बाद जालंधर बंध का नंबर आता है। इसमें ठुड्डी को झुका कर वहां जमा कर देना या गाड़ देना होता है जहाँ गले के नीचे दो हँसुली की हड्डियाँ मिलती हैं। गर्दन को भी आवश्यकतानुसार झुकाना पड़ता है। (चित्र नं० ३ देखिये)

मतान्तर से ठुड्डी को गले से और नीचे छाती की हड्डी पर जमाना होता है।

इस का अभ्यास पद्मासन या सिद्धासन के साथ करना उत्तम होता है, पर यों भी किया जा सकता है।

इस से रीढ़ पर एक प्रकार का ऊपरी तनाव पड़ता है जिस से मस्तिष्क का व्यायाम हो जाता है।

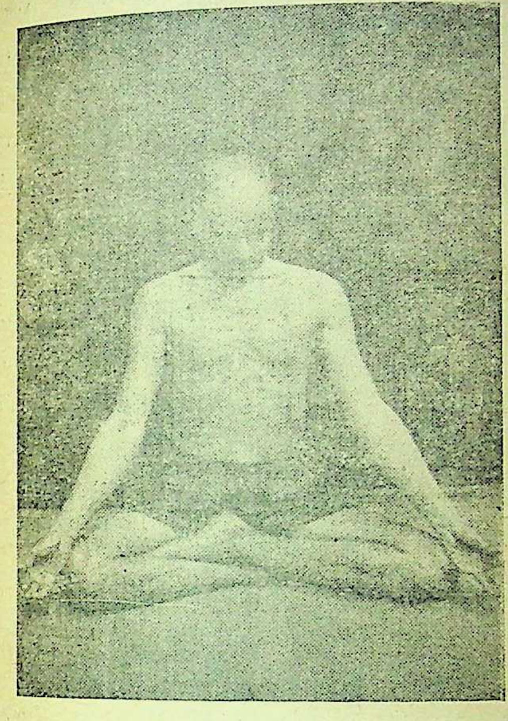

(चित्र नं० ३)
जालंधर-बंध

जालंधर-बंध

'जालंधर' शब्द के दो रहस्य हैं। जालंधर नाम के एक बहुत प्रसिद्ध और हठ योगी हो गये हैं। संभवतः उन्होंने ही इस बंध का आविष्कार किया या विकास किया जिससे इसका नाम उन्हीं के अनुसार पड़ गया। दूसरा अर्थ यह कि 'जाल' शब्द से मतलब है ज्ञानतंतुओं का। मस्तिष्क में ज्ञानतंतुओं का एक जाल है उनको यह बंध 'धारण' करता यानी उनको थोड़ी समय के लिये एकाग्र कर मस्तिष्क को आराम दे देता है। इन दृष्टियों, बंधों तथा ध्यानात्मक को आसनों का मुख्य उद्देश्य ही है प्रतिक्षण भटकते हुए मस्तिष्क को शांति पहुँचाना जिससे चित्तबृत्ति शांत होकर स्वास्थ्य और आयु बढ़े। जालंधर-बंध के साथ भ्रूमध्य दृष्टि सिद्धासन में बैठ कर जमा देने के बाद कुछ क्षण लिये मस्तिष्क निश्चय ही एक स्थान पर केंद्रित हो जाता है और शांति, उत्साह तथा स्फूर्ति का अनुभव तत्काल होता है; साथ ही नेत्रों का बड़ा सुन्दर व्यायाम भी हो जाता है।

पर नेत्र ही क्यों; जब मस्तिष्क के सारे ज्ञान-तंतुओं को आराम तथा व्यायाम मिल गया तो नाक कान आदि धड़ के ऊपर की सभी ज्ञानेन्द्रियों को बड़ा सुन्दर तथा पर्याप्त व्यायाम मिल जाता है और उनमें चेतनता का संचार होकर नयी जान आजाती है।

प्राणायाम करने वाले को कुंभक काल तक, अर्थात् जब तक वह साँस भीतर रोक रखता है तब तक, जालंधर बंध में, रहना चाहिये और फिर साँस बाहर निकलते (रेचक) समय उड्डीयान बंध में, जो स्वतः होने लगता है। पूरक (साँस भरने के समय) में मूलबंध किया जाता है।

मूलबंध

तीसरे बंध का नाम मूलबंध है जो संभवतः सबसे महत्वपूर्ण है। इसमें ब्रह्मरंध्र (गुदा) का संकोचन किया किया जाता है। इसके अभ्यास के लिए सिद्धासन में बैठना सब से ठीक पड़ता है (सिद्धासन के लिए आगे के चित्र तथा वर्णन देखिये) क्योंकि सिद्धासन में एँड़ी कस कर गुदा के नीचे जमी हुई रहती है जिससे वहाँ की पेशियों को दृढ़ता-पूर्वक संकोचन करने (ज़ोर से सिकोड़ने) में सुविधा होती है।

यद्यपि मूलबंध में केवल गुदा की पेशियों का संकोचन ही कहा है, पर वहाँ की पेशियों के सिकोड़ने पर पेड़ू के नीचे की जितनी पेशियाँ हैं वह सब अपने आप सिकुड़ कर निर्वात-रूप (एयरटाइट) से बंद हो जाती है।

इसको मूल (जड़) बंध इसलिये कहा जाता है कि यह मनुष्य शरीर के मूल को बाँध देता है। यह सभी ने मालूम किया होगा कि गुदा का संकोचन करने के साथ ही साथ होता हुआ पेशाब रुक जाता है और फिर कुछ ज़ोर कर ढील देने के साथ साथ रुके का रुका हुआ पेशाब निकल कर साफ़ हो जाता है। गुदा की ही पेशियाँ मूत्र-तथा वीर्यपात दोनों का नियंत्रण करती है।

हमने ऊपर मूलबंध को सब से महत्वपूर्ण इसीलिए कहा है कि मूलबंध जिसको सिद्ध हो जाता है उसको अपने

शरीर की सबसे मूल्यवान वस्तु वीर्य तथा उसके इच्छानुसार धारण और स्खलन पर अधिकार हो जाता है।

आधुनिक संसार रुकावट तथा अकाल वीर्यपात की बीमारी से त्रस्त है। निन्यानवे फ़ी सदी परिवारों में अशांति और ग्लानि का साम्राज्य इसी गड़बड़ी के कारण है और दुनिया भर के सारे अख़बारों में ७५ फ़ी सदी विज्ञापन स्तंभन की दवाइयों के हो रहे हैं। पर यह कोई भी समझ सकता है कि ज़हरीली दवा खाकर एक दो बार आते हुये वीर्य को रोकने का परिणाम कितना घातक हो सकता है। अस्तु—

मूलबंध के साधक को शुरू में कुछ दिन कोष्ठबद्धता का अनुभव हो सकता है। पर एक बार सिद्ध हो जाने पर, पेशाब, पाखाना तथा वीर्य इन तीनों की क्रियायें शुद्ध होकर मनुष्य ऊर्ध्वरेता हो सकवा है।

यौगिक क्रियाओं में वीर्य की रक्षा के लिये बज्रौली तथा विंदु-साधन नामक दो क्रियायें और हैं और इनको सिद्ध करने की पहली सीढ़ी यही मूलबंध है। विंदु-साधन में गुदा को संकुचित कर मूत्रनली से पहले वायु, फिर जल फिर तैल, फिर घी और अंत में वीर्य तक को भीतर खींच लेने का अभ्यास किया जाता है। आम तौर से मूत्र-नाली द्वारा मूत्र और वीर्य को स्खलन करना ही लोग जानते हैं। इसका उल्टा यानी उक्त नली से कोई निकलता हुआ या बाहर का तरल पदार्थ भीतर भी खींचा जा सकता है इसको शायद ही कोई सोचता हो। अभ्यास द्वारा यह संभव है और जो इसका अभ्यास कर लेता वह निश्चय ही जितेंद्रिय और काम-शक्ति स्खलन व्यापार में अपनी इच्छानुसार या आवश्यकतानुसार समय दे सकता है।

बहुत से विज्ञापन ऐसे भी देखे गये हैं जिनमें यह लिखा रहता है कि एक ख़ास रक़म फ़ीस की तौर पर मनी-आर्डर द्वारा भेजने से वीर्यस्तंभन की 'विधि' बता दी जायगी। हम इस पुस्तक के पाठकों को बता देना चाहते हैं कि वह 'विधि' और कुछ नहीं यही मूलबंध की क्रिया है और जिस तरह से वह लोग बताते हैं उससे लाभ के स्थान पर भयंकर हानि की ही संभावना अधिक है। क्योंकि मूलंध आदि यौगिक क्रियायें तथा आसन आदि ऐयाशी में सहायता के निमित्त नहीं ईजाद किये गये थे; वरन् जीवन को पूर्ण शारीरिक तथा मानसिक सुख प्राप्त करने तथा अंत में तत्व ज्ञान द्वारा मोक्ष की प्राप्ति इसका लक्ष्य था। पर इह जीवन में गृहस्थ-जीवन की उपेक्षा नहीं की जा सकती। और गार्हस्थ्यजीवन में की शांतिपूर्ण दाम्पत्य सामंजस्य तथा संतोष पर ही निर्भर करती है यह भी योगियों से छिपा नहीं था। संतानोत्पादन भर के लिये अथवा स्त्री की शारीरिक और सामायिक (साथ ही प्राकृतिक और स्वस्थ) आकाँक्षाओं की पूर्तिमात्र के लिये सहवास करना यही नियम रक्खा गया था। इसके लिए सहवास का समय इच्छानुसार या स्वेच्छाधीन रख सकना तथा वीर्य को अमोघ बनाना आवश्यक था सो इसके लिये आसन प्राणायामों के के साथ मूलबंध तथा वज्रोली और बिंदुसाधन की क्रियाओं का आविष्कार हुआ। और आसन प्राणायामों के साथ हो ये क्रियायें सिद्ध भी हो सकती हैं। और फिर एक बार ठीक तरीके पर सिद्ध हो जाने पर साधक की चित्तवृत्ति ही ऐसी नहीं रह जाती कि वह अपनी उच्च साधना से प्राप्त शक्तियों को ऐयाशी जैसे छोटे कामों में बर्बाद करे। और यदि कोई कुसंगतिवश ऐसा करे भी तो थोड़े ही दिनों में कठिनता से प्राप्त इन शक्तियों को खो भी बैठेगा यह निश्चय है। मूलबंध के साधन को अभ्यास करते समय मन में ऐसा सोचना चाहिये कि मूत्रमार्ग से कोई चीज नाभि की ओर ऊंचे चढ़ रही है। कुछ समद (१ या २ मास) बाद उसे ऐसा जान पड़ेगा कि चींटीं सी रेंगती हुई ऊपर चढ़ रही है। इस अवस्था में पहुँचने के बाद वीर्य की गति ऊपर को हो जायगी और कुंडलिनी जाग्रत होकर मनुष्य ऊर्ध्वरेता हो जायगा।

अब हम नीचे मुख्य चार ध्यानात्मक आसनों की विधि देते हैं—

पद्मासन

सब से मुख्य और साथ ही संभवतः सब से. महत्वपूर्ण ध्यानात्मक आसन पद्मासन है। इसका नाम 'पद्म' आसन इसलिए पड़ा कि बैठने पर साधक की शक्ल बहुत कुछ खिले हुये कमल के फूल की सी हो जाती है (चित्र नं० ४ देखिये) रान पर रखे हुये दोनों पांव तथा उस पर रखी हुई हाथ की

नाम

हथेलियाँ ठीक कमल की खिली हुई पत्तियों की सी ही लगती है।

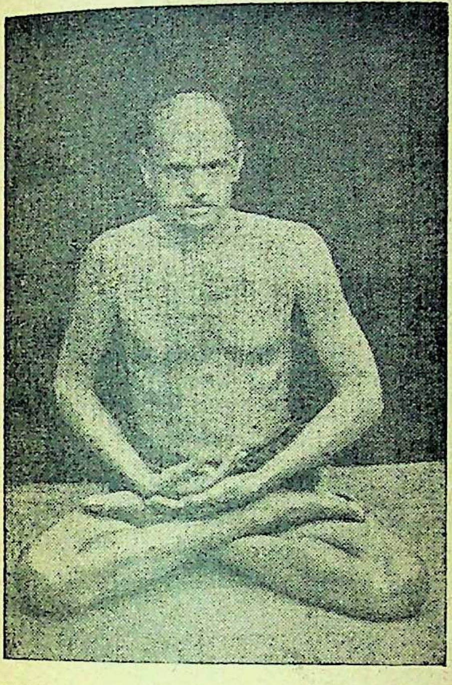

(चित्र नं० ४)
पद्मासन

विधि

पहिले दोनों पाँव फैला कर सीधे बैठ जाइये, फिर दाहना पांव घुटने से मोड़कर बाईं जंघा के मूल पर (कोने पर जहां जंघा ख़तम होकर पेड़ू शुरू होता है) जमा कर रखिये। फिर इसी भांति बायाँ पाँव दाहनी जंघा पर इस प्रकार जमाइये कि दोनों एड़ियाँ आमने सामने और क़रीब क़रीब मिली सी रहें। फिर बाएँ हाथ की हँथेली उलट कर दाहनी एँड़ी पर और दाहने की हथेली बाईं एँड़ी पर फैला कर रखिये। आँखों को भ्रूमध्य-दृष्टि के अनुसार स्थापित कीजिये और ठुड्डी को जालंधर बंध की विधि के अनुसार बनाइये। बस, पद्मासन की मुद्रा पूरी हुई। ऐसा करने पर गर्दन को छोड़ कर रीढ़ अपने आप ही बिल्कुल सीधी हो जायगी।

इस आसन में बैठकर मूलबंध भी कर लेना चाहिये।

पर जो लोग दैनिक पूजा आदि के निमित्त पद्मासन में बैठते हैं या बैठना चाहते हैं उनको 'बंध' लगाने की ज़रूरत नहीं है। बंधों को तो अलग से अभ्यास करना ही उत्तम होता है। पद्मासन में बंधों का अभ्यास उतना ही देर तक ही चलाना चाहिये जितनी देर तक आराम से बैठा जा सके।

आध्यात्मिक उत्कर्ष की इच्छा रखने वाले को १५ मिनट से लेकर १ व २ घंटे तक पद्मासन में (बंधों के साथ) भ्रूमध्य दृष्टि लगा कर बैठने का अभ्यास बढ़ाना चाहिए। पर जो केवल पद्मासन ही करना चाहते हों वही इतना समय दे सकते हैं। आसनों का पूरा कोर्स करने वाले के लिए सब आसन कर चुकने के बाद पद्मासन में तीनों बंधों के साथ ५ से १५ मिनट तक का समय प्राणायाम में देना चाहिये।

लाभ

पद्मासन से मुख्य लाभ यह होता है—पेड़ू प्रांत को अधिकतर रक्त संचार की प्राप्ति होती है, क्योंकि उस प्रांत की सारी पेशियां कस कर सिकुड़ जाती है। और इसके फल से वहाँ के सारे स्नायु नवीन रक्त की प्राप्ति से स्वस्थ और ताजे हो जाते हैं।

यही लाभ अन्य ध्यानात्मक आसनों से भी होते हैं।

* * *

बायोकेमिक चिकित्सा प्रणाली और प्राकृतिक चिकित्सा

डा० रामजीवन एम० बी० (बायो०). बी० एस० सी० (बायो)

सर्व प्रथम हमें यह जानना अत्यंत आवश्यक है कि बायोकेमिक चिकित्सा प्रणाली क्या है ? जर्मनी के डा० शुस्लर ने इस प्रणाली की नींव डाली थी ! इसे हिन्दी में जीव-रसायन-चिकित्सा प्रणाली कहते हैं ।

डा० शुस्लर का विश्वास है कि मानव शरीर में बारह प्रकार के नमक विद्यमान हैं । शरीर में इन नमकों में किसी एक की भी कमी होने पर मानव शरीर रोग ग्रस्त हो जाता है और उस नमक को शरीर में पहुँचा देने पर वह पर वह रोग दूर हो जाता है ।

अब हमें यह जानना चाहिये कि प्राकृतिक चिकित्सा प्रणाली का मूल सिद्धांत क्या है ? प्राकृतिक चिकित्सा प्रणाली का मूल सिद्धांत है प्रकृति को सहायता देना अर्थात् प्रकृति स्वयं रोग को दूर करती है और प्राकृतिक चिकित्सा प्रणाली के प्रयोग प्रकृति को रोग दूर करने में सहायता पहुँचाते हैं ।

बायोकेमिक चिकित्सा प्रणाली भी यही कहती है । इस प्रणाली में कुल बारह दवायें होती हैं । ये सभी दवाइयां क्षार अर्थात् भिन्न भिन्न प्रकार के नमक है । प्राकृतिक चिकित्सा भी आवश्यकता पड़ने पर नींबू का रस आदि आम्ल और क्षारीय पदार्थों का प्रयोग करती है । क्षार शरीर के लिए बड़ी आवश्यक वस्तु है । ये बारहों दवाइयाँ भी क्षार हैं । दूसरी बात यह है कि अन्य चिकित्सा प्रणालियों अर्थात् आयुर्वेद, एलोपैथी, होमियोपैथी यूनानी आदि, की दवायें हानि भी कर देती हैं; किंतु प्राकृतिक तथा बायोकेमिक के प्रयोग हानिकारक नहीं होते । इस लिये हमें यह मानना पड़ेगा कि यदि प्राकृतिक चिकित्सा के साथ बायोकेमिस्ट्री का भी प्रयोग किया जाय तो वह अधिक लाभ दायक सिद्ध होता । मैं समझता हूँ कि प्राकृतिक चिकित्सावालों को बायोकेमिक चिकित्सा प्रणाली के प्रति सहानुभूति होनी चाहिये और उन्हें अन्य प्रणालियों की तरह इसे हेय न समझना चाहिये ।

किंतु, होमियोपैथों का कहना है कि बायोकेमिक दवायें भी होमियोपैथी की ही हैं । हम मानते हैं कि वे होमियोपैथी की ही है; किंतु उनके प्रयोग का तत्व भिन्न है । होमियोपैथी में रोग-विपरीतार्थकारी दवा का प्रयोग होता है, किंतु बायोकेमिस्ट्री में लवणों की कमी को, जिसके कारण रोग उत्पन्न होता है, पूरी कर देते हैं । इन दवाइयों को एक साथ, दो या अधिक को मिला कर भी प्रयोग में ला सकते हैं । यह बाहरी प्रयोग में भी सहायक सिद्ध हुई हैं । ये दवाइयां रोग को दबाने की अपेक्षा प्रकृति को सहायता देकर रोग को समूल नष्ट कर देती हैं ।

ये दवायें इतनी निर्दोष हैं कि एक अनभिज्ञ भी अगर इसका प्रयोग करे तो वह हानि नहीं उठा सकता । गृह-चिकित्सा में इसका प्रयोग करने से प्राथमिक उपचार (First Aid) में बड़ी सहायता मिलती है । अतः मेरा यही निवेदन है कि "प्रत्येक शिक्षित व्यक्ति को इसकी जानकारी प्राप्त करनी चाहिये ।

—:०:—

जीवन सखा में विज्ञापन देना अपने व्यापार की वृद्धि करना है ।
पत्र व्यवहार करें ।

—व्यवस्थापक

भावी माता के लिए सक्रिय तथा निष्क्रिय व्यायाम

डा० इन्दुमती सिनहा, एन० डी० डी० वाई

[श्रीमती इन्दुमती जी का यह लेख क्रमानुसार फरवरी-मार्च के अंक में छपना चाहिये था और पिछले अंक में प्रकाशित लेख इस अंक में। किन्तु किंचित असावधानी के कारण यह गलती हो गई, इसे विज्ञ पाठक ठीक कर लेंगे। प्रस्तुत लेख में इन्दुमती जी ने भावी माता के लिए शुष्क तथा तरल घर्षण-स्नान, सांस की कसरतें आदि उपयोगी बातों की जानकारी प्राप्त कराई है, जो सभी माताओं के जानने लायक है। साथ ही आपने कुछ आवश्यक हिदायतें भी दी हैं जिनका पालन करना सगर्भा के लिये विशेष लाभकारी होगा। —सं]

सगर्भावस्था के आरंभिक ५ या ६ महीनों में शुष्क घर्षण-स्नान, शीतल जल के तौलिए या स्पंज को भिगो कर घर्षण स्नान प्रति दिन नियम पूर्वक करना चाहिये। इसके साथ ही साथ सांस की कसरतें भी करनी चाहिए।

शुष्क घर्षण-स्नान

शरीर की त्वचा और उसके ऊपर और नीचे की समस्त क्रियात्मक प्रक्रियाओं को गतिशील बनाने तथा बढ़ाने के लिए शुष्क-घर्षण स्नान से बढ़ कर कोई दूसरा स्नान नहीं हो सकता। ऊंचे दर्जे का स्वास्थ्य प्राप्त करने के लिये यह आवश्यक है कि रोम-छिद्रों (pores) को खुला हुआ और साफ रक्खा जाय। अगर यह स्नान नियमित रूप से किया जाय तो यह निश्चय है कि इससे रोम-कूप साफ और खुले रहेंगे और उसके फलस्वरूप त्वचा स्वस्थ और क्रियाशील बन जायगी।

यह स्नान रूखे रोयेंदार तौलिये से किया जाता है। इस स्नान से शुरू शुरू में खाल का मुलायम पड़ना स्वाभाविक है लेकिन बाद में वह धीरे-धीरे मजबूत होने लगती है। यह घर्षण चेहरे से शुरू करना चाहिए उसके बाद गर्दन और तब शरीर फिर एक बाँह का घर्षण कलाई की ओर से कंधे की तरफ होना चाहिये। इसके बाद खड़े होकर कमर झुकानी चाहिए और पैरों तथा जांघों का बारी बारी के घर्षण करना चाहिये। इसके अनन्तर नितम्बों (Hips) और शरीर के बीच के हिस्से का घर्षण-स्नान किया जाय।

साँस की कसरतें

यहां पर साँस की जो कसरतें दी गई हैं वे पाश्चात्य प्राकृतिक चिकित्सा के आचार्यों की बताई हुई हैं। इसमें सन्देह नहीं कि इन कसरतों का उद्देश्य फेफड़ों में अधिक मात्रा में ओषजन (आक्सीजन) पहुँचा कर शरीर को स्वस्थ बनाना है। सांस के जरिये शरीर के अंदर जितनी ही अधिक मात्रा में आक्सीजन पहुँचायेंगे उतना ही अधिक शरीर प्रणाली के ठीक तरह से कार्य करने में समर्थ बनने और आरोग्य लाभ करने में सहायता मिलेगी। ये कसरतें अपनी शक्ति और अवकाश के अनुसार ६ से १० बार तक करनी चाहिए।

कसरत कैसे करें ?

(१) कंधों को हिलाते हुए आगे की तरफ बढ़ा लें और हरकत के समय अपेक्षा से अधिक सांस भीतर की तरफ खींचें। इसके बाद कंधों को पीछे अपने पूर्ण स्थान पर ले जाते हुए धीरे धीरे साँस को बाहर निकालें।

इसके बाद कंधों को हरकत के साथ पीछे की तरफ ले जाते हुए इस कसरत को दोहरावें। फिर कंधों को इसी

प्रकार एक बार आगे की तरफ और एक बार पीछे की तरफ ले जाते हुए इस कसरत को कई बार करें।

(२) सीधे खड़े हो जायं। हाथ दोनों बगल में रहें। हाथों का आगे की तरफ सीधा करके ऊपर उठाते हुए भीतर की तरफ सांस खींचे। हाथों को इस प्रकार तब तक ऊपर उठाते जावें जब तक कि वे सिर के ऊपर आ न जायं और जब तक कि दोनों हाथों की हथेलियां एक दूसरे का स्पर्श न करने लग जायं। इसके साथ ही साथ जहां तक सम्भव हो सके एड़ियों को भी ऊपर उठावें। इसके बाद एड़ियों को और हाथों को नीचे ले जाते हुए सांस को बाहर निकालें और इस प्रकार हाथों को तब तक नीचे की तरफ ले जायं जब तक कि वे एक चौड़ा आयत बनाते हुए जंघाओं का स्पर्श न करने लग जायं।

(३) सीधे खड़े हो जायं। दोनों हाथ नितम्बों पर हों। फिर कंधे को जहाँ तक हो सके ऊपर उठाते हुए धीरे धीरे और गहरी सांस लें और तब एक झटका देकर हाथों को जहाँ तक हो सके नीचे ले जायं और इसी बीच सांस को भी बाहर निकलते जायं।

(४) सीधे खड़े हो जायं। हाथ दोनों कंधों पर रहें। केहुनियों (Elbows) को बगल की तरफ उठाते हुए सांस खींचे। फिर केहुनियों की तब तक नीचे की तरफ ले जाते हुए सांस को बाहर निकालें जब तक कि वे दोनों पहलुओं (बाजुओं) को छूने न लग जायं।

(५) गहरी सांस खींचें और फिर उसे धीरे धीरे बाहर निकालें और इसके साथ ही साथ हथेलियों से छाती को पूरी तौर से ढकते हुए आबद्ध करें।

(६) छाती व पेट को अलग करने वाली महाप्राचीरा पेशी (Diaphragm) को गतिशील बनाने अथवा संचालित करने के लिए इस प्रकार की कसरत करें : फर्श पर चटाई के ऊपर चित लेट जायं। सिर के नीचे कोई तकिया वगैरह न लगावें। समूचे शरीर की पेशियों का शिथलीकरण करें और तब गहरी साँस खींचें और इस क्रिया में केवल महाप्राचीरा को ही क्रियाशील बनावें और इसे ध्यान रखते हुए छाती या आमाशय का निचला हिस्सा ऊपर न उठने पावे, पंसलियों के ठीक नीचे की तरफ के उदर (Abdomen) की दीवार को ऊपर उठावें। सांस को भीतर ले जाने में लगभग ४ सेकेन्ड लगावें और तब उसके दूने समय अर्थात् ८ सेकेन्ड सांस को बाहर निकालने में लगावें और उसके साथ ही साथ पंसलियों के नीचे उदर को भी सिकोड़ें।

(७) दिन में जितनी बार मुमकिन हो सके और खास तौर से उस समय जब कि आप किसी खुले मैदान में हों या टहलती हों, अपने फेफड़ों को सांस द्वारा वायु खींचकर अधिक से अधिक भरें। पूरी सांस कैसे खींचनी चाहिये उसकी विधि इस प्रकार है:—

नाक के ज़रिये जहां तक आप साँस को खींच सकें, भीतर खींचे और उदर प्रदेश को फूलने दें और तब क्रमशः छाती को फूलने दें। जब आप अपनी शक्ति भर पूरी सांस खींच चुकें तो उसे एक क्षण के लिये रोकें और फिर एक और सांस भीतर खींचने की कोशिश करें और उसके बाद धीरे धीरे पूरी साँस को बाहर निकाल दें। यह कसरत कई बार करें जब तक कि कुछ थकावट-सी न जान पड़ने लगे।

अब यहाँ पर ठण्डा घर्षण स्नान के बारे कुछ जान लेना होगा। ठण्डा घर्षण स्नान की विधि भी ठीक उसी प्रकार भी है जैसी कि शुष्क घर्षण स्नान की है। अन्तर सिर्फ यही है कि इसमें तौलिए को ठण्डे पानी में जल भिगाकर निचोड़ किया जाता है। घर्षण करते समय अगर तौलिय बिलकुल सूख जाय तो उसे फिर निचोड़ लेना चाहिए। गर्भ के छठें महीने के बाद से ठण्डे जल के बजाय गुनगुने पानी में तौलिये को निचोड़ यह स्नान करना चाहिए। नित्य-प्रति खूब टहलने का क्रम आठवें महीने के अन्त तक जारी रक्खा जा सकता है। और इसके साथ ही साथ भावी माता को घर के सभी साधारण काम काज भी करते रहना चाहिए। सगर्भावस्था में बिलकुल लेटे रहना और कोई काम-काज न करना बहुत भारी गलती है। क्योंकि, जैसा बताया जा चुका है, आलस्य में पड़े रहने और कोई काम न करने से प्रसव काल बहुत कष्ट कारक बन जाता है।

किन्तु यह ध्यान रखना होगा कि कोई भी कसरत या मेहनत उस हद तक न किया जाय जो अपनी शक्ति या सामर्थ्य के बाहर हो। इसके अलावा आवश्यक श्रम,

चिन्ता या उत्तेजना से भी अपने को सावधानीपूर्वक बचाना चाहिए।

प्रसव के बाद पहले दो दिनों का माताका भोजन केवल ताजे फलों का रस और गरम करके ठंडा किया हुआ थोड़ा सा दूध होना चाहिए। इसके दूसरे दिन सलाद, बिना चाले हुए आटे की रोटी, मक्खन और थोड़ा पकाया हुआ फल दिया जा सकता है। इस के बाद भोजन को धीरे धीरे बढ़ाना चाहिये और इस प्रकार अन्त में सगर्भावस्था के पूर्व के सामान्य भोजन पर आजाना चाहिए। अगर कब्ज की शिकायत जान पड़े तो सिर गरम जल के एनीमा का प्रयोग करना चाहिए।

सगर्भावस्था के भोजन के सम्बन्ध में यह निहायत जरूरी है कि भावी माता को मैदे की पकी हुई चीजें खाने को न दी जायँ। चीनी, मुरब्बा सिरका हलुआ, पूड़ी आदि सभी प्रकार के गरिष्ट और देर में पचने वाली चीजों को बिलकुल त्याग देना चाहिए। चाय, कहवा और नशीली वस्तुओं का भूल कर भी सेवन न किया जाय।

अगर भावी माता इन सलाहों पर ध्यान दे और इनको अमल में लावे तो उसे प्रसव काल के परिणाम के सम्बन्ध में कोई आशंका या भय प्रकट करने की आवश्यकता ही नहीं रह जायगी और वह देखेगी कि उसका नया संसार उसके लिए कितना सुखद बन जाता है। इसके कारण निम्न-लिखित हैं:—

भावी माता के लिए कुछ हिदायतें

आजकल अकाल प्रसव एवं शिशु संख्या के आंकड़ों में दिनो दिन वृद्धि हो रही है। उसके जहाँ इसके और भी अनेक कारण हैं वहां गर्भिणी सम्बन्धी कारण मुख्य रूप से है। गर्भिणी के आहार-विहार का शिशु (गर्भ) पर अच्छा वा बुरा प्रभाव पड़ता है।

गर्भिणी का आहार-विहार

(१) गर्भ का पोषण माता के रक्त से होता है। यह रक्त माता के भोजन से बनता है। अतः इस रक्त के द्वारा, माता के अन्न द्वारा गर्भ को पोषण व शक्ति मिलती है।

(२) माता का रक्त शरीर के सब भागों में घूमता है। सिर से पैर तक चक्कर काटकर वह हृदय में आता है। वहां से फिर गर्भाशय की ओर जाता है। इस रक्त में शरीर के विकार घुले रहते हैं

(३) उपनिषदों में कहा है कि मन अन्न से बनता है। अतः जैसा आहार होगा, वैसा मन होगा। और जैसा मन होगा वैसी बुद्धि होगी।

अतः भावी माता के लिए आवश्यक है कि वह अपने तथा अपनी आत्मा के प्रतिबिम्ब की रक्षा के लिए आहार-विहार की ओर विशेष ध्यान दे। आहार-विहार को विशेष रूप से नियमित करे। इसके लिए—

१— तंग वस्त्र न पहने; क्योंकि इससे शरीर के रक्त-संचार में बाधा पड़ती है।

२—ऊंची एड़ीवाला जूता न पहने, क्योंकि इसके द्वारा विषमता आने से चलने में यदि कहीं पैर फिसला तो निश्चय ही गर्भ-स्राव होता है, अथवा गर्भाशय अपने स्थान से हट हो जाता है।

३—बहुत देर तक उत्कट आसन (कुर्सी आदि) पर न बैठे, क्योंकि इससे अधोभाग में रक्तस्राव की वृद्धि होने से गर्भस्राव का भय रहता है।

४—मल, मूत्र आदि कोई भी स्वाभाविक वेग रोकना नहीं चाहिए, इससे स्वास्थ्य बिगड़ जाता है। उदावर्त, आनाह और मूत्राघात रोग हो जाते हैं।

५—बहुत मेहनत या दारुण व्यायाम नहीं करना चाहिए, क्योंकि इससे शरीर के थक जाने से रक्त की मात्रा थके अंगों में विशेष रूप से बढ़ जायगी, जिससे गर्भ को पूर्ण रक्त नहीं मिलेगा। इस लिए वह निर्बल और कमजोर रह जायगा। उदाहरण के लिए यदि एक स्त्री मानसिक श्रम करती है तो इस श्रम के कारण थके हुए अंगों को पोषण देने के लिए रक्त विशेष रूप के मस्तिष्क में जायगा, जिसके कारण गर्भाशय में रक्त की कमी हो जायगी। अथवा बहुत अधिक मेहनत करने से गर्भाशय में खून का बढ़ाव होने से गर्भ-स्राव होगा या खून की कमी के कारण गर्भ सूख जायगा। ये दोनों ही अवस्थाएं अवांछित है।

६—बहुत उपवास (व्रतादि) या भूखा न रहना चाहिए। क्योंकि उपवास से गर्भ का पोषण घट जाता है। वह निर्बल रह जायगा। हाँ, शरीर की रक्षा एवं स्वास्थ्य के लिए, अथवा अजीर्ण रोग के प्रतीकार में एक या आधे

दिन का पूर्ण उपवास, फलाहार या पानी पर रहकर किया जा सकता है।

७—बहुत भीड़ में नहीं जाना चाहिए, क्योंकि इससे गर्भपात हो जाने का डर रहता है।

८—डरावने दृश्य नहीं देखने चाहिए, क्योंकि इससे या तो गर्भपात हो जाता है, या गर्भपात न भी हो तो उसकी सन्तति डरपोक होगी। इसी प्रकार उसे भयकारक न तो कोई खेल देखना चाहिए या न कोई ऐसी पुस्तक ही पढ़नी चाहिए।

९—अति संक्षोभी सवारी पर न बैठना चाहिए, विशेषतः पाचवें महीने के बाद से। क्योंकि ऐसा करने से गर्भपात हो जाने का भय रहता है, अथवा असमय में ही प्रसव हो जाता है। बैलगाड़ी, साइकिल, घोड़े की सवारी (नवें मास में रेल-यात्रा) से बचना चाहिए।

१०—अप्रिय वार्ता नहीं सुननी चाहिये क्योंकि इसका चित्त पर बुरा प्रभाव पड़ता है। मन शोकातुर और चिन्तातुर हो उठता है। इसी शोक और चिन्ता की झलक या प्रतिबिम्ब रक्त-द्वारा गर्भस्थ शिशु के मन और मस्तिष्क पर पड़ता है, जो वांछनीय नहीं।

११—बहुत देर तक चित (पीठ के बल) नहीं लेटना चाहिए, क्योंकि इससे पीठ की नसों पर और विशेषतः त्रिकवर्ती नसों पर दबाव पड़ता है। जिस प्रकार युवाओं में पीठ के बल सोने से रात्रि में स्वप्न दोष हो जाता है, उसी प्रकार स्त्रियों में त्रिक की नसों पर दबाव पड़ने से कामेच्छा उत्पन्न होती है, जिसके कारण उत्पादन अंगों में रक्तस्राव बढ़ जाता है और गर्भपात की सम्भावना हो जाती है।

१२—शोक, कलह, चिन्ता आदि से बिलकुल दूर रहना चाहिये।

१३—गर्भिणी को सदैव प्रसन्न चित्त रहना चाहिए। इससे मानसिक वृत्तियाँ खिली रहेंगी। इन खिली हुई वृत्तियों की छाप गर्भ के ऊपर भी बहुत उत्तम पड़ेगी। बच्चा भी प्रसन्नचित्त उत्पन्न होगा।

१४—उत्तम विचार करना। क्योंकि जैसा विचार माता करेगी उसका पुत्र भी वैसा ही उत्पन्न होगा।

१५—सम्भोग न करना चाहिए (विशेषतः ५वें महीने के बाद) क्योंकि इस क्रिया से उत्पादक अंगों का स्राव होता है, उनमें रक्त की वृद्धि होती है। एकदम रक्त के बढ़ने तथा दबाव के पड़ने से एवं गर्भ के निर्बल होने से, और इसके साथ ही साथ मैथुन के समय रक्त-संचार में परिवर्तन होने से गर्भ में रहनेवाले बालक की मृत्यु हो जाती है।

मैथुन की इच्छा या क्रिया से रक्त के गुण एवं उसकी क्रिया तथा उसके संचार में भी परिवर्तन आ जाता है। इस परिवर्त्तन का प्रभाव गर्भस्थ बालक पर भी पड़ता है।

१६—दिन में बहुत नहीं सोना चाहिए। दिन में सोने से रात में जल्द नींद नहीं आती, या गहरी नींद नहीं लगती। दिन में सोने से कफ बढ़ता है। शरीर में भारीपन आता है और पाचन-शक्ति कमजोर हो जाती है। स्वास्थ्य गिर जाता है।

१७—शुद्ध वायु में हमेशा टहलना चाहिए। क्योंकि सगर्भावस्था में रक्त विशेषरूप से अशुद्ध होता है। पहले तो माता को केवल अपना ही अशुद्ध रक्त शुद्ध करना पड़ता था और गर्भ का तथा अपना दोनों का रक्त का शुद्ध करना होता है। इसलिए आवश्यक है कि विशेष खुली वायु मिले, क्योंकि वायु के रूप में हमें जो आक्सीजन प्राप्त होता है उसी से खून की सफाई होती है। जितनी अधिक मात्रा में हमें आक्सीजन प्राप्त होगा उतना ही उत्तम ढंग की खून की सफाई भी होगी। दूसरे यह कि घूमने से हल्का व्यायाम भी हो जाता है। शुद्ध वायु फेफड़े और हृदय दोनों को जीवन प्रदान करती है। इससे वे अपना कार्य भली प्रकार कर सकते हैं।

१८—रात में जागना सगर्भा स्त्रियों के लिये बुरा होता है। रात में शान्तिपूर्वक और गहरी नींद में सोना चाहिए। रात में जागने से शरीर में रूखापन आ जाता है। वायु विकार उत्पन्न हो जाता है।

१९—अनन्नास और कच्चा पपीता कभी नहीं खाना चाहिए क्योंकि इनसे गर्भपात एवं शिशु की आँखों में रोग उत्पन्न होता है। अनन्नास से गर्भाशय संकुचित होता है। गर्भ अन्दर ही पिचक जाता है।

२०—तेल की मालिश नहीं करनी चाहिए, क्योंकि शरीर का रक्त-त्वकस्थ रक्त-वाहिनियों की ओर विशेष रूप से बहने लगता है, जिससे गर्भ और गर्भाशय को पूर्ण रक्त नहीं मिलता।

२१—स्तनों को धोकर बराबर साफ रखना चाहिए, विशेषतः ७ वें महीने के बाद।

२२—पेटेन्ट दवाइयों का इस्तेमाल किसी भी हालत में नहीं करना चाहिए।

हिप्नोटिज्म द्वारा रोगोपचार

श्री कृपाराम, 'किंकर'

हिप्नोटिज्म, आधुनिक चिकित्सा शास्त्र का एक प्रधान अंग बन गया है। कितने ही रोग हिप्नोटिज्म द्वारा अच्छे किए जाते हैं। हमारे ९० प्रतिशत रोग हमारे मनोभावों के ही कारण होने हैं। हिप्नोटिज्म उन्हें उनके मस्तिष्क से एकदम लुप्त कर नये जीवन में प्रवेश कराता है। हिप्नोटिज्म की आधार शिला मनोविश्लेषण (pscho Analysis) है जिसका अनुभवी लेखक ने बड़े सुन्दर ढङ्ग से विवेचन किया है। सं०]

आधुनिक चिकित्सा शास्त्र के क्षेत्र में हिप्नोटिज्म ने एक महत्वपूर्ण स्थान ग्रहण किया है। जो बीमारियाँ किसी जमाने में असाध्य समझी जाती थीं, हिप्नोटिज्म का प्रचार होने के बाद उनका इलाज आसान हो गया।

हिप्नोटिज्म यद्यपि किसी न किसी रूप में संसार के विभिन्न देशों में बहुत पहले से परिचित रहा है तथापि वैज्ञानिक रूप में पहले-पहल उन्नीसवीं शदाब्दी में उसका अविष्कार हुआ। पर अविष्कार होते ही उसका प्रचार नहीं हो गया। प्रारंभ में स्वयं वैज्ञानिकों ने उसका विरोध किया। १८४१ में मेनचेस्टर के डाक्टर जेम्स ब्रेड ने ब्रिटिश मेडिकल एसोशिएशन की एक बैठक में एक लेख 'हिप्नोटिज्म द्वारा रोगों का उपचार' शीर्षक पढ़ने का प्रस्ताव किया। अपने विषय का वह सबसे पहला लेख था। पर ब्रिटिश मेडिकल एसोशियेशन की कार्यक्रम-निर्धारिणी समिति ने इस विषय को तनिक भी महत्वपूर्ण नहीं समझा और उस लेख के पढ़े जाने की अनुमति नहीं दी।

पर डाक्टर ब्रेड इस बात से हतोत्साह नहीं हुए और अपने प्रयोगों को आगे बढ़ाते चले गए। उन्हें पूरा विश्वास था कि उन्होंने रोगों की चिकित्सा की एक ऐसी पद्धति का आविष्कार किया है, जो मानव-जाति के लिये विशेष कल्याणकारी सिद्ध हो सकती है। किसी व्यक्ति को हिप्नोटाइज करने का उनका तरीका यह था कि उस व्यक्ति को किसी चमकदार वस्तु पर अपनी दृष्टि को पूर्णतः केन्द्रित करने के लिये कहा जाता था। जब रोगी की आँखें चमकदार वस्तु पर गड़ी रहती थीं तब वह कहता जाता था—

"तुम्हें नीद मालूम हो रही हैं; तुम सोने लगे हो; तुम्हारी साँस धीमी और गहरी होने लगी है; तुम स्थिर और शाँत हो रहे हो' इत्यादि-इत्यादि। तीन मिनट बाद रोगी सो जाता था।

मोह-निद्रा

पर यह निद्रा साधारण निद्रा की तरह नहीं होती थी! यह एक विचित्र निद्रा थी, जिसे अंग्रेजी में 'हिप्नोसिस' कहा जाता है। इस विशेष प्रकार की निद्रा में सोये हुए व्यक्ति की अज्ञात चेतना का तार हिप्नोटाइज करने वाले डाक्टर की इच्छा शक्ति से जुड़ा रहता है। ब्रेड ने देखा कि ऐसी हालत में रोगी अपने अंतरीय जीवन से संबंधित ऐसे प्रश्नों का सही-सही उत्तर बेधड़क दे देता है, जिनका उत्तर वह सचेत अवस्था में विस्मृति अथवा संकोच के कारण कभी न दे पाता। 'हिप्नोसिस' की अवस्था में डाक्टर रोगी से जो कुछ भी करने को कहता वह करता, और जो भी बात उसे सुझाता उसे मान लेता। पर इस मोह-निद्रा से जागने के बाद उसे तनिक भी इस बात की सुधि न रहती कि उसने क्या कहा है। यह होने पर भी रोगी यह महसूस करने लगता कि उसके रोग में सुधार होना आरंभ हो गया है।

सन १८५० में बोर्दो (फ्रांस) के एक डाक्टर ने एक खतरनाक आपरेशन करने के पहले रोगी को हिप्नोटाइज करके 'मोह-निद्रा' मग्न में कर दिया। उसने रोगी को यह सुझाया कि उसका शरीर वज्र से भी दृढ़ है और किसी भी अस्त्र के प्रयोग से उसे किसी प्रकार का पीड़ा का अनुभव नहीं हो सकता। उसके बाद जब आपरेशन किया

जाने लगा तब डाक्टर ने देखा कि रोगी को तनिक भी कष्ट नहीं हो रहा है। इस घटना से चिकित्सा-जगत में तहलका मच गया। तब से प्रायः दस वर्ष तक यूरोप के प्रधान चिकित्सा-केन्द्रों में डाक्टर लोग 'आपरेशन' जनित पीड़ा से रोगी को मुक्त करने के लिए यही उपाय काम में लाने लगे। बाद में क्लोरोफार्म की सहायता से आपरेशन की चाल अधिक चल पड़ी।

हिप्नोटिज्म का निश्चित वैज्ञानिक रूप पहले-पहल जां-मार्तीं शार्को नामक विश्व-विख्यात फ्रेंच चिकित्सक ने सन १८७० में दिया। वह पेरिस के प्रधान चिकित्सालय सालपेत्रियेर के प्रमुख डाक्टर थे और लकवा, मृगी, हिस्टीरिया, दिमाग की कमजोरी तथा स्नायविक दुर्बलता से संबंधित सभी प्रकार के रोगों की चिकित्सा हिप्नोटिज्म द्वारा ही किया करते थे। शार्कों का कहना था कि केवल ऐसे व्यक्तियों को ही 'हिप्नोटिक, निद्रा में मग्न किया जा सकता है, जिनका स्वभाव 'हिस्टीरिक' हो, अर्थात् जिनकी स्नायु-संबंधी अनुभूति प्रबल हो। उन्होंने 'मोह-निद्रा' द्वारा बहुत से ऐसे असाध्य रोगों को अच्छा किया, जिनका इलाज किसी भी डाक्टरी उपाय द्वारा संभव नहीं माना जाता था। उनकी अभूतपूर्व सफलता ख्याति चारों ओर फैल गयी और यूरोप तथा अमेरिका के विभिन्न स्थानों में डाक्टर लोग उस नयी चिकित्सा पद्धति का ज्ञान प्राप्त के लिये उनके पास आने लगे।

९० प्रतिशत सफलता

शार्को के एक छात्र ने, जिसका नाम इप्पोलीत बर्नहाइम था, अपने जन्मस्थान नान्सी में जाकर हिप्नोटिज्म के सम्बन्ध में नये प्रयोग करने शुरू कर दिये। उसने यह सिद्ध कर दिखाया कि प्रायः ९० प्रतिशत व्यक्तियों को 'हिप्नोटिक' निद्रा में मग्न किया जा सकता है, चाहे वे 'हिस्टीरिक' हों या न हो। उसने सुझाव पर बड़ा महत्त्व दिया। उसने यह प्रमाणित किया कि किसी भी रोगी को मोह-निद्रा में मग्न करने के बाद यदि यह सुझाया जाय कि उसका रोग अच्छा होता चला जा रहा है, तो निश्चय ही रोग अच्छा होने लगता है। केवल स्वाभाविक रोगों को ही उसने अपने प्रयोगों द्वारा अच्छा नहीं किया, बल्कि सभी प्रकार के रोगों की चिकित्सा में उसने हिप्नोटिक उपाय से सफलता पाय।

बर्नहाइम ने इस प्रकार हिप्नोटिक विज्ञान को बहुत आगे बढ़ा दिया पर तब भी हिप्नोटिज्म के संबंध में लोगों की विरोधी भावना कम नहीं हुई। पत्रकार जगत में इस नये विज्ञान की निन्दा खुले आम की जाने लगी। पत्रकारों का कहना था कि हिप्नोटिज्म के प्रभाव से किसी भी भले आदमी को दुष्कर्म के लिए प्रेरित किया जा सकता है। किसी भी स्त्री को पथभ्रष्ट होने के लिये फुसलाया जा सकता है। पादरियों ने तो उसके विरोध में चारों ओर से चिल्लाना शुरू कर दिया। यह कहा जाने लगा कि जिन रोगियों को हिप्नोटिज्म द्वारा अच्छा किया जाता है, उन पर हिप्नोटिज्म का प्रभाव स्थायी रूप से वर्तमान रहता, उनकी अपनी इच्छाशक्ति नहीं के बराबर हो जाती है और वे दूसरों की इच्छा के कठपुतले बन जाते है। पर यह होने पर भी हिप्नोटिक विज्ञान उन्नति करता चला गया।

रोग-निवारण का कारण

अब प्रश्न यह उठता है कि हिप्नोटिक निद्रा रोग को अच्छा करने में किस प्रकार सहायक सिद्ध होती है? इस सम्बन्ध में पहली बात ध्यान में रखने योग्य यह है कि डाक्टर जिस रोगी को 'हिप्नोटाइज' करता है वह अपने अनजान में डाक्टर को अपने पिता के समान संरक्षक और त्राणकर्ता मानने लगता है। इस विश्वास के कारण उसकी अज्ञात चेतना तथा डाक्टर की चेतना के बीच एक सूक्ष्म आध्यात्मिक सम्बन्ध का-सा तार जुड़ जाता है। फल यह होता है कि डाक्टर जब उसे मोहनिद्रा में मग्न कर देता है तब वह डाक्टर के प्रश्नों के उत्तर में अपने गुप्त मनोभावों को प्रकट कर देता है, जिनकी कोई स्मृति उसे साधारण अवस्था में नहीं रहती। उन गुप्त मनोभावों के प्रकट हो जाने के फलस्वरूप उसके भीतर उसके अनजान ही में, एक ऐसी मनोवैज्ञानिक प्रतिक्रिया आरंभ होती है, जो उसके शरीर की रोग-जनित जड़ अवस्था को दूर करने में सहायक सिद्ध होती है। यह मनोवैज्ञानिक

स्वयंसिद्ध है कि मन का भार हलका हो जाने से उस मानसिक भार से उत्पन्न तन का भार भी हलका हो जाता है।

पर हिप्नोटिज्म में सब से अधिक जोर सुझाव पर दिया जाता है। रोगी को मोहनिद्रा की अवस्था में यह सुझाया जाता है कि उसका रोग बहुत साधारण है और वह बड़ी शीघ्रता से अच्छा होता चला जा रहा। इस प्रकार का सुझाव साधारण सचेत अवस्था में मनुष्य के मन पर विशेष प्रभाव नहीं डालता। पर 'हिप्नोटिक' अवस्था में चूंकि रोगी की इच्छाशक्ति एक दम लुप्त हो जाती है, इस लिये उसे बच्चों की तरह अपने किसी भी मनोभाव को छिपाने में कोई झिझक नहीं होती।

मनोवैज्ञानिक विश्लेषण

हिप्नोटिज्म का स्थान अब बहुत कुछ मनोवैज्ञानिक विश्लेषण पद्धति ने ले लिया है। इस नयी पद्धति के आविष्कारक वियना के डाक्टर जिगमुन्द फ्रायड थे। यह बात ध्यान में रखने योग्य है कि फ्रायड ने सालपेत्रियेर में डाक्टर शार्को के नीचे ही चिकित्सा-शास्त्र सम्बन्धी शिक्षा पायी थी। हिप्नोटिज्म द्वारा रोगियों की चिकित्सा से वह बहुत प्रभावित हुए थे। पर बाद में उन्होंने यह अनुभव किया कि उस चिकित्सा-पद्धति में बहुत-सी कमियां हैं। सब से बड़ी कमी उन्होंने इस पद्धति में यह पाई कि रोगी की अन्तश्चेतना की गहराई में रोग के मूल कारण सुप्त मनोभावों के रूप में छिपे रहते हैं। उनका उद्घाटन हिप्नोटिक निद्रा द्वारा नहीं किया जाता था। और फ्रायड के मन में यह विश्वास जम गया था कि मूल कारणों को अज्ञात चेतना से खोदे बिना रोग जड़ से दूर नहीं हो सकता। इसलिए उन्होंने एक दूसरा रास्ता निकाला। उनकी यह धारणा थी कि स्नायविक विकारों से ग्रस्त रोगी की अन्तश्चेतना में शैशव जीवन की कुछ ऐसी घटनाओं की स्मृतियां दबी पड़ी रहती हैं जो नैतिक अथवा व्यक्तिगत कारणों से उसे प्रिय नहीं होती। इस कारण वह अज्ञात में उन्हें विस्मृत के गहवर में ही विलीन रहने देना चाहता है। उन स्मृतियों को दबाने की प्रतिक्रिया यह होती है कि रोगी के मन तरह-तरह के विकारों की गांठें बंध जाती हैं, और मन की उन गांठों के फलस्वरूप उसके शरीर को भी तरह-तरह की विकृतियां—अर्थात् बीमारियां—घर दबाती हैं। इसलिये मनोविश्लेषक रोगी के शारीरिक विकारों को दूर करने के लिए सब से पहले इस बात की आवश्यकता समझता है कि उसके अन्तर्मन में छिपी हुई विस्मृतियां किसी उपाय से उभाड़ी जायं। शैशव जीवन की अप्रिय घटनाओं की जो बातें विस्मृति के अतल गर्भ में लीन होती हैं, वे यदि फिर से स्मृतिलोक में आ जायं, तो रोगी को डाक्टर के सुझाव से यह जानने में देर नहीं लगती कि उसके रोग का मूल कारण क्या है। और मूल कारण की जानकारी होने से रोग अपने आप दूर हो जाता है—अर्थात् मन का भार दूर होने से तन का भार भी दूर हो जाता है।

पर विस्मृत के गर्भ में लीन, बचपन की बातों को फिर से स्मृति लोक में लाने के जो उपाय मनोविश्लेषणक डाक्टर काम में लाता है वह हिप्नोटिज्म से थोड़ा बहुत मिलता-जुलता है। मनोविश्लेषण रोगी के सर पर हाथ रख कर अपने व्यक्तित्व के 'हिप्नोटिक' प्रभाव से रोगी के मन पर यह विश्वास जमा देता है कि वह उसका संरक्षक और उसके पिता के स्थान पर है इसलिये उसके आगे अपने मन की राय एकदम ढीली कर देने में उसे (रोगी को) तनिक भी नहीं हिचकना चाहिए। यह मनोवैज्ञानिक धारणा रोगी के भीतर जमाने के बाद वह उसे सुझाता है कि वह अपने शिशु-जीवन की किसी भी विस्मृत घटना को याद करने की चेष्टा करे। साथ ही इस चेष्टा में वह अपनी स्मृति को मरोड़े नहीं, बल्कि अपने-आप जो भी बात—चाहे वह अस्पष्ट छाया के रूप में ही क्यों न हो—याद आवे, उसे बताता चला जावे। इस क्रम से धीरे-धीरे रोगी के अतल विस्मृति-लोक में विस्फोट होने लगता है और भूली हुई घटनाएँ एक-एक करके याद आने लगती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि हिप्नोटिक विज्ञान के आविष्कार ने चिकित्सा-शास्त्र के क्षेत्र में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य किया है।

* * *

प्राकृतिक चिकित्सा का चमत्कार

श्री शारदा प्रसाद गुप्त

यद्यपि आज इस चिकित्सा प्रणाली का सर्वत्र प्रसार नहीं है, तथापि जन साधारण इससे अनभिज्ञ भी नहीं हैं। पाश्चात्य सभ्यता में पलने वाली विभिन्न चिकित्सा प्रणालियां आज सर्वत्र सम्मानित हैं। और यही कारण है कि इस चिकित्सा पद्धति को अधिकाधिक लोकप्रियता प्राप्त होती जा रही है। किन्तु दूसरी ओर जिस प्रकार डाक्टरों की वृद्धि हो रही है उससे अधिक रोगों की वृद्धि हो रही है। 'मर्ज़ बढ़ता गया ज्यों ज्यों दवा की' यह बात व्यापक रूप से देखने को मिल रही है। आज एक मर्ज अच्छा भी न हुआ कि दूसरे ने आ घेरा, अब दूसरे का इलाज प्रारम्भ किया तो एक तीसरा मर्ज उठ खड़ा हुआ। सारांश यह कि जितना ही प्राकृतिक अटूट नियमों के विरुद्ध हम अपना रहन-सहन बनाना चाहते हैं और दवा देकर रोगों को दबाना चाहते हैं उतनी ही अधिक हम हानि उठाते हैं। यहां नीचे मैं स्वयं अपने घर की एक घटना का वर्णन करता हूँ। जिसे पढ़कर पाठक स्वयं समझ लेंगे कि नैसर्गिक चिकित्सा कितनी चमत्कारपूर्ण है।

मेरा इकलौता पुत्र (आयु दो साल) मध्य जाड़े में इसी साल बीमार पड़ा। रोग क्या था, कुछ पता नहीं। उसे केवल भोजन से अरुचि बढ़ी तो मैंने सलाह दी कि इसका खाना-पीना बिलकुल बंद कर देना चाहिये। इस विषय की कई एक पुस्तकें, जिनका मैं प्रेमी हूँ, और 'जीवन सखा' की कई प्रतियां बच्चे की मां को दिखलाई गईं। पर यही उत्तर मिला 'वाह, खाना बंदकर देने पर बच्चा कैसे जीवित रहेगा? मैंने समझाया कि प्रकृति के विरुद्ध इसे अंट संट खिलाने-पिलाने से यह रोग हो गया है। अब इसका शरीर विकार युक्त हो गया है। इसे कुछ दिन उपवास कराने से सब ठीक हो जायगा। परंतु भला स्त्रियां कब मानने लगीं? 'बच्चा कैसे रहेगा'—कैसे जियेगा'—यह बातें जरा टेढ़ी थीं। अस्तु दो एक दिन और बीते। अब वमन भी शुरू हो गया। अब तो बात स्पष्ट होगई।

उपवास जब नहीं कराया गया तो प्रकृति ने स्वयं अपना प्रबंध कर लिया। वमन होने के पहले बच्चे का उपचार भी तरह तरह से होता रहा। नज़र-टोना उतारने के लिए झाड़-फूंक भी चालू था। कुछ पैसे इसमें भी खर्च हो गये। माता का दृढ़ विश्वास था कि बच्चे को 'कड़ी नजर' लग गई है। लाल मिर्च नमक और न जाने क्या क्या आग में पड़ता था। दूध में पीपल औट कर उसे पिलाया जाता था, जिससे भूख बढ़े। अदरख का रस चटाया जाता था। परन्तु सब व्यर्थ। जो कुछ पेट में जाता था, शीघ्र ही वमन हो जाता था। यहाँ तक कि पानी भी नहीं पचता था। खाली पेट भी उबकाई आती थी। उसकी आंखें धंस गईं, बदन कमजोर और सुस्त होगया, उठना बैठना बंद हो गया। होमियोपैथी के दो एक डाक्टरों ने भी अपना हाथ लगाया पर सब व्यर्थ। ऐलोपैथी से तो मुझे बहुत चिढ़ है इससे यह दवा आजमाने का खयाल ही न आया। हार मानकर बच्चे की मां ने मेरी (मेरी क्या, प्राकृतिक चिकित्सा की) शरण ली। मैंने ईश्वर का नाम लेकर इस भाँति उपचार करना प्रारंभ किया। उसकी दशा देख कर मैं भी घबड़ा गया था। यदि कोई अच्छा डाक्टर होता तो शायद मैं एक बार उसे भी आजमाता परंतु मेरा दुर्भाग्य अथवा सौभाग्य था कि ऐसा कोई डाक्टर न मिला। होमियों का इलाज जारी रहा।

उपचार—खाना पीना एक दम बंद। एक रोज तक। दूसरे दिन सुबह थोड़ा गर्म पानी प्रातः दिया गया जो थोड़ी देर बाद वमन हो गया। पेड़ू पर मिट्टी की पट्टी दी जाने लगी। तीसरे पहर फिर वही रस। प्यास लगने पर किशमिश का पानी तीन रोज। इस प्रकार का क्रम चलता रहा। बच्चा कमजोर तो था पर सुखी था। काफी सोता था। पहले जैसी बेचैनी न थी। चौथे रोज़ अनार का रस और दो चम्मच दूध आजमाया गया। वह भी पच गया। धीरे धीरे दूध की मात्रा बढ़ाई जाने लगी। परन्तु उसमें फलों का रस उचित मात्रा में पड़ता रहा। एक सप्ताह बाद बच्चा चंगा होगया। यह चमत्कार नहीं तो क्या है?

बिहार प्रान्तीय प्राकृतिक चिकित्सा सम्मेलन

मनोनीत अध्यक्ष का अभिभाषण

गत १२ मार्च को रामनगर ग्राम, (जिला मुजफ्फरपुर) में बिहार प्रान्तीय प्राकृतिक चिकित्सा सम्मेलन का प्रथम वार्षिक अधिवेशन डा० बालेश्वर प्रसाद सिंह, संचालक, प्राकृतिक स्वास्थ्य गृह, प्रयाग, तथा सम्पादक 'जीवन सखा' के सभापतित्व में हुआ। इस अवसर पर अध्यक्ष का जो अभिभाषण हुआ उसका संक्षिप्त विवरण हम यहां दे रहे हैं।

सम्मेलन के स्वागताध्यक्ष बाबू रामाचरण प्रसाद थे। स्वागताध्यक्ष के भाषण तथा उस सम्मेलन में पास किए गए प्रस्तावों की प्रतिलिपियां हमें समय से न प्राप्त हो सकीं, अतः उन्हें हम अगले अंक में प्रकाशित करेंगे।

—सं०

अध्यक्ष का अभिभाषण

प्राकृतिक चिकित्सा कोई नवीन विषय नहीं है। यह अत्यन्त पुरानी है। वैदिक काल में भी इसका प्रचार था। उस समय इसके अन्तर्गत जल-चिकित्सा, व्रत, सूर्य किरणों द्वारा उपचार, भोजन आदि की विधियाँ प्रचलित थीं। प्राकृतिक चिकित्सा अन्य प्रचलित चिकित्सा-प्रणालियों की अपेक्षा प्रकृति से अधिक संबंधित है, इसका ईश्वर से सीधा सम्पर्क है। प्राकृतिक चिकित्सा मुख्यतया प्राकृतिक साधनों पर ही निर्भर करती है। अतः इसमें भी देवत्व के गुण, सत्य, श्रद्धा आदि, सर्वथा निहित हैं। और यही कारण है कि पूज्य बापू जी प्रत्येक प्राकृतिक चिकित्सा प्रेमी को चाहे वह रोगी हो अथवा स्वस्थ, अपने कार्य और व्यक्तित्व को ईश्वर के चरणों में समर्पित कर देने की सलाह देते हैं। हवा, मिट्टी, जल, प्रकाश और आकाश —यही पंचतत्व प्राकृतिक चिकित्सा के पांच उपकरण हैं।

सूर्य नमस्कार, जो आज भी प्रचलित है, सूर्य-किरण चिकित्सा का ही एक अंग है। इसी भाँति पवन-चिकित्सा के अन्तर्गत प्राणायाम-विधियाँ आती हैं।

इन उपचारों के अलावा हमारे पूर्वजों ने यह भी अनुभव किया कि मनुष्य की अनेकानेक बीमारियों का जन्म उसके असंयमित आहार-विहार से ही होता है, इसीलिए उपनिषदों में कहीं भी सुबह जलपान करने प जोर नहीं दिया गया है। उनका सिद्धान्त था कि 'भूख लगने दो।' वह समझते थे कि कम खाने से, और सो भी सच्ची भूख लगने पर खाने से बढ़ कर कोई भी अच्छी बात नहीं। यही कारण है कि हमारे धर्म ग्रन्थों में पर्वों के बहाने पग-पग पर उपवास करने का आदेश दिया गया है। वास्तव में उपवास एक सर्वश्रेष्ठ औषधि है। इस संबंध में यह कहना अप्रासंगिक न होगा कि आधुनिक विदेशी दवाओं के आगमन के पूर्व हमारे देश में उपवास पर अत्यधिक जोर दिया जाता था, किन्तु कालान्तर से यह स्वास्थ्य का अनुपम अस्त्र सर्वथा कुंठित हो गया और आज पाश्चात्य, सभ्यता में रंगे हुये डाक्टरों के लिए भोजन ही सब कुछ है—प्राणदाता है। उनकी राय में उपवास कुछ भी नहीं—रोगी को मृत्यु की मंजिल पर ले जाने की एक सीढ़ी मात्र है। और यही उनकी सबसे बड़ी एवं घातक भूल है।

(चांडयोग) उपनिषद् में एक स्थान पर स्पष्ट रूप से लिखा है कि कोई भी मनुष्य १५ दिनों तक लगातार उपवास कर सकता है, यदि वह खुलकर पर्याप्त मात्रा में जल पीता जाय। उपवास से आयु बढ़ती है उपवास-काल में जीवन-डोर जल में निहित कतिपय अदृश्य रसायनिक तत्वों द्वारा सधी रहती है, टूटती नहीं।

प्राचीन काल में दवाएं भी काम में लाई जाती थीं, रोगों के निराकरण के लिए। किन्तु केवल सहायक उपचार के रूप में ही। उन पर पूर्णतया रोगियों को आश्रित नहीं किया जाता था। वे दवाएं जहरीली नहीं होती थीं, कलेजा सुखाने वाली नहीं, वरन् जड़ी बूटी का सत्त स्वरूप ही होती थी। औषधि शब्द का अर्थ है-पौधा। अस्तु औषधम् का मौलिक अर्थ होता है जड़ी-बूटियां। उपनिषद् में खाद्यपदार्थों को वनस्पति-साम्राज्य की धरोहर माना गया है। अतः स्पष्ट है कि खाद्यपदार्थ भी उस समय दवा के रूप इस्तेमाल किए जाते थे, न कि उदर-पूरक के रूप में, जैसा कि आज कल होता है।

खाद्य-सामग्री कैसी होनी चाहिए, इस तथ्य की ओर भी सबका ध्यान विशेष रूप से आकर्षित रहता था। सात्विक आहार जो रुचि कर एवं बल वर्धक हो, उस को ग्रहण करने की सलाह दी जाती थी। लवणाक्त पदार्थों का, जिनसे तमाम तरह की बीमारियां उत्पन्न होने का भय रहता है, सर्वथा निषेध था।

इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि प्राकृतिक चिकित्सा कोई विदेशी प्रणाली नहीं, स्वतः इस भारत भूमि की ही परम पावन निधि है। इसका आविर्भाव एवं विकास प्राचीन काल में ही हो चुका था। किन्तु समय परिवर्तनशील है। समय के परिवर्तन के साथ-साथ इस नैसर्गिक चिकित्सा-पद्धति का भी लोप हो गया। फिर भी, यह हर्ष का विषय है कि आज पुनः इसी दयनीय दशा की ओर प्रसिद्ध प्राकृतिक चिकित्सकों एवं स्वास्थ्यानुरागियों का ध्यान आकृष्ट हुआ है। वे इसका पुनरुत्थान चाहते हैं। उनका यह प्रयास सर्वथा स्तुत्य है, किन्तु इस पुनरुत्थान की दिशा में अग्रसर होने के पूर्व हमें उन कारणों की खोज करनी है जिनसे इस अद्वितीय चिकित्सा प्रणाली का ह्रास हुआ। इसके पश्चात् हमें इसका संगठित रूप में प्रचार करने के उपाय ढूढ़ने होंगे। हमें इसे अपने ऋषी मुनियों द्वारा निर्धारित मार्ग पर ले चलना है—इसे इस प्रकार से पुनः संगठित करना है जिससे कि यह पूर्वजों द्वारा पोषित अपनी मौलिक आध्यात्मिक अवस्था से भिन्न न प्रतीत हो। हम इसे इस भांति संगठित करे कि इसके अन्धकारमय स्थलों में वेदान्त-युग की आभा प्रस्फुटित हो उठे!

महात्मा गांधी और प्राकृतिक चिकित्सा

प्राकृतिक चिकित्सा के प्रतिसब से अधिक जागरूक हैं महात्मा गांधी। आप कह चुके हैं कि भारत गांवों में बसता है। आप अपने 'जीवन की संध्या में' इस बात के लिए सतत प्रयत्न कर रहे हैं कि भारत के प्रत्येक गांव में प्राकृतिक चिकित्सा का प्रसार हो। गांधी जी ने अपने व्यक्तित्व द्वारा संसार के समक्ष यह साबित कर दिया है कि मिट्टी और जल—प्रकृति के इन दो उपकरणों में ही जीवन दान देने की शक्ति है, मनुष्य द्वारा निर्मित कृत्रिम दवाइयों में नहीं। बापू की यही इच्छा है कि जो लोग भी प्राकृतिक चिकित्सा का संकल्प करें वह केवल सेवाभाव से प्रेरित होकर ही, द्रव्य-हरण की भावना से नहीं। भगवान करें बापू का यह प्रयास सफल हो।

यह उपालम्भ क्यों?

हम चिकित्सकों पर दोषारोपण किया जाता है कि हम लोग आधुनिक डाक्टर समुदाय के विरुद्ध विद्रोह का झंडा उठाते हैं, और प्रकृति के वास्तविक स्वरूप से सर्वथा संतुष्ट नहीं रहते, उसमें भी खोद-विनोद किया करते हैं। इस सम्बन्ध में यह कहना गर्वोक्ति न होगी, कि हमारा खोद-विनोद तर्क हीन नहीं होता। उसके द्वारा हम कुछ समझने की चेष्टा करते हैं, कुछ जानने का प्रयास करते है। फिर यह उपालम्भ क्यों!

यदि सच पूछा जाय तो मेरी समझ में वह चिकित्सा प्रणाली ही चिकित्सा प्रणाली नहीं जिसके अनुयायी तर्क शून्य हों, जो आगे जानने की कोशिश न करें।

प्राकृतिक चिकित्सा हमें यह बात भी शुरू से ही समझाने की चेष्टा करती है कि हम क्या हैं? 'को हम काच में शक्तिः' का सिद्धान्त हमारे समक्ष रखती है। हम क्या हैं, हमारी क्षमता क्या है, इन तथ्यों का विश्लेषण यह भली भाँति करती है। उदाहरणार्थ, हमारे सिर में दर्द होता है

तो हम प्राकृतिक चिकित्सा के सहारे उस दर्द का कारण जानने की चेष्टा करते हैं कि यह क्यों हुआ बनिस्बत इसके कि हम चट से 'जादू की गोली' (Golden pills) निकालकर रोगी को दे दें। इस प्रकार प्राकृतिक चिकित्सा हमारे लिए एक आध्यात्मिक महत्व रखती है। यह हमें मनुष्य की भांति रहना सिखाती है। रुग्ण होने पर हमें प्रकृति की गोद में सौंप देती हैं और आगाह करती है कि हम सतर्क होकर रहें, स्वप्न में भी प्रकृति से सम्बन्ध-विच्छेद न करें। संक्षेप में प्राकृतिक चिकित्सा हमें 'जीने की कला' (Art of living) सिखाती है।

यह है प्राकृतिक चिकित्सा का महत्त्व। मेरी समझ में स्वास्थ्य-विज्ञान धार्मिकता का साथी है। धर्म और चिकित्सा का गठबंधन होना परमावश्यक है। इसके बिना कोई भी चिकित्सा प्रणाली अधूरी ही रहती है। प्रत्येक चिकित्सा प्रणाली का लक्ष्य है जीवन की वास्तविकता की, सत्य की खोज करना, जिससे मानव हृदय प्रतिक्षण प्रभावित होता रहता है। हमारी प्राकृतिक चिकित्सा सत्य पर केंद्रित है। सत्य व धर्म ही इसके अवलम्ब हैं, एलौपैथिक आदि प्रणालियों में यह बात नहीं पाती जाती और यही कारण है जो प्राकृतिक चिकित्सा हम सबको अन्य चिकित्सा प्रणालियों की अपेक्षा कहीं अधिक प्रिय है, क्योंकि यह हमारे जीवन, मस्तिष्क एवं परमपिता परमेश्वर से बहुत निकट से सम्बन्धित है। स्वास्थ्य के अर्थ हैं आत्मा और परमात्मा का समुचित सामंजस्य। इसी सामंजस्य की स्थापना का प्रयास हम करने की चेष्टा करते हैं। इसी प्रयास में हमारी सफलता निहित है। हम सबको इसी लक्ष्य को सामने रखकर कार्यशील होना चाहिए। डाक्टरी दवा के प्रयोगों का कटु अनुभव अनेकों को हुआ है और वे जान गए हैं कि स्वास्थ्य बोतलों में नहीं है। वे समझ गए हैं कि आधुनिक औषधि शास्त्र पोल पट्टी के सिवा कुछ नहीं है, और उन्हें चिकित्सा पद्धति से सचमुच ही घृणा हो गई है। वे समझते हैं कि डाक्टरों ने उनके स्वास्थ्य को बनाने के बदले बिगाड़ा है और नैतिक पतन की ओर पहुँचाया है। मानव जगत अब चेत रहा है। साथ ही हमारे देश का भी भाग्योदय होने जा रहा है। यह हम प्राकृतिक चिकित्सकों के लिए सुनहला मौका है कि हम अपने को अधिक संगठित करें व घर घर जन साधारण के स्वास्थ्य की उन्नति के हेतु प्राकृतिक चिकित्सा का प्रचार करें। इसके प्रति जनसमुदाय को अधिक जागरूक करने के अभिप्राय से अन्वेषण (Research work) करें और लोगों को अधिकाधिक शिक्षित बनावें। बिहार में इस कार्य के लिए काफी क्षेत्र है जमशेदपुर, पटना हजारी बाग आदि स्थानों में प्राकृतिक चिकित्सा केन्द्र स्थापित किए जायं। इससे बड़ा ही लाभ होगा। हमारी सरकार--जनता की सरकार--को इस कार्य में पूर्ण सहयोग देना चाहिये, तभी हमारी मंजिल पूरी होगी।

डा० शंकरन् का भाषण

अध्यक्ष के अभिभाषण के उपरान्त सेवा-ग्राम (वरधा) आश्रम के एक सम्मानित सदस्य डा० के० शंकरन् नायर का प्रभावोत्पादक भाषण हुआ। आपने प्राकृतिक चिकित्सा के महत्व और उसके सम्बन्ध में महात्मा गांधी के विचारों से श्रोताओं को अवगत कराया।

डा० शंकरन् ने कहा—मेरी राय में 'प्राकृतिक-उपचार' यह शब्द ही गलत है। क्योंकि 'उपचार' तो उसी को कहते हैं जिसका प्रयोग बीमार पड़ने पर रोग को दूर करने के लिए किया जाता है—जैसे एलोपैथिक, होमियोपैथिक, यूनानी आदि। परन्तु पूज्य बापू के सिद्धान्त के अनुसार मैं यह कहूँगा कि यह सही तरीके से जीवन-यापन करने की एक कला—दूसरे शब्दों में 'जीवन-कला' है।

सच्चा जीवन कलात्मक होता है। और हम यह भी जानते हैं कि किसी की कीमत तभी होती है जब वह कला से भरी रहती है। लेकिन मुझे यह कहना है कि कला के दो स्वरूप हैं और उसकी कीमत भी अलग-अलग है—एक है कृत्रिम कला और दूसरी है प्राकृतिक। जो कृत्रिम होती है उसकी कीमत सिर्फ बाजारू ही (Market value) है मगर जो कला प्राकृतिक रूप धारण करती है उसकी कीमत हमेशा कायम रहती है जिसको Intrinsic value कहते हैं। आजकल जितनी उपचार कलाएं हैं—जैसे अंग्रेजी इलाज, होमियापैथिक, यूनानी इत्यादि, ये सभी बनावटी ही हैं इसीलिये इनकी कीमत भी हमेशा कम-ज्यादा होती रहती है। आप जानते हैं कि कोई भी बनावटी शास्त्र बनावटी वस्तुओं के साथ उपयोग किया जा सकता सकता है, मगर कुदरती चीजों के साथ उसका मेल नहीं बैठता। आपको मानना ही पड़ेगा कि शरीर कुदरत से पैदा हुआ है और कुदरत ही कुदरत उसमें भरी हुई है। इस लिये उसके साथ बनावटी चीज का मेल कहां बैठ सकता है? आप यह भी जानते हैं कि यह शरीर पंच तत्वों—हवा, पानी, मिट्टी, प्रकाश और आकाश—से बना है। इन चीजों की कमी या आधिक्य होने

से या उनका उपयोग अशुद्ध रूप से करने से ही मनुष्य बीमार पड़ते हैं। इन सब चीजों को प्रमाण से और उसके शुद्ध रूप में करना ही इस कला का उद्देश्य है। परन्तु आज कल लोग बनावटी वस्तु के पीछे दौड़ते हैं और चाहते हैं कि मृत्यु से बच जायँ। भला यह कैसे हो सकता है ? आखिर नतीजा यह होता है कि मनुष्य जीवन हमेशा के लिए दुःख पूर्ण बन जाता है। आप जानते हैं कि कला जीवन कला के लिए है और जीवन आनन्दमय है, यदि कलात्मक जीवन चलावे तो। यह कला हमें सिखाती है कि उसकी प्राप्ति तभी होगी जब स्वच्छ हवा, पानी, प्रकाश, और स्वच्छ और सादा खुराक का सेवन करें और मन और बुद्धि को काबू में रख कर संयमित जीवन चलावें। अगर इसी तरह से प्रत्येक व्यक्ति जीवन चलावे तो यह जीवन कलात्मक होगा या नहीं इसमें शंका ही नहीं। यही बात पूज्य बापू जी ने उराली के ग्रामवासियों से भी बताया था। बापू जी का विचार बीमारी के बारे में यह है कि हमारा रहन-सहन, खान-पान और आचार-विचार, अशुद्ध और अप्राकृतिक होने की वजह से है। इसलिए यदि हम अपना जीवन संयम पूर्वक चलावें तो हम बीमार पड़ ही नहीं सकते। यह शरीर बीमारी का घर नहीं है। यह मन्दिर है। मगर हम इसका न ख्याल रखते हैं और न प्रयत्न करते हैं। कुदरत हमारे लिए स्वच्छ, हवा, पानी-प्रकाश और खुराक पैदा कर देती है। मगर हम अपनी मूर्खता की वजह हम इन सबों को बिगाड़ कर ही इस्तेमाल करते हैं। अगर हम, अपना घर हवादार बनावें, स्वच्छ रक्खें, घर के आस-पास के स्थान स्वच्छ रक्खें, मिर्च, मसाला का इस्तेमाल छोड़ें, खुली हवा में रहें, पानी को न बिगाड़ें तो हम हमेशा के लिए तन्दुरुस्त रह सकते हैं और हम दूसरों के लिए भी एक मार्ग-दर्शक बन सकते हैं। यही प्राकृतिक उपचार कला का सिद्धान्त है। ऐसा मैं मानता हूँ। जहां तक मेरा ख्याल है पूज्य बापू जी का विचार भी यही हो सकता है। बापू जी तो यहां तक जाते हैं कि शरीर के लिए यज्ञ, दान, तप, और कर्म के तप की भी ज़रूरत है!

स्वास्थ्य सम्बन्धी तीन नए प्रकाशन

कविराज महेन्द्रनाथ पाण्डेय की स्वास्थ्य सम्बन्धी महत्वपूर्ण कृतियाँ प्राकृतिक रोगोपचार के प्रेमियों के बीच कितनी लोकप्रिय हुई हैं, यह कहने की बात नहीं इनकी प्रत्येक पुस्तक की अधिकाधिक मांग ही उनकी लोकप्रियता का सहज प्रमाण हैं। आपकी नयी युक्तियाँ निम्नलिखित हैं :—

(१) तपेदिक—तपेदिक के सम्बन्ध में सारी जानकारी की बातें, तथा इस भयंकर रोग से बचाव का उपाय इस पुस्तक के द्वारा आप बिना किसी की सहायता के जान सकते हैं। इसकी एक प्रति तो प्रत्येक घर में रहनी ही चाहिए। मूल्य ४) रु०

(२) जुकाम—इसमें जुकाम, ब्रोंकाइटिस, दमा, खांसी, निमोनिया; एनफ्लुएञ्जा आदि का अचूक इलाज बताया गया है। बड़े काम की चीज़ है। मूल्य १||) रु०

(३) हमारा भोजन—पाण्डेय जी की यह एक नवीनतम कृति है, आहार एवं स्वास्थ्य सम्बन्धी सभी ज्ञातव्य बातों की जानकारी इस पुस्तक से आप प्राप्त कर सकते हैं। मूल्य ४)

इन पुस्तकों के लिए आज ही लिखें—

मैनेजर—स्वास्थ्य ग्रंथ भण्डार, 'जीवन सखा' कार्यालय

२८७ बादशाही मंडी, चौक, इलाहाबाद।

अपने विचार

घी की समस्या

कलकत्ते के श्री दयाराम देवरा ने हमारे पास एक पत्र की प्रतिलिपि भेजी है, जो कि उन्होंने बंगाल के सार्वजनिक स्वास्थ्य विभाग के डाइरेक्टर के पास भेजा था। उस पत्र में उन्होंने कलकत्ते के नागरिकों को किसी भी मूल्य में शुद्ध घी मिलने में होनेवाली कठिनाइयों की ओर सरकार का ध्यान आकृष्ट कराया है और कहा है कि यह सारी कठनाई केवल इस कारण से ही हो रही है कि आज कल बाजारों में जो 'वेजीटेबुल' बिकता है उसका रूप-रंग बिलकुल घी जैसा ही होता है। अतः घी में उसे बड़ी आसानी से मिलाया जा सकता है। इसके लिए हम किसे दोषी ठहरावें, मुनाफाखोरी के संक्रामक रोग से व्याप्त व्यापारियों को या कि अप्रत्यक्ष रूप से इस तरह के अपराधपूर्ण कार्य को प्रोत्साहन देने वाली सरकार को ? या कि उन वैज्ञानिकों को जिन्होंने सम्भवतः इस प्रकार की अनैतिकता से उत्प्रेरित होकर 'वेजिटेबिल' का आविष्कार किया है ?

शुद्ध घी की समस्या किसी एक नगर या प्रान्त की समस्या नहीं, समूचे भारत की समस्या बन रही है। इसका निराकरण तो तभी हो सकता है जबकि हमारे धन-लोलुप व्यापारियों में नैतिकता का प्रादुर्भाव हो, वे मुनाफाखोरी से ईमानदारी के मूल्य को अधिक समझें। यदि उनमें नैतिकता का प्रादुर्भाव नहीं होता, तो कम से कम सरकार तो अपना फर्ज अदा कर ही सकती है। वह ऐसे कानून बना सकती है जिससे कि इस तरह का अन्धेर न होने पावे। 'वनस्पति' को यदि 'वनस्पति' के ही नाम पर--घी के नाम पर नहीं—बेचना है, यदि इसका उद्देश्य जनता को धोखा देना नहीं है-तो इसका रंग घी से मिलता-जुलता रखने की कत्तई कोई वजह नहीं है ! श्री देवरा ने भी यही अनुरोध किया है कि वनस्पति का रंग ऐसा कर दिया जाय जिससे वह घी के नाम पर बेचा ही न जा सके। इस न्यायोचित सुझाव को स्वीकार कर लेने में सरकार को, यदि वह वास्तव में ईमानदारी का बर्ताव करना चाहती है, स्वीकार कर लेने में कोई आपत्ति न होनी चाहिये।

अभी हाल ही में 'हरिजन' में महात्मा गांधी ने भी इस समस्या पर प्रकाश डाला है। और इस खतरे के विरुद्ध चेतावनी दी है कि कहीं शुद्ध घी को 'वेजिटेबिल' घी के नाम से पुकारी जाने वाली बनस्पति दबा न दे। गो-सेवा संघ, वरधा, के सरदार दातार सिंह इस समस्या की बहुत छानबीन करने के उपरान्त जिस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं उसका भी उल्लेख महात्मा जी ने उस लेख में किया है। सरदार दातार सिंह का कहना है कि 'खाद्य-पदार्थ की हैसियत से 'बनस्पति' घी के मुकाबले बहुत घटिया चीज है। उसे हजम करना तो मुश्किल है ही, उसमें जीवन-तत्व भी नहीं होता।' उन्होंने यह भी बताया है कि इस काम में नफे की बड़ी गुंजाइश होने के कारण सन १९३७ में २९,००० टन फी साल से बढ़कर १९४४ में इसका उत्पादन १०,५,००० हो गया है और बहुत जल्द ही कम से कम इसका दुगुना उत्पादन हो जायगा। महात्मा जी की राय में 'बनस्पति' बिलकुल गैर जरूरी है। तेल में से नुकसान पहुंचाने वाले भाग निकाले जा सकते हैं। लेकिन उन्हें जमाने या घी की शकल देने की कोई जरूरत नहीं। एक ईमानदार उत्पादन इतना नीचे न गिरेगा कि जाली काम शुरू करे। जाली सिक्के बनाने पर काफी सजा मिलती है। फिर जाली घी के लिये क्यों न सजा दी जाय ? जबकि असली घी सिक्कों से कहीं ज्यादा कीमती होता है। लेकिन सबसे अच्छा उपाय तो यह है कि जो व्यापारी राष्ट्र के स्वास्थ्य की भी कोई परवाह न करते हुए एकदम मालदार बन जाना चाहते हैं, वे और दूसरे लोग, सब तरह ईमानदारी का बर्ताव करें।' क्या महात्मा जी की इस सलाह की वे उपेक्षा करेंगे ? राष्ट्र के लिये यह सबसे पहली आवश्यकता है, कि वह ईमानदारी का बर्ताव करना सीखें। अगर हम अपने में यह गुण नहीं ला सकते, तो हमारा सारा प्रयत्न निष्फल ही सिद्ध होगा। इसके लिये तो सरकार और धन-लोलुप बनस्पति के व्यापारियों दोनों को अपने दायित्व को पूरा करना होगा। तभी इस समस्या को सफलता पूर्वक हल किया जा सकता है।

प्रश्नोत्तर

[इस स्तम्भ में जिज्ञासु पाठकों के प्रश्नों के उत्तर दिए जाते हैं। पाठकों को चाहिए कि वे एक बार दो से अधिक प्रश्न पूछने का कष्ट न करें और जहाँ तक हो सके अपने प्रश्न संक्षेप में ही लिखें। ध्यान रहे कि इस स्तम्भ का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य यह है कि किसी एक व्यक्ति की जिज्ञासा का लाभ दूसरे पाठक भी उठावें।

प्रश्नों के भेजने के सम्बन्ध में आवश्यक नियम यह है कि प्रश्नों को प्रश्नोत्तर कूपन के साथ भेजा जाय। प्रश्नोत्तर कूपन कवर के तीसरे पेज के नीचे दिया गया है। —सं०]

प्रश्न—मेरा लघु भ्राता चि० दामोदर (उम्र १७ वर्ष) जो कि अविवाहित है पिछले कुछ महीनों से एकदम पागल हो गया है। इसके पेश्तर केवल कब्ज की शिकायत रहती थी। नशीली चीजों का सेवन वह नहीं करता था। पर चाय अधिक पीता था, और सिगरेट भी छिपकर पीता था। दिसम्बर के पहिले सप्ताह में अधिक सिगरेट पी थी। अध्ययन छोड़े २ साल हो गये हैं।......रात दिन सोता नहीं है। ऊटपाँग बकता रहता है कपड़े फाड़ डालता है, नंगा हो जाया करता है। सर में भारी दर्द रहता है। डा० मुकर्जी का इलाज भाई साहब ने चालू किया। उन्होंने राय पिल्स तथा ल्यूमिनास देना शुरू किया। दस्त न होने पर हरचंद कोशिश डाक्टरों की राय से की गई पर सब बेकार। मैंने एनिमा देना आरंभ किया। तबियत काफी अच्छी हो गई। दवाओं की मात्रा कम की गयी। एक हफ्ता इसी हालत में रहा। अब करीब १ हफ्ते से वही पुरानो दशा पर आ गया है।......पास सोने वालों को थोड़ी झपकी आजाने पर तमाम कमरे की वस्तुएँ इधर-उधर करता है। पेटियों के कपड़े बिखेर देता है। मेरी प्राकृतिक चिकित्सा प्रणाली पर अटूट श्रद्धा है व इस पर अनुभव भी प्रात कर चुका हूँ। फिलहाल मैं रोज एनिमा देता हूँ। थोड़ी खिचड़ी भोजन में दी जाती है। दोनों समय ठण्डे पानी से स्नान कराया जाता है और सर पर ५-१० मिनट ठण्डा पानी डाला जाता है। अब कृपया आप मेरे लघु भ्राता को रोग मुक्त होने की अमूल्य सम्मति प्रदान करने का कष्ट उठावें।

—श्रीनाथदास शर्मा, यशवन्तगंज, इन्दौर

उत्तर—बड़ी प्रसन्नता की बात है कि प्राकृतिक-चिकित्सा पद्धति पर आपकी अटूट श्रद्धा है। वास्तव में, जैसा कि आपका पूर्व विश्वास है, यह बीमारी हमेशा के लिये यदि भगाई जा सकती है तो ईश्वर प्रदत्त प्राकृतिक उपचारों द्वारा ही। यदि आप अपने भाई को सचमुच रोग-मुक्त करना चाहते हैं तो किसी भी डाक्टर की कोई भी दवा उन्हें ग्रहण न करने दें अन्यथा रोग सदैव के लिए घर कर लेगा और रोगी आपके अथवा किसी भी प्राकृतिक चिकित्सक के हाथ से निकल जायगी। आपको चाहिए कि अपने भाई के इलाज में पूर्ण रूप से प्राकृतिक पथ का ही अवलम्बन करें पूरी दृढ़ता एवं पूर्ण विश्वास, धैर्य और अडिग साहस के साथ। आपको दो बातों पर विशेषकर ध्यान देना चाहिए—सर्व प्रथम तो यह कि रोगी की कोष्ट बद्धता पूरी तरह से दूर की जाय और दूसरी बात यह कि शरीर के सम्पूर्ण स्नायु-मण्डल पर, विशेषकर मस्तिष्कपर. शीतलता पहुँचायी जाय। पेड़ू का साफ रखना बहुत ही ज़रूरी है क्योंकि यहीं पर कब्ज से उत्पन्न गर्मी अन्त तो गत्वा रक्त धारा द्वारा मस्तिष्क में पहुँचती हैं। इस हेतु आप एनिमा जो दे रहे हैं सो ठीक कर रहे हैं पर एनिमा को लगातार प्रातः सायं दो बार अवश्य पानी में नींबू का रस मिलाकर दीजिए। एकबार से काम नहीं चलेगा। एनिमा का प्रयोग आप तबतक जारी रखिए जबतक रोगी की हालत में विशेष सुधार न हो। काफी दिन तक इसका प्रयोग कीजिए। एनिमा देने के पहिले मिट्टी की पट्टी भी पेड़ू पर आध घण्टे तक जरूर रखिये। आप रोगी को अमलताश का जुलाब भी गरम पानी में आधा तोला घोलकर दे सकते हैं। इसके अतिरिक्त रोगी को दिन में एक बार शीतल जल का पेड़ू स्नान और एक बार मेहन स्नान देना भी बहुत उपयोगी होगा। समय व विधि आप किसी भी अच्छी प्राकृतिक चिकित्सा की पुस्तक देखकर मालूम कर सकते हैं। मेहन स्नान से समस्त शरीर के स्नायुओं पर शीतलता का संचार होगा एवं पेड़ू स्नान से कब्ज दूर होगा, विजातीय पदार्थ निकल जायगा और रक्त स्वच्छ होगा। सरपर खूब शीतल जल की धार १५-२० मिनट से आरम्भकर क्रमशः पौन घण्टे एवं एक घण्टे तक डालिए। भोजन में अन्न रोगावस्था में तो कभी दीजिए ही मत। खिचड़ी देना बिल्कुल बन्द कर दीजिए। रोगी का भोजन फलों के रस के सिवाय और कुछ नहीं होना चाहिए। फलों में सब दृष्टियों से रोगी के लिए शन्तरे का रस विशेष लाभदायक सिद्ध होगा। जितने शन्तरों का रस दे सकें दीजिए। हां, मात्रा का एक क्रम समयानुसार बनाकर, एकदम बहुत सा नहीं। रीढ़ पर भी सर की तरह ठण्डे जल की धार छोड़ना बहुत जरूरी है, क्यों कि रीढ़ से

मस्तिष्क का सीधा सम्बन्ध है। डा० शर्मा के० लक्ष्मण की पुस्तक में बताया हुआ रीढ़ स्नान (Spinal bath) भी लेना हितकर होगा। इसकी विधि यह है कि एक टब लिया जाय और उसमें एक मोटी सी गद्दी बिछा दी जाय। जो रीढ़ को अच्छी तरह ढक सके। इसके बाद उसमें दो-तीन इंच ठण्डा पानी डाला जाय। फिर उसी में रोगी को लिटा दिया जाय। पैर टब के बाहर रहना चाहिए, किसी स्टूल पर, पहिले रोगी १०-१५ मिनट तक उसमें रहे। फिर यही स्नान आध घण्टे से एक घण्टे तक बढ़ाया जा सकता है। निर्धारित समय के बाद रोगी की पीठ एक सूखे तौलिए से पोछ देनी चाहिए सिरको भी स्नान समाप्त करने पर अच्छी तरह धो लेना चाहिए। उपर्युक्त उपचारों से तो लाभ होगा ही पर रोगी की मानसिक चिकित्सा होना भी किन्चित् आवश्यक है। पर इसका उपयोग किसी अनुभवी प्राकृतिक चिकित्सक की देखरेख में किसी स्वास्थ्यगृह में ही किया जा सकता है।

प्रश्न (१) मेरे एक मित्र हैं। उनकी उम्र लगभग १९ वर्ष की है। वह जब तीन वर्ष के थे तभी से उनके दाहिनी ओर लकवा मार गया है। आजकल वह बवासीर से पीड़ित हैं। यह गतवर्ष जाड़े से शुरू हुआ था। जब उन्हें थोड़ा सा खून जाता था उस समय उसे एक वैद्य ने अंगूर के रस की कोई दवा दी जिससे वह रुक गया। अब फिर कुछ समय से दौरा आना शुरू हुआ है। उनके पिता भी इसी रोग से पीड़ित हैं। वह इससे बहुत बेचैन हैं और चूँकि उनकी आस्था दवा से किंचित हट गई है वह आपकी सलाह चाहते हैं और आशा रखते हैं कि उन्हें बवासीर से और अगर हो सके तो लकवे से भी पूर्ण छुटकारा मिल जायगा।

(२) मैं बहुत कमजोर हूँ। मेरी उम्र १७ साल है। विद्यार्थी हूँ। कोई ४ साल पहिले मुझे हस्तमैथुन की कुटेव पड़ गयी थी जो कोई १ साल बाद मैंने रोक दी और तब से मुझे स्वप्न दोष होने लगा। वह भी गतवर्ष से रुक गया है। कभी-कभी महीने, दो महीने में हो जाया करता है। मैं दवा से ठीक होना नहीं चाहता। मेरे घर वाले मुझे दवा के लिए बहुत जोर देते हैं। मैं इस वातावरण में जितना कर सकता हूँ करता हूँ। खूब चबा-चबाकर खाता हूँ। हाथ का पिसा हुआ चोकर सहित आटा काम में लाता हूँ। भोजन के साथ फल खूब खाता हूँ। मैंने इसके बारे में बहुत सी पुस्तकें अंग्रजी और हिन्दी में पढ़ डाली है। लेकिन मुझे कम फ़ायदा हुआ दिखायी दे रहा है।.....सुबह नौलि क्रिया व मयूरासन करता हूँ। लेकिन फायदा नहीं हो रहा है। क्या कारण है? मैंने पिता जी से कह दिया है कि डाक्टर के पास मैं नहीं जाऊंगा। २४ घण्टों में कोई ९ बार पेशाब करने जाता हूँ। अब आपही कोई उपचार बताइये, मैं अवश्य करूँगा।

--ज० च० अलीगढ़

उत्तर--(१) लकवे का रोग तो आपके मित्र को पिछले १५ वर्षों से है और वह भी बचपन से। रोग के इतना पुराना हो जाने एवं घर कर लेने पर लकवे जैसे हठी रोग से अब मुक्त होने की आशा रखना व्यर्थ सा ही है। पर प्रकृति की शरण में आने पर रोगी व्यक्ति स्वास्थ्य की उत्तरोत्तर वृद्धि की ओर ही अग्रसर होगा, रोग की ओर नहीं। यह निश्चित है। पर कब? रोगी उसके आदेशों का पूरा-पूरा पालन करे, उसके पंच तत्वों के अन्तर्गत निश्चित उपचारों का ठीक-ठीक दीर्घकाल तक पूर्णोपयोग करे। ऐसे चिकित्सा-क्रम में रोगी व उसके परिवारों को दृढ़ता, उनके विश्वास साहस एवं धैर्य की पूरी-पूरी अग्नि-परीक्षा हो जाती है। इस परीक्षा में यदि व्यक्ति सफल हो जाने पर बहुत पुराने रोग का रोगी भी अपने को यदि पूरा पूरा नहीं तो बहुत कुछ रोग से मुक्त कर सकता है। यही बात आपके मित्र के लकवे के रोग के बारे में भी सही है। रहा बवासीर का सो तो अवश्य शीघ्र प्राकृतिक चिकित्सा से दूर हो सकता है। स्मरण रखिए बवासीर उसी व्यक्ति को होती है जो व्यायाम शून्य होकर अपने दैनिक भोजन में ऐसे खाद्य पदार्थों का प्रयोग करता है जिससे मेदा पूरी तरह साफ नहीं होता तथा धीरे-धीरे मलाश-जमा रहने लगता है, कब्ज की उत्पत्ति होती है और अन्त में घोर या भीषण कब्ज अपना डेरा सदैव के लिए जमा लेता है। बड़ी आंतें अपना मल-निष्कासन का दैनिक कार्य करना एकदम बन्द-सा कर देती हैं। व्यक्ति कांखता है और मल के बाहर आने के बजाय रक्त गुदा मार्ग से टपकता है। बवासीर को सदा के लिए विदा करने के निमित्त आवश्यक यह है कि आपके मित्र दो

तरह से मोर्चा लें । उनके दैनिक भोजन में खाद्य पदार्थों का ऐसा संग्रह होना चाहिए जो आंतों में गुठ्ठल बनकर जमा न हो जायं बल्कि उल्टा मल को झाड़ू मारकर निकाल दें । अतएव भोजन में मौसमी फलों व शाक-सब्जियों की प्रधानता रक्खें । फलों व शाकों में केला और आलू, कटहल, शकरकंद ये अपवाद स्वरूप हैं । किसी भी रोग से पीड़ित व्यक्ति को इन्हें रोगावस्था तक त्याग देना चाहिए । दाल न खाना ही बेहतर है । पर यदि दाल खाना ही चाहते हैं तो थोड़ी गाढ़ी दाल व छिलकेदार लें । मैदे, बेसन, से बनी हुई चीजें, मिठाई बिस्कुट डबल रोटी आदि का सेवन कोष्ट बद्धता का, दैनिक व्यायाम के अभाव में, प्रधान कारण होता है । इसलिए रोगी को इन चीजों की तिलांजलि दे देना चाहिए । आटा से चोकर निकालना कब्ज़ को निमंत्रण देना है । संध्या में दलिया का सेवन भी बहुत उपकारी सिद्ध होगा । प्रतिदिन शौच हो आने के बाद कुनकुने जल में नींबू का रस मिलाकर सेर-डेढ़ सेर पानी का एनिमा लेना भी उनके लिए उतना ही आवश्यक जितना उपरिलिखित भोजन सुधार । रात में सोते समय उन्हें चाहिए कि आधा छटाँक कागज़ी नींबू का रस छटाँक भर गरी के तेल में मिलाकर किसी पिचकारी द्वारा गुदा में प्रविष्ट कर लिया करें । इस विधि से प्रातः शौच के समय होने वाले कष्ट में शीघ्र कमी होगी और मसे भी धीरे-धीरे सूखकर गायब हो जायंगे । रात में सोते समय ठण्डे जल में बनी हुई मिट्टी की पट्टी भी पेड़ू पर रख लेना चाहिए । प्रातः उठते ही दांत जीभ साफ कर एक गिलास पानी का उषा पान भी मल को ढीला करने में बड़ा सहायक होता है । शौच के समय काँखना कभी न चाहिए । शौच हो जाने के बाद किसी बड़े तसले या ऐसे किसी बरतन में ठण्डा पानी डालकर दो-तीन मिनट बैठना भी चाहिए । पैर बाहर रहना चाहिए । यदि मस्से बड़े हों तो मस्सों पर चिकनी मिट्टी सान कर उसकी टिक्की बाँधें । दूसरा प्रधान मोर्चा कसरत का है । आपके मित्र आँतों को सशक्त एवं पूरा पूरा क्रियाशील बनाने के लिए यह भी आवश्यक है कि वे प्रतिदिन कुछ पेट की कसरतें भी करें अथवा ६ मील प्रातः सायं टहल ही लिया करें ।

(२) किसी वस्तु को नष्ट करना जितना सरल है उतना ही कठिन है उसका निर्माण । यही बात स्वास्थ्य के सम्बन्ध में और भी पूरी तरह से चरितार्थ होती है । पिछले कुछ वर्षों की कुटेवों के फलस्वरूप, जैसा कि आपने स्वयं वर्णन किया है, आपका जो स्वास्थ्य चौपट हो गया है उसके पुनः प्राप्त करने में तथा जो दुर्बलता ने घर कर लिया है उसको दूर करने में समय लगेगा और लगना भी चाहिए । आप धैर्य व विवेक से काम लें, तो आप पहिले से दुगना यदि स्वास्थ्य प्राप्त कर सकते है । प्राकृतिक चिकित्सा में तो समय एवं धैर्य सदैव ही प्रकाशित रहता है । स्वास्थ्य ऐसी वस्तु नहीं कि एक ओर तो आप उसे तुरत गवां दें और दूसरी ओर केवल उसकी आकांक्षा एवं किंचित विवेक व धैर्य हीन प्रयत्न के फलस्वरूप ही वह आपके हाथ में आ भी जाय । नौलिक्रिया और मयूरासन से तो आपके पाचन शक्ति ही में सुधार हो सकता है इनके अभ्यास से आपके शरीर में शक्ति का संचार थोड़े ही होगा, और न इनसे चढ़ेगा आपसे शरीर में मांस और न इनसे आपको सहायता मिलेगी । मांस पेशियों के निर्माण में, दुर्बलता दूर करने के लिए शरीर में मांस लाने के लिए शरीर को पुनः नवीन बनाने के लिए वजन में वृद्धि के लिए आपको चाहिए कि आप २ महीने तक दूध या मट्ठे का कल्प ले लें । कल्प लेने की विधि आप किसी प्राकृतिक-चिकित्सा की उत्तम पुस्तक से मालूम कर सकते हैं । जाड़े में आप उचित मात्रा में दण्ड बैठक भी कर सकते हैं, पर कसरत याद रखिए इतना नहीं करना चाहिए कि तबियत उसमें धीरे-धीरे ऊब जायं और शरीर में देर तक थकावट और सुस्ती-सी छायी रहे । फलों को भोजन के साथ खाना ठीक नहीं । प्रातः व तीसरे पहर नाश्ते के रूप में उनका सर्वोत्तम प्रयोग होता है अथवा सन्ध्या में दूध व फलों का आहार ही एक समय आप रख सकते हैं । दो-तीन प्रकार से अधिक फल भी एक साथ नहीं लेना चाहिए । आपके लिए यह हितकर होगा कि आप अक्तूबर १९४५ के जीवन-सखा में छपे प्रश्न का उत्तर भी पढ़ जायं ।

कामताप्रसाद अग्रवाल

पढ़िये ! **लाभ उठाइये !!**

सुन्दर, स्वस्थ और सुखी जीवन के इच्छुकों को

ये पुस्तकें पढ़नी चाहिए

(१)	रोगों की अचूक चिकित्सा (चतुर्थ संस्करण) :श्री जानकी शरण, वर्मा, बी० ए०	५)
(२)	बच्चों की रक्षा—लुई कूने	।=)
(३)	मैं निरोग हूँ या रोगी ?—लुई कूने	।=)
(४)	स्वास्थ्य के नुस्खे—'जीवन सखा' कार्यालय	।)
(५)	क्या और कैसे खायं—डा० बालेश्वर प्रसाद सिंह	।=)
(६)	ब्रह्मचर्य ही जीवन है—स्वामी शिवानन्द	१॥)
(७)	आनन्दमय जीवन—श्री शंकरलाल तिवारी	॥)
(८)	कब्ज या कोष्ठबद्धता : डा० बालेश्वरप्रसाद सिंह	१)
(९)	तपेदिक—श्री एम० एन० पांडेय	४)
(१०)	शाकों के गुण—श्री नारायणप्रसाद अरोड़ा	१)
(११)	फलाहार—श्री नारायणप्रसाद अरोड़ा	१)
(१२)	वैज्ञानिक जल-चिकित्सा—श्री कुलरंजन मुखोपाध्याय	२)
(१३)	सचित्र हठयोग—स्वामी शिवानन्द	१।)
(१४)	मन और उसका निग्रह (प्रथम भाग)—स्वामी शिवानन्द	१)
(०५)	मन और उसका निग्रह (द्वितीय भाग) „	३)
(१६)	हम सौ वर्ष कैसे जीवें : श्री केदारनाथ गुप्त, एम० ए०	१॥।)
(१७)	आरोग्य-साधन—महात्मा गाँधी	॥)
(१८)	स्वास्थ्य साधन—श्री रामदास गौड़	३॥)
(१९)	आहार ही औषध है : डा० एल० एन० रतरा	१।)
(२०)	दवाओं से बचो—श्री गंगाप्रसाद गौड़, 'नाहर'	१)
(२१)	Your diet in health & disease by Harry Benjamin	1-4-0
(२२)	Food-de-Medicine by Dr, L. N. Ratra, H. M. B.	1-2-0
(२३)	Universal un-cooked food	3-8-0
(२४)	Nature Cure of Eye defect by Dr. K. L. Sharma.	2-0-0
(२५)	Practical Nature cure „ „ „	8-8-0
(२६)	Constipation and Dyspepsia	1-8-0
(२७)	Gems of health	2-0-0
(२८)	Drugless healing	1-0-0

स्वास्थ्य सम्बन्धी पुस्तकें मिलने का पताः—

मैनेजर, स्वास्थ्य ग्रंथ-भंडार २८७, बादशाहीमंडी, चौक, प्रयाग ।

प्रश्नोत्तरी कूपन अप्रैल, १९४६

वे जीवन से निराश हो चुके थे !

किन्तु वही अब देखिए क्या कहते हैं !

"दमा का दम तोड़ने के लिए मैंने क्या नहीं किया ? डाक्टरों और वैद्यों का इलाज विफल रहा ।...मैं बिलकुल ही नाउम्मीद होकर **प्राकृतिक स्वास्थ्य गृह के संचालक डा० बालेश्वर प्रसाद सिंह,** के पास पहुँचा ।...पेट की सफाई कर मैं लग गया अपनी चिकित्सा में । वस्त्रधौति की आज्ञा दी गई ।...यह तो जारी था ही मैंने कुछ आसन और प्राणायाम भी शुरू किया...वहीं अस्पताल में ही ये सब उन लोगों की निगरानी में करता रहा । धीरे धीरे दमा की शिकायत जाती रही ।...इस तरह कड़े नियम से रह कर मैंने उस रोग से छुटकारा पाया जिसे बड़े बड़े नाम वाले डाक्टर लाइलाज और वैद्य असाध्य बतलाते हैं । यह सब कृपा है प्राकृतिक चिकित्त्सा की और उसके प्रचारकों की भी ।"

—कुँवर कोशलेश प्रसाद शर्मा, बरांव राज्य

इसी तरह के न जाने कितने असाध्य और निराश रोगियों को प्राकृतिक चिकित्त्सा-विधि से नया जीवन मिला है ।

यदि आप भयानक से भयानक, व्याधि, अथवा जीर्ण रोग से पीड़ित हो रहे हैं तो उससे छुटकारा पाने के लिए नीचे लिखे पते से पत्र-व्यवहार करें । हमारे स्वास्थ्य गृह में प्रायः सभी प्रकार के रोगों का नैसर्गिक विधियों से सफलतापूर्वक इलाज होता है ।

स्वास्थ्य गृह में रोगियों के रहने का प्रबन्ध

स्वास्थ्य-गृह में रोगियों के आराम और सुविधा के ख्याल से दो श्रेणियां निर्धारित कर दी गई हैं । प्रथम श्रेणी के रोगी से १००) मासिक और द्वितीय श्रेणी के रोगियों से ७५) मासिक लिया जाता है, जिसमें चिकित्सा दूर करने की फीस भी शामिल है । रोगियों को अपने भोजन का प्रबन्ध अलग से करना पड़ेगा । पूरा विवरण पत्र भेजकर प्राप्त करें । पत्र के साथ टिकट भेजना जरूरी है ।

नोटः—हमारे यहां संक्रामक रोगों से पीड़ित रोगियों के रखने का प्रबन्ध नहीं है ।

व्यवस्थापक—

प्राकृतिक स्वास्थ्यगृह, लूकरगंज, इलाहाबाद ।

Printed by R. N. Avasthi at the K. P Press and Printing School, Alld.
Published by Syt. Baleshwar prasad Sinha. 287, Badshahi Mandi,
Chowk, ALLAHABAD.

जीवन सखा

रीरिक, मानसिक और नैतिक स्वास्थ्य का पथ-प्रदर्शक

मई सन् १९५६ ई. वर्ष ११ अङ्क ५

इस अंक के विशेष आकर्षण

१. 'जीवन की संध्या में'—श्री प्यारेलाल
२. नेत्र रोगों का उपचार—प्रो० लालजी राम शुक्ल, एम० ए० बी० टी०
३. गठिया—डा० बिट्ठलदास मोदी
४. बुड्ढे बच्चे—श्री कन्हैयालाल सहल० एम० ए०
५. रोग का निदान पहले—डा० रामचरण महेन्द्र, एम० ए० डी० लिट०
एवं अन्य उपयोगी लेखादि

वार्षिक चन्दा ३)
इस प्रति का ।=)

कांगड़ी गुरुकुल में ता. १७ जून सन १९५६ ई. को प्राप्त। हस्ताक्षर [illegible] प्रसाद

जीवन सखा प्रेमियों से

जीवन सखा का उद्देश्य जन साधारण के शारीरिक, मानसिक एवं नैतिक स्वास्थ्य का पथ-प्रदर्शन करना है—बस, इसी भावना से प्रेरित होकर हम गत दस वर्षों से युग के अनेक थपेड़ों को सहते हुए भी जीवन सखा प्रकाशित करते आ रहे हैं। हमें अपने उद्देश्य में सफलता भी मिली किन्तु पूर्ण रूप से नहीं। हमारी मनोकामना थी कि जीवन सखा का संदेश देश के लक्ष्मीपतियों के भव्य भवनों से लेकर गरीब भाइयों की अँधेरी झोपड़ियों तक में गूँज उठे, पर हम अपने लक्ष्य से सर्वथा दूर ही रहे—कुछ युग की विकरालतावश; कुछ अपने स्नेहियों के सक्रिय सहयोग के अभाववश। अब देशवासियों के गिरते हुए स्वास्थ्य को देखकर हमारी हार्दिक इच्छा है, बल्कि अनुरोध है, कि समस्त जीवन सखा प्रेमी व्यक्तिगत रूप से हमारी ओर से प्रत्येक स्वास्थ्य प्रेमी स्त्री-पुरुष को जीवन सखा द्वारा प्रचारित प्राकृतिक चिकित्सा प्रणाली के अनुपम रहस्य से परिचित कराने का भरसक प्रयत्न करें, उनसे जीवन सखा परिवार में शामिल होने का अनुरोध करें ताकि जीवन सखा का अधिकाधिक प्रचार हो, जीवन सखा का संदेश घर घर में पहुँचे सर्व साधारण का स्वास्थ्य सुधरे। इतना होने पर ही हम अपनी मंजिल पर पहुँच सकेंगे, अन्यथा नहीं। आशा है हमारे स्नेही हमारी इस प्रार्थना पर ध्यान देकर अ[illegible] सक्रिय सहयोग प्रदान करेंगे।

—व्यवस्थापक

विषय सूची

—:o:—

१—कमरे की रोशनी—(अवतरण) १९०
२—जीवन की संध्या में—श्री प्यारेलाल १९१
३—नेत्र रोगों का उपचार—प्रो० लालजी राम शुक्ल, एम० ए०, बी० टी०, १९५
४—जीवन ज्योति—डा० पुच्चा वेंकटरमय्या, एन० डी०, संपादक 'प्रकृति' (तेलगू) और 'इन्डियन नेचुरोपैथ' (अंग्रेजी) १९९
५—लहसुन—श्री रामेश वेदी, आयुर्वेदालंकार २०१
६—गठिया—डा० विठ्ठलदास मोदी, संचालक, आरोग्य मंदिर, गोरखपुर २०३
७—माता का उत्तरदायित्व—श्री ब्रजमोहन मिहिर २०६
८—बुड्ढे बच्चे—श्री कन्हैयालाल सहल एम० ए०, अध्यक्ष, हिन्दी-संस्कृत विभाग; बिड़ला कालेज, पिलानी २०८
९—रोग का निदान पहले—डा० रामचरण महेन्द्र, एम० ए०, डी० लिट्० २०९
१०—बिहार प्रान्तीय प्राकृतिक चिकित्सा सम्मेलन २११
११—प्रश्नोत्तर २१७
१२—अपने विचार २२०

Reg. No. A-172

शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्

NATURE ONLY HEALS

जीवन सखा

सम्पादक

डा० बालेश्वरप्रसाद सिंह

वर्ष ११] मई [अङ्क ५

कमरे की रोशनी

ध्यान रहे कि जब आप अपने कमरे में लैम्प या गैस की बत्ती जलाते हैं तो आप उसकी लौ के रूप में एक ऐसी चीज को स्थान देते हैं जो कमरे के वायु में से ओषजन (आक्सीजन) का शोषण करती है और उसकी जगह कारबोनिक गैस उत्पन्न करती है। चिराग की लौ अपनी आकृति के अनुसार इतना अधिक आक्सीजन का शोषण और कार्बोनिक गैस का उत्पादन करती है, जैसे कि उस कमरे में आपके साथ ८ से १६ व्यक्ति तक रहते हों।

मकान के दक्षिणी या पश्चिमी कमरे में उत्तरवाले हिस्से की बनिस्बत अधिक शुद्ध वायु होती है। उत्तरी हिस्से के कमरे में कुछ खास प्राणधारक प्रकाश-किरणों का, जो कि दिन में धूप से प्रकाशित कमरे में समीवृत हो जाती है, अभाव ही रहता है।

जीवन की संध्या में

श्री प्यारेलाल

पिछले महीने 'हरिजन' में श्री प्यारे लाल का एक साप्ताहिक पत्र प्रकाशित हुआ था, जिसमें उन्होंने बताया कि इन दिनों अनेक महत्त्वपूर्ण कामों में लगे रह कर भी गांधी जी किस प्रकार समय निकाल कर प्राकृतिक चिकित्सा सम्बन्धी अपनी योजना का प्रचार कर रहे हैं, इसमें उन्होंने बताया है कि गांधी जी की राय में प्राकृतिक चिकित्सा जीवन की एक पद्धति है, रोग मिटाने के इलाजों का तरीका नहीं। साथ ही गांधी जी का यह भी कहना है कि प्राकृतिक उपचारक के इलाजों में सबसे बड़ा इलाज रामनाम है। पर, इसकी भी मर्यादाएं हैं। वे क्या हैं, यह आप महात्मा जी के ही शब्दों में इस लेख में पायेंगे। —सं०]

बम्बई-निवास के अपने पाँच दिनों में गांधी जी को अपना ज्यादातर वक्त तो कार्यकारिणी-समिति के कामों में ही देना पड़ा था, फिर भी बम्बई की जनता को अपनी नई सन्तान का परिचय देना वे नहीं चूके। वक्त में से वक्त निकाल कर उन्होंने गरीबों के लिए कुदरती इलाज का केन्द्र खोलने की अपनी योजना लोगों को समझाई। हाल ही सरदार पटेल को लिखे अपने एक पत्र में उन्होंने लिखा था: "पिछले ५० सालों से जो चीज मेरे लिए महज शौक की चीज़ थी, उसी की अब मुझे धुन लगी है।" एक दूसरे मित्रको उन्होंने लिखा: "गरीबों की सेवा के लिए खास शक्ति मैं अपने में पाता हूँ उसका पूरा-पूरा उपयोग न करूं, तो मैं मूर्ख गिना जाऊँ।" इसलिए ७६ साल की उमर में, अपने जीवन की संध्या में, उन्होंने अपने कई कामों में इस एक काम को और बढ़ाने का फैसला किया है।

कुदरती इलाज क्या चीज़ है ?

कुदरती इलाज की इस बात ने उनके दिल पर इतना अधिकार क्यों कर रक्खा है ? उस दिन बिड़ला हाउस में उनसे मिलने आये एक भाई को उन्होंने यह समझाया कि उनके अपने खयाल वाले कुदरती इलाज के तरीके में और बीमारियों के इलाज के दूसरे सब तरीकों में क्या फर्क है। उन्होंने कहा: "बीमारी का इलाज करने की साधारण पद्धति में क्या होता है ? रोगी या बीमार आदमी अपनी बीमारी को मिटाने वाली दवा लेने के लिए डाक्टर के पास दौड़ा जाता है। डाक्टर दवा लिख देते हैं। रोग के कारण रोगी में जो असाधारण लक्षण दिखाई पड़ते हैं उनके मिट जाने पर डाक्टर का काम खतम हो जाता है और उसके साथ ही बीमार के साथ का डाक्टर का सम्बन्ध और उसके विषय में उसकी दिलचस्पी भी खतम हो जाती है। कुदरती इलाज करने वाला प्राकृतिक उपचारक रोगी को उसके रोग के लिए कोई 'जड़ी-बूटी' नहीं बेचता। वह तो अपने बीमार को जीवन बिताने का ऐसा तरीका सिखाता है, जिससे वह अपने घर में रह कर अच्छी तरह जिन्दगी बिता सके और आगे कभी बीमार न पड़े। वह अपने बीमार की खास तरह की बीमारी को मिटा कर ही चुप नहीं हो जाता। मामूली डाक्टरों या वैद्यों को ज्यादातर इतनी ही दिलचस्पी रहती है कि वे अपने मरीजों के मर्ज को और उसके लक्षणों को समझ लें, उसका इलाज ढूंढ निकालें और इस तरह सिर्फ बीमारी-सम्बन्धी बातों का ही अभ्यास करें। इसके खिलाफ कुदरती इलाज करनेवाले को तन्दुरुस्ती के नियमों का अभ्यास करने में ज्यादा दिलचस्पी होती है। जहाँ मामूली डाक्टर की दिलचस्पी खतम हो जाती है, वहाँ कुदरती इलाज के डाक्टर की सच्ची दिलचस्पी शुरू होती है। कुदरती इलाज के तरीके से बीमार की बीमारी को बिलकुल मिटा देने के साथ ही उसके लिए एक ऐसी जीवन-पद्धति का आरम्भ होता है कि जिसमें रोग या बीमारी के लिए कोई गुंजाइश ही नहीं रहती। इस तरह कुदरती इलाज जीवन की एक पद्धति है, रोग मिटाने के इलाजों का तरीका नहीं।"

अपनी इस बात का स्पष्टीकरण करते हुए गाँधी

हाउस में प्रार्थना के लिए आये हुए लोगों से उन्होंने कहाः "कुदरती इलाज के लिए यह दावा नहीं किया जाता कि उससे सब बीमारियां दूर होती हैं। दवादारू का कोई ऐसा तरीका नहीं, जिससे सब रोग मिटते हों। अगर ऐसा होता, तो हम सब अमर न हो जाते? लेकिन यह सच है कि कुदरती इलाज जिन बीमारियों को मिटा नहीं सकता, मन का तौल खोये बिना, पूरी-पूरी शांति के साथ उनका सामना करने और उन्हें सह लेने की ताकत देता है। एक बार आप अपने मनमें यह गाँठ बाँध लें कि जिस चीज से हमारे देश के करोड़ों लोग फायदा नहीं उठा सकते वह हमारे लिए भी हराम है, तो फिर क्या गरीब और क्या अमीर सबके लिए हर तरह की बीमारी को मिटाने वाली कुदरत की शरण में जाने के सिवा और कोई चारा न रह जाय।

इलाजों का इलाज

प्राकृतिक उपचार के इलाजों में सब से समर्थ इलाज रामनाम है। इस चर्चा को और आगे बढ़ाते हुए गांधी जी ने कहाः "इसमें अचम्भे की कोई बात नहीं। एक मशहूर वैद्यने अभी उस दिन मुझसे कहा थाः 'मैंने अपनी सारी जिन्दगी मेरे पास आने वाले बीमारों को तरह-तरह की दवा की पुड़ियायें देने में बिताई है। लेकिन जब आपने शरीर के रोगों को मिटाने के लिए रामनाम की दवा बताई, तब मुझे याद पड़ा कि चरक और वाभट जैसे हमारे पुराने धन्वन्तरियों के वचनों से भी आपकी बात को पुष्टि मिलती है। आध्यात्मिक रोगों को (आधियों को) मिटाने के लिए रामनाम के जप का इलाज बहुत पुराने जमाने से हमारे यहां होता आया है। लेकिन चूंकि बड़ी चीज में छोटी चीज भी समा जाती है, इसलिए मेरा यह दावा है कि हमारे शरीर की बीमारियों को दूर करने के लिए भी रामनाम का जप सब इलाजों का इलाज है। प्राकृतिक उपचारक अपने बीमार से यह नहीं कहेगा कि तुम मुझे बुलाओ, तो मैं तुम्हारी सारी बीमारी दूर कर दूं। वह तो बीमार को सिर्फ यह बतायेगा कि प्राणीमात्र में रहनेवाला और सब बीमारियों को मिटाने वाला तत्त्व कौनसा है। किस तरह उस तत्त्व को जाग्रत किया जा सकता है, और कैसे उसको अपने जीवन की प्रेरकशक्ति बना कर उसकी मदद से अपनी बीमारियों को दूर किया जा सकता है। अगर हिन्दुस्तान इस तत्त्व की ताकत को समझ जाय तो हम आजाद तो हो ही जायँ, लेकिन उसके अलावा आज हमारा जो देश बीमारियों और कमजोर तबीयतवालों का घर बन बैठा है, वह तन्दुरुस्त और ताकतवर शरीर वाले लोगों का देश बन जाय।'

रामनाम का उपयोग और उसकी मर्यादा

इसी चीज को और अधिक समझाने के ख्याल से उन्होंने आगे कहाः "रामनाम की शक्ति की अपनी कुछ मर्यादा है और उसके कारगर होने के लिए कुछ शर्तोंका पूरा होना जरूरी है। रामनाम कोई जंतर-मंतर या जादू-टोना नहीं। जो लोग खा-खाकर खूब मोटे हो गये हैं, और जो अपने मुटापे को और उसके साथ बढ़नेवाली बादी की आफ़त से बच जाने के बाद फिर तरह-तरहके पकवानों का मजा चखने के लिए इलाज की तलाश में रहते हैं, उनके लिए रामनाम किसी काम का नहीं। रामनाम का उपयोग तो अच्छे काम के लिए होता है। बुरे कामों के लिए हो सकता होता, तो चोर और डाकू सबसे बड़े भक्त बन जाते। रामनाम उनके लिए है, जो दिल के साफ हैं और जो दिल की सफाई करके हमेशा साफ-पाक रहना चाहते हैं। भोग विलास की शक्ति या सुविधा पाने के लिए रामनाम कभी साधन नहीं बन सकता। बादी का इलाज प्रार्थना नहीं, उपवास है। उपवासका काम पूरा होने पर ही प्रार्थना का काम शुरू होता है, गोकि यह सच है कि प्रार्थना से उपवास का काम आसान और हलका बन जाता है। इसी तरह एक तरफ से आप अपने शरीरमें दवाकी बोतलें उँडेला करें और दूसरी तरफ मुंह से रामनाम लिया करें, तो वह एक बे-मतलब फार्स ही होगा। जो डाक्टर बीमार की बुराइयों को बनाए रखने में या उन्हें सहेजने में अपनी होशियारी का उपयोग करता है, वह खुद गिरता है और अपने बीमार को भी नीचे गिराता है। अपने शरीर को अपने सिरजनहार की पूजा के लिए मिला हुआ एक साधन समझने के बदले उसीकी पूजा करने और उसको किसी भी तरह बनाए रखने के लिए पानी की तरह पैसा बहाने से बढ़कर बुरी गत और क्या हो

सकती है ! इसके खिलाफ रामनाम मर्जको मिटानेके साथ ही साथ आदमी को भी शुद्ध बनाता है और इस तरह उसको ऊँचा उठाता है। यही रामनामका उपयोग है और यही उसकी मर्यादा।”

उरुलीकांचन में

बम्बई से पूना लौटने के बाद गांधीजी प्राकृतिक उपचार गृह में ज्यादा दिन नहीं ठहरे। २२ मार्चकी शामको वे उरुलीकांचन पहुँच गये। यह शोलापुर-पूना लाइन पर एक स्टेशन है और इस गाँव की आबादी करीब ३ हजार है। यहाँ रेलवे का तारघर और सरकारी डाकघर है, मगर टेलीफोन नहीं। डाकगाड़ियाँ और एक्सप्रेस गाड़ियाँ यहाँ नहीं ठहरतीं। यहाँ की आबहवा अच्छी है और हवा ताजगी देनेवाली है। पड़ोस की फौजी छावनी के कुओं और पानी की टंकी से अच्छी तरह साफ किया हुआ पानी काफी तादादमें मिल जाता है। इस तरफ अंगूर, नारंगी, पपीते वगैरा फलोंके झाड़ बहुतायत से पाये जाते हैं, और उन पर फल भी खूब लगते हैं। कुछ दिन पहले इस गाँवके करीब-करीब सभी खास खास लोगोंका एक प्रतिनिधि मण्डल पूना के उपचारगृह में गांधीजी से मिलने आया था। उसने गांधीजी से विनती की कि गरीबों के लिए कुदरती इलाज का जो केन्द्र वे खोलना चाहते हैं, सो उनके गांव में खोलें। प्रतिनिधि-मण्डल ने वचन दिया कि इस कामके लिए जितनी जमीन की जरूरत होगी, उतनी वे प्राप्त करा देंगे। और इस काम मे पूरा-पूरा सहयोग देंगे। इसके अलावा उन्होंने ‘नेचर क्योर ट्रस्ट, को उरुली के प्रयोग के लिए रु० १०,००० का दान भी दिया। श्री दातार नामके एक रिटायर्ड रेलवे ठेकेदारने अपना बंगला खाली करके कुछ दिनों के लिए उसे गाँधीजीके हवाले कर दिया।

पहले ही दिन गाँवके बाहर सामूहिक प्रार्थना की गई और दूसरी जगहों की तरह यहाँ भी सबके एक साथ राम-धुन गाने का रिवाज शुरू किया गया। प्रार्थनामें जो भजन गाया गया था उसका आधार लेकर गांधीजी ने वहां आये हुए गांवके लोगों के सामने शरीर की बीमारियों को मिटानेवाली बढ़िया से बढ़िया कुदरती दवा के रूप में रामनाम पेश किया: “अभी हमने जो भजन गाया उसमें भक्त कहता है: ‘हरि ! तुम हरो जन की भीर।’ यानी हे भगवान् तू अपने भक्तों का दुःख दूर कर। इसमें जिस दुःखकी बात कही गई है, वह सब तरह के दुःखोंसे सम्बन्ध रखती है। मन या तन की किसी खास बीमारीकी चर्चा इसमें नहीं है।” फिर गांधीजीने लोगों को कुदरती इलाज की सफलता के नियम बताये। रामनाम के प्रभाव का आधार इस बात पर है कि आया आपको उसमें सजीव श्रद्धा है या नहीं। “अगर आप गुस्सा करते हैं, सिर्फ शरीरकी हिफाजत के लिए नहीं, बल्कि मौज-शौकके लिए खाते और सोते हैं, तो समझिए कि आप रामनाम का सच्चा अर्थ नहीं जानते हैं। इस तरह जो रामनाम जपा जायगा, उसमें सिर्फ होंठ हिलेंगे, दिल पर उसका कोई असर न होगा। रामनामका फल पाने के लिए आपको जपते समय उसमें लीन हो जाना चाहिए, और उसका प्रभाव आपके जीवन के तमाम कामों में दिखाई पड़ना चाहिए।

पहले बीमार

दूसरे दिन सुबह से बीमार आने लगे। कोई ३० होंगे। गांधीजी ने उनमें से पाँच या छःको देखा और उन सबकी बीमारी के प्रकार के देखकर थोड़े हेर-फेरके साथ सबको एक ही से इलाज सुझाए। मसलन, रामनामका जप, सूर्यस्नान, बदन को जोरसे रगड़ना या घिसना, कटिस्नान दूध, छाछ, फल, फलोंका रस और पीनेके लिए ठीक-ठीक साफ और ताजा पानी। शामकी प्रार्थना-सभामें उन्होंने अपने विषय को समझाते हुए कहा: “सचमुच यह पाया गया है कि मन और शरीर की तमाम आधि-व्याधियों का एक ही समान कारण है। इसलिए उन सबका एक ही आम इलाज भी हो, तो उसमें अचरजकी कोई बात नहीं। रोगों की तरह इलाज भी एक ही ढंगके हो सकते हैं। इसलिए आज सुबह मेरे पास जितने बीमार आए थे, उन सबको मैंने रामनाम के साथ करीब-करीब एक ही-सा इलाज सुझाया था। लेकिन अपने रोजमर्राके जीवन में जब शास्त्र हमें अनुकूल नहीं होते, तो हम उनके वचनों का मनचाहा अर्थ निकाल कर अपना काम चला लेते हैं। मनुष्य ने इस कलाका अच्छा विकास कर लिया है; हमने अपने मन पर एक ऐसे भ्रम या वहम को सवार होने दिया है कि शास्त्रोंका उपयोग सिर्फ इसलिए है कि अगले जन्म में जीव का आध्यात्मिक कल्याण हो और धर्मका पालन भी इसीलिए

करना है कि जिसमें मरने से बाद पुण्यकी यह कमाई काम आ सके। मेरा मत ऐसा नहीं है। अगर इस जीवन के व्यवहार में धर्म का कोई उपयोग न हो, तो मुझे अगले जन्म में उससे क्या निस्बत हो सकती है?

"इस दुनिया में बिरला ही कोई ऐसा होगा जो शरीर और मन की सभी बीमारियों से बिलकुल बरी हो। तन और मन की कुछ बीमारियां तो ऐसी हैं कि जिनका इस दुनिया में कोई इलाज ही नहीं। जैसे, अगर शरीर का कोई अंग खण्डित हो गया हो, तो उसको फिरसे पैदा कर देने का चमत्कार रामनाम में कहां से आये? लेकिन उसमें इससे भी बड़ा चमत्कार कर दिखानेकी ताकत है। अंग-भंग या बीमारियों के बावजूद सारी जिन्दगी अकथ शान्ति के साथ बिताने और उमर पूरी होने पर जिस जगह सबको जाना पड़ता है, वहाँ जानेकी बारी के आने पर रामनाम मौत के दुःख को और चिता की विजय के डर को मिटा देता है, यह क्या कोई छोटा-मोटा चमत्कार है? जब आगे-पीछे मौत आने ही वाली है, तो वह कब आयेगी इस फिक्र में हम पहले ही से क्यों मरें?"

यह मेरा हिन्दुस्तान है

तीसरे दिन बीमारों की तादाद ३० से बढ़ कर ४३ तक पहुँच गई। गांधी जी ने कहा: "यह ठीक है। क्योंकि बीमारों की यह बढ़ती हुई तादाद बताती है कि जिनको कुदरती इलाज की जरूरत है वे सब उससे फायदा उठाने के लिये आ रहे हैं।" शाम की प्रार्थना में आये हुए लोगों से उन्होंने बतौर खुलासे के कहा: "इस काम के बारे में जो योजना मेरे मन में है, उसी के मुताबिक यह चला, तो मुझे साल में चार महीने आप लोगों के साथ रहना है। मेरी गैरहाजिरी में मेरे साथी मेरी सूचना के मुताबिक आपको सलाह देने और इलाज सुझाने का काम करते रहेंगे।

"कुदरती इलाज के लिए बहुत बड़ी पंडिताई की या पढ़ने की या ऊंचे दरजे की युनिवर्सिटी डिग्रियाँ हासिल करने की जरूरत नहीं पड़ती। जो चीज हमें सब तक पहुंचानी है, सादगी उसकी खास निशानी होनी चाहिये। जो चीज करोड़ों के लाभ के लिए है, उसके लिये बड़े-बड़े पोथों को उलट कर हासिल किए गये इल्म की जरूरत नहीं। ऐसा इल्म या पांडित्य तो बहुत थोड़े लोग पा सकते हैं; और इसलिए वे अमीरों के ही काम के होते हैं। लेकिन हिन्दुस्तान तो ऐसे ७ लाख गांवों में बसा है, जिन्हें कोई जानता तक नहीं; और जो बहुत छोटे-छोटे हैं व दूर-दूर एक तरफ बसे हुए हैं। उनमें से कई ऐसे हैं, जिनकी आबादी ५००-६०० से ज्यादा नहीं; और कुछ तो १०० से भी कम आबादी वाले होते हैं। मेरा बस चले मैं ऐसे ही किसी गाँव में जाकर रहूँ। वह सच्चा हिन्दुस्तान है, मेरा हिन्दुस्तान है, मैं उसके लिए जीता हूँ। इन गरीबों के बीच आप बड़ी-बड़ी डिग्रियों वाले डॉक्टरों और अस्पतालों की कीमती चीजों के बड़े काफिले को किस तरह ले जायँगे उन्हें तो सादे कुदरती इलाजों का और रामनाम का ही एक आधार है।"

गांधी जी ने इसी सिलसिले में आगे कहा: "मुझसे कहा गया है कि उरुली में बीमारियां नहीं के बराबर हैं। इसका मतलब शायद यह होगा कि यहां कोई महामारी नहीं फैलती। क्योंकि आम तौर पर हमारे लोग बीमारी का यही मतलब समझते हैं। लेकिन पिछले दो दिनों में मेरे पास जितने बीमार इलाज के लिए आये हैं, उससे यह साफ मालूम पड़ता है कि उरुली में भी लोग काफी तादाद में कच्ची तन्दुरुस्ती वाले हैं।"

अन्त में उन्होंने कहा: "अगर आप मेरे कहे मुताबिक चलेंगे, तो उरुली एक नमूनेदार गाँव बन जायगा और लोग उसे देखने के लिए दूर-दूर से आयेंगे।"

इसके बाद उन्होंने लोगों के सामने कुदरती इलाज के मूल तत्त्वों के बारे में पहला प्रवचन किया। नीचे उसका सार दिया गया है।

कुदरती इलाजों के मूल तत्त्व

"मनुष्य का भौतिक शरीर पृथ्वी, पानी; आकाश, तेज और वायु नाम के पाँच तत्त्वों से बना है, जो पंच महाभूत कहलाते हैं। इनमें का तेज तत्त्व शरीर को शक्ति पहुँचाता है। आत्मा उसको चैतन्य प्रदान करती है।

"इन सब में सबसे जरूरी चीज हवा है। आदमी बिना खाये कई हफ्तों तक जी सकता है, पानी के बिना भी वह कुछ घण्टें तक बिता सकता है। लेकिन हवा के बिना तो कुछ ही मिनटों में उसकी देह का अन्त हो सकता

है। इसीलिए ईश्वर ने हवा को सब के लिए मुफीद बनाया है। अन्न और पानी की तंगी कभी-कभी पैदा हो सकती है, हवा की कभी नहीं। ऐसा होते हुए भी हम बेवकूफों की तरह अपने घरों के अन्दर खिड़की और दरवाजे बन्द करके सोते हैं और ईश्वर की प्रत्यक्ष प्रसादी-सी ताजी और साफ हवा से फायदा नहीं उठाते। अगर चोरों का डर लगता है, तो रात अपने घरों के दरवाजे और खिड़कियां बन्द रखिये, लेकिन खुद अपने को उनमें बन्द रखने की क्या जरूरत है?

"साफ और ताजी हवा पाने के लिये आदमी को खुले में सोना चाहिये। लेकिन खुले में सो कर धूल और गन्दगी से भरी हवा लेने का कोई मतलब नहीं। इसलिए आप जिस जगह सोयें वहाँ धूल और गन्दगी नहीं होनी चाहिए! धूल और सरदी से बचने के लिए कुछ लोग सिर से पैर तक ओढ़ लेने के आदी होते हैं। यह तो बीमारी से भी बदतर इलाज हुआ। दूसरी बुरी आदत मुंह से सांस लेने की है। नथनों की राह फेफड़ों में पहुँचने वाली हवा छन कर साफ हो जाती है, और उसे जितना गरम होना चाहिए उतनी गरम भी वह हो लेती है।

"जो आदमी जहां चाहे वहाँ, और जिस तरह चाहे उस तरह, थूककर, कूड़ा-करकट डाल कर या गन्दगी फैलाकर या दूसरे तरीकों से हवा को गन्दा करता है वह कुदरत का और इन्सानों का गुनहगार है। मनुष्य का शरीर ईश्वर का मन्दिर है। उस मन्दिर में जाने वाली हवा को जो गन्दा करता है, वह मन्दिर को भी बिगाड़ता है। उसका रामनाम लेना फजूल है।"

अन्त में लोगों को चेतावनी देते हुए गाँधी जी ने कहा: "मै सख्त काम लेने वाला आदमी हूँ। आप लोगों के बीच रहूँगा, तो न मैं अपने साथ रियायत करूँगा और न आप लोगों के साथ। मैं आपके घरों में आऊँगा, आपके मोहल्लों और रास्तों की जांच करूँगा, आपकी गटरें देखूँगा, आपके रसोई घर देखूँगा और आप लोगों के पाखानों को भी देखूँगा। अगर इनमें कहीं भी धूल या गन्दगी रही, तो मैं उसे बरदाश्त नहीं करूँगा।"

('हरिजन' से

लहसुन

पृष्ठ २०२ का शेषांश

स्निग्ध पदार्थों के साथ लहसुन बहुत अच्छा पुंसत्व शक्तिवर्द्धक द्रव्य है। सम्भवतः वीर्य में शुक्राणुओं को पैदा करके यह शुक्रत्पत्ति को बढ़ाता है और स्त्रियों में डिम्ब को पैदा करके गर्भस्थिति कराने में सहायक होता है। बांझ स्त्रियों, नपुंसक मनुष्यों तथा बूढ़ों के लिए लहसुन का एक योग इन्द्राणी घृत का सेवन उत्तम कामोत्तेजक का काम करता है, इसके साथ पौष्टिक भोजन करना चाहिए। लहसुनसेवी मनुष्य दाम्पत्य कार्यों में थकता नहीं, वह सदा शुक्रसम्पन्न रहता है। उसके कमल जैसे रङ्ग के शरीर में से नीले कमल की सुगन्ध आती है। शरीर मृदु और गला मधुर होता है।

महात्मा गांधी ने और उनके अनेक आश्रमवासियों ने ब्रचर्य की साधना करते हुए इस बात को बहुत गौर से देखा है कि ब्रह्मचर्य धारण करने में कौन से भोजन द्रव्य सहायक हैं और कौन से बाधक। सेवाग्राम में अब भी बहुत से आश्रमवासी लहसुन का रोज सेवन कर रहे हैं। महात्मा गाँधी भी स्वयं काफी समय तक इसका सेवन करते रहे हैं। उनके इस सम्बन्ध में अनुभव मैंने जानने चाहे थे। बापू जी ने मुझे बताया कि मैंने तो उस अवस्था में लहसुन के प्रयोग आरम्भ किये थे जब मैं ब्रह्मचर्य व्रत धारण करने में पूर्णतया सफल हो चुका था और साथ ही मेरी आयु भी बहुत अधिक हो चुकी थी जिससे लहसुन के कहे जाने वाले ब्रह्मचर्य विघातक गुण का मुझ पर कोई प्रभाव नहीं दिखाई दिया। तब; उन्होंने मुझे कुछ युवक और अधेड़ साधकों के नाम बताये जो इस विषय पर अपने अनुभवों के आधार पर अधिक प्रकाश डाल सकते थे। श्रीयुत विनोबा भावे के भाई श्री बालकृष्ण जी ने क्षयग्रस्त होने पर अपने ऊपर लहसुन का प्रयोग करके रोग से छुटकारा पाया है। सालों लगातार पाच तोले कच्चा लहसुन खाने के बावजूद भी उन्होंने अपने ऊपर इस का ब्रह्मचर्य विघातक प्रभाव नहीं देखा। वास्तव में बात यह है कि लहसुन अत्यन्त शक्ति शाली रसायन है जो वीर्य की भी पुष्टि करता है। स्वस्थ वीर्य का पैदा होना बुरी बात नहीं परन्तु उसका दुरुपयोग करना अवश्य बुरी बात है। ब्रह्मचर्य की रक्षा करना चाहनेवाला साधक अधिक पैदा हुए वीर्य को अपनी सात्विक प्रवृत्तियों के द्वारा शरीर के उन हिस्सों में पहुँचाता है जहाँ वह ऐसी अन्तर्मुखि शक्ति के रूप बदल कर ओज बन जाता है जो साधक को तो उजेला देता ही है समस्त संसार को भी आलोकित करता है।

नेत्र रोगों का उपचार

प्रो० लाल जी राम शुक्ल, एम० ए० बी० टी०,

लोगों का यह विश्वास हो चला है कि आयु के साथ साथ नेत्र दृष्टि भी क्षीण हो जाती है। पर इसका मूल कारण आयु नहीं हमारा अप्राकृतिक जीवन है। तभी तो आज छोटे छोटे बच्चे भी चश्में लगाये दिखाई पड़ते हैं। विद्वान् लेखक ने इसे स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है और साथ ही मानसिक चिकित्सा का भी परिचय दिया है। —सं०]

प्रत्येक प्रकार के रोगों की उत्पत्ति तीन बातों के सम्बन्ध में प्राकृतिक नियमों के उल्लंघन से होती हैं। ये तीन बातें हैं-भोजन, आराम और व्यायाम जब मनुष्य किसी प्रकार के तत्सम्बन्धी व्यक्तिक्रम को दूर कर देता है, उसके लिये प्रायश्चित करके फिर प्राकृतिक जीवन बिताने लगता है तो उसे स्वास्थ्य लाभ हो जाता है।

नेत्र रोगों के विषय में विचार करते समय हमें यह स्मरण रखना होगा कि सम्पूर्ण शरीर के स्वास्थ्य का प्रभाव नेत्रों पर वैसा ही पड़ता है जैसा कि शरीर के दूसरों अंगों पर। प्रत्येक रोग के दो कारण होते हैं। (१) सामान्य और (२) विशेष। और यह विशेष कारण शरीर के विशिष्ट अंग के सम्बन्ध में भोजन, व्यायाम और आराम के प्राकृतिक नियमों के उल्लंघन से उत्पन्न होता है। जिस भांति सम्पूर्ण शरीर के पोषण के लिये भोजन की आवश्यकता होती है। इसी तरह नेत्र के लिये भी विशेष प्रकार के भोजन की आवश्यकता होती है। व्यायाम और आराम के विषय में मे यही नियम लागू होता है। इन विषयों पर अब हम एक-एक करके विचार करेंगे।

भोजन—बहुत से नेत्र के रोगियों को पेट की बीमारी रहती है। उन्हें या तो भोजन ठीक नहीं पचता या दस्त साफ नहीं होता। इसका कारण भोजन सम्बन्धी नियमों का उल्लंघन हैं। अधिक भोजन करना बे समय से भोजन करना गरिष्ठ या पौष्टिक वस्तुओं का अत्यधिक सेवन। इसका कारण होता है। इससे पाचन-क्रिया बिगड़ जाती है अथवा कोष्ठ बद्धता हो जाती है। इस स्थिति को मिटाने के लिये पेट की सफाई और भोजन में नियमितता लाना आवश्यक है। कितने ही नेत्र रोगियों को सिर-दर्द होता रहता है। इसका मुख्य कारण पेट का विकार होता है। पेट की सफाई हो जाने पर यह दर्द चला जाता है और नेत्रों में भी सुधार होता है। पेट की सफाई के लिए समय-समय पर एनिमा को प्रयोग आवश्यक है। प्राकृतिक चिकित्सा में एनिमा का प्रयोग ही लाभकर माना गया है। किन्तु मेरी राय में एनिमा का प्रयोग उसी समय करना चाहिये जब तक कि उसका प्रयोग करना आवश्यक जान पड़े। बच्चों को आँख की अनेक प्रकार की बीमारियाँ जैसे आँख आना, रोहां हो जाना आदि पेट की सफाई न होने के कारण होती हैं। उनका पेट रेचन* अथवा एनिमा के द्वारा समय-समय पर साफ करते रहना आवश्यक है। नेत्र रोग की आवश्यकता में तो उनका पेट अवश्य ही साफ करना चाहिये।

पेट की सफाई उपवास से भी होती है। उपवास से भोजन सम्बन्धी अनियमितता का परिहार होता है। उपवास के समय शरीर के विमल स्नायुओं में भरा हुआ मल अथवा जहर बाहर निकल जाता है। इससे शरीर में स्फूर्ति आ जाती है। नाड़ियों और नसों में विजातीय द्रव्य (विष) की अधिकता होने पर उनकी कार्य-शक्ति क्षीण हो जाती है। जब सब नाड़ियों में स्फूर्ति आ जाती है तो आँख की पेशियाँ भी अपना काम ठीक से करने में समर्थ होती हैं। हेनरी बेंजिमन ने नेत्र की प्राकृतिक चिकित्सा सम्बन्धी पुस्तक "बेटर आई साइट विदाउट ग्लासेस" में नेत्र रोग

---

*यहाँ हम लेखक की बात से सहमत नहीं। रेचन पदार्थ शरीर के लिए हानिकारक होता है। फिर भी स्वतंत्र विचारों के कारण दिया जा रहा है —सं०]

को दूर करने के लिए उपवास की महत्ता दर्शाई है। पेट की सफाई और उपवास स्वास्थ्य-लाभ के निषेधात्मक साधन हैं। योग्य भोजन करना भी नेत्र-रोग से मुक्त होने के लिए आवश्यक है। नेत्र-रोग से मुक्ति पाने के इच्छुक व्यक्ति को अपने भोजन में फल, दूध और शाकादि को बढ़ाना होगा। गरिष्ट भोजन और मिर्च मसालों आदि हानिकारक वस्तुओं के सेवन से बचना होगा। सभी प्रकार के रोगियों का भोजन ऐसा होना चाहिये जो सरलता से पच जाय। यह नेत्र-रोग के लिये भी लागू है। भोजन पांच-पांच घंटे के अन्तर से करना चाहिये नहीं तो वह ठीक से हजम नहीं होता।

नेत्र-रोग जितना शहर में रहने वालों को होता है उतना ग्रामीणों को नहीं। इसका एक कारण शहर के लोगों का अपने नेत्रों का दुरुपयोग करना तो है ही किन्तु उन्हें योग्य वस्तुओं को देखने को न मिलना भी नेत्र-रोग का कारण होता है। प्राकृतिक दृश्य दृष्टि की वृद्धि करते हैं। हरियाली, पशुपक्षी का चलता फिरना देखना नेत्र की शक्ति को बढ़ाता है। किसी भी सजीव और सुन्दर पदार्थ को देखने से नेत्र की शक्ति बढ़ती है इसके विपरीत प्रतिकूल मन को अप्रसन्न बनाने वाले काले-काले घरों और फैक्टरियों को देखने से नेत्र की शक्ति का ह्रास होता है। वास्तव में सहृदय जीवन एक ऐसा जीवन होता है जिसमें मन में खिन्नता न लाने वाले दृश्य अधिक होते हैं। मनुष्य जैसे जैसे अपनी आत्मा की तादात्मयता की अनुभूति आस-पास के दृश्य के साथ करता है, उसकी सभी प्रकार का शारीरिक व मानसिक शक्तियों का विकास होता है और वह जितना ही अपने विशेष प्रकार के कामों में चिन्ता से मग्न रहने के कारण वाह्य जगत से अपने को पृथक करता है उसकी सभी शक्तियों का ह्रास होता है। हमारी शारीरिक शक्तियां प्रकृतिदत्त हैं। उनका जीवन भी प्रकृतिमय है। जैसे-जैसे हम प्रकृति से अपने आपको अलग करते हैं अपना विनाश करते हैं। नेत्र के रोगी के लिए यह आवश्यक है कि वह देहात में रहने का आयोजन बना ले और अपना अधिक से अधिक समय खेत में काम करने प्राकृतिक दृश्य देखने में व्यतीत करें।

जिस प्रकार प्राकृतिक दृश्य दर्शन से नेत्र की शक्ति बढ़ती है इसी तरह नन्हें बालकों को किलोल करते देखने से भी नेत्र की शक्ति बढ़ती है। यदि हम ऐसे वातावरण में रहें जहाँ हमारी देखने की इच्छा स्फूरित होती है तो हमारी दृष्टि शक्ति बढ़ती है। कान रहने से नेत्र की शक्ति का विनाश हो जाता है। स्वास्थ्य लाभ के लिये योग्य व्यायाम की उतनी ही आवश्यकता है जितनी कि योग्य भोजन की नेत्रों के स्वास्थ्य लाभ के लिए समस्त शरीर के व्यायाम के साथ-साथ नेत्रों के विशेष प्रकार के व्यायाम की आवश्यकता होती है। हमारा शारीरिक व्यायाम दो प्रकार का होता है। पहला वह है जो कि आजीविका सम्बन्धी कामों के करने में अपने आप हो जाता है और दूसरा वह जिसके लिये हम विशेष प्रयास करते हैं। आजीविका संबंधी व्यायाम करने में जो नेत्रों का व्यायाम होता है वह अनियमित रहने के कारण प्रायः हानिप्रद होता है बहुत से लोग अपने नेत्रों के देखने की शक्ति को समय से पूर्व इतनी खो देते हैं कि वे अपने नेत्रों का दुरुपयोग करते हैं। आज कल पुस्तक पढ़ने का व्यसन बहुत बढ़ गया है। मनुष्य मनोरंजन आजीविका कमाने और ज्ञानोपदेश सभी कामों के लिये पुस्तक की शरण लेता है। कितनी ही पुस्तकें बड़े बारीक टाइप में लिखी रहती है। इनको लगातार पढ़ने के कारण आँखों की साधारण देखने की शक्ति चली जाती है और उसे चश्मा लगाने पड़ते हैं। चश्मा लगाने से अन्धापन में सुधार न होकर वह स्थाई हो जाता है। कम उम्र के बालकों में मायोतिया का रोग पुस्तक पढ़ने में अधिक समय व्यतीत करने से हो जाता है। शहरों में बहुत से सिनेमा घर रहते हैं इनमें बिजली के प्रकाश द्वारा अनेक प्रकार के दृश्य दिखाये जाते हैं। जिन बालकों अथवा प्रौढ़ व्यक्तियों को सिनेमा देखने की बान पड़ जाती है उन्हें भी प्रायः चश्मे लगाने पड़ते हैं। बिजली के प्रकाश में अधिक देर तक पढ़ने लिखने का काम करने रहते से नेत्र की शक्ति का विनाश होता है।

जिन लोगों की देखने की शक्ति का ह्रास हो गया है उन्हें नेत्र सम्बन्धी विशेष प्रकार के व्यायाम की आवश्यकता है। हेनरी बेंजिम ने इन व्यायामों को भली भांति अपनी उपर्युक्त पुस्तक में दर्शाया है इन व्यायामों का एक लक्ष्य नेत्र सम्बन्धी स्नायुओं में स्फूर्ति उत्पन्न करना होता है। ये व्यायाम मायोपिया के रोगों को दूर करने में विशेषकर लाभ सिद्ध हुए

मायोपिया के रोग में आंख की वे पेशियाँ जो आंख के गोलक के ऊपर अपना नियन्त्रण रखती है और जो आंख की रेटिना को आंख के लेन्स के समीप अथवा दूर बाह्य पदार्थ लाकर योग्य प्रतिमा प्राप्त करने में सहायक होती हैं, अदृश्य हो जाती हैं । जब योग्य व्यायाम के द्वारा गति संचालित की जाती है तो उनकी आंख के गोलक पर नियन्त्रण करने की शक्ति बढ़ जाती है और इस तरह आँख की दर्शन-शक्ति में भी उन्नति होती है । आंख के व्यायाम करते में आंख का मिचमिचाना, पुतली को ऊपर नीचे करना, तिरछे, दायें, बायें देखना, दूर के पदार्थों पर दृष्टि जमाना विशेष लाभकारी होते हैं। इसके अतिरिक्त गर्दन की नसों के व्यायाम से भी आंख की दर्शन शक्ति बढ़ती है। प्राकृतिक चिकित्सा पुस्तक पढ़ने को नहीं रोकती किन्तु नियमित रूप से पढ़ने की आवश्यकता दर्शाती है। जहां तक हो सके पढ़ने लिखने का काम दिन में ही करना चाहिए। मिट्टी के तेल की सहायता से पढ़ने से आँख कमजोर हो जाती है ! पढ़ते समय बीच-बीच में आंख को मिचमिचाना चाहिये और कभी-कभी आँख बंदकर के बैठ जाना चाहिये ।

नेत्र के स्वास्थ्य लाभ का तीसरा उपाय आराम है। हमारे दिन भर के काम करने से हमारी जो शक्ति खर्च होती है उसकी पूर्ति आराम के समय होती है।

यदि मनुष्य को आराम न मिले तो चाहे वह कितना ही अच्छा भोजन क्यों न करे व्यर्थ जाता है। आराम दो प्रकार का होता है एक निद्रा का दूसरा जागरण अवस्था का। कितने ही लोग कई घंटों तक बिस्तर पर पड़े रहने पर भी निद्रा का वास्तविक लाभ नहीं प्राप्त करते । पहले तो उन्हें बहुत देर तक नींद ही नहीं आती और यदि झपकी लग भी जाय तो वे बड़े भयङ्कर स्वप्न देखने लगते हैं। इसका कारण उनके मन में चलते रहने वाले अभद्र विचार और अतिरिक्त वासनायें रहती हैं। भली भांति सोने के लिए इन विचारों और भावनाओं से मुक्त होना आवश्यक है। यदि कोई मनुष्य कोई चिन्ता विचार लेकर सो जाता है तो वह सोकर उठते समय नई स्फूर्ति और आनन्द का अनुभव नहीं करता। मनुष्य जिन विचारों को लेकर सोता है वे उसकी सुप्तावस्था में चलते रहते हैं और मनुष्य का सोकर उठकर प्रसन्नता अथवा खिन्नता का अनुभव करना इन विचारों के गुणों पर निर्भर करता है। आशावादी और सब लोगों के प्रति सद्भावना के विचार लेकर सोना मनुष्य को स्वास्थ्य प्रदान करता है। समस्त शरीर के साथ-साथ नेत्र का स्वास्थ्य भी बढ़ जाता है।

नेत्रों के लिये इसके अतिरिक्त विशेष आराम की भी आवश्यकता होती है । इसके लिये मनुष्य को आंख मूंदकर और सब अंगों को शिथिल करके आराम कुर्सी पर बैठ जाना चाहिये अथवा शवासन में पड़ जाना चाहिये। अपने आँख के सामने आने वाले अन्धकार के ऊपर ही अपने ध्यान को जमाना चाहिये। इस तरह का अभ्यास प्रदि दिन दस-पन्द्रह मिनट दो तीन बार दिन में करने से आंख की ज्योति बढ़ जाती है। हेनरी वेजिबुल महाशय ने इस प्रकार के अभ्यास को बड़ा लाभ कर बताया है।

प्राकृतिक चिकित्सा की सहयोगी मानसिक चिकित्सा है। मनुष्य को क्रोध, ईर्ष्या, शोक और चिन्ता के विचारों से अपने अपको मुक्त करने की चेष्टा करते रहना चाहिये। बुद्ध भगवान ने हमारे मन में आने वाले अभद्र विचारों को को रोकने के लिये सम्यक स्मृति के अभ्यास का मार्ग दर्शाया है। सदा जागरूक होना अभद्र विचारों को मन में आने से रोकने में सहायक होता है। पुराने विचारों के कुसंस्कारों को नष्ट करने के लिये योग-सूत्र में मैत्री-भावना के अभ्यास की महत्ता दर्शायी है। वास्तव में पतंजलि कृति अष्टांग योग मनुष्य के शरीरिक लाभ के लिये, जिसमें नेत्र रोग-से लाभ भी दर्शाया है उतना ही उपयोगी है जितना कि वह तत्व दर्शन के लिये उपयोगी है।

धूप और पाचन क्रिया में बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है। यदि मनुष्य या अन्य किसी प्राणधारी पर प्रति दिन सूर्य-किरणें नहीं पड़तीं तो उसकी पाचन और समीकरण शक्ति क्षीण हो जाती है। —डा० लेविस

जीवन-ज्योति

(डा० पुच्चा वेंकट रमय्या, एन० डी०, संपादक 'प्रकृति' (तेलगू) और 'इन्डियन नेचुरोपैथ' (अंग्रेजी)

सन् १९३७ ई० में कलियुग के कुबेर जान डी राकफेलर (सीनियर) अपनी ९७ साल की उम्र में इस दुनियाँ से विदा हुए थे। सन् १९११ ई० में वे शोथ के शिकार बने थे। डाक्टरों ने उन्हें स्पष्ट कह दिया कि अब आपको कोई भी औषधि नहीं बचा सकती। राकफेलर ने डाक्टरों से प्रार्थना की—"देखिये इतनी सारी संपत्ति का उपभोग न करके यह दुनिया छोड़ जाने को न मेरा मन राजी होता है और न मैं खुद तैयार हूँ। इसलिए आप सब लोग सोच-विचार कर मेरे लिये एक स्वास्थ्य तालिका तैयार कीजिये। उसके अनुसार मैं अपना जीवन बदल लूंगा और अवश्य ही स्वास्थ्य लाभ करूँगा। इस मेहनत के लिए आप सब लोगों को कई लाख रुपये भेंट में दूंगा।"

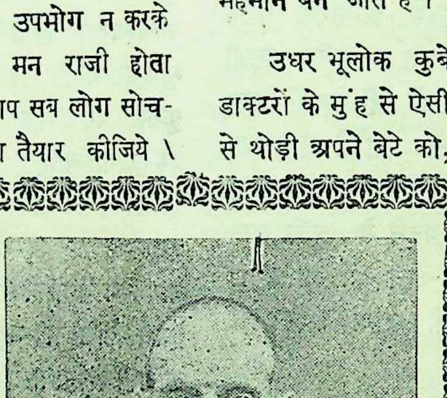

इस पर १० चोटी के डाक्टरों की एक मण्डली बनी और उसने कुछ स्वास्थ्य-नियमों को तैयार किया। वे आराम पर ज्यादा जोर देते थे। इन नियमों का पूरा पूरा पालन करके राकफेलर ने ९७ साल की अपनी पूरी आयु का उपभोग किया।

राकफेलर बचपन में बहुत गरीब थे। अपनी ही मेहनत और पुरुषार्थ से इतनी बड़ी संपत्ति के स्वामी बने। इसमें उन्हें न जाने कितना शारीरिक और मानसिक परिश्रम करना पड़ा। ईसीलिए तो उन्हें आराम की जरूरत हुई थी जिसने उन्हें मौत से बचाया था।

हमारे देश के सेठ-साहुकारों की जरा सुनिये। अगर उनसे कहा जाय कि आप थोड़े दिनों के लिये विश्राम ले लीजिये वरना आपको अतिमूत्र या लकवे के पल्ले पड़ना होगा तो झट से वे कह देते हैं कि अब कहां विश्राम? घड़ी भर के लिये भी मैं दूसरी जगह जाऊँ, तो यह सारा कारोबार तीन-तेरह हो जायगा।

इसके दो चार साल के बाद ही उन महाशय को लकवा मार देता है और बाद को थोड़े ही दिनों में यमराज के मेहमान बन जाते हैं।

उधर भूलोक कुबेर राकफेलर को देखिये जिन्होंने डाक्टरों के मुंह से ऐसी बातें सुनते ही अपनी जायदाद में से थोड़ी अपने बेटे को, थोड़ी अपने पोते को, एक भारी रकम सार्वजनिक संस्थाओं को देकर अपने लिये भी थोड़ी बचा ली थी। उस समय से आखिरी दम तक लौकिक व्यवहारों से छुट्टी लेकर आराम का उपभोग करते रहे। उन्होंने जो आदर्श त्याग किया था, उसका उन्हें उचित फल मिला। व १९११ ई० में ही उनकी जीवन-ज्योति बुझ गई होती।

बर्नार्ड मैकफेडन अपनी १० साल की आयु में ही राजयक्ष्मा के चंगुल में फँसे। डाक्टरों ने मैक्फेन साहब के अभिभावकों से कह दिया कि अब इस बालक की आयु थोड़े ही महीनों के अन्दर समाप्त होने वाली है। आड़ में से मैकफेडन ने डाक्टरों की ये बातें सुन लीं। उन्होंने निश्चय कर लिया कि मैं इतनी जल्दी नहीं मरूंगा। उस दिन से स्वास्थ्य सम्बन्धी जो भी किताब हाथ लगती थी, पढ़ लेते थे। इस प्रकार उन्होंने अपने जीवन का क्रम बना लिया जिसके अनुसार चलकर न केवल दीर्घ-जीवी बने, [illegible] और [illegible]

अपनी ७७ साल की उम्र में भी 'फिजिकल कलचर' में अपने स्वस्थ शरीर के नमूने दे रहे हैं। वे न केवल 'फिजिकल कलचर' बल्कि उसकी श्रेणी के १३ मशहूर अव्वल दर्जे के मासिक-पत्रों, कई साप्ताहिक पत्रों और दो दैनिक पत्रों का चला रहे हैं। ये सब 'बर्नार्ड मैकफेडन कार्पोरेशन' नाम की संस्था की ओर से चल रहे हैं। उस संस्था की सारी पूंजी मैकफेडन साहब की कमाई हुई है।

कारण के बिना कार्य कभी नहीं होता। कार्य-कारण का सम्बन्ध अटूट होता है। कौन कह सकता है कि कोलंदरेड्डी और जगन्नाथ राव नायडू की असामायिक मौत का कारण एलेक्शन नहीं था। बेजवाड़े के पहलवान लक्ष्मण की असमय में ही मौत हो गई है। क्या वह इसलिये कि उसके शरीर में काफी बल नहीं था। मैं पहले भी एक बार लिख चुका हूँ कि पहलवानों को यह भी नहीं मालूम कि स्वास्थ्य के माने क्या है? किस प्रकार के भोजन से बलवान होते हुए भी तन्दुरुस्त रह सकते हैं। वे लोग इतना अभिमान रखते हैं कि खाद्य-अखाद्य के बारे में सुनने को भी तैयार नहीं रहते। माना वे ही सब कुछ जानते हों इसलिये वे लोग जो जी में आवे, खा लेते हैं और खूब हृष्ट पुष्ट होते हैं। बाद को असमय में ही काल के गाल में चले जाते हैं। कलियुग-अभिमन्यु डी० के० नाथ की भी इसी प्रकार मौत हो गई है। मेरे अपने गांव में एक पहलवान रहता था जो मांस कच्चा ही चबा जाता था और गरमागरम लहू पी लेता था। जब गांव में हैजे का दौरा हुआ, तो उसका पहला शिकार वही आदमी बना। यूरोप, अमेरिका आदि देशों में स्वास्थ्य विज्ञान काफी फैला है। वहां पर बहुतेरे पत्र और ग्रंथ ऐसे हैं जिनमें कसरत और भोजन की समुचित चर्चा होती है। अपने यहां ऐसे पत्र और ग्रंथ हैं ही नहीं। यदि कहीं हैं, तो वे लोग अपने शरीर को बलवान बनाने की श्रद्धा नहीं रखते हैं, जो उन्हें पढ़कर समझ सकते हैं एक दूसरा वर्ग है जो आरोग्य-नियमों को जानते हुए भी उनका पालन नहीं करता। इसी वर्ग की एक स्त्री की कहानी आपको सुनाता हूँ।

मेरे नजदीक के एक शहर के बीच में उस स्त्री का मकान है। उसके बाहरी कमरे सभी किराये पर दिये गये हैं। उस स्त्री का मकान उस हिस्से में है जहां पर हवा या धूप नाम को भी नहीं थी। उस बेचारी को हिस्टीरिया और (रक्ताल्पता) की शिकायत थी। ये लोग २५ साल से जल-चिकित्सा और किरण-चिकित्सा जानते हैं। कभी कभी वह मुझसे सलाह लेती भी थी। फिर भी उसकी बीमारी दूर नहीं हुई। एक दिन उसने मुझे बुलाकर पूछा—"भाई जी! आपकी सलाह के अनुसार मैंने मेहन-स्नान किया, कटि-स्नान किया, भाप-स्नान तो कभी भूलती भी नहीं। खान-पान में तो कभी फरक भी नहीं पड़ने देती। फिर मेरी बीमारी जैसी की तैसी है। यह क्यों? क्या मैं किसी दवाई की शरण लूँ?"

मैंने जवाब दिया—प्रिय बहिन! तुम्हारे ऊपर तरस आ रहा है। तुमने मेरी बताई सभी विधियां तो आजमायीं, लेकिन तुम लोग यह मकान छोड़कर शहर के बाहर किसी ऐसी जगह पर जहां अच्छी तरह हवा और धूप लग सकें, जब तक नहीं रहोगे, तब तक तुम्हारी बीमारी ऐसी ही रहेगी। उसने कहा—मकान में हमारा भाग्य चमका है। मेरे घर के ज्योतिषी का तो यह कहना है कि जिस दिन हम लोग यह मकान छोड़ देंगे उसी दिन हम लोग गरीब हो जायेंगे। इस लिये हम लोग इस भूत-गृह को छोड़ने की हिम्मत नहीं करते।

दुनियां में इसी प्रकार कितने ही ऐसे लोग हैं जिन्हें अपनी संपूर्ण आयु को भोगने में कई प्रकार की विघ्न बाधायें आ घेरती हैं।

(क्रमशः)

अनुवादक—चेलसानि कृष्णराव

गरमी के दिनों में प्रातःकाल ठण्डे पानी का स्नान और शाम को गुनगुने पानी का स्नान न केवल शारीरिक स्वच्छता के लिए आवश्यक है बल्कि यह शरीर के लिए लाभदायक और स्नायुओं पर शामक प्रभाव डालनेवाला भी होता है।

लहसुन

श्री रमेश वेदी आयुर्वेदालंकार

भेष बदल कर देवदार के वनों में भीख मांगते हुए शिव ने ऋषि-पत्नियों को गौर से देखा। उस समय तक उनके सन्तान न थी। रोग दूर करने में रुद्रदेव की ख्याति को सुनकर वह उसके पास सन्तान की इच्छा से पहुंचीं। पार्वती ने मुनि-पत्नियों की चिकित्सा अवश्य करने के लिए अपने पतिदेव से अनुरोध किया। देव प्रसन्न हो गये और उन्होंने भद्रकाली उमा से कहा कि इन ऋषि-पत्नियों को बल, रूप और सन्तान देनेवाले, पागलपन, विष और शाप को नष्ट करने वाले, वायु-विकारों के सम्मुख समूहों का विनाश करनेवाले 'महान् गन्ध' का उपचार सब रोगों के नाश के लिए कराओ। जिस तरह पत्थर की रेखा अमिट होती है, मेरा वचन भी वैसा ही समझो। इन्हें सन्तान अवश्य होगी। भगवान का नाम लेने वाली उन देवियों ने तब 'महान् गन्ध' का उपचार किया और उन्हें मन की मुरादें मिल गईं।

महर्षि मरीच कश्यप की इस कथा में बताया हुआ 'महान् गन्ध' उपचार लससुन का कल्प है जिसका विस्तार से वर्णन कश्यप, शोढल, वाग्भट, भावमिश्र आदि चिकित्सकों ने अपने ग्रन्थों में किया है। भारत के प्राचीन चिकित्सकों ने दवा के रूप में लहसुन को बहुत ऊँचा स्थान दिया है। किसी समय वैद्य-समाज में यह इतना सम्मानित था कि वैद्य लोग इसका ठीक उपयोग जान लेने पर चिकित्सा में सदा सफलता की आशा रखते थे। देव, वैद्य और ब्राह्मणों को इष्ट-सिद्धि के लिए इसके प्रयोग की सिफारिश की जाती थी। ब्राह्मणों के लिए विधान था कि दूध, दही और घी में तीन रात रखने के बाद वे लहसुन का इस्तेमाल कर सकते हैं।

चिकित्सा की एलोपैथिक प्रणाली में यह पहले बहुत इस्तेमाल किया जाता था पर अब इसका व्यवहार तना नहीं रहा। आयुर्वेदिक साहित्य में यह श्रेष्ठ रसायन माना गया है। सरदी, हवा, बारिस और पाले से मारे हुये शरीर वालों के लिए टूटे हुए, टेढ़े-मेढ़े, निष्क्रिय तथा वेदनायुक्त हड्डियोंवालों के लिए और वायु से पीड़ित लोगों के लिए यहां हम कश्यप और शोढल आदि चिकित्सकों द्वारा प्रतिपादित लहसुन-कल्प का उल्लेख करते हैं। नाजुक तबियतवालों को कराया जाने वाला यह लहसुन-प्रयोग पहले वात-रोग से आक्रान्त उद्धव को नारद ने करवाया था। ऐसी जनश्रुति है।

शीत और बसन्त ऋतु में, अत्यन्त घने बादलों से घिरी वर्षा ऋतु में और आवश्यकता होने पर ग्रीष्म ऋतु में या सदा ही वायु और कफ के रोगी सामर्थ्यानुसार लहसुन का सेवन करते रह सकते हैं। निर्बल व्यक्ति अपनी शक्ति से अधिक मात्रा में सेवन करेगा तो जलन, दस्त, खाने-पीने में इच्छा न होना, किसी काम में मन न लगना आदि लक्षण प्रकट हो जाते हैं। इसलिए इसके सेवन में जल्दी नहीं करनी चाहिए और मात्रा धीरे-धीरे बढ़ानी चाहिए। लहसुन-कल्प में जो लहसुन लिए जायँ वे पूरी आयु के, पके हुए, सुन्दर और बिना शुद्ध किये ही छिलके उतार कर लिये जाने चाहिए।

कल्प में लहसुन के रस और कल्प को एक महीने सेवन करना काफी होता है। रोगी की अवस्था को देखकर चिकित्सक स्वयं प्रयोग की अवधि को निश्चित करता है। हितकर अन्न पर रहने वाले के लिए छः महीने का प्रयोग प्रशस्त समझा जाता है और पन्द्रह दिन का प्रयोग हीन प्रयोग होता है।

दो हजार साल पहले ताजे लहसुन की सब से छोटी मात्रा बत्तीस तोला थी, मध्यम मात्रा अड़तालीस तोला और अधिकतम मात्रा चौंसठ तोला या अस्सी तोला। ताजे लहसुन न मिलने पर सूखे कन्दों का प्रयोग करना हो तो तुरया की गिनती में सौ, साठ या पचास लिया जाता था। शरीर की अग्नि, समय और अनुकूलता को देखकर साधारणतया मात्रा का निश्चय किया जाता था। रोगी को खाने में उत्साह हो तो जब तक वह मूर्छित न हो जाय तब तक उसे खिलाते जाते थे।

तेज अग्निवाला, शान्त मनवाला, धैर्यवान्, सुखी पुरुष प्रचण्ड वायु से रहित कमरे में रहता हुआ पुण्य दिन में लहसुन-प्रयोग आरम्भ करे। सरदी से बचने के लिए उसके पास हिरण या बाघ की खालों के कम्बल, कपास की रजाई और रेशमी कपड़े आवश्यकतानुसार काफी होने चाहिए। इन निर्मल वस्त्रों को अगर की धूनी दे देनी चाहिए। कमरे की हवा को स्वच्छ रखने के लिए धूप जलती हो। सुगन्धवाले द्रव्यों से बनाये डस्टिंग पाउडर को उसके शरीर पर मलना चाहिए। वह नंगे पैर न रहे।

लहसुन लाने का काम एक नौकर के जिम्मे हो और उन्हें खाने के लिए ठीक करने का दूसरे के जिम्मे। पत्तों को फेंक दें, तुरियाँ और नाल लें। कुण्डी सोटे में रगड़ कर और खूब घी मिलाकर खिला दें। लहसुन सेवन कराने के बहुत से तरीकों का वर्णन मिलता है जिन में से कुछ विधियां यहां हम संक्षेप में देते हैं—सिल-बट्टे पर रगड़े हुए लहसुन में समान भाग घी मिला कर घी वाली हांडी में खूब मथ लें। दस दिन रखा रहने देने के बाद इसे अकेला या दूध के साथ खिलाएँ अथवा सिल-बट्टे पर पीस कर घी मिलाएँ इसमें खूब सारा लस्सन का रस मिला कर पतला कर लें। इस अत्यन्त वीर्यवान् योग को कोसे पानी के साथ खिलाएँ।

आठ सेर तुरियों को कुचल कर बत्तीस सेर पानी में भिगो दें और साठ दिन में पकनेवाले धानों के ढेर में दबा दें। कश्यप बताते हैं कि जितने साल तक मनुष्य इसका सेवन करता है उतने ही सौ साल तक वह रोग-रहित होकर अमर के समान जीवित रहता है। साँप जिस तरह केंचुली उतारता है, उसी तरह वह समय-समय पर अपनी पुरानी खाल उतारता रहता है जिससे उसकी खाल सदा नई बनी रहती है।

आध पाव छिले हुए लहसुन को रगड़ कर बारीक कर ले। इसमें पाव भर घी मिलाएँ इसमें से थोड़ा सा लेकर शहद के साथ चाट जाया करें। और ऊपर से दूध पी लिया करें। साल तक इसे खायें और दूध चावल के पथ्य पर रहें। यह प्रयोग भी सब रोगों को दूर करनेवाला है और सेवन करनेवाले को सौ साल तक जीवित रखता है। जो कच्चा लहसुन न खा सकें वे घी में भूनकर खा लें।

चिन्ता, दिन में सोना और कठोर दातुन का परित्याग कर देनेवाला पुरुष भोजन पच जाने पर सुबह सुखपूर्वक उठे, कल्याणकारी मन्त्रों का पाठ करे और तब बैठ कर लहसुन खाये। सदा गरम पानी पिए।

धनियों के लिए 'महान् गन्ध' नाम की विधि से लहसुन के प्रयोग का उपदेश करते हुए कश्यप बताते हैं कि प्रयोग करनेवाला युक्तिपूर्वक लहसुन खाये। लहसुन का मुकुट बनाकर धारण करे। सिर, कान, गले, हाथ और पैरों में लहसुन की मालाएँ पहने। ऊपर ओढ़ने के कम्बल में लहसुन सीए हुए हों। नीचे बिस्तर की चादर में और बैठने के आसन में लहसुन रखे रहें। घर के दरवाजों पर और रात को जिस खुले मकान में बैठकर चाँदनी का आनन्द भोगा जाता है उस चन्द्रशाला के दरवाजों पर भी लहसुन की मालाएँ लटका दें। घर के फर्श पर जगह जगह लहसुन के कन्द बिखेर दें। उस घर के अन्दर जो रहते हैं, जैसे औरतें, भाई के बच्चे, नौकर, नौकरानियाँ, उन सबको ही अपनी ही तरह लहसुनवान् कर दें। खाने पीने की हर चीज में लहसुन पड़ा हो। मन बहलाव के लिए गवैयों और रोगियों से मन को प्रिय लगनेवाले साजों पर गीत सुनें। नटों, पहलवानों और नेज़ेमारों के करतब देखें। गन्धमाल्य और खानपान जैसा दिल करे वैसा करें। इस 'महान् गन्ध' उपचार को देखकर वायु के रोग तो दरवाजे से ही लौट जाते हैं।

अमृत से उत्पन्न लहसुनों की रसायन को सेवन करने से स्रोतों क शुद्धि होती है, मुख की निरसता हटकर मुख सुगन्धित होता है, शरीर कोमल बनता है, बाल बढ़ते हैं, आयु स्थिर होती है, दाँत, मसूड़े, नाखून तथा बाल स्वस्थ रहते हैं और रङ्ग निखरता है। लहसुन खानेवाला आयुष्मान् और बलवान् होता है। उसी की अग्नि दीप्त होती है। स्वर ठीक होकर वाणी मधुर होती है, बुद्धि बढ़ती है, शरीर में शक्ति आती है और शरीर सुन्दर हो जाता है। इस प्रकार रूप और गुण से युक्त स्त्री-पुरुषों के जननेन्द्रिय सम्बन्धी दोष दूर होते हैं और सन्तान-प्राप्ति की इच्छा पूर्ण होती है।

[शेष पृष्ठ १९५ पर]

गठिया

लेखक—विट्ठलदास मोदी संचालक, आरोग्य मंदिर, गोरखपुर

मोदी जी स्वयं एक कुशल एवं अनुभवी प्राकृतिक चिकित्सिक हैं। अतः उनके इस अनुभवपूर्ण लेख की उपयोगिता के सम्बन्ध में कुछ विशेष कहने की आवश्यकता नहीं। गठिया जैसे कष्टदायक रोग का उन्होंने जो सही और साथ ही आसान उपचार बताया है उससे गठिया के निराश रोगी अन्धकार में प्रकाश की झलक देख सकते हैं। —सं०]

शरीर में पोषण पहुँचाने का एक ही द्वार है मुख; लेकिन शरीर के उपयोग के बाद भोजन के बचे भाग और शरीर यंत्र के परिचालन से जो कचरा उत्पन्न होता है उसे निकालने के लिए चार द्वार हैं मल, मूत्र, स्वेद, मार्ग एव नासिका जिसके द्वारा शुद्ध वायु अंदर जाती है और रक्त की गंदगी लेकर बाहर आती है। जब ये मार्ग शरीर की पूरी पूरी सफाई नहीं कर पाते तो रक्त धीरे धीरे बची गंदगी से लद जाता है। रक्त की शुद्धता पर ही जीवन निर्भर है। अतः हमारे जीवन रक्षा के हेतु दयालु प्रकृति इस गंदगी को जुकाम, अतिसार, ज्वर आदि नवीन रोग पैदा करके तेजी से निकालने की कोशिश करती है। पर बहुधा मनुष्य प्रकृति के इस सदय प्रयास को न समझ कर शरीर से निकलती गंदगी का दवा आदि का प्रयोग कर रोकने की कोशिश करता है और बहुधा सफल भी होता है। तब प्रकृति जहाँ तक बन सके हम जीवित रखने के लिए उस गंदगी को शरीर के दुर्बल अंगों में इकट्ठा कर देती है इस प्रकार तीव्र रोगों को दबा कर हम जीर्णरोगों के चंगुल में फंसते हैं। यही गंदगी जब जोड़ों में जमा कर दी जाती है तब जीर्णरोग गठिया का प्रादुर्भाव होता है। यह तो सभी ने देखा होगा कि गठिया का रोग कभी एकाएक नहीं होता उसके पहले अनेक तीव्र रोगों की शृंखला रहती है। गठिया भी जब शुरू में आती है तो अकेली नहीं आती उसके साथ ज्वर अवश्य रहता है। यदि उस समय भी उपवास, एनिमा आदि प्राकृतिक साधनों का सहारा लिया जाय तो ज्वर जाने के साथ साथ गठिया भी चली जाय।

आखिर शरीर में इतनी गंदगी इकट्ठी ही क्यों होती है जिसे मलद्वार पूरी तरह निकाल नहीं पाते और रोगोत्पत्ति का कारण होती है। इसका प्रधान कारण है हमारा भोजन। हमारा रक्त क्षार प्रधान है। रक्त में क्षार की यह प्रधानता तभी बनी रहती है जब हमारा भोजन क्षार प्रधान हो पर इसके विपरीत जब हमारे भोजन में अम्लकारण खाद्यों, छटा चावल, चोकर निकाला आटा, सफेद चीनी, दालें, मांस, अंडा, मिर्च मसाले, खटाई आदि की अधिकता रहती है और क्षार पैदा करने वाले खाद्य, फल और तरकारियों, की मात्रा आधे से भी कम रहती है तब रक्त में क्षार तत्वों का अभाव होना स्वाभाविक ही है।

डाक्टर और वैद्य

इस साधारण से कार्य और कारण को न समझ कर कर डाक्टर और वैद्य गठिया की चिकित्सा करते वक्त अंधेरे में ढेला फेंका करते हैं। भोजन और रोग के इस वैज्ञानिक संबंध को ये कितना कम समझते हैं उसका इसी से पता चलता है कि वे गठिया के रोगी के लिए फल की मनाही कर देते हैं और तरकारियाँ भी बहुत कम खाने को देते हैं। वे अमुक खाद्य के ठण्डे और अमुक के गरम तासीर के होने के झूठे हौवे से डरे रहते हैं। क्षारमय खाद्य, फल तरकारियाँ, तो खास तौर से ठण्डे तासीर के माने जाते हैं फिर वे गठिया के रोगी को उन्हें भला कैसे दे सकते हैं!

क्षार अम्लता के प्रभाव को मिटाते हैं। क्षार के शरीर में कम पहुंचने पर अम्लता शरीर की अस्थियों की ओर आकर्षित होती है क्योंकि अस्थियां अधिकतर चूने (कैलशियम) की बनी होती हैं जो क्षारीय होता है, पर अस्थियों का क्षार अलग तो हो नहीं पाता अतः यह अम्लता उन्हीं पर चिपक जाती है। जिससे जोड़ों में हिलने में दर्द और

कठिनाई होती है। इसी कठिनाई को गठिया का नाम मिलता है। अम्लता के बढ़ने को साधारण जनता में यूरिक एसिड की वृद्धि कहा जाता है। अक्सर डाक्टर भी रोग का कारण बताते वक्त इस शब्द का प्रयोग करते हैं।

दांत और टांसिल

डाक्टर यह मान चुके हैं कि उनके पास गठिया रोग की कोई पुरअसर दवा नहीं है पर रोगी को कोई राहत नहीं मिलती तो उसे अपने सारे दांत निकलवा देने की राय देते हैं और टांसिल कटवा देने की। मैंने कई युवकों के स्वस्थ सुन्दर दांत उखड़े देखे हैं पर उनके डाक्टर उनकी गठिया उखाड़ने में जरा भी सफलता नहीं पाते हैं। टांसिल काट देने का तो जैसे डाक्टरों को खब्त सा रहता है वे गठिया में ही नहीं कितने ही रोगों में इन्हें काट देते हैं पर लाभ शायद ही कभी कुछ होता हो। यदि गठिया की समुचित चिकित्सा की जाय तो दांत निकलवाने की जरूरत न हो न टांसिल कटवाने की। यदि वे बढ़ भी गए होंगे तो सचमुच चिकित्सा द्वारा गठिया जाने के साथ वे भी चले जायंगे।

चिकित्सा

गठिया जाय, इसके लिए आवश्यक है कि शरीर से मल तेजी से निकले। नित्य पैदा होने वाला मल तो शरीर में रहे ही नहीं इकठा मल भी निकलता चले, इसके लिए रोगी के मल मूत्र स्वेदन मार्गों को अपना काम समुचित रूप से संपादन करने की ओर अग्रसर करना चाहिए। रोगी हर समय स्वच्छ वायु में रहे ताकि रक्त को सचमुच ओषजन प्राप्त हो और वह शुद्ध हो। बदबू, धुयें से भरी कमरे की गन्दी हवा रक्त को साफ करने के बजाय गन्दा करती है। अतः रोगी के लिये पहला नियम यह है कि वह अधिक से अधिक समय बाहर खुली जगह में रहे और खुली जगह में सोये भी।

पेशाब के साथ कितनी गन्दगी निकलती है यह बहुत कम लोग जानते हैं। और यह गन्दगी जो कम पानी पीते हैं उनके शरीर में इकठा होती रहती है। उन्हे एक दूसरा नुकसान यह भी होता है कि इसकी वजह से उन्हें कब्ज भी होने लगता है। गठिया के रोगी को गरमी के दिनों में तो और अधिक पर जाड़े के दिनों में उसे डेढ़ दो सेर पानी जरूर पीना चाहिए। अच्छा हो कि सबेरे और शाम गरम पानी में कागजी नीबू का रस निचोड़ कर पिया जाय। केवल इसी प्रयोग से कई लोगों की गठिया चली गई है।

त्वचा ठीक काम करे इसके लिए आवश्यक है कि रोमकूप खुले रहें। इसके लिए नित्य के स्नान से भी अधिक लाभदायक है त्वचा को तलहटी से या किसी तौलिए से खूब रगड़ना। इसका यह अर्थ यह नहीं है कि स्नान न किया जाय। स्नान जरूर किया जाय पर स्नान के पहले यह क्रिया करके लाभ को बढ़ाया जा सकता है। रगड़ने से शरीर को गरम हो जाने के कारण ठण्डे पानी से नहाना भी आनन्ददायक प्रतीत होगा। यदि रोगी कमजोर अथवा जोड़ों में इतना दर्द हो कि हाथ पैर चलाना कठिन हो तो इस क्रिया में दूसरे से भी मदद ली जा सकती है। गठिया के रोगी जो गरम पानी से नहाने के आदी हो गए हों इस क्रिया के सहारे ठण्डे पानी के स्नान का लाभ एवं आनन्द ले सकते हैं। क्योंकि रगडने से शरीर गरम हो जाता है और उसके बाद नहाना बहुत सुहाता है। जो रोगी बहुत कमजोर हो वे ठण्डे पानी में थोड़ा गरम पानी मिला कर उसकी ठंडक मार दे सकते है।

त्वचा से तेजी से काम कराने का एक उत्तम साधन है स्वेदन। गठिया के लिए इसके उपयोग की सिफारिश आयुर्वेद में भी मिलती है। स्वेदन का एक सरल रूप धूप स्नान है। इसके लिए खुले बदन कुछ देर तक धूप में रहना चाहिए। सिर पानी से भीगे तौलिये से ढका रहे। पसीना पन्द्रह बीस मिनट में आ जायगा। आध घंटे से अधिक धूप में रहने की जरूरत नहीं है। कई रोगियों को शुरू में पसीना नहीं या कम निकलने पर तीन बार महीने के बाद उन्हें भी पसीना आने लगेगा। धूप-नहान समाप्त करने के बाद ठण्डे पानी से नहा डालना चाहिए या कम से कम गीले तौलिए से बदन को पोछ कर साफ कर लेना चाहिए। यह स्नान प्रति सप्ताह दो तीन चार से ज्यादा लेने की जरूरत नहीं है।

मल मार्ग ठीक काम करे इसके लिए भोजन ऐसा हो जो न आँतों में न रुके न चिपके। इसके लिए भोजन में फल तरकारियों की मात्रा पचहत्तर प्रतिशत से भी अधिक रहना

चाहिए। जिन अन्नों का उपयोग किया जाय उनके छिलके न अलग किए जायँ न आटे से चोकर निकाला जाय न चावल का कन छाटा जाय। पर आँते काम करते करते इतनी थक गई होती हैं कि उन्हें बिना कुछ दिन आराम दिये उनसे यह आशा नहीं की जा सकती कि वे अच्छी तरह काम देंगी। इसके लिए अच्छा हो कि चिकित्सारंभ में ही दो चार दिन केवल फलों का रस या पानी पीकर ही रहा जाय। इससे आंतों को काम से फुरसत तो मिलेगी ही, उनमें इकट्ठा पुराना मल भी निकल जायगा।

अब हम चिकित्सा के प्रधान साधन भोजन पर आते हैं। पाठक यह जान ही चुके हैं कि अम्लकारक खाद्य गठिया के प्रधान कारण हैं, अतः गठिया के रोगी को शुरू में कुछ दिन ऐसे खाद्यों का त्याग कर केवल क्षारमय खाद्यों का ही उपयोग करना चाहिए। इसके लिये सभी तरह के फल, खासतौर से शंतरा, मौसम्बी, चकोतरा अन्नास, रसभरी सेब नासपाती उपयोगी हैं। तरकारियों में परवल, लौकी नेनुआ, पातगोभी, टमाटर हर तरह की पत्तीदार भाजियाँ लाभ दायक हैं। अच्छा हो सेब नासपाती के फलों को छीला न जाय और तरकारियों में कम से कम मसाले का उपयोग हो।

गठिया की कई दशायें होती हैं। कई रोगियों के कुछ जोड़ों में ही कभी कभी दर्द आता है, कुछ के कुछ जोड़ों में हमेंशा दर्द बना रहता है और कुछ रोगी ऐसे होते हैं जो दर्द के कारण खाट नहीं छोड़ पाते हैं। जिन पर जनता ही रोग का आक्रमण हो चुका होगा उन्हें उतना ही अधिक फल-तरकारियों का सहारा लेना होगा। आरंभ में सभी प्रकार के रोगियों को एक से चार दिन तक केवल फल या तरकारियाँ यां अदल बदल कर दोनों के रस पर या सिर्फ पानी पीकर रहना चाहिए। यदि केवल पानी के सहारे उपवास किया जाय तो उसके बाद एक दो दिन फल तरकारियों के रस पर जरूर रहा जाय। फिर दूसरे दिन सबेरे शाम रस लें और दोपहर को कोई रसीला फल या पतली तरकारी। तीसरे दिन सबेरे दोपहर तीनों बक्त फल लें। फल एक बार में एक ही प्रकार का लें। चाहे तो तीनों वक्त एक ही प्रकार का फल ले अथवा दोपहर को दूसरा और शाम को तीसरा। फलों में शंतरा गठिया के लिए विशेष लाभदायक है। उसका जहाँ तक बन सके ज्यादा से ज्यादा उपयोग करना चाहिए। फलाहार दिन में तीन बार से अधिक न किया जाय। दो आहारों के बीच में पांच पांच घण्टे का अन्तर जरूर रहे। पांच चार दिन फल पर रहने के बाद फलों के साथ दूध लेने लग जाना चाहिए। आरंभ में फलों के साथ प्रत्येक बार पाव पाव भर लिया जाय फिर धीरे धीरे बढ़ा कर यह आध आध सेर की मात्रा में लिया जा सकता है। दूध सबेरे शाम कच्चा ही लिया जाय। दोपहर को ताजा न मिले तो सबेरे गरम करके रखा हुआ ले सकते हैं।

इस तरह शक्ति के अनुसार दस से पन्द्रह दिन तक उपवास, रसाहार, फलाहार, एवं दूध पर रह लेने के बाद दोपहर को फल दूध के बजाय कच्ची और पकी हुई तरकारियाँ तथा थोड़ी रोटी शुरू की जाय। आलू से भी रोटी का काम निकलता है और गेहूं की बनिस्बत आलू में ज्यादा क्षार है, अतः जिनसे बन सके वे रोटी के पहले आलू का ही व्यवहार करें। रोटी दो छटांक आटे से ज्यादा की न हो। उसके बदले पाव, डेढ़ पाव आलू का उपयोग हो सकता है।

भोजन के इस क्रम के साथ साथ रोगी स्वेद, मल एवं मूत्र मार्ग के सफाई का समुचित लाभ लेकर स्वास्थ्य के मार्ग पर तेजी से बढ़ सकता है। लाभ शीघ्र प्राप्त करने के लिए रसाहार एवं फलाहार का क्रम प्रतिमास दुहराते रहना चाहिए।

इसके अलावा कभी कभी जोड़ों में ऐसी पीड़ा होने लगती है कि उसे कम करना आवश्यक हो जाता है। इसके लिए जोड़ों को गरम पानी से भीगे कपड़े से सेकना चाहिए। सेर गरम पानी पीछे एक छटांक साधारण नमक मिला कर लाभ शीघ्र प्राप्त किया जा सकता है। गरम सेक के बाद सेके स्थान हमेशा ठण्डे पानी से धो देना चाहिए। जिनके हमेशा धीमा धीमा दर्द बना रहता है वे उस पर कच्चे आलू पीस कर बाँध सकते हैं। पट्टी रात को बाँध सबेरे खोली जा सकती है या दिन में तीन चार घन्टे तक लगातार बंधी रह सकती है।

ऊपर बताये कार्यक्रम पर चलकर कितने ही गठिया के निराश रोगियों ने अपने रोग से मुक्ति पाई है। रोग जाने के साथ साथ और भी ऐसे अनेक रोग चले गए हैं जो लम्बे अरसे से उनके साथ रहे हैं और स्वास्थ्य बहुत उन्नत हो गया है।

माता का उत्तरदायित्व

श्री ब्रजमोहन मिहिर

आज के बालक में राष्ट्र के भविष्य का सच्चा स्वरूप निहित है, इस दृष्टि से शिशु-संरक्षण की समस्या देश के अभ्युत्थान के लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण एवं चिन्तनीय है। बालक स्वतः अपने माता पिता के शारीरिक, मानसिक एवं बौद्धिक पहलू का जीता जागता प्रतीक होता है। अतः कहना न होता कि कौटुम्बिक, सामाजिक तथा राष्ट्रीय विकास के हेतु बालक के पालन-पोषण की समुचित व्यवस्था आरम्भ ही से अनिवार्य रूप से आवश्यक है। किन्तु यहाँ पर एक बात उल्लेखनीय है। वह यह कि शिशु के समुचित शारीरिक एवं मानसिक विकास की नींव गर्भावस्था में ही पड़ती है, जिसका उत्तरदायित्व सबसे अधिक माता पर ही होता है। पिता की जिम्मेदारी तो तब से शुरू होती है जब से बालक अपनी माता की गोद छो कर धरती पर अपने पांव खड़ा होता है।

मिहिर जी एक अच्छे विचारक हैं। आपने इस लेख में माता के इस महान् उत्तरदायित्व की ओर संकेत किया है, कुछ सुझाव भी इसमें हैं जो विचारणीय हैं। यह लेख आपकी शिशु-स्वास्थ्य सम्बन्धी एक उपयोगी पुस्तक का एक अंश है। आशा है, इसका समुचित स्वागत होगा। —सं०]

बच्चे का जन्म हो जाने पर ही उसका जीवन आरम्भ नहीं होता बल्कि जब से बच्चा माता के गर्भ में आता है तभी से उसका जीवन आरम्भ हो जाता है। गर्भ-काल का जीवन बच्चे के जीवन का एक अल्प-भाग होता है लेकिन बहुत ही महत्वपूर्ण। जैसे विशाल भवन का अस्तित्व और उसकी दृढ़ता भवन की नींव के ऊपर निर्भर करती है उसी प्रकार मनुष्य का सम्पूर्ण जीवन गर्भ-काल के और जन्म लेने के बाद के आरम्भिक कुछ वर्ष के जीवन पर निर्भर करता है। बच्चे के उत्पन्न हो जाने पर जब कोई कठिन शारीरिक व्याधि उत्पन्न होती है या बच्चे का मानसिक स्नायु दुर्बल जान पड़ता है तो अक्सर यह कहते सुना जाता है कि यह पैतृक व्याधि है। इसका अच्छा होना कठिन ही है। अतः गर्भ-काल में माता को अपने प्रत्येक शारीरिक तथा मानसिक उपकरणों और कार्यों के बारे में पूरी तौर से ध्यान देना चाहिए। केवल माता ही नहीं बल्कि पिता को भी अपने विचार और चरित्र पर पूर्ण दृष्टि रखनी चाहिए। क्योंकि माता और पिता दोनों के विचारवान स्वस्थ और चरित्रवान होने पर ही भावी सन्तान विचारवान, स्वस्थ और सुन्दर हो सकती है। यह कहना शायद गलत न होगा कि हमारे यहाँ मातृत्व की शिक्षा का आरम्भ ही नहीं हुआ है। अन्य शिक्षित देशों में प्रायः वे ही स्त्रियाँ दामपत्य जीवन में प्रवेश करती हैं जो अपने को इसके पूर्ण योग्य बना लेती हैं। इस सम्बन्ध में वहाँ काफी अच्छा साहित्य और शिक्षणालय भी हैं। पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लेने तथा विवाहोचित अवस्था की हो जाने पर जो स्त्रियाँ दाम्पत्य जीवन में प्रवेश करती है वे योग्यता पूर्वक और पूरी जिम्मेदरी के साथ इस महान उत्तरदायित्व की वहन करती हैं। एक सुयोग्य एवं अपने उत्तरदायित्व के प्रति पूर्णतया जागरूक परिवार की देख रेख में बच्चा पलता है। इसके अतिरिक्त वहाँ की सरकार भी बच्चों की रक्षा तथा उसके स्वास्थ्य और शिक्षा पर काफी धन व्यय करती है। उन देशों में केवल छोटे बालकोंके विकास के लिए किंडर गार्टेन स्कूल, उनको आराम से रखने के लिए शिशु गृह और उनकी चिकित्सा के लिए अनेक उपचारगृह हैं। इस प्रकार सरकार के पूर्ण प्रश्रय और अभिभावकों के निपुण निरीक्षण और लालन-पालन के फल स्वरूप वहाँ पर शिशुओं की मृत्यु संख्या इस देश की तुलना में कहीं कम है।

उचित वातावरण में पलने के कारण उनका

स्वाभाविक विकास होता है। वे सुन्दर, स्वस्थ और सौम्य होते हैं। और वयस्क होने पर वही सुयोग्य एवं विचार पूर्ण नागरिक बनते हैं।

अतः उत्पन्न होने के पूर्व और बाद में भी शिशु-जीवन की कभी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। एक निरीह प्राणी क भांति उनके साथ कभी व्यवहार न करें, आज का ही शिशु आनेवाले कल का देश निर्माता बन सकता है। गान्धी के शिशु-जीवन में कौन जानता था कि वह भारत वर्ष की राजनीति में एक नये जीवन का संचार करेंगे और संसार के सामने एक नये पथ का प्रदर्शन कर विश्व वंद्य बन जायंगे। किसी के प्रारम्भिक शिशु-जीवन से हमें इस बात का सम्यक ज्ञान नहीं हो सकता कि आगे चलकर वह कितना बड़ा वैज्ञानिक, दार्शनिक अथवा लेखक बन सकता है। किन्तु इतना तो जान ही लेना चाहिये कि शिशु ही समाज और राष्ट्र का जीवन है। इसलिए माताओं को भली प्रकार समझ लेना चाहिए कि वे भी मनुष्य जीवन को अमोघ शक्ति देती हैं। जबकि उनके हाथ में इतना बड़ा काम है तो उन्हें सजग होकर अपनी जिम्मेदारी को समझना चाहिए, ताकि और भी अच्छे ढंग पर वे शिशु के अन्दर अपनी शक्तियों को जाग्रत् कर सकें। माता के सिवाय बच्चे की इच्छाओं को, उसके हृदय में छिपी हुई अनन्त शक्तियों को जगत् में कोई नहीं समझ सकता। बच्चा संसार में जो कुछ भी बनता हैं केवल माता की सहायता से ही बनता है। माता से बढ़कर बच्चे की सहायता भी कोई नहीं कर सकता, और न उन्हें कोई बलवान ही बना सकता है। केवल माता ही बच्चे के हृदय को ज्ञान से आलोकित कर सकती है।

राष्ट्र-निर्माण में माता का स्थान सर्व प्रथम और सर्वश्रेष्ठ है। बड़े से बड़े व्यक्ति का त्याग माता के त्याग के सामने कुछ नहीं है। संसार के सभी व्यक्तियों ने इसे स्वीकार किया है। शिशु के रूप में माता के ही अच्छे दान से राष्ट्र कर निर्माण होता है। प्रत्येक देश ने इस उच्च सिद्धान्त को समझ लिया है। पच्छिमी देशों में प्रत्येक माता अपने को समान और राष्ट्र का सर्वोच्च अंग समझती है। शिशु को उत्पन्न करना ही वह अपना कर्त्तव्य ही नहीं समझती बल्कि शिशु को उत्पन्न करके सावधानी से उसका पालन पोषण करना और उसे एक नागरिक बनाना भी अपना सबसे महान कर्म समझती है।

पश्चिमी देशों की स्त्रियां आम तौर पर कहती हैं कि कार्य के भार को समझे बिना मातृ पथ को स्वीकार करना उसके गौरव को बढ़ाना नहीं बल्कि घटाना है। उन स्त्रियों को भी बोझ ही समझना चाहिए जिनके निकम्मी सन्तान उत्पन्न होती है या उत्पन्न होकर मर जाती हैं।

यूरोप, अमेरिका, रूस आदि देश आज क्यों सुखी हैं, संसार के बीच आज क्यों उनका मस्तक ऊंचा है, वे क्यों गौरवान्वित हैं? केवल इसी लिए कि वहां का स्त्री-समाज अपने नवजात शिशुओं की महत्ता को समझता है और उन्हें संसार में योग्य नागरिक बनाने का प्रयत्न करता है। जैसे किसी पुस्तकालय में अनेक विषयों की पुस्तकें होती है वैसे ही माता के मस्तिष्क में शिशु के हित के लिए अनेक बातें होती हैं। वह अपने सारे ज्ञान भंडार को खोल देती है। शिशु को उन्नति शील बनाने के लिए वह कुछ उठा नहीं रखती। यही कारण है कि उन दशों में संसार के प्रत्येक क्षेत्र में पंडित और विशेषज्ञ मिलते हैं। अपने कार्य में कितने तत्पर, अध्यवसायी और कार्य कुशल होते हैं। व्यक्ति को सब प्रकार से विकासोन्मख बनाने का श्रेय केवल माता को ही है। माता की श्रेष्ठता ही आनेवाले कल के व्यक्ति की श्रेष्ठता का कारण बनती है। बच्चों के पालन-पोषण और उनकी शिक्षा के बारे में आज भी यहां नित्य-प्राप्त नए-नए अन्वेषण हो रहे हैं। किसी विषय में सफलता प्राप्त करके उन्हें सन्तोष नहीं हो जाता बल्कि वे उस विषय में और अधिक अनुभव प्राप्त करने के लिए सदा प्रयत्नशील रहते हैं। हम लोगों को भी उनके इस गुण को अपनाना चाहिए। भारत का समाज भी उसी समय उन्नतिशील होगा जब यहां की स्त्रियां भी अपने उत्तरदायित्व का पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लेगा। प्रत्येक स्त्री-पुरुष को पूर्ण सचेत होना चाहिए कि इन गुणों का विकास करने के लिए उनको किनकिन उपायों को कार्य में लाना होगा। राष्ट्र में जागरूकता लाने के लिए जबतक स्त्री-समाज की उन्नति नहीं होती तबतक कोई बात सम्भव नहीं हो सकती। माता शिशु के जीवन की कैमरा है।

बुड्ढे बच्चे

श्री कन्हैया लाल सहल एम०ए०, अध्यक्ष हिन्दी- संस्कृत विभाग, बिड़ला कालेज, पिलानी।

(१)

कुछ मनुष्य ऐसे होते हैं जो वयस्क होने पर भी बचपन को साथ लिये रहते हैं। मेरे एक मित्र हैं जिनमें कष्ट झेलने का माद्दा है ही नहीं। जरा-सी कहीं चोट आजाय तो दूसरों को दिखलाते फिरेंगे, कहीं खरोंच भी लग जाय तो आप चाहेंगे कि दूसरे उनके साथ सहानुभूति प्रदर्शित करें। यदि कहीं से सहानुभूति सूचक पत्र अथवा तार मिल जाय तब तो आप बांसों उछल पड़ेंगे। एक बार हजरत सिल्ली पर उस्तरे की धार बना रहे थे, आपका ध्यान कहीं दूसरी ओर था—उस्तरा अनामिका के बीच से निकल गया। लोहू की धारा बह निकली। वैद्य डाक्टरों को घर पर इकट्ठा कर लिया। महीने भर इलाज चलता रहा। अँगुली अच्छी हो गई तब भी आप उसके कुछ दिनो तक केवल इसलिए पट्टी बांधे रहे कि ऐसा करने से उनके मित्रों की सहानुभूति उनको अनायास मिल जायगी। अब उस घटना के हुए महीनों बीत गये हैं और अँगुली भी बिल्कुल ठीक हो गई है फिर भी आप कहते हैं—मेरी अँगुली विकृत हो गई, उसके अन्दर पड़ी हुई रेखा उसको दूसरी अँगुलियों के एकरूप नहीं होने देती। आपकी अवस्था ३० से ऊपर हो चुकी है किन्तु आप बच्चे की तरह हर बात के लिये दूसरों पर निर्भर रहते हैं। किन्तु यदि आपके मित्र अथवा सम्बन्धी कभी बीमार हो जाते हैं तो आप उनके प्रति तनिक भी सहानुभूति नहीं दिखलाते, कभी उनके घर नहीं जाते। जब मैं कहता हूँ कि यार बड़े भाग्यशाली हो, तुम्हें न जाने क्योंकर सबकी सहायता अथवा सहानुभूति मिल जाती है तो आप प्रफुल्लित हो उठते हैं किन्तु जब 'बुड्ढा' बच्चा कहकर मैं उनको बनाने लगता हूँ तब आप आंख दिखाने लगते हैं।

(२)

जब तक बच्चा माता के गर्भ में रहता है, उसकी आवश्यकताएँ अपने आप पूरी होती रहती हैं। पैदा होने पर माता-पिता उसकी देख-रेख करते रहते हैं। आसपास किसी भी प्रकार की गड़बड़ी होने पर वह चिल्ला कर अथवा और किसी तरह माता-पिता का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर लेता है। इससे यह स्पष्ट है कि बच्चा अपनी आवश्कताओं पूर्ति के लिये दूसरों का मोहताज रहता है, अपने आप कुछ नहीं कर पाता। यह परमुखापेक्षिता बच्चे की एक विशेषता है। किन्तु हैरान हो गया मैं एक रईस के २० वर्षीय युवक की हरकतों को देखकर। एक बार मोटर में बैठकर उसे बाहर जाना था। उसे गोद में लेकर मोटर में बिठलाया गयः। वह पंगु नहीं था किन्तु माता-पिता के अत्यधिक लाड़ चाव के कारण वह २० वर्ष का होने पर भी बच्चा ही बना रहा। वह तो सच्चे अर्थ में बच्चा था। जैसे किसी वस्तु के लिए बच्चा अधीर हो उठता है, उसी प्रकार किसी चीज के लिए वह बच्चों की तरह मचलता था, चिल्लाता था। उसकी हरकतें तो सचमुच बच्चों जैसी थी। कुछ वर्षों बाद उसमें इस प्रकार की हीन-ग्रन्थियां बन गईं जिनके कारण उसे उन्माद का शिकार होना पड़ा। सच्ची शिक्षा का काम है कि वह बालक की परमुखापेक्षिता दूर कर उसे आत्म-निर्भरता का पाठ सिखाये।

(३)

एक बार एक कबूतर छत पर से उड़ता हुआ गया। मैंने एक बच्चे को दिखला कर कहा—देखो, कबूतर उड़ रहा है। बच्चे ने कहा--कबूतर नहीं, कमेड़ी (पंडुकी) है। मैंने जरा तैश में आकर कहा--कैसी कमेड़ी है जी! सुनते ही बच्चा रूठ गया और उसने मुंह फुला लिया। बच्चा जो कहे उसे मान लीजिये नहीं तो वह तुरन्त रूठ जायगा। मेरे एक अहमन्य मित्र हैं जो विद्वान हैं, किन्तु बच्चे की तरह इस बात की आशा रखते हैं कि जो कुछ वे कहें उसे ब्रह्म वाक्य समझ लिया जाय। उनकी रुचि

(शेष पृष्ठ २१० पर)

रोग का निदान पहले

डा० रामचरण महेन्द्र एम० ए०, डी० लिट्०

इस लेख में विद्वान लेखक ने यही बताया है कि यदि रोग का निदान ठीक तरह से कर लिया जाय, उसके असली कारण को मालूम कर लिया जाय तो समझ लेना चाहिये कि आधा रोग दूर हो गया। रोग के निदान में डाक्टरों की किंचित् उदासीनता या लापरवाही का कितना भयंकर परिणाम हो सकता है इसका संकेत आप को इस लेख में मिलेगा। —सं०]

मेरी व्यक्ति गत राय है कि यदि रोगी के रोग का निदान या 'डाईग्नोसिस' ठीक तरह हो जाय तो उसकी जड़ काटने के लिए औषधि की उतनी आवश्यकता नहीं रह जाती, जितनी कि प्राकृतिक नियमों के पालन की। हमारे अनेक रोगी इसी कारण अच्छे नहीं हो पाते कि हमें उनके रोगों का विधिवत् ज्ञान ही नहीं होता। अनेक बार तो चिकित्सक महोदय जानने का प्रयत्न ही नहीं करते कि किन कारणों से रोग हुआ, कितने दिन से चल रहा हैइत्यादि। बुखार का नाम सुना नहीं कि पेटेन्ट दवाई मरीज के गले के नीचे उतार दी। किस प्रकार का ज्वर है ! यह जानने की जैसे कुछ आवश्यकता ही नहीं। यदि हम रोग का ठीक ठीक पता लगा लें, तो समझें कि आधा कार्य हो गया।

हम दवाइयों को दोष देते हैं किन्तु अपनी जल्दबाजी पर नहीं पछताते। एक अंग्रेज महाशय अपनी दशा का वर्णन करते हुए कहते हैं—"नौ वर्ष की अवस्था में मुझे मुख से श्वास लेने की आदत पड़ गई। गला दुखने लगा। लोगों ने कहा कि टान्सिल के लिए आपरेशन कराना होगा तभी यह ठीक हो सकेगा। कुछ मास पश्चात् स्वयं ठीक हो गया और मालूम हुआ कि वह सर्दी के कारण हो गया था।"

"मेरे पेट में कुछ दिन तक दर्द रहा। दो तीन बड़े-बड़े डाक्टरों से मिला, परन्तु वे बड़े चक्कर में फँसे और कहने लगे कि अपेन्डेसाइटिस हो गया है। आपरेशन होगा। बिना चीर फाड़ किए जान बचना कठिन है। मैंने थोड़ा थोड़ा टहलना प्रारंभ किया। जल तथा शाक तरकारी, टमाटर का प्रयोग बढ़ाया। दो मास में पेट का दर्द जाता रहा।"

"मेरे फेफड़ों में कुछ खराबी थी। सांस लेने में पीड़ा होने लगी। वैद्य ने बताया कि तपेदिक होने का डर अतः मुझे कोई श्रमपूर्ण कार्य नहीं करना चाहिए। दौड़ना, कसरत, व्यायाम इत्यादि हानिकर है। केवल पेय पदार्थ गिजा के रूप में लेना चाहिए। मैं बराबर दवायें लेता रहा परन्तु "मर्ज़ बढ़ता गया ज्यों ज्यों दवा की"। मैं तो निराश हो चला था, परन्तु सौभाग्य से मैंने एक दिन प्राकृतिक चिकित्सा के एक पत्र में सुन्दर लेख देख लिया, जिसमें प्राकृतिक चिकित्सा के लाभ बताए गए थे। मुझे उसे कार्यान्वित करने की सूझ गई और मैंने औषधियाँ खाना बन्द कर दिया। पहले मैंने भोजन सुधारा—शाक, फल आदि का प्रयोग आरंभ कर दिया। माँस खाना बन्द कर दिया। व्यायाम तो मैं कर ही नहीं सकता था, टहलना प्रारंभ कर दिया। मालिश शुरू की। धीरे धीरे लाभ हुआ। आरोग्यशास्त्र का अध्ययन करने से मुझे कुछ ऐसे व्यायाम ज्ञात हुए जिनको मैं कुर्सी पर बैठ कर या लेट कर

कर सकता था। मैंने आरोग्यशास्त्र का क्रमशः अभ्यास शुरू किया। मेरा तपेदिक चला गया। आरोग्यशास्त्र ने मुझे बताया कि मेरा रोग सिर्फ आलस्य भ्रम, और सन्देह ही था।”

“अब मैं स्वस्थ हूँ और मेरा विचार है कि हम मरीजों को डाक्टर नाच नचाते हैं। रोग का निदान करने के स्थान पर यों ही कुछ का कुछ कह देते हैं। हम हर एक कही हुई बात को वेदवाक्य मान कर विश्वास कर लेते हैं और रोगी बनते हैं।”

उपरोक्त वृतान्त से स्पष्ट है कि हमारे चिकित्सक प्रायः अटकल से ही काम लेते हैं। वे मस्तिष्क पर जोर डालना नहीं चाहते। उनके पास अनेक मरीज हैं; फिर हर एक का इतिहास क्यों कर सुनें। यदि हम चाहें तो स्वयं चिकित्सक बन सकते हैं। अपने विषय में जितनी अच्छी तरह हम समझ सकते हैं, दूसरा चिकित्सक नहीं। फिर, यदि एक बार रोग का निदान ठीक से हो गया तो कोई भी हमारी मदद कर सकता है। वैद्यों के ढकोसलों से बच कर हमें आत्म विश्पास की अभिवृद्धि करनी चाहिए।

“सर्व परवशं दुःख सर्वमात्मवशं सुखम्” अर्थात् आत्मवशता सुख है; परवशता दुःख। अतः प्रकृति के उपचार सीख कर हममें से प्रत्येक अपना चिकित्सक स्वयं बन सकता है। अतः इस शास्त्र के सिद्धान्तों का स्वयं ज्ञान प्राप्त कीजिये और प्रकृति के उपचार सीख कर उनका प्रयोग दैनिक जीवन में कीजिए।

बुड्ढे बच्चे

(पृष्ठ २०८ का शेषांश)

प्रामाणिक, उनके विचार प्रामाणिक, उनके रहन-सहन प्रामाणिक। वे ग्रीस के नार्सिसस की तरह हैं जो सरोवर में अपने ही रूप का प्रतिविम्ब देखकर मुग्ध हो उठा था। जो उनके विरुद्ध बोलने की कोशिश करता है उसके साथ वे जूझ पड़ते हैं, उसे मूर्ख समझते हैं और सब प्रकार के सौजन्य को बलाये ताक रखकर वे अपशब्द कहने तक के लोभ का संवरण नहीं कर सकते। बच्चा अपनी दृष्टि से कभी गलती नहीं करता और अपनी समझ से विद्वान भी कभी गलती नहीं करते। सृष्टि-कर्ता परमात्मा भी उनकी दृष्टि से तो एक भूल है, जिसे वे लोगों के दिमाग से निकाल डालना चाहते हैं।

(४)

यह तो बहुश्रुत है कि 'किसी काम को न करो' कहने से बच्चा उसे उत्सुकतावश करना चाहता है, 'करो' कहने से उसकी प्रतिक्रिया निषेधात्मक होती है। मेरे एक ऐसे मित्र हैं जिनके सामने कोई बात रख दीजिये, वे तुरन्त उसका विरोध करेंगे। उनकी ऐसी आदत ही बन गई है, वे इससे लाचार हैं, इससे छुटकारा पाना उनके वश की बात नहीं। इनकी अवस्था ४० वर्ष से अधिक हो गई है किन्तु उनका बचपन उनके साथ-साथ चल रहा है इन्हें मैं 'बुड्ढा बच्चा' कहता नहीं; कभी कह दूँ तो तुरन्त वे मेरी नीयत पर शक करने लगेंगे।

(५)

बच्चे की स्वार्थपरता प्रसिद्ध है, वह ईर्ष्यालु भी बहुत होता है। वह नहीं चाहता कि उसके माता-पिता उसे छोड़ और किसी बच्चे को प्यार करने लगें। यही मनोवृत्ति जब वयस्कों में दिखलाई पड़ती है तो उन्हें हम बुड्ढे बच्चे क्यों न कहें? माता अपने पुत्र के विवाह के लिए बड़ी उत्सुकता दिखलाती है किन्तु जब पुत्र-वधू घर में आजाती है तब सास के रूप में उसका ईर्ष्यालु स्वभाव प्रकट होने लगता है। जब तक पुत्र-वधू घर में नहीं आई थी तब तक बच्चा उसका था, लेकिन अब वह किसी दूसरी का भी हो गया है। सास की यह ईर्ष्या क्या लड़कपन की मनोवृत्ति नहीं है? शिक्षा का काम यह है कि वयोवृद्धि के साथ-साथ वह हमारी मनोवृत्तियों को भी सुसंस्कृत बनावें। यदि ऐसा नहीं होगा तो बुड्ढे बच्चों की संख्या बढ़ती रहेगी और बुड्ढे बच्चों से तो भगवान ही बचावे।

—'बालहित'।

बिहार प्रान्तीय प्राकृतिक चिकित्सा सम्मेलन

प्राकृतिक चिकित्सा एक सरल स्वाभाविक मार्ग

सम्मेलन के स्वागताध्यक्ष डा॰ रमाचरण का महत्त्वपूर्ण भाषण

प्रान्त में संगठन के लिए महान आयोजन--सम्मेलन के कार्यवाहियों का विस्तृत विवरण

गत १३ अप्रैल को सेवा सदन, राम नगर में प्रथम बिहार प्रांतीय प्राकृतिक चिकित्सा सम्मेलन डा॰ बालेश्वर प्रसाद सिंह की अध्यक्षता में बहुत समरोह के साथ हुआ। सभापति के अतिरिक्त उपस्थित व्यक्तियों में डा॰ शंकरन् नायर, बाबू दीपनारायण सिंह, एम॰ एल॰ ए॰, बाबू रामेश्वर प्रसाद सिंह एम॰एल॰ए॰, डा॰ वी॰जी॰हुन्डेकर, श्रीमती हुन्डेकर, राजकुमार रतनेश्वरी नन्दन सिंह, बाबू अवधेश्वर प्रसाद सिंह, बाबू मथुरा प्रसाद सिंह, तथा सरयू प्रसाद के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। सर्व प्रथम बाबू महाबीर प्रसाद ठाकुर, साहित्य भूषण, ने अपनी कविता पढ़ी। इसके बाद स्वागताध्यक्ष डा॰ रमाचरण ने भाषण दिया और अध्यक्ष के आसन के लिए मनोनीत सभापति के नाम का प्रस्ताव किया। समर्थन एवं अनुमोदन के बाद सभापति डा॰ बालेश्वर प्रसाद सिंह ने अपना आसन करतल ध्वनि के बीच ग्रहण किया। सभापति का भाषण समाप्त होने के बाद डा॰ शत्रुहन प्रसाद सिंह ने सेवा सदन की छपी रिपोर्ट पढ़ सुनाई जिसमें बताया गया था कि सेवा सदन को चलाने में उन्हें क्या कठिनाइयां होती हैं और किस तरह उन्हें यह सम्मेलन करने का विचार आया। इसके बाद प्रस्तावों की बारी आई। कुल च प्रस्ताव पांपास हुए। प्रस्तावों पर बोलने वाले बाबू रमा चरण, डा॰, द्वारका नाथ प्रेमी, डा॰ शत्रुहन प्रसाद सिंह, बाबू दीपनारायण सिंह, एम॰एल॰ए, बाबू रामेश्वर प्रसाद सिंह एम॰ एल॰ए, राजकुमार रतनेश्वरी नन्दन सिंह, और डा॰बी॰जी॰ हुन्डेकर थे। सभी वक्ताओं ने प्राकृतिक चिकित्सा के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डाला। बाबू दीपनारायण सिंह, एम॰एल॰ए और बाबू रामेश्वर प्रसाद, सिंह एम॰ एल॰ ए, ने कहा कि वे लोग रोग ग्रस्त थे और प्राकृतिक चिकित्सा के द्वारा ही स्वास्थ्य लाभ किया। गांधी के आश्रम के वासी डा॰ शंकरन् नायर ने गांधी जी के उपदेश लोगों को सुनाये। अन्त में बाबू सरयू प्रसाद ने लोगों की ओर से सभापति को धन्यवाद दिया और सम्मेलन की कार्यवाही समाप्त हुई।

सम्मेलन बहुत ही रमणीक स्थान पर एक बागीचे में हुआ था। निवास और भोजन का प्रबन्ध ठीक प्राकृतिक चिकित्सा के नियम के अनुसार था। विभिन्न जिलों से प्रतिनिधि काफी संख्या में पधारे थे। प्राकृतिक चिकित्सा सम्बन्धी किताबों की खूब बिक्री हुई। सभापति ने अपना गम्भीर भाषण इतने सरल ढंग से दिया कि देहात के अनपढ़ लोगों पर उसका काफी असर पड़ा।

स्वागताध्यक्ष का भाषण

प्रकृति चिकित्सा के प्रेमी प्रचार को, बहनो और भाइयो!

आप महानुभावों का उत्तर बिहार के इस कोने में स्वागत करते हुए मेरे हर्ष की सीमा नहीं है। यद्यपि रेल के धूम-मार्ग से दूर होने के कारण यहां की यात्रा कष्टकर है और शहरी सुख-सुविधाओं का भी यहां अभाव है; पर इसलिए यह प्रकृति के निकटतर है और फलतः आप प्रकृति-प्रेमियों के प्रेम का यह सहज ही पात्र है। इस कटरा थाना का आपकी कृपा पर एक और अधिकार है। १९३४ के भयंकर भूकम्प के साल से यह जल-प्लावन और मलेरिया दोनों की वार्षिक क्रीड़ा का क्षेत्र बना हुआ

है। किन्तु इतना ही नहीं, हमारे उत्साही युवक डा० शत्रुहन सिंह का 'सेवा-सदन' भी यहीं है। उनके ही उत्साह और आग्रह का परिणाम है कि यह सम्मेलन हो रहा है और यहाँ हो रहा है। बिहार के गौरव स्व० बाबू रामदयालु सिंह, जिनकी अनुपस्थिति आज सारा प्रान्त दिल मसोस कर अनुभव कर रहा है, इसी कटरा थाना के रत्न थे।

स्व० रामदयालु बाबू के अतिरिक्त इस जिले के दो और प्रकृति-चिकित्सा के अग्रणी जनों को हम खो रहे हैं। खाद्य सम्बन्धी सुधार के प्रमुख प्रचारक स्व० श्री बसन्ती चरण सिन्हा वकील और अकाल में ही काल कवलित हुए हमारे सुहृदवर श्री सूर्यदेव नारायण वकील-प्रकृति चिकित्सा के लिए जिनका उत्साह अदम्य था जिले के बाहर के भी एक व्यक्ति विशेष की अनुपस्थिति आज खास तौर पर खटक रही है; वह हैं दीघा के मास्टर गोविन्द प्रसाद जी, जिनका ज्ञानाश्रम हमारे प्रान्त में प्रकृति के अनुकूल सात्विक जीवन और जल-चिकित्सा का प्रकाश स्तंभ ही कहा जायगा। अभी इसी दिसम्बर मास में वे दिवंगत हुए हैं—९० वर्ष से ऊपर की परिपक्वावस्था में। हम आशा करते हैं कि उनके सुयोग्य पुत्र प्रकृति-चिकित्सा द्वारा जनता की सेवा का उनका पुण्य कार्य जारी रखेंगे।

बिहार में प्रकृति-चिकित्सा का विकास

अपने प्रांत में प्रकृति-चिकित्सा और उसके पूर्व रूप जल-चिकित्सा का कुछ कम प्रचार नहीं हुआ है। यदि हम हर जिले में जाकर दरियाफ्त करें तो देखेंगे कि आज से लगभग ४० बरस पहले से ही यहां के गाँवों तक में लुई कुने की जल-चिकित्सा का उपयोग और प्रचार करने वाले यथेष्ट संख्या में हुए है।

मुजफ्फरपुर शहर में बिहारी साह चेता साह फर्म के मालिक ने आज से ३०-३५ बरस पहले पानी के इलाज का काफी प्रचार किया था। उसके बाद हमारे श्रद्धेय नेता बाबू विन्देश्वरी प्रसाद जी ने अपने 'कालिक पेन' को इसी इलाज से दूर किया और इस कुदरती इलाज से सैकड़ों अन्य असाध्य रोगियों को चंगा किया। हैजे तक में उन्होंने सफलता पूर्वक इसके प्रयोग किये थे। मुजफ्फरपुर शहर को प्रकृति-चिकित्सा का सब से पहला सर्वांग पूर्ण मासिकपत्र निकालने का भी गौरव प्राप्त है। मेरा अभिप्राय "जीवन सन्देश" से है, जो हेल्थ एसोसियेशन की ओर से आपके इसी सेवक के सम्पादकत्व में १९३२ से १९३२ तक नियमित रूप से निकलता रहा। इधर तो कितने भाई इस क्षेत्र में बड़े उत्साह से बढ़ आये है जिनमें श्री रामस्वरूप बुबना, श्री शंभुदयाल मिश्र, श्री मोहनलाल गुप्त आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। प्रान्त के अन्य भागों में भी प्रकृति-चिकित्सा सम्बन्धी काम होते जा रहे हैं और अब तो हर जगह इसकी मांग बढ़ रही है। छपरा जिला में स्व० बाबू गुंजराज सिंह वकील और मांझी के स्व० रामखेलावन प्रसाद जी के कारण पानी के इलाज का खूब ही प्रचार हुआ। चम्पारन में डा० हुंडेकर जी का चिकित्सालय है। पटने में दीघा के स्व० गोविन्द प्रसाद जी के ज्ञानाश्रम का उल्लेख तो ऊपर हो ही चुका है, इसके अतिरिक्त डा० शिवकुमार सिन्हा डी० सी० का पटने में तथा श्री कृष्ण विहारी चौधरी का डुमरांव में भी चिकित्सालय हैं। युवक डा० वलवन्त राव जी के लिए मधुवनी चर्खा संघ की ओर से बहुत ही सुन्दर प्रबन्ध कराया गया था जो १९४२ के आन्दोलन के कारण बिगड़ गया। वे अब शायद मनीगाछा में प्रैक्टिस कर रहे हैं। सोनपुर के D. T. S. Office के श्री गंगा प्रसाद, 'नाहर' जी भी इसके प्रमुख प्रचारक हैं। बभनगांवा, भागलपुर, के श्री राजेन्द्र लाल दास ने अपने आश्रम में प्रकृति चिकित्सा का यथेष्ठ प्रयोग चलाया है और हैजे इलाज करने में काफी यश प्राप्त किया है।

इसी प्रकार जगह-जगह कितने कांग्रेसी कार्यकर्त्ता तथा अन्यान्य भाई इस काम में लगे हैं! आपके मनोनीत सभापति प्रयाग के सुप्रसिद्ध प्रकृति चिकित्सा गृह के सुयोग्य संचालक और 'जीवन सखा' के संपादक बाबू बालेश्वर प्रसाद सिंह जी और 'रोगों की अचूक चिकित्सा' के स्वनाम-धन्य लेखक बाबू जानकीशरण वर्मा जी भी हमारे ही प्रान्त के (गया जिला के) उज्ज्वल रत्न हैं। इन तथा ऐसे ही कितने अन्य भाइयों के सत्प्रयत्न से अपने

प्रान्त में प्रकृति चिकित्सा के सम्बन्ध में बहुत ही सुन्दर वातावरण बन गया है और अब वह समय आगया है जब इनके प्रचारकों, प्रैक्टिशनरों और प्रेमियों की बिखरी हुई शक्ति को एकत्रित और सुसंगठित करने की पूरी चेष्टा की जाय।

आज युद्धोत्तर योजनायें हर क्षेत्र में बन रही है और खाद्य-रक्षा और स्वास्थ्य का प्रश्न देश के सामने बहुत ही प्रमुख रूप से खड़ा हुआ है। ऐसे समय यह उचित ही है कि प्रकृति-चिकित्सा के अनुयायी अपने दृष्टिकोण को जनता, नेता और सरकार सब के सामने रखें।

प्रकृति-चिकित्सा के प्रचार की आवश्यकता

हमारा भारतवर्ष गाँवों का देश है। आज भी लाखों गांव ऐसे मौजूद हैं जहाँ दैनिक अखबार रोज-रोज नहीं पहुंच पाते। वहां हम डाक्टर, डिस्पेन्सरी और आधुनिक खाद्यों की समुचित व्यवस्था—ऐसी व्यवस्था जो हर झोपड़े तक इनको पहुँचा सके—करने की क्या कल्पना कर सकते हैं? फिर दवा और डाक्टर के सहारे स्वास्थ्य-रक्षा, रोग प्रतिकार और जीवनाशा में वृद्धि कर सकने की आशा कैसे की जाय, जब हम देखते हैं कि दवा और डाक्टर की सुविधा जहां जितनी ही अधिक है वहां के लोग उतना ही अधिक दवा-डाक्टर पर ही निर्भर करने लगते है और यह समझते हैं कि उन्हे स्वयं कुछ करना नहीं है, रोग होने पर केवल डाक्टर के पास पहुंच जाना है। यदि हम देश में सचमुच ही स्वास्थ्य-रक्षा और रोग-प्रतिकार करना चाहते हैं तो उसके लिए तो प्रकृति-चिकित्सा का ही प्रचार करना होगा, जिससे वे जान सकें कि रोग क्यों होते है और आरोग्य रहने तथा रोग दूर करने के लिए उन्हें कैसे रहना और किन उपचारों से काम लेना चाहिए।

प्राकृतिक चिकित्सा एक स्वाभाविक मार्ग

सच पूछिये तो प्राकृतिक चिकित्सा एक स्वाभाविक मार्ग हैं। जहाँ बाहरी खींचा तानी नहीं रहती वहाँ मनुष्य सहज ही प्रकृति की अन्तः प्रेरणा द्वारा इस स्वाभाविक पथ पर चलने लगता है। बिना डाक्टर वैद्य की सहायता के केवल फलहार आदि द्वारा असाध्य रोगों से मुक्ति पाने वाले हर जगह ही देखे जाते हैं। गंगा-सेवन, लवण हीन आहार, शाकाहार, फलाहार, मृत्तिका-मर्दन, सूर्योपासना आदि का प्रचार प्राचीनतमकाल से चला आ रहा है। यदि चरक-संहिता जैसे आर्ष-ग्रन्थ को देखें तो आप विषैले रसायनों का कहीं नाम भी नहीं देखेंगे बल्कि इसके विपरीति 'आचार रसायन' का विशद सुन्दर नुस्खा दिया हुआ पावेंगे। आज के सभ्यताभिमानी विद्वान महानुभाव यदि इस नुस्खे को हृदयंगम कर लें तो दुनियां की हालत बदल जाये। देखिये—

सत्य वादिनम क्रोधं निवृतं मद्यमैथुनात्।
अहिंसकमनायासं प्रशान्तं प्रिय वादिनम्॥
जपशौचपरं धीरं दान-नित्यं तपस्विनम्।
देव-गो-ब्राह्मणाचार्य्य गुरुवृद्धार्चनेरतम्॥
आनृशंस्यपरं नित्यं, नित्यं करुणवेदिनम्।
समजागरणास्वप्नं नित्य क्षीरघृताशिनम्॥
देश काल प्रमाणज्ञं युक्तिज्ञं अनहंकृतम्।
शस्ताचारमसंकीर्णं मध्यात्मप्रवणेन्द्रियम्॥
उपासितारं वृद्धानामा स्तिकामां जितात्मनाम्।
धर्मशास्त्रपरं, विद्यान्नरं नित्यरसायनम्॥
[चरक संहिता—चिकित्सस्थान अ० १ श्लोक २९-३३]

इस विद्वन्मन्डली में इस विषय पर अधिक कहने की जरूरत नहीं फिर भी इतना तो कहना ही पड़ता है कि प्रकृति-चिकित्सा का प्रचार हम क्यों और किस दृष्टि से चाहते हैं। आज इतने भाई-बहन जो यहां इकट्ठे हैं उनमें से इने-गिन ही लोगों ने इसे अपने अर्थोपार्जन का साधन बनाया है फिर किस लिए शेष इसके प्रचार में दत्तचित है? इसका यही एक मात्र उत्तर हो सकता है कि उन्होंने अनुभव की कसौटी पर इसे सोलह आने खरा उतरता पाया है। इसके सिद्धान्त इतने सरल, सधे और सच्चे हैं कि अति साधारण बुद्धि के लोग-यहां तक की गवांर स्त्रियाँ भी सहज में ही समझ पाती है। फिर इसका व्यवहार जटिल यंत्रों, परीक्षालयों और बड़ी-बड़ी रसायनशालाओं में तैयार किए गये गुप्त पेटेन्टों और विषैली औषधियों की अपेक्षा नहीं रखता है, वरन प्रकृतिदत्त सर्व-सुलभ हवा, पानी, मिट्टी, साग-भाजी और फल-मूल से ही साध्य और हर किसी के द्वारा प्रत्यक्ष परीक्षा पूर्वक सत्य प्रमाणित होने वाला है, यह भी सन्देह करने की बात नहीं कि यह

चिकित्सा बड़ी महंगी है या शहरी पैसे वालों के ही योग्य है। यदि प्रकृति-चिकित्सा गरीबों के लिए नहीं है तो हम पूछते हैं कि दुनियाँ के परदे पर आज तक ऐसी कौन दूसरी चिकित्सा निकली है जो गरीबों के लिये इससे अधिक सुलभ वा उपयोगी हो ? प्रकृति-चिकित्सा मंहगी है यह केवल भ्रम ही भ्रम है, जो इस लिए फैल गया है कि शुरू-शुरू देश में जितने इसके केन्द्र खुले वे मुख्यत' शहरों में खुले और पेशेवर लोगों द्वारा खोले गये। चूंकि उनके संचालक पैसा पैदा करना चाहते थे इसलिए उन्होंने उसे धनवानों के आकर्षण का केन्द्र बनाया और धनवानों की रुचि के अनुकूल चिकित्सा की व्यवस्था की। जिनके पास पैसा है उनका सन्तोष उससे नहीं हुआ करता जिसमें काफी पैसे नहीं लगते। इसलिए उन्हें कीमती पथ्य और आहार बताये जाते और कीमती उपचार-व्यवस्था दी जाती है। पर यह हम लोगों का नित्य का अनुभव है कि नारंगी के बदले टमाटर का रस और यदि वह भी न मिले तो गांव के खेतों में अपने आप पैदा होने वाले साग-पातों से ही काम लिया जा सकता है और उतनी ही सफलता मिलती है। ककड़ी, खीरा, गाजर, टमाटर, पुनर्नवा (गदहपुरना) पालक, बथुवा, सहिजन, परवल, कद्दू, चठइल, आदि में से जहां जो मिल सके उससे ही काम लिया जा सकता है और लिया जाता है। यदि यह न हो तो इस चिकित्सा का 'प्राकृतिक' विशेषण ही ही निरर्थक बन जायगा। यदि उपचारों की बात लीजिये तो स्टीमबाथ मूंज की खाट और दो तीन कम्बल या टाट की सहायता से ले सकते हैं और यदि हिपबाथ के लिये टब न हो तो मिट्टी की नांद, और वह भी न हो तो जमीन में गढ़ा खोद कर काम निकाला जा सकता है। यह पिछली बात कुछ काल्पनिक नहीं है। हमारे श्रधेय नेता बाबू विन्ध्येश्वरी प्रसाद वर्म्मा ने एक बार हैजे के प्रकोप में हरिजनों की बस्ती में सचमुच ही गढ़े खोद-खोद कर रोगियों को हिप-बाथ दिया था और इसप्रकार कितने ही परित्यक्त रोगियों के प्राण बचाये थे। स्वनाम धन्य स्व० मास्टर गोविन्द प्रसाद जी के ज्ञानाश्रम में गरीबों की सेवा की सहज-सुलभ व्यवस्था भी इन आंखों ने बहुत बार देखा है। वह जरा पुराने ढंग के आदमी थे, इसलिये मेरे बारम्बार आग्रह करने पर भी उन्होंने अपने यहाँ कोई रजिस्टर या रेकर्ड नहीं रखा और न पत्रों और अखबारों में ही अपनी रिपोर्ट छपवाईं। पर सच तो यह है कि उनका ज्ञानाश्रम गरीबों के लिये बड़ा लोकप्रिय चिकित्सालय था जहाँ दूर और नजदीक के असाध्य-प्राय और निराश रोगी नित्य ही आते और बिना किसी रुचि के लाभ उठते थे। स्वयं मेरा भी अनुभव ऐसा ही है। इसलिए बिना किसी सन्देह के यह दावे के साथ कहा जा सकता है कि प्रकृति-चिकित्सा ही एक मात्र ऐसी प्रणाली है जो हमारे गरीब देश की अकिंचन जनता तक पहुँचने की और उन्हें सच्चे स्वास्थ्य के मार्ग पर ले चलने की पूरी योग्यता रखती है। यही कारण है कि महात्मा गान्धी ने इसकी ओर अपना ध्यान आकृष्ट किया है।

प्रान्तीय संगठन की आवश्यकता

अब वह समय आ गया है जब इस प्रणाली के अनुयायी और प्रेमी इसके अध्ययन, अनुसन्धान और प्रयोग-परीक्षा में संगठित रूप से लग जायँ और इसकी सब प्रकार से जनता की सेवा का सच्चा साधन बना लें। इस सम्बन्ध में जो कुछ किया जाना चाहिये उसका श्री गणेश भी अभी तक नहीं हुआ है। जरूरत इस बात की है कि सेवा-भाव से काम करनेवाले सुयोग्य लोग सुव्यवस्थित चिकित्सालय खोलकर बैठें और अध्ययन, अनुसन्धान और प्रयोग-परीक्षा में वैज्ञानिक रीति से लग जायँ। अपने अपने प्रयोगों के परिणामों का लिखित विवरण रखा जाय और वह एक केन्द्रीय संस्था द्वारा जनता के हित की दृष्टि से प्रकाशित किया जाय। इसलिए सबसे पहले एक प्रान्तीय संगठन की नींव डालना आवश्यक है। आशा करते हैं कि यहां पर ही यह शुभारंभ हो जायगा। इसके साथ ही एक केन्द्रीय चिकित्सालय अनुसन्धानशाला और शिक्षण-केन्द्र भी खोलने की जरूरत है जहां सिद्धांत और व्यवहार की पूरी शिक्षा इस ढंग से हो कि उस शिक्षालय के स्नातक एक चिकित्सक के लिये सभी आवश्यक विषयों का ज्ञान लेकर निकलें।

प्राकृतिक-चिकित्सा-प्रणाली के विविध अंगों का ज्ञान हर एक चिकित्सक को होना चाहिए। यदि हम जनता की सच्ची सेवा करना चाहते है तो केवल जल चिकित्सा या

उपवास-चिकित्सा या केवल आसन और मालिश आदि के एकांगी ज्ञान या प्रयोग से काम नहीं चलने वाला है-जल, हवा, मिट्टी, रोशनी, गरमी, आहार, उपवास, आसन और व्यायाम, मालिश और बिजली, मानसोपचार तथा खाद्य वर्ग की बनौषधियों, आदि का उचित प्रयोग सिद्धान्त सहित जानना चाहिये। फिर रोगी की अवस्था जानने में उसे दक्ष होना चाहिये और इसके लिये आयुर्वेद, एलोपैथी और यूनानी में जो रोग-परीक्षा के उपाय बताये हैं उनका ठीक ज्ञान और आभास तो उसे होना ही चाहिये, इस प्रणाली के आचार्यों द्वारा अविष्कृत नवीनतम साधनों के प्रयोग में भी उसे कुशल और सिद्धहस्त होना चाहिए जैसे, लुईकुने का आकृति निदान और लिण्डलार द्वारा प्रचारित चक्षु-विज्ञान। फिर जो चिकित्सक गांव में आकर बैठेगें उन्हें प्रसवकालिक उपचारों तथा कुछ हद तक सर्जरी में भी अभ्यस्त होना चाहिए। उनमें प्राथमिक उपचार करने की योग्यता तो होनी ही चाहिए।

इसके अतिरिक्त बहुत विषयों में हमें खोज भी करना है और निस्सन्देह प्रामाणिक सिद्धान्तों पर पहुँचना है। उदाहरणार्थ-पीने के पानी का ही प्रश्न लीजिए। क्या जहाँ जैसा भी जल मिले उसे उसी रूप में काम में लाया जाना चाहिए या उसे किन्हीं हालतों में शोधित करना भी कर्तव्य है ! और शोधित करना हो तो उसके लिये कौन से उपाय काम में लाये जायं ! इसी प्रकार मिट्टी के उपयोग का भी प्रश्न है। क्या खुले घावों तक पर जहां-तहां की मिट्टी लगाई जा सकती है ! मिट्टी के भी कितने भेद होते हैं—उनके प्रभाव भी अलग-अलग होंगे, ऐसा अनुमान करना असंगत नहीं है। इस संबन्ध में भी खोज होना चाहिए। खेतों से लेकर या बाजार से खरीद कर लाये गये फलों और शाकों का कच्चा व्यवहार करने के पूर्व उनका किस प्रकार शोधन करना चाहिए ! वनौषधियों के प्रयोग के सम्बन्ध में अभी मतभेद है या यों कहें कि कोई स्पष्ट नियम को सिद्धान्त स्थिर नहीं हुये हैं। इस तथा ऐसे ही कितनी और बातों के सम्बन्ध में अनुसन्धान और प्रयोग करने की बड़ी आवश्यकता है।

सार्वजनिक स्वास्थ्य रक्षा के प्रश्न का एक बड़ा ही महत्वपूर्ण अंग है—मौसिमी या फैलने वाले महामारियों का प्रतिकार। वैद्यक या यूनानी या होमियोपैथी तो इस सम्बन्ध में कोई स्पष्ट मार्ग-दर्शन करता ही नहीं है। एलोपैथीवाले टीकाओं और संक्रामक द्वारा 'एपिडेमिक' रोगों के प्रतिकार का प्रयत्न करते हैं, पर सफलता तो कहीं भी दृष्टिगोचर नहीं होती है। चेचक की ही बात लीजिये। पहले तो कहा जाता था कि चेचक का टीका एक बार लेने से जन्म भर के लिये मनुष्य रोगमुक्त हो जायगा। पर जब यह बात गलत साबित हुई तो अब बारंबार टीका लेने के लिए लोगों को बाध्य किया जाता है। स्वयं इंगलैण्ड में जिन्हें सिद्धान्ततः आपत्ति हो उन्हें चेचक की टीका लेने से मुक्त कर दिया गया है, पर हिन्दुस्तान में ऐसा नहीं है। फिर भी चेचक के दौरे में कहाँ कमी दिखाई देती है ! हैजे का भी प्रतिकार कभी कपूर से, कभी 'फेज' से और कभी सुई से से किया जाता है। प्लेग, टाइफायड और अब जुकाम के लिये भी ऐसी ही दवाओं और सूइयों का प्रचार किया जा रहा है, पर फल कुछ भी नहीं होता।

सच बात तो यह है कि जब तक आन्तरिक और बाहरी दोनों सफाई नहीं रहेगी तबतक कहीं न कहीं सड़न होगी ही और उससे उत्पन्न विषैले गैस स्फोटकों और महामारियों के रूप में प्रकट होते ही रहेंगे। समान अवस्था में समान लक्षण प्रकट होते हैं। इसीलिए एक एक समय एक एक रोग का एक-एक स्थान या प्रदेश में प्रकोप देखा जाता है। इसका प्रतिकार तो लोगों को स्वस्थ जीवन के प्राकृतिक नियमों की शिक्षा देने से ही हो सकता है। प्रकृति-चिकित्सा पद्धति से सामूहिक रूप पर ऐसे समय में लोगों को क्या-क्या उपचार काम में लाने चाहिये, यह प्रयोगात्मक रूप से निर्णय और स्थिर करने की चीज है। फिर जब यह रोग फैल चुके हों तब किन उपायो से बड़े पैमाने पर हम काम कर सकते हैं, यह भी प्रत्यक्ष प्रयोग द्वारा स्थिर होना चाहिये। ऐसे समय में सुलभता और शीघ्रता के साथ रोगी की बदलती हुई और क्षण क्षण में बिगड़ती हुई हालत को सुधांरने की व्यवस्था होना जरूरी है।

ऐसे अनेक प्रश्न हैं जिनका समाधान प्रकृति-चिकित्सा को करना होगा तब वह जनता की सच्ची सेविका बन सकेगी। इसके लिए प्रकृति-चिकित्सा के अनुयायियों और

प्रेमियों में सहयोग, संगठन, उत्साह और कर्मशीलता तो होना ही चाहिए, सरकार की भी प्रत्यक्ष सहायता नहीं तो सहानुभूति तो चाहिए ही। ऐसा कोई भी कानून नहीं बनना चाहिए जो इस प्रणाली की प्रगति में बाधा डालने वाला हो। यहाँ रोगी कभी अन्धकार में नहीं रहता है जिस प्रकार वह एलोपैथी वा अन्य किसी भी दूसरी चिकित्सा-प्रणाली में रहने को बाध्य होता है। यह तो एक सहज-बुद्धि-गम्यप्रणालीं है ! इसमें धोखे या ठगी का कम से कम स्थान है। इसलिये इसके प्रचार या प्रयोग पर कोई कानूनी रोक लगाना ही समाज और व्यक्ति दोनों पर अत्याचार करना होगा। सहज बुद्धिगम्य प्रकृति-अनुमोदित नियमों और उपचारों पर चलनेवाले को टीका लेने के लिए मजबूर ही करना, सोचकर देखिये तो गलत काम है। हम आशा करते हैं कि कांग्रेसी मंत्रि-मंडल ऐसा कोई भी कानूनी बन्धन या रुकावट प्रकृति-चिकित्सा के अनुसरण और प्रचार करनेवालों पर नहीं लगायेगा। होना तो यह चाहिये कि इस प्रणाली को मंत्रि-मंडल द्वारा प्रोत्साहन मिले और उसके विधिवत् प्रयोग अनुसंधान और उन्नति के लिये पूर्ण व्यवस्था की जाय। महात्मा गांधी ने प्रकृति-चिकित्सा की ओर जो अपना ध्यान आकृष्ट है तो ऐसी आशा की जा सकती है कि कांग्रेसी सरकारें इसके महत्त्व को कुछ न कुछ समझेंगी। हम चाहते हैं कि यह सम्मेलन इस सम्बन्ध में भी समुचित कार्रवाई करे।

स्वीकृत प्रस्ताव

सम्मेलन में नीचे लिखे प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकृत हुए।

१ (क) यह सम्मेलन बिहार प्रान्त के सब से पुराने प्रकृति चिकित्सा के आचार्य और प्रचारक वयोवृद्ध मास्टर गोविन्द प्रसाद के निधन पर दुःख और खेद तथा उनके परिवार के साथ हार्दिक समवेदना प्रकट करता है।

(ख) इस प्रस्ताव की एक प्रति उनके परिवार के पास भेजी जाय।

यह प्रस्ताव सभापति द्वारा उपस्थित किया गया और लोगों ने दो मिनट मौन धारण कर इसे पास किया।

२ बिहार प्रान्त की जनता में स्वास्थ्य सम्बन्धी सच्चे ज्ञान के प्रचार को और प्रकृति-चिकित्सा की उन्नति का सतत् प्रयत्न करने के लिए बिहार प्रान्तीय प्राकृतिक चिकित्सकों और प्रेमियों की एक संस्था स्थापित करना इस सम्मेलन की राय में आवश्यक है। इसलिए नीचे लिखे सदस्यों की एक अस्थायी प्रान्तीय समिति, जिसे बचे सदस्य जोड़ लेने का अधिकार होगा, बनाई जाय और उस पर यह भार दिया जाय कि वह बिहार प्रान्तीय प्रकृति-चिकित्सा संघ की नियमावली बनावे और बिहार के प्रकृति-चिकित्सकों और प्रेमियों की सम्मति के साथ उसे अगले सम्मेलन में पेश करे—

(१) बाबू दीपनारायण सिंह एम०एल०ए (२) बाबू विन्ध्येश्वरी प्रसाद वर्म्मा एम०एल०ए (३) बाबू रमाचरण (मंत्री ग्रा०उ०सं०बिहार शाखा) (४) बाबू रामस्वरूप बुबना (५) बाबू मोहन लाल गुप्त, (६) डा० शत्रुघ्न सिंह (७) डा० हुन्डकर, बेतिया (८) श्री वैद्यनाथ चौधरी, (९) श्री हीरालाल सराफएम०एल०ए० (१०) माननीय जस्टिस बी०पी०सिन्हा, पटना (११) श्री डी०सी० अहूजा, जमशेदपुर

(१२) बी०एक रूंगटा जमशेदपुर (१३) श्री द्वारकानाथ सिन्हा 'प्रेमी' (१४) श्री अर्जुनलाल अग्रवाल, झरिया (१५) श्री रत्नेश्वरी नन्दन सिंह, सीतामढ़ी (१६) श्री रामेश्वर प्रसाद सिंह एम० एल० ए०, मुजफ्फरपुर (१७) श्री गौरीशंकर डालमिया, देवकर (संथाल-परगना)।

३. इस सम्मेलन की राय है कि मुजफ्फपुर जिला में प्रकृति चिकित्सा का एक सर्वाङ्गपूर्ण केन्द्र खोला जाय जिसमें रोगियों के रखने और प्राकृतिक उपचार एवं सेवासुश्रुषा आदि की पूरी व्यवस्था तो हो ही, प्रयोग और अनुसन्धान का विभाग और शिक्षण विभाग भी सुव्यवस्थित ढङ्ग से चलाया जाय। इस काम को सम्पन्न करने के लिए नीचे लिखे सदस्यों की समिति बनाई जाय और आवश्यक होने पर नये सदस्य भी जोड़ लेने का उस समिति को अधिकार दिया जाय :—

(शेष पृष्ठ २२१ पर)

प्रश्नोत्तर

[इस स्तम्भ में जिज्ञासु पाठकों के प्रश्नों के उत्तर दिए जाते हैं। पाठकों को चाहिए कि वे एक बार दो से अधिक प्रश्न पूछने का कष्ट न करें और जहाँ तक हो सके अपने प्रश्न संक्षेप में ही लिखें। ध्यान रहे कि इस स्तम्भ का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य यह है कि किसी एक व्यक्ति की जिज्ञासा का लाभ दूसरे पाठक भी उठावें।

प्रश्नों के भेजने के सम्बन्ध में आवश्यक नियम यह है कि प्रश्नों को प्रश्नोत्तर कूपन के साथ भेजा जाय। प्रश्नोत्तर कूपन कवर के तीसरे पेज के नीचे दिया गया है। —सं०]

प्रश्न (१) मैं ' ब्राङ्काइटिस ' का पुराना रोगी हूँ। यह रोग मुझे लगभग २ वर्ष की आयु से है। अब मेरी अवस्था १६ वर्ष की है। यह रोग मुझे सदैव तो नहीं होता परन्तु ठण्ड लग जाने पर पकड़ लेता है। मै व्यायाम करता हूँ। जिसमें चक्रासन, मयूरासन, शीर्षासन आदि प्रधान हैं। इसके अतिरिक्त मैं दण्ड-बैठक भी करता हूं। यह व्यायाम ब्राङ्काइटिस के रोगी को हानिकारक तो नहीं है ? यदि है तो मुझे कौन-कौन से व्यायाम करने चाहिए ? इस रोग को जड़ से उखाड़ने के लिए क्या करना उपयुक्त होगा ?

(२) मुझे स्वप्नदोष का रोग है। पहिले तो चार-पांच दिन बाद वीर्यपात होता था परन्तु अब १०-१५ दिन बाद होता है। इस रोग को रोकने के निमित्त जो व्यायाम किए जाते हैं वे ' ब्राङ्काइटिस ' के रोगी को हानि तो नहीं पहुँचाते ? दोनों रोगों के उपचार के हेतु किस प्रकार का भोजन करना व दिनचर्या रखना चाहिए ? आप विश्वास कीजिए कि मैं किसी प्रकार का मैथुन नहीं करता परन्तु मांस, अण्डा आदि का प्रयोग करता हूं। चाय को भी त्याग रक्खा है। कुसङ्गित से भी बचा हुआ हूं। परन्तु बाल्यकाल में हस्तमैथुन अवश्य किया है।

--"एक विद्यार्थी", रतनपुर, अल्मोड़ा

उत्तर (१) आप जो 'ब्राङ्काइटिस' नामक रोग से बाल्यकाल से ही पीड़ित हैं और इससे आप आज लगभग १५ साल बाद भी मुक्त नहीं हो पाये हैं, इसका मतलब यह है कि आपका रहन-सहन खान-पान इत्यादि प्राकृतिक जीवन के सर्वाथा विपरीत रहा है। जैसा कि आपके द्वितीय प्रश्न से ज्ञात होता है मांस एवं अण्डे भी आपके दैनिक आहार से बाहर नहीं रहे। ये खाद्यपदार्थ, जिस रूप में उनका आज कल सेवन होता है या किया जाता है उस रूप में अधिकतर रक्त को दूषित एवं अम्लमय करने वाले होते हैं। अधिकतर रोग पाचन-यन्त्र तथा रक्त में गड़बड़ी पैदा होने से ही होते हैं। जो उचित आहार-विहार एवं व्यायाम के समुचित प्रयोग से अपनी पाचन-क्रिया को दुरुस्त एवं रक्त को निर्विकार रखते हैं उन्हें सर्दी जुकाम या कोई भी रोग कभी भी नहीं सता सकता। और आपका ब्राङ्काइटिस है क्या चीज़ ? यह केवल जीर्ण जुकाम है जो कण्ठ नलिका की प्रशाखाओं से हो गया है। जीवन व्यतीत करने की समुचित प्रणाली (जो आपको केवल प्राकृतिक चिकित्सा के अमूल्य ग्रन्थों में ही आदेशों के रूप में मिलेगी) सीख लेने पर इस रोग के शत प्रतिशत रोगी स्वयं स्वस्थ हो जाते हैं। जीर्ण ब्रांकाइटिस कभी-कभी बड़ी कठिनाई से जाती है, पर यह कठिनाई उन्हीं रोगियों में पड़ती है जो बहुत बूढ़े होते हैं और जो अपना जीवन-क्रम किसी प्रकार भी बदलने को तैयार नहीं होते। आप अभी युवावस्था में पदार्पण कर रहे हैं, अतः यदि आप अच्छी तरह सोच समझ कर दृढ़ संकल्प के साथ अभी से अपने दैनिक रहन-सहन में उचित एवं आवश्यक परिवर्तन करलें तो सम्भव है कि आप आगामी जाड़े में इस रोग का पुनः शिकार न हों और यदि इस जाड़े में इससे पूरा-पूरा बचाव न भी हुआ तो उसमें अगले जाड़े में यह निश्चित है आप में इस रोग का नामो निशान तक न रह जायगा। अतएव आपको विशेष ध्यान देना है अपने दैनिक आहार व उचित व्यायाम के उपयोग पर। आहार आपका ऐसा होना चाहिए जो रक्त में क्षारता (Alkainity) का सञ्चार करे, आँतों

को अपने कार्य में रुकावट डालने के बजाय सहायता प्रदान करे, कब्ज को दूर करे एवं भविष्य में उसका जन्म ही न होने दे, शरीरोपयोगी लवणों एवं क्षारों से भरपूर हो। ऐसे खाद्य पदार्थों में मौसमी फल व शाक तरकारी आते हैं। आलू, केले, कटहल को छोड़ कर बाकी सभी मौसमी फलों व शाक तरकारियों को अपने भोजन में (अधिकतर उनके प्रकृत रूप में ही) अन्न की अपेक्षा अधिक रखिये। सन्ध्या में आप अन्न बिलकुल ही न खायं तो बेहतर होगा। उस समय मौसमी फल किशमिश, इत्यादि सूखे फल और आध सेर कच्चा दूध का ही सूक्ष्म आहार लीजिए। यह भी याद रखिए कि आपके लिये यह परमावश्यक है कि आपका सन्ध्या का भोजन सूर्यास्त तक अवश्य ही समाप्त हो जाय। सन्ध्या के बाद आपके लिए भोजन करना मुज़िर ही होगा। दोपहर में जिस आटे की रोटी बने उसमें से चोकर न छनवाएं। यदि आप दाल का प्रयोग करना ही चाहें तो वह छिलकेदार ही होनी चाहिए अधिकतर शाक-तरकारियों व फलों के छिलके न उतार कर खायँ। शाक तरकारियों को न अधिक भूजना चाहिये और न अधिक मसाला ही उनमें मिलाना चाहिए। माँस से बुरा खाद्य पदार्थ तो शायद कोई दूसरा है ह. नहीं। इसके प्रयोग से लाभ शायद ही होता है सिवाय स्थूलता के, किन्तु हानियाँ बहुत होती है। यह रक्त को विषाक्त करता है। उत्तेजक एवं वृत्तियों को तामसिक बनाने वाला है। अण्डा भी बहुत ही उत्तेजक पदार्थ है। यदि आप अण्डे का प्रयोग कर लाभ उठाना चाहते हैं तो प्रतिदिन एक से अधिक न लें और वह भी लें तो इस तरह—अण्डे की सफेदी फेंक दें, जर्दी को लेकर उसमें नीबूं का रस एवं शुद्ध शहद मिलाकर लें। पर बेहतर होगा कि आप जबतक दोनों रोगों से पूर्णतया मुक्त न हो जायँ तबतक इनका सेवन कत्तई छोड़ ही दें। एक ही आहार में कई चीजें एक साथ न खाइए। चार चीजों से अधिक एक समय खाने में न रखिए। भोजन में हरी एवं कच्ची चीजों को साफ व काटकर पाव-डेढ़ पाव की मात्रा में अवश्य प्रतिदिन सलाद के रूप में लें। आप जैसे रोगी के लिए दण्ड-बैठक उतना उपयोगी नहीं है जितना कि शुद्ध वायु में गहरी सांस लेने की कसरतें एवं प्राणायाम। प्राणायाम की विधि आप 'हठयोग' नामक पुस्तक से जान लें। व्यायाम के विषय में भी आपके लिए यह समझना बहुत जरूरी है कि दण्ड-बैठक एवं आसन-प्राणायाम एक साथ एवं एक समय नहीं करना चाहिए। दण्ड-बैठक से व्यायाम होता है विशेष कर विभिन्न मांस-पेशियों का, पर आसन-प्राणायाम से वर्जिश मिलती है शरीर की स्नायु-प्रणाली को। दोनों दो सिद्धान्तों पर आधारित हैं। इसलिए बेहतर होगा कि आप एक समय एक प्रकार का व्यायाम करें और दूसरे समय दूसरे प्रकार का यह भी ध्यान रखना चाहिए कि व्यायाम से आदमी अपने को बहुत अधिक थका न डाले, केवल बहुत हल्की सी सुहावनी थकान शरीर में मालूम होनी चाहिए अन्यथा व्यायाम से लाभ के स्थान पर हानि ही अधिक होगी। यदि आप उपर्युक्त आदेशों के अनुसार अपना जीवन क्रम बनालें तो कोई कारण नहीं कि आप रोग से छुटकारा सदैव के लिए न पा सकें। थका देने वाले व्यायामों के बजाय यदि आप प्रतिदिन खुली एवं स्वच्छ वायु में ६-७ मील टहल लिया करें तो भी बहुत लाभ होगा।

(२) प्राकृतिक चिकित्सा का यह वरदान है कि जब कोई अपने किसी एक रोग के उपचार में समझ, लगन एवं धैर्य के साथ उसके तत्वों का उचित उपयोग करता है तब वह केवल अपने उस रोग-विशेष से ही छुटकारा नहीं पा जाता, बल्कि अन्य समस्त रोग भी, जो या तो छिपे पड़े रहते हैं या साथ-ही-साथ चलते रहते हैं, रोगी को छोड़कर चल देते हैं—इसलिए कि प्राकृतिक चिकित्सा-पद्धति अपनाने पर शरीर के समस्त अवयव निर्मल, निर्विकार क्रियाशील, एवं सतेज हो जाते हैं। इसीलिए तो प्राकृतिक चिकित्सा का महान् सन्देश है रोगों की एकरूपता (Uniformity of diseases) रोग एक ही है शरीरका विजातीय द्रव्य से लदना एवं फलतः रक्त का अम्लमय होना। हाँ, उसका प्रदर्शन अनेक रूपों व लक्षणों द्वारा अवश्यमेव होता है। अतः यदि आप उपर्युक्त आदेशानुसार ब्राङ्काइटिस का इलाज करेंगे तो स्वप्नदोष से भी अवश्यमेव मुक्त हो जायँगे। फिर भी आपके लिए यह हितकारी होगा कि आप अपने इस प्रश्न का उत्तर सन् १९४५ के 'जीवन सखा' के जुलाई-अगस्त एवं अक्तूबर के प्रश्नोत्तर के स्तम्भ में पढ़ जायँ, जिसमें मैंने इसका विस्तार पूर्वक वर्णन किया है।

प्रश्न—मरणासन्न अवस्था में एलौपैथिक डाक्टर इजेक्शन लगाकर रोगी का प्राण बचा लेने की आशा करता है, आयुर्वेदाचार्य वैद्य भस्म, रस आदि देकर कफ को शान्त करता है, किन्तु ऐसी अवस्था में प्राकृतिक चिकित्सक क्या करेगा ? —कृष्णहरी तिवारी, मकरन्दनगर, सरायमीरा फरुर्खाबाद

उत्तर—आपके प्रश्न से स्पस्ट प्रतीत होता है कि आप प्राकृतिक चिकित्सा विज्ञान से पूर्णतया अनभिज्ञ हैं, अन्यथा ऐसा प्रश्न आप करते ही नहीं। प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति का जो व्यक्ति थोड़ा सा भी ज्ञान रखता है, उसके लिए ऐसा प्रश्न उठाती ही नहीं। हाँ, जिस प्रकार आपने प्रश्न रक्खा है उसका उसी प्रकार यदि मैं उत्तर एक वाक्य में दूँ तो मैं कहूँगा जिस प्रकार एलौपैथिक डाक्टर 'मरणासन्न अवस्था" में इन्जेक्शन लगाकर जीवनदान देने की आशा (व्यर्थ में !) करता है और आयुर्वेदिक वैद्य रसादि से मृत्यु को रोकने की कोशिश करता है, उसी प्रकार प्राकृतिक चिकित्सक भी रोगी का अवस्था, समय व दशानुसार प्रकृति के छिति, जल, पावक, गगन, समीरा—इन पञ्च तत्वों का उचित उपयोग करते हुए इलाज में पीछे नहीं रहता। प्राकृतिक चिकित्सा-विज्ञान का मूल आधार ही है प्रकृति के पंच तत्वों के उपयोग का विधान—वे तत्व जिनसे हमारे शरीर का ही निर्माण हुआ है और जिनमें समस्त प्राणि-वर्ग को अपनी 'अनन्त निद्रा' के बाद लय हो जाना है। पर प्रश्न का उत्तर इतना सरल भी नहीं है जितना मैंने उसे ऊपर बना दिया है। मरणासन्ना अवस्था प्राप्त रोगी के उपचार में उपर्युक्त तीनों प्रकार के चिकित्सकों के दृष्टिकोण एवं इलाज में आकाश-पाताल का अन्तर मिलेगा। एक एलोपैथिक डाक्टर या आयुर्वेदाचार्य यह जानते हुए भी कि रोगी की मृत्यु अवश्यम्भावी है, उसे छेड़ना व्यर्थ है, वह अपनी विषैली औषधियाँ उसके शरीर में घुसेड़ने से बाज नहीं आता और वह भी इस आशा में कि चलो कुछ क्षणों के लिए ही सही किन्तु रोगी को जीवन-दान तो मिल जायगा। पर एक प्राकृतिक चिकित्सक का व्यवहार ऐसी अवस्था में बिलकुल ही भिन्न होगा। प्रथम तो वह रोगी को ऐसी दशा यानी 'मरणासन्न' अवस्था में आने ही नहीं देगा (यदि काफी पहिले उसे अपने इलाज के प्रयोग में लाने का मौका दिया गया और यदि उसकी बातों पर उचित ध्यान दिया गया तो) पर यदि रोगी की मरणासन्न अवस्था में ही प्राकृतिक चिकित्सक को उपचार का करने अवसर दिया गया तो वह तभी के जीवन-दान देने का उत्तरदायित्व ग्रहण करेगा जब वह देख लेगा कि वस्तुतः रोगी मरणासन्न अवस्था में पहुंच गया है या नहीं अथवा तथाकथित डाक्टरों या वैद्यों के हस्तक्षेप के फल स्वरूप रोगी में जीवन-शक्ति का मात्रा इतनी रह गयी है या नहीं जिससे कि प्रकृति के पञ्च तत्यों का उपयोग करने पर शरीर में प्रतिक्रिया हो सके अथवा यह कि जीवन-दायक अथवा प्राण सञ्चालक अवयवों व अङ्गों का इतना ह्रास तो नहीं हो गया कि उनका पुनः निर्माण करना पड़े। यदि रोगी की सचमुच मरणासन्न अवस्था है अर्थात् रोगी को मरना हीं है तो मृत्यु को कोई भी नहीं रोक सकता। प्राकृतिक चिकित्सक भी ऐसी दशा में कभी भी हस्तक्षेप न करेगा, क्योंकि वह क्षण-स्थायी या अल्पकालीन जीवन अथवा स्वास्थ्य-दान का कभी भी कायल नहीं होता। इसके अतिरिक्त प्रचलित प्रणाली के डाक्टर या वैद्य तो मृत्यु शैया में भी रोगी के शरीर में बाहर से कुछ-न-कुछ विजातीय पदार्थ ठूसे ही जाते है पर प्राकृतिक चिकित्सक तो बाहर से कुछ भीतर डालने के बजाय रोगी के शरीर से कुछ-न-कुछ गन्दगी, मल, आदि दूषित द्रव्य जो रोग-को आश्रय दिये है—बाहर खींच लाने में ही सदैव प्रयत्नशील मिलेंगे। उनकी इस क्रिया में ही उनके उपचार के बीज रहते हैं। प्राकृतिक चिकित्सक एवं अन्य औषधि प्रणाली के उपचारकों के बीच के इस महान् अन्तर को समझना बहुत ही जरूरी है।

—कामताप्रसाद अग्रवाल

जीवन सखा में विज्ञापन देना अपने व्यापार की वृद्धि करना है। पत्र व्यवहार करें।

—व्यवस्थापक

अपने विचार

शुभारम्भ

बिहार प्राचीनतम काल से ही कर्मयोगियों का प्रमुख क्षेत्र रहा है और तब से आज तक यह अपने गौरव-गरिमा की वृद्धि करता हुआ कर्म-क्षेत्र में भारत के अन्य सब प्रान्तों की अपेक्षा अपना कदम बराबर आगे ही बढ़ाता रहा है। यहाँ तक कि भारत के राजनीतक जीवन के विकास में भी इसने विशेष योग प्रदान किया है। वर्तमान युग प्रवर्तक, सत्य और अहिन्सा के अवतार, विश्व-वंद्य महात्मा गांधी के सत्याग्रह- आन्दोलन की सबसे पहली प्रयोगशाला बनने का सौभाग्य बिहार प्रान्त को ही प्राप्त हुआ था। कांग्रेस के रचनात्मक कार्यक्रम को कार्यान्वित करने की दिशा में भी बिहार का नम्बर किसी से पीछे नहीं है। अतः बिहार में प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति का भी आज जो हम विशेष रूप से विकास होता देखते हैं, वह इसके गौरवमय अतीत तथा विकासोन्मुख वर्तमान के सर्वथा अनुरूप ही है।

रामनगर का प्रथम बिहार प्राकृतिक चिकित्सा सम्मेलन बिहार की इस सराहनीय प्रगति का ही साक्षी है। सम्मेलन के स्वागताध्यक्ष डा० रमाचरण का भाषण कई दृष्टियों से महत्व पूर्ण है। आपने बताया है कि इस प्रान्त में आज से ४० वर्ष पहले ही, जब कि यह नैसर्गिक उपचार पद्धति केवल कुछ इनेगिने व्यक्तियों की ही दिलचस्पी की चीज थी, यहाँ गावों तक में लुईकूने की जल-चिकित्सा पद्धति का यथेष्ट रूप में प्रचार हो चुका था, और आज तो बिहार को न केवल प्राकृतिक चिकित्सा के कई केन्द्र खोलने का प्रत्युत प्राकृतिक चिकित्सक के रूप में अनेक उज्ज्वल रत्न प्रस्तुत करने का भी गौरव प्राप्त है। किन्तु अभी तक ये शक्तियाँ बिहार में बिखरी सी रही हैं, जिनको संगठित करके नैसर्गिक चिकित्सा-आन्दोलन को वेग प्रदान करने के लिए समुचित आधार प्रस्तुत करने का आयोजन हुआ है —एक प्रान्तीय संघ की स्थापना के रूप में। इस संघ का उद्देश्य होगा प्राकृतिक चिकित्सा को जनता की सेवा का सच्चा साधन बनाना। आपने बड़े ही उक्ति पूर्ण ढंग से इस सत्य का प्रतिपादन किया है कि प्राकृतिक चिकित्सा ही एक मात्र ऐसी प्रणाली है जो गरीबों की सच्ची सेवा कर सकती है। अपने 'जीवन की संध्या में' पूज्य बापू ने जो अब अपने कार्यक्रम में प्राकृतिक चिकित्सा को भी शामिल कर लिया है, उन्होंने प्रकृति के लोक-कल्याण कारी सन्देश को देहात की निरीह, सीधी साधी, किन्तु आधि-व्याधि पीड़ित जनता तक पहुँचाने का जो संकल्प किया है उसका यही प्रकट रहस्य है। बिहार तो पूज्य बापू के पथ-प्रदर्शन का हमेशा सचाई, लगन और अदम्य उत्साह के साथ स्वागत और अनुसरण करता रहा है। अतः यह आशा करना बिलकुल स्वाभाविक ही है कि वह इस दिशा में भी सब से आगे कदम बढ़ायेगा।

डा० रमाचरण ने इसके लिए कुछ सुनिश्चित एवं उपादेय सुझाव भी रक्खे हैं। आप कहते हैं, " इस सम्बन्ध में जो कुछ किया जाना चाहिए उसका अभी तक श्रीगणेश भी नहीं हुआ है। इसके लिए जरूरत इस बात की है कि सेवा भाव से काम करने योग्य व्यक्ति सुव्यवस्थित चिकित्सालय खोलें और तत्सम्बन्धी अध्ययन, अनुसन्धान एवं प्रयोग-परीक्षण में वैज्ञानिक रीति से लग जायं। अपने अपने प्रयोगों के परिणामों का लिखित विवरण रक्खा जाय और उसे एक केन्द्रीय संस्था द्वारा जनता के हित की दृष्टि से प्रकाशित किया जाय। इस लिए सबसे पहले एक प्रांतीय संगठन की नींव डालना आवश्यक है। " आपके ये सुझाव केवल मौखिक या लिख कर सराहना करने योग्य नहीं, गम्भीरता पूर्वक विचार करने और फिर ठीक जंचने पर तत्काल कार्यरूप में परिणत करने योग्य हैं। यह युद्धोत्तर काल संसार के पुनर्निमाण का युग है। इसके लिए पहले से ही नई-नई योजनाएं बन रही हैं—देश का महान लक्ष्य- -स्वाधीनता- -अब हमारे बिलकुल निकट आ गया

है। ऐसे समय में कॉंग्रेस के अन्य कार्य क्रम को कार्यान्वित करने के साथ-साथ उसके इस अत्यधिक महत्वपूर्ण अंग के लिए भी विकास-योजना तैयार करनी चाहिए जिससे कि राजनीतिक स्वतंत्रता के साथ साथ भारत को मानसिक स्वतंत्रता की भी समान रूप से प्राप्ति हो जाय। विदेशी पेटेन्ट दवाइयों, तथा ऐलोपैथी प्रणाली की दासता से भी हमें मुक्ति मिल जानी चाहिए। रोगोपचार के लिए तरह तरह की दमनकारी, जहरीली और मारक औषधियों को तिलांजलि देकर हम जीवन के इस स्वाभाविक मार्ग को ग्रहण करें, इसी पर हम अग्रसर हों, प्राकृतिक चिकित्सा की सच्ची सार्थकता इसी में निहित है। पूज्य बापू के शब्दों में 'प्राकृतिक चिकित्सा जीवन की एक पद्धति है, रोग मिटाने के इलाजों का तरीका नहीं।' प्राकृतिक चिकित्सा जीवन विताने का ऐसा तरीका सिखाती है कि कोई कभी आधि व्याधि से पीड़ित ही न हो, वह सुख शान्ति पूर्वक जीवन व्यतीत कर सके। यदि किसी को दैवात् रोग हो भी, तो वह शाप नहीं वरदान के ही रूप में हो। रोग क्या है, इसे दूर करने के सही तरीके क्या हैं, प्राकृतिक चिकित्सा यही तो पीड़ित मानवता को समझाना चाहती है? फिर इसकी सार्थकता अन्य चिकित्सा पद्धतियों से अधिक क्यों न हो?

प्रकृति के इस लोक कल्याणकारी संदेश को गांव गांव तक पहुंचाने के लिए बिहार प्रान्तीय सम्मेलन ने जो योजना प्रस्तुत की है उसका हम हार्दिक स्वागत करते हैं, और आशा करते हैं कि प्रकृति-प्रेमी जनता तथा राष्ट्र हित का चिन्तन करने वाले लोक सेवियों का इसे पूर्ण सहयोग प्राप्त होगा। इस सम्बन्ध में हम बिहार प्रान्त की कॉंग्रेस सरकार से बहुत बड़ी आशा रखते हैं। इस तरह का कोई भी आन्दोलन सरकार तथा जनता दोनों का समान रूप से सहयोग प्राप्त होने पर ही सहूलियत के साथ और सफलता पूर्वक चलाया जा सकता है। बिहार की जनता का इस शुभारम्भ में शत प्रति सहयोग तो प्राप्त होगा ही, कॉंग्रेस सरकार भी इसे महत्वपूर्ण सहायता प्रदान करेगी, यही हमारी हार्दिक आशा है।

प्राकृतिक चिकित्सा एक सरल स्वाभाविक मार्ग

(पृष्ठ २१६ का शेषांश)

(१) बाबू दीप नारायण सिंह (२) बाबू महेश प्रसाद (३) बाबू विन्ध्येश्वरी प्रसाद वर्मा (४) बाबू रागेश्वर प्रसाद सिंह एम० एल० ए० (नियोजक) (५) बाबू रमाचरण (६) डा० शत्रुघ्न सिंह (७) बाबू लक्ष्मी नारायण, नयाबाजार, (८) बाबू रत्नेश्वरी नन्दन सिंह, (९) बाबू मथुरा प्रसाद सिंह।

४ चूंकि प्रकृति चिकित्सा ही देहात की गरीब जनता के सब घरों में प्रवेश करने की और उनके जीवन में परिवर्तन कर उनके स्वास्थ्य में स्थायी सुधार और रोग से भी उनकी रक्षा करने की सच्ची योग्यता रखती है, इसलिए यह सम्मेलन प्रान्तीय सरकार से तथा स्थानिक संस्थाओं से अनुरोध करता है कि वह प्रकृति चिकित्सा के प्रचार और प्रगति में सहायता दे।

५ यह निश्चय हुआ कि प्रान्तीय प्रकृति चिकित्सा सम्मेलन का अधिवेशन अगले अक्तूबर में किया जाय और स्थान निर्णय का अधिकार प्रस्ताव नं० २ में बनाई गई समिति के ऊपर दिया जाय।

यह प्रस्ताव सभापति द्वारा उपस्थित किया गया और सर्वसम्मति से पास हुआ।

—:०:—

पढ़िये ! लाभ उठाइये !!

सुन्दर, स्वस्थ और सुखी जीवन के इच्छुकों को
ये पुस्तकें पढ़नी चाहिए

(१) रोगों की अचूक चिकित्सा (चतुर्थ संस्करण) : श्री जानकी शरण, वर्मा, बी० ए०	५)
(२) बच्चों की रक्षा—लुई कूने	॥=)
(३) मैं निरोग हूँ या रोगी ?—लुई कूने	॥=)
(४) स्वास्थ्य के नुस्खे—'जीवन सखा' कार्यालय	।)
(५) क्या और कैसे खायं—डा० बालेश्वर प्रसाद सिंह	।=)
(६) ब्रह्मचर्य ही जीवन है—स्वामी शिवानन्द	१॥)
(७) आनन्दमय जीवन—श्री शंकरलाल तिवारी	॥)
(८) कब्ज या कोष्ठबद्धता : डा० बालेश्वरप्रसाद सिंह	१)
(९) तपेदिक—श्री एम० एन० पांडेय	४)
(१०) शाकों के गुण—श्री नारायणप्रसाद अरोड़ा	।)
(११) फलाहार—श्री नारायणप्रसाद अरोड़ा	।)
(१२) वैज्ञानिक जल-चिकित्सा—श्री कुलरंजन मुखोपाध्याय	२)
(१३) सचित्र हठयोग—स्वामी शिवानन्द	१)
(१४) मन और उसका निग्रह (प्रथम भाग)—स्वामी शिवानन्द	१)
(०५) मन और उसका निग्रह (द्वितीय भाग) ,,	३)
(१६) हम सौ वर्ष कैसे जीवें : श्री केदारनाथ गुप्त, एम० ए०	१॥।)
(१७) आरोग्य-साधन—महात्मा गाँधी	॥)
(१८) स्वास्थ्य साधन—श्री रामदास गौड़	३॥)
(१९) आहार ही औषध है : डा० एल० एन० रतरा	१॥)
(२०) दवाओं से बचो—श्री गंगाप्रसाद गौड़, 'नाहर'	१)
(२१) Your diet in health & disease by Harry Benjamin	1-4-0
(२२) Food-de-Medicine by Dr, L. N. Ratra, H. M. B.	1-2-0
(२३) Universal un-cooked food	3-8-0
(२४) Nature Cure of Eye defect by Dr. K. L. Sharma.	2-0-0
(२५) Practical Nature cure ,, ,, ,,	8-8-0
(२६) Constipation and Dyspepsia	1-8-0
(२७) Gems of health	2-0-0
(२८) Drugless healing	1-0-0

स्वास्थ्य सम्बन्धी पुस्तकें मिलने का पताः—

मैनेजर, स्वास्थ्य ग्रंथ-भंडार २८७, बादशाहीमंडी, चौक, प्रयाग।

प्रश्नोत्तरी कूपन मई, १९४६।

वे जीवन से निराश हो चुके थे !

किन्तु [illegible] अब देखिए क्या कहते हैं !

"मैं भी औरों की तरह मुद्दत तक क़ुदरती इलाज के नाम से घबड़ाता था। मगर ढ़ाई बरस के तजुर्बे ने मुझे यह साबित कर दिया है कि बरसों की पुरानी बीमारी खोने और खोयी हुई तनदुरुस्ती को पाने का कोई तरीक़ा प्राकृतिक चिकित्सा से बेहतर नहीं है।"

—पं० हृदयनाथ कुंजरू एल-एल० डी०,
प्रेसिडेण्ट सर्वेण्टस् आफ इण्डिया सोसाइटी, प्रयाग।

कुंजरू जी की तरह न जाने कितने असाध्य और निराश रोगियों को **प्राकृतिक स्वास्थ्य गृह के संचालक डा० बालेश्वर प्रसाद सिंह** के द्वारा नया जीवन मिला है और उनके हृदयों में प्राकृतिक चिकित्सा विधि के प्रति एक अनुराग की भावना उत्पन्न हो गई है।

यदि आप भयानक से भयानक, व्याधि, अथवा जीर्ण रोग से पीड़ित हो रहे हैं तो उससे छुटकारा पाने के लिए नीचे लिखे पते से पत्र-व्यवहार करें। हमारे स्वास्थ्य गृह में प्रायः सभी प्रकार के रोगों का नैसर्गिक विधियों से सफलतापूर्वक इलाज होता है।

स्वास्थ्य गृह में रोगियों के रहने का प्रबन्ध

स्वास्थ्य-गृह में रोगियों के आराम और सुविधा के ख्याल से दो श्रेणियां निर्धारित कर दी गई हैं। प्रथम श्रेणी के रोगी से १००) मासिक और द्वितीय श्रेणी के रोगियों से ७५) मासिक लिया जाता है, जिसमें चिकित्सा दूर करने की फीस भी शामिल है। रोगियों को अपने भोजन का प्रबन्ध अलग से करना पड़ेगा। पूरा विवरण पत्र भेजकर प्राप्त करें। पत्र के साथ टिकट भेजना जरूरी है।

नोटः—हमारे यहां संक्रामक रोगों से पीड़ित रोगियों के रखने का प्रबन्ध नहीं है।

व्यवस्थापक—

प्राकृतिक स्वास्थ्यगृह, लूकरगंज, इलाहाबाद।

Printed by R. N. Avasthi at the K. P Press and Printing School, Alld.
Published by Syt. Baleshwar prasad Sinha. 287, Badshahi Mandi,
Chowk, ALLAHABAD.

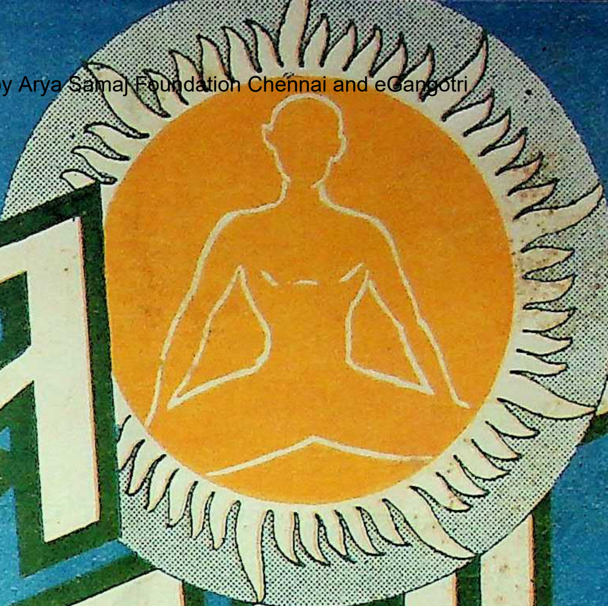

जीवन सखा

रिक, मानसिक और नैतिक स्वास्थ्य का पथ-प्रदर्शक

इस अंक के कुछ विशेष आकर्षण

१. अन्ध विश्वास—श्री प्यारेलाल १

२. आम की गुठली की गरी—महात्मा गांधी २

३. हम थक क्यों जाते हैं—श्री रामनारायण मिश्र ४

४. गर्भस्राव या गर्भपात—डा० इन्दुमती सिन्हा एन० डी०, डी० वाई० ६

तथा अन्य उपयोगी लेखादि

वार्षिक चन्दा ३)

इस प्रति का (=)

जून

०३४३२८ ना

कांगड़ी गुरुकुल में ३ आक्टूबर सन १९५५ ई. को दुबारा माँजते पर प्राप्त

— डा० बालेश्वरप्रसाद सि

विषय सूची

—:o:—

१—अन्धविश्वास—श्री प्यारेलाल २२२

२—आम की गुठली की गरी—महात्मा गांधी २२४

३—मूत्राशय की पथरी—ले०—रमाचरण, डी० एच० डी० प्रकृति चिकित्सक, २२५

४—हम थक क्यों जाते हैं ?—श्री राम नारायण मिश्र २३०

५—गर्भस्राव या गर्भपात—डा० इन्दुमती सिन्हा, यन० डी०, डी० वाई २३३

६—अस्थिवक्रता तथा कुछ अन्य बाल-रोग—श्री ब्रजमोहन मिहिर २३८

७—प्राकृतिक चिकित्सा के कुछ अनुभूत प्रयोग—श्री गुलाब चन्द जैन गोयल 'प्रचन्ड' साहित्यरत्न २४३

८—दीर्घ जीवन के रहस्य—डा० रामचरण हेन्द्र एम० ए० डी० लिट्० २४४

९—तुलसी—रोगों की सरल चिकित्सा—श्री रामेश वेदी आयुर्वेदालङ्कार २४६

१०—सुख का स्वरूप—श्री हरिभाऊ उपाध्याय २४९

जीवन सखा प्रेमियों से

जीवन सखा का उद्देश्य जन साधारण के शारीरिक, मानसिक एवं नैतिक स्वास्थ्य का पथ-प्रदर्शन करना है—बस, इसी भावना से प्रेरित होकर हम गत दस वर्षों से युग के अनेक थपेड़ों को सहते हुए भी जीवन सखा प्रकाशित करते आ रहे हैं। हमें अपने उद्देश्य में सफलता भी मिली किन्तु पूर्ण रूप से नहीं। हमारी मनोकामना थी कि जीवन सखा का संदेश देश के लक्ष्मीपतियों के भव्य भवनों से लेकर गरीब भाइयों की अँधेरी झोपड़ियों तक में गूँज उठे, पर हम अपने लक्ष्य से सर्वथा दूर ही रहे—कुछ युग की विकरालतावश; कुछ अपने स्नेहियों के सक्रिय सहयोग के अभाववश। अब देशवासियों के गिरते हुए स्वास्थ्य को देखकर हमारी हार्दिक इच्छा है, बल्कि अनुरोध है, कि समस्त जीवन सखा प्रेमी व्यक्तिगत रूप से हमारी ओर से प्रत्येक स्वास्थ्य प्रेमी स्त्री-पुरुष को जीवन सखा द्वारा प्रचारित प्राकृतिक चिकित्सा प्रणाली के अनुपम रहस्य से परिचित कराने का भरसक प्रयत्न करें उनसे जीवन सखा परिवार में शामिल होने का अनुरोध करें ताकि जीवन सखा का अधिकाधिक प्रचार हो, जीवन सखा का संदेश घर-घर में पहुँचे और सर्वसाधारण का स्वास्थ्य सुधरे। इतना होने पर ही हम अपनी मंजिल पर पहुँच सकेंगे, अन्यथा नहीं। आशा है हमारे स्नेही हमारी इस प्रार्थना पर ध्यान देकर अपना सक्रिय सहयोग प्रदान करेंगे।

—व्यवस्थापक

Reg. No. 1-172

शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्
NATURE ONLY HEALS

जीवन सखा

सम्पादक
डा० बालेश्वरप्रसाद सिंह

वर्ष ११] जून १९५६ ई० [अङ्क ६

अन्धविश्वास

[श्री प्यारेलाल]

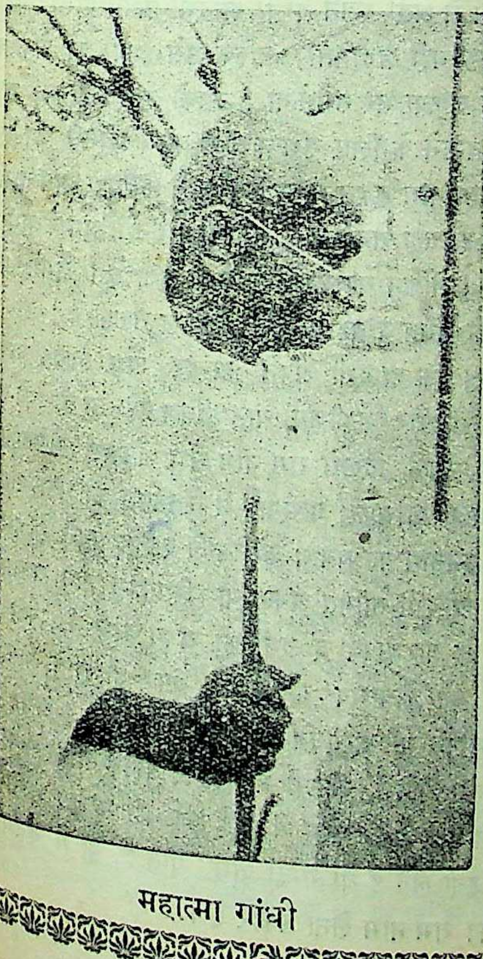

महात्मा गांधी

उस दिन अपने भाषण में गांधी जी ने कुदरती इलाज का जिक्र किया। यानी तन, मन और आत्मा की बीमारियों को खास तौर पर राम-नाम की मदद से मिटाने के बारे में समझाया। एक भाई ने लिखा था कि कुछ लोग अन्ध विश्वास की वजह से कपड़ों पर राम-नाम छपवा लेते हैं, और उन्हें अपने बदन पर, खास कर छाती पर पहनते-ओढ़ते हैं। दूसरे कुछ लोग कागज के टुकड़ों पर बारीक हरूफों में करोड़ों की तादाद में राम-नाम लिखते हैं और उन्हें काट-काट कर उनकी छोटी-छोटी गोलियां इस ख्याल से निगल जाते हैं कि वे इस तरह दावा कर सकेंगे कि राम नाम उनके दिल में छा गया है। एक और भाई ने उनसे पूछा था कि क्या उन्होंने राम नाम को सब तरह की बीमारियों का एक ही रामबाण इलाज कहा है ? और क्या, उनके ये राम ईश्वर के अवतार और अयोध्या के राजा दशरथ के पुत्र थे ? कुछ ऐसे भी लोग हैं, जो मानते हैं कि गांधी जी खुद भुलावे में पड़े हुए हैं और अन्धविश्वासों से भरे इस देश के हजारों अन्धविश्वासों में एक और अन्ध-विश्वास बढ़ाकर दूसरों को भी भुलावे में डालने की कोशिश कर रहे हैं। गांधी जी ने कहा: "इस तरह की टीका का मेरे पास कोई जवाब नहीं है। मैं तो अपने दिल से यह कहता हूँ कि अगर लोग सचाई का बेजा इस्तेमाल करते हैं और धोखे-धड़ी से काम लेते हैं, तो मैं उसकी परवाह क्यों करूँ ? जबतक मुझे अपनी सचाई का पक्का भरोसा है, मैं-

इस डर से कि लोग उसे गलत समझेंगे या उसका गलत इस्तेमाल करेंगे, उसका ऐलान करने से रुक कैसे सकता हूँ ? इस दुनियां में ऐसा कोई नहीं है, जिसने पूरी-पूरी सच्चाई को जाना हो । यह तो अकेले एक ईश्वर का ही विशेषण है । हम सब तो सिर्फ सापेक्ष सत्य को ही जानते हैं । इसलिए जिसे हम जानते हैं उसीके मुताबिक हम अपना बर्ताव रख सकते हैं । इस तरह सच्चाई का पालन करने से कोई कभी गुमराह नहीं हो सकता ।”

राम कौन है ?

गांधी जी ने कहा; “जिस राम-नाम को मैं सब बीमारियों की रामबाण दवा कहता हूँ, वह राम न तो ऐतिहासिक या तवारीखी राम है, और न उन लोगों का राम है, जो उसका इस्तेमाल जादू-टोने के लिए करते हैं । सब रोगों की रामबाण दवा के रूप में मैं जिस राम का नाम सुझाता हूँ, वह तो खुद ईश्वर ही है, जिसके नाम का जप करके भक्तों ने शुद्धि और शान्ति पाई है, और मेरा यह दावा है कि राम-नाम सभी बीमारियों की, फिर वे तनकी हों या रूहानी हों, एक ही अचूक दवा है । इसमें शक नहीं कि डाक्टरों या वैद्यों से शरीर की बीमारियों का इलाज कराया जा सकता है । लेकिन राम-नाम तो आदमी को खुद ही अपना वैद्य या डाक्टर बना लेता है, और उसे अपने को अन्दर से नीरोग बनने की संजीवनी हासिल करा देता है । जब कोई बीमारी इस हद तक पहुँच जाती है कि उसे मिटाना मुमकिन नहीं रहता, उस वक्त भी राम-नाम आदमी को उसे शान्त और स्वस्थ भाव से सह लेने की ताकत देता है ।” उन्होंने और कहाः “जिस आदमी को राम-नाम में श्रद्धा है, वह जैसे-तैसे अपनी जिन्दगी के दिन बढ़ाने के लिए नामी-गरामी डाक्टरों और वैद्यों के दर की खाक नहीं छानेगा और यहां से वहां मारा-ढकेला नहीं फिरेगा । राम-नाम डाक्टरों और वैद्यों के हाथ टेक देने के बाद लेने की चीज भी नहीं । वह तो आदमी को डाक्टरों और वैद्यों के बिना भी अपना काम चला सकनेवाला बनाने की चीज है । राम-नाम में श्रद्धा रखने वाले के लिए वही उसकी पहली और आखिरी दवा है ।”

राम-नाम कैसे लें ?

दूसरे दिन के अपने भाषण में इसी चीज को समझाते हुए गांधी जी ने बताया कि किस तरह इनसान को सतानेवाली तीनों तरह की बीमारियों के लिए अकेले राम-नाम को ही रामबाण इलाज बनाया जा सकता है । इसकी पहली शर्त तो यह है कि राम-नाम दिल के अन्दर से निकलना चाहिए । लेकिन इसका मतलब क्या ? लोग अपनी जिस्मानी बीमारियों का इलाज खोजने के लिए दुनियां के आखिरी छोर तक जाने से भी नहीं थकते, जबकि मन और आत्मा की बीमारियों के मुकाबले ये जिस्मानी अलालतें बहुत कम अहमियत रखती हैं । उन्होंने कहाः “मनुष्य का भौतिक शरीर तो आखिर एक दिन मिटने ही वाला है । उसका स्वभाव ही है कि वह हमेशा के लिए रह ही नहीं सकता । और तिस पर भी लोग अपने अन्दर रहनेवाली अमर आत्मा को भुलाकर उसी का ज्यादा प्यार-दुलार करते हैं । राम-नाम में श्रद्धा रखने वाला आदमी अपने शरीर को ऐसे झूठे लाड़ नहीं लड़ायेगा, बल्कि उसे ईश्वर की सेवा करने का एक जरिया-भर समझेगा । उसको इस तरह का माकूल जरिया बनाने के लिए राम-नाम से बढ़कर दूसरी कोई चीज नहीं । राम-नाम हृदय में अंकित करने के लिए अनन्त धीरज की, बे-इन्तिहा सब्र की, जरूरत है । इसमें जुग-के-जुग लग सकते हैं । लेकिन यह कोशिश करने जैसी है । इसमें कामयाबी भी भगवान् की कृपा से ही मिल सकती है ।

जब तक आदमी अपने अन्दर और बाहर सच्चाई, ईमानदारी और पाकीजगी या पवित्रताके गुणों को नहीं बढ़ाता, उसके दिलसे राम-नाम नहीं निकल सकता । हम लोग रोज शामकी प्रार्थना में स्थितप्रज्ञ का यानी साबित-अक्ल इनसान का बयान करनेवाले श्लोक पढ़ते हैं । हममें से हरएक आदमी साबित-अक्ल या स्थितप्रज्ञ बन सकता है, बशर्ते कि वह अपनी इन्द्रियों को अपने काबू में रखे और जीवन को सेवामय बनाने के लिए ही खाये, पीये और मौज-शौक या हँसी-विनोद करे । मसलन्, अगर आप एक तंग-अँधेरी कोठरी में उसकी तमाम खिड़कियाँ और दरवाजे बन्द करके सोने में कोई हर्ज नहीं महसूस करते और गन्दी हवा लेते हैं या गन्दा पानी पीते हैं, तो मैं कहूँगा कि आपका राम-नाम लेना बेकार है ।

"लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि चूंकि आप जितने चाहिए उतने पवित्र नहीं है, इसलिए आपको राम-नाम लेना छोड़ देना चाहिए। क्योंकि पवित्रता या पाकीजगी हासिल करने के लिए भी राम-नाम लेना मुफीद है। जो आदमी दिल से राम-नाम लेता है, वह आसानी से अपने-आप पर काबू रख सकता है और 'डिसिप्लिन' या अनुशासन में रह सकता है। उसके लिए तन्दुरुस्ती और सफाई के कानूनों का पालन करना सहल हो जायगा। उसकी जिन्दगी सहज भाव से बीत सकेगी—उसमें कोई विषमता न होगी। वह किसी को सताना या दुःख पहुँचाना पसन्द नहीं करेगा। दूसरों के दुःखों को मिटाने के लिए, उन्हें राहत पहुँचाने के लिए, खुद तकलीफ उठा लेना उसकी आदतों में आ जायगा और उसको हमेशा के लिए एक अमिट सुख का लाभ मिलेगा—उसका मन एक शाश्वत और अमर सुखसे भर जायगा। इसलिए मैं कहता हूँ कि आप लगे रहिए और जब तक काम करते हैं, तब तक सारा समय मन-ही-मन राम-नाम लेते रहिए। इस तरह करने से एक दिन ऐसा भी आयेगा कि जब राम-नाम आपका सोते-जागते का साथी बन जायगा और उस हालत में आप ईश्वर की कृपा से तन मन और आत्मा से पूरे-पूरे स्वस्थ और तन्दुरुस्त बन जायँगे।"

(हरिजन से)

आम की गुठली की गरी

[महात्मा गांधी]

मुझे एक दोस्त ने 'करण्ट सायन्स' की एक कतरन भेजी है, जिसमें यह बताया गया है कि आम की गुठली की गरी अनाज और चारे की जगह खासा अच्छा काम दे सकती है।

"हाल के अन्दाजे के मुताबिक हिन्दुस्तान में खली, ज्वार, कपास वग़ैरह की संगीन खूराक गायों, बैलों, बछड़ों वगैरा की कुल आबादी के २९.१०% के लिए ही काफ़ी होती है और घास-चारा सिर्फ़ ७८.५% के लिए ही पूरा होता है। इसमें भेड़ों, बकरियों, घोड़ों, खच्चरों, गधों वगैरह की गिनती शामिल नहीं है। अकाल के समय यह कमी और भी बढ़ जाती है। इज्जतनगर की ग़िज़ाई तहकीक़ाती संस्था इस कमी को पूरा करने के लिए दाने-चारे की नई-नई चीज़ों की खोज कर रही है। वहाँ आम की गुठली की गरी को आदमियों और जानवरों को खिलाने के बारे में भी तहक़ीक़ात हुई है। आज तो यह गुठलियाँ कूड़ा समझ कर फेंक दी जाती हैं। लेकिन क़ीमयाबी (रासायनिक) खोज से यह मालूम हुआ है कि इसमें प्रोटीन, कारबोहाइड्रेट यानी चीनी और चरबी काफी मिक़दार में पाई जाती है (क्रूड प्रोटीन ८.५%, ईथर एक्स्ट्रैक्ट ८.८५% और घुल जाने वाले कारबोहाइड्रेट ७४.४६%)।"

"इस छानबीन से आम की गुठली की गरी एक अनाज की गिनती में आ गई है। इससे पता चला है कि जो गुठलियाँ आज रद्दी समझ कर फेंक दी जाती हैं, उनसे ७ करोड़ पौण्ड पचाया जा सकने वाला प्रोटीन और तक़रीबन् ७८ करोड़ पौण्ड स्टार्च (निशास्ता) मिल सकता है। यह भी अन्दाजा लगाया गया है कि यह पचाया जा सकने वाला प्रोटीन ८० पौण्ड जौ में से जितना निकलता है उतना ही १०० पौण्ड आम की गुठली की गरीमें से भी निकलता है और ८६ पौण्ड जौ के बराबर स्टार्च (निशास्ता) निकलता है।"

मुझे इस गरी के इस्तेमाल का अपने बचपन से ही पता था। मगर आज तक शायद ही किसी ने खूराक की तौर पर इसका इस्तेमाल करने के लिए इसे सँभाल कर रखने की बात सोची हो। आज कल आम का मौसिम है। अगरचे काफ़ी दिन बेकार चले गये हैं, फिर भी क्या ही अच्छा हो अगर हर एक गुठली को बचा कर रक्खा जाय और उसे अनाज की जगह सेंक कर खाया जाय या जिन्हें उसकी ज़रूरत हो उन्हें दे दिया जाया ? आज तो अनाज का जो भी दाना बचाया जा सके, वह मिला हुआ ही गिना जायगा।

(हरिजन बन्धु' से)

मूत्राशय की पथरी

डा० रमाचरण, डी० एच० डी, प्रकृति-चिकित्सक

डा० रामचरण बिहार के एक लब्ध प्रतिष्ठ प्राकृतिक चिकित्सक हैं। आपका यह लेख प्रकृति कुंज, मुजफ्फरपुर, से एक पुस्तिका के रूप में प्रकाशित हुआ है। विषय की उपयोगिता की दृष्टि से तथा पथरी जैसे कष्ट दायक रोग से छुटकारा दिलाने वाली प्रकृति के इस सन्देश को प्रचारित करने के लिए हम इसे प्रकाशित करते हैं। यह लेख कितना उपयोगी है, यह बताने की आवश्यकता नहीं, पाठक इसे पढ़ कर स्वयं समझ सकते हैं।—सं०

सामान्यतः लोग समझते हैं कि पेशाब में रेत आना या मूत्राशय में पथरी का बनना एक ऐसा रोग है जो ला-इलाज है। और देखने में भी आता है कि प्रचलित चिकित्सा-प्रणालियों से यह रोग नहीं मिटता। अक्सर यह रोग परिवारिक या वंशगत दोष के रूप में भी देखा जाता है। ऐसा जान पड़ता है रेत या पथरी बनाना उनके शरीर का धर्म या स्वभाव-सा हो गया है।

वास्तव में इस अवस्था के मूल कारण की ओर लोगों का ध्यान ही नहीं जाता। वे तो इस दोष से होने वाली पीड़ा पर ही नजर रखते हैं और एय मात्र उसी से बचना चाहते हैं। पेशाब में रेत क्यों आता है या मूत्राशय में पथरी क्यों बनती है इससे उन्हें कोई मतलब नहीं। जब उस पथरी के निकलने के कारण दर्द होता है तब उस ओर ध्यान जाता है और वह भी उस दर्द के शमन भर के लिए। दवायें भी दर्द या तकलीफ को घटाने के ही लिये दी जाती हैं। इसलिए असल दोष बना रह जाता है और दर्द भी बारंबार होता रहता है।

प्राकृतिक चिकित्सा की दृष्टि से यह रोग भी अन्य दूसरे रोगों के समान ही शरीर के भीतर विजातीय द्रव्यों के संचय का एक परिणाम है। इसी एक कारण से जैसे कुछ लोगों को बारंबार सर्दी खांसी या फोड़े फुन्सियाँ होती हैं वैसे ही कुछ लोगों को यह या दूसरे मूत्र सम्बन्धी दोष होते हैं।

खून में जो विकारी द्रव्य इकट्ठा होते रहते हैं उनका कुछ भाग फेफड़े के रास्ते, कुछ स्वेद के साथ पर अधिकांश पेशाब के रूप में शरीर से बाहर फेंके जाते हैं। खून की धारा शरीर के विभिन्न भागों से घूमती हुई गुर्दों में जाती है और वहां छनती है। गुर्दों का काम है कि वे यूरेकाल तथा अन्य विषैले द्रव्यों को छान लें और पेशाब के रूप में मूत्राशय में भेज दें जहां से वह मूत्र मार्ग द्वारा बाहर कर दिये जायँ।

अब यदि पेशाब में विकारी द्रव्यों का अंश सामान्यतः जितना चाहिये उतना या उससे कुछ ही अधिक हुआ तब तो कुछ हर्ज नहीं, पेशाब में घुल मिल कर वे शरीर के बाहर हो जाते हैं। परन्तु यदि वे द्रव्य सामान्य से बहुत अधिक हुये तो जैसे नमक के घोल में नमक के दाने पड़ने लगने हैं वैसे ही मूत्राशय के भीतर ही रेत की तरह इन विषैले द्रव्यों के महीन दाने जमने लगते हैं। साधारणतः रेत कण भी पेशाब के साथ बाहर हो जाते हैं पर अक्सर इनके कुछ अंश भीतर रुक जाते हैं और वे सब एक साथ मिल कर बड़ी पथरी का रूप धारण कर लेते हैं। ऐसी दशा में साधारणतः गुर्दे और मूत्राशय की तरफ केवल कुछ बोझ व बेचैनी सी जान पड़ती है। परन्तु जब वह पथरी या उसका कोई बड़ा टुकड़ा बाहर निकलने लगता है तो मूत्रमार्ग में असह्य पीड़ा होती है। इसी को डाक्टर लोग 'रेनल कालिक पेन' कहते हैं।

अब यह स्पष्ट है कि यदि इस पीड़ा का बारंबार आक्रमण (या अनुभव) रोकना हो तो इसके मूल कारण को दूर करना होगा अर्थात् ऐसा उपाय करना होगा कि गुर्दे और मूत्राशय को अपनी शक्ति से अधिक विकारी-द्रव्यों को बहाने का काम न करना पड़े। नहीं तो जैसे केवल पानी बहाने वाली पतली नाली में राख मिट्टी और कोयला डालते

रहने से बारंबार सफाई करने पर भी वह गन्दी और बेकार बनी रहती है वही दशा गुर्दे और मूत्राशय की भी होगी।

गुर्दे और मूत्राशय पर अधिक बोझ न पड़े, इसके लिए दो बातों पर ध्यान देना होगा (१) आहार और (२) शरीर की आन्तरिक सफाई।

भिन्न भिन्न रोगियों की दशा के अनुसार चिकित्सा की विधि और उपचार की अवधि भिन्न होगी परन्तु सामान्यतः नीचे लिखे उपचारों से पथरी का बनना एवं तज्जन्य पीड़ा का होना तो रुक ही जायगा। यदि और भी कोई पेशाब सम्बन्धी वा अन्य दोष होंगे तो वे भी दूर हो जायेंगे और सामान्यतः समूचे शरीर की तन्दुरुस्ती में सुधार देखने में आयेगा। इसमें आश्चर्य्य की कोई बात नहीं है, क्योंकि शरीर के किसी भी भाग में किसी तरह की पीड़ा सारे शरीर की तन्दुरुस्ती में गड़बड़ी होने के ही कारण प्रकट होती है।

इस दृष्टि से पहले हमें ऐसा करना चाहिये कि शरीर को अपने भीतर संचित विकारों को निकालने और नष्ट करने का अवसर मिले। इसके लिए अनाहार सबसे अच्छा उपाय है। दो से चार दिन तक केवल जल (जिसमें नींबू या नारंगी का रस मिला दिया जाय) पर रहना चाहिये। उसके उपरान्त दो तीन दिनों तक केवल रसदार खट्टे, मीठे फल लिए जायँ। इन दिनों नित्य दो बार डूश लेकर सुबह शाम पेट धो देना आवश्यक है। उसके बाद क्रमशः आहार को बढ़ाकर नीचे लिखे जैसे क्रम पर आ जाना चाहिये—

सुबह को गरम पानी में एक नींबू का रस – ताजे रसदार फलों का नाश्ता (जरूरत हो तो ताजा कच्चा दूध)

९ बजे एक ग्लास पानी में एक नींबू का रस—

दिन को कुछ लाल चिउड़ा, दही और भाजी सलाद।

४ बजे फल रस का पेय—गूदेदार फल, एक दो चोकरदार खजूर के साथ कुछ भिगोये किशमिश।

इसके साथ आरंभ में एक स्टीम बाथ सारे बदन को दे देना चाहिये। दो तीन महीने तक या उससे भी अधिक समय तक रोज १५ से २० मिनट का एक हिपपाथ (ठंढे जल से) दिया जाना चाहिये। समूचे शरीर में धूप और हवा लगने देना और सूखी मालिश से शरीर की त्वचा को अपना काम करने के लिये सशक्त बनाना भी न भूलना चाहिये। पाचन-क्रिया ठीक रहे इसके लिए सुबह शाम टहलना तथा कुछ और हल्के व्यायाम भी नियमित रूप से लेना उचित है। इसके अतिरिक्त सप्ताह में एक दिन नहीं तो पक्ष में एक दिन तो जरूर ही उपवास करना चाहिये। उससे शरीर को अपनी बची खुची सफाई पूरी करने का मौका मिल जाता है और इस तरह रोग का भय जाता रहता है।

परन्तु यह याद रखना चाहिये कि आहार और व्यायाम के सम्बन्ध में इसके बाद भी सावधान रहना पड़ेगा भले ही बाथ लेना कुछ महीने के बाद बन्द कर दिया जावे। क्योंकि जैसा कि ऊपर बताया गया है कि आहार की गड़बड़ी और कब्ज रहना तथा पसीना न निकलना ही इस रोग के मूल कारण है।

पित पथरी और उसका शूल

पित्त पथरी और उसके कारण होनेवाला शूल एक भयानक रोग है जिसका इलाज प्रचलित चिकित्सा-प्रणालियों से बड़ा कठिन और प्रायः दुःसाध्य होता है। एलोपैथिक डाक्टर इस दुरवस्था का इलाज अन्न दवा की बनिस्बत आपरेशन वाली छुरी से करना अधिक पसन्द करते हैं। पित्त की थैली को वे घांटी (tonsils) के समान उपद्रव का घर मानते हैं और रोग के लक्षण से बचने के लिए उसे ही काट फेंकना उचित समझते हैं।

पथरी पित्त की थैली (Gall bladder) में बनती है। पर सब की 'थैली' में पथरी नहीं बनती, इससे सहज ही समझा जा सकता है कि "पित्त की थैली" का स्वाभाविक काम पथरी बनाना नहीं, कुछ और है—पथरी बनती है किसी अस्वाभाविक दशा में।

तो 'पित्त की थैली' का काम क्या है और किन अस्वाभाविक (abnormal) दशाओं में उसमें पथरी बनने लगती है?

पित्त एक जबरदस्त पाचक-रस है जो लिवर (जिगर) में तैयार होता है और लगभग दस छटांक से सवा सेर तक रोज़ाना लिवर से निकलता है। यह पित्त गहरे सुनहले रंग से लेकर गहरी पिस्तई रंग का कुछ लस-लसा सा होता है। इसका स्वाद बड़ा ही कड़वा होता है। इस पित्त में पचाने वाले रस के साथ कुछ विकारी द्रव्य भी रहते हैं जिन्हें लिवर

अंतड़ी के रास्ते बाहर करना चाहता है। पित्त लिवर से कुछ न कुछ बराबर ही बन कर निकला करता है पर उसकी जरूरत तो तब होती है जब खाया हुआ खाद्य आमाशय से निकल कर अँतड़ी में प्रवेश करता है। उस समय काफी तौर पर पित्त मिल सके इसके लिए पित्त को संचित करने का एक स्थान है,—उसे ही 'पित्त की थैली' वा 'गाल-ब्लाडर' कहते हैं। 'पित्त की नाली' लिवर से निकल कर जहां अंतड़ी में मिलती है वहां पर एक ढक्कन (valve) है। जब पित्त की जरूरत नहीं रहती तब यह ढक्कन रास्ते को बन्द कर देता है। इसी रास्ते में लगी हुई एक और नाली है जिसका सम्बन्ध पित्त की थैली से है। जब यह ढक्कन बन्द रहता है तो पित्त अंतड़ी में न जाकर इस दूसरी नाली से घूमकर 'पित्त की थैली' में इकट्ठा होने लगता है जहां वह बहुत कुछ गाढ़ा हो जाता है और जरूरत होने पर जहां से निकल कर अंतड़ी में पहुँचाया जाता है। इस प्रकार देखा जायगा कि 'पित्त की थैली' का काम केवल पित्त के कोषाध्यक्ष का है। उसे किस अपराध में दोषी ठहराकर डाक्टर लोग काट फेकतें हैं?

होता यह है कि खूब गुरु-पाक भोजन और मेहनत की कमी के कारण शरीर की साधारण व्यवस्था जब बिगड़ती है तो लिवर पर उसका सब से पहले प्रभाव पड़ता है क्योंकि पचाने के काम में लिवर का बड़ा भारी हाथ है। नतीजा यह होता है कि वह जो रस बनाता है वे शुद्ध रूप में नहीं बनते। पित्त भी कुछ विकार युक्त तैयार होता है जिससे पित्त की थैली में पहले सूजन होती है फिर विकार पुराना होने पर पथरी पड़ती है। इसलिए वास्तव में शरीर की यह विकारावस्था ही इस उपद्रव के मूल में है।-और उसकी जड़ में भी देखा जायगा कि मैदे, चीनी, घी-चर्बी आदि के पकवान तथा दूसरे अप्राकृतिक और कब्ज करने वाले भोजन की अधिकता के साथ आलस और आराम-तलब का जीवन बिताने की आदत इसके लिये जिम्मेदार हैं।

'पित्त की थैली' जिगर के नीचे रहती है। इसलिए इसमें कुछ विकार होता है तो दाहिने भाग में पँसलियों के नीचे नाभी तक दर्द या बोझ सा मालूम पड़ता है। कब्ज, भूख का अभाव और भोजन से अरुचि, पित्त विकार के लक्षण हैं। कभी कभी आँखों में पीलापन छा जाता है और बीच बीच में जाड़ा-बुखार भी हो सकता है।

पर बहुतों को आरंभ की दशा का बरसों तक कुछ पता नहीं होता और उस बिगड़े हुए पित्त से नमक के कण जम जम कर रेत या पथरी का रूप धारण करते हैं। जब उस रेत या पथरी का कोई भाग 'थैली' से निकलने लगता है तो पित्त की नाली (जो चौथाई इंच से भी कम मोटी है) के पतले सुराख में रगड़ के कारण भयानक पीड़ा होती है,—इसी का नाम पित्त शूल वा 'बीलियरी कालिक' है। यह पीड़ा अक्सर इतनी प्रबल होती है कि रोगी छटपटाता हुआ इधर से उधर लोटता है। दर्द बहुत तेज होने पर अक्सर खूब जाड़ा फिर तेज बुखार होता है, मचली और उल्टी भी होती है। जब रेत वा पथरी 'पित्त की नाली' से निकल कर अंतड़ी में आजाती है तब दर्द बन्द हो जाता है और फिर रोगी पहली अवस्था में आ जाता है। अक्सर एक बड़ी पथरी के छोटे छोटे टुकड़े कुछ अन्तर दे दे कर निकलते हैं तो बारबार शूल का आक्रमण होता हुआ देख पड़ता है। चूंकि जिन कारणों से पथरी पहले बनी थी वे दूर नहीं किए जाते इस लिए बारबार पथरी बनती है और बारबार दर्द होता है अथवा सूजन की अवस्था ही चिरस्थायी होकर पाचन-क्रिया को खराब कर देती है। ऐसी अवस्था मे डाक्टरों को 'पित्त की थैली' काट डालना ही आसान जान पड़ता है। न रहेगा बांस न बजेगी बांसुरी। पर पित्त को दशा सुधरती नहीं और वह इकट्ठा होने का स्थान नहीं पाकर अब सीधा अंतड़ी में ही पहुँचा करता है जिससे पेट में एक स्थायी बेचैनी सी रहने लगती है और अशुद्ध पित्त से पाचन-क्रिया का काम भी ठीक से नहीं चलने पाता है।

कभी कभी पथरी का आकार इतना बढ़ जा सकता है कि उसके निकालने के लिये शरीर जो प्रयत्न करता है उसमें असह्य पीड़ा के साथ साथ आन्तरिक अवयव को गहरा नुकसान पहुँचने की संभावना रहती है। ऐसी हालत में भले ही छुरी लगाना अनिवार्य समझा जाय पर पर अन्य अवस्थाओं में छुरी का प्रयोग करना उसका दुरुपयोग मात्र होता है।

शूल की अवस्था में गरम जल में बैठाना; गरम जल

में रूई या ऊनी कपड़ा डाल कर सेंकना तथा जैतून का तेल एक एक चम्मच थोड़ी थोड़ी देर पर पिलाना चाहिए और रोगी को जिस अवस्था में आराम मिले उस अवस्था में उसको लेटा कर रखना चाहिए। दर्द के पूर्व लक्षण जब प्रकट हों तभी डूश देकर पेट साफ कर देने और गरम जल का हिपबाथ देने से अकसर दर्द का दौरा बहुत साधारण सा हो जाता है।

यह तो हुआ तात्कालिक उपचार परन्तु स्थायी लाभ के लिये उपवास, फलाहार, डूश हिप-बाथ और व्यायाम का उचित रूप में सहारा लेना होगा। खट्टे फल इस रोग में खास तौर पर लाभ पहुँचाते हैं। बहुत गूदेदार फल, जैसे केला, इस में अच्छा नहीं होता। ताजे शाक भी लाभदायक हैं। आलू, अरवी आदि कन्द जिसमें श्वेतसार बहुत है त्याज्य है। उपचार के आरंभ में इसी प्रकार चावल, आटा, दाल आदि अन्न भी छोड़ देना चाहिए। आगे चल कर भी इनकी मात्रा कम रखनी होगी।

यदि रोगी यह सब दृढ़तापूर्वक अपने मित्रों और शुभचिन्तकों की आतंकपूर्ण चेतावनी और डरावनी सम्मतियों को सुनकर भी करते रहने के लिये तैयार हो तो उसे नीचे लिखे जैसे क्रम पर चलने की राय दी जा सकती है—

सब से पहले उपवास। रोग की प्रबलता के अनुसार दो से चार दिन तक कुछ भी न खाना—केवल जल, ठंडा या गरम, नींबू के रस के साथ लेना। और कुछ नहीं। सुबह शाम नीम-गरम जल से डूश लेना। सुबह को शौच के बाद और सन्ध्या को या रात को सोने के कुछ देर पहले।

इसके बाद तीन दिन तक केवल रसदार खट्टे मीठे फल पर रहना। केले, कलमी आम, अंजीर, पिंडखजूर जैसी चीजों से बचना चाहिये। प्रातः काल और रात को सोने से पहले एक ग्लास गरम जल में एक नींबू का रस देकर रोज पीना और अपने आप पाखाना न हो तो डूश लेना। उसके बाद भी तीन दिन तक इसी आहार पर थोड़ा दूध या दही का घोल—दोनों में जो पेट को शुद्ध रख सके—लेते रहना। इसके बाद के लिये कुछ इस प्रकार का नियम कर लेना चाहिए—

सुबह उठकर गरम जल एक नींबू के रस के साथ, फिर टहलना, लौट कर विश्राम और हिप बाथ (पहले गरम पानी से फिर ठंडे जल में) ८ बजे के लगभग रसदार फलों से जलपान; १० बजे एक गिलास ठंडे जल में एक नीबू का रस। दिन में भाजी सलाद, कुछ पकाई तरकारी और मठा। सन्ध्या को फिर टहलना और सायं भोजन में ताजे फल, किशमिश, मूंग की अंकुरी और दूध। जबतक पेट खूब न सुधरे तबतक दिन रात के भोजन में अन्न के बदले रामदाना, मखाना या थोड़ा सा चोकर जोड़ा जा सकता है। उसके बाद दिन थोड़ा सा चावल या एक दो रोटी मिला सकते हैं। जब कुछ ताकत हो चले तो लेट कर किये जाने वाले पैर और पेट के व्यायाम करना भी उचित है। बीच बीच में एक दिन का निराहार व्रत कर दो दिन पूर्ण फलाहार भी करते रहना चाहिए। ऐसा करने से दुबारा आक्रमण का भय नहीं रहेगा।

कुछ अन्य उपयोगी बातें

मूत्राशय और पित्त की थैली——दोनों में पथरी बनने का मुख्य कारण आहार-दोष ही है। इस लिए जब कष्ट न न हो वा पथरी निकल गई हो तब भी खानपान पर ध्यान रखना आवश्यक होगा। अन्यथा प्राकृतिक चिकित्सा से एकबार आराम होने के बाद भी दुबारा कष्ट में पड़ने की सम्भावना बनी ही रहेगी।

मूत्राशय में पथरी बनने का अक्सर एक सहायक कारण होता है——पानी का कम पीना। कुछ लोग जाड़े में या सफर में पानी का स्थान चाय को दे डालते हैं पर चाय शुद्ध जल का काम नहीं कर सकती। यह सही है कि चाय से भी पेशाब अधिक होता है पर चाय स्वयं ही एक विजातीय द्रव्य है जिसे मूत्रमार्ग से शरीर अपने से बाहर निकालता है। शुद्ध जल दूसरे विकारों को घुलाकर अपने साथ बहा ले जाने की शक्ति रखता है, जो बात चाय जैसे किसी दूसरे (फल रसों, मठा या दूध के अतिरिक्त) पेय में नहीं है। इसलिए जो मूत्रशूल की भयंकर पीड़ा से बचना चाहते हैं उन्हें शुद्ध जल चार ग्लास दिन भर में पीना चाहिये। उस जल में केवल ताजा फलरस ही मिलाया जा सकता है। हां, फलरस, दूध या मठा या फल-शाकों का ही आहार ही

तो इतना पानी पीना जरूरी नहीं है क्योंकि उनमें पानी का अंश यथेष्ट होता है।

ऐसे रोगियों के लिये नारियल, ताड़ और खजूर का ताजा मीठा रस भी लाभदायक है। दूसरे खट्टे मीठे फलों का रस तथा हरे शाकों और फलों का रस का रस भी इसमें गुणकारी है।

दूध, दूधी (मखनिया दूध), मठा एवं दूध या दही का तोड़ भी ऐसे रोगियों के लिए अच्छा है। सवेरे ताजे दूध में जल मिलाकर पीना भी गुणकारी है। मूत्रशूल के रोगी दशा सुधरने पर कुछ छेना और थोड़ा मक्खन ले सकते हैं परन्तु दाल, मांस, मछली आदि से उन्हें बचते रहना चाहिये। खरबूजा, तरबूजा, खीरा, ककड़ी, गूलर और पके केले का व्यवहार भी लाभदायक होगा।

अन्न में चूड़ा, चावल, गेहूँ का दलिया अच्छा है। कुरथी का पानी विशेष रूप से गुणद माना जाता है। रोटी के मुकाबले पानी में पकाया हुआ गेहूँ या मकई का दलिया खाना बेहतर है।

सूखे मेवों में किशमिश, अंजीर, पिंडखजूर, छुहारा, नारियल की गिरी तथा दस पांच दाने बादाम या मूंगफली के लिये जा सकते हैं। शहद भी पथ्य है।

डाक्टर लोग ऐसे फल और शाक खाना मना करते हैं जिनमें 'आक्सेलिक एसिड' होता है, जैसे पालक का साग, टमाटर, तथा दूसरे कई तरकारियों का छिलका इसी वजह से निकाल कर खाने को कहते हैं। पर फल-शाक और दूध पर रहते हुये यह भेद करना आवश्यक है। वास्तव में त्याज्य वस्तुएँ हैं—मांस, मछली, अंडा, दाल, नमक-मसाले, चीनी तथा तरह तरह के पकवान, मिठाई, अचार, चटनी, सिरके आदि। फल शाक आदि के रस का 'आक्सेलिक एसिड' पचने पर रूपान्तरित हो जाता है।

पित्तशूल के रोगियों के लिए भी लगभग ऐसा ही पथ्य है। पर उन्हें श्वेतसार एवं चर्बीवाली चीजें भी अल्प मात्रा में ही लेना चाहिये। मलाई, मक्खन, तेलवाले बीज तथा सूखे मेवे, केले, कलमी आम इनके लिए हितकर नहीं हैं। इनका व्यवहार बहुत ही परिमित मात्रा में होना चाहिये।

मूली, गाजर, शलजम, बीट को छोड़कर दूसरे कन्द-मूल जिनमें रस कम और श्वेतसार अधिक होते हैं (जैसे आलू अरवी, शकरकन्द) न खाना चाहिये। गन्ना चूसना लाभदायक होगा; लेकिन गुड़ और चीनी अपथ्य है।

अवस्था सुधरने पर थोड़ा लाल चावल का भात या गेहूँ या मकई की दलिया या रोटी ली जा सकती है।

व्यायाम—

टहलना एक सर्वसुलभ और गुणकारी व्यायाम है। दोनों प्रकार के रोगियों को, जब दर्द न हो, नित्य टहलने का नियम रखना चाहिये। कम से कम दो तीन मील रोज टहलना पाचन क्रिया को शुद्ध और खून को ताजा रखने के लिए जरूरी है।

बदन की सूखी मालिश सुबह शाम स्वयं करना या दूसरे से कराना भी लाभदायक है।

ताकत बढ़ने पर हल्के 'फ्री हैन्ड' कसरत भी लिए जा सकते हैं। गहरी सांस लेने और छोड़ने का भी नित्य अभ्यास करना चाहिये।

स्नान—

स्नान नित्य करना चाहिये। दर्द की अवस्था में गरम स्नान, गरम पानी में बैठना गरम पानी पीना तथा गरम पानी का सेक अच्छा होता है। लेकिन शरीर को क्रमशः ठंडे पानी का ही अभ्यास डालना चाहिये।

एनिमा—

जब कब्ज हो तो एनिमा लेकर पेट साफ कर लेना चाहिये। पर खानपान ऐसा ही रखना चाहिये कि सामान्यतः कब्ज न रहे। एनिमा तभी नुकसान करता है जब खानपान गड़बड़ रखकर उसका दुरुपयोग किया जाता है।

* * *

हम थक क्यों जाते हैं ?

लेखक—श्री रामनारायण मिश्र

मनुष्य कुछ देर काम करने के पश्चात् थकावट का अनुभव करने लगता है; अवसन्न हो जाता है और काम करना बन्द कर देता है। चलते-चलते पांव इतने थक जाते हैं कि चलना कष्ट-साध्य हो जाता है। रात में अधिक देर तक पढ़ने से आंखें काम नहीं देतीं। बहुत समय तक लगातार लिखने या टाइप करने से अँगुलियां इतनी थक जाती हैं कि उनमें दर्द होने लगता है और आगे अधिक लिखने की शक्ति उनमें नहीं रह जाती।

साधारणतः हम यही कह देते हैं कि पैर थक गये हैं आंखें तिलमिलाने लगी हैं, अँगुलियां दर्द करने लगी हैं, इत्यादि।

थकावट के लिए यही प्रचलित वाक्य हम दिन-रात कहते-सुनते हैं, पर उसकी वास्तविकता पर बहुत कम लोग ध्यान देते हैं।

मानुषी-अंगों के थकने से क्या अभिप्राय है ? हम अवसाद या थकावट का (चाहे वह शारीरिक अवसाद हो, चाहे मानसिक) अनुभव क्यों करने लगते हैं ? इत्यादि ऐसे प्रश्न हैं, जिनका सन्तोषजनक उत्तर शरीर-शास्त्र का सम्यक ज्ञान होने से ही मिल सकता है।

हृदय नहीं थकता

सच बात तो यह है कि हमारे पांव, आंखें, अंगुलियां या अन्य अंग कभी नहीं थकते। हमारे अंग-प्रत्यंग में अथक और अनवरत परिश्रम करने की स्वाभाविक शक्ति मौजूद है। उदाहरण के लिए, हृदय ही को ले लीजिए। यह भी तो स्नायु-तंतुओं का ही संयोग है। यह कभी नही थकता और जब कभी एक क्षण के लिए भी थक जाता है, तो उसी समय मनुष्य मर जाता है।

गर्दन की रगें और मांस-पेशियां जीवन पर्यन्त ग्रीवा का भार संभाले रहती हैं। इसी प्रकार जबड़े के नीचे की पेशियां आयु-भर मुंह चलाने में सहायता देती हैं। इनकी सञ्चालन-शक्ति समाप्त होते ही हमारा जीवन-प्रदीप बुझ जाता है।

ऊपर के विवेचन से सिद्ध होता है कि मनुष्य का अस्थि-पञ्जर, नाड़ी-चक्र और मांस-पेशियां कभी नहीं थकतीं।

थकावट का वास्तविक कारण

अब यह प्रश्न उठता है कि यदि मनुष्य के अंग कभी नहीं थकते, तो फिर थकावट का वास्तविक कारण क्या है ? इसमें कौन सा रहस्य है ?

मनुष्य के मस्तिष्क और पृष्ठ या मेरुदण्ड (रीढ़) की हड्डियों के अन्दर छोटे-छोटे कई एक स्नायविक-कोष्ठ या तन्तुजाल होते हैं, जिनके भीतर एक प्रकार का पौष्टिक द्रव पदार्थ भरा होता है जिसे हम बहुधा मज्जा कहते हैं। इसी पदार्थ के कम हो जाने से मनुष्य में थकावट का संवेदन होने लगता है।

मानव-शरीर से बिजली

मेरु दण्ड और मस्तिष्क के प्रकोष्ठों से ही एक प्रकार का विद्युत्-प्रवाह सारी नलिकाओं और मांस-पेशियों तक चला करता है। यही थकावट का मूल कारण है।

मानव शरीर में अन्यत्र भी अनेक ग्रन्थि-जाल या चक्र ऐसे हैं, जिनसे विद्युच्छक्ति उत्पन्न होती रहती है, जिन्हें अँगरेजी में 'प्लेक्सस' के नाम से अभिहित किया गया है। हम इन प्रकोष्ठों को मानव-शरीर-यन्त्र के 'पावर हाउस' या शक्ति-गृह कह सकते है, क्योंकि इन्हीं पर मनुष्य का सम्पूर्ण ऐन्द्रिक ज्ञान अवलम्बित है। यही वह आश्चर्य-जनक शक्ति-संचारक-केन्द्र है, जिस पर मनोभावों की प्रगल्भता, विचार-धाराओं की शृङ्खला केन्द्रित है। इस 'पावर हाउस' से शक्ति प्राप्त करके हमारे स्नायुओं में स्फुरण और संचालन की क्षमता आती है। इन्हीं चक्रों और प्रकोष्ठकों से शक्ति-संचय करके मनुष्य हँसने-

बोलने, चलने फिरने और सोचने-विचारने में समर्थ होता है।

मोती

यदि हम अनुमान करें कि सवेरे से शाम तक मनुष्य-शरीर के यह भीतरी 'पावर हाउस' क्या-क्या कार्य करते हैं, तो इस ध्रुव सत्य पर और भी प्रकाश पड़ेगा। जब हम प्रातः काल सो कर उठते हैं, तो यह स्नायविक केंद्र बारीक-बारीक सुनहरे, भूरे और श्वेत वर्ण के स्वच्छ और पारदर्शक मोतियों से परिपूरित होते हैं। ये मोती संसार के प्रचलित मोतियों की अपेक्षा कहीं अधिक मूल्यवान् और उपयोगी होते हैं। रासायनिक दृष्टिकोण से पाठकों को समझाने के लिये 'मोती' शब्द का प्रयोग किया गया हैं। वस्तुतः यह एक प्रकार का परम शक्तिदायक-पदार्थ है, जो शुद्ध मज्जा तैल और अन्य पदार्थों के योग से मनुष्य शरीर के भीतर ही बनता रहता है। मनुष्य दिन भर इन्हीं छोटे-छोटे शक्ति-केन्द्रों से अपने शरीरस्थ तन्तुओं के द्वारा काम करने की शक्ति प्राप्त करता रहता है। पन्द्रह-सोलह घंटे काम करने के पश्चात् इस संचित शक्ति का ह्रास होने लगता है। फलतः मनुष्य को विश्राम करने की आवश्यकता प्रतीत होने लगती है। रात्रि में जब हम निश्चित होकर सोते हैं, तब ये 'पावर हाउस' अपना क्षीण हुआ रस पुनः प्राप्त कर लेते हैं।

जब मनुष्य निद्रावस्था में होता है, तो शरीर के भीतर चर्बी, तैल और फासफोरस के सम्मिश्रण से यह सूक्ष्म पदार्थ बनने लगता है। यह क्रिया-कलाप आजीवन नियमित रूप से होता रहता है और यही हमारे प्राणों का मौलिक आधार है।

यदि यह प्राण-पोषिका शक्ति प्राप्त करने में तनिक भी बाधा पड़ जाती है, तो मनुष्य शीघ्र ही थकावट का अनुभव करने लगता है, और उस अवस्था में शारीरिक या मानसिक परिश्रम करने से चित्त एक दम उचट जाता है। इसी को थकावट कहते हैं।

निद्रा

क्षीण हुई शक्ति का नये शिरे से संचारित होना सुखकारी निद्रा के अतिरिक्त उपयुक्त तथा अनुकूल भोज्य-पदार्थों पर भी निर्भर हैं।

निर्बल पुरुषों और बालकों को अधिक समय तक सोने की जरूरत है।

मानव-शरीर का यह यन्त्र-समुदाय, जिसमें प्रकृति ने अनेक नन्हें-नन्हें शक्ति केंद्र स्थापित कर रखे हैं, नित्य प्रति न्यूनाधिक पन्द्रह-सोलह घंटे लगातार अबाध रूप से काम करता रहता है। देखने में यह मशीन ज्यों की त्यों मालूम होती है; परन्तु अन्दर ही अन्दर घिसती रहती है। जब तक मनुष्य जीवित रहता है, यही क्रम जारी रहता है।

बुढ़ापा

जब मनुष्य की आयु साठ साल से अधिक हो जाती है, अथवा यों कहा जाय कि जब हमारे शरीर की मशीन काफी समय तक चल चुकती है, तो आन्तरिक शक्ति के प्रकोष्ठों (प्लेक्सस) में क्षीणता आने लगती है। वे शक्ति-उत्पादन के योग्य नहीं रहते। परिणामतः विचारों में वह पहले सी क्रम-बद्धता और स्फूर्ति नहीं रहती। अङ्ग-प्रत्यङ्ग शिथिल और सारी इन्द्रियां निस्तेज एवं सामर्थ्य-हीन हो जाती हैं। इसी अवस्था को वृद्धावस्था कहा जाता है। वृद्ध पुरुष अपने यौवन-काल के आनन्दमय जीवन की मधुर स्मृति में कभी रोता और कभी झल्लाता है और कभी-कभी गुनगुनाने लगता है कि—

> "मागत कहो कोउ नाहि सब
> अंग अंग ढीले व्है गए।"

वैज्ञानिकों ने बहुत खोज की कि बुढ़ापा क्यों आता है ! इसके रोकने और दूर करने का क्या उपचार है ! मूल कारण और मुख्योपचार का अनुसन्धान करने में पूर्ण कृतकार्यता आज तक किसी को नहीं हुई है। वार्द्धक्य काल की यह क्षीणता और निर्बलता कभी-कभी अत्यन्त कष्टदायिनी और असहनीय प्रतीत होने लगती है।

वृद्धावस्था के मूल कारण और दूरीकरण का उपयुक्त साधन मिल जाने पर मालूम होगा कि हम उससे कहां तक लाभान्वित हो सकेंगे।

बच्चों का मानसिक अवसाद

छः वर्ष की अवस्था से शारीरिक शक्तियों के विकास और उत्थान का संक्रान्ति काल आरम्भ हो जाता है।

सामान्य रूप से इसी आयु में बच्चे को स्कूल में दाखिल करा दिया जाता है। सबेरे ही स्कूल जाने के लिए जगा दिया जाता है। बहुतेरे माता-पिता यह नहीं जानते कि बालक ने काफी नींद ले ली है या नहीं। उसका मानसिक अवसाद दूर हो कर मस्तिष्क ताजा हो गया है या नहीं?

यदि बालक की नींद पूरी नहीं हुई है तो वह स्कूल में थोड़ी ही देर मानसिक श्रम करने के बाद थक जायगा। स्कूल में खेल-कूद और जलपान आदि का पूरा प्रबन्ध होने से विद्यार्थी को अपनी थकावट दूर करने में सहायता मिल सकती है।

प्रकृति तो यह बतलाती है कि इस काल में बालक फूल की तरह प्रफुल्लित रहे। उसकी सुकुमारता और कोमलता अक्षुण्ण बनी रहे; परन्तु हम अपनी मूर्खता और अज्ञानता से उसे इसी आयु में पुष्टांग और परिपक्व बनाने की विफल चेष्टा करते हैं। उसकी सामर्थ्य के बाहर उससे काम लेते हैं। यह उसके स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त हानिकारक है। बाल्यावस्था में बालक जो चीज कठोर परिश्रम करने के बाद बारह साल में सीख सकता है, वही चीज प्रौढ़ होने पर केवल पाँच वर्ष में सरलता के सीख लेता है। आज प्रौढ़ शिक्षा में इसी मनोवैज्ञानिक तथ्य को काम में लाकर सफलता प्राप्त की जा रही है।

अब वह दिन दूर नहीं, जब हमारी भावी सन्तान अपने बालकों पर शिक्षा का इतना अनुचित भार नहीं डालेगी, जिससे बालक विद्या प्राप्त करते-करते अपना अमूल्य स्वास्थ्य-धन खो दें।

उसे इस बात का ज्ञान होगा कि बच्चे की शक्तियों को स्वतन्त्र और खुले हुए वातावरण में विकसित होने का पूरा-पूरा अवसर दिया जाय। यदि आरम्भिक आयु में में बच्चे के स्नायुओं से अधिक काम न लिया जाय, तो बड़े होने पर उसमें थकावट सहन करने की असाधारण शक्ति बनी रहती है।

मनुष्यों की प्राकृतिक दशाएं भिन्न-भिन्न होती हैं। कुछ लोग सबेरे अधिक अच्छा काम कर सकते हैं, कुछ अपराह्न (दोपहर के बाद) में। किसी-किसी को थोड़ी देर सोने की जरूरत होती है, किसी-किसी का ज्यादा देर सोने से काम चलता है। इसलिए समाज सबसे एक-सा काम नहीं ले सकता। भविष्यकालीन विज्ञान ही इस पहेली का उत्तर दे सकेगा कि विभिन्न विस्तार और सामर्थ्य के ज्ञान-तन्तु और क्रिया-तन्तु रखनेवाले मनुष्यों से क्या-क्या और और किस परिमाण में काम लिया जाय, जिससे समाज का ढांचा अस्त-व्यस्त न होने पावे।

प्राकृतिक चिकित्सा की शिक्षा प्राप्त करने का अनुपम अवसर

प्राकृतिक चिकित्सा प्रणाली का सार्वभौमिक प्रचार करने के उद्देश्य से हमने शिक्षार्थियों को ट्रेनिंग देने को एक योजना बनाई है। इसके अनुसार आगामी अक्टूबर से पूरे दो महीने तक ट्रेनिंग देने की व्यवस्था की गई है। इसमें प्राकृतिक चिकित्सा के मूल सिद्धान्तों तथा उसकी व्यावहारिक शिक्षा का पूर्ण आयोजन हुआ है इस तरह साल भर में एक-एक महीने के तीन कोर्स होंगे। शिक्षा का कोर्स समाप्त हो जाने पर साल के अन्त में शिक्षार्थियों की परीक्षा होगी, और जो उसमें उत्तीर्ण होंगे, उन्हें एन० डी० डी० वाई० का डिप्लोमा प्रदान किया जायगा। जो शिक्षार्थी इस योजना से लाभ उठाना चाहते हैं वे अपना आवेदन-पत्र १ सितम्बर तक, अपना नाम, पता और शिक्षा सम्बन्धी योग्यता के सहित **अवश्य** भेज दें। **इन्टरमीडियेट अथवा उससे ऊंचे दर्जे की शिक्षा प्राप्त व्यक्ति ही आवेदन-पत्र भेजें।**

नियम—प्रत्येक शिक्षार्थी से १०) मासिक फीस और १५ रु० मासिक खर्च लिया जायगा। प्राकृतिक चिकित्सा की व्यावहारिक शिक्षा प्राप्त करने के अभिलाषी व्यक्ति अपनी इच्छानुसार किसी भी महीने में आ सकता है। पर उन्हें उपयुक्त शुल्क प्रति मास देना अनिवार्य होगा।

संचालक, प्राकृतिक स्वास्थ्यगृह २८७, बादशाही मन्डी इलाहाबाद।

गर्भस्राव या गर्भपात

[डा॰ इन्दुमती सिन्हा, एन॰ डी॰ डी॰ वाई]

गर्भस्राव या गर्भपात के प्रत्यक्ष अथवा तात्कालिक कारण चाहे जो भी हों किन्तु इसके मूल में भी वही विकार सन्निहित है जो खान-पान, रहन सहन तथा आहार-विहार की गड़बड़ी से उत्पन्न होते हैं। अतः यदि जीवन-क्रम को सुधार लिया जाय, तो यह दोष भी अपने आप मिट जायगा—इसी तथ्य की ओर संकेत करते हुए अनुभवी लेखिका ने इस रोग के निदान और उपचार का बड़े सुन्दर ढंग से वर्णन किया है।—सं॰]

अन्य स्त्री रोगों की भांति गर्भस्राव, गर्भपात या अकाल प्रसव की भी शिकायत ज्यादातर प्रकृति से कोसों दूर रहने वाली शहरी स्त्रियों को, अथवा उन माताओं को हुआ करती है जिनका खान-पान रहन-सहन, और जीवन-क्रम बहुत अनियमित और दोषपूर्ण होता है। इसलिए यहाँ पर जो कुछ उपाय बताये जायँगे वे केवल निवारणात्मक (हिफाजत के तौर पर) ही होंगे, किसी खास इलाज के रूप में नहीं। प्राकृतिक चिकित्सा वास्तव में इस तरह की अवस्था उत्पन्न करने में सहायता पहुंचाती है जिसमें कोई रोग-व्याधि होने ही न पावे। हमें इस बात को प्रत्येक रोग या कष्ट के बारे में वर्णन करते समय ध्यान में रखना होगा।

गर्भावस्था के आरम्भिक महीनों में डिम्बाणु बहुत ही सुकुमार स्नायुओं से गर्भाशय के भीतरी तह से बँधा रहता है। इस अवस्था में अगर ऐसी कोई भी बात हुई जिससे कि यह डोरी कमजोर पड़ जाय या नष्ट हो जाय तो यह मानी हुई बात है कि गर्भस्राव या गर्भपात हो जायगा। गर्भ जितनी ही अपनी प्रारम्भिक अवस्था में होगा उतना ही यह स्नायविक बन्धन भी सुकुमार होगा। इसीलिए गर्भधारण करने के शुरू-शुरू के महीनों में ही गर्भस्खलन हो जाने की सबसे अधिक सम्भावना रहती है।

गर्भ-स्राव, गर्भपात और अकाल प्रसव

गर्भधारण के ५ से ७ सप्ताह तक अर्थात डेढ़ या दो महीने तक वह रुधिर के ही रूप में रहता है। इसलिये यदि इस अवधि के भीतर गर्भस्खलन होता है तो उसे गर्भ-स्राव (Abortion) कहते हैं। इसके बाद तीसरे महीने से छठें महीने तक होने वाले गर्भस्खलन को गर्भपात (Miscarriage) कहते हैं। सातवें और आठवें महीने में होने वाले प्रसव को गर्भपात न कहकर अकाल प्रसव ही कहते हैं, क्योंकि इस अवधि में उत्पन्न बच्चे के जीवित रहने की सम्भावना की जा सकती है, हालांकि इस तरह की सन्तानें अधिकतर दुर्बल, शक्तिहीन तथा अल्पायु ही होती हैं।

गर्भ स्राव और गर्भपात के लक्षण

यदि गर्भधारण करने के छः सप्ताह के भीतर गर्भस्राव होता है तो इसके प्रायः कोई विशेष लक्षण प्रकट न होकर प्रायः साधारण ऋतु-स्राव, जैसे ही लक्षण प्रकट होते हैं। ऋतुस्राव के साथ ही साथ गर्भ (जो रुधिर के एक छोटे से टुकड़े के रूप में होता है) निकल जाता है। ऐसी अवस्था में रोगिणी सिर्फ यही समझती है कि इसबार उसे देर से या चढ़कर माहवारी हुई। किन्तु सच तो यह है कि यह अवस्था भी आगे चलकर उतनी ही शोचनीय बन जाती है जितनी कि साधारण गर्भपात की अवस्था।

तीसरे महीने के अन्त में यदि गर्भपात हो तो एक मांस पिण्ड जैसी थैली निकल पड़ती है। इस समय तक गर्भ या भ्रूण की इन्द्रियां पूर्ण नहीं होतीं। हाँ, तीसरे महीने के बाद और छठें महीने के अन्त में यदि गर्भपात हो तो सब लक्षण वैसे ही पाये जायँगे जो पूरे दिनों के प्रसव पाये जाते हैं। क्योंकि इस समय तक खेड़ी बन जाती है और गर्भस्थ शिशु की इन्द्रियां भी पूर्ण हो जाती हैं।

गर्भस्राव या गर्भपात के लक्षण

गर्भस्राव या गर्भपात के लक्षण के सम्बन्ध में कुछ कहने के पहले यह बता देना शायद अप्रासंगिक न होगा कि यह प्रायः दो प्रकार का होता है—(१) गर्भ को जान बूझ कर गिराना और (२) किन्हीं खास कारणों से गर्भ अपने आप गिर जाना। कहने की आवश्यकता नहीं कि इनमें से पहले तरह का गर्भस्राव या गर्भपात, अर्थात् जो जानबूझ कराया जाता है, नैतिक तथा सामाजिक दृष्टि से एक सर्वथा अमानुषिक तथा जघन्य अपराध है। इसका परिणाम भी अपने आप होने वाले गर्भस्राव या गर्भपात की अपेक्षा कहीं अधिक संहारक होता है। इस नैतिक अपराध के फलस्वरूप हर साल न जाने कितनी ही अबलाओं को अपने प्राणों की आहुतियां देनी पड़ती हैं।

आज कल बाजारों में बिकने वाली बहुत सी विज्ञापित दवाइयां गर्भस्खलन का एक खास कारण बनती हैं। ऐलोपेथिक डाक्टरों का भी यही कहना है कि सामान्य रूप से किसी भी औषधि या औषधियों के समिश्रण से तब तक गर्भ नहीं गिर सकता जब तक कि उसमें जहरीली दवाइयाँ न मिलाई जायँ। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता कि स्त्रियों को जहर खिला कर और इस प्रकार भ्रूण हत्या करके गर्भपात कराया जाता है। इन दवाइयों के सेवन से न केवल गर्भ की स्थिति नष्ट हो जाती है बल्कि उस स्त्री का स्वास्थ्य भी सदा के लिए जाता रहता है और अधिकतर उसे असमय में ही काल कवलित हो जाना पड़ता है। निमोनिया आदि तीव्र रोगों के भी कारण, जिसमें बहुत तेज बुखार होता है, गर्भस्राव हो सकता है।

अपने आप होनेवाले गर्भपात के कई कारण हो सकते हैं जिनमें अनुचित खान-पान, रहन-सहन और आहार-विहार ही मुख्य होता है। इसके अन्य कारण इस प्रकार हो सकते हैं—स्त्री-पुरुष की कमजोरी, कमजोरी की हालत में कोई उग्र व्यायाम या कोई ऐसा काम करना जिसमें बहुत अधिक जोर या श्रम पड़ता हो, भारी बोझ उठाना, स्नाविक दुर्बलता, शरीर-प्रणाली में खून की कमी, उपदंश के (गरमी) विष से, या गर्भाशय के अपने स्थान से हट जाने या गर्भाशय की झिल्लियों के रोगों (जो प्रायः गरमी या सूजाक जैसे सांसर्गिक रोगों के कारण उत्पन्न होते हैं) शरीर में पहले से ही मौजूद रहने वाले अन्य रोग से भी गर्भपात हो जाता है। अपच के कारण पतले दस्त आना, तेज जुलाब लेना, कब्ज रहना, और डरावने दृश्य, भय, चिन्ता आदि मानसिक उद्वेगों के भी कारण गर्भस्खलन हो सकता है।

चोट या आघात लगना गर्भपात का सबसे साधारण कारण होता है। कोई आघात लगने या गिर पड़ने के फलस्वरूप गर्भ को गर्भाशय की भीतरी स्तर से बांधनेवाली सुकुमार स्नायु-रज्जुओं में से कुछ के टूट जाने पर गर्भाशय की रक्त-शिराओं में से खून बहने लगता है। इस प्रकार बहनेवाले खून के दबाव से और भी स्नायु-रज्जु टूटने लगते हैं और अन्त में गर्भाशय के भीतरी स्तर के लिए गर्भ को धारण किए रहना असम्भव हो जाता है और गर्भ गिर जाता है। चोट या आघात चाहे बहुत गम्भीर हो या मामूली, इन दोनों अवस्थाओं में गर्भ स्खलन हो सकता है। इसी प्रकार सीने की मशीन, (जो पैरों से चलायी जाती है) चलाने मोटर या लारी में बैठकर दूरतक सफर करने, जिसमें ऊँची-नीची जमीन होने पर धक्के या झकझोरे लगते हैं, से भी गर्भपात हो सकता है। इसके अलावा सगर्भावस्था के प्रारम्भिक महीनों में सहवास करने और जबर्दस्त मानसिक आघात लगने का भी यही परिणाम हो सकता है। तीक्ष्ण, क्षार, उष्ण, कड़ुवा, तीता और सूखे पदार्थों का सेवन करना, पेशाब-पाखाना रोकना, ऊँचे नीचे आसन पर या टेढ़े मेढ़े बैठना या सोना और डर जाना, यह सब भी गर्भपात के कारण बताए गए हैं।

गर्भपात के कुछ अन्य कारण

गर्भस्राव तथा गर्भपात के जो कारण ऊपर बताए गए हैं उनके अलावा ३ अन्य कारण भी हैं जो शरीर विज्ञान की दृष्टि से उल्लेखनीय हैं—अर्थात् (१) वे कारण जो गर्भस्थ शिशु से सम्बन्ध रखते हैं (२) वे जो गर्भिणी से सम्बन्ध रखते हैं और (३) वे कारण जो खेड़ी और उसकी झिल्लियों से सम्बन्धित हैं।

शिशु से सम्बन्ध रखने वाले कारण

पेट में बच्चे की मृत्यु हो जाना—यह एक प्रधान कारण होता है। ऐसी दशा में गर्भाशय सिकुड़ कर मृत भ्रूण को बाहर फेंक देता है। उपदंश के विष के रुधिर में प्रवेश करने, पेट की अस्तर बनाने लगाने वाली झिल्ली में सूजने होने और गुर्दे व जिगर के रोगों से भी पेट में बच्चा मर जाता है।

कभी कभी शिशु मृतक होकर भी भीतर ही पड़ा रह जाता है और गर्भपात नहीं होता। ऐसी दशा में गर्भ के चिन्हों में बहुत कम भेद जान पड़ता है। शिशु, खेड़ी और और झिल्ली में परिवर्तित होकर लोथड़े का रूप धारण कर लेता है और यह लोथड़ा कई सप्ताह या कभी कभी महीनों तक गर्भाशय के भीतर ही पड़ा रह जाता है। ऐसी दशा में गर्भ के चिन्ह ज्यों के त्यों रहते हैं। हां, कभी कभी कुछ रुधिर अवश्य निकला करता है। अन्त में गर्भाशय सिकुड़ कर लोथड़े को बाहर निकाल देता है।

गर्भवती से सम्बन्ध रखने वाले कारण--शरीर में भिन्न-भिन्न अवयवों और गर्भाशय में घनिष्ठ सम्बन्ध है। अतः जब कभी ऐसे किसी अवयव में रोग या कष्ट होता है तो गर्भाशय को भी कष्ट पहुंचता और उसे कष्ट पहुँचते ही गर्भ गिर जाता है। अन्यान्य रोगों के भी कारण गर्भपात हो जाता है-जैसे उपदंश, गर्भाशय का पीछे घूम जाना, वमन की कठिनता, एल्ब्यूमिनोरिया, अर्थात् गुर्दे के रोग और भांति भांति के विचार–जैसे चिन्ता, भय आदि, तरह-तरह प्रकार की मारक औषधियों का सेवन और अधिक परिश्रम या आघात से भी गर्भपात हो जाता है।

खेड़ी और झिल्लियों से सम्बन्ध रखने वाले कारण—डिम्बाशय की झिल्लयों में रोग होना, खेड़ी का चर्बी में बदल जाना 'कोरीन' में सूजन या सिस्टिक प्रकार की गाँठों का होना।

लक्षण

गर्भ जब गिरने वाला होता है तो पहले शूल जैसी पीड़ा होने के साथ साथ रक्त-स्राव होता है। शरीर में थकावट, भारीपन और सुस्ती मालूम होती है। कभी कभी गश या बेहोशी सी भी हो सकती है। पेड़ू में भारीपन का अनुभव होता है। पीठ, कमर और कमर के निचले हिस्से में दर्द या भारीपन, मचली आना, बदन में कंपकपी, दिल धड़कना, आदि लक्षण भी प्रकट होते हैं। गर्भाशय की झिल्लियों तथा रक्त नलिकाओं के फट जाने से बहुत अधिक खून जारी हो जाता है। अगर खून जोरों से और अधिक मिकदार में निकलता रहे और दर्द भी बढ़ता जाय तो गर्भ का रुकना असम्भव ही समझना चाहिये।

यह लक्षण गर्भ-स्खलन की प्रायः सभी अवस्थाओं में न्यूनाधिक पाए जाते हैं। उदाहरण के लिए, यदि गर्भ दो महीने से भी कम समय का हो तो उसके गिरने में बहुत तकलीफ नहीं होती लेकिन गर्भ ज्यों-ज्यों अधिक दिनों का होता जाता है त्यों-त्यों गर्भपात में गर्भिणी को अधिक संकट भी झेलने पड़ते हैं। आमतौर से २ महीने के बाद का गर्भपात गर्भिणी के लिए बहुत कष्टकारक होता है और अधिक समय का गर्भ हो जाने पर, या यों कहिये कि ५ वें महीने के बाद यदि गर्भपात होता है तो उस समय तो गर्भिणी को किन्हीं अर्थ में प्रसव-वेदना से भी अधिक कष्ट भोगना पड़ता है। गर्भ के बाहर निकलने में बहुत समय लग जाता है, क्योंकि गर्भाशय का मुख बहुत पीड़ा के साथ और धीरे धीरे खुलता है और इसके साथ ही साथ रक्त स्राव भी होता है। कभी कभी तो पूरे दिनों के प्रसव की तरह पहले वह थैली फटती है, जिसमें बच्चे के शरीर का निर्माण होता है, जिसमें भरा हुआ तरल पदार्थ निकलता है। उसके बाद बच्चा और झिल्लियाँ निकलती हैं। आरम्भिक लक्षणों में रक्त का बहना बहुत मुख्य है। पहले तो रक्त कम परिमाण में निकल कर कुछ देर के लिए बन्द भी हो जाता है लेकिन कुछ समय के बाद खून का गिरना फिर जारी हो जाता है। यह अवस्था कुछ समय तक बनी रहने के उपरान्त गर्भाशय में जोरों का संकोचन (सिकुड़न) होता है और तब बच्चा गर्भाशय के बाहर निकल जाता है।

गर्भपात रोकने के उपाय

यदि गर्भपात की आशंका होते ही समुचित रीति से उपाय किए जायं तो उसके रुक जाने की आशा की जा सकती है। इसके लिए निम्न उपाय बताए गए हैं—

(१) गर्भिणी को पूर्ण विश्राम पहुंचाना सबसे जरूरी

है। जिस कमरे में उसे रक्खा जाय वह ठण्डा और हवादार होना चाहिये। कमरे में बिलकुल शान्ति हो और उसे घबड़ा देनेवाली कोई बात न होनी चाहिये क्योंकि इस तरह का वातावरण गर्भपात में सहायक होता है।

बहुत लोगों की भीड़ कदापि न लगने देनी चाहिये। अच्छा होगा उसे किसी तखत पर आराम से लिटा दिया जाय। सिरहाने की अपेक्षा पैताने को कुछ ऊंचा रक्खा जाय। इससे रक्त का संचालन शरीर के ऊपरी भाग की ओर होने लगेगा और रक्त स्राव रुकने में सहायता मिलेगी।

(२) भोजन के रूप में फलों का रस या बार्ली के पानी में थोड़ा दूध मिलाकर देना चाहिए, इसके सिवाय और कुछ नहीं। शाक भाजियों का रस भी दिया जा सकता है लेकिन उसे कोई ऐसी चीज़ न खिलानी चाहिए जो खट्टी या गरम तासीर वाली हो।

(३) पेड़ू या गीले कपड़े की ठण्डी पट्टी या मिट्टी की पट्टी तीन-तीन घण्टे के बाद आध-आध घण्टे तक रक्खी जाय। खून बन्द होते ही पट्टी देने का समय भी बढ़ा देना चाहिए।

(४) पाखाने के लिए बेड-पैन (Bed pan) का इस्तेमाल करना चाहिए। अगर गर्भिणी को दो-तीन दिन तक लेटे रहना पड़े और उसे पाखाना न मालूम हो तो मामूली ठण्डे पानी के एनिमा का प्रयोग करना चाहिए।

(५) गर्भिणी को प्रसन्न रहना चाहिए। घरवालों को ध्यान रखना चाहिये वह चिन्तित न होने पावे।

जब यह देखा जाय कि गर्भपात रुक नहीं सकता तो पेड़ू पर मिट्टी की गीली पट्टी दिन में कई बार देनी चाहिए। इससे गर्भाशय में संकोचन होगा मृत और गर्भ गर्भाशय के बाहर निकल जायगा।

कमजोरी की वजह से अगर चक्कर आता हो, सिर खाली मालूम हो या बेहोशी सी जान पड़े तो सिर और चेहरे को बार बार गीले अंगोछे या तौलिए से पोछना चाहिए। कमजोरी की हालत में पैरों के पास गरम पानी की बोतलें या गरम पानी में पाँव रखा जाय। रोगिणी को गरम कपड़े ओढ़ाना चाहिए और ऐसा प्रबन्ध करना चाहिए कि खून से कपड़ा भीगा न रहे। कपड़े को बदलते रहना चाहिए। जब गर्भ बिलकुल गिर जाय तो एक दिन के बाद मामूली गरम पानी से डूश देकर जननेन्द्रिय को साफ कर देना चाहिए। खून बन्द होने के बाद दो-तीन दिन तक सिर्फ दूध पर रह जाना अच्छा होगा। दूध दिन में दो तीन बार लिया जा सकता है। उसके बाद चार-पाँच दिन तक फल और दूध पर रहा जाय। इस दशा में भी आराम की बहुत जरूरत है।

जैसा कि आरम्भ में ही कहा गया है, प्राकृतिक चिकित्सा में प्रत्येक रोग व्याधि के लिए अलग अलग कोई खास इलाज न बता कर जीवन-क्रम में इस प्रकार से सुधार करने पर ध्यान दिया जाता है जिससे कि इस तरह की कोई गड़बड़ी होने ही न पावे। सभी तरह के रोगों के बचाव का यही सही तरीका है। इसीलिए गर्भाधान के बाद से ही इन सभी हिदायतों का बड़ी सावधानी के साथ पालन करना चाहिए। भोजन-सुधार के साथ-साथ उपस्थ या मेहन स्नान और ठण्डे पेड़ू नहान से विशेष लाभ उठाया जा सकता है।

ऐसा देखा गया है कि गर्भ स्राव या गर्भपात या तो वैवाहिक जीवन के शुरू शुरू में ही या उम्र ढलने पर होता है, जबकि मासिक धर्म के बिल्कुल बन्द हो जाने का समय बहुत नजदीक होता है। अक्सर यह भी देखा गया है कि एक बार गर्भपात होने पर दूसरी बार फिर गर्भपात होने पर करीब करीब उतने ही समय में गर्भ स्खलित हो जाता है जितने समय में पहली बार हुआ था। किसी किसी के तो बारम्बार गर्भपात हुआ करता है।

आचार्य लुई कूने का मत है कि यदि किसी के बार-बार गर्भपात होता है तो उसे भी एक प्रकार का बंध्यत्वदोष या बांझपन ही समझना चाहिये। यह रोग प्रधानतः शरीर में विजातीय द्रव्य की अधिकता से ही हुआ करता है। विजातीय द्रव्यों का भार जननेन्द्रियों में विशेष रूप से होता है। यदि कभी विजातीय द्रव्य की कुछ कमी होने पर गर्भ रह भी जाय तो फिर विसदृश पदार्थों की वृद्धि होने पर गर्भाशय, योनि, उसकी नालिका (ये दो नालिकायें हैं जो गर्भाशय से निकल कर कोख तक चली गई है) आदि स्थानों में प्रदाह होने लगता है जो इतना तीव्र होता है कि उससे बहुत अधिक खिंचाव-दबाव होने के कारण गर्भ गिर जाता है या समय पूरा होने के पहले ही बच्चा पैदा हो जाता है। मन में किसी प्रकार के भावों की उत्तेजना होने, डर जाने

या अचानक कोई धक्का लगने, किसी ऊंचे स्थान से गिर जाने आदि कारणों से विजातीय द्रव्य में अत्यन्त उद्वेग उत्पन्न हो जाता है। कमर में कसकर पट्टी बांधे रहने से भी गर्भपात हो जाता है।

देहात की स्त्रियों में, जो शहरी स्त्रियों की अपेक्षा प्रकृति के अधिक निकट रहती है और जो स्वास्थ्य सम्बन्धी नियमों का भी बहुत कुछ पालन करती हैं, गर्भपात की शिकायत बहुत कम सुनने में आती है। आपको ऐसी बहुत सी ग्रामीण स्त्रियां देखने को मिलेंगी जो सगर्भावस्था के सातवें महीने तक नाच कूद में शरीक होती रहती तथा अन्य शारीरिक श्रम करती रहती हैं फिर भी उन्हें कोई हानि नहीं होती।

इस प्रकार गर्भस्राव या गर्भपात का तभी बचाव हो सकता है जबकि पहले उसके कारणों को दूर कर दिया जाय। इस तरह के विकार में आपरेशन, इन्जेक्शन और औषधि प्रयोग से फायदा तो कोई नहीं निकल सकता उल्टे दूसरे रूपों में अधिक हानि पहुँचने की सम्भावना अवश्य हो सकती है।

यदि गर्भपात के लक्षण सामान्य हुए तो ऊपर बताए गए प्रयोगों से गर्भरक्षा अवश्य कर ली जा सकती है। जिसके फलस्वरूप पूरे समय से और पूर्ण स्वस्थ शिशु का प्रसव होगा। बहुत सी माताओं को यह आशंका बनी रहती है कि गर्भावस्था के आरम्भिक महीनों में सम्भाव्य गर्भपात के लक्षणों का उसकी सन्तान के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ेगा। लेकिन यदि वे प्रकृति के नियमों का ठीक ठीक पालन करें, प्रकृति-पथ से कभी विमुख न हों तो उनके पैदा होने वाली सन्तान पर इसका कोई प्रभाव न पड़ेगा और जो बच्चा पैदा होगा वह स्वस्थ ही होगा।

स्वास्थ्य सम्बन्धी तीन नए प्रकाशन

कविराज महेन्द्रनाथ पाण्डेय की स्वास्थ्य सम्बन्धी महत्वपूर्ण कृतियाँ प्राकृतिक रोगोपचार के प्रेमियों के बीच कितनी लोकप्रिय हुई हैं, यह कहने की बात नहीं इनकी प्रत्येक पुस्तक की अधिकाधिक मांग ही उनकी लोकप्रियता का सहज प्रमाण है। आपकी नयी युक्तियाँ निम्नलिखित हैं :—

(१) तपेदिक—तपेदिक के सम्बन्ध में सारी जानकारी की बातें, तथा इस भयंकर रोग से बचाव का उपाय इस पुस्तक के द्वारा आप बिना किसी की सहायता के जान सकते हैं। इसकी एक प्रति तो प्रत्येक घर में रहनी ही चाहिए। मूल्य ४) रु०

(२) जुकाम—इसमें जुकाम, ब्रोंकाइटिस, दमा, खांसी, निमोनिया; एनफ्लुएन्ज़ा आदि का अचूक इलाज बताया गया है। बड़े काम की चीज़ है। मूल्य १।।) रु०

(३) हमारा भोजन—पाण्डेय जी की यह एक नवीनतम कृति है, आहार एवं स्वास्थ्य सम्बन्ध सभी ज्ञातव्य बातों की जानकारी इस पुस्तक से आप प्राप्त कर सकते हैं। मूल्य ४)

इन पुस्तकों के लिए आज ही लिखें—

मैनेजर—स्वास्थ्य ग्रंथ भण्डार, 'जीवन सखा' कार्यालय
२८७ बादशाही मंडी, चौक, इलाहाबाद।

अस्थिवक्रता तथा कुछ अन्य बाल-रोग

[श्री ब्रजमोहन मिहिर]

बच्चों की बीमारियों के सम्बन्ध में बहुत सावधानी से उपचार किए जाने की आवश्यकता है। कारण यह कि उनके शरीर के सारे अवयव इतने मृदुल एवं सुकुमार होते हैं कि तीव्र अथवा मारक औषधियों का उनपर स्थायी एवं घातक प्रभाव पड़ता है। कभी-कभी तो बच्चे की मृत्यु रोग के कारण नहीं बल्कि तथा कथित दवा के ही कारण हो जाती है।

अनुभवी लेखक ने यहाँ बालकों के कतिपय रोगों के प्राकृतिक इलाज बताए हैं जो बड़े उपयोगी हैं। —सं०

बालक, युवक और वृद्ध सबों के रोग का कारण एक ही है; अर्थात् आमाशय के कार्यों में अवरोध उपस्थित होना। गलत भोजन, अनियमित जीवन और अशुद्ध विचार आमाशय को ठीक काम करने में बाधा पहुंचाते हैं। आमाशय में भोजन के भली प्रकार न पचने से वहां विजातीय द्रव्य यानी विष पैदा होता है। शरीर में जब यह विजातीय द्रव्य अधिक बढ़ जाता है तो शुद्ध रक्त का बनना बन्द हो जाता है और शरीर में पहले का जो रक्त होता है वह भी बिगड़ने लगता है। शरीर में शुद्ध रक्त रोगों के आक्रमण को रोकता है। रक्त का यह सर्वोत्तम गुण जब नष्ट हो जाता है तो शरीर के विभिन्न अंगों मे कष्ट का अनुभव होने लगता है। जिस किसी अङ्ग में यह एकत्र होता है उसके अनुसार यह वहां अपना एक स्वतंत्र और विशेष प्रकार के कष्ट से युक्त नवीन रूप खड़ा कर देता है। मलन त्वचा के ऊपर अगर यह आया तो खुजली और एक्जिमा के रूप में प्रकट होता है और जब यह त्वचा की भीतरी झिल्ली के ऊपर आता है तो ज्वर का रूप धारण करता है। आमाशय में ही यदि यह ठहर गया तो कोष्ठबद्धता, मन्दाग्नि, आमातिसार, पेचिश और संग्रहणी आदि उत्पन्न करता है। शरीर के किसी मुख्य स्थान पर यदि यह एकत्र हुआ है तो फोड़ा, गठिया, आदि भीषण प्रकोप उत्पन्न करता है। इस प्रकार यह भोजन-विष है तो एक ही लेकिन अपनी चाल के हिसाब से जहां कहीं यह पहुँचता है वहां ही यह कोई न कोई नवीन रूप धारण कर लेता है।

बालकों के बीमार होने का भी यही एक कारण भोजन-विष है। इसमें अधिक दोष बालकों का नहीं बल्कि उनके अभिभावकों का ही है। बच्चों की भोजन प्रणाली के सम्बन्ध में दूसरे लेखों में बहुत कुछ बतलाया जा चुका है। बालकों के बीमार हो जाने पर क्या करना चाहिए, इस सम्बन्ध में यहां बालकों के कुछ रोग और उनकी चिकित्सा के सम्बन्ध में निरूपण किया जा रहा है।

अस्थिवक्रता

डाक्टरों का कहना है कि बालकों के शरीर में आवश्यकतानुसार पोषण तत्त्वों के न पहुंचने पर यह रोग हो जाता है। इस कथन में उक्त सत्य के होते हुए भी कुछ भ्रान्ति विद्यमान है। सौभाग्य से यह रोग हिन्दुस्तान में बहुत कम होता है। शीत प्रधान हर जलवायु वाले स्थान में यह रोग प्रायः हो जाता है। किन्तु इसका भी प्रधान कारण भोजन ही है। बालकों में मुख्यतः गलत भोजन अथवा भोजन में आवश्यकता से कम पोषण-तत्त्व के होने या उसकी अधिकता से भी यह रोग हो जाया करता है। जिस बालक को किसी भी प्रकार से अत्यधिक मीठा दिया जाता है उसे और जिसके भोजन

में विटामिन 'डी' का अभाव रहता है उसे यह रोग हो जाया करता है। फास्फेट और कैलशियम की कमी इसका मुख्य कारण है। बड़ी आयु में जैसे गठिया हो जाता है वैसे ही बालकों को यह रोग हो जाता है। शर्करा के अधिक व्यवहार से बालक के यकृत के ऊपर प्रभाव पड़ता है। शर्करा के वहां इकट्ठा हो जाने से लीवर से निकलनेवाले रस का अभाव हो जाता है, भोजन ठीक तौर पर नहीं पचता। इसके प्रकोप से दूसरी नस-नाड़ियां भी बिगड़ जाती हैं। जिस बालक को यह बीमारी होती है उसका शरीर कान्तिहीन और दुर्बल पड़ जाता है। शिर में पसीने का आना, रात्रि में अधिक घबराहट, कब्ज, देर से और खराब दांतों का निकलना आदि इसके लक्षण हैं। बहुत सी नसें और पँसलियाँ मिल जाती हैं। वे एक के ऊपर दूसरी झुकी हुई स्पष्ट दिखलाई पड़ती हैं। हड्डियों के कमजोर हो जाने से उनकी आकृति भी बदल जाती हैं। शिर बड़ा और गोल हो जाता है। बालक का सीना कबूतर के सीने की तरह हो जाता है। मेरुदण्ड की हड्डी कुछ टेढ़ी दिखने लगती है। घुटने और हाथ पर कुछ सूजन भी आ जाती है। बालक को प्रायः जुकाम बना रहता है।

इलाज—रोग असाध्य नहीं है। जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, गलत भोजन से ही यह रोग पैदा होता है। इसका कोई भी चिन्ह दिखलाई पड़ने पर भोजन के प्रति विशेष सावधान हो जाना चाहिए। बालक को ऐसा भोजन देना चाहिए जिसमें विटामिन 'ए' और 'डी' की अधिकता हो और वह शीघ्र पच जाने वाला हो। प्रातःकाल की सूर्य-रश्मि और वायु-स्नान इसके लिए बहुत जरूरी है। इससे शरीर की हड्डियाँ मजबूत होती हैं। सूर्य प्रकाश में विटामिन 'डी' पर्याप्त मात्रा में विद्यमान है। बालक को खुली हवा में रखने से शरीर के अन्दर स्वच्छ वायु प्रवेश करती है। इसका प्रभाव रक्त पर भी पड़ता है। जाड़े के दिनों में भी वायु-स्नान हितकर है किन्तु उसी सीमा तक इसे व्यवहार में लाना चाहिए कि बालक काँपने न लगे। यदि वायु का झोंका प्रचण्ड हो तो साधारण वस्त्र पहना कर, जो कि शीत से रक्षा कर सके, धूप सेवन लाभप्रद है। सन्तरा, टमाटर, अनन्नास, पीली गाजर बालक का मुख्य भोजन होना चाहिये। अगर बच्चे को ऊपर का दूध दिया जाता है तो उसे बकरी का दूध देना चाहिये लेकिन बिना मीठे का। आवश्यकता से अधिक भोजन कभी न दिया जाय। जैसे जैसे बच्चे की हालत सुधरती जाय वैसे वैसे उसका भोजन बढ़ाना चाहिए। जब बच्चे को फल का रस अच्छी तरह पचने लगे तो उसे कुछ अच्छे फल जैसे सन्तरा, सेब और अंगूर भी दिये जायँ और बाद में तरकारी का जूस। इस प्रकार के भोजन पर बच्चा कुछ महीनों तक रक्खा जाय। रोग जब जाता रहे तो बच्चे को हरी सब्जी और थोड़ी रोटी भी देना शुरू करना चाहिये। रोग के चले जाने पर बच्चे का चेहरा कान्तिमय हो जायगा और वह भी अन्य बालकों की भांति प्रसन्न रहा करेगा, दौड़ेधूपेगा और खेलेगा। शरीर के पुष्ट हो जाने पर रोग बिलकुल न रह जायगा और फिर इसके दुबारा होने की आशंका न रहेगी।

बालकों के कुछ अन्य रोग

स्कर्वी—विटामिन 'सी' की कमी से यह रोग हो जाता है। अमीर और गरीब दोनों के बच्चों को होता है। भोजन में पोषणतत्व की कमी इसका मुख्य कारण नहीं है बल्कि भोजन में ताजे फलों का और स्वाभाविक नमक का अभाव है। भ्रमवश इसे कभी-कभी लोग जोड़ों का दर्द, लकवा या सूखे का रोग भी समझ लेते है। इस रोग में भी हरकत करने से दर्द होता है, हाथ-पैर में सूजन हो जाती है, मसूड़े से रक्त बहता है और उसमें हमेशा गीलापन बना रहता है, लकवे की तरह इसमें भी हाथ पैर कुछ निकम्मे हो जाते हैं, बदन पर पीले-पीले चकत्ते पड़ जाते हैं। ताजे फल और साग के न खाने से यह रोग हो जाया करता है।

इलाज—जिन लड़कों को मिठाइयां या 'पेटेन्ट फूड' दिया जाता है उन्हें यह रोग शीघ्र होता है। इसके रोगी को टमाटर का रस प्रातः काल, सायंकाल और रात्रि को नियम पूर्वक अवस्था के अनुसार नित्य सेवन कराया जाय। टमाटर का रस इसमें विशेष लाभ करता है। इसके अतिरिक्त रोगी को हरी सब्जी, फल और दूध भी काफी मात्रा में देना चाहिये।

एक्जिमा—यह बच्चों का चर्म रोग है, बच्चों को

प्रायः शिर में एक्जिमा होता है। औषधि द्वारा किसी रोग के दवा देने पर, या गलत भोजन करने से यह रोग बच्चों को हो जाता है। दस पाँच दिन के बच्चों में भी यह रोग देखा जाता है। माता पिता के दोष से उनके रक्त में यह रोग देखा जाता है। त्वचा के छिद्र शरीर के असंख्य द्वार हैं जिनसे होकर स्वच्छ वायु शरीर में प्रवेश करती है और विजातीय द्रव्य शरीर से इसके द्वारा बाहर निकलता है। छोटे बच्चों में यह रोग शरीर से विजातीय द्रव्य के बाहर निकलने का संकेत करता है। रोग के समय त्वचा सुर्ख पड़ जाती है या उसके ऊपर चकत्ते दिखलाई देने लगते हैं।

एक्जिमा जब शरीर के अन्दर का विष है, जो कि त्वचा द्वारा बाहर निकलना चाहता है, तो ऐसी दशा में किसी मलहम की सहायता से अच्छा करने का उपाय एक व्यर्थ ही प्रयास होगा। ऊपर से किसी चिकनी चीज़ के लगा देने से यह रोग दब जाता है, अच्छा नहीं होता। एक्जिमा जब त्वचा के नीचे दबा दिया जाता है तो आगे चल कर वह स्वास्थ्य के लिये और अधिक संघातक हो जाता है। बाद में इसके इनफेन्टाइल लीवर, यक्ष्मा आदि के प्रकोप में उभड़ने से बालक की मृत्यु हो जाती है।

एक्जिमा शरीर के अन्दर के विष का परिणाम है। जब यह शरीर में बिजातीय द्रव्य का एकत्रित होना प्रकट करता है तो उसे किसी वाह्य उपचार द्वारा दबा देना अच्छा नही है। इसका सही इलाज तो यह होगा कि शरीर के विष को निकाल कर उसे शुद्ध बना दिया जाय। इसके लिये उचित आहार, सूर्यताप, स्वच्छ वीयु, नमक स्नान और एनिमा या किसी फल के रस से पेट को साफ रखना आदि आवश्यक हैं। आरम्भ में कुछ दिनों तक केवल फलाहार पर रक्खा जाय और तब बालक को उचित भोजन दिया जाय जैसा कि पहले बतलाया जा चुका है। इससे अन्दर का विष धीरे-धीरे निकलता रहेगा। सूर्य के प्रकाश में कुछ समय तक अवश्य बैठा जाय और सप्ताह में दो तीन बार नमक के पानी से बच्चे को नहला दिया जाय। बदन के जिस हिस्से में तकलीफ हो उसे गरम पानी से उसमें एक नीबू का रस डाल कर आध घन्टे तक नित्य धोया जाय। नीम की पत्ती का उबाला हुआ पानी भी हितकर है। किसी प्रकार का कोई पाउडर या मलहम न लगाया जाय। बालक को चिकना रखने के लिये यदि जरूरत मालूम पड़ती हो तो उस पर मिला हुआ चमेली का तेल लगा दिया जाय।

दाद—यह भी त्वचा का ही रोग है। इसके होने का कारण भी वही है जो कि एक्जिमा के होने का कारण है। एक्जिमा की ही भाँति इसका भी इलाज करना चाहिये।

Convulsions—बच्चों में जब पाचन क्रिया का कार्य ठीक नहीं होता तो इसकी तकलीफ़ महसूस होने लगती है। इसमें तुरन्त ही खतरे की कोई बात नहीं है। यह एपीलेप्सी, मस्तिष्क का रोग या यकृति के रोग का परिणाम है। निर्बल बालकों में या जिनके स्नायुतन्तु कमजोर हैं या जिस बालक के माता पिता को रज वीर्य्य सम्बन्धी कोई संक्रामक रोग हो चुका है उन्हें इसका प्रकोप सताता है

इलाज—गरम जल का स्नान इसमें बहुत लाभ करता है। एक टब में नहने लायक गरम पानी भर कर बच्चे को उसमें १० या १५ मिनट तक बैठा लेना चाहिए। दिन में तीन चार बार नहलाना चाहिये। जब कष्ट शान्त हो जाय तो एनिमा से पेट की सफाई कर देनी चाहिये। एक दिन का पूरा उपवास करा दिया जाय। पीने के लिए केवल गरम पानी दिया जाय। इसके पश्चात् फल के रस से शुरू कर के मामूली बच्चों के भोजन पर उसे लाया जाय। किसी प्रकार की औषधि इसमें हानिकर है।

बच्चों का लकवा

उन्हीं बालकों को यह रोग होता है जिन्हें निहायत गलत तरीके का भोजन दिया जाता है। डाक्टरों का कहना है कि यह रोग कीटाणु से हो जाता है। और रोगों के बारे में यह जैसा कहते हैं वैसा ही इसके बारे में भी। इस रोग के बालक के साथ जब दूसरे बालक रहते हैं तो उन्हें इसका आक्रमण हो सकता है लेकिन केवल उन्हीं के होगा जिनमें इसके चिह्न पाये जाते हैं। बाँह और टाँग पर इसका असर होता है। ज्वर हो आता है और कमजोरी बढ़नें लगती है। स्नायु केन्द्रों के निर्बल हो जाने और शारीरिक शक्ति के घट जाने से इस रोग का आक्रमण होता है। रीढ़ की हड्डी तथा इससे जुड़ी हुई जितनी और हड्डियाँ हैं वे सब कमजोर

हो जाता हैं। हाथ और पैर की ताक़त जाती रहती है। गलत भोजन के कारण यह बीमारी उत्पन्न होती है। जिन बच्चों के भोजन में तरकारी तथा फल का प्राकृतिक लवण नहीं रहता या आवश्यकता से कम रहता है उन्हें यह रोग हो जाता है। जो बच्चे मैदे की चीजों पर या चमकदार चावल पर रक्खे जाते हैं उन्हें यह रोग अक्सर हो जाता है।

इलाज—जब तक ज्वर रहे उपवास कराना चाहिये किंन्तु बालक को सन्तरे का रस और पानी जिस कदर वह मागें दिया जा सकता है। कष्ट के चिन्ह जब शान्त हो जाँय और जीभ साफ हो जाय तो बालक को फल पर कुछ दिनों तक रखना चाहिये। यदि कब्ज रहता हो तो एनिमा बराबर देते रहना चाहिये। जिस हिस्से में इसका असर होवे वहाँ मालिश भी करानी चाहिये। बालक जब अच्छा हो जाय तो उसे अधिकतर खुली हुई हवा में रहने के लिए प्रोत्साहित किया जाय। उसका मुख्य भोजन फल, सलाद, ताजा दूध होना चाहिये। चक्की के पिसे हुये चोकरदार आटे की रोटी भी दी जाय। चीनी, मैदा, मिल में साफ किया हुआ चावल आदि कभी न दिया जाय।

मेनिनजाइटिस—गर्दन तोड़ बुखार। इस ज्वर का असर जब स्पाइनलकार्ड अर्थात् सुषुम्ना नाड़ी तक पहुँचता है तो रोग की दशा बहुत भयंकर होती है। बच्चों के होने वाले नए रोगों में इसका प्रकोप बहुत भयङ्कर होता है। पहले के किसी रोग के गलत इलाज का भी यह परिणाम है। इस रोग के आरम्भ में बदन ऐंठता है। बड़ी शिद्दत का शिर दर्द होता है, ज्वर तेज रहता है। दर्द गर्दन तक पहुँचता है और उसका असर रीढ़ की हड्डी पर भी पड़ता है। दर्द के कारण हड्डी कड़ी हो जाती है, बहुत सख्त कब्ज रहता है। बड़ी बेचैनी रहती है। किसी-किसी के बदन पर चकत्ते पड़ जाते हैं जिसे कि लोग चकत्ते वाला ज्वर कहने लगते हैं। गलत भोजन और दबा हुआ रोग इसके उभाड़ के मुख्य कारण हैं।

इलाज—डाक्टरी इलाज से अक्सर मरीज़ मौत का शिकार बन जाता है और अगर मरीज किसी प्रकार अच्छा हो गया तो वह अपने साथ कोई नई बीमारी जैसे बहिरापन, या नेत्रों की ज्योति का क्षीण हो जाना आदि ले आता है। और ज्वरों की भांति गरदन तोड़ बोखार का भी एक ही इलाज है अर्थात् उपवास और रीढ़ की हड्डी पर ठन्डे पानी की पट्टी रखना पखाना न होने पर गरम पानी के एनिमा से पाखाना कराना। ज्वर का कष्ट जब जाता रहे तो संतरे का रस दिया जाय। बाद में एक हफ्ते तक फल और ताजे शुद्ध दूध पर रखा जाय। जब दशा सब प्रकार से सुधर जाय तो भोजन की अन्य चीजें जो बच्चों को साधारण दशा में दी जाती हैं दी जाँय।

कीड़े—छोटे छोटे कीड़े छोटी आँत और बड़ी आंतों में इकठा रहते हैं। मलद्वार के पास या बड़ी आँत के अन्तिम भाग में यह अधिकतर रहते हैं। पानी या भोजन के जरिये से इसके अंडे पेट में पहुंच जाते हैं और इनकी उत्पत्ति शुरू हो जाती है। जिस बच्चे के पेट में कीड़े होते हैं उसको रात में सोते समय ज्यादा खुजली होती है। इससे नींद में भी बाधा पहुंचती है। भूख का कम लगना, चिड़चिड़ाहट बढ़ जाना, ठीक दस्त न होना, पाचन क्रिया का ठीक न रहना और शरीर का पीला पड़ जाना आदि इस रोग के चिन्ह हैं।

इलाज—यह बात सही है कि क्रिमि के अन्डे पेट में पानी या भोजन की चीजों के साथ पहुंच जाते हैं। जिसकी पाचन क्रिया ठीक है उसके ऊपर इनका आक्रमण नहीं होता जिस बच्चे के कोष (Cells) सबल है उसके अंदर यह कभी स्वतः नष्ट हो जाते हैं। किंन्तु जिस बालक को दूषित और गरम भोजन दिया जाता हैं उसके मेंदे में जा यह कभी पहुंचते हैं तो इन्हें वहाँ उत्पन्न होने और बढ़ने का अच्छा अवसर प्राप्त होता है। इन क्रिमि का पेट में पहुंच जाना तो अनायास ही होता है किन्तु इनकी वृद्धि का कारण अवश्य ही बच्चे का अधिक अनियमित और गलत भोजन ही है।

डाक्टर किसी तेज औषधि द्वारा इन क्रिमियों को नष्ट करने का प्रयत्न करते हैं। तेज दवा के पहुंचने से यह मूर्छित हो जाते हैं और कोई कोई मर भी जाते हैं। इससे मौजूदा तकलीफ में अवश्य कुछ कमी आ जाती है। पर यह समूल नष्ट नहीं हो जाते क्योंकि इन्हें मेदे में आहार तो बराबर मिलता जाता है। क्रिमि रोग है, यह निश्चित हो

जाने पर बालक को एक हफ्ते तक केवल फल के रस पर रखना चाहिये। जामुन, अनन्नास, संतरा, टमाटर, और मोसम्बी का रस इस रोग में लाभप्रद है। काग़जी नींबू का रस भी दिन में दो दफा तक देना हित करेगा। १ तोला ब्रविरंग को आध सेर पानी में उबाल कर उसके पानी से एनिमा देना चाहिये। इससे सन्चित बिजातीय द्रव्य भी पेट से निकल जायगा और साथ ही में क्रिमि भी। बालक के बदन में जब सुर्खी आने लगे और सुस्ती कम हो जाय तो समझना चाहिये कि रोग कम हो रहा है। फिर बच्चे को धीरे धीरे साधारण भोजन पर ले आना चाहिये।

छोटे बच्चों को बिस्तरे पर पेशाब कर देने की आदत पड़ जाती है। यह कोई पेचीदा बीमारी नहीं है। मस्तिष्क के स्नायु तन्तुओं के कमजोर हो जाने से बच्चा रात्रि में बिस्तरे पर पेशाब कर देता है।

इलाज—इस बात पर पूरा ध्यान देना चाहिए कि बच्चे के साथ कोई ऐसा व्यवहार न किया जाय जिससे बच्चा सहम जाय। जब तक दिमाग कमजोर है पढ़ने लिखने पर भी बहुत जोर नहीं देना चाहिए। बच्चे को अधिक समय खुली हवा में रखना चाहिए और ऐसा प्रबन्ध करना चाहिए कि वह दौड़ धूप सके। काले तिल का थोड़ा प्रयोग करना इसमें लाभप्रद प्रमाणित होता है। कुछ दिनों तक बच्चे को फलाहार हार रक्खा जाय। स्टिज वाथ फायदा करता है। अगर मेदा में भारीपन मालूम पड़े तो एनिमा का प्रयोग किया जाया।

* * *

वह १३० वर्ष की हो चुकी !

ट्रान्स काकेशियन सोवियट प्रजातंत्र एजेर वैजान की सबसे वयोवृद्ध महिला श्रीमती केचखानुम गुसेनोवा ने अभी हाल ही में अपनी १३० वीं वर्ष गाँठ मनायी है। वह मेनिडिग्या नामक एक पर्वतीय ग्राम में रहती हैं और उसके ५९ औलादें हैं। दुर्भाग्य से उसके पति की मृत्यु १०५ वर्ष की आयु में हो गयी। उसका द्वितीय पुत्र; जिसकी आयु इस समय ९३ वर्ष की है, अब भी एक फार्म में हल जोतने का काम करता है। उसके सबसे बड़े पुत्र ने, जिसकी आयु अब १०७ वर्ष की है, १०१ वर्ष की अवस्था हो जाने के बाद काम करना बन्द कर दिया है।

प्राकृतिक चिकित्सा के कुछ अनुभूत प्रयोग

[श्री गुलाब चन्द जैन गोयल 'प्रचण्ड' साहित्य रत्न]

प्राकृतिक चिकित्सा सम्बन्धी उन अनुभूत प्रयोगों के प्रेषक एक होनहार युवक प्राकृतिक चिकित्सक हैं। इधर आपने स्वयं पर, अपने कुटुम्बियों, तथा इष्ट मित्रों पर अनेक बीमारियों में नैसर्गिक उपचार विधियों के जो सफल प्रयोग किए हैं उन्हीं का यहाँ पर उल्लेख किया है, जो पाठकों के लिए बड़े उपयोगी साबित होंगे।—सं०]

नेत्रों की कमजोरी के लिए

पामिंग (palming) जल में नेत्रों का खोलना मूंदना छींटे देना, सूर्य किरण चिकित्सा के अनुसार हल्के नीले रंग को बोतल के जल का उपचार सूर्य किरणों का नेत्रों पर प्रकाश डालना। कुछ पुतलियों के घुमाने का व्यायाम। कुछ मालिश, डा० बेंजमिन की पुस्तक--Better sight without glasses के आधार पर कुछ गर्दन के व्यायाम।

श्वेत प्रदर होने पर

(२) उपवास, एवं मेहन स्नान तथा एनिमा का प्रयोग, पेट दर्द एवं सिर दर्द में दिए और सफल हुआ।

पड़ोसी के बच्चे के टांसिल बढ़ने पर

(३) गले पर एवं पेट पर गीली मिट्टी (काली) की पट्टी बना कर रखी और उस पर कपड़े की पट्टी रक्खी— रुपये में १२ आने लाभ, बाद में उसने छोड़ दिया अब बिलकुल ठीक है।

एक मित्र की पत्नी को मासिक धर्म के समय

(४) रक्त बहुत बहने लगा—बुरी तरह पीड़ा के कारण तड़पने लगी, पेट एवं सर पीड़ा से घबरा गई केवल पेशाब के स्थान पर तौलिया गीली करके रखने से आध घंटे में उसे पूर्ण शान्ति मिली।

मलेरिया

(५) पेट में पीड़ा, बुखार, एवं उल्टी (कै) हुई। उपवास कराया, गीली पट्टी पेट पर लगभग १ से डेढ़ घंटे तक रक्खा, समय समय पर पलटता रहा—तीन दिन में उन को पूरा पूरा लाभ हो गया।

मूत्र रोग

(६) एक पंजाबी सज्जन के पेशाब होने में बड़ी कठिनाई होती थी। बूँद बूँद करके पेशाब होता था। वह सुईयाँ भी बहुत प्रकार की लगवा चुके थे। अस्पताल में उनका कहना था सुवा लगा दिया जाता था उससे उन्हे बड़ी जलन होती थी, रक्त और पेशाब एक साथ वह निकलता था— मैंने उनसे कहा कि पेट और सर में भी पीड़ा होनी चाहिए पत्नी को श्वेत प्रदर, आलस्य, जोड़ों में दर्द भी होना चाहिये, सब के बारे में उन्होंने स्वीकार किया। उनको पेट पर गीली मिट्टी के लेप करने को कहा, मिर्च मसाला बिल्कुल बन्द किया। सर में भी गीली पट्टी का प्रयोग किया। कुछ उपवास भी करवाये। चौथे दिन उनसे ज्ञात हुआ कि पेशाब करने में उन्हें बड़ा कुछ भी कष्ट न हुआ।

इसी प्रकार के कई केस लिए और सन्तोषजनक लाभ हुआ।

* * *

दीर्घ जीवन के रहस्य

डा० रामचरण महेन्द्र, एम० ए०, डी० लिट्०

दीर्घ जीवन के लिए जहाँ अन्य पौष्टिक तत्त्व अमृतोपम औषधियाँ, कायाकल्प इत्यादि की सलाह दी जाती है, वहां फक्कड़पन, खुश-मिज़ाज, उत्साही मुखा मुद्रा की भी अतीव आवश्यकता है। आप एक लम्बी आयु का आनन्द लूट सकेंगे यदि आप मस्त रहना जानते हों; चिन्ता, क्रोध, भय इत्यादि तीव्र उत्तेजनाओं को आपने परास्त कर लिया हो और आनन्द, उत्साह और आशा को अपने स्वभाव का एक स्थायी अंग (part and parcel) बना लिया हो और आप उत्तेजनाओं एंव उद्वेगों को चुटकियों पर उड़ाना जानते हों।

क्या आपने बापू का हँसता हुआ मुख मंडल देखा है? उसे गौर से देखिए तो आपको प्रतीत होगा कि उस सात्विक हँसी के पीछे एक निर्भीक आत्मा झांक रही है। बापू प्रायः गंभीर रहते हैं किन्तु विनोद, आनन्द, एवं प्रफुल्लता उनके स्वभाव के विशिष्ट अंग हैं। इस उत्साही प्रकृति के बल पर ही वे १२५ वर्ष जीवित रहने का दृढ़ निश्चय कर चुके हैं।

वृद्धावस्था को मार भगाने के उपायों में वर्षों लगे रहने के पश्चात् मुझे अचानक ज्ञात हुआ कि बड़े जोरशोर से इन उपायों की तलाश करने से, सदा उन्हीं की चिंता में लगे रहने से हम उन्हें कदापि प्राप्त नहीं कर सकते। सौ बात की एक बात यह है कि आपका भी एक क्षण के लिए भी अपने मनोमंदिर में इस विचार को न प्रवेश करने दें कि हम निर्बल हैं, बूढ़े है; या बीमार बन रहे हैं। दूसरा यदि कहे कि आप कमजोर होते जा रहे हैं, तो कदापि उसकी बात न मानिए। आप अपनी आयु को बिल्कुल ही भुला दीजिए, वरना आप अपनी ही दुष्कल्पनाओं और दुश्चिन्ताओं से अपने आप को मार डालेंगे। अपनी क्या दूसरों की ढलती अवस्था का विचार भी मन में न आने दीजिए। मन में यह दृढ़ निश्चय कर लीजिए कि हम कभी बूढ़े न होंगे; हमारी शक्तियां कभी जवाब न देंगी, प्रत्युत सदैव यौवन के आनन्द उठाते रहेंगे। यौवन के उल्लसित स्वप्न देखने की आदत बनाइए। संगीत से प्रेम कीजिए। यौवन के मीठे गीतों में मन का मैल, क्रोध, चिन्ता, भय, दुःख, क्लेशों को बहा डालिए। यौवन के पुनीत आदर्श को लेकर आत्मा में प्रविष्ट हो जाइए, यहां तक कि दुःख की कड़वी बातें विलीन हो जांय और स्वास्थ्य की, आनन्द की, प्रेम की, हँसी की मीठी मीठी कल्पनाएं आकर आपको मस्त बना दें। हँसते हुए पुष्पों के साथ हँसीं; ऊषा कीगुलाबी मुसकान में मिश्री घोल दो; संसार में प्रेम, आनन्द, हँसी निखेरतेहुए, चिंताओं को मसलते हुए अलमस्त बने रहो। बस, तुम स्वास्थ्य पाओगे, दीर्घायुष्य की प्राप्त करोगे!

अक्षय युवावस्था की प्राप्ति

युवावस्था को अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए यदि कहीं औषधि मिल सकती है तो वह मन में ही मिल सकती है; शक्ति-वर्द्धक खुराक, कान्तिवर्द्धक कल्प, तेल इत्यादि युवावस्था तब तक प्राप्त न होगी जब तक मन का पूरा पूर योग न हो। 'मैं वृद्ध होता जा रहा हूँ'—सर्व प्रथम इसी दूषित कल्पना को मन से निकाल देना चाहिए। मनुष्य के संस्थान की रचना ही कुछ ऐसी है कि उसे सदा आनन्दित

आह्लादित, मधुर कल्पनाओं में मस्त रहना चाहिए। जहाँ जिन्दा दिली है, वहीं यौवन है।

अक्षय यौवन के लिए "प्रेम एक महान औषधि है। प्रेम मय जीवन कितना लम्बा होता है, यह हमारे प्राचीन ऋषि मुनि खूब जानते थे। प्रेम करना सीखिए। प्रेम थके हुए जीवन को उत्साह प्रदान करता है। मरणोन्मुख जीव को नवजीवन प्रदान करता है; हतभाग्यों को स्वर्गीय सुख का अनुभव कराता है। प्रेमी व्यक्ति सब से अधिक जीता है। शुष्क नीरस जीवन से तो जिन्दगी का दिवाला निकल जाता है। जीवन में जो कुछ मिठास है वह 'प्रेम' के ही कारण। इसीसे भगवान् प्रेम के अवतार कहलाते हैं। अक्षय यौवन के लिए हमें प्रेम सिद्धि अवश्य करनी होगी। हमारे अन्दर प्रेम का जो अंकुर है उसे खिलने का अवसर जरूर मिलना चाहिए। प्रेम की बाढ़ को रोकिए नहीं, बल्कि विवेक बुद्धि, धर्म भावना तथा कर्त्तव्य को सामने रख कर जैसे बने उसे रास्ता दीजिए।

अपने आपको "आत्मा" मानिए। आत्मा अक्षय है इसी से आपका अस्तित्व है। तब क्षय क्यों कर हो सकता है। आप तो जन्म से ही अक्षय हैं। आपकी आत्मा रोग, शोक, क्लेश, चिन्ताओं से परे है। आप ईश्वर के पुत्र हैं। स्वर्ग का राज्य आपके अन्दर है। भला ऐसे सूक्ष्म तत्वों से विनिर्मित होकर आप बूढ़े कैसे हो सकते हैं। आप तो विशुद्ध हैं, कल्पवृक्ष हैं, पारस हैं, अमृत हैं, आनन्द की प्रतिमा हैं। अपने वास्तविक स्वरूप को पहचानिए।

*

दीर्घायुष्य पर प्राचीन शास्त्रकारों के विचार

चरक ने लिखा है—

नित्यं हिताहार विहार सेवी समीक्ष्यकारी विषयेष्व सक्तः
दाता समः सत्यपरः क्षमावानात्योसेवी च भवत्यरोगः

अर्थात्—सदैव हितकारी भोजन तथा आचरण का सेवन करनेवाला, सोच समझ कर कार्य करनेवाला, विषयों के प्रति अनासक्त, दानशील, समबुद्धि, सत्यवक्ता क्षमाशील, तथा हितकारी वचनों का पालन करने वाला मनुष्य दीर्घायु प्राप्त कर सकता है।

प्रत्येक दीर्घजीवन के आकांक्षी को ब्राह्म मुहूर्त में उठने का अभ्यास करना चाहिए। इसके पश्चात् शास्त्रकारों की आज्ञा है कि प्रत्येक मनुष्य दही, घी, दर्पण, सफेद सरसों, बेल, गोरोचन, तथा माला का दर्शन और स्पर्श करे। घी में अपना प्रतिबिम्ब देखना चाहिए। चरक का मत है कि प्रातः काल व्यायाम, प्राणायाम योग-क्रियाएं आयु को बहुत बढ़ाती हैं। चरक ने कहा ही कि प्रातः काल सड़े हुए मांस, वृद्धा स्त्री के साथ सम्भोग, मैथुन, तथा निद्रा; इनसे बचना चाहिए क्योंकि ये प्राण नाशक होते हैं। इसी प्रकार निरंतर कामोत्तजक विषयों, चित्रों, स्त्रियों में रहने से प्राण शक्ति नष्ट होती है। सभी प्रकार के मादक द्रव्य—सिगरेट चाय, तम्बाकू, मदिरा,—प्राण क्षय करने वाले हैं। इसके विपरीत दही, शहद, दूध, घृत, मक्खन आयु को बढ़ाने वाले हैं। सादी रहनसहन, सत्संगति, सद्ग्रन्थावलोकन, स्नान, सादा एवं ताजा अल्पाहार, दो बार मल मूत्र का त्याग, नियमित व्यायाम, जल्दी सोना जल्दी जागना, प्राणायाम, उपवास, तथा ब्रह्मचर्य से दीर्घायुष्य की प्राप्ति होती है।

*

महेन्द्र जो की "दीर्घजीवन" रहस्य के शीर्षक पुस्तक से। मूल्य ।=) "अखंड ज्योति" कार्यालय, मथुरा, से प्राप्य—सम्पादक।

-रोगों की सरल चिकित्सा

[श्री रमेश बेदी आयुर्वेदालङ्कार]

उपयोग किये जाने वाले प्राचीनतम धि में तुलसी है। साहित्य में इसका सबसे प्रथम उल्लेख हमें चरक संहिता में मिलता है। लेकिन यह आश्चर्य की बात है कि चरक के समय में (लगभग दो हजार वर्ष पहले) और उसके बाद भी काफी समय तक (८ वीं ६ वीं शताब्दी तक) इस पौधे को तुलसी नाम से कोई नहीं जानता था। उस समय इसे तुरस (सुगन्धित रसवाला पौदा) अगेतराक्षसी (रोग रूप राक्षसों को परे भगा देनेवाला) कहा जाता था। आठवीं-नवीं शताब्दी में पुराणकारों ने इसे तुलसी, वृन्दा आदि नाम दिये। इन नामों से आजकल आप अधिक परिचित हैं, इसके पुराने नाम तो जैसे भुला दिये गये हैं।

ईसवी सन् प्रारम्भ होने से पहले का जो भारतीय साहित्य उपलब्ध होता है उसमें, और बाद में छठीं-सातवीं शताब्दी तक के साहित्य में इस पौधे की पूजा की पवित्रता का वर्णन नहीं मिलता। बाद में यह भारत में तथा अन्य देशों में पवित्र समझा जाने लगा था। ग्रीक गिरजों में तुलसी पवित्र है। मेडिटरेनियन के तटवर्ती प्रदेशों में सब जगह सामान्य रूप से यह स्वास्थ्यप्रद पौधा समझा जा रहा है।

तुलसी सेनेटोरियम

स्वास्थ्य-सुधार के लिये आजकल पुराने रोगियों को पहाड़ों पर भेजने के लिए चिकित्सक आदेश दिया करते हैं। वहां पर जो लम्बे-लम्बे चीड़ के वृक्ष उगे रहते हैं उनके बीच में से गुजरती हुई वायु उनके तैलिय रेज़िन alesresin को स्वास्थ्यप्रद गन्ध को साथ ले लेती है। खोये हुए स्वास्थ्य को पुनः प्राप्त कराने में यह वायु रोगियों के लिये वरदान होती है। हमारे देश में एक समय रोगियों को तुलसी के जंगलों या बगीचों में रखने का रिवाज रहा है। तुलसी में से उड़ने वाले सुगन्धित तेल आस-पास की वायु में भरे रहने से उस वायु को सुगन्धित और शुद्ध रखते हैं। यह वायु अन्तःश्वास में जब फेफड़ों के अन्दर पहुँचती है तो सामान्य रक्त-संचार में तुलसी के निःसंक्रमण करने के तथा दूसरे प्रभावों को पहुँचा देती है जिससे शरीर के प्रत्येक कोष पर इसका सूक्ष्म असर पड़ता है, फेफड़े नीरोग होते हैं, शरीर का हर एक अवयव, चाहे वह सूक्ष्म हो या स्थूल, नई स्फूर्ति और प्रेरणा पाता है। दुसाध्य रोगी भी स्वस्थ हो जाता है।

तुलसी की सुगन्ध को लिये हुये वायु जहां-जहां जाती है उस स्थान की हवा, मिट्टी, पानी और चारों ओर के वायुमण्डल को शुद्ध करती जाती है। इस प्रकार तुलसीवन के पास के गांवों में रहने वाले सब प्राणी स्वास्थ्यलाभ कर सकते हैं। इसी बात को सोच कर प्राचीन काल में तुलसीवनों में स्वास्थ्यगृह (सेनेटोरियम के कमरों के फर्श और दीवारें उस मिट्टी से लीपी जाती थी जो तुलसी के पौधों के नीचे से ली गई होती थी। यह इसलिए किया जाता था कि रोगों के कीटाणु उस फ़र्श पर न पनप सकें। जिन रोगियों को घर से दूर नर्मदा या गङ्गा के तटपर रह कर स्वास्थ्य सुधारने की सुबिधायें प्राप्त नहीं हो सकती थी वे तुलसी वनों में ही रह कर अपने स्वास्थ्य को बनाते थे और उन्हें वैसा ही लाभ होता था जैसा कि वे गङ्गा के तट पर रहकर प्राप्त करने की आशा रखते थे।

यह प्रथा एक समय इतना अधिक जोर पकड़ गई थी कि असाध्य रोगी भी तुलसी के जङ्गलों में रहते हुये अपने प्राण त्यागने में गौरव समझने लगे थे जैसे कि वे गङ्गा तट पर या किसी तीर्थ-स्नान पर शरीर छोड़ रहे हों। लोगों में यह निश्चय घर कर गया था कि जो व्यक्ति, चाहे वह रोगी हो या स्वास्थ, तुलसी के जङ्गलों में रहता हुआ प्राण त्याग करता है और मृत्यु के समय जिसके मुख में तुलसीदल रख दिये जायँ या मरते समय जिसे तुलसी की मञ्जरी दे दी जाय तो वह सद्गति को प्राप्त करता है। इस विश्वास के अनुसार, जिन लोगों के मुख में तुलसीदल डालना सम्भव न होता था उनके मुख में तुलसीजल की बूंदें टपका

दी जाती थीं, अथवा तुलसी के पत्तों को पानी में भिगो कर उन्हीं पत्तों से उन्हें छींटे दे दिये जाते थे। रोगी के सिर पर और कानों पर भी तुलसीदल रख देने की प्रथा थी। मरते हुए के गले में तुलसी काष्ठ माला पड़ी हुई है तो वह सद्गति को प्राप्त होता था। घरों में तुलसीदल के नीचे की मिट्टी सँभाल कर रखी जाती थी और यदि मृत्यु के समय तुलसी प्राप्त न होती थी तो इस मिट्टी को चन्दन की तरह घिस कर माथे पर लेप कर देने से भी मरनेवाले की सद्गति समझी जाती थी।

इन धार्मिक विश्वासों और रिवाजों का एक विज्ञान-सम्मत आधार है। रोगी के पास की बुरी तथा गन्दी गन्ध को तुलसी हटाती है और सड़ाँध के कारण पैदा हुई दूषित अवस्थाओं को रोकती है। मलाया प्रायद्वीप के निवासी क़ब्रों पर तुलसी के पत्ते चढ़ाते हैं। कहते हैं कि ईसा की क़ब्र पर भी तुलसी का पौदा उग आया था।

शोधक रसायन

मध्यकाल के एक लेखक के अनुसार तुलसी देखने, विचारने, सूंघने, बोलने, स्वाद लेने आदि सब शक्तियों को स्थिर रखनेवाली है। मुख, आंख, नाक, गला, कन्धे, हृदय नाभि, कमर, जाँघ, पैर आदि सब अङ्गों को सुरक्षित रखने वाली है। तुलसी का सेवन शरीर में से सञ्चित मलों को निकालता है जिससे प्रत्येक अवयव पवित्र हो जाता है। मन, वाणी और शरीर शुद्ध हो जाते हैं। तुलसी की मिट्टी को या तुलसी की लकड़ी को चन्दन की तरह घिसकर माथे पर सदा लेप करने से वंश-परम्परा में चलने वाले रोगों को रोकने में सहायता मिलती है। तुलसी सब रोगों से बचाकर मन और शरीर को पवित्र करती है। दूषित जल को शुद्ध करने के लिये तुलसी के पत्ते पानी में डाल देते हैं।

व्रत कौमुदी में तुलसी के 'लक्षव्रत' का उपदेश है। एक-एक करके लाख पत्तों को शय्या पर चढ़ाया जाता है। जब तक पूरे लाख पत्ते न चढ़ा दिए जायें व्रत करनेवाला उपवास रखता है। आयुर्वेद शास्त्र में बहुत सी बनौषधियों को हजारों की संख्या में प्रयोग कराने के आदेश लिखे मिलते हैं। 'हजार हरड़ें' और 'हज़ार पिप्पलियों' के प्रयोग से प्रत्येक वैद्य परिचित है। यहां भी तुलसी के हज़ार और लाख पत्तों के प्रयोग की

रोगियों पर इनका प्रयोग

हैं। रोग की अवस्था, रोगी के

आदि को विचार कर वैद्य को

'वर्तमान क्रम' से अथवा दूसरी

लाख पत्तों का प्रयोग कराना है। बड़ी अथा आचरण का ब्राह्मण को मैं जानता हूँ जो सालों से रोज तुलसी के पन्द्रह हरे पत्ते नियम से खा रहे हैं। अपने उत्तम स्वास्थ्य का रहस्य वे स्पष्टतया तुलसी का नियमित सेवन बताते हैं।

मस्तिष्क और हृदय

तुलसी के पांच-सात पत्तों को तीन-चार काली मिर्चों के साथ ठंडाई की तरह रगड़ कर एक गिलास बना लें। सुबह खाली पेट इक्कीस दिन बराबर पिया जाय तो यह पेय दिमाग़ की गरमी को दूर करता है और दिमाग को ताक़त देता है, हृदय-उत्तेजक होने से यह हृदय को बलवान् करता है। अमीर लोग इस पेय में बादाम, चारों मगज, इलायची आदि भी रगड़ लेते हैं।

भरतपुर के एक वैद्य ने एक लेख में लिखा था कि उनके पास 'तुलसीकल्प' नामक एक हस्तलिखित प्राचीन पुस्तक है। उसमें लिखा है—'ब्राह्ममुहूर्त में उठकर स्नानादि से निवृत होने के बाद प्रतिदिन तुलसी के पांच पत्ते एक घूंट जल से निगल जाने वाले का बल और तेज बढ़ता है, उसकी मेधा और स्मरणशक्ति तीव्र हो जाती है।

चरक और गोविन्ददास के महानील तेल में तुलसी के पत्ते डाले जाते हैं। पीने से, सिर पर मलने से और नाक में डालने से यह तेल मस्तिष्क तथा सिर के सब रोगों को दूर करता है। बालों को सफेद होने देने से रोकता है, आंखों की ज्योति को बढ़ाता है और दीर्घ आयु प्रदान करता है।

तुलसी के हरे पत्तों को पीस मृगी के रोगी के शरीर पर रोज़ उबटन करना चाहिये। पत्तों के रस में थोड़ा नमक मिलाकर में टपकाने से मूर्च्छा और बेहोशी तत्काल दूर हो जाती है।

वातनाड़ियों के रोग

वातनाड़ियों (Nerves) के विकारों में जैसे गृध्रसी आदि नाड़ियों की शूल और शोथ (शियाटिका) में पत्तों को पानी

ना देते हैं। इस रशास द्वीप में इसके क्षाघात (लकवा) में है और रस में से उठते ता है। रोग के लकवे (उरुस्तम्भ) को धोते हैं और तुलसी के बीजों को पास कर उस लेप करते हैं। पत्तों को दही और सेंधा नमक के साथ रगड़कर लेप करने से टाँग का लकवा ठीक हो जाता है। वैद्य-जीवन में लेलिम्बराज बताते हैं कि पत्तों के रस को काली मिर्च के चूर्ण में और घी में मिलाकर प्रबल वातव्याधि में भी देने से रोग शान्त हो जाता है।

प्रजनन संस्थान के रोग

तुलसी पोषक और बाजीकरण गुण के लिए उपयोग की जाती है। यह वीर्य को गाढ़ा करती है और पुंसत्व शक्ति को बढ़ाती है। बीज लसदार और लेपक होते हैं। जननेन्द्रिय और मूत्रसंस्थान के विकारों में दिये जाते हैं। नपुंसकता में दी जानेवाली अनेक दवाओं में पीसे हुए बीज हिस्सा लेते हैं। ये वीर्यवर्द्धक हैं और बीर्य की तरलता को दूर करते हैं। तुलसी के बीज पांच तोला, पोस्त के डोडे चार तोला, गोखरू पांच तोला, कौंच के बीज तीन तोला, मुसली चार तोला और मिश्री छः तोला को कूटकर कपड़छान कर ले। दस रत्ती की मात्रा में यह चूर्ण वीर्य की निर्बलता में दिया जाता है। स्तम्भन के लिए लोग बीजों के चूर्ण को या जड़ के चूर्ण को पान में रख कर सेवन किया करते हैं, इससे बल की भी वृद्धि होती है। तुलसी के बीजों को या जड़ को चूर्ण करके समान भाग पुराने गुड़ में मिलाकर डेढ़ से तीन-माशे तक सुबह शाम गाय के दूध के साथ लिया जाय तो वीर्य के विकार दूर हो जाते हैं। वीर्य को पुष्टि देकर पुंसत्व-शक्ति बढ़ानेवाली दवाओं को ढूंढ़नेवाले युवकों और अधेड़ों को इसके पांच छः सप्ताह के सेवन से बहुत लाभ होता है। स्वप्नदोष को रोकने के लिए जड़ को घोट कर पिलाया जाता है। थोड़ी-सी इलायची और एक तोला सालव मिश्री के चूर्ण के साथ पत्तों का काढ़ा प्रति दिन लिया जाय तो यह एक पोषक पेय का काम करता है। पिसे हुए बीज मासिक धर्म के जारी करने के नुस्खों में डाले जाते हैं। पत्तों के काढ़े की एक प्याली हर महीने रजोदर्शन के बाद तीन दिन तक पी ली जाया करे तो गर्भ ठहरने की सम्भावनाएँ बहुत कम रह जाती हैं। देहातों में स्त्रियां गर्भनिरोध के लिए इसे इस्तेमाल करती हैं। तुलसी के बीज और नई आमाहल्दी को सम भाग में पीस कर योनि में छिड़कने से योनिभ्रंश ठीक हो जाता है। गर्भावस्था में पेट की दीवार के खिच जाने से त्वचा की निचली स्तर फट जाती है जिससे पेट पर दरारें सी दिखाई देती हैं। ये दरारें उरःस्थल के नीचे भी पड़ जाती हैं। इन दरारों को किविकस (stria gravidrum) कहते हैं। इनमें खुजली हुआ करती है। तुलसी के पत्तों को सिलबट्टे पर पीस कर इन पर मलते हैं। इससे खुजली शान्त हो जाती है।

पृष्ठ २५१ का शेषांश

को एक सुदृढ़ आधार पर प्रतिष्ठित करना, उसे मुक्ति दिलाना है। राजनीतिक दासता के साथ ही शरीरिक, मानसिक एवं बौद्धिक दासता से जब तक हमें मुक्ति नहीं मिलती तब तक हमारे लिए स्वतन्त्रता सही माने में चरितार्थ नहीं हो सकती। 'नकली और असली जीवन' 'स्वतंत्र भारत' 'तुलसी और मानवता' 'रामनाम क्यों' 'राष्ट्रीयता ही हमारा धर्म हो' 'कर्म योगी बनो', 'कर्म से मोक्ष' आदि लेख' जो कि इसके सातवें अंक में, प्रकाशित हुए हैं वे 'कर्म योग' के इसी लक्ष्य को इंगित करते हैं। जीवन की सार्थकता इसी में है कि उसका विकास आध्यात्मिक पृष्ठ-भूमि को लेकर हो, तभी वह मानव-जाति के लिए, विश्व के लिए कल्याणकारी बन सकता है। अतः यह स्पष्ट है कि जिस लक्ष्य को सामने रखकर यह साहित्य-जगत में अवतरित हुआ है वह बहुत महान एवं आर्ष है। अभी यह पत्र पिछले ६ महीनों से ही प्रकाशित हो रहा है, किन्तु इस अल्प समय में ही यह प्रकट कर दिया है कि इसका स्थान मासिक अथवा पाक्षिक पत्र-पत्रिकाओं के क्षेत्र में बहुत ऊँचा है। हम अपने सहयोगी की अधिकाधिक सफलता एवं समुन्नति की हार्दिक कामना करते हैं।

सुख का स्वरू[illegible]

[श्री हरिभाऊ उपाध्याय]

जीवन में सुख सभी चाहते हैं—ऐसा कोई न होगा जो दुःख की चाहना रखे। कि [illegible] ही कम होंगे जिन्हें सुख की आशा में पग-पग पर दुःख के असहन आघात न लगते हों। [illegible] सुख से वंचित और दुःख से विपन्न करने वाला है। यदि हमें यह ज्ञात हो जाय कि सुख का [illegible] स्वरूप क्या है, उसकी प्राप्ति के सही उपाय या साधन क्या हैं, तो इसकी प्राप्ति भी हम सुगमता पूर्वक कर सकते है।

आदरणीय उपाध्याय जी ने सुख के इसी वास्तविक स्वरूप को इस लेख में बड़े सुन्दर ढंग से समझाया है। आपके लिये यह लेख कितना उपयोगी है, इसका अनुभव आप तभी करेंगे जब कि इसे एक बार पढ़ जायं। —सं०]

यदि हम मनुष्यों से पूछें कि संसार में तुम क्या चाहते हो, तुम्हारे जीवन का क्या उद्देश्य है, तो तरह तरह के उत्तर मिलेंगे—धन, वैभव, राज्य, पुत्र-संतति, कीर्ति, मान सम्मान, पद-प्रतिष्ठा, मुक्ति, ईश्वर-प्राप्ति, शान्ति सुख, आनन्द ज्ञान इनमें से कोई एक लक्ष्य या उद्देश्य वे अपना बतावेंगे। मनुष्य संसार या जीवन में जो कुछ करता है वह उन्हीं से प्रेरित होकर करता है। विचार करने से ये सब लक्ष्य या उद्देश्य दो भागों में जाते हैं—शारीरिक, भौतिक या ऐहिक तथा मानसिक, पारमार्थिक या आध्यात्मिक। धन से लेकर पद-प्रतिष्ठा तक के उद्देश्य भौतिक व मुक्ति से लेकर ज्ञान तक के विषय आध्यात्मिक कोटि में आते हैं। यदि मनुष्य-जीवन के इन भिन्न उद्देश्यों के लिए किसी एक ही सर्वमान्य शब्द का प्रयोग करना चाहें तो 'सुख' कह सकते हैं। और भौतिक सुख तथा आध्यात्मिक सुख इस तरह उसके दो भाग किये जा सकते हैं।

समाज में यह धारणा प्रचलित है कि भौतिक या सांसारिक सुख इसी जन्म के लिये हैं व आध्यात्मिक या पारलौकिक सुख अगले जन्म या इस जन्म के बाद की अवस्था से सम्बन्ध रखता है। यह सही हो या गलत किन्तु यह तो निर्विवाद है कि मनुष्य जिस किसी तरह का भी सुख चाहता हो उसके लिये उसे उद्योग या परिश्रम अपने वर्तमान जीवन में ही करना पड़ता है। जिस लक्ष्य को लेकर वह चलता है उसकी सिद्धि में ही उसे अपने जीवन की कृतार्थता मालूम होती है।

जीवन के सम्बन्ध में भी लोगों के दृष्टिबिन्दु अलग अलग पाये जाते हैं। कोई इस जन्म से शरीर की मृत्यु तक के जीवन को ही सारा जीवन मानते हैं। कोई इसे अपने विशाल जीवन की एक मंजिल ही मानते हैं। ये पिछले विचार के लोग कहते हैं कि हमारे जीवन का आरंभ तब से हुआ है जब से सृष्टि में चेतन पदार्थों के या मनुष्य जीवधारी के दर्शन हुए और उसका अन्त तब होगा जब वह जन्म-मरण के चक्कर से छूट जायगा या उसी परमात्मा में मिल जायगा जिससे बिछुड़ कर वह संसार में आ गया है। इनमें से किसी भी विचार से आप सहमत हों, यह निश्चित है कि आपको जो कुछ प्रयत्न करना है वह अपने इस छोटे जीवन में तो जरूर ही कर लेना है, आगे दूसरा जन्म मिलनेवाला होगा तो उसमें भी जरूर किया जायगा, परन्तु आप वर्तमान जीवन में तो किसी तरह हाथ पर हाथ धरे नहीं बैठे रह सकते। साथ ही अपना उद्देश्य आपके प्रयत्नों से ही सफल हो सकेगा। यदि ईश्वर की कृपा हुई भी तो वह बरसात की तरह एकाएक आकाश से नहीं बरसती। आपके प्रयत्न के फल के रूप में ही किसी व्यक्ति या समूह के द्वारा उसकी पूर्ति ईश्वर कराता है। इस विषय में आप तटस्थ, उदासीन, निष्क्रिय या गाफिल उसी दशा में रह सकते हैं जब आपने ऐसा कोई लक्ष्य या उद्देश्य अपने जीवन का नहीं बनाया हो या उसे छोड़ दिया हो।

हुत कम लोग कल्पना हो। उस अधिकांश लोग तो के अधीन होकर प्रायः वस्तु उन्हें प्रिय लगती है पीछे पड़ जाते हैं। इस तरह अन्य न के अभाव में ही मनुष्य उसके लाभ से वंचित रहता है व सुख की जगह दुःख को पल्ले बाँध लेता है। आज यदि संसार में हम पूछें कि तुम सुखी हो या दुःखी, तो अपने को 'दुःख' की श्रेणी में रखने वालों की संख्या बहुत बड़ी मिलेंगी। प्रयत्न सब सुख का करते हैं पर पाते अधिकांश में दुःख ही। यह संसार का सबसे बड़ा आश्चर्य है। मनुष्य नित्य इसका अनुभव करता है। परन्तु इसका मूल खोज कर उसका सही इलाज करनेवाले विरले ही होते हैं।

जबसे सृष्टि में मनुष्य जीवधारी पैदा हुआ तबसे उसने नाना प्रकार से, विविध साधनों व विधानों से सुख-सिद्धि के प्रयत्न किये हैं। उसका आज तक का सारा भव्य इतिहास इसी उद्योग का साक्षी है। भिन्न-भिन्न व्यवस्थायें, संस्थायें, संस्कृतियां, राज्य, धर्म, काव्य, साहित्य, कला, उद्योग, व्यवसाय, शिक्षा, ज्ञान, तत्व, आचार, तंत्र सब उसके इसी उद्देश्य की पूर्ति के साधन-स्वरूप निर्मित हुए हैं। परन्तु मनुष्य कहीं न कहीं ऐसी गलती जरूर कर रहा है जिसके कारण वह अपने मूल उद्देश्य से अभी तक दूर है। और उसके बजाय न केवल व्यक्तिगत जीवन में बल्कि सामाजिक व राष्ट्रीय जीवन में नित्य दुःख, कलह, वैषम्य, ईर्ष्या, हिंसा, अत्याचार के दर्शन हो रहे हैं। दुःख सब तरह से प्रत्यक्ष और सुख केवल कल्पनागत दिखाई दे रहा है। इसका मूल हमें खोजना ही होगा। जहां-जहाँ हमें अपनी गलतियां मालूम हो उन्हें दुरुस्त करना ही होगा।

इस गलती को पकड़ने में हमें सहूलियत होगी यदि हम पहले यह समझलें कि जिस चीज के अर्थात् सुख के पीछे हम पड़े हुए हैं वह असल में है क्या चीज? जब उसका असली स्वरूप समझ में आजायगा तो फिर उसके सही साधन व उसके प्राप्त करने की रीति या पद्धति पर विचार करना आसान हो जायगा। और तब हम अब तक के भिन्न-भिन्न प्रयत्नों की समालोचना व उसके साथ तुलना करके तुरंत देख सकेंगे कि गलती कहां और किस तरह से हुई है। फिर हमें उसका उपाय खोजने में भी सुगमता होगी।

सुख का स्वरूप समझने का यत्न करते हैं तो ये प्रश्न उपस्थित होते हैं कि सुख किसे होता है, कैसे होता है; किस रूप में होता है? फिलहाल हमने मनुष्य जीवन के ही प्रश्न को हाथ में लिया है अतः उसी की मर्यादा में हमें इन प्रश्नों का उत्तर पाना है। 'सुख किसे होता है' आदि प्रश्नों पर विचार करने लगते हैं तो यह जिज्ञासा होती है कि सुख मनुष्य शरीर को होता है, मन को होता है या आत्मा को होता है? सुख उसे अपने भीतर से मिलता है या बाहरी जगत् से? जहां कहीं से भी मिलता हो वह किस विधि से, किस रास्ते से किस रूप में आता है? मनुष्य के ज्ञान व अनुभव के आधार पर हमें इनका उत्तर मिल सकता है।

जिसे हम सुख कहते हैं वह लड्डू, फल, किताब, मूर्ति या रमणी की तरह कोई प्रत्यक्ष वस्तु नहीं है कि सीधे-सीधे उसके आकार-प्रकार का वर्णन करके उसका परिचय दिया जा सके। वह एक प्रकार की भावना व वेदना अर्थात् संवेदन है जो वर्णन से परे है और केवल उसका अनुभव किया जाता है। मनुष्य के शरीर में कई इन्द्रियाँ हैं। ये आमतौर पर दस मानी जाती हैं, जिनमें पांच कर्मेन्द्रियां व पांच ज्ञानेन्द्रियां कही जाती हैं, हाथ, पांव, मुख, जननेन्द्रिय गुदा—ये कर्म करने वाली और आँख, नाक, कान, त्वचा, जिह्वा ये ज्ञान देने या पहुंचानेवाली इन्द्रियां हैं। आँख बाहरी दुनियां की चीजों को देखती है, कान दुनिया के शब्दों व ध्वनियों को सुनते हैं, नाक गंधों को सूंघती है, त्वचा अर्थात् चमड़ी वस्तुओं के चिकने, खुरदरे, गरम ठंडेपन को अनुभव करती है और जीभ विविध रसों का स्वाद ग्रहण करती है। इस तरह मनुष्य अपनी ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा सृष्टि के विविध पदार्थों के स्वाद को पाता है। जो स्वाद या ज्ञान उसे रुचिकर अच्छा या प्रिय लगता है वह सुखदायी लगकर सुख कहलाता है जो अरुचिकर या बुरा लगता है वह दुखदायी लगकर दुःख कहलाता है।

—:०:—

हमारी दृष्टि में

मासिक साहित्य

आज कल—विशेषांक मई १९४६; संपादक श्री अनन्त मराल शास्त्री, संयुक्त प्रकाशनालय पोस्ट बक्स नं० १९९ दिल्ली से प्रकाशित और यूनाइटेड प्रेस दिल्ली, में मुद्रित; वार्षिक चन्दा ५) इस विशेषांक का मूल्य ॥)

सहयोगी 'आज कल' के अपने जीवन के दूसरे वर्ष में पदार्पण करने के अवसर पर मई का अंक बड़ी सज धज के साथ एक सर्वाङ्ग सुन्दर विशेषांक के रूप में प्रकाशित हुआ है। पिछले साल भर से इसने हिन्दी साहित्य की जो सेवा की है वह स्तुत्य है और उसी के बल पर हम यह कह सकते हैं कि इसने हिन्दी के मासिक साहित्य-जगत् में बहुत ऊँचा स्थान प्राप्त कर लिया है। इस पत्र का प्रकाशन दो उद्देश्यों को लेकर हुआ है—पहला तो यह कि विदेशों और विशेषतः भारत के पड़ौसी राष्ट्रों की गति-विधियों के वास्तविक चित्र प्रस्तुत करना और दूसरा यह कि भारत में होने वाले महत्वपूर्ण परिवर्तन से हिन्दी पाठकों को परिचित कराना। हम यह निःसंकोच कह सकते हैं कि 'आज कल' ने अपने इन दोनों आदर्शों का यथेष्ठ रीति से पालन किया हैं। लेकिन इसका उद्देश्य यहीं तक सीमित रह गया हो, ऐसी भी बात नहीं। सुन्दर, सामयिक, गम्भीर एवं गवेषणा पूर्ण लेख, रोचक कहानियां, कानों में गूंजती रह जाने वाली मनोहर कवितायें आदि उन समस्त समुचित सामग्रियों से इसके प्रत्येक अंक सम्पन्न रहे हैं जो कि किसी भी उच्चकोटि के मासिक साहित्य के अनिवार्य अंग हैं।

इसका विशेषांक तो बहुत ही सुन्दर निकला है। श्री उदयशंकर भट्ट, आचार्य चतुरसेन शास्त्री, डा० रामकुमार वर्मा, श्री बच्चन, श्री पदुमलाल पन्ना लाल बख्शी, जैसे चोटी के कलाकारों का सहयोग प्राप्त करना निसन्देह इसके लिए गौरव की बात है। छपाई, सफाई, गेट-अप में तो यह बहुत आगे बढ़ा हुआ है। एक रंगीन चित्र तथा कई अन्य सामयिक एवं आकर्षण चित्रों से सुसज्जित यह अंक विशेष आकर्षण बन गया है। इस अंक की सफलता के लिए हार्दिक बधाई, और यह शुभकामना भी कि यह अपने पथ पर उत्त

साहित्य जगत् की श्री वृद्धि

जीवन साहित्य—सम्पाद

श्री मार्तण्ड उपाध्याय, मंत्री; सस्ता सा

हिन्दुस्तान टाइम्स प्रेस में छप कर प्रकाशित, वार्षिक मूल्य २) एक प्रति का ।=)

'जीवन-साहित्य' महात्मा गांधी की रचनात्मक प्रवृत्तियों का—जीवन की अहिंसक पुनर्रचना का—पत्र है। यह पत्र पिछले ७ वर्षों से प्रकाशित हो रहा है किन्तु इसका प्रवाह सदा एक ही दिशा में होता रहा हो, ऐसा कहना शायद कठिन ही होगा। हिन्दी पाठकों के बीच इसका प्रादुर्भाव प्रारम्भ में एक उच्च कोटि के मासिक के रूप में हुआ—कालान्तर के इसने महात्मा गांधी की रचनात्मक प्रवृतियों की दिशा में कदम बढ़ाया—फिर यह प्रधानतः प्राकृतिक चिकित्सा का पथ-प्रदर्शक पत्र बना, और अब यह पिछले जनवरी मास से 'जीवन की अहिंसक पुनर्रचना का पत्र' के रूप में निकल रहा है। इतने मौलिक परिवर्तनों के बावजूद यह सदैव अपनी दिशा में अनोखा ही रहा है। सम्भवतः इन्हीं सब कारणों से इसका मार्च अप्रैल और मई का संयुक्त अंक निकला है, जो हमारे सामने हैं। 'गांधी जी कलाकार की दृष्टि में', 'गीता-प्रवचन', 'निरीहों का शोषण', 'भक्ति—उद्धार का सरल मार्ग', आन्तरिक स्वतंत्रता, प्रभृति लेख इसके एक नए मार्ग के प्रतीक हैं। उपाध्याय जी जैसे सुयोग अनुभवी सम्पादक के हाथों में आकर यह मासिक साहित्य जगत में एक नया आदर्श उपस्थित करे, यही हमारी हार्दिक अभिलाषा है।

कर्मयोग (पाक्षिक)—सम्पादक श्री हरिशंकर शर्मा, मुद्रक तथा प्रकाशक, श्री देवी प्रसाद 'दिव्य' गीता मन्दिर प्रेस, आगरा, वार्षिक मूल्य ४ रुपया, एक अंक का मूल्य ≡)

'कर्म योग' गीता मन्दिर आगरा का पाक्षिक मुखपत्र है। जैसा कि स्वतः इसके नाम से ही प्रकट होता है इसका उद्देश्य मनुष्य को कर्मयोगी बनाना है—पीड़ित मानवता

(शेष पृष्ठ २४८ पर)

ार

ुष्य

दीर्घायुष्य का महात्म बहुत महान जीवी भवेत् तो हिन्दू धर्म का आदर्श वाक्य है। किन्तु यह परम्परा हमारे देश में वहीं समाप्त प्राय हो गई, जहां भारत पराधीन बना, जहाँ हर दिशा में विदेशी प्रभुत्व की छाप पड़ी। आहार-विहार, रहन-सहन जीवन-यापन-क्रम पर विदेशियों की छाप तो पड़ी ही, हमारा मानसिक विकास-क्रम भी इस व्याधि से अछूता न रहा। दुख दैन्य, दैवी विभिषिकाएं, अधीरता, साहस हीनता, नैराश्य-भावना, इन सबका भी जन-साधारण के मानसिक स्तर पर भयंकर आघात पहुंचा—वह डावाँडोल हो गया—नहीं, गिर भी गया। राजनीतिक ह्रास अथवा पराजय के साथ ही हमारी शारीरिक, मानसिक एवं नैतिक पराजय भी हुई—हमने अपने को जीवन की प्रत्येक दिशा में विदेशियों का दास बना लिया—हमारा सारा जीवन ही परिवर्तित हो उठा! जहां एक समय तो सौ-सवा वर्ष जीना एक साधारण बात थी वहाँ आज भारतवासियों की औसत आयु २७ वर्ष से भी कम हो रही है—आज २५ वर्ष के युवक-बुड्ढे हर जगह बड़ी आसानी से देखने को मिलते रहते हैं।

हमारे इस ह्रास का कारण—क्या यह भी बताना पड़ेगा? हमारे यहां आज ऐसे कितने हैं जिन्हें दोनों वक्त भर पेट भोजन मिलता हो, जिनके लिए दूध-दही घी मक्खन कल्पना की बात न बन गई हो, जिनके कंधों पर जीवन की निराशा, दुख-दैन्य, पारिवारिक अशान्ति के दुःसह भार न लदे हों। मानसिक विश्रृंखलता अथवा अस्तव्यस्ता शारीरिक व्याधियों के ही रूप में तो प्रकट होती हैं? रोग-व्याधि के अन्य कारणों में से एक मानसिक कारण भी तो है, जिसकी प्रबलता शारीरिक व्याधियों के अन्य कारणों से किसी कदर कम नहीं बतायी जा सकती। मनः शुचिता, प्रसन्नता मंगलमय भावनाओं से ओत-प्रोत आशावादिता—यही दीर्घ जीवन की—दीर्घायुष्य की कुंजी है।

इस अंक में हरवर्ट कालेज, कोटा के विद्वान प्रोफेसर डा० रामचरण महेन्द्र का दीर्घायुष्य विषयक सुन्दर लेख आप पढ़ेंगे। उसमें आपको जीवन का वह मूल मंत्र मिलेगा जिसे आज आप खो बैठे हैं! उसे फिर से अपनावें। इसी से हमारा कल्याण है—हमें आज इसी की सब से अधिक आवश्यकता है। प्राकृतिक चिकित्सा आज कल की अन्य प्रचलित प्रणालियों की भांति कोई औषधि-प्रणाली तो है नहीं, यह तो सिर्फ, पूज्य बापू के शब्दों में, 'जीवन-कला' ही है। यहां तो रोगी के गले के नीचे दवा की घूंट न उतार कर जीवन के वे नियम बताए जाते हैं जिनके आधार पर हमारे शरीर मंदिर का निर्माण हुआ है। इसी लिए किसी एक व्याधि से पीड़ित होनेवाला व्यक्ति तन मन लगन से प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति की शरण लेने पर अन्य समस्त गोचर-अगोचर व्याधियों से सदा के लिए छुटकारा पा जाता है। फिर उसे 'शतं जीवो भवेत्' के आर्ष वाक्य को चरितार्थ कर दिखाने का स्वप्न देखना ही चाहिए। शरीर से अस्वस्थ-अशक्त बन कर दीर्घ जीवनयापन करना भी भारमय होता है। जब शरीर ही कार्यक्षम न रह गया तो जीवन के अधिक लम्बे दिन व्यतीत करने से लाभ ही क्या रहा! अतः हमें दीर्घजीवी बनने का स्वप्न देखने के साथ साथ दीर्घकाल तक सक्रिय शक्ति-सम्पन्न तथा रोग रहित बने रहने के लिए भी अनिवार्यतः प्रयत्नशील होना पड़ेगा। क्योंकि स्वास्थ्य एवं अनारोग्य के ही आधार पर दीर्घायुष्य अवलम्बित है।

इसी अंक में आपको यह भी पढ़ने को मिला होगा कि अजरबैजान के पर्वतीय प्रदेश में एक वृद्धा ने अपनी १३० वीं वर्ष गाँठ अभी हाल ही में मनाई है। उसे इस बात का दुःख है कि इसके पति की मृत्यु १०१ साल में ही हो गयी। उस वृद्धा के ५६ औलादें हैं। उसके सबसे बड़े लड़के की उम्र १०७ साल की है! इस प्रकार उसका परिवार का परिवार ही दीर्घजीवी है। क्या यह हमारे लिए कम आश्चर्य की बात है? उसके इस दीर्घायुष्य के चाहे जो कारण बताए जायँ, किन्तु हम यह बल देकर कह सकते हैं कि उसे दीर्घ-जीवन का वरदान प्रकृति से ही मिला है। प्रकृति की ही गोद में पल कर उसे अपने जीवन की १३० वर्ष गाँठ मनाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। जीवन-यापन के नियम बहुत सरल हैं, उसका पालन करना भले ही किसी को सरल न जान पड़े। यह निश्चय जानिये कि आप जिस रूप में अपनी जीवन-शक्ति का व्यय करते हैं उसी अनुपात में आप जीवन की अवधि को दीर्घ अथवा न्यून बनाते हैं। आपका जीवन, रहन सहन, आहार-बिहार सीधा-सादा एवं प्रकृति के नियमों के अनुकूल हो, आपके विचार सात्विक एवं उच्च हों फिर तो आप भी शतंजीवी बन सकते हैं, इसमें सन्देह नहीं।

छप गई

स्वास्थ्य और आ

लेखक—डा० बालेश्वर प्रसाद सिन्हा

ऐसे तो आसन सम्बन्धी अनेक पुस्तकें बाजार में प्रचलित है किन्तु इस पुस्तक तायें हैं जिनसे अन्य कृतियाँ सर्वथा शून्य हैं। आसनों की उत्पत्ति, उनका रूप एवं लाभ आदि तथा आचरण का जानकारी इस पुस्तक के द्वारा ही प्राप्त हो सकती है। पुस्तक अत्यन्त सरल भाषा एवं बोधगम्य शैली में लिखी है। ऐसी अनुपम पुस्तक का मूल्य केवल ३।।) है, डाक व्यय पृथक्।

नारी आरोग्य दर्शन

लेखक—डाक्टर इन्दुमती सिन्हा ए० डी०

नारी जितनी जटिल हैं, वैसे ही उसके रोग भी। आज हमारा नारी समुदाय बिभिन्न प्रकार के स्त्री-रोगों से ग्रसित हो रहा है—कुछ दैनिक जीवन में व्यतिक्रम करने के कारण तो कुछ अपनी अज्ञानतावश। समस्त प्रकाके के स्त्री-रोगों की उत्पत्ति का कारण, उनके उपचार, एवं गर्भावस्था आदि के विषय में पूर्ण जानकारी प्राप्त करने र लिए श्रीमती इन्दुमती सिन्हा द्वारा लिखित आरोग्य दर्शन नामक पुस्तक मँगाकर अवश्य अध्ययन करें और अपने गृहस्थ-जीवन को सुखमय बनावें। ३५० पृष्ठों की यह सचित्र पुंस्तक अनिवार्य रूप से प्रत्येक स्त्री की चिरसंगिनी होने लायक है। ऐसी सुन्दर पुस्तक का मूल्य केवल ४।।) है, डाक व्यय पृथक। पुस्तक छप रही है। शीघ्र ही उपलब्ध होगी।

प्राकृतिक चिकित्सक

लेखक राम नरायण जी दुबे

श्री रामनरायण दुबे की यह पुस्तक अपने नाम को सार्थक करती है। विपत्ति में एक छोटे-मोटे डाक्टर का काम दे सकती है। दुबे जी स्वयं एक अनुभवी एवं कुशल वैद्य हैं। अपने पुराने अनुभव के सहारे उन्होंने गागर में सागर भरने का प्रयास किया है। प्रकृति की गोद में बिखरे विभिन्न प्रकार के उपकरणों का मानवता के हित के लिए कैसे उपयोग किया जा सकता है इसका विश्लेषण इस पुस्तक में भली प्रकार किया गया है। पुस्तक प्रत्येम घर रखने लायक है। मूल्य ७।।) डाक व्यय पृथक।

सूचना

जीवन सखा १।।) में पुस्तकालयों को रियायती मूल्य पर देने की जो विज्ञति में हम अभी तक प्रकाशित कर रहे थे, उसकी अवधि अब समाप्त हो गई है, अस्तु अब जीवन सखा ३) ही ग्राहकों को साल भर तक उपलब्ध हो सकेगा।

—व्यवस्थापक

लाभ उठाइये !!

वस्थ और सुखी जीवन के इच्छुकों को
ये पुस्तकें पढ़नी चाहिए

	अचूक चिकित्सा (चतुर्थ संस्करण) :श्री जानकी शरण, वर्मा, बी० ए०	५)
	या की रक्षा—लुई कूने	।।=)
	मैं निरोग हूँ या रोगी ?—लुई कूने	।।=)
(४)	स्वास्थ्य के नुस्खे—'जीवन सखा' कार्यालय	।)
(५)	क्या और कैसे खायं—डा० बालेश्वर प्रसाद सिंह	।=)
(६)	ब्रह्मचर्य ही जीवन है—स्वामी शिवानन्द	१।।)
(७)	आनन्दमय जीवन—श्री शंकरलाल तिवारी	।।)
(८)	कब्ज या कोष्ठबद्धता : डा० बालेश्वरप्रसाद सिंह	१)
(९)	तपेदिक—श्री एम० एन० पांडेय	४)
(१०)	शाकों के गुण—श्री नारायणप्रसाद अरोड़ा	१)
(११)	फलाहार—श्री नारायणप्रसाद अरोड़ा	१)
(१२)	वैज्ञानिक जल-चिकित्सा—श्री कुलरंजन मुखोपाध्याय	२)
(१३)	सचित्र हठयोग—स्वामी शिवानन्द	१।)
(१४)	मन और उसका निग्रह (प्रथम भाग)—स्वामी शिवानन्द ...	१)
(१५)	मन और उसका निग्रह (द्वितीय भाग) ,, ...	३)
(१६)	हम सौ वर्ष कैसे जीवें : श्री केदारनाथ गुप्त, एम० ए०	१।।।)
(१७)	आरोग्य-साधन—महात्मा गाँधी ...	।।।)
(१८)	स्वास्थ्य साधन—श्री रामदास गौड़	३।।)
(१९)	आहार ही औषध है : डा० एल० एन० रतरा	१।।)
(२०)	दवाओं से बचो—श्री गंगाप्रसाद गौड़,'नाहर'	१)
(२१)	शक्ति दर्शन—शंकर लाल तिवारी	१)
(२२)	Your diet in health & disease by Harry Benjamin ..	1-4-0
(२३)	Food-de-Medicine by Dr, L. N. Ratra, H. M. B. ..	1-2-0
(२४)	Universal un-cooked food	3-8-0
(२५)	Nature Cure of Eye defect by Dr. K. L. Sharma.	2-0-0
(२६)	Practical Nature cure ,, ,, ,,	8-8-0
(२७)	Constipation and Dyspepsia	1-8-0
(२८)	Gems of health	2-0-0
(२९)	Drugless healing	1-0-0

स्वास्थ्य सम्बन्धी पुस्तकें मिलने का पता:—

मैनेजर, स्वास्थ्य ग्रंथ-भंडार २८७, बादशाहीमंडी, चौक, प्रयाग ।

प्रश्नोत्तरी कूपन जून, १९४६

प्राकृतिक चिकित्सा और

विश्ववंद्य पूज्य महात्मा गांधी जी की राय में प्राकृतिक चिकित्सा रोग मिटाने के इलाजों का तरीका नहीं वरन् जीवन की एक पद्धति है, जिसमें रोग या बीमारी के लिए कोई गुंजाइश ही नहीं रहती।

वास्तव में प्राकृतिक चिकित्सा हमको जीने की कला (Art of living) सिखाती है। अन्य प्रणालियों की अपेक्षा यह प्रकृति से कहीं अधिक सम्बन्धित है। इसका ईश्वर से सीधा संपर्क है। प्रकृति चिकित्सा मुख्यतया प्राकृतिक साधनों पर ही निर्भर करती है अतएव इसमें देवत्व के सभी गुण निहित हैं।

अस्तु, यदि आप बापू की भाँति अपने स्वास्थ्य, काय एवं व्यक्तित्व को ईश्वर के चरणों में समर्पित करना चाहते हैं तो **जीवन सखा मासिक** मंगाकर पढ़ें।

जीवन सखा का उद्देश्य जनसाधारण के शारीरिक, मानसिक एवं नैतिक स्वास्थ्य का पथ प्रदर्शन करना एवं प्राकृतिक चिकित्सा का घर घर ढिंढोरा पीटना है।

व्यवस्थापक—

जीवन सखा कार्यालय,
२८७ बादशाही मंडी इलाहाबाद।

चीन शास्त्रकारों के विचार

ोगी क

को समीक्ष्यकारी विषयेष्व सक्तः

सेवी च भवत्यरोगः

तथा आचरण का

Printed by R. N. Avasthi at the K. P. Press and Printing School, Alld.
Published by Syt. Baleshwar prasad Sinha. 287, Badshahi Mandi,
Chowk, ALLAHABAD.

जीवन सखा

रिक, मानसिक और नैतिक स्वास्थ्य का पथ-प्रदर्शक

वर्ष ११ अङ्क ८ अगस्त सन् १९५६ ई.

इस अंक के कुछ विशेष आकर्षण

अ	१. तम्बाकू की आदत से छुटकारा कैसे मिले?—डा० जयशंकर नन्दी	१
ग	२. सत्य व्रत का इतिहास—श्री बालजी गोविन्द देसाई	१
स	३. कष्टार्त्तव (डिस्मनोरिया)—डा० इन्दुमती सिन्हा एन० डी०, डी० वाई०,	४
त	४. आत्म-निर्देश—श्री लालजीराम शुक्ल एम० ए०, बी० टी०	६

तथा अन्य उपयोगी लेखादि

वार्षिक चन्दा ३)

इस प्रति का ।=)

कॉंगड़ी गुरुकुल में १० सितम्बर १९५६ ई. को प्राप्त
हस्ताक्षराणि मम प्रसादस्य।

तथा सम्पादक—डॉ० बालेश्वरप्रसाद सिं

विषय सूची

—:०:—

१—मौन—'जीवन विज्ञान' २८५
२—सत्यव्रत का इतिहास—श्री वालजी गोविन्द देसाई २८६
३—आत्म-निर्देश—श्री लालजीराम शुक्ल एम० ए०, बी० टी० २८८
४—कष्टार्त्तव (डिस्मिनोरिया)—डा० इन्दुमती सिन्हा, एन० डी० डी० वाई २९१
५—दो महत्व के प्रयोग—श्री प्यारेलाल २९६
६—मलेरिया: उसका कारण और निवारण—डा० सुरेन्द्रप्रसाद २९८
७—आम फलों का राजा—श्री मूलनारायण मालवीय ३००
८—दाल: एक पौष्टिक आहार—श्री रामेश वेदी आयुर्वेदालंकार ३०३
९—तम्बाकू की आदत से छुटकारा कैसे मिले ?—डा० जटाशंकर नन्दी ३०६
१०—चेचक—ब्रजमोहन मिहिर ३१०
११—अपने विचार ३१३
१२—प्रश्नोत्तर ३१४

जीवन सखा प्रेमियों से

जीवन सखा का उद्देश्य जन साधारण के शारीरिक, मानसिक एवं नैतिक स्वास्थ्य का पथ-प्रदर्शन करना है—बस, इसी भावना से प्रेरित होकर हम गत दस वर्षों से युग के अनेक थपेड़ों को सहते हुए भी जीवन सखा प्रकाशित करते आ रहे हैं। हमें अपने उद्देश्य में सफलता भी मिली किन्तु पूर्ण रूप से नहीं। हमारी मनोकामना थी कि जीवन सखा का संदेश देश के लक्ष्मीपतियों के भव्य भवनों से लेकर गरीब भाइयों की अँधेरी झोपड़ियों तक में गूँज उठे, पर हम अपने लक्ष्य से सर्वथा दूर ही रहे—कुछ युग की विकरालतावश; कुछ अपने स्नेहियों के सक्रिय सहयोग के अभाववश। अब देशवासियों के गिरते हुए स्वास्थ्य को देखकर हमारी हार्दिक इच्छा है, बल्कि अनुरोध है, कि समस्त जीवन सखा प्रेमी व्यक्तिगत रूप से हमारी ओर से प्रत्येक स्वास्थ्य प्रेमी स्त्री-पुरुष को जीवन सखा द्वारा प्रचारित प्राकृतिक चिकित्सा प्रणाली के अनुपम रहस्य से परिचित कराने का भरसक प्रयत्न करें उनसे जीवन सखा परिवार में शामिल होने का अनुरोध करें ताकि जीवन सखा का अधिकाधिक प्रचार हो, जीवन सखा का संदेश घर घर में पहुँचे और सर्वसाधारण का स्वास्थ्य सुधरे। इतना होने पर ही हम अपनी मंजिल पर पहुँच सकेंगे, अन्यथा नहीं। आशा है हमारे स्नेही हमारी इस प्रार्थना पर ध्यान देकर अपना सक्रिय सहयोग प्रदान करेंगे।

—व्यवस्थापक

Reg. No.A-172

शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्
NATURE ONLY HEALS

जीवन सखा

सम्पादक
डा० बालेश्वरप्रसाद सिंह

वर्ष ११] अगस्त १९४६ ई० [अङ्क ८

मौन !

मनुष्य की वाचिक और मानसिक शुद्धि के लिए नियमित 'मौन' अत्यन्त आवश्यक वस्तु है। यह वाणी का संयम है।

वाणी के असंयम से, वचन की स्वच्छन्दता से, बोली की कठोरता से, संसार में कितने अधिक झगड़े, अशान्ति, रक्तपात और मुकदमेंबाजियाँ होती हैं, यह बताना व्यर्थ है। मनुष्य का क्रोध, उसका अहंकार, उसकी तमाम क्षुद्र वृत्तियाँ वाणी के द्वारा ही प्रत्यक्ष होकर जीवन में कलह का बीजारोपण करती है। सात्विक वाणी के जरिये—मिष्ठ भाषण के द्वारा एक ओर जहाँ संसार में प्रेम की गंगा बहती है वहाँ तामसिक वाणी के जरिये, कटु भाषण के द्वारा, जीवन में ईर्ष्या और द्वेष के कुल्हाड़े चलते हैं। 'मौन' के नियमित सेवन से मनुष्य में वाणी की सात्विकता पैदा होती है, उसकी मिष्ठ भाषण की आदत बढ़ती है।

शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य पर भी 'मौन' का बड़ा अनुकूल असर पड़ता है। मनुष्य अपने अन्दर जितनी शक्तियों का संग्रह करता है उनमें से बहुत सी शक्तियाँ अनियमित वाणी से, अधिक बोलने से खर्च हो जाती है। उसके चित्त में अशान्ति पैदा होती है जिससे अनेक दूषित मनोविकार पैदा होते हैं।

वाणी के इस असंयम पर विजय प्राप्त करने के लिए हमारे आचार्यों ने 'मौन' का बड़ा सुन्दर तरीका बतलाया है। उन्होंने बतलाया है कि नियमित जीवन वाले मनुष्य को सप्ताह में एक दिन अथवा महीने में एक दिन बिलकुल मौन रहना चाहिए। मौन के दिवस वाणी पर पूर्ण संयम रखना चाहिए। किसी से बोलना नहीं चाहिए। एकाग्र चित्त होकर आत्मा और परमात्मा का चिंतन करना चाहिए। गत सप्ताह या गत मास में वचन के द्वारा किसी को क्लेश पहुँचाया हो, किसी से लड़ाई की हो तो मौनावस्था में उसका पश्चाताप करना चाहिए और आगे ऐसा न होने देने के लिए परमात्मा से प्रार्थना करनी चाहिए।

इस प्रकार नियमित मौन सेवन से मनुष्य को अपनी कषायवृत्तियों—क्रोध, मान, माया, लोभ इत्यादि कलुषित वृत्तियों—पर विजय प्राप्त करने की शक्ति प्राप्त होती है, उसके मुख्य मण्डल पर समता और शान्ति का प्रकाश प्रकट होता है, उसकी शारीरिक और मानसिक शक्तियों का खजाना बढ़ता है, उसका यौवन दीर्घजीवी होता है।

महात्मा गाँधी इस बात के प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। वे सप्ताह में एक दिन नियमित मौन रखते हैं।

सात्विक जीवन के लिए नियमित मौन एक दिव्य उपचार है।

—'जीवन विज्ञान'

सत्य व्रत का इतिहास

श्री वालजी गोविन्द देसाई

पूर्ण स्वस्थ वही है जिसका शारीरिक, मानसिक नैतिक एवं आध्यात्मिक—ये चारों पहलू सुदृढ़, स्वस्थ तथा उन्नत हैं। और इसके लिए शारीरिक और मानसिक, वाह्य और आन्तरिक, दोनों प्रकार की स्वच्छता—शुचिता समान रूप से आवश्यक है। सत्य-भाषण आन्तरिक शुचिता का एक अविभाज्य अंग है। हमारी आर्य-संस्कृति में सत्य-प्रीति का कितना ऊँचा स्थान रहा है—हमारी संस्कृनि के विकास में इसने कितना महान योग प्रदान किया है, इसी तथ्य का निरूपण इस सुन्दर लेख में आपको मिलेगा। —सं०]

मामूली तौर पर समूची आर्य जनता और खासकर हिन्दुस्तान में रहने वाले आर्य बहुत सत्य प्रिय और सत्य की विजय में श्रद्धा रखनेवाले थे। इस सत्य-प्रेम और सत्य-श्रद्धा का प्रतिविम्ब उनके धर्म-शास्त्रों पर पड़ा है। रोमन लोग कहते थे कि 'सत्य महान् है और उसकी जय है,' लेकिन जिन दिनों दुनिया में किसी ने रोमन का नाम न सुना था, उन दिनों मुण्डक उपनिषद् के ऋषि ने यह साक्षात्कार किया था।

सत्यमेव जयते नानृतम्।
सत्येन पन्था विततो देवयानः॥

'सत्य की ही जय होती है, असत्य की नहीं। सत्य से देव लोक का मार्ग खुल जाता है, और इस ऋषि ने भी ऋग्वेद की एक ऋचा का ही प्रतिघोष किया था :

सत्यासत्ये वचसी पस्पृधाते।
तयोर्यत्सत्यं यतरदृजीयस्।
तदित् सोमोऽवति हन्त्यासत्॥ ७--१०४--१२॥

'सत्य और असत्य में होड़ बँधती है। इनमें जो सच्चा और सीधा होता है, उसकी सोम (भगवान्) रक्षा करता है, और असत्य का हनन करता है (मारता है)।'

मनुष्य जाति को वाक् या वाणी (बोलने की शक्ति) प्राप्त होने पर उसने अपनी उन्नति के पथ पर बहुत बड़ा डग बढ़ाया। हर्डर के शब्दों में कहें तो, 'एम्फियन की बाँसुरी से नगर-रचना नहीं हुई, किसी इन्द्रजाल से रेगिस्तान की जगह फुलवारी नहीं बनी। यह सब भाषा का प्रताप है, जो समष्टि कार्य की जननी है।' इसलिए तो हमारे यहाँ वाणी को देवी-स्वरूप माना है। वाणी प्राप्त होने के बाद मनुष्य ने अग्नि का उपयोग करना और अपनी इच्छा से उसे सुलगाना जाना। अग्नि के प्रताप से मनुष्य वानर से नर बना। अगर किसी एक मनुष्य ने अग्नि का पता लगाया है, तो उससे बढ़ कर कोई शोधक हुआ नहीं। आग से मनुष्य ने अन्न राँधना, अलाव जलाना और जंगली जानवरों का डराना सीखा। अग्नि का सेवन करके मनुष्य जाति ने दिग्विजय किया। आग न होती, तो मनुष्य बीच के अक्षांश का जाड़ा बरदाश्त न कर पाता। साथ ही, एक लोहा ही नहीं, बल्कि दूसरा धन भी मनुष्य को अग्नि के प्रताप से प्राप्त हुआ। इस तरह अग्नि मनुष्य के लिए बहुत ही जरूरी चीज बन गई। ऐसी हालत में पारसियों और हिन्दुओं के पुरखों ने उसे देव समझ कर पूजना शुरू किया, तो उसमें कोई आश्चर्य नहीं। लकड़ी के दो टुकड़ों को आग झड़ने तक रगड़ने की, उनका मन्थन करके आग प्रगटाने की, प्राचीन पद्धति ने धार्मिक क्रिया का रूप धारण कर लिया। रोज-रोज आग जलाने की मेहनत से बचने के लिए हर एक आर्य गृहस्थ सारी रात आग जलाये रखता था; और आज भी ऐसा करने वाले अग्निहोत्री हमारे बीच मौजूद हैं। पारसी भाइयों की अगियारी (अग्नि-आगारी) तो मशहूर ही है, जहाँ

१२०० बरस पहले उनके पुरखों द्वारा ईरान से लाई गई अग्नि आज भी बराबर जलती है।

इसमें अचरज की कोई बात नहीं; लेकिन हमारी अग्नि पूजा में अचरज की बात यह है कि शतपथ ब्राह्मण के अनुसार जिस मनुष्य ने अग्नि की स्थापना की है, उसे कभीं झूठ न बोलना चाहिये।

नवाऽऽहिताग्निनाऽनृतं वदितव्यम्। २-२-२-२०।

बल्कि सच ही बोलना चाहिये।

सत्यमेव वदेत्।

और इसी सिलसिले में यह भव्य घोषणा की है कि सत्य का आचरण ही अग्नि-स्थापना की विधि है।

तस्य व एतस्याग्न्याधेयस्य सत्यमेवोपचारः।

कहा जाता है कि मनुष्य भगवान् की मूर्ति अपने जैसी ही बनाता है। इसके अनुसार हम देखें कि हमारे पुरखे देवों के आचार के बारे में कैसी कल्पना करते थे। उसी ब्राह्मण में आसुरी नाम के आचार्य का यह बचन मिलता है। 'देव एक ही व्रत का पालन करते हैं, और वह है, सत्य; इसलिए सच ही बोलना चाहिये।

उबाचासुरिरेकं ह वै देवा व्रतं चरन्ति यत्सत्यं
तस्मादु सत्यमेव बदेत्। १४–१--१--१-३३।

फिर कहा है कि देवों ने असत्य को छोड़ा और सत्य को अपनाया :

ते देवा उत्सृज्यानृतम् सत्यमन्वालेभिरे।
६--५--१--१३।

इससे भी आगे बढ़ कर लिखा है कि सत्य ही ब्रह्म अथवा परमेश्वर है :

सत्यमेव ब्रह्म। २--१--४--१०।

शतपत ब्राह्मण की रचना के बाद शायद ३ हजार बरस बीतने पर गांधी जी ने अनजाने इस सिद्धान्त का पुनरुद्धार किया है।

अमेध्यो वै पुरुषो यदनृतं वदति। ३-१-२-६०।

बाह्य शौच (बाहरी सफाई) के सब नियम तो धर्म में गूंथ लिये गये हैं, किन्तु शतपथ ब्राह्मण इससे भी आगे बढ़ कर कहता है कि जो झूठ बोलता है, वह अशुचि या नापाक है।

हमारी सत्य-प्रीति का यह प्रमाण ३ हजार बरस पहले का है। इससे आगे बढ़ने पर प्राचीन भारत में आकर लौटे हुए ग्रीक लोग गवाही देते हैं कि 'चोरी क्वचित ही होती है। भारतवासी कचहरी (अदालत) में क्वचित ही जाते हैं। ...... वे अपने घर और अपना धन ज्यादातर खुला रखते हैं। सत्य और सदाचार के लिए उनके मन में इज्जत है' (स्ट्रेबो)। और कहा है, 'वे इतने प्रामाणिक (ईमानदार) हैं कि उनके घरों में तालों की और उनके वादों को लेखी दस्तावेजों की जरूरत नहीं पड़ती, और एरिअन अपनी 'इन्दिका' में लिखता है; 'किसी हिन्दुस्तानी को झूठ बोलते नहीं देखा।'

बाद के जमाने में हमारी सत्यप्रीति इतनी तीव्र नहीं रही, लेकिन भगवान् का अनुग्रह है कि आज भी मामूली लोगों में से यह शुभ लक्षण बिलकुल लुप्त नहीं हो गया है। इसकी दो मिसालें मेरे मामा श्री चतुरभुज लक्ष्मीचन्द बावीशी ने मुझे दी थीं :

मेंदरडा वाले पुरुषोत्तम मावाणी ने काठी दरबार श्री वालाभाई पर ४,४०० रुपये का दावा दायर किया। वालाभाई ने कहा, पुरुषोत्तम के पिता दामोदर मवाणी जो कह देंगे, सो मुझे मंजूर होगा। दामोदर भाई अदालत में हाजिर हुए और बोले, जहाँ तक मैं जानता हूँ पुरुषोत्तम ने दरबार को २ हजार रुपये दिये थे। इस पर वालाभाई ने पुरुषोत्तम की पूरे ४,४०० रुपये गिन दिये।

जेतपुर के बड़े चौक में ढोरों के पानी पीने की किसी जगह के बारे में हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच झगड़ा पैदा हो गया था। हिन्दुओं ने कहा, ९५ वे बरस के दाउद बेगा और दूसरे अबा अबू, ये दो मेमन जो कह देंगे, सो हमें मंजूर होगा। इन सज्जनों ने कहा कि जगह हिन्दुओं की है। इस तरह जेतपुर के हिन्दुओं को जगह मिली थी, वहाँ आज भी एक साधु की कोठरी मौजूद है।

Fiat justitia ruat coelum—इन्साफ करो; फिर चाहे आसमान ही क्यों न टूट पड़े।

—'हरिजन बंधु'।

आत्म-निर्देश

श्री लालजीराम शुक्ल एम० ए०, बी० टी०

आत्म-निर्देश या 'आटो सजेशन' (Auto-Suggestion) इच्छा-शक्ति की रीढ़ है—उसका मूल आधार है। स्वास्थ्य के मनोवैज्ञानिक पहलू की दृष्टि से तो इसका मूल्य आंका ही नहीं जा सकता। मनुष्य पूर्ण स्वस्थ तभी बन सकता है, जब कि उसके मनोभाव और विचार भी स्वस्थ हों। जब मन ही दुःशंकाओं, दुर्विचारों और दुष्कल्पनाओं से पीड़ित हो तो भला उसका शारीरिक स्वास्थ्य टिक ही कैसे सकता है? शुक्ल जी का यह लेख इसी तथ्य की ओर इंगित करता है, स्वास्थ्यार्थियों को स्वास्थ्य के इस आवश्यक अंग को समुन्नत बनाने के लिए अनुप्राणित करता है। —सं०]

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवे सादयेत। आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः॥ गीता ६-५

आत्म-निर्देश एक बहुत बड़ी आध्यात्मिकः शक्ति है। इसके द्वारा हम अपने तथा दूसरे के स्वभाव को बदल सकते हैं। किसी व्यक्ति का स्वस्थ या रोगी होना बहुत अंशों तक आत्म-निर्देश पर निर्भर करता है। अकल्याणकारी निर्देश से हम अपने को रोगी और कल्याणकारी निर्देश से स्वस्थ बनाते हैं। लेखक के एक मित्र को अपने स्वास्थ्य के सम्बन्ध में सन्देह था, यद्यपि वे सब तरह से स्वस्थ थे। वे यह सोचते रहते थे कि उन्हें यक्ष्मा-रोग है। अन्त में उन्हें यक्ष्मा रोग हो गया और उन्हें दो वर्ष तक अस्पताल में रहना पड़ा। किसी रोग के बारे में बार-बार चिन्तन करने से वह रोग होकर ही रहता है।

बहुत से व्यक्ति अकल्याणकारी और दुःखपूर्ण आत्म-निर्देश के द्वारा अपना जीवन दुःखपूर्ण बना देते हैं। ऐसे व्यक्ति समाज के लिए भार-स्वरूप होते हैं। जो व्यक्ति अपने को कोसता रहता है वह अपने को ही नहीं बल्कि औरों को भी नीचे गिरता है। मन का गुप्त असर दूसरों पर बहुत जल्द पड़ता है। अगर हम प्रसन्न हैं तो दूसरे को भी प्रफुल्लित बना सकते हैं। पर यदि हम दुःखी और मनहूस बने रहते हैं तो दूसरों को भी, जो हमारे सम्पर्क में आते हैं, दुःखी बनाते हैं। सुखी आदमी ही समाज की सेवा कर सकता है। शेक्सपीयर ने एक जगह कहा है कि जो व्यक्ति सदा मनहूस बना रहता है उसे मच्छर से भरे हुए एकान्त और अँधेरे कमरे में बन्द कर देना चाहिए क्योंकि ऐसा व्यक्ति बहार रह कर समाज का बड़ा अहित करता है। महात्मा इमर्सन का कहना है कि छोटी आत्मा वाले अपने कामों से समाज की सेवा करते हैं और महात्मा लोग अपने जीवन से सेवा करते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि महात्माओं के सम्पर्क में आते ही उनके विचार, शान्तिमय जीवन का प्रभाव जनता पर पड़ता है। यदि वे चुप रहें तो भी उनकी मौन भाषा काम कर जाती है और उसका असर अधिक कल्याणकारी और स्थायी होता है। यदि कोई व्यक्ति वस्तुतः सज्जन है तो सज्जनता और अच्छाई अपने आप फूट पड़ती है। उसे किसी परिश्रम की आवश्यकता नहीं होती है और न वह किसी का छिद्रान्वेषण ही करता है।

सज्जन होने की सब से बड़ी पहचान व्यक्ति का सुखी और सन्तुष्ट रहना है। भला व्यक्ति अपने को भाग्यशाली समझता है और धीरे-धीरे वह वैसा ही हो जाता है। जो आत्मा की आवाज होती है उसकी पुकार हम बाह्य प्रकृति में सुनते हैं। अगर हम अपने को दुःखी समझने लगें तो चारों ओर से हमें वही आवाज सुनाई पड़ती है।

किसी ने कहा है कि यह समाज एक बड़े दर्पण की तरह है, यदि हम हँसते हैं तो हँसता हुआ चित्र दिखलाई पड़ता है और यदि क्रोधित होते हैं या नाक-भौं सिकोड़ते हैं तो वैसा ही विकृत रूप सामने आता है। जैसा हम अपने को सोचते हैं उसका सबूत हमें हर जगह मिलता है। छोटे-छोटे दुःख भी पहाड़ की तरह दिखलाई पड़ते हैं। दूसरे लोग भी हमारे बारे में वही सोचने और कहने लगते हैं जैसी हम स्वयं अपने बारे में धारणा बनाते हैं। मौखिक सहानुभूति दिखालने वाले से दूर ही रहना अच्छा है। वे सदा ही निर्देश करते रहते हैं कि संसार वाले तुम्हारे साथ अन्याय कर रहे हैं, सचमुच तुम बहुत दुःखी हो इत्यादि बातें कह कर हमें सचमुच ही वैसा बना देते हैं। हम सोचते हैं कि वे हमारा भला कर रहे हैं पर सच में वे बहुत हानि पहुंचाते हैं। वे हमारी कमजोरियों पर बार-बार जोर देकर उनको महत्व दे देते हैं। दुःख का निर्देश कर के ऐसी सहानुभूति दिखाने वाले हमें सचमुच ही दुःखी बना देते हैं। हम अपने को सब से अभागा समझने लगते हैं। अतः ऐसी सहानुभूति दिखाने वालों से सर्वदा दूर ही रहना चाहिए। उन्हीं से बातें करनी चाहिए जो हमें उत्साहित करें और हमारे साधारण गुणों की प्रशंसा कर के आगे बढ़ने के लिए प्रोत्साहन देते रहें।

मनुष्य का यह विचित्र स्वभाव है कि वह चाहता है लोग उसे अच्छा कहें और तभी उसे अपने अच्छेपन पर विश्वास होता है, पर वह यह नहीं सुनना चाहता कि लोम उसे सुखी कहें। वह यह कभी नहीं पसन्द करता कि लोग उसे खराब कहें पर वह बहुत आसानी से यह मान जाता है कि वह बहुत दुःखी है। पर ये बातें कितनी परस्पर विरोधी हैं। जो अच्छा है वही सुखी है और जो बुरा है वही दुःखी रहता है। अच्छे होने का श्रोत आत्मा की प्रसन्नता है। अच्छा होना त्याग की अपेक्षा करता है पर उस त्याग का कोई मूल्य नहीं जो कष्ट से किया जाय। इस प्रकार का त्याग किसी गुण की वृद्धि नहीं करता है। जो गुणी और धार्मिक हैं वह अपने को बहुत भाग्यशाली समझता है।

हर एक मनुष्य को अपने को बहुत भाग्यशाली समझना चाहिए चाहे वाह्य स्थिति उसके प्रतिकूल हों या अनुकूल। एक विक्षिप्त आदमी के बारे में यह कहानी प्रसिद्ध है कि वह एक दिन मिठाई बाँटने लगा, जब लोगों ने उससे खुशी का कारण पूछा तो उसने कहा कि मेरा घोड़ा चोरी चला गया है। इस पर लोगों को और भी आश्चर्य हुआ। तब उसने कहा कि कहीं मैं भी घोड़े पर होता तो मैं भी चोरी चला जाता। मैं बच गया इसकी खुशी में मिठाई बांट रहा हूँ। यह एक पागलपन की बात मालूम होती है पर एक सत्य की ओर निर्देश तो करती ही है। वह यह कि मनुष्य यदि चाहे तो अपनी हानि पर भी हंस सकता और खुशियां मना सकता है। और सच पूछा जाय तो ऐसा व्यक्ति ही अधिक विवेकी है। हम यह कह कर अपने को सान्त्वना दे सकते हैं कि इससे अधिक बुरा तो नहीं हुआ।

हम लोग अपने को भाग्यशाली समझ कर अपना उत्थान कर सकते हैं। यदि हम अपने को सदा अभागा, और दुःखी ही सोचते रहें तो हमारी सारी शक्ति समाप्त हो जाती है और उसका श्रोत ही सूख जाता है। जो व्यक्ति सदा अपने को दुःखी ही समझता रहता है वह कभी कोई रचनात्मक कार्य नहीं कर सकता। अपनी शक्ति का ह्रास कर के वह अपने को और भी दुःखी बनाता है।

जो व्यक्ति अपने को दुःखी समझता है वह दूसरों से डाह करता है। वह दूसरों की उन्नति और बढ़ती नहीं देख सकता।

जब काहू की सुनहिं बड़ाई। सांस लेहि मनु जूड़ी आई ॥
जब काहू की सुनहिं विपती। सुखी होहिं मानहु भये नृपती ॥

—तुलसीदास

ऐसे व्यक्ति दूसरों को सुखी देख कर केवल दुःखी ही नहीं होते बल्कि उन्हें दुःख पहुँचाने की चेष्टा भी करते हैं यद्यपि इससे उनका कुछ स्वार्थ-साधन नहीं होता। ऐसे लोग प्रसन्नचित लोगों को चरित्रहीन समझने लगते है।

इच्छा-शक्ति को केन्द्रीकरण न कर सकने के कारण ही आदमी अपने को दुःखी बनाता है। हमारा मन इधर-उधर

दौड़ता है। दूसरों के विचारों को हम सोचते हैं। यदि दूसरे हमें सुखी समझें तो हम अपने को सुखी मानते हैं। यदि दूसरे हमें दुखी समझें तो हम सहज ही अपने को वैसा समझ बैठते हैं। दूसरों के विचार के साथ न बहने की शक्ति होने से ही कोई मनुष्य सुख, उत्थान, व स्वास्थ्य लाभ को प्राप्त हो सकता है। दूसरे व्यक्ति हमारे बाह्य आत्मा को देख सकते हैं। अन्दर क्या है, वे यह कभी नहीं देख सकते। जब ऐसी बात है तो दूसरों की विचार-धारा के साथ बह जाना कितनी बड़ी बेवकूफी है।

आत्म-निर्देश की शक्ति की वृद्धि के लिए इस बाह्य दृश्य संसार से अपने मन को हटा कर अपने बारे में सोचना चाहिए। जो आदमी दूसरों की चापलूसी और चाटुकारिता का आपेक्षित है उसे दूसरों के कटु बचनों को भी सुनने के लिए तैयार होना चाहिए। आत्म-निर्देश को शक्तिशाली बनाने के लिए यह बहुत ही आवश्यक है कि मनुष्य को बाहरी क्षणिक लाभों को छोड़कर अपने मन को वश में करने की साधना करना चाहिए। प्रति दिन इस प्रकार करने से थोड़े ही दिनों में एक अपूर्व परिवर्तन का अनुभव होने लगता है। ऐसा करने से इच्छा-शक्ति बलवती होती है। ऐसे व्यक्ति का आत्म-निर्देश कभी वृथा नहीं जा सकता। आत्म-निर्देश सन्तों का सौदा नहीं है, इसके लिए त्याग और तपस्या की आवश्यकता होती है।

* * *

प्रार्थना के मानी

"प्रार्थना या नमाज का एक ही मकसद है, और वह यह है कि हम अपने-आपको तमाम गन्दगी और कमीनेपन से बरी कर लें, ताकि हम दुनिया के तमाम इन्सानों के साथ—सारे मानव-परिवार के साथ—अपनी एकता के बन्धन को महसूस कर सकें। बदकिस्मती से आज लोग अपनी इस असली एकता को भूल गये हैं और आपस में अदावत रखनेवाले गिरोहों में बँट गये हैं। यह सब एक दुःखदायी मोह का नतीजा है। प्रार्थना की मदद से हमें इस काबिल बनना है कि हम किस एक कौम या फिरके की नहीं, बल्कि खुदा के समूचे खल्क की खिदमत कर सकें। खुदा ने इसीलिए हमको इस दुनिया में भेजा है।

—खान अब्दुल गफ़्फ़ार ख़ाँ

स्त्री रोग

Dysmenorrhoae

कष्टार्त्तव (डिस्मिनोरिया)

[डा० इन्दुमती सिन्हा, एन० डी० डी० वाई]

कष्टार्त्तव का मतलब है कष्ट के साथ ऋतु-स्राव या माहवारी होना। इसके अनेक नाम हैं—बाधक वेदना, कष्टरज, रज-कृच्छता, ऋतु-वेदना आदि। अंग्रेजी में इसे डिस्मिनोरिया कहते हैं। कष्टार्त्तव में या तो ऋतुस्राव (मासिक धर्म) के पहले, या मासिक धर्म होने के समय या उसके बाद अपार कष्ट होता है।

आमतौर से ६०-७० प्रतिशत बहनों को मासिक-धर्म के समय (हालां कि ऐसा होना नहीं चाहिये) कुछ न कुछ तकलीफ या कष्ट तो हुआ ही करता है लेकिन यहां पर मतलब उस कष्ट या पीड़ा से है जिसके धारण से रोगणी बिल्कुल अचलस्त बन जाय, या उसके शरीर में इतनी कमजोरी आ जाय कि उसके लिए कोई खास उपचार या इलाज की आवश्यकता जान पड़ती हो।

ज्यादातर इस तरह की शिकायत शहरों में आधुनिक जीवन व्यतीत करने वाली महिलाओं में ही पाई जाती है। इस रोग का भी मूल कारण अप्राकृतिक जीवन तथा रहन-सहन ही है। आम तौर से समूची शरीर-प्रणाली में और खास तौर से सन्तानोत्पत्ति करने वाली इन्द्रियों में मल या विजातीय द्रव्य इकट्ठा हो जाने के ही कारण यह शिकायत पैदा होती है। अक्सर यह बीमारी अनियमित अथवा अनुचित भोजन, अनुचित रहन-सहन, स्नायु (नाड़ी) सम्बन्धी दुर्बलता, जरायु या गर्भाशय का प्रदाह, या उनमें रक्त का जमाव, जरायु सम्बन्धी बीमारियाँ, गर्भाशय का अपनी जगह से हट जाना, या गर्भाशय-मार्ग का संकीर्ण हो जाना, डिम्बाशय का प्रदाह (Catarrh) इन सब कारणों से पैदा होती है। मोटे तौर पर अगर माहवारी के ३ या ४ दिन पहले दर्द होता हो तो समझना चाहिये कि यह शिकायत डिम्बाशय सम्बन्धी या नाड़ी-संस्थान की कोई गड़बड़ी होने की वजह से पैदा हुई है। और अगर मासिक स्राव होने के कुछ ही पहले ऐसा होता हो तो समझना चाहिये ऐसा योनि-द्वार सिकुड़ जाने (Uterine Contraction) की वजह से हुआ है। ऐसी हालत में अक्सर विवाह हो जाने (पति के साथ रहने) के कुछ समय बाद यह तकलीफ अपने आप मिट जाती है। लेकिन अगर यह कष्ट किसी प्रकार थकावट के कारण होता है तो इस हालत में किसी अनुभवी चिकित्सक से सलाह लेने की जरूरत है।

अगर मासिक धर्म शुरू होने के कुछ दिनों पहले से लेकर कई दिन बाद तक भी तकलीफ होती रहे तो समझना चाहिए कि नाड़ियों की गड़बड़ी के साथ-साथ योनि द्वार की सूजन या जितने भी कारण ऊपर बताए गए हैं वे सभी थोड़ी बहुत मात्रा में उपस्थित हैं।

आधुनिक चिकित्सकों ने इस रोग के मुख्यतः ५ कारण बताए हैं और इन्ही कारणों से अलग-अलग इनके ५ भेद इस प्रकार बताए हैं—(१) नाड़ियों से सम्बन्ध रखने वाला १(न्यूरालजिक) कष्टार्त्तक (२) खून की ज्यादती के कारण २(कांजेस्टिव) कष्टार्त्तव, (३) मार्ग में कोई रुकावट या अवरोध होने की वजह से (३ आब्सट्रक्टिव) बाधक वेदना (४) झिल्ली के कारण कष्ट रज, ४(मेम्ब्रेनस डिस्मिनोरिया) और (५) ओवरी या डिम्बाशय सम्बन्धी गड़बड़ी से उत्पन्न हुई ५(ओवरियन डिस्मिनोरिया) ऋतु-वेदना।

किन्तु किन्ही-किन्हीं चिकित्सकों ने इस रोग के ३ भेद किए हैं—(१) यांत्रिक बिगाड़ (सम्बन्धीं मेकेनिकल) डिस्मिनोरिया' (२ कंजेस्टिव (रक्त के जमाव के कारण) डिस्मिनोरिया और (३) न्यूरालजिक डिस्मिनोरिया।

१ Newraliac (Spasmodic)
२ वातिक Congestive (Inflamatory)

४ Membranous — कला (मल
५ Ovarian — डिम्बग्रन्थि क

अब इन्हीं के लक्षण यहाँ पर अलग-अलग बताए जाते हैं।

ातिक (स्नायविक)(नाड़ियों से सम्बन्ध रखनेवाला) कष्टार्त्तव

इस प्रकार का कष्टार्त्तव ज्यादातर युवावस्था में ही होता है और यह खास करके उस अवस्था में पाया जाता है जब कि पहली माहवारी (रजोदर्शन) के समय से लेकर १० १२ वर्ष तक कोई सन्तान न उत्पन्न हुई हो। किसी-किसी राय में यह बीमारी पुरुष के सहवास से वंचित रहने में कारण भी हो जाती है, जो वैवाहिक जीवन व्यतीत करने लग जाने पर अपने आप दूर हो जाती हैं। लेकिन इसके विपरीत किसी के मत से विषय वासना की अधिकता ही इस रोग का मुख्य कारण बनती है। बाँझ स्त्रियों के तो यह शिकायत आमतौर से पाई जाती है। इसके अतिरिक्त जो बहनें आलसी की भांति जीवन व्यतीत करती हैं उन्हें भी यह बीमारी हो जाती है।

इस रोग में मासिक धर्म होने के पहले या बाद में तकलीफ होती है। इस में दर्द एकाएक पैदा होता और एकाएक गायब भी हो जाता है। यह दर्द कमर और पेड़ू में ज्यादातर होता है। पीड़ा इतनी तीव्र होती है रोगिणी छटपटाने लग जाती है। अगर थोड़ा-सा खून निकल कर फिर रुक जाय या बहुत कम मात्रा में वह निकलता रहे तो उस हालत में पीड़ा असह्य हो जाती है। कभी कभी तो दर्द अपने आप एकाएक बन्द हो जाता लेकिन कुछ ही समय बाद फिर ज्यों का त्यों बन जाता है।

रोगिणी को सुस्ती सी मालूम होती है। सिर दर्द करता है। इसके अलावा जंघाओं को छूने से भी दर्द मालूम होता है। ज्यादातर रोगिणी में कब्ज की शिकायत भी पाई जाती है। किसी किसी को इस हालत में हिस्टिरिया की भी शिकायत हो जाती है।

प्रत्येक रोगिणी में दर्द का रूप भिन्न भिन्न हो जाता है—जैसे किसी को दर्द कोख (कोष्ठ) नाभि या पेड़ू में शूल की तरह होता है। यह दर्द नीचे के हिस्से में नितम्ब और जंघाओं से शुरू होकर घुटनों तक पहुँचता है। किसी किसी को तकलीफ कमर में होती है। ऐसा मालूम पड़ता है जैसे कमर टूट रही हो। और कभी कभी सारे निचले भाग में दर्द होता है।

इस रोग की चिकित्सा आसान नहीं है। यह बीमारी बहुत दिनों तक सताती रहती है। इससे शीघ्र छुटकारा पा जाना, खास करके एलोपैथी इलाज के सहारे, कठिन ही होता है।

इस रोग के कुछ मुख्य कारण इस प्रकार बताए गए हैं—पैदाइशी बिगाड़ से ही गर्भाशय द्वार संकीर्ण (तंग) होना, गर्भाशय के मुख पर बतौड़ी हो जाना, गर्भाशय का बाहर निकल आना या उलट जाना।

रक्ताधिक्य या खून का अधिक जमाव होने के कारण

(कंजेस्टिव) कष्टातर्व—इस रोग में मासिक धर्म एक दम या थोड़ा बन्द हो जाता है। स्थानिक प्रदाह और खून की ज्यादती के कारण यह शिकायत पैदा होती है। इसमें देखा गया है कि गर्भाशय में सूजन के कारण जब रक्त अधिक प्रवेश करके जम जाता है तो यह दशा प्राप्त होती है। यह अवस्था बहुधा ४० साल की या उससे अधिक आयु की स्त्रियों में अक्सर उत्पन्न हो जाती है। गर्भाशय या ओवरी की सूजन इस रोग की एक खास पहचान है। एक प्रकार भी पेड़ू की सूजन (पेल्विक रोल्यूलाइटिस) आदि भी इस रोग के कारण होते हैं।

ऋतु आरम्भ होने के ३-४ दिन पहले से ही इसमें जी मचलाने लगता है, पेड़ू में भारीपन और पीड़ा मालूम होती है। पीठ फटने लगती है। और असहय पीड़ा के साथ थोड़ा थोड़ा खून निकलता है। एक दो सप्ताह तक इस तरह की अवस्था बनी रहने के उपरान्त कष्ट अपने आप बहुत कुछ कम हो जाता है और खून अधिक निकल जाने पर तो दर्द बिलकुल बन्द हो जाता है, लेकिन थोड़ा-थोड़ा करके खून निकलने पर दर्द अधिक होता है।

ऐसी अवस्था में यदि रोगिणी की परीक्षा की जाय तो उसके गर्भाशय की गर्दन सूजी हुई पायी जायगी। रक्त का जमाव अधिक होगा, किसी किसी रोगिणी में इस

अवस्था के साथ-साथ श्वेद-प्रदर की भी शिकायत पायी जाती है।

ऐसा देखा गया है कि भोजन में पोषण-तत्वों का अभाव होने के कारण जब शरीर कमजोर पड़ जाता है तो गर्भाशय भी अपने साधारण आकार से सिकुड़ कर छोटा हो जाता है। मजदूर स्त्रियों में, जिनको देर तक काम करना पड़ता है, या दूकानों में काम काज करनेवाली स्त्रियों में, या उन स्त्रियों में जिन्हें घन्टों तक खड़ा रहकर काम करना पड़ता है या जो भीड़ या गन्दी हवा में काम करती है उनमें कष्टार्त्तव की शिकायत आम तौर से पायी जाती है। बाल प्रकृति की स्त्रियों में भी यह रोग अक्सर देखने को मिलता है।

अवरोध के कारण कष्टार्त्तव—जब शरीर के किसी अंग की बनावट में गड़बड़ी होने की वजह से कष्टार्त्तव होता है तो उसे मेकेनिकल डिस्मिनोरिया कहते हैं। इस के कारण इस प्रकार बताए गये हैं—पैदायशी बिगाड़ से ही गर्भाशय मुख का तंग होना, (इस अवस्था में कभी कभी गर्भाशय का मुख इतना तंग या संकीर्ण होता है कि इसमें सुई भी नहीं जा सकती) गर्भाशय के मुंह या द्वार पर बतौड़ी का होना, या गर्भाशय का अपने स्थान से हट जाना या गर्भाशय की ग्रीवा (गरदन) में दाग या खगस होना।

इस प्रकार के आंगिक अवरोध के कारण उत्पन्न हुए कष्टार्त्तव की अवस्था में पीठ में बड़ा दर्द होता है। मूत्राशय में जलन होती है। ओवरी (डिम्बाशय) को छूने से दर्द होता है। पीड़ा के कारण जब रोगणी चीखती है तो कुछ रक्त निकल जाने पर दर्द कुछ कम हो जाता है लेकिन थोड़ी देर बाद वह फिर ज्यों का त्यों हो जाता है।

अवरोध जन्य (Obstructive) कष्टार्त्तव, झिल्ली की वजह से कष्टार्त्तव और डिम्बाशय सम्बन्धी कष्टार्त्तव, यह तीनों तरह की ऋतु वेदनाएं मेकेनिकल डिस्मिनोरिया के ही अन्तर्गत आती हैं। अवरोध-जन्य कष्टार्त्तव योनि मार्ग के संकीर्ण या संकुचित होने आदि कारणों से उत्पन्न होता है। इसमें दर्द होने के साथ-साथ थक्का-थक्का (जमा हुआ) या पतला खून निकलता है। झिल्ली की वजह से होने वाले कष्टार्त्तव में श्लैष्मिक झिल्ली के पर्दे की तरह का एक पदार्थ ऋतुस्राव के साथ निकलता है। इस प्रकार की अवस्था में आम तौर से जरायु बढ़ जाता है। गर्भाशय के चारों ओर दबाने से दर्द मालूम होता है और हर घड़ी प्रसव-वेदना की सी पीड़ा हुआ करती है।

डिम्बाशय सम्बन्धी कष्टार्त्तव डिम्बाशय के अपने स्थान से हट जाने, ज्यादा सम्भोग कराने या अन्य कारणों से डिम्बाशय या ओवरी में प्रदाह होने के फलस्वरूप उत्पन्न हो जाता है ऋतु स्राव के समय डिम्बाशय में चिनक सी होती है और रोगणी को जलन जैसी तकलीफ मालूम होती है इस रोग से बहुधा बाँझपन की अवस्था आ जाती है।

कष्टार्त्तव के सामान्य कारण

दिन में सोना, ज्यादा संगव, मानसिक वेदना, आवेग, भ्रम, शोक, खाने पीने में बदपरहेजी, व्यायाम या कसरत का अभाव, जरायु (गर्भाशय) में रक्त का जमाव, ऋतु के समय या इसके पहले सहवास, आदि कारणों से यह बीमारी होती है।

सामान्य लक्षण—इस रोग में पीठ और कमर में दर्द, मचली या उबकाई आना, बदन और हाथ पैर में ऐठन, कब्जियत आमाशय की गड़बड़ी आदि लक्षण दिखायी देते हैं। कभी कफी पेशाब की तरह मालूम होता है और बीच बीच में थक्का थक्का स्राव होता है। ये सभी लक्षण कभी कभी ऋतु स्राव के पहले प्रकट होते और ऋतु स्राव के साथ गायब हो जाते हैं।

उपचार

इस कष्ट को दूर करने में मासिक धर्म के लिए बताए गए उपायों से शरीर को तन्दुरुस्त बनाने पर ध्यान देना चाहिए। उपवास, रसाहार फलहार नियमित भोजन, कसरत आदि से जब शरीर अच्छी हालत में आ जायगा तो इस तकलीफ की जड़ बहुत कुछ अंशों में अपने आप दूर हो जायगी। विवाहिता स्त्री को कम से कम से कम ६ महीने तक पति-सहवास बिलकुल बन्द कर देना चाहिए।

इस रोग के उपचार के रूप में रोजाना दो बार ~~मेहन~~ उपस्थ-स्नान (सिट्ज बाथ) सवेरे एक बार हिप बाथ (पेड़ू-नहान) और फिर सर्वांग स्नान। तीसरे पहर पेड़ू पर ठण्डे पानी की मालिश कर बदन धो डालना और रात में पेड़ू पर मिट्टी की पट्टी बाँध कर सोना चाहिए। इस रोग में गरम और ठण्डे बैठक नहान से विशेष लाभ होता है। रोगिणी को प्रतिदिन लगभग आध घन्टे तक गरम पानी में बैठाना चाहिए। अगर दर्द मासिक धर्म के पहले शुरू हुआ है तो इस नहान के अलावा दर्द वाले स्थान पर भी दिन रात में २-३ बार गर्म और ठण्डे पानी की सेंक देनी चाहिए। एक बार में दो गरम और एक ठण्डी, फिर दो गरम और एक ठण्डी, कुल मिलाकर ६ सेंक दें।

खून बन्द होने के बाद अगर दर्द हो तो ऐसा ही करना चाहिए, लेकिन खून निकलने के दिनों में दर्द को शान्त करने के लिये बैठक नहान न लेकर सिर्फ इन सेंकों से ही काम लेना चाहिए। पेड़ू में दर्द रहने की हालत में मिट्टी की गरम पट्टी भी आराम पहुँचाती है।

अच्छा होगा कि मासिक शुरू होने के ५-६ दिन पहले तीन दिन रसाहार और २-३ दिन फलाहार पर रह जायँ। इस रोग में स्थानिक धूप स्नान या वाष्प स्नान से भी बड़ा लाभ पहुँचता है। स्थानिक धूप-स्नान के लिए दर्द के स्थान को केले के पत्ते से ढँक कर रखना चाहिए।

रोगिणी को अपने आहार पर विशेष रूप से ध्यान देना चाहिये। चाय, कहवा, या कोई अन्य उत्तेजक पदार्थ भूल कर भी न ग्रहण करें। हमेशा किसी काम काज में लगे रहने, घूमने फिरने से बहुत फायदा होता है और तकलीफ कम हो जाती है। कब्ज की शिकायत न होने देने और पेट साफ रखने के लिए बीच-बीच में डूश या एनिमा का भी प्रयोग करना उचित है।

बहुत सी बहनें इस रोग से छुटकारा पाने के लिए जहरीली दवाइयों और आपरेशन का झूठा सहारा लेती हैं। किन्तु यह मानी हुई बात है कि इस तरह के उपचार रोग को जड़ से कभी दूर नहीं कर सकते। इतना ही नहीं बल्कि इस तरह के उपचारों का परिणाम भी आगे चलकर बहुत भयानक सिद्ध होता है। कष्टार्तव का एक मात्र अमोघ और उचित इलाज यही है कि सबसे पहले उन कारणों को दूर कर दिया जाय जिन से यह रोग उत्पन्न हुआ है। अर्थात् शरीर-प्रणाली के अन्दर भरे हुये जहरीले पदार्थ को बाहर निकाल फेंका जाय और रोगिणी के स्वास्थ्य में सुधार किया जाय।

प्राकृतिक चिकित्सा के अनुसार इस रोग का उपचार उसी प्रकार होगा जिस प्रकार श्वेत-प्रदर में बताया गया है।

इस तरह के उपचार को नियमित रूप से चलाने पर लाभ होना निश्चित है। लेकिन अगर रोग ने जड़ पकड़ लिया है यानी वह बहुत पुराना हो गया है तो उसके उपचार में समय कुछ अधिक अवश्य लगेगा। कष्टार्तव से पीड़ित होने वाली सभी बहनों को किसी अस्थि-चिकित्सक या अनुभवी प्राकृतिक चिकित्सक से रीढ़ की मालिश कराना निस्सन्देह बहुत लाभदायक होगा।

इस रोग का दौरा होने पर गरम और ठण्डे जल की पट्टी और गरम और शीतल जल से ~~मेहन~~ उपस्थ-स्नान बहुत उपयोगी होता है। गरम और ठण्डे जल की पट्टी के लिए एक तौलिये को गरम पानी में निचोड़ कर पेड़ू पर रखना चाहिये। दोनों हाथों से तौलिये के दोनों छोर पकड़ कर बीच के हिस्से को गरम पानी में डूबो दें और तब दोनों हाथ से कसकर पानी निचोड़ दें। इससे हाथ भी न जलेगा और पानी निचोड़ लिया जायगा। लेकिन ध्यान रहे तौलिया इतना गरम भी न हो कि रोगिणी उसे बरदाश्त न कर सके। इस उपचार को आवश्यकतानुसार दिन में कई बार (भाग किया जा सकता है। यह पट्टी उस स्थान पर जहाँ दर्द होता हो या मेरु-दण्ड के निचले भाग पर लगानी चाहिये। यदि दो बार गरम पट्टी दें तो एक बार ठण्डे जल की। यदि गरम और ठण्डे जल के स्नान में कोई कठिनाई या दिक्कत हो तो केवल गरम जल के ~~मेहन~~ उपस्थ-स्नान से भी काफी लाभ उठाया जा सकता है। गरम ~~मेहन~~ उपस्थ स्नान के लिए एक मामूली टब या कटि-स्नान लेने के टब में पाँच इंच पानी भर देना चाहिये और उसमें रोगिणी को ५ से १० मिनट तक बैठाना चाहिए। गरम ~~मेहन~~ उपस्थ-स्नान के बाद

हमेशा ठण्डे पानी से तौलिये को निचोड़ कर बदन पोंछ देना चाहिये।

अगर कष्टार्त्तव की शिकायत गर्भाशय के अपने स्थान से टल जाने के कारण हुई है तो यहाँ बताए गये उपचार से लाभ तो अवश्य मालूम होगा लेकिन पूरा आराम तभी होने की आशा की जा सकती है जब कि गर्भाशय को फिर से अपने ठीक स्थान पर ला दिया जाय। इसके लिए अच्छा तो यह होगा कि किसी योग्य तथा अनुभवी दाई से मालिश कराके गर्भाशय को ठीक करा दिया जाय। पर यह ध्यान रहे कि बहुत सी अशिक्षित दाइयाँ पेट मल कर कभी कभी गर्भाशय को और टाल देती हैं, जिससे लाभ की जगह हानि ही अधिक होती है। इसलिए बहुत सोच समझ कर ही यह चिकित्सा करानी चाहिए।

अगर यह शिकायत गर्भाशय नलिका के संकीर्ण (तंग) या अवरुद्ध (किसी प्रकार की रुकावट) हो जाने की वजह से पैदा हुई है तो उस हालत में यह देखा गया है कि शादी हो जाने या माता बनने का सौभाग्य प्राप्त होने पर अक्सर यह शिकायत अपने आप चली जाती है, लेकिन इसका यह मतलब हर्गिज नहीं कि रोग का चाहे जो भी कारण हो सभी प्रकार के कष्टार्त्तव इस तरह ठीक हो सकते हैं। यहाँ पर जो उपचार-क्रम बताया गया है उसका कुछ समय तक नियम पूर्वक पालन करने से अवश्य लाभ होगा। लेकिन हर हालत में किसी भी तरह की दवा का प्रयोग करना एक साथ दो नावों पर सवार होने के बराबर होगा, जो न केवल अबुद्धिमत्तापूर्ण बल्कि अनिष्टकारक भी सिद्ध हो सकता है।

प्राकृतिक चिकित्सा की शिक्षा प्राप्त करने का अनुपम अवसर

प्राकृतिक चिकित्सा प्रणाली का सार्वभौमिक प्रचार करने के उद्देश्य से हमने शिक्षार्थियों को ट्रेनिंग देने की एक योजना बनाई है। इसके अनुसार आगामी १ अक्टूबर से एक महीने तक ट्रेनिंग देने की व्यवस्था की गई है। इसमें प्राकृतिक चिकित्सा के मूल सिद्धान्तों तथा उसकी व्यावहारिक शिक्षा का पूर्ण आयोजन हुआ है। शिक्षा का कोर्स समाप्त हो जाने पर शिक्षार्थियों की परीक्षा होगी, और जो उसमें उत्तीर्ण होंगे, उन्हें एन० डी० डी० वाई० का डिप्लोमा प्रदान किया जायगा। जो शिक्षार्थी इस योजना से लाभ उठाना चाहते हैं वे अपना आवेदन-पत्र १५ सितम्बर तक, अपना नाम, पता और शिक्षा सम्बन्धी योग्यता के सहित **अवश्य** भेज दें।

नियम—प्रत्येक शिक्षार्थी से १०) मासिक फीस और १५ रु० मासिक स्थान का खर्च लिया जायगा। खाने पीने का भार शिक्षार्थी स्वयं वहन करेंगे। प्राकृतिक चिकित्सा की व्यावहारिक शिक्षा प्राप्त करने के अभिलाषी व्यक्ति अपनी इच्छानुसार किसी भी महीने में आ सकता है। पर उन्हें उपयुक्त शुल्क प्रति मास देना अनिवार्य होगा।

संचालक, प्राकृतिक स्वास्थ्यगृह लूकरगंज, प्रयाग।
कार्यालय—२८७, बादशाही मन्डी इलाहाबाद।

दो महत्त्व के प्रयोग

श्री प्यारेलाल

शारीरिक स्वास्थ्य के लिए भोजन, स्वास्थ्यकर निवासगृह, और व्यायाम आवश्यक हैं। परन्तु इनमें पहला स्थान किसे देना चाहिये, इसी के सम्बन्ध में किए गए दो महत्वपूर्ण प्रयोगों की चर्चा यहाँ पर की गयी है। इन दोनों प्रयोगों द्वारा इसी सिद्धान्त का प्रतिपादन होता है कि स्वास्थ्य सम्बन्धी नीति में भोजन की बनिस्बत नए और स्वास्थ्यकारी मकानों और शारीरिक कबायद को पहला स्थान देने से हानि होती है। और दूसरा यह कि बच्चे की शिक्षा में सबसे पहला स्थान उचित और जरूरी पोषण को ही दिया जाना चाहिए। —सं०]

सामाजिक उत्थान का कार्यक्रम बनाते समय कभी-कभी यह सवाल खड़ा होता है कि कौनसी बात सबसे मुख्य है, और किसे सबसे पहली जगह दी जाय। डाक्टर जी० टी० रेञ, एम० डी० ने अपनी, 'दि व्हील ऑव् हेल्थ' नाम की किताब में कुछ खास प्रयोगों के बारे में लिखा है। वे इस बात के प्रमाण है कि स्वास्थ्य सम्बन्धी-नीति में भोजन की बनिस्बत नए और स्वास्थ्यकारी मकानों व शारीरिक कवायद को पहला स्थान देने से नुकसान होता है। पहला प्रयोग स्टॉकटन-ऑन-टीज नाम के शहर में किया गया था।

स्टॉकटन-ऑन-टीज शहर पुराने जमाने से व्यापारी शहर रहा है। सन् १९३१ में उसकी आबादी ६७,७२२ थी। इस आबादी के १४ से ६५ साल के बीच की उमर के मर्दों में से फी सदी ४० बेकार थे। सात-आठ साल पहले स्टॉकटन शहर की कौंसिल ने शहर के गन्दे मुहल्लों की सफाई का बीड़ा उठाया। साफ हवादार मकान बनाने का जोरदार काम शुरू किया गया। इससे स्टॉकटन-ऑन-टीज के मेडिकल अफ़सर डॉक्टर जी० सी० एम० गोनिंगले को कई तरह की जांच-पड़ताल करने का मौका मिला, जिसने यह साबित कर दिया कि तन्दुरुस्ती के लिहाज से भोजन को मकान से ज्यादा महत्व दिया जाना चाहिए।

सन् १९१९ में शहर के मकानों का जो नया सर्वे किया गया, उसका यह नतीजा हुआ कि शहर के सबसे बड़े हलके को जो 'रोग का घर' माना जाता था, 'हलका नम्बर १' का नाम दे दिया गया। यह तय किया गया कि हलका मम्बर १ का कुछ हिस्सा तोड़ करके उसके रहने वालों को 'माउण्ट प्लेजेण्ट' नामकी नई 'अप-टु-डेट' सुभीतों वालीं म्युनिसिपल बस्ती में बसा दिया जाय। चुनांचे सन् १९२७ में, १५२ कुनबे, जिनमें कुल ७१० लोग थे, माउण्ट प्लेजेण्ट में बसाये गए। इसके बाद 'हलका नम्बर १' में २८९ कुनबे बचे रहे, जिनकी कुल आबादी १२९८ थी।

जैसा कि ख्याल किया जा सकता है, इन दोनों जगहों की नई और पुरानी हालतों में जमीन-आसमान का फर्क था। एक में नए, साफ हवादार मकान थे; दूसरी में गन्दे रोगीले मकान थे। "सहज ही हर किसी ने सोचा कि माउण्ट प्लेजेण्ट में रहने गए हुए लोगों को बहुत फायदा पहुँचेगा। "लेकिन एक ताज्जुब पैदा करने वाली बात हुई। मालूम हुआ कि "माउण्ड प्लेजेण्ट के रहने वालों की तन्दुरुस्ती सुधरने या जैसी की तैसी बनी रहने की बनिस्बत बिगड़ने लगी, जब कि गन्दे मुहल्ले में रहनेवालों की तन्दुरुस्ती में किसी तरह की गड़बड़ी नहीं हुई।" जगह बदलने के बाद के पहले पांच सालों में वहाँ के रहनेवालों की मृत्यु-संख्या १००० के पीछे ३१ थी; जब कि गन्दी जगह में रहनेवालों की मृत्युसंख्या १,००० में २२ थी। माउण्ट प्लेजेण्ट का अपात फी हजार ३३·५५ था। इससे भी ज्यादा ताज्जुब हमें यह जानकर होता है कि, "माउण्ट प्लेजेण्ट में नए

फिर से बसनेवाले लोगों की मृत्युसंख्या में इन पांच सालों में पहले के पांच सालों के अनुपात से फी सदी ४६ की बढ़ती हो गई थी।" यह एक ऐसी बढ़ती थी, जिसे आकस्मिक नहीं कहा जा सकता।

इसका क्या सबब हो सकता है? अच्छे मकान? "क्या अधिक अच्छी बात अधिक बुरी साबित हुई?" यह सब बेहूदा मालूम होता था। मगर डाक्टर जी० सी० एम० गोनिंगले ने इस पहेली को हल कर दिया। स्थान बदलने के पहले और बाद के परिवारों के बजटों की तुलना करके वे इस नतीजे पर पहुँचे कि गन्दे घरों में हर परिवार का हफ़्तेवार किराया औसतन् ४ शिलिङ्ग ८ पेन्स था। १९१८ में माउण्ट प्लेजेण्ट में यह किराया ९ शिलिंग फी हफ़्ते तक पहुँच गया। और १९३२ में किराया फ़ी हफ़्ते ९ शिलिंग ३।। पेन्स तक यानी गन्दी बस्ती के घरों के दुगने तक पहुँच गया। नतीजा यह हुआ कि खाने पर कम खर्च किया गया। खास करके दोनों जगहों के बेकारों की तुलना करने से यह मालूम हुआ कि माउण्ट प्लेजेण्ट में फी हफ़्ते फी आदमी का खूराक-खर्च ३४.७ पेन्स था, जब कि गन्दी बस्ती में फी आदमी का खर्च ४५.६ पेन्स था। इससे यह नतीजा निकाला कि मकानों की और आरोग्य की स्थिति को पहले से बेहतर बनाने में लोगों का पैसा खर्च हो जाने से खूराक की सब से पहली जरूरत पर पूरा-पूरा ध्यान नहीं दिया जा सका। खूराक की मिकदार में कमी आ जाने से लोगों की तन्दुरुस्ती भी गिरने लगी, गो कि माउण्ट प्लेजेण्ट में इस कमी को पूरी करने के लिए अच्छे मकान और आरोग्यप्रद वातावरण मौजूद था।

एक दूसरा प्रयोग भी इसी तरह का है। बच्चो की शिक्षा में रुचि रखनेवालों के लिए यह और भी महत्व का है। यह बताता है कि भोजन का स्थान कसरत और शारीरिक कवायद से बढ़ कर है। मेक्कालम और सिमोण्ड्स ने बताया है कि एक पारमार्थिक मगर गरीब संस्था में ८४ हब्शी बच्चों में से ४२ बच्चों को प्रयोग के तौर पर संस्था में मिलनेवाले साधारण भोजन के साथ एक-एक क्वार्ट (१ सेर के लगभग) दूध दिया गया। जिन बालकों को दूध दिया जाता था, और जिन्हें नहीं दिया जाता था, उन दोनों के बीच न सिर्फ बाढ़ और तन्दुरुस्ती का ही फ़र्क था बल्कि 'कसरत करने की इच्छा' का भी फ़र्क़ था। जिन्हें दूध नहीं दिया जाता था, वे हर काम से जी चुराते थे और दब्बू बन गये थे। दूध पीने वाले बच्चे अपनी चंचलता और क्रियाशीलता से शिक्षकों को जल्दी ही तङ्ग करने लगे थे। इस रिपोर्ट के साथ पौष्टिक भोजन की समस्या (Problem of Nutrition) पर राष्ट्रसंघ की रिपोर्ट का यह हिस्सा जोड़ा जा सकता है: "स्कूल के छात्रावास में जहाँ विद्यार्थियों को पौष्टिक भोजन के साथ एक पिंट दूध भी दिया जाता था, वहाँ उनका विकास अधिक होता था, रोग भी उन्हें अधिक नहीं सताते थे। उन बच्चों की यह खूबी थी कि वे अधिक फुर्तीले और अधिक साहसी थे।"

इसकी आलोचना करते हुए डा० रेंच ने लिखा हैं: "अच्छे भोजन से जो अदम्य उत्साह पैदा होता है, वह बच्चों या बड़ों द्वारा कई तरह के कामों में स्वेच्छा से जैसे उँड़ेल दिया जाता है। कोई काम हो या खेल-कूद हो, क़वायद हो या कसरत हो, स्पोर्ट हो या ज़रूरी काम हो, पौष्टिक भोजन पाने वाला आदमी इन सब में खुशी-खुशी शरीक होता है।" इससे साबित होता है कि कवायद और कसरत को भोजन से ज्यादा महत्व देना मानों गाड़ी के सामने घोड़े को जोड़ना है। बच्चे की शिक्षा में सब से पहला स्थान उचित और ज़रूरी पोषण को दिया जांना चाहिए।

'हरिजन' से

* * *

मलेरिया: उसका कारण और निवारण

डा० सुरेन्द्रप्रसाद

वर्तमान एलोपैथ डाक्टर तथा कीटाणुवाद के समर्थक मलेरिया ही क्या प्रायः सभी तीव्र अथवा जीर्ण रोगों का कारण स्वतः शरीर के अन्दर न ढूँढ़ कर वाह्य जगत् में ही ढूँढ़ते हैं। पर यह तो साधारण समझ की बात है कि यदि शरीर शुद्ध और विकार-रहित है, तो उस पर रोगों का आक्रमण हो ही कैसे सकता है? अनुभवी लेखक ने इस लेख में इसी तथ्य पर प्रकाश डाला है और बताया है कि मलेरिया का असली कारण क्या हैं और उसे किस तरह बिना कोई खतरा उठाए आसानी के साथ दूर किया जा सकता है। डा० सुरेन्द्र स्वयं एक अनुभवी चिकित्सक हैं। आपने मलेरिया की जो उपचार-विधि बताई है वह बहुत युक्ति युक्त, सर्व सुलभ और निरापद है। -सं०

भारतवर्ष में प्रतिवर्ष मलेरिया से होने वाली मृत्यु-संख्या पर दृष्टिपात करते ही कलेजा काँप उठता है, और मन में यह प्रश्न उठता है कि क्या सचमुच यह एक ऐसी दैवी आपदा है, जिसका प्रतीकार हमारे पास नहीं?

इन पंक्तियों का लेखक अपने निजी तथा अन्य प्राकृतिक चिकित्सकों के अनुभव के बल पर कह सकता है कि मलेरिया कोई भयंकर रोग नहीं है और हम सहज ही इसके चंगुल में छूट सकते हैं। मलेरिया के कारण मृत्यु होना हमारे गलत इलाज को सूचित करता है। अतएव हमारा कर्तव्य है कि हम रोगावस्था में ठीक इलाज को अपनावें।

ज्वर मनुष्य का मित्र

एलोपैथी वालों का सिद्धान्त है कि मच्छरों के काटने पर शरीर में एक प्रकार का विष पैदा हो जाने से शरीर ज्वराक्रान्त हो जाता है। इस विष के प्रतीकार के लिए वर्षा-काल में प्रतिदिन कुनैन की एक-दो खुराक लेते रहना रोग-मुक्ति का सबसे अच्छा साधन है। (यह एलोपाथि का मत है)

प्राकृतिक चिकात्सा का सिद्धान्त है कि प्रत्येक तीव्र रोग, विशेषतः ज्वर, मनुष्य का मित्र है। यह हमारे भले के लिए होता है, न कि बुरे के लिए। एक डाक्टर ने तो यहां तक कहा है कि "मुझे ज्वर दीजिए और मैं प्रत्येक रोग ठीक कर दूंगा।"

बात भी सच है। ज्वर का होना यह सूचित करता है कि शरीर की रग-रग में—अंग-प्रत्यंग में विष एकत्रित हो गया है और शरीर में उसका दहन हो रहा है। भीतरी घर्षण के कारण हमें बाहर गर्मी मालूम देती है। तात्पर्य यह है कि प्रत्येक ज्वर का कारण हमारे शरीर का भीतर से अशुद्ध होना है। 'सर्वे रोगाः कुपित मलाश्रयाः' का सिद्धान्त सोलहों आना सही है। यदि आपका रक्त स्वच्छ और शुद्ध है, पेट में अजीर्ण मल जमा नहीं है, आप साधारण, सात्विक और हल्का और भूख के अनुसार भोजन करते हैं और प्रतिदिन उचित मात्रा में व्यायाम (शारीरिक श्रम) करते हैं, तो यह निश्चित है कि कोई भी वाह्य शक्ति आप पर प्रभाव नहीं डाल सकती। दूसरी बात विचारणीय यह है कि हम मच्छरों से कहाँ तक और कब तक बच सकते हैं? तीसरे कुनैन स्वतः एक घातक विष है। बाद में इसकी हानिकारक प्रतिक्रियाएं होती हैं। हम देखते हैं कि कुनैन लेते रहने पर भी ज्वर आता है और हमसे कहा जाता है कि कुनैन की मात्रा बढ़ाते जाइये। दीर्घजीवन और सच्चा स्वास्थ्य चाहनेवालों का कर्तव्य है कि कुनैन छूएं तक नहीं।

प्रश्न उठता है कि आखिर क्या करें? रोग-मुक्ति के लिए क्या उपाय काम में लावें? इस प्रश्न का उत्तर जानने के पहले एक दो और बातों का जान लेना जरूरी है।

इन पंक्तियों के लेखक की राय में मौसमी बुखार—जिसमें ज्वर के दौरे कुछ समय का अन्तर दे-देकर अर्थात् प्रति

दूसरे या तीसरे दिन होते है, और रोगी को ठंड लगकर ज्वर चढ़ता है, सारा शरीर टूटता और सिर दर्द करता है और कुछ समय के लिए तबीअत खराब हो जाती है—सबसे निकृष्ट ज्वर है। ठण्ड लगना इस बात का द्योतक है कि रोगी का शरीर विष से लबालब भरा है और उसे निकलने के लिए भीतरी शक्ति असमर्थ है, जिससे बाहरी शक्ति अर्थात गर्मी को भी भीतर दौड़ना पड़ता है। फलस्वरूप रोगी को बाहर ठण्ड मालूम देती है। अतएव हमारा कर्तव्य है कि हम ज्वर के होते ही सतर्क हो जावें और उचित चिकित्सा शुरू कर दें।

अन्ध-विश्वास

चूँकि यह बुखार कुछ घन्टे रह कर चला जाता है, हम इसकी कोई परवाह नहीं करते। प्रायः लोगों का विश्वास है कि यह ज्वर झाड़-फूंक से जाता है, इसलिए खान-पान की दुरुस्ती या इलाज पर ध्यान न देकर तावीज, यन्त्र-मन्त्र आदि की शरण ली जाती है। मुझे मलेरिया के कुछ रोगियों की चिकित्सा करने का अवसर मिला है। प्रायः देखा गया है कि दो-चार दिन की चिकित्सा से ही रोग छू-मन्तर हो गया। हाँ, ज्वर के पूरी तौर से चले जाने के बाद भी कुछ अधिक समय तक पथ्य का भोजन अवश्य रखा गया। कभी-कभी रोग ही ऐसा जटिल होता है। पर ऐसी अयस्थाएं अपवाद के रूप में ही होती हैं।

नीचे हम चिकित्सा-क्रम लिखते हैं।

उपवास

ज्वर चढ़ने के समय से ही उपवास शुरू कर देना चाहिए। उपवास का नियम यह है कि पहले दौरे से दूसरे या तीसरे दौरे तक कुछ न खाया जाय। आप देखेंगे कि उपवास के प्रभाव से ज्वर अपना समय बदलने लगेगा, तीसरे या या दूसरे दिन न आकर रोज आयेगा, कम ठण्ड मालूम होगी और तबीअत भी ज्यादा न बिगड़ेगी। यह सब अच्छे लक्षण हैं। उपवास-काल में थोड़ा पानी और बीच-बीच में नींबू का रस अवश्य लिया जाय।

पेट की सफाई

उपवास के साथ पेट का साफ होना अत्यावश्यक है। पेट की सफाई के लिए 'एनीमा' का प्रयोग सर्वश्रेष्ठ है। अनुभव ज्ञात हुआ है कि मलेरिया के रोगी का पेट कभी कभी 'एनीमा' से भी साफ नहीं होता। अतः यह जरूरी है कि किसी रेचक दवा का प्रयोग भी किया जाय। मेरी राय में सनाय का काढ़ा सब से उत्तम दवा है। १०-१५ दिन तक प्रतिदिन सोते समय जरा सा काढ़ा ले लिया जाय तो दूसरे दिन सबेरे एक-दो दस्त होंगे। हमें एक दम १०-१५ दस्त लाने का प्रयत्न न करना चाहिए। उपवास-काल में सनाय का काढ़ा और भी अधिक उपयोगी होगा। कुछ खा लेने से दवा को पुराना, बदबूदार, आंतों में चिपका हुआ मल निकालने का मौका नहीं मिलता। यह समझना कि न खाने से कमजोरी बढ़ेगी या पेट में मल कहाँ से आयगा, बड़ी भारी मूल है। पाठक अनुभव करेंगे कि १०-१० दिन का उपवास हो जाने पर भी काफी मात्रा में मल निकलता है। सनाय का काढ़ा तैयार करने की यह विधि है। २०-२५ सनाय की पत्तियों को ४-५ मुनक्का के साथ पाव भर पानी में औटा लीजिए। जब आधा जल रह जाय, तो छान कर पीकर सो जाइए। कुछ लोग दूध में भी औटते हैं। पर हमारी राय में ज्वर की दशा में दूध का सेवन नितान्त वर्जित है। दूध एक पूर्ण भोजन होने के कारण तन्दुरुस्त आदमी के लिए ही लाभदायक हो सकता है।

पथ्य

यह लिखा जा चुका है कि ज्वर के पूरे तौर से चले जाने तक कुछ न खाय जाय। जब यह विश्वास हो जाय कि अब दौरा न होगा, हम उपवास तोड़ सकते हैं। उपवास तोड़ने के लिए शाकों को उबाल कर उनका रस—'सूप'—लेना चाहिए। मान लीजिये कि आपने तीन दिन का उपवास किया है, तो चौथे दिन तीन चार बार उबले शाकों का रस लेना उचित है। पाँचवें दिन से कुछ अधिक दिन तक उबले

शेष पृष्ठ २०५ पर

आम: फलों का राजा

अप्राकृतिक
संदिग्ध

लेखक—श्री मूलनारायण मालवीय

आम फलों का राजा है। कहते हैं, यह फल भूतल पर अमरपुरी से आया! यह लोकोक्ति कहा तक सच है, इसके बारे में तो हम कुछ नहीं कह सकते, किंतु इसकी अलौकिकता में भला कौन सन्देह कर सकता है? इसे यदि अमृतफल कहा जाय तो शायद कोई अत्युक्ति न होगी। यह सुस्वादु, सुरुचिकारक, आरोग्य-वर्धक होने के साथ ही साथ ओषधिगुण से भी सर्वथा सम्पन्न है। इसकी मंजरी, इसका फल, इसकी पत्तियाँ इसकी छाल और यहां तक कि इसकी गुठली भी अपनी विशेष उपयोगिता रखती है।

इस लेख के अनुभवी लेखक आयुर्वेद-शास्त्र के मर्मज्ञ हैं। अतः इसका छाप इस लेख पर पड़ना बिलकुल स्वाभाविक ही है। आपने इस लेख में आम के कुछ ऐसे घरेलू नुस्खे बताए हैं, जो औषधि के रूप में होते हुए भी प्राकृत ही हैं, और हमारी समझ में उनका प्रयोग भी निरापद ही कहा जा सकता है।—सं०]

एक बार पूज्य मालवीय जी ने भारतवर्ष की महत्ता का वर्णन करते हुए कहा था कि भारत ही ऐसा देश है जहाँ आम ऐसा उत्तम फल उत्पन्न होता है। यूरोपीय देशों में आम की उत्पत्ति नहीं होती है। भारत में पैदा होने वाले समस्त फलों में आम सर्वप्रिय होता है। यह देखा गया है कि उत्तम से उत्तम वस्तु मुंह से उगल देने पर घृणा की दृष्टि से देखी जाती है, किन्तु आम की गुठली बारबार मुंह से निकालने पर भी लोग उसे बड़े चाव से चूसते है। आम इस देश में सर्वत्र पाया जाता है और इसकी बहुत-सी जातियां होती हैं। आम मोटे तौर पर दो रूपों में पाया जाता है—एक बीजू दूसरा कलमी।

आम बहुत तरह के होते है; किन्तु बनारस का लंगड़ा, लखनऊ के मलीहाबाद का दशहरी और सफेदा, इलाहाबाद जिले के कड़ा ग्राम का मालदा, जेठी बम्बई, किसुनभोग इत्यादि की अधिक प्रशंसा होती है। दरभंगा जिले में लंगड़ा आम बहुत होता है, किन्तु उसे कम महत्व प्राप्त है।

संस्कृत में आम को रसाल, आम्र, सहकार, काम-शर, काम-वल्लभ, भृंगाभीष्ट, बसन्त-दूत, मन्मथालय, कोकिलावास और पिक-प्रिय इत्यादि नाम दिये गये हैं।

आम का धार्मिक महत्व

धार्मिक कृत्यों में आम की लकड़ी हवन के कार्य में आती है। यज्ञ में पंच-पल्लवों में इसकी आवश्यकता होती है तथा वरुण-पूजन में यह कलश पर रक्खा जाता है। शुभ कार्यों में द्वार पर यह वंदनवार के रूप में बांधा जाता है। ब्याह के समस्त कृत्यों की समाप्ति पर वर-वधू आम्र वृक्ष का पूजन करते है तथा मौर शिराते हैं। होलिका-दहन के दूसरे दिन धुंढेरी अर्थात प्रतिपदा को आम की मंजरी और चन्दन के चूर्ण को मिश्री मिला कर खाते है। महाशिवरात्रि के दिन अन्य पुष्पों के सहित शिव जी पर आम की मंजरी चढ़ाना श्रेयस्कर माना जाता है। आम की लकड़ी तथा चन्दन की लकड़ी में मुर्दे को जलाना लोग पवित्र मानते हैं।

आम के द्वारा व्यापार

आर्थिक दृष्टि से आम का व्यापार बड़े पमाने पर होता है। आम की लकड़ी जलाने के काम में तो आती ही है, साथ ही इसके तख्ते इमारत बनाने तथा दूसरे कामों में भी आते हैं। आम-पाक, आम की खटाई, अमचुर आम के रस के द्वारा बनी अमावट, आम का अचार, मुरब्बा इत्यादि का व्यापार आम तौर से लोग करते हैं। बहुत से

गरीब आम की पिसी खटाई से तरह-तरह के चूर्ण और जीरे का जल, दाल का मसाला आदि बना कर बाजारों में बेचते हैं। आम्र का इत्र भी होता है, जिसकी सुगन्ध मनोहारिणी होती है। संवत् १९२५ में जब घोर अकाल पड़ा था, तब गरीबों ने आम की गुठली उबाल कर अपनी भूख की ज्वाला शान्त की थी। आम की ऋतु में चतुर स्त्रियाँ कच्चे-पक्के आम का मीठा और नमकीन पना बनाती हैं। आम की चटनी, आम की खीर तथा बर्फी बना कर सुन्दर व्यंजन तैयार करती है। आम के द्वारा रंग तैयार होता है और बालों को काला करने का खिजाब भी बनता है।

आम की चर्चा कवियों ने वसन्त-वर्णन में अधिकतर की है। वसन्त-ऋतुराज है। अगर हम भी आम को फलों का राजा कहें तो अत्युक्ति न होगी। वसन्त में भ्रमण करना पथ्य माना गया है। उस समय सायंकाल के समय में वन-उपवन की ओर घूमने से, आम के पुष्प सुवासित सुन्दर वायु के लगने से मन मुग्ध हो जाता है।

विचित्र आम-वृक्ष

जौनपुर के निकट माली नाम का स्टेशन है। वहां से कुछ दूरी पर मित्तूपुर नामक एक ग्राम है। इस गाँव में एक विचित्र आम का पेड़ है। इस वृक्ष की विशेषता यह है कि इसकी डाली हवा के झोके लगने के कारण टूट कर जब जमीन पर गिरती है तो वह कुछ दिनों बाद पेड़ का रूप धारण कर लेती है। मैंने स्वयं इस वृक्ष को देखा है। देखने से पता लगता है कि किस प्रकार से एक पेड़ के अनेक हो गये हैं। इस पेड़ के सम्बन्ध में यह कथा प्रसिद्ध है कि वहां पर एक वृद्ध साधु रहता था। उसने अपनी कुटी से कुछ दूरी पर एक आम का पेड़ लगाया। आँधी के झकोरे से वृक्ष गिर गया। साधु के भक्तों ने आकर इसकी सूचना महात्मा को दी। साधु ने कहा कि अब यह पेड़ गिरा ही गिरा फला-फूला करेगा। तब से ऊपर कही हुई विशेषता इस आम के पेड़ में हो गई है। इसी जगह साधु की कच्ची समाधि है। लोग जाड़ा देकर आने वाले बुखार से मुक्ति पाने की इच्छा से साधु की समाधि पर थोड़ी भाँग और एक लंगोटी का कपड़ा चढ़ाते हैं। वहाँ के निवासियों का ऐसा विश्वास है कि ऐसा करने से फिर जाड़ा देकर बुखार नहीं आता है।

आम खाने की उचित बिधि

जहां तक हो सके, आम मीठे और पतले रस का खाना चाहिए। खाने से घंटे डेढ़ घंटे पहले आम को ठंडे पानी में भिगो देना चाहिए। जल में पड़े रहने से आम की गर्मी शान्त हो जाती है। आम की ढेंपी तोड़ कर तथा उसकी चीप निकाल कर धीरे-धीरे उसे चूसे। आम खा चुकने के बाद थोड़ा दूध पी लेने से आम के दोष शान्त हो जाते हैं। प्रातःकाल मीठे आम को चूस कर ऊपर से दो तीन छुहारा, थोड़ी सोंठ, मीठा पड़ा हुआ चुरा दूध पीने से शरीर में बल-वीर्य की वृद्धि होती है और मस्तिष्क में बल बढ़ता है। पका हुआ आम मधुर, बल को देने वाला, वातहरणकर्त्ता और अग्नि, कफ तथा शुक्र को बढ़ाने वाला होता है। वृक्ष के पके हुए आम को सीकर कहते है, यह खटमिठा होता और कुछ पित्त को कुपित करता है। कृत्रिम पका हुआ आम जो पाल का कहलाता है, पित्तनाशक होता है, और इसमें मिठास अधिक होता है। जो आम टुकड़े-टुकड़े करके खाये जाते हैं, वे अधिक देर में पचते हैं। याद रहे कि खट्टे आम हानिकर होते हैं। उनसे मन्दाग्नि, विषमज्वर, तथा रुधिर-दोष उत्पन्न होता है। यह अत्यन्त कोष्ठरोधक भी होते है और नेत्र-रोग उत्पन्न करते हैं। इसी से अधिक आम का सेवन करना वर्जित है। अधिक आम चूसने के बाद सोंठ का जल पीना अथवा काला नमक और जीरे के चूर्ण का भक्षण करना श्रेयस्कर होता है। आंम के जो कच्चे फल प्रारम्भ में होते है उन्हें अंबिया या टिकोरा कहते हैं। अंबिया होती तो रुचिकारी है, किन्तु वात-पित्त उत्पन्न करती है। अकसर देखा गया है कि छोटे बच्चों ने चार अंमिया खा लीं तो उनके नाक से खून गिरने लगता है।

औषधि-रूप में आम का व्यवहार

आम की जड़, पत्ती, फल, फूल और उसकी छाल

सभी औषधि के काम में आती हैं और अपने चमत्कारी गुणों से प्राणियों को लाभ पहुँचाती हैं।

आम के फूल को मंजरी तथा बौर कहते हैं। यह बड़ी गुणकारी वस्तु है। आम के बौर का चूर्ण मिश्री मिला कर आवश्यकतानुसार एक तोले अथवा ६ माशा गोदुग्ध के के साथ सेवन करने से पित्त-विकार मिटता है। साथ ही इसके सूखे बौर को छाया में सुखा कर चूर्ण बनाकर समान मिश्री मिला कर छः-छः माशा प्रातःसायंकाल ठंढे पानी सेवन करने से प्रमेह, अतिसार, अरुचि, रक्त-विकार, दाह, कफ-पित्त आदि दोष दूर होते हैं। उसी को दूध के साथ लेने से वीर्य गाढ़ा होता है और स्तंभन-शक्ति बढ़ती है।

बिच्छू और सांप के काटने का इलाज

वसन्त ऋतु के प्रारम्भ में जिस समय आम में बौर लगे सर्व प्रथम दिखलाई पड़े उस समक उन्हें तोड़ कर दोनों हाथों में मल ले। ऐसा करने से साल भर तक बिच्छू का भय नहीं रहेगा, साथ ही अगर बिच्छू ने किसी को डंक मारा हो और हाथों में की मजरी मलने वाला यदि उस स्थान को रगड़ दे तो बिच्छू का विष तुरन्त दूर हो जायगा। यह प्रयोग मैंने स्वयं किया है। यह असर सिर्फ एक वर्ष तक रहता है।

आम की जड़ दाहिने हाथ में बांधने से पित्त ज्वर छूटता है और उसके द्वारा उत्पन्न होने वाले उपद्रव शान्त होते हैं। सर्प-विष में आम की गुठली का चूर्ण पिलाने में वमन होता है। बारबार इसके द्वारा वमन कराने से सर्प-विष दूर होता है।

आम की गुठली की मींगी का चूर्ण करके उसमें सेंधा निमक मिला कर गर्म जल के साथ सेवन करने से अजीर्ण, अरुचि और पेट की पीड़ा दूर होती है। पुराने आम की गुठली की मरी, भुन सौंफ बराबर लेकर कूटपीस दोनों के बराबर शक्कर मिला कर लेने से आमातिसार मिटता है। बरसाती फुड़िया-फुंसी में आम की गुठली लगाने से लाभ होता है। अतिसार रोग की तो इसकी गुठली खास दवा है।

आम के पत्तों को छाया में सुखा कर महीन पीस कर, कपड़ छान कर ६-६ माशा सुबह, दोपहर और शाम को पानी के साथ सेवन करने से दस्त आना, पेचिश और संग्रहणी आदि में लाभ होता है। आम के कोमल पत्ते, हल्दी और लाल चन्दन को पीस कर आंख के ऊपर लेप करने से आंख की पीड़ा शान्त होती है।

आम की छाल दही के पानी में पीस नाभि के चारों ओर लेप करने से दस्त रोकने में विशेष लाभकारी सिद्ध होता है। आम की अंतर छाल थोड़े पानी में पीस कर थोड़ा पानी मिला कर पीने से दस्त रुकता है। आम की छाल को पीस कर मस्तक पर लेप करने से मस्तक की पीड़ा शान्त होती है।

आम की गोंद थोड़ा गर्म कर के फोड़े पर लगाने से फोड़ा पक कर बह जाता है और घाव भी शीघ्र भर जाता है। इसके गोंद को लगाने से पैर की बिवाई को लाभ होता है।

* * *

निबन्ध

दाल: एक पौष्टिक आहार

श्री रमेश वेदी आयुर्वेदालंकार

सूखे मटर, सेम, लोबिये, सोयाबीन और फ्रांसबीन के दाने, ये सब दालों के अन्दर सम्मिलित किये जाते हैं, क्योंकि इनका रासायनिक संगठन और शरीर पर प्रभाव दालों के समान ही है। दालों और अनाज के दानों में इस बात की समता है कि दोनों ही नये निकलने वाले पौधे के लिये पोषण का भण्डार होते हैं। रासायनिक विश्लेषण से हमें दालों की मुख्य विशेषता यह मालूम है कि इनमें नत्रजन बहुत होता है। इस गुण के कारण इन्हें 'गरीबों का मांस' कहा जाता है। यह नत्रजन अधिकांश रूप में प्रोटीन की शक्ल में होता है।

दालों में पाया जाने वाला मुख्य प्रोटीन को लेगुयीन कहते हैं। दूध के मुख्य प्रोटीन के साथ इसका अधिक सादृश्य होने से इसे कभी-कभी वानस्पतिक केसीन भी कहते हैं। यह सादृश्य कितना अधिक है, यह इस बात से जाना जा सकता है कि फलियों के दानों से वास्तव में एक प्रकार का पनीर बनाया जाता है। लेगुयीन में चूने के लवणों के साथ मिल जाने की योग्यता है। इनके संयोग से जो समास बनता है वह पानी में विलेय नहीं होता। कारण यही है कि चूने का अधिक अंश मिले हुए कठोर पानी में दालें जल्दी नरम नहीं होने पातीं। ऐसी हालत में जरा सा सोडा (बाइकार्बोनेट आफ सोडा) मिला दिया जाय तो वह चूने को नीचे फेंक देता है। इसलिए कठोर पानी में दालों को पकाते हुए सोडा मिला लिया जाता है। रीश्टक ने दिखाया है कि कठोर पानी में पकाने से मटर उतनी अच्छी तरह न पकते हैं न जज्ब होते हैं जितने कि नरम पानी में उबाले हुए।

दालों के प्रोटीन में प्राणि-जन्य की प्रोटीन अपेक्षा गन्धक का परिमाण कम होता है, ऐसा कोई प्रोटीन नहीं पाया गया है जिसमें गन्धक बिलकुल न हो। मटर की तुलना में फलियों के दानों में गन्धक अधिक होता है। दालों की राख में अनाजों की अपेक्षा प्रस्फुरक कम होता है, परन्तु पोटाश और चूना अधिक होते हैं। दालों में चूना वास्तव में किसी भी दूसरे वानस्पतिक भोजन की अपेक्षा अधिक मात्रा में रहता है। दालों में एक कड़वा पदार्थ होता है जिसके कारण कुछ लोग इन्हें पसन्द नहीं करते। इनमें प्यूरीन पदार्थ का परिमाण काफी होता है जिसके परिणामस्वरूप इनके सेवन के बाद यूरिक अम्ल अधिक मात्रा में निकलने लगता है। इसी बात को ध्यान में रखते हुए गठिये के रोगियों को बहुत बार दालों के सेवन का निषेध कर दिया जाता है।

दालों को नरम करने के लिए पानी में देर तक भिगोने की जरूरत पड़ती है। जिस पानी में इन्हें भिगोया जाता है वह पानी फेंका जाना चाहिये या नहीं, यह प्रश्न लोग अक्सर पूछा करते हैं। उस पानी फेंक देने से प्रोटीन और शर्करा का एक विशिष्ट अंश हा नष्ट होता है परन्तु उसमें एक लाभ यह है कि बीजों के अन्दर विद्यमान कड़ुये पदार्थ का अधिक अंश इस तरह निकल जाता है।

सोयाबीन पहले प्रोटीनवाले भोजनों में सबसे अच्छा माना जाता था क्योंकि इसमें सब दालों से अधिक बसा (बीस प्रतिशत तक) होती है। कुन्नूर के परीक्षण बताते हैं कि सोयबीन में विद्यमान प्रोटीनों की मनुष्य के लिए उपयोगिता इतनी अधिक नहीं है जितनी कि समझी जाती रही है। सोयाबीन के पूरे दाने से जो चीजें बनाई जाती हैं उनकी तुलना में उन पदार्थों की पोषक उपयोगिता सम्भवतः अधिक उच्च है जो इसे फर्मेण्ट (खमीर पैदा करके) करके बनाई जाती है। चीन और जापान में सोयाबीन को इसी तरह फर्मेण्ट इस्तेमाल किया जाता है। परन्तु कुन्नूर के नये परीक्षणों के अनुसार, भारत में सोयाबीन के विस्तृत प्रचार को प्रोत्सहान देने का कोई खास कारण नजर नहीं आता, और आजकल इस शिम्बी (logume) के विस्तृत प्रचार के

लिए जो उत्साह दिखाया जा रहा है वह न्यायोचित नहीं है। चूहों की वृद्धि के परीक्षणों से यह प्रकट होता है कि कुछ दालों की तुलना में इस की पोषक उपयोगिता में कोई लाभ नहीं, और वे दालें तो प्राचीन काल से ही भारतीय व्यवसाय का तथा भोजन का अंग बन चुकी हैं। इसलिये हमें इनके महत्व को कम नहीं करना चाहिये।

दालें (१) प्रोटीन की अत्युत्तम स्रोत हैं। (२) चूना, प्रस्फुरक और लोह इनमें खूब होता है। (३) इनमें निशास्ता अधिक और स्नेह कम होता है। इसलिए जिन्हें स्नेह की अधिक आवश्यकता नहीं उनके लिये ये अच्छी हैं। जिन्हें स्नेह की अधिक जरूरत होती है वे इनमें खूब घी डालकर खाएँ तो वह जल्दी हज्म होगा। (४) सस्ती पड़ती हैं, क्योंकि पानी में भिगोने के बाद थोड़ी सी दाल भी फूलकर अधिक बन जाती है। (५) देर तक रखे रहने से भी इनकी भोजन-सम्बन्धी उपयोगिता में व्याघात नहीं आता। (६) इनमें खाद्योज (विटामिन) 'ए' और 'बी' होता है। (७) यदि अंकुर निकलने दिये जाँय तो खाद्योज 'सी' भी पैदा हो जाता है। जहाँ फल नहीं मिलते या महँगे होते हैं वहाँ खाद्योज 'सी' का ये बहुत अच्छा स्रोत बन जाती हैं।

अमेरिका में दालों पर बहुत खोजें हुई हैं। परीक्षणों से मालूम किया गया है कि विविध रूपों में खिलाई गई दालें कितने परिमाण में हज्म होती हैं। यह पता लगा है कि दालों के प्रोटीन औसतन अस्सी प्रतिशत और निशास्ता नब्बे प्रतिशत शरीर में ग्रहण कर लिये जाते हैं। दालों के प्रोटीन की प्राणियों के लिए उपयोगिता, यद्यपि प्रथम श्रेणी की नहीं है परन्तु उच्च है। पकाने से इनकी उपयोगिता बहुत अधिक बढ़ जाती है।

साढ़े तीन छटाँक सूखी मटर का रसा बनाकर खा लिया जाय तो ये आमाशय में साढ़े चार घन्टे तक पड़े रहेंगे। इतने ही फ्रांसबीन इससे अधिक समय तक आमाशय में रहते हैं। यदि ठीक तरह तैयार की जाय तो दालें आँतों में प्रायः सारी जज्ब होती हैं। ठीक तरह बनाये हुये साढ़े तीन छटाँक मटर जब रोज लिये जाते हैं तो करीब आठ या नौ प्रतिशत को छोड़कर शेष सारी प्रोटीन हज्म हो जाती है।

दालों की पोषक उपयोगिता निस्सन्देह बहुत ऊँची है। एक सक्रिय जवान आदमी को अपने आहार के रूप में रोज जितनी प्रोटीन की आवश्यकता होती है वह साढ़े दस छटाँक मटर के आटे से प्राप्त कर सकता है। कल्पना कीजिये कि मटर का इतना परिमाण रसे के रूप में आप के अन्दर जा रहा है। अच्छे गाढ़े रसे की एक प्लेट में इसका कुल परिमाण भरा हुआ एक बड़ा चम्मच होगा। यह परिमाण तोल में प्रायः पच्चीस माशे होगा। इसके प्रोटीन से आप के शरीर को उतना पोषण मिलेगा जितना एक औंस मांस से मिलता है। यदि आप किसी और रूप में प्रोटीन नहीं खा रहे तो दिन भर में ऐसी चौबीस प्लेटों की आपको जरूरत होगी। रसे को पानी में न बनाकर दूध में बनायें तो एक प्लेट में इतनी अधिक प्रोटीन हो जायगी कि आप के लिए दिन में इस की आठ प्लेटें काफी रहेंगी। सामान्यतया आपके दूसरे भोज्य पदार्थों में भी प्रोटीन सम्मिलित रहता है इसलिए दालों से ही इतनी अधिक प्रोटीन लेने की आवश्यकता नहीं। दिन में एक बार दाल खाना काफी होता है। आमाशय दालों को जल्दी हज्म नहीं कर पाता। गैलन की सम्मति में दूसरे भोजनों के मुकाबले में इन्हें पचाना कठिन होता है और इसलिए रात को अधिक मात्रा में दाल खाने वालों को बुरे स्वप्न दिखाई देते हैं।

मांस न खाने वालों को नत्रजनीय भोजन (प्रोटीन) की पर्याप्त राशि प्राप्त करने के लिए दालों के प्रयोग की जोर देकर सिफारिश की जाती है। जिन लोगों के सामने आर्थिक समस्याएँ अधिक महत्वपूर्ण हैं और वे महँगी चीजों से प्रोटीन प्राप्त करने में अपने को असमर्थ पाते हैं उनके लिए दालें निश्चय ही सबसे सस्ता भोजन है।

भारत में दालों को कई रूपों में खाया जाता रहा है। इन दानों को क्योंकि बहुधा दल कर बनाया जाता है इसीलिए इनका नाम दाल पड़ा। दालों को यूष और सूप इन दो रूपों में खाने का अधिक प्रचार रहा है। मूँग आदि को जरा सा भून कर चौदह या अठारह गुने पानी में आधा पानी शेष रहने तक पकाते हैं। फिर छान

कर इसका पानी अलग कर लेते हैं, इस पानी को यूष कहते हैं। पकाते हुए पानी यदि चौथाई ही बच रहे तो वह सूप बन जाता है! अधिक सुस्वादु बनाने के लिये अक्सर इनमें अनारदाना, आँवला, इमली आदि मिलाकर इन्हें जरा खट्टा कर लिया जाता है। सूप में दाल के दाने और रसा दोनों ही खाये जाते हैं परन्तु यूष में रसा ही खाया जाता है। जिस तरह आजकल हमारे घरों में दाल बनाई जाती है वह सूप है। चरक के मत में पकी हुई दाल, जिसमें कोई खटाई न डाली गई हो, उस दाल से अधिक देर में पचती है जिसमें आँवले आदि की खटाई मिला दी गई हो। यूष में स्नेह, नमक आदि मिला कर खाने से वह आमाशय तथा आंतों के लिये जरा दुष्पच हो जाता है। स्नेह आदि बिना मिलाये यूष को यदि योंही खा लिया जाय तो यह जल्द हज्म हो जाती है। विविध प्रकार की दालें सामान्यतया भारी, गरम, बलनाशक और शरीर में रूक्षता पैदा करने वाली होती हैं, इसलिए चरक कहते हैं कि जिन लोगों की पाचकाग्नि बलवान है उन्हें इनमें घी आदि स्नेह मिलाकर खाना चाहिये।

—'हिन्दी स्वराज्य'

पृष्ठ २९९ का शेष

या पके शाक या फल खाये जा सकते हैं। हमें पेट पर एकदम बोझ न डालना चाहिए। कुछ दिन शाकादि पर रह कर रोटी का टुकड़ा खाया जाय। गेहूँ का दलिया भी लिया जा सकता है पर काफी दिन तक चीनी, मैदा, दूध, दाल तथा चावल का परहेज रखना जरूरी है। इस क्रम का पालन करने से बाद में हमारा स्वास्थ्य अति उत्तम हो जायेगा।

उपचार

उपवास तथा पेट की सफाई से ही ज्वर चला जावेगा, यह निश्चित है। फिर भी रोग स जल्दी छुटकारा पाने के लिए हम कुछ साधारण उपचार को भी अपना सकते है।

मलेरिया के रोगी को पसीना नही आता। अतः यह प्रयत्न करना चाहिए कि किसी प्रकार पसीना निकले। पसीना लाने के लिए हम वाष्प-स्नान कराते हैं। इसका एक यन्त्र होता है। यदि यह उपलब्ध न हो, तो धूप-स्नान कराया जाय या रोगी को चरपाई पर लिटाकर चारों तरफ से ढक दिया जाय, और खोलते पानी के चौड़े मुंह के बर्तन चार पाई के नीचे रक्खे जावें। इस प्रकार पसीना आने के बाद ठण्डे जल से स्नान कराना जरूरी है।

इसके अलावा रोगी को किसी गरम जल के बड़े बर्तन में भी कभी कभी बिठाया जाय। सोते समय पैरों को गरम स्नान कराना भी लाभदायक है। ज्वर चढ़ने की दशा में कपड़े की गीली पट्टी का प्रयोग बुखार को जल्दी ही खींच लेता है। प्रतिदिन एक-दो बार मिट्टी की पट्टी चढ़ाने से पुराना मल फूल जाता है और सहज ही निकल जाता है। इन उपचारों को किसी उत्तम पुस्तक के आधार पर विधिपूर्वक किया जा सकता है।

मलेरिया के चंगुल में न फंसने के लिए उचित आहार-विहार की आवश्यकता है। अपने रक्त को शुद्ध रखना अनिवार्य है। प्रतिदिन नींबू का रस, दस पन्द्रह तुलसी एवं बिल्व-पत्र का सेवन जरूरी है।

तम्बाकू की आदत से छुटकारा कैसे मिले?

डा० जटाशंकर नन्दी

वैज्ञानिकों, चिकित्सकों तथा अन्य सभी व्यक्तियों ने एक स्वर से यह घोषित किया है कि तम्बाकू एक अत्यन्त भयानक विष है। प्रूसिक अम्ल (prussic Acid) को छोड़ कर अन्य किसी भी विष से इतनी शीघ्रता से मृत्यु नहीं हो सकती जितनी कि तम्बाकू के विष से।

तम्बाकू की गणना वानिस्पतिक जगत के विषाक्त पदार्थों के एक विशिष्ट वर्ग में की जाती है। इसमें अनेक भयानक विष पाए जाते हैं, जिनमें बेलेडोना, और (Belledona) हेबेन (Heubane) मुख्य हैं। तम्बाकू में विषाक्त पदार्थों की उत्पत्ति निकोटीन (Niestene) नामक एक भारी तैलयुक्त पदार्थ की वजह से होती है जो कि उसमें विशेष रूप से पाया जाता है। ऐसा तखमीना लगाया गया है कि एक पौन्ड (लगभग आध सेर) तम्बाकू में ३८० ग्राम निकोटीन होता है। जब कि, यदि इस निकोटीन के एक ग्राम के दशवें भाग को किसी कुत्ते को खिला दिया जाय तो ३ मिनट के अन्दर ही वह मर जायगा। फिर तो हम सहज ही यह कल्पना कर सकते हैं कि निकोटीन कितना भयानक विष है! तम्बाकू के धुएं में निकोटीन के अलावा अन्य कई प्रकार के प्राणघातक विष होते हैं। इनमें सबसे प्रमुख हैं पीरीडीन (pyridine) पिकोलीन (piccoline) कारबोनान्स आक्साइड (Corbonons oxide) हाइड्रोजन (Hydrogen) कारबन डी आक्साइड (Crbon di oxide) और प्रूसिक अम्ल (prussic Acid)।

धूम्रपान से शरीर को नुकसान पहुँचने का मुख्य कारण होता है धुएं को शरीर के अन्दर ले जाने की आदत। शरीर प्रणाली के अन्दर किसी प्रकार के विष को शीघ्र से शीघ्र पहुँचा देने का यही सब से सहज तरीका है। यह बात तो उस समय कोई बड़ी आसानी के साथ समझ सकता है जब उसे यह मालूम हो जाय कि फेफड़ों का धरातल कुल मिलाकर १४०० वर्ग फीट है और जिसमें वह श्लैष्मिक झिल्ली भी है जो साँस या मुंह के जरिये वहाँ तक पहुंचने वाले किसी भी गैस सदृश पदार्थ को अधिक से अधिक परिमाण में जज्ब कर लेती है। यह झिल्ली बहुत ही बारीक होती है और फेफड़ों में प्रवेश करने वाले गैस को रोकने में समर्थ होना उसके लिए कठिन ही होता है। हमारे शरीर का सारा रक्त हर तीसरे मिनट इसी श्लैष्मिक झिल्ली के नीचे से होकर प्रवाहित होता है। अतः यह बिलकुल स्पष्ट है कि हुक्का, बीड़ी, सिगरेट या सिगार पीने वाले व्यक्ति फेफड़े के भीतर पहुँचने वाले जहरीले धुएँ से उसके शरीर का सारा रक्त विषाक्त हो उठता है।

मनुष्य की शरीर-प्रणाली पर तम्बाकू का असर

इस बात की हम आसानी से कल्पना कर सकते हैं कि एक ऐसी बनस्पति का, जो कि अत्यन्य भयानक विष है, सेवन करने पर मनुष्य की शरीर प्रणाली पर उसका व्यापक प्रभाव पड़े बिना रह नहीं सकता! अन्तर्राष्ट्रीयख्याति के एक चिकित्सा विज्ञान सम्बन्धी मासिक पत्र 'लान्सेट' में इस बात की पुष्टि की गई है कि 'तम्बाकू के प्रयोग से शरीर-प्रणाली को जो भारी नुकसान पहुँचता है, उससे कोई मनुष्य अपने को बचा नहीं कर सकता।' यदि तम्बाकू के सेवन से होने वाली हानियों के सम्बन्ध में संसार के सभी विशेषज्ञों की सम्मतियाँ एकत्रित की जायँ तो एक बहुत बड़ा ग्रंथ तैयार हो जायगा। अतः यहाँ पर केवल कतिपय अधिकारी व्यक्तियों की सम्मतियों का उल्लेख कर देना ही पर्याप्त होगा।

डा० मूसी एम० डी० (Dr. Mussy) का कहना है, "सुंघनी, बीड़ी, या सिगार इनमें से किसी भी रूप में तम्बाकू का आदतन इस्तेमाल करने वाले व्यक्ति में ये लक्षण

उत्पन्न हो सकते हैं—"थकावट, पेट में मरोड़ या दर्द, सिर में भारीपन या दर्द, आँखों में अक्सर धुंधलापन छाना या दृष्टशक्ति का क्षीण पड़ जाना, वदन का पीला पड़ जाना अच्छी तरह नींद न आना, बराबर उदासी या नैराश्य भावना उत्पन्न होना और किसी-किसी मामले में स्थाई रूप से उन्माद (पागलपन) का रोग हो जाना।"

भयानक विस्फोटक पदार्थों को आविष्कर्ता तथा गोला-बारूद सम्बन्धी एक सर्वोच्च विशेषज्ञ हडसन मैक्सिम (Hudson Maxim) का कहना है :

"सिगरेट की विश्वासघातिनी मृदुता, इसका व्यापक व्यहार, और यह जिस मन्द गति से आक्रमण करके धीरे-धीरे मनुष्य के मस्तिष्क और शरीर को नष्ट करता है, इन सब बातों के विचार से सिगरेट का धुआँ एक अत्यन्त भयानक तथा सांघातिक रूप धारण कर लेता है, जिसका शिकार हमारे सैनिकों को बनना पड़ता है। वर्तमान युद्ध में समस्त जहरीलै गैस के प्रयोग से मरने तथा आहत होने वाले सैनिकों की संख्या उन लोगों की संख्या के मुकाबले में कहीं कम होगी जो कि सिगरेट के धुएँ के विषाक्त गैसों के प्रभाव से मरते तथा आहत होते हैं, जब कि उसका पश्चात् प्रभाव (After effect) और भी अनिष्टकारी होता है।

'लाइफ' नामक मेडिकल-पत्रिका का कहना है : "तम्बाकू के धुएँ का विश्लेषण करने से जो चीजें उसमें पाई गई हैं वे इस प्रकार हैं —(१) कार्बोलिक ऐसिड (२) प्रूसिक ऐसिड (३) सल्फ्युरेटेड हाइड्रोजन (Sulphurated Hydrogen) (४) पीरीडाइन (pyridine) और (५) पिकोलीन (piccoline)। इस प्रकार इसमें साधारण से लेकर अत्यन्त भयानक सभी विष मौजूद हैं। यद्यपि स्नायुओं की जीवन-शक्ति के कारण इन विषों का शरीर पर प्रभाव देर में प्रकट होता है, किन्तु इसका प्रभाव पड़ना निश्चित है। स्वास्थ्य का गिर जाना स्नायु-प्रणाली की उत्तेजना या प्रदाह (Irritability) तथा तत्सम्बन्धी अन्य विष तम्बाकू भक्षण के ही प्रत्यक्ष परिणाम होते हैं।"

महात्मा गांधी का कहना है, "यदि प्रत्येक धूम्रपान करने वाला व्यक्ति इस गन्दी आदत को छोड़ दे और अपनी साँस को दुर्गन्धित, दांतों को हानि पहुंचाने वाले और विवेक-बुद्धि को कुण्ठित कर देने वाले तम्बाकू के लिए अपने मुँह को धुआँकश न बनाकर सिगरेट-तम्बाकू में खर्च होने वाले धन को बचा कर किसी राष्ट्रीय कार्य में लगावे तो इसके द्वारा वह स्वयं अपना और राष्ट्र का भी उपकार करेगा।"

संसार प्रसिद्ध चिकित्सा-विज्ञान विषयक पत्रिका 'लान्सेट' का कहना है, "चाहे वह किसी भी रूप में या कितनी भी मात्रा में हो, किन्तु तम्बाकू का सेवन करने वाला व्यक्ति अपने शरीर को उससे पहुँचने वाले नुकसान से बचा नहीं सकता।"

ऊपर दिए हुए उदाहरण से प्रकट होगा कि तम्बाकू का किसी भी रूप में सेवन करने से शारीरिक स्वास्थ्य को, जो कि जीवन के समस्त दायित्वों को पूरा करने तथा सुखोपभोग के लिए नितान्त आवश्यक होता है, क्षति पहुंचे बिना नहीं रह सकता। जो व्यक्ति जो क्षणिक सुख के लिए शारीरीक दुर्बलता, रोग और अकाल मृत्यु का आह्वान करता है और इस प्रकार अपनी पहुंचने के भीतर के अगणित वरदानों को प्राप्त करने से मुँह मोड़ लेता है उसे भाग्यहीन ही समझना चाहिए, क्योंकि परमात्मा ने जिस आध्यात्मिक विकास का विशेष कार्य सौंप कर उसे इस संसार में भेजा है उसका सन्तोषजनक रीति से पालन करने में वह असफल ही होता है।

तम्बाकू के अभिशाप से मुक्ति कैसे मिले ?

यहाँ पर जो उपाय बताए जायंगे उनका यदि समझदारी और लगन के साथ कोई पालन करे तो निश्चय ही वह तम्बाकू की आदत पर विजय प्राप्त कर लेगा। इस विधि का एक सब से बड़ा लाभ यह है कि यह पूरी तौर से व्यवहार में लाया जा सकती है। इस विधि की यह भी एक बहुत बड़ी विशेषता है कि उसका प्रयोग जिन-जिन मामलों में ईमानदारी के साथ किया गया है उन्हें पूरी सफलता प्राप्त हुई है।

आरम्भ में यह जान लेना आवश्यक है कि संसार में

ऐसी कोई दवा नहीं जो कि तम्बाकू की आदत से छुटकारा दिला सके। तम्बाकू के शिकार बने व्यक्तियों को केवल अपने रहन सहन के तरीकों में सुधार करना और अपने मस्तिष्क को परिष्कृत बनाना होगा। तम्बाकू की आदत से छुटकारा पाने के लिए नीचे बताए गए नियमों का पालन करना चाहिए।

(१) तम्बाकू की आदत के प्रति अपने मन में घृणा का भाव उत्पन्न कीजिए। एक ओर तो इस पर विचार कीजिए कि तम्बाकू खाने या पीने की आदत छूट जाने पर आपको कितने फायदे होंगे, और दूसरी ओर इस बात को भी महसूस करें कि तम्बाकू की आदत से आपकी शरीर-प्रणाली को कितना भारी नुकसान पहुँचता है। वास्तविक उपचार शुरू करने से पहले इसके लिए अपने मस्तिष्क को तैयार करना नितान्त आवश्यक है।

आपको अपने दिल में यह बात जमा लेनी होगी कि इस आदत को छोड़ देने से आपको क्या लाभ होंगे। कारण यह कि आपके मस्तिष्क का इस प्रकार का रुख ही आपको वह शक्ति प्रदान करेगा जिसके द्वारा तम्बाकू की इस गन्दी आदत से छुटकारा पा जाने में आप सफल होंगे। और यही जीवन की प्रत्येक बात के सम्बन्ध में कहा जा सकता है क्योंकि जबतक इच्छा न हो तबतक जीवन में कोई भी बात पूरी नहीं की जा सकती।

तम्बाकू की आदत छूट जाने से जो सबसे बड़े फायदे होते हैं वे इस प्रकार हैं—(१) स्वास्थ्य का पहले से उत्तम हो जाना (२) मानसिक क्षमता में वृद्धि होना। (३) काम करने और खेलने की क्षमता या योग्यता का बढ़ जाना, (४) शरीर में नए उत्साह एवं स्फूर्ति की वृद्धि, (५) धन की विशेष बचत और (६) अमर्यादित मानसिक दासता से छुटकारा।

इन बातों को अपने हृदय में सीमेन्ट की तरह जमा लें। और तब आप एक या दो सप्ताह तक प्रतिदिन अपने आप से पूछते रहें कि ऊपर जो लाभ बताए गए हैं क्या वे ऐसे हैं कि उनकी प्राप्ति के लिए हम प्रयत्नशील बनें ? यदि इसके दरमियान भी आपकी सिगरेट, बीड़ी, सिगार, हुक्का पीने या तम्बाकू खाने की आदत बनी रहे तो ऐसा करते समय हरबार इस बात पर गम्भीरतापूर्वक विचार करें कि इसके द्वारा आपकी शरीर-प्रणाली में इतना अधिक यह विष और पहुँच रहा है। ऐसा करने से आप देखेंगे कि यदि आपका तम्बाकू खाना या पीना बिलकुल नहीं छूट गया तो कम से कम उसकी मात्रा बहुत अधिक घट गयी है। आप धूम्रपान करने वाले या तम्बाकू खाने वाले अपने अन्य साथियों की अवस्था पर विचार करें और यह महसूस करें कि यदि वे इस आदत को छोड़ दें तो इससे उन्हें क्या लाभ होगा? इसी प्रकार आप स्वयं अपनी अवस्था पर विचार करें और तब आप यह दृढ़ संकल्प कर लें आप उन सब लोगों के लिए, जिनके सम्पर्क में आप आते हैं, एक उदाहरण प्रस्तुत करेंगे।

आप इस बात पर गम्भीरता पूर्वक विचार करें कि इस युद्ध में—जो कि संसार के समस्त युद्धों के इतिहास में सबसे भयंकर हुआ है—समस्त विषाक्त गैसों के प्रभाव से मारे गए तथा आहत हुए व्यक्तियों की संख्या सिगरेट के जहरीले धुएं से मरने तथा आहत व्यक्तियों की संख्या से कहीं कम है। इस तरह विचार करने पर आपका मानसिक दृष्टि-कोण ऐसा बन जायगा जिसके द्वारा आप तम्बाकू रूपी दैत्य के ऊपर सफलता पूर्वक विजय प्राप्त कर लेंगे।

(२) जैसा कि तम्बाकू खाने या पीने वाले सभी व्यक्तियों में होता है, अपने शरीर में एकत्र हुए तम्बाकू जन्य विष–निकोटीन–को बाहर निकाल दें।

सिगरेट पीना शुरू करते ही मनुष्य के शरीर में निकोटीन एकत्र होने लगता है। और जबतक इस विष को शरीर से बाहर निकाल नहीं फेंका जाता तबतक वह तम्बाकू का इस्तेमाल करने की लालसा मन में उत्पन्न करता रहता है। फलतः यदि कोई उसका इस्तेमाल करना बन्द कर देता है तो उसे शारीरिक कष्ट होने लगता है। इसका निष्कासन शरीर के चारों मल-विसर्जक अंगों-(१) आमाशय, (२) गुर्दे (३) फेफड़े और (४) त्वचा—के द्वारा होना चाहिए। आमाशय द्वारा निकोटीन का बहिष्करण

एनिमा लेने से, त्वचा द्वारा इसका बहिष्करण खूब पसीना निकालने और सर्वांग घर्षण-स्नान करने से, गुर्दों द्वारा इसका वहिष्करण प्रचुर मात्रा में फल और साग सब्जियों का रस लेने से और फेफड़ों द्वारा यह विष-विसर्जन गहरी साँस लेने और प्राणायाम करने से होता है।

(३) कब्ज किसी भी हालत में न होने दीजिए।

इस दौरान में आप को निश्चित रूप से एक बार और साफ पाखाना अपने आप होना ही चाहिए। यदि दोनों वक्त साफ पाखाना होता हो तो और भी उत्तम। आंतों का साफ रहना तो निहायत जरूरी है। इसके लिए आपको कोई दवा या ज़ुलाब लेने की जरूरत नहीं, क्योंकि इससे आमाशय कमजोर पड़ जाता है और आगे चल कर आंत्रिक दीवार (Intestinal Wall) शिथिल पड़ जाने के कारण एक नयी भयानक व्याधि उठ खड़ी होती है। इसके अतिरिक्त आँतों की मल-विसर्जन शक्ति भी क्षीण पड़ जाती है। कब्ज न होने देने का सब से आसान तरीका है डूश या एनिमा का प्रयोग और भोजन सुधार, यानी भोजन में उन चीजों को शामिल करने से परहेज किया जाय जो कब्जियत पैदा करनेवाली हैं। कब्जियत पैदा करने वाली होती हैं हर प्रकार की तलीभुनी और लसदार चीजें, चोकर निकाले हुए आटे की रोटियाँ, मैदे की बनी पूड़ियाँ, मिल में साफ किया हुआ कण-रहित चावल, द्विदल, नमक, मिर्च-मसाला, चटनी मुरब्बा आदि।

(४) उपचार जारी रहने के दिनो में भोजन की वस्तुओं का चुनाव सावधानी के साथ करें।

अमेरिका और इंग्लैण्ड के सुप्रसिद्ध चिकित्सकों ने इस बात का पता लगाया है कि कुछ भोजन की कुछ वस्तुएं तम्बाकू के प्रयोग के प्रति घृणा या अरुचि उत्पन्न कर देती हैं—वे हैं (१) हर किस्म के ताजे शाक। विशेषतः सेब में तम्बाकू की आदत छुड़ाने का विशेष गुण है। सेब के बाद दूसरा नम्बर है अंगूर का।

(२) दूध

(३) मिष्ठान्न

केवल दूध और फल पर रहने से इस उद्देश्य की पूर्ति होने में बहुत अधिक सहायता मिलती है।

तम्बाकू के गुलाम बने लोगों को छुटकारा दिलाने में यह रामबाण साबित हो चुका है। किन्तु जो लोग इस तरह के आहार पर नहीं रह सकते अथवा जिन्हें इस प्रकार का भोजन-क्रम अनुकूल नहीं पड़ता उन्हें ऐसे आहार पर रहना चाहिए जो कब्ज पैदा करनेवाले न हों। उनके लिए यह निहायत जरूरी है कि वे अपने भोजन में ऐसी चीजों को शामिल करें जिनमें विटामिन की अधिकता हो।

(५) शरीर जितना सबल और शक्ति-सम्पन्न होगा, सफलता प्राप्त करने की संभावना भी उतनी अधिक होगी।

अतः यह उचित होगा कि उपचार-क्रम जारी रखने के दिनों में समुचित व्यायाम के द्वारा शरीर को मजबूत और शक्तिशाली बनाया जाय।

(६) जहां तक बन पड़े, खूब पानी पियें।

दिन भर में कम से कम ७॥ पौण्ड (लगभग पौने चार सेर) पानी पीना चाहिये। इससे शरीर की मल-विसर्जन क्रिया में सहायता मिलती है।

(७) ठण्डे जल का स्नान लाभदायक होगा। रात में सोने के पहले गुनगुने पानी (तापमान ९८ डिगरी फारनहाइट) से स्नान करना चाहिये।

(८) रात में सोते समय पेड़ू पर कपड़े की गीली ठण्डी पट्टी रक्खें। पेड़ू पर गीले कपड़े की ठंडी पट्टी रखकर सोने से अमाशय को संचित निकोटीन बाहर निकाल फेंकने में सहायता मिलेगी।

(९) यह संकल्प कर लें कि इस बार आपने जो तम्बाकू खरीदा है वह अंतिम है।

इस दृढ़ संकल्प के साथ आप जो अन्तिम बार तम्बाकू खरीदें उसे पहले जितने समय में खर्च कर डालते थे उसकी अपेक्षा कम से कम चौगुणे समय तक चलावें। यह निश्चय कर लें कि उसके बाद आप किसी भी रूप में तम्बाकू न खरीदेंगे।

(शेष पृष्ठ ३१२ पर)

चेचक

व्रजमोहन मिहिर

चेचक का रोग प्रायः बालकों को अधिक होता है। अधिक उमर वालों को यह रोग बहुत कम होता है लेकिन जब होता है तो उसका रूप भयानक और विकराल होता है। बड़ी उमर में जब चेचक होती है तो रोग का प्रकोप भीषण होने से प्रायः मृत्यु हो जाती है। और रोगों की भांति चेचक भी गलत भोजन का परिणाम है।

चेचक के लक्षण

चेचक निकलने के पहले बच्चे का मुँह तमतमा आता है। शरीर में रक्त का बेग बढ़ जाता है। थोड़े ही समय बाद ज्वर आ जाता है जो कि दो तीन दिनों तक रहता है। तापमान काफी रहता है। ज्वर की तेजी के कारण चेचक के दाने ऊपर उमड़ आते हैं। दानों के ऊपर आ जाने पर ज्वर में कमी हो जाती है। चेचक के कई किस्में हैं। कुछ के दाने छोटे अंधौरी की भांति होते हैं, कोई दाल के आकार के और कोई इससे भी अधिक बड़े। दानों के भर आने का मतलब होता है विजातीय द्रब्यों का उनमें आ जाना। देखने में वे कुछ काले दिखलाई पड़ते हैं। बच्चों के लिए यह एक कष्ट दायक रोग है, हाँलाकि और बीमारियों की भाँति उतना खतरनाक नहीं। बच्चे को अधिक गर्मी मालूम होती है और एक साथ बहुत सी चीटियों के काटने के समान कष्ट होता है। खुजली का वेग भी तीव्र रहता है। इन कष्टों से बच्चा घबरा उठता है। बड़ी माता का कष्ट अमूमन १५ दिनों तक रहता है। उसकी तकलीफ धीरे धीरे कम होती रहती है लेकिन पूर्ववत स्वास्थ्य प्राप्त करने में काफी समय लग जाता है।

आधुनिक एलोपैथी प्रणाली ने इस रोग के निवारण का एक मात्र उपाय चेचक का टीका बतलाया है। पहले लोगों का यह अनुमान था कि एक दफा टीका लगवा लेने से चेचक फिर नहीं होगी किन्तु यह गलत साबित हुआ। इस समय भी प्रायः सभी बच्चों को टीका लगाया जाता है लेकिन उनमें से अधिकांश को चेचक निकलती है और किसी किसी की इस बीमारी में मृत्यु तक हो जाती है।

टींका लगने पर बच्चे को ज्वर आ जाता है उसे कुछ घबराहट सी रहती है और देखने में भी वह काफी सुस्त मालूम होता है।

चेचक निकलने में जितना कष्ट होता है लगभग उतना ही कष्ट बच्चे को टीका लगने के समय होता है। इस पर भी बच्चा इस रोग से मुक्त हो जाय, ऐसी बात नहीं टीका लगे हुए बच्चों में से किसी को भयानक प्रकार की माता निकलती है और किसी को साधारण सी। जिन बच्चों को साधारण प्रकार की माता निकली उनके घर वालों को बड़ा सन्तोष होता है और वे यह समझने लगते हैं कि प्रकोप के साधारण होने का एक मात्र कारण टीका है। टीका लगा देने पर भी जब चेचक निकलती है तो इनके विशेषज्ञ कहते हैं कि प्रतिवर्ष इस रोग से बचने के लिये टीका लगवाना चाहिये। 'मर्ज बढ़ता गया ज्यों ज्यों दवा की' टीका लगवाने के बाद भी जब चेचक निकलती है तो वे कहते हैं कि टीका सफल नहीं हुआ। उसके दाने भली प्रकार उभड़े न होंगे। एक दफा टीका लगवाने के पश्चात् अगर प्राणी मुक्त हो जाय तब भी टीके के लिये स्थान है। किन्तु ऐसा नहीं होता। टीका लगे हुए बच्चे भी कष्ट पाते ही हैं। आधुनिक काल के प्राणी पूर्ण स्वस्थ नहीं हैं। उनके रग में कितने ही रोगों के विष विद्यमान हैं। कुछ दबी हुई हालत में लोगों को संक्रामक रोग भी होते हैं। ऐसा लगता है बच्चे के शरीर से विष का निकालना चेचक के रूप में प्रकृति का प्रथम प्रयास है। इसी से यह रोग अतिशय भयानक दिखने पर भी साधारण तौर पर घातक नहीं है। इस रोग से दो ही दशा में मृत्यु होती है। उपचार द्वारा जब यह बिगड़ जाता है या जब शरीर की जीवन-शक्ति

निर्बल हो जाती है और विष के उभार को वह सहन नहीं कर पाती तो क्षीण दशा में मृत्यु हो जाती है। प्राकृतिक नियमों के अनुसार यदि रोगी रक्खे जांय तो मृत्यु संख्या बहुत कम हो सकती है।

टीका लगवाने के लिये सरकार ने कानून बना दिया है। बच्चे के टीका लगवाने से अगर कोई आदमी इंकार करता है तो किसी दफा के अनुसार उसका चलान कर दिया जाता है। अपराध में वह दण्ड का भागी होता है। इसपर भी वह टीका लगवाने से बच नहीं सकता कितना अंधेर है।

शरीर पर प्रत्येक वातों का प्रभाव और उसकी प्रतिक्रिया होती है। टीका लगे हुए बच्चे प्रायः भयङ्कर रोगों से पीड़ित हो जाते हैं। टीके के जरिये बछड़े के रक्त से तैयार किया हुआ वैकसीन दूसरे के शरीर में प्रवेश किया जाता है। यह हो सकता है कि स्वस्थ बछड़े की वैकसीन तैयार की जाती हो कि फिर भी बछड़े का रोगी होना कोई अनहोनी बात नहीं है। मनुष्यों के ही कितने रोगों का पता नहीं चलतां फिर पशुओं के बारे में तो और भी अनियमितता हो सकती है। रोगी पशु द्वारा तैयार की हुई वैकसीन से यों भी लाभ के बजाय हानि अधिक हो सकती है। वैकसीन तैयार करने में बछड़े को विष के इतने अधिक इंजेकशन दिये जाते हैं कि पीड़ा के कारण स्वस्थ बछड़े का रक्त दूषित हो जाता है। एलोपैथिक चिकित्सक भले ही इसके पक्ष में कहें किन्तु अप्राकृतिक होने से यह वस्तु दूषित है। वैकसीन तैयार हो जाने के बाद बछड़े को मार डाला जाता है केवल इसलिए कि उसका कष्ट असह्य होता है।

टीके का कानून पास करके किसी समय अधिकारियों ने समझा होगा कि इससे लाभ होगा किन्तु अबतो इसका परिणाम प्रत्यक्ष नजर आ रहा है। अतः अब उसे कायम रखना उचित नहीं है। दाद, कोढ़, गर्मी, सुजाक, पागलपन, नासूर, संग्रहणी, फोड़े फुंसी आदि जितने भयंकर रोग होते हैं उनका एक कारण टीके भी है। टीका का विष इन रोगों की उत्पत्ति में सहायक होता है।

रायल कमीशन की रिपोर्ट है कि टीका लगाने के परिणाम में १०० मनुष्यों को गर्मी का रोग होगया। सन् १९३८ में १२०६ आदमी इस रोग से मरे, जर्मन वैक्सीन रिपोर्ट में यह दर्ज किया गया कि चेचक का टीका लगाने वालों में अधिकांश को कोढ़, दाद, दमा आदि रोग होगये। डाक्टर सी० ई० पेज (अमेरिका) ने इसकी जांच इस तरह की उन्होंने एक गर्भवती स्त्री को चेचक का ५ वार टीका लगाया गया। इससे जो बच्चा पैदा हुआ उसके सारे शरीर पर भयंकर रक्त बहते हुए घाव हो गये थे। डाक्टर बर्नाक्र कहते हैं कि टीके के रोग से बड़े बड़े भयंकर रोग हो जाते हैं। डाक्टर लिंडलार ने लिखा है कि यदि गर्भवती स्त्री को टीका लगाया जायगा तो उसका दूध सूख जायगा। पशुओं पर भी इसका प्रभाव बुरा पड़ता है। मेडिकल क्वेश्चन में डाक्टर अर्जरिलोट और कर्थे ने लिखा है कि २०० टीका लगे हुए बच्चों में से ३० को बाद में क्षय रोग हो गया। इंगलैण्ड में टीके के कानून से पहले क्षय से १० साल में १६२०४ आदमी मरे लेकिन टीके का कानून जारी होते हो १३ साल में क्षय से २२५०० आदमी मरे। टीके के कानून का भयङ्कर परिणाम इससे स्पष्ट प्रकट होता है जेनर के बड़े पुत्र एडवर्ड की मृत्यु क्षय रोग से टीका लगाने के बाद हुई थी। इंगलैड के प्रसिद्ध डाक्टरों ने स्वीकार किया है कि पेट के फोड़े का टीका भी एक कारण है। इसका प्रमाण भी है कि वैवेरिया के टीके का स्वागत हेनरी से पहले किया था अतः वहां की मत्यु संख्या भी अधिक है। मद्रास के डाइरेक्टर आफ पब्लिक हेल्थ टीके के बारे में लिखते हैं—"टीका लगाकर चेचक को रोकने का भरसक प्रयत्न किया गया किन्तु इसका प्रकोप कम नही हुआ।"

जर्मनी के प्रिंसविस मार्क ने सन १८८८ में जर्मन रियासतों को यह संदेश भेजा था वैकसीन का टीका लगाने से चेचकका निवारण होने की कोई आशा नहीं है और यह ध्यान देने योग्य बात है कि बहुत सी जगहों की सरकारों ने इस कानून को नष्ट कर दिया है। इङ्गलैंड और वेल्स में जहां टीके की प्रथा अधिक प्रचलित है यह जान लेना आवश्यक है इन दस सालों में जब टीका अनिवार्यरूप से लगाया गया ५५१००० मौतें हुई या और उसके विरुद्ध जिन १० साल में टीका बराए नाम लगाया गया था सिर्फ १०० मौतें हुईं। इन रिपोर्टों से लगता है कि चेचक

को रोकने का टीका कोई अचूक उपाय नहीं है बल्कि यह अपने परिणाम में और भयङ्कर रोग उत्पन्न करता है।

सादा जीवन व्यतीत करने वाले परिबार में चेचक का रोग बहुत कम होता हुआ पाया गया है। प्रत्येक को अच्छे खुले हुए मकान में रहना चाहिये जहां कि सूर्य का प्रवेश में प्रकाश और वायु बराबर आती रहे। भारतवर्ष में अधिक वस्त्र की भी आवश्यकता नहीं है। ऋतु के अनुसार शरीर-रक्षा के लिए थोड़ा कपड़ा बदन पर होना चाहिये। भोंजन में से तेज मिर्च, मसाले, सिरके का व्यवहार मांस मदिरा आदि निकाल दें। मिठाई तथा मील की चीनी काभी अधिक व्यवहार न करें। दूध, फल, मेवे, शाक-तरकारी और गेहूँ, चावल, दाल आदि को स्वाभाविक दशा में इस्तेमाल करने की प्रथा कायम करें। इस प्रकार के भोजन से घर में सबों का स्वास्थ्य अच्छा रहेगा और बच्चे को चेचक निकलने का भय जाता रहेगा। यदि पहले के खराब रहन-सहन के कारण निकली भी तो उसका जोर बहुत कम रहेगा और बिना किसी उपद्रव के जाती रहेगी। मनुष्य को प्रत्येक दशा में रक्त की शुद्धता पर यथेष्ट ध्यान रखना चाहिये। यदि रक्त शुद्ध है तो चेचक तथा अन्य कोई भी रोग बच्चे को कष्ट नहीं पहुँचा सकेंगे। वर्ना हजार दवा करो किसी न किसी रोग से बच्चा सदा पीड़ित रहेगा। प्राकृतिक चिकित्सा के सिद्धान्त के अनुसार रोग केवल प्रकृति के विरुद्ध आहार-विहार का परिणाम है और केवल प्राकृतिक-उपचारों का प्रश्रय ग्रहण करने पर सुगमता पूर्वक जाता रहता है। जल, वायु, सूर्य, मिट्टी आदि ही स्वाभाविक उपचार हैं।

उपचार—चेचक निकल आने पर बच्चे को ऐसे स्थान पर न रक्खे, जहाँ कि ताजी हवा का अभाव न हो। नंगे बदन अगर बच्चे को मुलायम मिट्टी पर सुलाया जाय तो विशेष लाभ होगा। आवश्यकता जान परने पर उसका बदन पतले कपड़े से ढक दिया जाय। नीम के पेड़ के पास अगर बच्चा सुलाया जाय तो और भी अच्छा है। यदि रोगी चाहे तो उसे स्वाभाविक कुएँ के जल से स्नान भी करा सकते हैं। भोजन में सन्तरा तथा अन्य ऐसे ही हल्के फलों का रस या फल भी दिया जाय। मुनक्का किशमिश, अन्जीर दे सकते हैं।

चेचक का दाना सूख जाने पर गाय का ताजा दूध देना चाहिये। अच्छा पहाड़ी शीतल मधु दूध में मिलाकर दे सकते हैं बकरी का दूध गाय के दूध से अच्छा पड़ेगा। लेकिन उपरोक्त भोजन उसी समय दिया जा सकता है जब कि ज्वर का प्रकोप शान्त हो जाय। ज्वर के उतर जाने पर भूख लगने परही दिया जाय। ज्वर के उतर जाने पर चेचक के दाने जब तक मुर्झा न जांय अन्न को कोई चीज न दी जाय। रोग निवारण के लिये निम्नलिखित बातों पर ध्यान दें :—

(१) ऐनिमा का प्रयोग—प्रातः काल शौच हो आने पर भी एक बार एनिमा दिया जाय।

(२) पेड़ू पर सुबह शाम मिट्टी की पट्टी।

(३) भोजन के सम्बन्ध में पहले बतलाया जा चुका है।

रोगी को इस प्राकृतिक चिकित्सा पर रखने से लाभ की ही सम्भावना अधिक है।

रोग यदि भीषण प्रकार का है तो किसी प्राकृतिक चिकित्सक से सलाह ले लेना अच्छा होगा।

पृष्ठ ३०९ का शेष

(१०) तम्बाकू की लेशमात्र दिलानेवाली चीजों को भी जैसे हुक्का, सिगरेट-केस आदि—भूलकर भी, अपने सामने न पड़ने दें। तम्बाकू की दूकानों और धूम्रपान के कमरों में कभी न जायँ।

(११) सिगरैट बीड़ी पीनेवाले सभी लोगों से अपने को ऊंचा समझने की भावना अपने मन में जागृत करें :

तम्बाकू छोड़ने के एक दो सप्ताह बाद यह उच्च-भावना आपके मन में अपने आप जागृत हो जायगी।

यदि कोई इस उपचार-क्रम को सफलतापूर्वक चलावे तो यह देखकर सचमुच आश्चर्य होगा कि उसमें आत्म-सम्मान की भावना कितनी बढ़ गयी है, जीवन के प्रति उसका दृष्टि-कोण कितना विस्तृत बन गया है, वह कितना स्वस्थ हो गया है! और सबसे बढ़कर बात तो यह देखने को मिलेगी कि तम्बाकू की दुःखद दासता से छुटकारा पाकर उसका जीवन कितना सुखमय बन गया है! फिर कौन कह सकता है कि तम्बाकू से छुटकारा पाने के लिए प्रयत्नशील होना वांछनीय नहीं ?

अपने विचार

छोड़िए ऐसी आदत !

एक मुहावरा है—'मैन इज़ ए बण्डिल आफ हैबिट्स'। इसका भावार्थ यही है कि मनुष्य का निर्माण उसकी आदतों को लेकर ही हुआ है—वह आदतों का ही एक 'समूह' है। इसलिए मनुष्य में कोई न कोई आदत होना बिलकुल स्वाभाविक ही है। आदतों से अलग वह शायद रह ही नहीं सकता। अधिकतर आदत पड़ती है सोहबत के असर से। और जब एक बार किसी बात की आदत पड़ जाती है तो वही आगे चलकर मनुष्य का स्वभाव बन जाती है। मनुष्य के कार्य, स्वभाव और विचार परस्पर एक दूसरे पर ही अवलम्बित होते हैं—जैसा आदत वैसा स्वभाव, जैसा स्वभाव वैसा विचार, और जैसा विचार वैसा कार्य—यह तीनों ही आपस में इतने गुँथे रहते हैं कि इनको एक दूसरे से अलग किया ही नहीं जा सकता। इसलिए आदत का मनुष्य के जीवन में एक बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान है।

आदत अच्छी भी हो सकती है और बुरी भी। लेकिन यह विधि की विडम्बना ही है कि अच्छी आदत का पड़ना एक प्रकार से सतत सत्प्रयत्न, सतत साधना का ही बरदान है, जिसे प्राप्त करना मनुष्य के लिये उतना आसान नहीं है जितना कि अक्सर वह चाहता है। लेकिन कोई बुरी आदत डालने में कोई भी 'परहेज' करने या कष्ट उठाने की जरूरत नहीं। अपने आहार-विहार के नियमों को थोड़ा ढीला कर दीजिए—थोड़ा-सा लापरवाह हो जाइये, फिर देखिए कितनी आसानी से इस तरह की आदत आप पर बरपा हो उठती है। कितने अनजाने, कितने अनायास, योंही देखते-देखते, आप आदतों के गुलाम बन जाते हैं! इस तरह की गुलामी पहली नजर में भले ही बहुत आकर्षक जान पड़े किन्तु इसका परिणाम दुखदायी ही होता है—आगे चलकर पछताना ही पड़ता है। जीवन छूट जाने का संकट उत्पन्न हो जाता है, लेकिन आदत तो अमर—अमिट—ही जान पड़ती है। आदतों का गुलाम आदत से छुटकारा पाने की बात सोच तक नहीं सकता—सोचते ही दिल थर्रा उठता है। वह सोचता है—भला यह कैसे हो सकता है! बस, इसीलिए अच्छी आदत जितनी ही मुश्किल से देखने को मिलती है, उतनी ही बुरी आदत बड़ी बहुलता से।

आजकल शहरी भाइयों में चाय, तम्बाकू, सिगरेट सिगार पीना, एक प्रकार की 'इज्जत' की बात समझी जाती है। भद्र-सुशिक्षित समाज में इनमें से किसी भी बात का अभाव होना 'गँवारूपन' का ही द्योतक समझा जाता है। गुजरात के अग्रगण्य प्राकृतिक चिकित्सक डा० जटाशंकर नन्दी ने तम्बाकू विषयक अपने लेख में तम्बाकू में पाये जानेवाले विषाक्त पदार्थ 'निकोटीन' की भयानकता पर जो प्रकाश डाला है, उसे एक बार पढ़ लेने के बाद हम यह आसानी से समझ सकते हैं कि अधिकांश नवयुवकों को स्नायु-दौर्बल्य, रक्ताल्पता, उन्निद्र रोग, मस्तिष्क सम्बन्धी विकार आदि अनेक प्रचलित रोगों का एक बहुत बड़ा कारण किसी न किसी रूप में अपनी शरीर-प्रणाली में विष-संचय करने की आदत ही होती है।

धूम्र-पान की भयानक संहारकारिता पर एक अनुभवी रण-विशेषज्ञ का तो यहाँ तक कहना है—'इस युद्ध में विषाक्त गैस के प्रभाव से जितने आदमी मरे या आहत हुए हैं उनकी संख्या सिगरेट के विषाक्त धुएं से मरने या आहत होनेवाले व्यक्तियों की संख्या से कहीं कम है!'

तम्बाकू की भयानकता का जो तत्काल अनुभव नहीं होता उसका एकमात्र कारण है हमारे स्नायुओं की संजीवन-शक्ति और तम्बाकू का मृदु रूप में किया जानेवाला व्यवहार। हमको धोखे में डाल रखनेवाली यही दो बातें होती हैं। लेकिन परिणाम भोगने से तो हमें यह बचा नहीं सकतीं, परिणाम तो हमें भोगना ही पड़ता है।

फिर क्यों न आप स्वतन्त्रता के नए प्रभात में—उसके अरुणिम प्रकाश में इस आदत की गुलामी की जंजीर

(शेष पृष्ठ २१५ पर)

प्रश्नोत्तर

[इस स्तम्भ में जिज्ञासु पाठकों के प्रश्नों के उत्तर दिए जाते हैं। पाठकों को चाहिए कि वे एक बार दो से अधिक प्रश्न पूछने का कष्ट न करें और जहाँ तक हो सके अपने प्रश्न संक्षेप में ही लिखें। इस स्तम्भ का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य यह है कि किसी एक व्यक्ति की जिज्ञासा का लाभ दूसरे पाठक भी उठावें।

प्रश्नों के भेजने के सम्बन्ध में आवश्यक नियम यह है कि प्रश्नों को प्रश्नोत्तर कूपन के साथ भेजा जाय। प्रश्नोत्तर कूपन कवर के तीसरे पेज के नीचे दिया गया है। —सं०

प्रश्न—(१) दण्ड-बैठक करने का सबसे अच्छा तरीका क्या है कसरत के बीच में साँस किस तरह और कब लेनी चाहिए ?

(२) मैं ३-४ महीने से खुजली से परेशान हूँ। यह जड़ से कभी नहीं जाती। कभी हाथ में कभीपैर में तो कभी पेट में। मतलब यह कि हमेशा कही न कहीं बनी ही रहती है। कभी-कभी तो यही खुजली दाने बड़ी फुड़िया का रूप धारण कर लेते हैं। इनजेक्शन लिए पर बेकार साबित हुआ। घरेलू दवाइयों से भी कोई फायदा नहीं हुआ। अतः बड़ी कृपा होगी यदि आप मुझे कोई खास उपाय बतावें जिससे मुझे खुजली से छुटकारा मिल जाय।

—रूपकिशन गुप्त, चौक, कानपुर

उत्तर—(१) दण्ड-बैठक के अनेक प्रकार हैं। इन सबका इस स्तम्भ में विस्तार पूर्वक उत्तर देना असम्भव है। हां, तद्विषयक अनेक लेख जीवन सखा के में प्रकाशित हो चुके हैं, आप उनसे सहायता ले सकते हैं। व्यायाम अङ्क, में, जो जनवरी १९४२ में प्रकाशित हुआ था, इसके बारें में बहुत सी जानकारी की बातें दी गई हैं। आप उसे मँगा कर देख सकते हैं। दण्ड-बैठक के सम्बन्ध में एक आवश्यक नियम है कि यह खाली पेट ही—अर्थात् भोजन करने से कोई दो घन्टे पहले हो करना चाहिए। कसरत के समय सांस सामान्य रीति से लेते रहना चाहिये। साँस रोक कर कसरत करना—जिसका प्रदर्शन स्वर्गीय श्री राममूर्ति किया करते थे—मेरी राय में हानिकारक हो है। यदि कोई अधिक श्रम-साध्य कसरत की जाती है तो उस दशा में कुछ क्षणों के लिए साँस अपने आप रुक जाती है, किन्तु यह भी इस प्रकार का न होना चाहिये जिससे कि फेफड़ों पर तथा हृदय पर जोर पड़े या दम घुटने लगे।

(२) खुजली की शिकायत रक्त में अम्लता (खटाई की मात्रा) अनुपात से बहुत अधिक बढ़ जाने के कारण ही होती है। हमारी राय में खुजली होना अन्दर की सफाई के लिए एक शुभ लक्षण है। इससे घबड़ाने की कोईं बात नही। उसके लिये कोई वाह्य उपचार करने के बजाय शारीरिक शुद्धि पर ही विशेष रूप से ध्यान देना चाहिये। खून में खटाई की मात्रा तभी कम होगी जबकि अम्ल कारक आहार त्याग दिया जाय और उसके स्थान पर क्षार प्रधान भोजन को ही प्रमुखता दी जाय। हरी ताजी शाक, भाजियां, फल, चोकर सहित आटे की रोटी, छिलका सहित तरकारियाँ आदि क्षार प्रधान है और मैदे की बनी पूड़ी, पकवान, चाय, खट्टे-तीते पदार्थ, मिर्च-मसाले अम्ल-कारक खून की सफाई के लिए आपको मल विसर्जक अंगों के कार्य में सहायता पहुँचानी होगी। मल विसर्जक अंग ४ हैं—फेफड़ा, गुर्दा, आमाशय, और त्वचा ताजे फल और शाक, भाजियों के सेवन गुर्दे के कार्य में, एनिमा के प्रयोग से आमाशय के कार्य में, स्वेदन क्रिया (पसीना निकालने की क्रिया) त्वचा के कार्य में और गहरी सांस लेने, प्राणायाम करने से फेफड़ों के कार्य में सहायता मिलेगी। इस प्रकार आप कोई एनिमा का नियमित प्रयोग, हफ्ते या दो हफ्ते में एक बार वाष्प-स्नान, युक्त आहार, इन सब उपचार क्रमों पर ही विशेष रूप से ध्यान देना होगा। खुजली को बाहरी दवाओं के प्रयोग से दबा देने की चेष्टा कदापि न होनी चाहिए। यदि आप खुजली पर कुछ लगाना चाहें तो

तो नीबू का रस और नारियल का तेल बराबर-बराबर मात्रा में मिला कर लगावें। लेकिन यह शिकायत जड़ से तो तभी दूर होगी जब खून के सफाई के लिए ऊपर बताई गई विधियों से आप काम लेंगे।

प्रश्न—संग्रहणी या आंतों की कमजोरी में यदि फलाहार पर रहा जाय तो कौन-कौन सा फल लेना उचित होगा। यदि किसी एक ही मौसमी फल—जैसे खरबूजा—पर रहा जाय तो क्या हमारे शरीर के लिए आवश्यक सभी तत्व उससे प्राप्त हो जायगे? यदि नहीं तो इस अहार पर रहने से शरीर क्रमशः क्षीण न होने लगेगा?

देहात में आम ही एक ऐसा फल है जो प्रचुरता से प्राप्त हो सकता है। श्री जानकीशरण वर्मा ने अपनी पुस्तक 'रोगों की अचूक चिकित्सा' में आम को जीर्ण रोगों में लाभदायक ही बताया है। किन्तु लोगों का खयाल है कि आम गरम तासीर का और बादी होता है। ऐसा कुछ-कुछ अनुभव में भी आया है। इसके अलावा उसमें शर्करा की मात्रा भी अधिक होती है। तब वह जीर्ण रोगों में हानि न पहुँचावेगा? कृपया इस बात को स्पष्ट करें।

—सदानन्द त्रिवेदी, रायबरेली

उत्तर—संग्रहणी की बीमारी में तो मैं कत्तई कोई फल देने की राय नहीं देता। फिर तो मेरी राय में आपका यह सारा प्रश्न ही अनावश्यक हो जाता है। मैंने तो अपने स्वास्थ्यगृह में संग्रहणी के अनेक रोगियों को मठे का कल्प कराया है और अब तक इसमें शत-प्रतिशत सफलता मिली है। गाय के दूध के मठे का कल्प, और नीली बोतल का पानी यह संग्रहणी का सर्वोत्तम इलाज है। हाँ, इसके साथ थोड़ा सन्तरा, मोसम्बी, और मीठे अंगूर भी दिए जा सकते हैं। लेकिन यदि संग्रहणी के रोगी को सिर्फ फल पर ही रक्खा जाय तो देखा गया है कि उसे कोई लाभ नहीं होता। इन तीन फलों के अलावा और कोई भी फल मैं संग्रहणी में रोगी को देने की राय नहीं दे सकता।

—डा० बालेश्वर प्रसाद सिंह

(पृष्ठ २१३ का शेष)

को तोड कर फेंक दें—क्यों न आप स्वतन्त्रता की स्वर्णिम प्रभात-किरणों से मानसिक दासता के अंधकार को धो डालें। मानसिक दासता आर्थिक, सामाजिक, और राजनीतिक दासता से किसी कदर कम नहीं, बल्कि उससे भी बढ़ कर है। यदि आप आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक परतंत्रता की बेड़ियां तोड़ सकते हैं तो उसके साथ ही मानसिक दासता की जंजीर को भी क्यों नहीं तोड़ सकते?

आत्म संकल्प ही हर प्रकार की स्वतंत्रता की रीढ़ है। यदि आप दृढ़ संकल्प कर लें तो आसमान से गिरने वाली बिजलियाँ, सामने पड़ने वाले पहाड़, गरजते हुए तूफान आपको आजादी के रास्ते से विचलित नहीं कर सकते! फिर यह मानसिक दासता की बात ही क्या रही। इसे तो आप एक झटके से तोड़ सकते हैं। इसके लिए आपको और कुछ नहीं एक दिन, दो दिन, सप्ताह-दो सप्ताह, एकान्त में बैठ कर, इस पर केवल गम्भीरतापूर्वक विचार करना है। आप शान्त-चित्त हों, मस्तिष्क विकार-रहित हो, बुद्धि-विवेक जाग्रत हों, तब आप तटस्थ भाव से तम्बाकू-सेवन की भयानकता पर विचार करें। आप सोचें कि तम्बाकू की आकर्षक मृदुता आपके जीवन के साथ कितना भारी छल कर रही है—आकर्षण की आड़ में आपके जीवन-डोर को प्रतिपल, प्रतिदिन काटती जा रही है। हमें विश्वास है, तब आप अपने को इतने नीचे गिरने न देंगे, आप के मन में इस दैत्य के विरुद्ध विद्रोह की भावना जाग्रत हो उठेगी, आप उस पर विजय प्राप्त करने के लिए आतुर हो उठेंगे। और आप जीत भी जायँगे!

* * *

स्वास्थ्य और आसन

लेखक—डा० बालेश्वर प्रसाद सिंह

ऐसे तो आसन सम्बन्धी अनेक पुस्तकें बाजार में प्रचलित है किन्तु इस पुस्तक में कुछ ऐसी विशेषतायें हैं जिनसे अन्य कृतियाँ सर्वथा शून्य हैं ! आसनों की उत्पत्ति, उनका रूप एवं लाभ आदि के विषय में पूर्ण जानकारी इस पुस्तक के द्वारा ही प्राप्त हो सकती है । पुस्तक अत्यन्त सरल भाषा एवं बोधगम्य शैली में लिखी गयी है । ऐसी अनुपम पुस्तक का मूल्य केवल ३।।) है, डाक व्यय पृथक् ।

नारी आरोग्य दर्शन

लेखिका—डाक्टर इन्दुमती सिन्हा एन० डी० डी० वाई

नारी जितनी जटिल है, वैसे ही उसके रोग भी । आज हमारा नारी समुदाय विभिन्न प्रकार के स्त्री-रोगों से ग्रसित हो रहा है—कुछ दैनिक जीवन में व्यतिक्रम करने के कारण तो कुछ अपनी अज्ञानतावश । समस्त प्रकार के स्त्री-रोगों की उत्पत्ति का कारण, उनके उपचार, एवं गर्भावस्था आदि के विषय में पूर्ण जानकारी प्राप्त करने के लिए श्रीमती इन्दुमती सिन्हा द्वारा लिखित आरोग्य दर्शन नामक पुस्तक मँगाकर अवश्य अध्ययन करें और अपने गृहस्थ-जीवन को सुखमय बनावें । ३५० पृष्ठों की यह सचित्र पुस्तक अनिवार्य रूप से प्रत्येक स्त्री की चिरसंगिनी होने लायक है । ऐसी सुन्दर पुस्तक का मूल्य केवल ४।।) है, डाक व्यय पृथक । पुस्तक छप रही है । शीघ्र ही उपलब्ध होगी।

प्राकृतिक चिकित्सक

लेखक—डा० राम नारायण दुबे

डा० रामनारायण दुबे की यह पुस्तक अपने नाम को सार्थक करती है । विपत्ति में एक छोटे-मोटे डाक्टर का काम दे सकती है । दुबे जी स्वयं एक अनुभवी एवं कुशल प्राकृतिक चिकित्सक हैं । अपने पुराने अनुभव के सहारे उन्होंने गागर में सागर भरने का प्रयास किया है । प्रकृति की गोद में बिखरे विभिन्न प्रकार के उपकरणों का मानवता के हित के लिए कैसे उपयोग किया जा सकता है ?—इसका विश्लेषण इस पुस्तक में भली प्रकार किया गया है । पुस्तक प्रत्येक घर रखने लायक है । मूल्य ७।।) डाक व्यय पृथक ।

पढ़िये ! **लाभ उठाइये !!**

सुन्दर, स्वस्थ और सुखी जीवन के इच्छुकों को

ये पुस्तकें पढ़नी चाहिए

(१) शक्ति-दर्शन—शंकरलाल तिवारी	१)
(२) बच्चों की रक्षा—लुई कूने	॥=)
(३) मैं निरोग हूँ या रोगी !—लुई कूने	॥=)
(४) स्वास्थ्य के नुस्खे—'जीवन सखा' कार्यालय	)
(५) क्या और कैसे खायं—डा० बालेश्वर प्रसाद सिंह	।=)
(६) ब्रह्मचर्य ही जीवन है—स्वामी शिवानन्द	१॥)
(७) आनन्दमय जीवन—श्री शंकरलाल तिवारी	॥)
(८) कब्ज या कोष्ठबद्धता : डा० बालेश्वरप्रसाद सिंह	१)
(९) प्राकृतिक चिकित्सक—रामनारायण दुबे	७॥)
(१०) फलाहार—श्री नारायणप्रसाद अरोड़ा	१)
(११) आसन—डा० बालेश्वर प्रसाद सिंह	३॥)
(१२) मन और उसका निग्रह (द्वितीय भाग)—स्वामी शिवानन्द	३)
(१३) हम सौ वर्ष कैसे जीवें : श्री केदारनाथ गुप्त, एम० ए०	१॥)
(१४) आरोग्य-साधन—महात्मा गाँधी	॥)
(१५) स्वास्थ्य साधन—श्री रामदास गौड़	३॥)
(१६) दवाओं से बचो—श्री गंगाप्रसाद गौड़, 'नाहर'	१)
(१७) Your diet in health & disease by Harry Benjamin	1-4-0
(१८) Food-de-Medicine by Dr, L. N. Ratra, H. M. B.	1-2-0
(१९) Nature Cure of Eye defect by Dr. K. L. Sharma.	2-0-0
(२०) Practical Nature cure ,, ,, ,,	8-8-0
(२१) Constipation and Dyspepsia	1-8-0
(२२) Gems of health	2-0-0
(२३) Drugless healing	1-0-0

स्वास्थ्य सम्बन्धी पुस्तकें मिलने का पताः—

मैनेजर, स्वास्थ्य ग्रंथ-भंडार २८७, बादशाहीमंडी, चौक, प्रयाग ।

प्राकृतिक चिकित्सा और बापू

विश्ववंद्य पूज्य महात्मा गाँधी जी की राय में प्राकृतिक चिकित्सा रोग मिटाने के इलाजों का तरीका नहीं वरन्‌जीवन की एक पद्धति है, जिसमें रोग या बीमारी के लिए कोई गुंजाइश ही नहीं रहती।

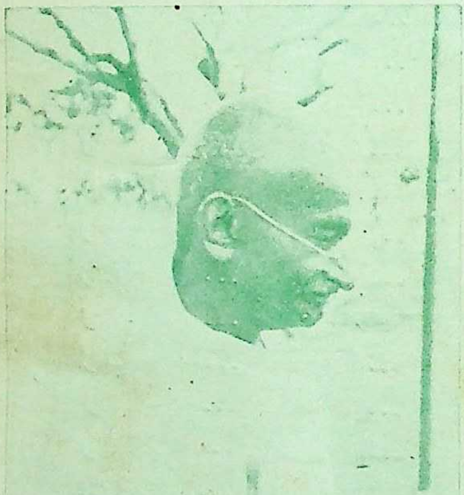

वास्तव में प्राकृतिक चिकित्सा हमको जीने की कला' (Art of living) सिखाती है। अन्य प्रणालियों की अपेक्षा यह प्रकृति से कहीं अधिक सम्बन्धित है। इसका ईश्वर से सीधा संपर्क है। प्रकृति चिकित्सा मुख्यतया प्राकृतिक साधनों पर ही निर्भर करती है अतएव इसमें देवत्व के सभी गुण निहित हैं।

अस्तु, यदि आप बापू की भाँति अपने स्वास्थ्य, कार्य एवं व्यक्तित्व को ईश्वर के चरणों में समर्पित करना चाहते हैं तो **जीवन सखा मासिक मंगाकर पढ़ें।**

जीवन सखा का उद्देश्य जनसाधारण के शारीरिक, मानसिक एवं नैतिक स्वास्थ्य का पथ प्रदर्शन करना एवं प्राकृतिक चिकित्सा का घर-घर सन्देश पहुँचाना है।

व्यवस्थापक—
जीवन सखा कार्यालय,
२८७ बादशाही मंडी इलाहाबाद।

Printed by R. N. Avasthi at the K. P. Press and Printing School, Alld.
Published by Syt. Baleshwar prasad Sinha. 287, Badshahi Mandi,
Chowk, ALLAHABAD.

ीवन-प्रभा

क, मानसिक और नैतिक स्वास्थ्य की पथ-प्रदर्शक

इस अंक के कुछ विशेष आकर्षण

सितम्बर

अक्टूबर

१. क्या मंहगी में भूखों मरें ?—श्री जानकी शरण वर्मा	१
२. अत्यानंद—डा० इन्दुमती सिन्हा एम० डी०, डी० [illegible]	२
३. रोग कैसे होता है—डा० पुल्ला वेंकट रामय्या	४
४. प्राणायाम और स्वास्थ्य—प्रो० लालजीराम शुक्ल एम० ए०, बी० टी०	६

तथा अन्य उपयोगी लेखादि

वार्षिक चन्दा ३)

इस प्रति का ।=)

काँगड़ी ~~क~~ गुरुकुल में ३० नवंबर सन १९४६ ई० को प्राप्त। ह० मम प्रसादस्य

तथा सं[illegible] — डॉ० बालेश्वरप्रसाद सिंह

विषय सूची

—:o:—

१—स्नान और मर्दन—डा० जे० एच० केलाग, एम० डी० ३१६
२—क्या मँहगी में हम भूखों मरें ?—श्री जानकीशरण वर्मा ३१७
३—मधुमेह—डा० बिट्ठलदास मोदी, एन० डी०, संचालक; आरोग्य मंदिर, गोरखपुर ३२१
४—शास्त्रीय मालिश—बाबा राघवदास ३२६
५—अत्यार्त्तव—डा० इन्दुमती सिनहा, एन० डी० डी० वाई ३२९
६—बेल और उसकी उपयोगिता—'जीवन विज्ञान' ३३२
७—बच्चों की शिक्षा—श्री महेन्द्रनाथ पाण्डेय, आयुर्वेद-विशारद ३३५
८—रोग कैसे होता है ?—(त्रिदोषों की आलोचना) डा० पुच्चा रमैया, एन० डी० डी० यम० ३४१
९—प्राणायाम और स्वास्थ्य—प्रो० लालजीराम शुक्ल, एम० ए० बी० टी ३४४
१०—दवा या जहर ?—श्री गुलाबचन्द जे० गोयल, 'प्रचंड' साहित्यरत्न, ३४६
११—ज्वर का प्रकोप—श्री शारदा प्रसाद गुप्त ३४८
१२—केश-विन्यास—श्रीमती सावित्रीदेवी ३५०
१३—नेत्र चिकित्सा पर एक नया अध्ययन—डा० आर० एस अग्रवाल, नेत्र-विशेषज्ञ, दिल्ली ३५२
१४—सीधा उठना बैठना सीखिए—श्री रामसुजान सिन्हा ३५४
१५—प्रकृति स्वयं चिकित्सक है—डा० शत्रुहन प्रसाद सिंह ३५६
१६—अपने विचार ३५९
१७—प्रश्नोत्तर ३६०

जीवन सखा प्रेमियों से

जीवन सखा का उद्देश्य जन साधारण के शारीरिक, मानसिक एवं नैतिक स्वास्थ्य का पथ-पदर्शन करना है—बस, इसी भावना से प्रेरित होकर हम गत दस वर्षों से युग के अनेक थपेड़ों को सहते हुए भी जीवन सखा प्रकाशित करते आ रहे हैं। हमें अपने उद्देश्य में सफलता भी मिली किन्तु पूर्ण रूप से नहीं। हमारी मनोकामना थी कि जीवन सखा का संदेश देश के लक्ष्मीपतियों के भव्य भवनों से लेकर गरीब भाइयों की अँधेरी झोपड़ियों तक में गूँज उठे, पर हम अपने लक्ष्य से सर्वथा दूर ही रहे—कुछ युग की विकरालतावश; कुछ अपने स्नेहियों के सक्रिय सहयोग के अभाववश। अब देशवासियों के गिरते हुए स्वास्थ्य को देखकर हमारी हार्दिक इच्छा है, बल्कि अनुरोध है, कि समस्त जीवन सखा प्रेमी व्यक्तिगत रूप से हमारी ओर से प्रत्येक स्वास्थ्य प्रेमी स्त्री-पुरुष को जीवन सखा द्वारा प्रचारित प्राकृतिक चिकित्सा प्रणाली के अनुपम रहस्य से परिचित कराने का भरसक प्रयत्न करें उनसे जीवन सखा परिवार में शामिल होने का अनुरोध करें ताकि जीवन सखा का अधिकाधिक प्रचार हो, जीवन सखा का संदेश घर घर में पहुँचे और सर्वसाधारण का स्वास्थ्य सुधरे। इतना होने पर ही हम अपनी मंजिल पर पहुँच सकेंगे, अन्यथा नहीं। आशा है हमारे स्नेही हमारी इस प्रार्थना पर ध्यान देकर अपना सक्रिय सहयोग प्रदान करेंगे।

—व्यवस्थापक

Reg. No. A-172

शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्
NATURE ONLY HEALS

जीवन सखा

सम्पादक
डा० बालेश्वरप्रसाद सिंह

वर्ष ११] सितम्बर-अक्टूबर १९४६ [अङ्क ९-१

स्नान और मर्दन

डा० जे० एच० केलाग, एम० डी०

प्रतिदिन स्नान और त्वचा का मर्दन या मालिश उत्तम स्वास्थ्य बनाए रखने का अमोघ साधन है। सईस प्रतिदिन अपने घोड़े की बदन को रगड़ता या मालिश करता है। जंगली और पालतू जानवर भी, जब कि वह कुछ समय के लिए खुला छोड़ दिया जाता है, मैदान या जंगल में किसी पेड़ के या किसी अन्य वस्तु के सहारे अपने बदन को रगड़कर मर्दन या मालिश करते हैं। शिकारी लोग जंगली जानवरों के इस गुण से अच्छी तरह परिचित होते हैं। सच तो यह है कि उनके शिकार मारने का सबसे बढ़िया अवसर भी वही होता है जबकि वह जानवर किसी पेड़ से अपने बदन को रगड़कर थकावट दूर कर रहा हो! किन्तु मनुष्य, जो अन्य जीवधारियों की भांति एक जीवधारी ही है, बदन को रगड़-रगड़कर मालिश करने की क्रिया की उपेक्षा ही करता है। खास करके यह बात 'सभ्य' पुरुषों के सम्बन्ध में बिलकुल सही है, क्योंकि, जैसा कि सर्व विदित है, अत्यन्त प्राचीन समय से जंगली तथा अर्ध-सभ्य जातियाँ स्वास्थ्य-साधन के तौर पर शरीर की मर्दन-क्रिया का प्रयोग करती रही हैं।

क्या मँहगी में हम भूखों मरें ?

श्री जानकी शरण वर्मा

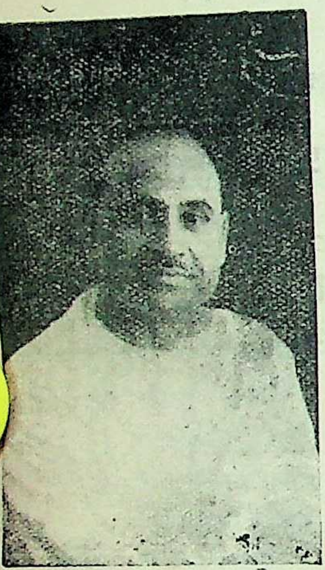

आज देश की भोजन-समस्या गम्भीर रूप धारण कर रही है। अन्न के लिये हाहाकार मच रहा है। अन्नाभाव की इस असाधारण अवस्था में स्वास्थ्य-साधन का प्रश्न बहुत चिन्तनीय है। किन्तु इस प्रश्न का एक आशापूर्ण—उज्ज्वल पहलू भी है, जिसका यदि उचित रीति से लाभ उठाया जाय तो न सिर्फ भोजन की समस्या बहुत कुछ अंशों में हल हो सकती है बल्कि पहले से अधिक उत्तम स्वास्थ्य और आरोग्य प्राप्त किया जा सकता है।

उत्तर भारत के प्रसिद्ध आहार-शास्त्री श्री जानकी शरण वर्मा का नाम ही इस लेख की उपयोगिता का सबूत है। आप इसे पढ़ें और लाभ उठाएं। —सं०

साधारण जनता को इस बात की आशा थी कि लड़ाई के समाप्त हो जाने पर खाने की चीजें कुछ सस्ती होंगी, जिससे जीवन-निर्वाह की कठिनाई में कुछ कमी अवश्य हो जायगी। इस आशा पर पानी फिर गया। अब वह दिन आ रहा है, जब कि गेहूँ के लिए हमें तरसना पड़ेगा। प्रायः सभी खाद्य पदार्थों के दाम बढ़ रहे हैं। साग-भाजी भी हर रोज मंहगी होती जा रही है। जीवन-यापन की समस्या अब अधिक जटिल हो गई है।

कुछ महीने पहले दूरदर्शी गांधी जी ने इस सम्बन्ध में अपने देश-वासियों को, सरकार को भी, कुछ सलाहें दी थीं। उन्होंने हमें यह उपदेश दिया था कि किसी तरह भी अन्न बर्बाद न होने दो; दाने-दाने का सदुपयोग करो; जहाँ थोड़ी सी भी जमीन खाली मिले वहाँ, और गमलों में भी, साग उगाओ और उसे खाओ; गेहूँ की चीजों के बदले आलू, बन्डा, सूरन खाकर रहना सीखो; इत्यादि-इत्यादि। मालूम नहीं कि गांधी जी के इस सुझाव का जनता पर क्या प्रभाव पड़ा, पर देखने में आता है कि आने वाले महीनों में हमें साग-पात कन्द मूल का ही विशेष सहारा लेना पड़ेगा। कभी-कभी हमारे हृदय में यह प्रश्न भी उठता है कि क्या मँहगी में हम भूखों मरेंगे ?

इसमें सन्देह नहीं कि अगर कुछ विशेष प्रबन्ध न हुआ या अगर हमने चतुराई के साथ इस विकट परिस्थिति का सामना न किया, तो बहुत से देश-वासी लाचारी की मौत मरेंगे। किसी विशेष प्रबन्ध की आशा पर निष्क्रिय होकर बैठे रहना मूर्खता होगी। हमें तो बड़ी समझदारी और चतुराई के साथ तब तक काम चलाना होगा जब तक कि खाद्य-पदार्थ सम्बन्धी स्थिति सन्तोषजनक न हो जाय। यह बिलकुल सच है कि गांधी जी के बताये मार्ग का अनुसरण कर हम भूखों मरने से बच सकते हैं—केवल बच ही नहीं सकते, अपने स्वास्थ्य को पहले की अपेक्षा कहीं ज्यादा अच्छा कर सकते हैं। जनता को चाहिए कि वह गांधी जी के परामर्श को समझें और उसके अनुसार कार्य करे।

आवश्यक यह है कि गांधी जी के सिद्धान्तों का आधार समझा जाय और उसके भी पहले यह समझ लिया जाय कि स्वास्थ्य बनाये रख कर जीने के लिए उतना और उतनी बार खाने की आवश्यकता नहीं है, जितना या जितनी बार खाना-पीना हम आवश्यक समझते हैं। हम में से बहुत लोग जरूरत से, शरीर की जरूरत से, कहीं ज्यादा खाते हैं। बहुत से ऐसे भी हैं जिन्हें खाना मिलता ही नहीं। पर इसे भी हम अस्वीकार नहीं कर सकते कि आज का मानव अति भोजन का अपराधी है। यह सही है कि बहुतों को भर-पेट भोजन नहीं मिलता, पर यह तो कुछ और ही समस्या है। यहाँ तो एक दूसरी ही समस्या पर विचार किया जा रहा है। यह अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि हम जरूरत से ज्यादा खाते हैं और ज्यादा खाने के ही कारण हम बार बार और बुरी तरह बीमार होते हैं।

फैशनेबिल रोग

यह मामूली अनुभव की बात है कि शहर वालों की अपेक्षा गाँव-गँवई के लोग, जो मुश्किल से दो बार रूखा-सूखा खाना खाते हैं, बहुत कम बीमार होते हैं। वह मूर्खता के कारण महामारी के शिकार अवश्य होते हैं, पर उन्हें वे "फैशनेबिल" बीमारियाँ नहीं सतातीं, जो इन दिनों सभ्य कहलाने वालों को तबाह किये हुए है। रक्त-चाप का बढ़ना, नाड़ी बल का ह्रास, पक्षाघात, उपांत्रदाह, इत्यादि कई रोग हैं, जिनसे हमारे देहाती भाई अब तक बचे हुए रहे हैं। और भी कई रोग हैं, जो ग्रामीणों को नहीं सताते। पर अब देहातों में भी पाश्चात्य देशीय प्रभाव अस्पताल और डिस्पेनसरी के रूप में अपना रंग जमाये हुए है। इसमें सन्देह नहीं पहले जहाँ 'ज्वरादौलंघनं प्रोक्तम्' के अनुसार बुखार में उपवास कराने की कल्याणकारी पद्धति थी, वहां भी बुखार के शुरू होते ही अब दूध, साबूदाना, बार्ली-दूध इत्यादि खिलाने का रिवाज चल पड़ा है। इसका परिणाम देहातों में भी बुरा होने लगा है—दो-चार दिन टिकने वाला ज्वर हफ्तों चलता है, और टाइफायड के रोबदार नाम से प्रसिद्ध होता है। पहले भी मियादी बुखार होते थे, पर इस तरह नहीं जैसा कि आज। बेचारा वैद्य करे तो क्या ? अगर वह ज्वर के आरम्भ में ही पथ्य न दे तो सिर्फ एक रुपया फीस देकर वैद्य को बुलाने के बदले लोग दो रुपये खर्चे कर डाक्टर को बुलाना पसन्द करेंगे। तथापि देहाती भाई, जिन्हें कम खाना नसीब होता है, कभी भी उस बुरी तरह बीमार नहीं होते जिस तरह कि शहर वाले होते हैं। यह निर्विवाद रूप से सिद्ध करता है कि अति भोजन से तरह-तरह के रोग होते हैं।

बुड्ढा या जवान ?

इसके साथ ही मेरे पास कई उदाहरण हैं, जो सिद्ध करते हैं कि परिमित भोजन से स्वास्थ्य सुरक्षित रहता और उन्नत होता है। उनमें से कुछ मैं पाठकों के सामने रखता हूँ :—

(१) कुछ वर्ष पहले मैंने कानपुर स्टेशन पर एक मुस्लिम महानुभाव को देखा। वह लखनऊ के रहने वाले एक 'पीर' (गुरु) थे, जो अपने चेलों के यहां झांसी जा रहे थे। उनके बाल तो सफेद थे, पर चेहरे पर एक भी झुर्री न थी। अगर सफेद बालों की जगह काले बाल होते तो उनकी उम्र ३० साल से अधिक न समझी जाती। पूछने पर मालूम हुआ कि वह ७८ वर्ष के है। मैंने बड़ी नम्रता से उनसे पूछा—"आप कितनी बार और क्या खाते हैं ?" उन्होने कहा—"सिर्फ दो बार—सबेरे ८ बजे थोड़ा दूध और फिर लगभग ४ बजे शाम को रोटी-दाल और एक या कभी दो तरकारी।" मैं अवाक् रह गया।

(२) एक बार लखनऊ में मैं एक तांगे पर बैठा। तांगे वाला अधेड़ पर हट्टा-कट्टा था। मैंने सोचा कि यह ५५-५६ साल का होगा। पर पूछने पर मालूम हुआ कि वह ८७ साल का है। मैंने कहा—"झूठ बोलते हो।" उसने रास्ते में ही कई आदमियों से गवाही दिलवाई। किसी ने उसकी ठीक उम्र न बताई, पर सबों ने कहा कि बुड्ढा ८० साल से ज्यादा का है। मैंने पूछा—"क्या खाते हो ?" उत्तर मिला—"दिन में रोटी-तरकारी, रात में रोटी-गोश्त।" मैंने फिर पूछा—"कुछ नाश्ता भी करते हो ?" उसने कहा—"कुछ नहीं।" ऐसे बहुत से लोग मुझे मिले हैं। अल्मोड़े के पास मुझे एक साधु मिले जो ५० साल के भी नहीं मालूम होते थे, पर लोग कहते थे कि

यह १०० की लकीर पार कर चुके हैं। वह २४ घन्टे में एक ही बार खाते थे !

माँस मनुष्य के लिए प्राकृतिक और स्वास्थ्यकर खाद्य है या नहीं, यह एक दूसरा प्रश्न है, पर बड़ी बात तो यह है कि दो बार के भोजन को शरीर का पाचन-यन्त्र अच्छी तरह पचा सकता है और अच्छी तरह पचे भोजन का अच्छा खून और अच्छे खून से अच्छा स्वास्थ्य बनता है।

(३) लड़ाई छिड़ने के कुछ ही महीने बाद चीजें मँहगी हो गईं। बहुत परिवारों में दोनों समय की रोटी-चावल दाल-भाजी का खर्च चलाना कठिन हो गया। कुछ लोगों ने मुझसे पूछा कि क्या किया जाय ? मैंने सलाह दी—"दिन में रोटी या चावल और दाल (भाजी नहीं) और रात में रोटी-भाजी (दाल नहीं) खाइए। अगर सम्भव हो तो सबेरे या तीसरे पहर पाव भर दूध लीजिए।" जिन लोगों ने मेरी राय मानी उनके यहाँ का खर्च नहीं बढ़ा, साथ ही उनके परिवार वालों का स्वास्थ्य पहले से कहीं ज्यादा अच्छा हो गया।

(४) रमजान में मुसलमान भाई रोजा रखते हैं। मुहम्मद साहब का अभिप्राय था कि साल में एक महीना दिन भर व्रत रखने के बाद एक ही समय खाने से स्वास्थ्य सुधर जायगा और बहुत सी बीमारियों से लोग बचेंगे। पर उनके चालाक अनुयायी भोजन के मामले में रात को दिन बना देने के कारण रोजे से फायदा नहीं उठाते। मेरे पास जीर्ण रोगों (जैसे गठिया, बढ़ा हुआ रक्त-चाप इत्यादि) की प्राकृतिक चिकित्सा के लिए जो मुस्लिम रोगी आते हैं उनकी चिकित्सा मैं विशेषकर रमजान में ही करता हूँ। दिन भर के उपवास के बाद वे कुछ किशमिश या छुहारे से 'अफ्तार' करते हैं। फिर एनीमा से आँत साफ करने और उसके बाद नहा-धोकर नमाज़ पढ़ने के बाद रोटी-तरकारी खाते हैं। लगभग ४ बजे सबेरे 'सेहरी' में भर-पेट रोटी इत्यादि के बदले वे या तो एक प्याला दूध या दो चम्मच शहद लेते हैं। बताने की आवश्यकता नहीं कि इस तरह के नियमित और मिताहार से बहुतों का स्वास्थ्य एक ही महीने में बहुत अच्छा हो जाता है। इनमें से कुछ ही लोगों को और उपचारों की आवश्यकता होती है।

उपवास और फलाहार

हिन्दुओं के यहाँ भी समय-समय पर उपवास और फलाहार की प्रथा है, पर हम उनसे पूरा लाभ नहीं उठा पाते; क्योंकि हम भी एकादशी या किसी भी व्रत के बाद गरिष्ठ भोजन करते हैं।

ऊपर के उदाहरणों से यह स्पष्ट हो गया होगा कि मिताहार से ही स्वास्थ्य बनता है। जीते रहने और स्वास्थ्य बनाने के लिए बहुत सबेरे चाय, ८ बजे सुबह नाश्ता, १ बजे दिन में भोजन, ५ बजे शाम को फिर चाय और ८-९ बजे रात को पूरा भोजन करने की आवश्यकता नहीं है। इस प्रोग्राम से तो खाने पर ज्यादा पैसे खर्च होते हैं, साथ ही डाक्टरों को फीस देने और दवा खरीदने में भी काफी पैसे लगते हैं। स्वास्थ्य इस पर निर्भर नहीं है कि कितना खाया जाय, बल्कि इस पर निर्भर है कि खाई हुई चीज पूरी पूरी पच जाय और उससे बना रस शरीर में अच्छी तरह घुलमिल जाय।

सच पूछिए तो आमतौर पर लगभग ४० साल की उम्र तक २४ घंटे में तीन बार, ४० साल के बाद ६०-६५ की उम्र तक २ बार और ६०-६५ साल के बाद २४ घंटे में सिर्फ १ बार खाने से ही शरीर नीरोग और बलवान बना रहेगा। फिर यह भी है कि मनुष्य एक बार जितना आम तौर पर खाता है उसमें से अगर उसका एक चौथाई भाग कम कर दिया जाय तो पाचन अच्छा होगा। इस मिताहार की बात को अच्छी तरह समझ लेने से गांधी जी का सत्परामर्श भी अच्छी तरह समझा जा सकता है। गांधी जी प्राकृतिक जीवन और प्राकृतिक चिकित्सा के पक्षपाती हैं। उन्होंने अपने जवीन में प्राकृतिक सिद्धान्तों का पालन किया है। भोजन के सम्बन्ध में उनका दृष्टिकोण वैज्ञानिक है। वह दृष्टिकोण क्या है ? सुनिए—

शरीर के लिये आवश्यक पदार्थ

शरीर को इन पदार्थों की आवश्यकता होती है—(१) श्वेतसार (कर्बोज) इससे शरीर को गर्मी और फुर्ती

मिलती है। इसको लोग गेहूँ, चावल खाकर प्राप्त करते है। पर आलू, शकरकन्द, केला, अमरूद, गाजर, पपीता, आम, किशमिश, मुनक्का, छुहारा इत्यादि से भी श्वेतसार मिलता है। जिस ऋतु या स्थान में इन में से जो आसानी से मिले उसी को दिन में एक बार खाकर शरीर के लिए गर्मी और फुर्ती हासिल की जा सकती है। रोटी न मिले, आलू या अमरूद या गाजर ही खाकर रहेंगे। रोटी और आलू एक साथ खाना सच पूछिए तो, हानिकारक है। क्योंकि इससे शरीर में गर्मी ज्यादा हो जाती है। आलू और लौकी या पालक का साग एक साथ खाना कहीं हितकर है। ऐसा करना चलन के खिलाफ पर स्वास्थ्य के अनुकूल है।

(२) मांसवर्द्धक पदार्थ—दाल, सेम, लोभिया, बाकला, दूध, मांस, मछली, बादाम, मूँगफली, पिश्ता, काजू इत्यादि। अगर दाल नहीं है तो क्या हुआ। सेम या सूखे मेवे से काम निकालेंगे। रोटी, चावल दाल, लोभिया, यह सभी एक ही भोजन में खाना हानिकर है। एक ही तरह के मांसवर्द्धक पदार्थ से अच्छी तरह काम निकल सकता है।

(३) चिकनाई—घी, तेल साथ ही बादाम मूंगफली नारियल की गिरी इत्यादि सूखे मेवे जो मांसवर्द्धक और चिकनाई देने वाले दोनों ही हैं। घी, तेल अब शुद्ध मिलते ही नहीं। इनसे अच्छा तो कभी थोड़ी मूँगफली और कभी थोड़ी नारियल की गिरी खाना।

(४) खाद्योज और खनिज लवण— इन से रक्त शुद्ध होता है और शौच के परिष्कृत होने में सहायता मिलती है। ये ताजे फल और साग-भाजी से मिलते हैं। अंगूर, अनार, सेब बहुत मंहगे जरूर है, पर अपना काम तो अमरूद, खीरा, ककड़ी, गाजर, टमाटर, रसभरी, खरबूजा, तरबूज, नीबू से अच्छी तरह निकल सकता है। फिर पालक, चौलाई, मरसा, लौकी, ननुआ अभी बहुत मंहगे नहीं हुए हैं।

शरीर की आवश्यकता और खाद्य-पदार्थों के उपर्युक्त गुणों को समझ कर नीचे दिये भोजनों से अच्छा काम निकल सकता है :—

सबेरे का नाश्ता—एक तरह का सस्ता ताजा फल और दो-चार बादाम या आठ-दस मूँगफली या थोड़ी सी नारियल की गिरी ; दोपहर—आलू या शकरकन्द और एक तरह का साग; शाम—रोटी या चावल और दाल या एक भाजी या दाल-भाजी। ये क्रम उदाहरण के लिए हैं। इस तरह के मेल-जोल से कई क्रम बनाये जा सकते हैं और जो चीजें आसानी से और सस्ते दामों में मिले उन्हें खाकर शरीर अच्छी हालत में रखा जा सकता है। माना कि पहले कुछ दिनों तक इस तरह के भोजन से तृप्ति न होगी। पेट तो भर जायगा पर जी खुश न होगा। पर यह नौबत तो न आवेगा कि भूखों मरा जाय। माना कि इस तरह का भोजन क्रम 'काम चलाऊ' ही होगा, पर आजकल तो सरकार भी 'काम चलाऊ' बनती है और फिर ईश्वर की कृपा से अच्छे दिन लौटेंगे, अभी हमारा धर्म है कि गांधी जी का आदेश मान कर हम भूखों मरने से बचें।

मनुष्य बिना सोचे-समझे तरह-तरह के सुस्वादु खाद्यों से अपनी रसना को परितृप्त करता—अपनी इस स्वादुप्रियता के कारण बिना जरूरत अतियोजन करता रहता है। किन्तु जल्द या कुछ समय बाद इस अपराध के लिए प्रकृति उसे दण्ड दिए बिना नहीं रहती। और यह दण्ड उसे भोगना पड़ता है अनेक प्रकार की रोग-व्याधियों और अस्वास्थ्य के रूप में।

मधुमेह

डा० बिट्ठलदास मोदी एन० डी०, संचालक; आरोग्य मंदिर, गोरखपुर

मधुमेह आलसी की भांति जीवन बिताने वालों का एक खास रोग है। इस रोग के विशेष कृपापात्र वे होते हैं जिनकी स्वादुप्रियता बेहद बढ़ी हुयी है, जो भोजन के विचार से कम स्वाद के विचार से अधिक खाते हैं।

इसकी दवा डाक्टरों की शीशियों, टिकियों और सूइयों में नहीं, इस स्वादुप्रियता पर नियंत्रण स्थापित करने, अतिभोजन बन्द करने और प्रकृति के बताए उपचार के सही तरीकों में पाई जा सकती है। डा० मोदी ने इस रोग के कारण और निदान का वर्णन करते हुए इस रोग से स्थायी रूप से छुटकारा पाने का जो सही इलाज बताया है वह इस रोग से मुक्ति पाने की इच्छा रखने वाले रोगियों के लिए बहुत लाभदायक होगा। —सं०

हिन्दू विश्व विद्यालय में पढ़ता था। तब की बात है। एक मित्र आयुर्वेद का एक मोटा सा ग्रंथ उसके सस्तेपन की वजह से खरीद लाये। पर पुस्तक काम की निकली। उसमें स्वास्थ्य के नियम और अनेक रोगों की चिकित्सा कहानियों और चुटकुलों द्वारा बड़ी खूबी से समझाई गई थीं। उक्त मित्र इस पुस्तक के कुछ चुटकुले मुझे भी सुनाया करते। उनमें एक मधुमेह संबंधी चुटकुला मुझे आज भी याद है। जिसका सार यह है कि मधुमेह के किसी रोगी को, जो सब प्रकार के चिकित्सा करा के हार चुका था, एक वैद्य ने बताया—"नंगे पांव रहो, कम-से कम कपड़े पहनों, घर से बाहर रहो, भिक्षा मांग कर केवल सूखी रोटी खाओ, और किसी भी गांव में एक रात से ज्यादा मत ठहरो। इस प्रकार छः मास में निश्चय चंगे हो जाओगे।" वैद्य जी के इस नुस्खे से किसी के सोलहो आने सहमत न होने पर भी इतना तो मानना पड़ेगा ही कि इसमें रोग का कारण पूरा पूरा प्रकट हुआ है। मधुमेह उन्हीं को होता है जो हमेशा सिर से पांव तक शरीर को मोटे मोटे कपड़ों से लादे रहते हैं। न धूप लगने देते हैं न हवा। किसी प्रकार का शारीरिक श्रम नहीं करते, गद्दी, तकिये के सहारे लेटे या टेबुल, कुर्सी पर बैठे-बैठे जिन्दगी बिताते हैं और बिना भूख के पेट में गरिष्ठ भोजन, पौष्टिक समझ कर घी, चीनी, मैदा, बेसन, खोये के बने पकवान ठूसते हैं। यही कारण है कि दमा, यक्ष्मा, गठिया, उकवत आदि अमीर, गरीब, देहाती शहराती, सबको समान रूप से होते हैं पर मधुमेह तो प्रायः उन्हीं को होता है जो दर से हिलते नहीं, बिना मांस, मछली, घी, चीनी के निवाला गले के नीचे नहीं उतारते। ऐसा क्यों? अनियमित जीवन के कारण शरीर यंत्र को बेतहाशा और बिना श्रम अर्थात् तेल डाले चलाने के कारण इसके सभी कार्य और साथ-साथ पाचन-क्रिया भी शिथिल पड़ जाती है। प्लीहा और यकृत अपना काम पूरी तरह नहीं कर पाते और पाचक रस पैदा करने वाली ग्रंथियों से अनावश्यक मात्रा में पाचक रस नहीं निकलता। फलतः भोजन बड़ी कठिनाई से पचता है और उसके श्वेतसार भाग के शर्करा में परिणत होने पर जब वह रक्त द्वारा शरीर के उपयोग के लिये प्लीहा में लाया जाता है तब प्लीहा के शिथिलता के कारण रक्त में आवश्यक मात्रा से अधिक शर्करा रह जाती है जिसे यूरिया, नमक तथा अन्य विषों की तरह गुर्दे पेशाब के रास्ते शरीर से बाहर निकालते हैं। मूत्र के साथ इस प्रकार शर्करा का आना ही मधुमेह कहलाता है।

यही नहीं, रक्त में रहने वाली शर्करा का भी आवश्यक उपयोग नहीं हो पाता। शर्करा द्वारा बीज-कोषों को भोजन मिलता है और इस भोजन के उपयोग में कुछ ग्रंथियाँ जिनसे इन्स्युलिन नामक रस निकलता है, सहायता पहुंचायी हैं। मधुमेह के रोगी की ये ग्रंथियाँ अपना

काम पूरा नहीं करती या करीब-करीब बंद कर देती हैं, जिससे रक्त में शर्करा बिना उपयोग पड़ी रहती है जो पेशाब के रास्ते से निकलती है।

मधुमेह की दवा इन्स्युलिन

आज की एलोपैथी प्रणाली की मधुमेह की सारी चिकित्सा का आधार इन्स्युलिन द्रव की जानकारी है। इन्स्युलिन होने से ही रक्त में उपस्थित शर्करा का उपयोग हो सकता है। अतः जब इन्स्युलिन रस नहीं निकलता तो बजाय इसके कि उसके न निकलने के कारण दूर किये जायं बाहर से इन्स्युलिन पहुंचाई जाती है। यह इन्स्युलिन पशुओं की इन्स्युलिन-प्रदायक ग्रंथियों से ली जाती है और टिकिया या इन्जेक्शन के रूप में रोगियों को दी जाती है। इन्स्युलिन लेने पर रोग गया लगता है पर लेना बन्द कर देने पर रोग अपनी पुरानी या उससे भी गिरी हुई हालत पर आ जाता है। जिन्दगी भर रोग चलता है और साथ-साथ दवा भी। समझदार मरीजों को तो डाक्टर कह देते हैं कि मधुमेह का कोई स्थायी इलाज नहीं है, पर साधारण मरीज एक डाक्टर से निराश होकर दूसरे का पल्ला पकड़ते रहते हैं और इन्स्युलिन एक या दूसरे रूप और नाम से लेते और ठगाते रहते हैं। इस ठगी का तो बवंडर चलता है। बड़े बड़े विज्ञापन निकलते हैं—"अद्भुत आविष्कार मधुमेह जड़ से नाश, दवा खाइये और सब कुछ खाइये, किसी परहेज की जरूरत नहीं।" लोग फंसते और जब तक पैसा रहता है दवा मंगाते और खाते रहते हैं। दवा बंद की और रोग आया पहिले से भी भयंकर रूप में।

रोग के लक्षण

मधुमेह का रोग बहुत धीरे-धीरे ही शुरू होता है, पर अक्सर मानसिक आघात लगने पर यकायक जोर की साथ भी शुरू हो जाता है। हर हालत में रोग की चिकित्सा रोग शुरू होते ही कराना अच्छा है, क्योंकि रोग जितना ही पुराना पड़ता जाता है उसका जाना दुष्कर होता जाता है।

इस रोग की कई सीढ़ियाँ हैं। पहले कुछ प्यास बढ़ जाती है, साथ-साथ मूत्र की मात्रा भी और कमजोरी मालूम होने लगती है। फिर भूख बहुत बढ़ जाती है, किसी तरह भोजन की तृप्ति नहीं होती। आंतों में जलन पैदा हो जाती है, आंखों की रोशनी कम हो जाती है, वजन घटने लगता है, त्वचा शुष्क और खुरदरी हो जाती है और खाज आने लगती है। अंत में फोड़े होने लगते हैं और अंगुलियाँ सड़ने लगती हैं, मनुष्य निद्रित अचेतनता की-सी अवस्था में रहता है। पेशाब पीला, मीठी सी गंध लिये, गाढ़ा और भारी होता है और उसमें चीनी एक अंश से लेकर कई प्रतिशत तक रहती है, और कभी-कभी उसमें एसीटोन भी पाया जाता है।

यों आमतौर पर यह रोग तीस से साठ वर्ष की आयु के बीच में होता है, पर इससे कम ज्यादा उम्र में भी हो सकता है—बचपन में भी। जवानी में होने पर यह अपनी पूरी भयंकरता के साथ आता है और तेजी से बढ़ता है।

कइयों का, यह रोग होने पर भी, स्वास्थ्य ठीक दिखाई पड़ता है और कइयों का यह तीस से पचास वर्ष तक चलता रहता है, तथा कई बार दवा करने पर कुछ दिनों के लिये अपने आप जाकर वापस आ जाता है।

भोजन

समझदार डाक्टर इन्स्युलिन के प्रयोग के साथ भोजन-सुधार की भी राय देते हैं। श्वेतसार से शर्करा बनती है और फल और तरकारियों में भी श्वेतसार और शर्करा कुछ न कुछ होती ही है। अतः वे श्वेतसार की जड़ रोटी, चावल आलू के साथ-साथ सभी तरह के फल और अधिक तरह तरकारियां भी बंदकर देते हैं और प्रोटीन प्रधान खाद्य मांस, अंडा, दालें और घी पर रहने की राय देते हैं। फल यह होता है कि पहिले इससे चीनी आने में जरूर कमी प्रतीत होती है पर धीरे-धीरे रक्त की अम्लता बढ़ जाती है जिससे श्लैष्मिक झिल्लियों में जलन मालूम होने लगती है। फलतः जुकाम, ब्रांकाइटिस, पाचन-सम्बन्धी अनेक रोग अथवा एक्जीमा, तथा जलपित्ती सरीखे चर्मरोग इत्यादि होने लगते हैं। यदि अम्लता अधिकतर यूरिक एसिड् के कारण बढ़ी तो बदन में जगह-जगह गठिया की तरह सूजन पैदा

हो जाती है। अम्लता का अर्थ है क्षारों के अभाव में रक्त में अम्लता का अनुपात बढ़ जाना। वे अम्ल कारक लवण फास्फोरस, क्लोरिन और सल्फर के आधिक्य और क्षारकारक लवण सोडियम, पोटेसियम, केल्शियम की कमी से पैदा होते हैं। मांस मनुष्य का हो या पशु का, अम्ल प्रधान, और रक्त क्षार प्रधान होता है। अतः रक्त में क्षार की प्रधानता बनाये रखना स्वास्थ्य बनाये रखने और बिगड़े स्वास्थ्य को सुधारने की कुंजी है। ऐसी दशा में मांस किसी प्रकार भी हितकर भोजन नहीं है। दाल, आटा, चावल, घी, चीनी भी अम्लकारक पदार्थ हैं। क्षारकारक खाद्य हैं केवल फल-तरकारियाँ और दूध-मठा। स्वास्थ्य की दशा में हमारे भोजन में अम्लकारक और क्षारकारक खाद्यों का संतुलन आवश्यक है, पर शरीर के रोगी हो जाने, रक्त में अम्लता के बढ़ जाने पर—जो सभी रोगों की जड़ है—रक्त में अम्लता और क्षारों का संतुलन स्थापित करने के लिये कुछ दिन रोग जाने तक, भोजन में क्षार प्रधान खाद्य की अधिकता रखना आवश्यक है। फल तरकारी छोड़ने और मांस दालों पर रहने की डाक्टरों की राय किसी तरह हितकर नहीं कही जा सकती। घी मधुमेह के रोगी के लिये अन्य दृष्टि से भी हानिकर है। इसकी अधिकता भोजन के पाचन में कठिनाई पैदा करती है और इस कारण मूत्र के साथ एसीटोन भी आने लगता है। अतः मधुमेह के रोगी के भोजन में क्षारकारक खाद्य, तरकारियाँ, फल और दूध होने चाहिये। चिकित्सा के आरम्भ में पालक, बथुआ, चौलाई, कुल्फा, मरसा जैसी सभी पत्तीदार भाजियां और लौकी, नेनुआ, परवल, तरोई, करेले, सरीखा श्वेतसार तरकारियाँ होनी चाहियें। फलों में संतरा, नीबू, चकोतरा, अनन्नास, मकोय, टमाटर जैसे खट्टे फल ठीक हैं। जामुन विशेषतया लाभदायक है। आलू, शलजम, चुकन्दर, अरुई, भिन्डी, कुम्हड़ा आदि तरकारिया जिनमें अधिकतर या थोड़ी मात्रा में श्वेतसार होता है, और सेव, नासपाती, अंगूर, केला, आम, अमरूद आदि जिनमें अधिकतर चीनी होती है, पेशाब में चीनी आना बन्द होने या बहुत कम हो जाने पर ही प्रयोग में लाने चाहियें। शुरू में दूध भी ठीक नहीं है। दूध में भी दुग्ध-शर्करा और मक्खन होता है, अतः दूध के बजाय मठा जिसमें से मक्खन निकाल दिया जाता है और दुग्ध शर्करा एक उपयोगी खटाई में परिणत हो जाती है, लेना श्रेयस्कर है। कोई कह सकता है, यह ठीक कि इस भोजन में रक्त की अम्लता दूर होगी और क्षारत्व बढ़ेगा, संभवतः इस भोजन के शुरू में पेशाब में चीनी आना भी बन्द हो जाता , पर यह भोजन भी किस दवा से कम है, इतने परहेज पर भी संभावना यही बनी रहेगी कि जब परहेज छोड़ा, रोटी, भात, दूध, मीठे फल खाये गये कि चीनी आई। पर इस तरह की शंका निर्मूल है। हम पहले कह आये हैं कि मधुमेह पाचन सम्बन्धी रोग है और जो भोजन बताया गया है वह इतना हल्का है कि पाचन-क्रिया को उससे बहुत आराम मिलेगा, उसकी शक्ति बढ़ेगी और बची शक्ति से वह अपनी गड़बड़ी दूर करने की ओर अग्रसर होगी। शरीर में अपनी सारी खामियों को दूर कर लेने और अपने को रोगों से मुक्त कर लेने की शक्ति है। पर इसके लिये उसे मौका दिया जाना चाहिये। यदि हम मर्ज की हालत में उससे पूरा काम लेते रहेंगे तो वह अपने को दुरुस्त नहीं कर पायेगा। यदि यह क्षार-वर्द्धक एवं हल्का भोजन आरंभ करने के पहले एक छोटा-सा उपवास करके पाचन-क्रिया को पूरा-पूरा आराम दिया जा सके तो विशेष लाभ होगा। रोग जितना पुराना और बाढ़ पर होगा उतनी ही अधिक जरूरत उपवास की होगी।

उपवास वह अस्त्र है जिसका प्रयोग करके मधुमेह के अनेक ऐसे रोगियों नें, जिन्होंने अपने को मौत के मुँह में गया हुआ समझ लिया था, अपने को बचाया है। उपवास से ही पाचन-शक्ति को पूरा आराम और शरीर को अपनी मरम्मत करने का पूरा मौका मिलता है। जब वह अपना सुधार कर लेता है, पाचन-क्रिया ठीक हो जाती है तो शरीर में अपने आप स्वाभाविक रीति से इन्स्युलिन बनने लगता है, भूख-प्यास का स्वाभाविक जोर नहीं रह जाता, धीरे-धीरे सारे रोग के लक्षण चले जाते हैं और स्वास्थ्य लौट आता है। पर उपवास कर और इतना बड़ा उपवास करना कि एक ही उपवास में रोग पूर्णतया जड़ से चला जाय न सब के लिये संभव

है और न कल्याणकर ही। जिन्होंने जितनी अधिक इन्स्युलिन या औषधियाँ खाई हैं, उन्हें उतना ही समझकर उपवास करना चाहिये। उपवास काल में शरीर रोग निकालने के साथ-साथ जब खाई हुई दवाइयाँ—विष भी निकालने लगता है तो अनेकों को उपवास बहुत कष्ट कर हो जाता है। अतः अपने आप घर पर रह कर चिकित्सा करने वालों को शुरू में एक बार में तीन दिन से अधिक का उपवास नहीं करना चाहिये। उपवास काल में सुविधानुसार शंतरे या किसी खट्टे फल का रस पानी में मिला कर या सादा ही पानी पीते रहना चाहिये। पानी दो ढाई सेर अवश्य पिया जाय और रोज एनिमा लेकर पेट भी साफ कर लिया जाय। एनिमा उपवास का बहुत ही आवश्यक अंग है। यही नहीं, पेट की गरमी बनी रहने से उपवास चलना भी कठिन हो जाता है। एनिमा से डरने की जरूरत नहीं। उपवास के उपरान्त भी कब्ज रहने पर बे खटके इसका उपयोग करना चाहिये।

चौथे दिन भी तीन बार पाव-पाव भर की मात्रा में तरकारियों का सूप या किसी खट्टे फल का रस लिया जाय। सूप में नमक न मिला कर स्वाद के लिये केवल नीबू डाल लिया जा सकता है। मधुमेह के रोगी के लिये नमक अच्छी चीज नहीं है। उसे नित्य चार आने भर से अधिक नमक नहीं लेना चाहिये। पाचवें दिन से मठा लिया जाय। मठा दिन में डेढ़-डेढ़ पाव की मात्रा में तीन बार लिया जा सकता है। छठे दिन दोपहर और शाम को मठे के साथ कुछ उबली हुई तरकारियाँ और शाक लिया जा सकता है। मठे की मात्रा भी धीरे-धीरे बढ़ाकर एक बार में आध सेर तक की जा सकती है। भूख अधिक हो तो आहारों के बीच में दो तीन बार और मठा लिया जा सकता है। इस क्रम पर तीन-चार सप्ताह रहने के बाद दोपहर को मठे के बदले चोकरदार आटे की थोड़ी रोटी के साथ तरकारियाँ और तथा शाक लें, प्रातःकाल व सन्ध्या का आहार पूर्ववत् चलना चाहिये। यह क्रम भी दो तीन सप्ताह चलना चाहिये। आशा है छः सात सप्ताह के इस प्रकार के क्रम से अधिकतर रोगियों का रोग चला जायगा। फल-तरकारियाँ चुनने की सुविधा के लिये हम यहाँ उनमें श्वेतसार की मात्रा के अनुसार तालिका दे रहे हैं। ज्यों-ज्यों रोग कम होता जाय त्यों-त्यों अधिक श्वेतसार वाले खाद्य लिये जा सकते हैं।

१ % से ५ % श्वेतसार वाले खाद्य।

हर तरह के साग और पत्तीदार भाजियां, पातगोभी, फूलगोभी, खीरा, ककड़ी, लौकी, करेला, लैट्यूस, मूली, टमाटर, चकोतरा, जामुन, नीबू, सरबती, ऋतु के आरंभ का संतरा या मठा।

५ % से १० % श्वेतसार वाले खाद्य।

चुकन्दर, गाजर, नेनुआ, तरोई, परवल, प्याज, भिंडी, बोड़ा, सन्तरा, नारंगी, शलजम, अनन्नास, रसभरी, खरबुजा, तरबूज और क्रीम।

१० % से १५ % श्वेतसार वाले साग।

अमरूद, सेब, नासपाती, अंगूर; टमाटर, हरा चना।

१५ % से २० % श्वेतसार साग।

केला, चना, आलू, ताजे अंजीर, कुम्हड़ा।

ऊपर बताये उपवास व भोजन के क्रम से पूरा लाभ न होने पर उपवास से आरम्भ करके इस क्रम एक बार फिर इसे दुहराना चाहिये। इस बार तीन के बदले चार या पाँच दिन के उपवास करके फिर मठा, तरकारी और फल पर भी तीन के बदले चार-पाँच सप्ताह रहना चाहिये। पेशाब से चीनी आना तो तीन चार दिन के ही उपवास में बन्द हो जाता है या बहुत कम रह जाता है। पर लाभ स्थायी होने के लिए आगे के क्रम की जरूरत पड़ती है। मठा और तरकारी लेते समय भी प्रति सप्ताह एक दिन का उपवास करते रहना लाभदायक है। इससे विशेष लाभ होगा। बहुत कम रोगी ऐसे मिलेंगे जिन्हें इतने पर भी पूरा लाभ न हो। ऐसे रोगियों को दो तीन सप्ताह के एक उपवास की जरूरत होगी जो किसी उपवास के जानकार की देख-रेख में ही करना चाहिए। उसकी सुविधा न होने पर तीन, चार दिन के उपवास के बाद मठा न शुरू करके फल तरकारियों पर तीन चार सप्ताह रहने से उपवास का लाभ प्राप्त किया जा सकता है। महीने भर के फलाहार से वजन काफी घट जाता है, जो मठे का कल्प करके पुनः प्राप्त किया जा सकता है।

मठे के कल्प की साधारण विधि यह है कि मठा धीरे-

धीरे बढ़ा कर सवेरे सात बजे से शाम के सात बजे तक आध-आध घन्टे पर पाव-पाव भर की मात्रा में चार-पांच सप्ताह तक पीना चाहिये और फिर धीरे-धीरे एक सप्ताह में साधारण भोजन पर आ जाना चाहिये ।

जड़ी-बूटी

आयुर्वेद में जहां अनेक ऐसी जड़ी-बूटियों का वर्णन है जो शरीर का शोधन न कर रोग को केवल दबाती है वहां उन जड़ी-बूटियों की चर्चा भी मिलती है जो पेट भर खाई जाने पर भी कोई नुकसान नहीं पहुँचातीं, जो दवा के साथ-साथ भोजन का भी काम कर सकती हैं । पर उनके वर्णन में ऐसी अतिरंजना की गई है कि रोगी उन गलतियों को सुधारने के बजाय, जिनसे रोग की उत्पत्ति हुई है, जड़ी-बूटियों के गुण पर ही पूर्णतया निर्भर करने लगता है । ऐसी ही एक अतिशयोक्तिपूर्ण कहानी "बर्मा मेडिकल टाइम्स" में छपी थी । कहानी के लेखक डा० लाजपतराय ने लिखा था कि उनकी एक सम्बन्धी स्त्री को चार वर्ष से मधुमेह था जिस पर वे कई नई-पुरानी दवायें करके हार चुके थे । उक्त स्त्री पर उनके एक मित्र ने जामुन की पत्ती आजमाने की राय दी । उन्होंने लिखा है "मैंने रोगिणी को चार पत्ती सुबह और चार पत्ती शाम को खिलाना शुरू किया, तीसरे दिन उसके मूत्र की परीक्षा होने पर यह जान कर आश्चर्य हुआ कि चीनी, जो चार प्रतिशत आया करती थी, बिलकुल न थी ।" मेरे एक वैद्य मित्र ने जिन्होंने मेरे साथ ही यह कहानी पढ़ी थी, अनेक बार मधुमेह में जामुन की पत्ती की आजमाइश की पर उन्हें डाक्टर लाजपतराय का-सा आश्चर्य देखने को न मिला । फिर भी, जामुन की पत्ती अथवा बेल आदि की पत्तियाँ मधुमेह क्या किसी भी जीर्ण रोग में अपने लवणों के कारण उपयोगी हो सकती हैं । मधुमेह के रोगी भी इनमें से किसी एक पत्ती का थोड़ा सा रस एक या दो बार ले सकते हैं । लाभ भी होगा ।

अन्य प्रयोग

भोजन व उपवास के साथ संजीवन-शक्ति को बढ़ाने, शरीर की शोधक शक्ति को सहारा देने के लिये धूप, हवा, पानी आदि अन्य प्राकृतिक साधनों का सहारा भी लेना चाहिये ।

रोगी को दिन रात साफ हवा में रहना चाहिये । यदि दिन में घनी बस्ती में रहना पड़े तो रात को अवश्य ही किसी खुली जगह में सोना चाहिए । यदि कमरे में सोना पड़े तो कमरे की सभी खिड़कियां खोल कर ही सोना चाहिए । शुद्ध वायु में ओषजन की मात्रा अधिक होती है जो रक्त को शुद्ध करती है । दिन में दो तीन बार पांच सात मिनट तक गहरी सांसे भी ली जायं अर्थात् शुद्ध वायु धीरे-धीरे फेफड़ों में भर कर उसे धीरे-धीरे निकालना चाहिये ।

धूप लेना सब के लिये लाभ दायक है, पर मधुमेह के रोगी को इसका उपयोग कम करना चाहिए । तेज धूप में मधुमेह के रोगी को चक्कर सा आने लगता है । अतः धूप का अपने ऊपर प्रभाव समझ कर थोड़े या अधिक समय तक उसे लेना चाहिये । जाड़े में प्रति दिन और गर्मी में भी सप्ताह में दो तीन बार प्रातः कालिक धूप में रहना हर हालत में लाभकर है । यदि प्रातःकालीन धूप में रहने पर भी सुस्ती मालूम हो तो धूप में रहते समय सिर पर ठण्डे पानी में भीगा हुआ तौलिया रखना चाहिये और धूप के बाद सारे शरीर को गीले तौलिया से पोंछ लेना चाहिये या ठण्डे पानी से नहा डालना चाहिए ।

कसरत आवश्यक है । इससे रक्त में स्थित शर्करा तेजी से जलती है । शरीर उसका उपयोग कर सकता है । रक्त की गति बढ़ने से पसीने के द्वारा शरीर की गंदगी निकल जातीहै । टहलना रोगी के लिये सब से अच्छी कसरत है । शक्ति के अनुसार एक से तीन मील तक नित्य सवेरे शाम गहरी सांस लेते हुए टहलना चाहिये । इसके साथ मांसपेशियों को सक्रिय या गतिशील बनाने वाली कुछ ऐसी कसरतें भी करनी चाहिये जिनसे अंग प्रत्यंग की पूरी कसरत हो जाय ।

यद्यपि मधुमेह के रोगी को पेशाब बहुत आता है तथापि उसे पानी पीना कम नहीं करना चाहिए । ज्यादे पानी पीने से चीनी पेशाब में घुलती रहेगी और वह निकलते समय गुर्दों को नुकसान नहीं पहुँचावेगी ।

अशक्त लोग भी जिन्हें सुविधा हो, उपवास काल में, बदन की मालिश कराकर कसरत का लाभ प्राप्त कर सकते

(शेष ३२८ पृष्ठ पर)

शास्त्रीय मालिश

बाबा राघवदास

बाबा राघवदास गोरखपुर के गांधी हैं। बरहज के परमहंस जी को जिले में ऐसा कौन व्यक्ति है जो नहीं जानता, ऐसा कौन है जो उनके सामने आदर और भक्ति से अपना शीश नहीं झुका देता। वह प्रसिद्ध राष्ट्रकर्मी, और किसानों व दीन दुखियों के मुख-वक्ता हैं। उनकी ख्याति तथा प्रसिद्धि स्थानिक नहीं सार्वदेशिक है। महात्मा गांधी के सच्चे अनुयायी, और त्याग मूर्ति तपस्वी बाबा राघवदास गोरखपुर के गौरव हैं।

बाबा जी ने इस लेख में मसाज या मालिश की अद्भुत रोग-निवारक शक्ति का परिचय कराते हुए उसकी शास्त्रीय विधि बताई है, जो स्वास्थ्य-जिज्ञासुओं के बड़े काम की चीज है। —सं०

१९३१ की बात है। बरेली जेल में था। अखबार में पढ़ा। पूज्य बापू जी हरिजनों के प्रश्न को लेकर अनशन कर रहे थे। अनशन की अवस्था में उनका स्वास्थ्य कायम रखने के लिये दिल्ली में श्री शर्मा नामक कोई मसाजिस्ट बुलाये गये हैं। जेल से छूटने के बाद जब १९३४ में वर्धा गया उस समय श्री शर्मा जी के दर्शन हुए। उनसे मैंने मसाज (मालिश) के बारे में कुछ बातचीत की। मैंने कोशिश तो बहुत की कि उस विषय को समझूं पर ठीक-ठीक न समझ सका। इस प्रकार मालिश के बारे में जानने की मेरी उत्कंठा बढ़ती ही गई। १९४३ के शुरू में जब मैं इन्फ्लुएंजा से बीमार पड़कर पूना गया तो मालिश के बारे में मैंने और खोज की। वह इसीलिए कि मैं प्राकृतिक चिकित्सा में विश्वास रखता हूँ। ज्वर के कारण मेरी तिल्ली बढ़ी हुई थी। मुझे नींद बहुत कम आती थी। इसलिए मैं चाहता था कि प्राकृतिक चिकित्सा इस विधि से अमल में लाऊं जिससे मुझे नींद भी आ जाय और तिल्ली से छुटकारा भी पा जाऊं। मैंने मित्रों से सलाह की और पूना के प्रोफेसर अमासे से, जो मालिश के विशेष जानकार हैं, मेरा परिचय हुआ। वह मुझे मसाज (मालिश) करने आने लगे। दो दिन की मालिश के बाद ही मुझे अच्छी नींद आने लगी। १८ दिन की मालिश से मेरी तिल्ली भी चली गयी।

उसी कमजोरी की अवस्था में मैंने अंग्रेजी में मसाज पर पुस्तकें पढ़ीं। उन किताबों में आस्ट्रेलियन व्यायाम-विशारद श्री जोशक फे की पुस्तक 'साइंटिफिक मसाज टू एथेलिट्स' मुझे बहुत काम की जान पड़ी। इस पुस्तक में श्री फे ने शास्त्रीय मालिश की जो व्याख्या की है, उससे दैनिक जीवन में हम अधिक से अधिक लाभ उठा सकते हैं। श्री फे कहते हैं कि मसाज का अर्थ है अशुद्ध रक्त बहाने में नाड़ियों की मदद करना। जब हमारा शरीर थक जाता है चाहे वह किसी कारण से थका हो, हमारे शरीर में जो रक्त-वाहिनी नाड़ियां हैं उनपर उसका भी असर पड़ता है। इसलिये वे अशुद्ध रक्त को शुद्ध करने के लिये हृदय के पास पहुँचाने का जो काम करती हैं वह धीरे-धीरे होने लगता है। स्वाभाविक गति में फर्क पड़ जाता है। हमारा हृदय अशुद्ध रक्त को शुद्ध करने का फिल्टर ही तो ठहरा। जब हृदय में अशुद्ध रक्त थोड़े परिमाण में पहुंचता है तो वह शुद्ध होकर शुद्ध रक्त थोड़ा ही बनता है। इस प्रकार तैयार हुआ शुद्ध रक्त शरीर के लिए आवश्यक शुद्ध रक्त की पूर्ति नहीं कर पाता। इसलिए शुद्ध रक्त के अभाव में शरीर कमजोर हो जाता है। शरीर कमजोर होने से अशुद्ध रक्तवाहिनी नाड़ियों में कमजोरी, जिसके कारण फिल्टर के लिए अशुद्ध रक्त पहुँचाने के काम में मन्दी और फिर शुद्ध

रक्त की कमी, इस प्रकार एक जहरीला वातावरण बन जाता है। इससे यह आवश्यक मालूम पड़ता है कि मालिश से अशुद्ध रक्त वाहिनी नाड़ियों को अगर हम मदद पहुँचा सकें तो हमारे शरीर को स्वस्थ बनाने का काम सरल हो जायगा। श्री फे इसी सहायता के काम को मसाज़ (मालिश) कहते हैं।

इस मसाज में जब यह बात स्थिर हुई कि हमें अशुद्ध रक्तवाहिनी नाड़ी के काम में मदद पहुँचानी है तो जिस प्रकार आज हम मालिश करते हैं उसमें परिवर्तन करना होगा। आज जो मालिश हम करते हैं उसकी नींव तो चमड़ी के रगड़ने में है और वह काम हम हथेली से करते हैं। इसलिए हमारी इस मालिश में चमड़ी गर्म हो जाती है। दूसरे हमारी मौजूदा मालिश में हम हृदय का ख्याल नहीं करते, हम तो शरीर के जिस अंग पर मालिश करते हैं उसके ऊपर से शुरू करके नीचे पहुंचा देते हैं। जैसे हाथ की मालिश करनी है तो कंधे से शुरू करके अंगुली तक पहुँचा देते हैं। शास्त्रीय मालिश में यह बात नहीं है। इसके अनुसार जब हम मालिश करेंगे तो हमारी मालिश का रुख सदा हृदय की ओर होगा। क्योंकि हमें तो इस मालिश से अशुद्ध रक्त को फिल्टर करने के लिए हृदय की ओर ले जाना है इस लिये उसमें सहायक क्रिया हमें करनी होगी और वह तभी हो सकती है जब हमारे मालिश का रुख हृदय की ओर हो। इसके साथ मालिश हम तलहत्थी से नहीं कर सकते, क्योंकि उससे तो चमड़ी में गर्मी आ जाती है अशुद्ध रक्तवाहिनी नाड़ी को मदद नहीं पहुँचती। यही कारण है कि संसार में शास्त्रीय मालिश की जो चार पद्धतियां—जैसे अमेरिकन, स्विस, चीनी तथा भारतीय हैं, उन सबमें अंगूठे को ही प्राधान्य दिया गया है।

जब हम शास्त्रीय मालिश करेंगे तो हम अंगूठा और उंगलियों से काम लेंगे, न कि हथेली से, क्योंकि हमें तो अशुद्ध रक्तवाहिनी नाड़ियों को मदद करनी है, न कि चमड़ी को गर्म करने को। और यह काम अंगूठा और उंगलियां सरलता से कर सकती हैं। इस काम में और भी सहूलियत पैदा करने के लिए जिससे शरीर पर से अंगूठा और उंगलियां फिसलती जायं, मसाज में सारे देश में तेल का उपयोग करते हैं। विदेशों में पाउडर या वेसलीन का प्रयोग करते हैं। तेल वही अच्छा होगा जिसके हम आदी हैं। मद्रास में नारियल का तेल तथा युक्तप्रान्त, बंगाल और आसाम में लोग सरसों के तेल का प्रयोग करते हैं। पर तिल का तेल सभी जगह इस्तेमाल किया जाता है, क्योंकि वह पतला होता है और मातदिल भी। इस तेल के विषय में अपनी आदत का ही विशेष रूप से ध्यान रखा जाय, इसके लिए कोई विशेष नियम नहीं है। उसका केवल इतना ही उपयोग है कि अंगुलियोंके फिसलने में मदद हो। कलेजे की ओर मालिश करने का अर्थ भी हमें जान लेना जरूरी है। अगर हमें पैर का मसाज करना है तो हम उंगलियों से शुरू करके एड़ी तक, एड़ी से घुटने तक और घुटने से जंघा तक करेंगे। इसी प्रकार हाथ का मसाज उंगलियों से गट्टे तक, गट्टे से कुहनी तक और कुहनी से कंधे तक होगा। रीढ़ का मसाज करने के लिए छाती के नीचे तकिया लगाकर लेटाया जाय। रीढ़ का जो नीचे वाला भाग है उसको केन्द्र-विन्दु मान कर दोनों हाथों के अंगूठे से और अंगुलियों से धीरे-धीरे ऊपर की ओर रीढ़ के दूसरे सिरे तक जो गर्दन के पास है पहुँचाया जाय। केहुनी के पास अगर हम अंगूठे से उस हिस्से को फैलाकर मालिश कर सकें सो हमारी कब्जियत दूर हो जायगी। हमारे शरीर में जो रक्त फैलता है वह पीठ की ओर से फैलता है। रीढ़ और पीठ के मसाज से रक्त फैलाने में मदद पहुँचती है जिसके परिणामस्वरूप हमें गाढ़ी नींद आ जाती है। कई बार यह देखा गया है कि रीढ़ और पीठ के समाज से आराम मिलने के कारण बहुतों को जल्दी नींद आ जाती है।

उसी तरह अगर हमें छाती का मसाज करना है तो हमें गले से शुरू करके हृदय की ओर ले जाना पड़ता है। अगर गले का करना है तो ठुड्ढी के नीचे की ओर से ले जायंगे। यही बात सरके मसाज की है। आंखों का मसाज भौहों और आंख के नीचे जो हड्डियाँ हैं उनमें तेल लगाकर अंगूठे से करना चाहिए। यह आवश्यक बातें हैं। मसाज से अच्छा होते हुए जिन रोगों को हमने देखा है वे कई तरह के हैं। जैसे—श्री ऐवलेकर नामक एक छात्र का कान १४ वर्ष से बह रहा था। वह कान और गर्दन के मसाज करने से एक साल में अच्छा हो गया। उसी के बड़े भाई की टानसिल १५ दिन

में अच्छा हुआ। श शमुण्डे नामक एक अंग्रेज का बच्चा ४ घण्टे से अधिक सोता नही था! दिन भर रोकर अपनी मां को परेशान करता था। दो दिन के मसाज में उसकी नींद बढ़ी और ८ घन्टे सोने लगा। १९४४ में चेचक निकलने के बाद मेरी आंखें कमजोर हो गयी थी। मसाज से मेरी आँखें अच्छी हुई। चिमूर के प्रश्न को लेकर प्रोफेसर भंसाली भाई ने ६४ दिन का अनशन किया था। उसकी विशेषता यह थी कि उन्होंने अनशन के प्रथम १५ दिन निर्जल रहकर व्यतीत किये थे। इन्ही १५ दिनों में वह वर्धा से चिमूर दो बार आये गये। अन्दाज से यह पैदल यात्रा १०० मील की थी। निर्जल रहकर १०० मील का पैदल यात्रा करना साधारण काम नहीं है। हमें मालूम भी हुआ है कि शास्त्रीय मालिश ने ही प्रोफेसर साहब को मदद दी।

१९४३ के प्रारम्भ में पूज्य बापू ने जो अनशन किया था उस समय भी इसी शास्त्रीय मालिश ने उनका जीवित रहने में मदद दी है। आज भी सारे राष्ट्र का भार लेकर पूज्य बापू जी न केवल स्वस्थ, अपितु १२५ वर्ष तक जो जीवित रहने का दावा कर रहे हैं उसके मूल में भी इस शास्त्रीय मसाज द्वारा प्राप्त शक्ति है। प्रोफेसर फे के शब्दों में अन्तर्राष्ट्रीय खेल प्रतियोगिता में अमेरिका, स्विटजरलैण्ड, जर्मनी आदि राष्ट्रों के स्त्री-पुरुष जो चैम्पियन होते हैं उसके मूल में भी शास्त्रीय मसाज ही है। अगर शास्त्रीय मसाज किसी को चैम्पियन बना सकता है या बापू जी को १२५ वर्ष जीवित रहने की शक्ति दे सकता है तो वही शास्त्रीय मालिश हमारे ऐसे साधारण आदमियों को प्रतिदिन के जीवन-संघर्ष में धैर्य रखकर मुकाबला करने की शक्ति प्रदान न करेगा? इसीलिए तो आज हमें उसकी आवश्यकता है। आज शास्त्रीय मसाज की हमें इसलिए आवश्यकता है कि भावी राष्ट्र की जिम्मेदारी जिन बच्चों पर हैं उन बच्चों के नन्हें-नन्हें शरीरों के विकास में सहायक मां का दूध और तेल ही होता है। हमारी माताएं उसी तेल का उपयोग शास्त्रीय मालिस के द्वारा कर सकें तो कितना अच्छा हो। पूना मीमांसा महाविद्यालय के प्रोफेसर के महोदय ने मुझसे कहा था कि वेद में कर्म के तीन प्रकार के फल बताये हैं। उन फलों में एक फल यह भी है कि जो कर्म हम करते हैं वह तत्काल फल दिखलाता है। इसका अर्थ यह हुआ कि मालिश से हमको तुरन्त आराम मिल जाता है। पर प्रचलित मालिश से नहीं। मैं स्वयं मालिश कराते-कराते गाड़ी में सो गया हूँ और दूसरे को सुलाया है। पडरौना नागरिक संघ में इस मालिश की व्यवस्था करने का हम प्रबन्ध कर रहे है। आशा है, इस मालिश के प्रचार में इस प्रान्त से हम कुछ कर सकेंगे।

(३२५ पृष्ठ का शेष)

हैं। आसनों में पश्चिमोत्तान आसन मधुमेह के रोगियों के लिये विशेष उपयोगी सिद्ध हुआ है। पश्चिमोत्तान आसन के साथ सर्वांगासन, मत्स्यासन, भुजंगासन और सलभासन किए जा सकते हैं। आसनों को किसी जानकार से सीखा जा सके तो अच्छा है। अन्यथा किसी भी आसन सम्बंधी अच्छी पुस्तक से मदद ली जा सकती है। इन पांचों आसनों में दस पन्द्रह मिनट से अधिक समय नहीं लगाना चाहिये। शुरू में पांच-सात मिनट ही काफी होंगे।

मधुमेह के रोगी को बड़ी शिकायत सुस्ती की रहती है। इसके लिए उन्हें स्नान के लिये गरम ठंडे पानी का प्रयोग करना चाहिये। इसके लिये पहले शरीर ताप से दो तीन डिग्री अधिक गरम पानी से स्नान किया जाय। फिर तुरन्त ठन्डे पानी से मल-मल कर नहाया जाय। यह स्नान नित्य एक या दो बार अवश्य करना चाहिये। जाड़ों में तो यह स्नान बहुत सुखकर प्रतीत होता ही है। गरमी में भी यह कम आराम देह नहीं होता। रात को यदि नींद नहीं आती हो तो सोने जाने के पहले इस रीति से स्नान कर लिया जाय तो अवश्य ही प्रगाढ़ निद्रा आती है।

अन्य साथी रोग

मधुमेह के रोगी को अक्सर 'साइटिका' हो जाता है, और कभी-कभी ऐसे फोड़े फुन्सी हो जाते हैं, जो अच्छे होने का नाम ही नहीं लेते। उनके लिये कोई अन्य उपचार करने कीजरूरत नहीं है। उपरोक्त रीति से मधुमेह का उपचार करने पर इस रोग के साथ साथ ये सभी रोग स्वयं चले जायेंगे।

"मधुमेह को साधारणतया अंग्रेजी में लोग डाइबिटीज कहते हैं, पर इसके दो प्रकार हैं, (१) डाइबिटीज मिलिट्स (मधुमेह) और (२) डाइबिटीज इन्सिपिट्स (बहुमूत्र)। बहुमूत्र रोग में पेशाब साधारण से अधिक और बिलकुल साफ तथा हल्का आता है। यह स्नायु सम्बन्धी रोग है। उसे मधुमेह के अन्तर्गत नहीं समझना चाहिये।

अत्यार्त्तव

डा० इन्दुमती सिनहा, एन० डी० डी० वाई

पिछले अंकों में प्रकाशित इन्दुमती जी के 'एमीनोरिया' और 'कष्टार्त्तव' शीर्षक लेख 'जीवन सखा', के पाठक-पाठिकाओं ने बहुत पसन्द किए हैं। यहां पर मासिक रोग सम्बन्धी आपका तीसरा लेख 'अत्यार्त्तव' हम प्रस्तुत कर रहे हैं। आशा है, इसका भी समुचित स्वागत होगा : —सं०

मासिक धर्म के दिनों में बहुत अधिक ऋतु-स्राव होना अत्यार्त्तव, रजाधिक्य या मेनोरेजिया कहलाता है।

प्रकट रूप से इस रोग के अनेक कारण हो सकते हैं, जिसका उल्लेख आगे चलकर किया जायगा, लेकिन यदि आपने प्राकृतिक चिकित्सा के सिद्धान्त को अच्छी तरह समझ लिया है तो आपको यह स्पष्ट हो जाना चाहिये कि यह रोग भी पहले बताये जा चुके रोगों की ही भांति मूलतः आहार-विहार की गड़बड़ी, अनियमित जीवन-क्रम तथा अन्य शारीरिक और मानसिक विकारों या खराबियों के ही कारण उत्पन्न होता है, देखने में भले ही चाहे इसके जो भी कारण जान पड़ें।

बहुत सम्भव है कि शारीरिक अवस्था, रहन-सहन और खान-पान की भी दृष्टि से एक बहन के लिए जो अत्यार्त्तव समझा जाता हो वह किसी दूसरी बहन के लिए केवल साधारण ऋतु-स्राव ही समझा जाय। दूसरे शब्दों में ऋतु-स्राव का कम या अधिक परिमाण में होना शारीरिक अवस्था पर ही विशेष रूप से निर्भर करता है। फिर भी, मोटे तौर पर यह कहा जा सकता है कि अगर ज्यादा ऋतु-स्राव होने की वजह से किसी को कमजोरी मालूम हो या उसके शरीर की साधारण कार्य-प्रणाली में कोई रुकावट या बाधा जान पड़े तो निस्सन्देह उस ऋतु-स्राव को असाधारण अथवा अत्यार्त्तव ही समझना चाहिए।

इस रोग का इलाज करने में डाक्टर लोग ज्यादातर अटकल से—केवल लक्षणों पर ही ध्यान देते हुए—काम लेते और तरह तरह की दमनकारी दवाओं का प्रयोग करते हैं, जिसका परिणाम आगे चलकर बहुत भयनक और घातक सिद्ध होता है। वे केवल खून के अधिक बहाव को रोक देने की ही कोशिश करते हैं, खून के अधिक बहाव का कारण क्या है, अथवा खून के इस बहाव को दमनकारी दवाओं का प्रयोग करके रोक देने से शरीर में क्या खराबियाँ उत्पन्न हो सकती हैं, इसपर वे तनिक भी ध्यान नहीं देते। यह समझने की बात है कि अपने अन्दर अधिक विकार जमा हो जाने के ही कारण शरीर उसे दूर करने के वास्ते अधिक परिमाण में खून निकालता है। इसलिए इसका सही इलाज खून की मात्रा को कम करने या रोक देने के लिए नहीं बल्कि शरीर को शुद्ध मलरहित और स्वस्थ बनाने के लिए ही होना चाहिये।

ऐसा अक्सर देखा जाता है कि बिगड़ी हुई माहवारी, ऋतु-काल के बिना भी गर्भाशय से रक्त-स्राव, ही आगे चलकर अत्यार्त्तव का रूप धारण कर लेता है। इसलिए इन दोनों अवस्थाओं में क्या अन्तर है, यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिए। इन दोनों में मुख्य अन्तर यह है कि अत्यार्त्तव का कारण शरीर सम्बन्धी या उत्पादक अंग सम्बन्धी कोई विकार होता है और अकाल में ऋतु-दर्शन का कारण ज्यादातर किसी रोग की वजह से शरीर में उत्पन्न हुई खराबी या विकार हुआ करता है। अधिकता के साथ बिगड़े खून का निकलना, अंग टूटना और दर्द होना बिगड़ी हुई या अनियमित माहवारी की पहचान है।

अक्सर ऐसा होता है कि कभी तो महीने भर पर, कभी दो सप्ताह में ही तो कभी दो या ढाई महीने बाद मासिक धर्म होता है। रक्त-स्राव कभी तो अधिक और कभी कम भी होता है।

आमतौर से इस रोग का कारण बहुत अधिक इन्द्रिय पालन, बहुत सन्तानें उत्पन्न करने की प्रवृत्ति, उत्तेजक पदार्थों का बहुत अधिक सेवन, जरायु, डिम्बाशय सम्बन्धी गड़बड़ी आदि होता है।

अत्यार्त्तव और अकाल में ऋतु-दर्शन, जो बिगड़ी हुई माहवारी का लक्षण है, इन दोनों अवस्थाओं के तात्कालिक कारण नीचे दिये गये चार्ट से भली भांति समझ में आ सकते हैं।

आयु	अत्यार्त्तव	अकाल में ऋतु दर्शन
२५ साल की अवस्था के पूर्व होने का कारण	गर्भाशय का शोथ, जो ऋतु काल में शीत लगने से हो सकती है। गर्भाशय का अपने स्थान से हट जाना।	म्यूकस पोलीपस, (मांस की वृद्धि)
२५ से ४० वर्ष की आयु के बीच	गर्भाशय की शोथ, गर्भाशय में खून का जमाव, गर्भाशय का अपनी जगह से हट जाना। गर्भाशय में किसी प्रकार का अर्बुद हो जाना या गांठें पड़ जाना।	म्यूकस पालीपस, गर्भाशय के विकार, अर्बुद आदि
४० साल की आयु के बाद का कारण	किसी प्रकार का अर्बुद, गर्भाशय की शोथ, गर्भाशय में खून का जमाव या गर्भाशय का अपने स्थान से हट जाना।	पूर्वी वर्ती सब कारण

शरीर सम्बन्धी अवस्थाएं—शरीर में खून की अधिकता, यकृत में शोथ, अधिक भोजन या नशीली वस्तुओं का सेवन और गरमी का मौसम, यह सब इस रोग के तात्कालिक कारण हो सकते हैं।

स्थानिक कारण—गर्भाशय में रक्त का जमाव या गर्भाशय का अपने स्थान से हट जाना, गर्भाशय की शोथ, प्रसव के बाद कुछ झिल्लयाँ आदि पदार्थों का अन्दर ही रुक जाना, गर्भाशय में तन्तुओं का बनना, डिम्बप्रणाली की शोथ या अर्बुद (गांठें पड़ जाना) आदि।

अकाल में ऋतु—इसका स्थानिक कारण—प्रसव के समय किसी पदार्थ का अन्दर रुक जाना; गर्भाशय के बाहर रज और शुक्राणु का संयोग (जो प्रायः गर्भावस्था में इन्द्रिय-चालन के फलस्वरूप होता है) सगर्भावस्था से मिला हुआ रक्त-स्राव, गर्भाशय में अर्बुद आदि का हो जाना।

इस सम्बन्ध में यह स्मरण हो कि अकाल में ऋतु का कारण शरीर सम्बन्धी अवस्थाएँ नहीं होती बल्कि उसका मुख्य कारण गर्भाशय सम्बन्धी गड़बड़ी होती है।

सुगमता के लिए इन दोनों लक्षणों को दो भागों में बाँट दिया गया है :—

(१) वह अवस्था जब कि रोगिणी अविवाहित हो।

(२) वह अवस्था जब कि उसका विवाह हो चुका हो।

यदि रोगिणी का विवाह कुछ समय पहले हो चुका है, और उसे अधिक स्राव होने की शिकायत हो और साथ में उसमें सुजाक (गनोरिया) के भी लक्षण मौजूद हों—जैसे बदबूदार स्राव, गंदला पेशाब आदि—तो समझना चाहिए कि वह सम्भवतः गनोरिया से पीड़ित होगी। इसे अत्यार्त्तव नहीं कहा जायगा।

लेकिन जब इस प्रकार के सांसर्गिक रोग (छूत का बीमारी) की शिकायत न हो और अत्यार्त्तव के साथ-साथ कमर में दर्द हो, सफेद रंग का स्राव होता हो, तो उस हालत में समझना चाहिए कि सम्भवतः यह शिकायत गर्भाशय में खून जमा होने के कारण हुई है यदि अकाल में, जब कि रोगिणी में सगर्भा के कोई लक्षण न पाए जायँ, ऋतु स्राव होता हो तो पोलीपस (मांस की वृद्धि) का अनुमान करना चाहिए और यदि अकाल में ऋतु स्राव होने पर दर्द भी हो और फिर कुछ समय के लिए मासिक धर्म बन्द हो जाय और उसके बाद फिर शुरू हो जाय तो समझना चाहिए कि गर्भाशय के बाहर

रज और शुक्राणु का संयोग हो गया है। ३५ साल की अवस्था वाली यदि किसी स्त्री में अत्यार्त्तव के बाद अकाल में ऋतु-स्राव की शिकायत हो जाय तो यह प्राय: गर्भाशय में अर्बुद हो जाने का लक्षण होता है।

यदि रोगिणी ने गर्भधारण कर लिया है तो उस अवस्था में यदि मासिक धर्म बन्द होने के कुछ समय बाद उसे रक्त-स्राव होता है तो वह गर्भपात का सूचक है। यदि अनियमित रक्त स्राव हो, रक्त की मात्रा थोड़ी परन्तु यदि वह काले रंग का हो और कुछ समय के लिए बन्द होकर फिर निकलने लगता हो तो इसे डिम्ब-प्रणाली में गर्भक्षति का लक्षण समझना चाहिए। सगर्भावस्था के छठें या सातवें महीने में यदि रक्त-स्राव हो तो इसका कारण कमल का गर्भाशय के निचले भाग में लगा होना या उसके कुछ भाग का गर्भाशय से पृथक हो जाना है। गर्भाशय ग्रीवा के अर्बुद से भी अकाल में ऋतु-स्राव होने लगता है।

नूतन सगर्भावस्था में अपरिपक्व डिम्ब के टूटने से भी रक्त-स्राव हो सकता है। परन्तु जब यह रक्त-स्राव बन्द न हो और अकाल में भी होता रहे तो इसका कारण कमल का कुछ भाग गर्भाशय में बच रहा समझना चाहिए। यदि रोगिणी की आयु ४० साल से अधिक हो और वह कई बार गर्भधारण कर चुकी हो तो उसे यदि रक्त स्राव होता है तो इसका तात्कालिक कारण गर्भाशय ग्रीवा का कैंसर (क्रूर गांठ) या गर्भाशय को शोथ होता है। वृद्धावस्था में गर्भाशय में शोथ होने के कारण मासिक धर्म बन्द हो जाने पर अकाल में ऋतु-स्राव की शिकायत हो जाती है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि रक्त विकार, (खून में किसी प्रकार की खराबी या गन्दगी पैदा हो जाना) गुर्दे की बीमारी, शरीर में खून की कमी, या गर्भाशय के रोग, जैसे पोलीपस (माँस का बढ़ जाना) ट्यूमर (गाँठ) कैंसर (क्रूर गाँठ) गर्भाशय का टेढ़ा पड़ जाना या अपने स्थान से हट जाना या गर्भाशय और डिम्बकोष (ओवरी) में सूजन या खून का जमाव होना आदि ही इसके मुख्य कारण होते हैं। इसके अलावा कभी कभी बहुत अधिक क्रोध, शोक करने तथा विषय-वासना में बहुत लिप्त रहने से भी यह रोग उत्पन्न हो जाने की सम्भावना रहती है। खाने पीने की गड़बड़ी, अनुचित और उत्तेजक वस्तुओं का सेवन, मानसिक उद्वेग, पेड़ू में चोट लगना, गर्भ निरोधक बहुत तीव्र और जहरीली दवाओं का सेवन आदि से शरीर में विजातीय द्रव्य के बढ़ जाने पर मल-विसर्जन प्रणाली में जो गैस उत्पन्न होती है वही इस रोग का मूल कारण होता है।

लक्षण—इस अवस्था में बुखार या हरारत रहना, आलस्य मालूम होना, कब्जियत की शिकायत, साँस लेने में कष्ट, सिर में भारीपन आदि लक्षण प्रकट होते हैं। इसमें कभी तो खून धारा-प्रवाह और कभी बूंद-बूंद निकलता है। शरीर से बहुत अधिक रक्त निकल जाने के कारण रोगिणी शक्ति हीन होकर बिस्तर पर पड़ी रहती है। करवट बदलने या उठने-बैठने में उसे गश या बेहोशी-सी आ जाती है।

सिर में पीड़ा, कमर, पीठ और पैरों में दर्द, भूख न लगना, अरुचि, जाड़ा मालूम होना, बदन काँपना, पैर का तलवा ठण्डा रहना—ये सभी लक्षण भी समान रूप से प्रकट होते हैं। अगर इस रोग की उचित रीति से रोक-थाम नहीं की जाती तो यह आगे चलकर यह घातक सिद्ध हो सकता है।

उपचार—इस रोग की चिकित्सा बहुत सरल है। इसमें सिर्फ आवश्यकता इस बात की है कि शरीर में जमा हुए जहरीले अथवा विसदृश पदार्थों को बाहर निकाल कर समूची शरीर-प्रणाली को शुद्ध कर लिया जाय। क्योंकि शरीर में विजातीय द्रव्य की अधिकता होने पर ही अत्यार्त्तव होता है, जब कि प्रकृति इस तरह से ज्यादा मात्रा में उस मल को बाहर निकालने की कोशिश करती है।

अतः इसकी चिकित्सा भी इस रूप में होनी चाहिए जो कि प्रकृति को इस मल-विसर्जन कार्य में सहायता पहुंचाने वाली हो। इसमें अन्य बीमारियों के लिए बताये गए उपचार की भांति उपवास, रसाहार, भोजन सुधार और शरीर को ताकत पहुँचाने वाली कसरत के जरिए शरीर के खून को शुद्ध, रोग-रहित तथा स्वस्थ बनाया जा सकता है। इसमें गर्म पानी के प्रयोग के बदले ठण्डे पानी से काम लेना ही ठीक होता है। इस सम्बन्ध में यह याद

(शेष पृष्ठ ३४० पर)

बेल और उसकी उपयोगिता

बेल का वृक्ष हिन्दू धर्म-शास्त्र के अन्दर बहुत पवित्र माना गया है। भारतीय लोग इसके पत्तों अर्थात् विल्वपत्रों को भगवान् शिव के ऊपर चढ़ाते हैं। ऐसा माना जाता है कि भगवान् शिव को यह वृक्ष बहुत प्रिय है। भारतीय धर्म-शास्त्रों की ही तरह भारतीय चिकित्सा-शास्त्र में भी बहुत प्राचीन काल से इस वस्तु का बहुत सम्मान रहा है। यहाँ का चिकित्सा-शास्त्र इस औषधि के प्रत्येक अंग को उपयोग में लेता हुआ दिखलाई देता है।

इसकी जड़ की छाल काढ़े के रूप में पार्यायिक ज्वर, हृदय की धड़कन (pulpitation of the Heart) माली खोलियाँ और पित्तोन्माद में काम में ली जाती है। दशमूल के प्रसिद्ध योग में भी इसकी जड़ डाली जाती है। इसके पत्ते पुलटिस के रूप में व्रण और सूजन पर बाँधे जाते हैं। इसका ताजा रस पानी के साथ मिलाकर जुकाम और हरारत में दिया जाता है। इसके कच्चे और पके फल प्रवाहिका रोग (Diarrhoea) और आंतों की दूसरी बीमारियों में दिये जाते हैं। रक्तातिसार और प्रवाहिका में सूरज की धूप में सुखाये हुए इसके कच्चे फल का चूर्ण दिया जाता है। भारतीय इतिहास में लंबे समय से यहाँ के निवासियों के द्वारा यह बनस्पति बहुत पसन्द की गई है और इसका कारण इस औषध में रहनेवाले चमत्कारिक गुण ही हैं।

- **विल्वपत्र और मधुमेह**—मधुमेह के लिए विल्वपत्र बड़े लाभदायक सिद्ध हुए हैं। प्रतिदिन सबेरे कोमल बिल्व-पत्रों को कूट कर और उनका एक तोला रस निकाल कर कुछ दिनों तक लगातार पीते रहने से पेशाब के साथ जानेवाली शक्कर धीरे- धीरे कम होती हुई बिलकुल बन्द हो जाती है। जिस दिन इस औषधि को शुरू की जाय उस दिन रोगी के पेशाब की स्पेसिफिक ग्रेविटी और उसमें जानेवाली शक्कर की तादाद की जाँच करा लेनी चाहिए और फिर दवा शुरू किये जाने के एक महीने के बाद फिर उसके पेशाब की जाँच करानी चाहिए। जब शक्कर की तादाद बिलकुल कम हो जाय तब रोगी को पथ्य के अन्दर थोड़ी-थोड़ी छूट देना चाहिए और जबतक शक्कर गिरना बिलकुल बन्द न हो जाय तबतक विल्व-पत्र का रस बराबर देना चाहिए।

कविराज शामल दास गौर लिखते हैं कि मधु मेह के एक भयंकर केस में प्रतिदिन सबेरे-शाम दो बार बिल्व-पत्रों का रस देते रहने पर उसका बहुत उत्तम परिणाम दृष्टि-गोचर हुआ।

दूसरे प्रमेह और सुजाक में भी इसके बीजों का तैल बहुत लाभ पहुँचाता है। इसके बीजों का तैल इस प्रकार निकाला जाता है। आधे पके हुए बेल फल को लेकर उसको पानी में डाल कर उबालना चाहिए। जब उसके बीज बिलकुल अलग हो जाँय तब उन बीजों को उसमें से निकाल कर उनका चूर्ण कर लेना चाहिए। इस चूर्ण को त्रिफले की काढ़े की सात भावना देना चाहिए फिर उस चूर्ण को तेली के यहाँ घानी में पिलवा कर उनका तैल निकाल लेना चाहिए।

वमन, विरेचन इत्यादि से शरीर को शुद्ध करके पहले दिन इस तैल को आठ रत्ती की मात्रा में दूध में डाल कर पी लेना चाहिए। फिर प्रतिदिन आठ-आठ रत्ती उस तैल की मात्रा बढ़ाते हुए दसवें दिन दश माशे की मात्रा में उस तैल को दूध में मिलाकर पीना चाहिए। इसके पश्चात् दस-पन्द्रह दिन तक और इस तेल को दस माशे की मात्रा में मिलाकर पीना चाहिए। जब तक यह दवा चालू रहे तब-तक पथ्य में सिर्फ दूध और साँठी चावल के भात का ही प्रयोग करना चाहिए। इस प्रयोग के सेवन से प्रमेह और सुजाक के भयंकर रोग में बहुत लाभ होता है। शरीर में शक्ति और नेत्रों की ज्योति की बढ़ती होती है। कान का बहरापन और दूसरे कितने ही प्रकार के वायु-रोगों में भी इससे लाभ होता है।

बेलफल और अतिसार—कोमान का कथन है कि बेल के फल का द्रव-सत्व रक्तातिसार और अतिसार के अनेक रोगियों पर हमने आजमाया और उसका परिणाम बहुत सन्तोषजनक रहा। इसके फल के गूदे का शरबत

आँतों की सूजन के रोगियों को दिया गया और लम्बे समय तक लगातार लेते रहने के बाद उन रोगियों को उससे लाभ हुआ।

इसके कच्चे फल को काट कर उसे सूरज की धूप में सुखाया जाता है। इन सूखे फल का चूर्ण संकोचक, पाचक और अग्निवर्द्धक होता है। प्रवाहिका और रक्तातिसार के रोगों में जब कि दूसरी सभी दवाएँ असफल हो जाती हैं, यह बहुत कारगर सिद्ध होता है।

कर्नल चोपरा बेलफल के रासायनिक तत्त्वों का विवेचन करते हुए लिखते हैं—

बेल के फल की दो जातियाँ होती हैं। एक छोटी या जंगली जाति और दूसरी बड़ी या लगाई हुई जाति। इसका पूरा बढ़ा हुआ फल जो पकने की सीमा पर पहुँच गया हो मगर पका न हो औषधि उपचार के लिए विशेष उपयोगी माना जाता है।

(१) इसका कच्चा और अर्धपाक फल संकोचक, पाचक, अग्नि-बर्द्धक और प्रवाहिका रोग की चमत्कारिक औषधि माना जाता है। क्योंकि इसका मूल कारण इसमें पाये जाने वाले टेनिन्स (उपक्षार) और लुआबदार पदार्थ हैं। जीर्ण प्रवाहिका रोग में यह विशेष रूप से उपयोगी बताया जाता है। देशी चिकित्सक इसको कभी-कभी अफीम के साथ मिलाकर भी देते हैं। इसके फूल का मुरब्बा भी अतिसार की चिकित्सा में लिया जाता है।

(२) इसका पका हुआ फल मीठा सुगन्धित और शीतल होता है। ताजी हालत में इसमें कुछ मृदु विरेचक तत्त्व रहते हैं। इसके सूखे फल के गूदे का शरबत बनाया जाता है जिसमें कुछ हलके संकोचक तत्व रहते हैं।

रासायनिक विश्लेषण

कर्नल चोपरा लिखते हैं—कुछ वैज्ञानिकों के मतानुसार बेल के फल में टैनिन एसिड, एक उड़नशील तेल, एक कड़वा तत्त्व और एक चिकना तथा लुआबदार पदार्थ पाया जाता है। लेकिन फ्लूकीगर और हॉनबूरी ने इस मत की आलोचना करते हुए बताया है कि इसके सूखे गूदे में प्रधान रूप से एक लुआबदार पदार्थ पाया जाता है। वे इसके अन्दर टैनिन की कोई ऐसी महत्वपूर्ण तादाद प्राप्त नहीं कर सके जो कि इस औषधि के संकोचक तत्वों के साथ अपना सम्बन्ध स्थापित कर सकें।

हेनरी और ब्राउन ने सन् १९१४ में इसके फल का दूसरी अनेक रक्तातिसार नाशक औषधियों के साथ परीक्षण किया। इसके सूखे गूदे को सुरासार (अलकोहल) में औटा कर उसका एक्स्ट्रेक्ट बनाया।

इन सब से नवीन अन्वेषण दत्त और दीक्षित ने सन् १९३० में इस वनस्पति के सम्बन्ध में किया। उन्होंने इसकी जड़, बीज, छाल, पत्ते और फल का, पानी, एलकोहल इत्यादि गलाने वाली चीजों के साथ एक्स्ट्रेक्ट बनाया और उसमें पाये जाने वाले तत्वों का निश्चय किया। इसकी जड़, पत्तों और छाल से उन्होंने पेशाब के साथ जाने वाली शक्कर को कम करने वाले तत्त्व और टैनिन प्रधान रूप से प्राप्त किये। इसके फल के गूदे में उन्होंने "मारमेलोसिन" नामक एक प्राप्त पदार्थ किया। यह पदार्थ इसके अन्दर पाये जानेवाले तत्त्वों में सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। इसके बीज को कुचल कर उनका पैट्रोलियम ईथर में एक्स्ट्रेक्ट बनाया। इस एक्स्ट्रेक्ट में से एक पीले रंग का तैल प्राप्त किया। इस तैल में बहुत ही उत्तम विरेचक तत्त्व रहते हैं। इसको १॥ ग्राम की मात्रा में लेने पर बहुत ही उत्तम विरेचक असर होता है।

यह विश्वास किया जाता है कि बेल प्राचीन प्रवाहिका और रक्तातिसार के हठीले और दुःसाध्य रोगियों को आराम करने के लिए एक अमूल्य औषधि है। ऐसे रोगियों को जिनको बुखार नहीं होता है यह चूर्ण या मुरब्बे के रूप में दिया जाता है। पुराने समय में जबकि यह औषधि ब्रिटिश फर्माकोपिया में सम्मत थी, भारत के पाश्चात्य चिकित्सकों द्वारा भी इसका आमतौर से उपयोग होता था।

लेकिन आज तो मुश्किल से ऐसा कोई साहित्य मिलता है जो एमेबिक डिसेन्ट्री पर बेल के फल की उपयोगिता को साबित कर सके। तीव्र और नवीन रक्तातिसार में जब कि आंतों की मरोड़ और खून तथा पाक का गिरना निश्चित रूप से होता है, उसमें इसका फल बहुत ही थोड़ा या नहीं के बराबर फायदा दिखलाता है। हालांकि इसी प्रकार की परिस्थिति के लिये इसकी प्रधान

रूप से सिफारिश की गई है। बेल के फल का फायदेमन्द और अधिक प्रत्यक्ष असर तो जीर्ण अतिसार पर दिखलाई देता है जब कि इसका रूप अधिक उग्र नहीं होता। ऐसी परिस्थितियों में इसको देने से खून का गिरना धीरे-धीरे बन्द हो जाता है और दस्त अधिक गाढ़े और स्वाभाविक आने लगते हैं। अगर इसका लगातार कुछ दिनों तक उपयोग किया जाय तो दस्त के साथ जानेवाला सफ़ेद और चिकना पदार्थ भी बन्द हो जाता है। प्राचीन रक्तातिसार के ऐसे रोगियों के लिये जिनको कभी दस्त लगने लगते हैं और भयङ्कर कब्जियत हो जाती है, बेल का फल एक बहुत ही उपयोगी वस्तु है।

बेसिलरी डिसेंट्री की चिकित्सा में भी बेल एक उपयोगी सहायक वस्तु सिद्ध हुआ है। एक्टन और नावेल्स के मतानुसार ऐसे बीमारों के लिए खास कठिनाई यह होती है कि अगर उनकी कब्जियत दूर न की जाय तो उनकी आंतों के व्रण भली प्रकार दुरुस्त नहीं हो सकते। बेल का शरबत अगर उनकी खुराक में मिला दिया जाय तो वह तो ऐसी स्थिति में एक शान्तिदायक औषधि का काम करता है।

संग्रहणी के केसों में भी बेल के फल की काफी तारीफ की गई है। कई बीमारों को संग्रहणी रोग होने के पूर्व अथवा संग्रहणी रोग की प्रथमावस्था में बेल फल निस्सन्देह बहुत मददगार होता है। इस कार्य में इसके ताजा फल की शक्कर के साथ अथवा इसके सूखे फल की भी सिफारिश की है।

अन्त में कर्नल चोपरा लिखते हैं कि बेल फल बहुत लम्बे समय से देशी औषधियों के अन्दर प्रवाहिका और रक्तातिसार की चिकित्सा में बहुत प्रसिद्ध है। कुछ समय पहले यह ब्रिटिश फर्माकोपिया में भी सम्मत माना जाता था लेकिन टेनिसा के अतिरिक्त इसमें और कोई ऐसे प्रधान तत्व नहीं पाये गये हैं जिनको इन रोगों की चिकित्सा में विशेष महत्व दिया जा सके। नवीन और तीव्र अतिसारों पर इसका असर बहुत कम होता है। लेकिन प्राचीन अतिसारों में यह उसके लक्षणों को मिटाकर बहुत लाभ पहुँचाता है। जिसका कारण इसके अन्दर बड़ी तादाद में पाया जानेवाला लुआब है। जो शान्तिदायक असर बतलाता है। वह एमेबिक और बेसिलरी डिसेन्ट्री में विशेष लाभ नहीं पहुँचाता।

डाक्टर मुड़ीन शरीफ का कथन है कि इसके कच्चे फल का गूदा धूप में सुखाकर चूर्ण कर लेना चाहिए। यह चूर्ण पौष्टिक, अग्निदीपक और ज्वर नाशक होता है। यद्यपि अतिसार और रक्तातिसार के सभी रूपों में यह उपयोगी नहीं होता फिर भी तीव्र मरोड़ी के दस्तों में इसको देने से लाभ पहुँचता है, इसका पहला असर यह होता है कि वह दस्त के साथ गिरनेवाले खून को बन्द कर देता है और आँव को निकाल देता है तथा दस्त के होने के समय को लम्बा कर देता है। मगर यह दस्त के प्रमाण को कम नहीं कर सकता, दस्त के प्रमाण को कम करने के लिए इसमें थोड़ी सी अफीम मिलाकर देना चाहिए। इसके अतिरिक्त यह चूर्ण टाइफाइड ज्वर, क्षय ज्वर (Hectic fever) अथवा दूसरी किसी भी औषधि से न उतरनेवाले और हमेशा समान रूप से शरीर में बने रहने वाले ज्वरों को उतारने में बहुत उपयोगी होता है। इस प्रकार के ज्वरों में जब गर्मी बहुत बढ़ी हुई रहती है तब इस चूर्ण को देने से वह एकदम कम होती है। ऐसे ज्वरों में इसे ५ से लेकर आठ रत्ती तक की मात्रा में २४ घण्टे में चार या छः बार देना चाहिए। अतिसार के रोगों में इसको दस से लेकर तीस रत्ती तक की मात्रा में चौथाई ग्रेन अफीम के साथ मिलाकर चौबीस घण्टे में चार से छः बार देना चाहिए। —'जीवन विज्ञान'

मानव शरीर को सताने वाले समस्त रोगों की वास्तविक दवा प्रकृति ने बड़ी खूबी के साथ नाना प्रकार के स्वादिष्ट फलों और मेवों में प्रदान की है, जिनका समुचित उपयोग करने पर पूरा-पूरा लाभ उठाया जा सकता है।

बच्चों की शिक्षा

श्री महेन्द्रनाथ पाण्डेय, आयुर्वेद-विशारद

प्रस्तुत लेख पाण्डेय जी की नया पुस्तक, जो छप रही है, का एक अध्याय है। आपकी यह नवीनतय कृति कितनी उपयोगी होगी, उसका परिचय इस लेख से आपको भली भांति मिल जायगा। —सं०

कुम्हार अपने वर्तन में नक्काशी का काम या उस पर चित्र बनाने का कार्य तभी तक कर सकता है जब तक कि वह कुछ गीला है, सूख कर सख्त नहीं हो गया है यदि वर्तन सूख कर सख्त हो गया तो उस पर चित्रकारी करना कठिन हो जाता है उस दशा में उस बर्तन पर मनचाहा चित्र बनाने में कठिनाई होती है और वर्तन आंवें में पका लेने पर तो उस पर कोई संस्कार कर सक्ना असम्भव हो जाता है। यह साधारण नियम है। इसी प्रकार बच्चों में उत्तम शील और पवित्र आचरण का संस्कार उनके कोमल हृदय और मस्तिष्क पर ही पड़ सकता है। अत्यन्त लड़कपन से ही ये गुण बच्चों को सिखाये जा सकते हैं।

भारतीय विचार धारा के अनुसार यदि हम सोंचें और समझें तो हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि बच्चों में अच्छे या बुरे संस्कार के दो हेतु होते हैं; एक तो पूर्व जन्म का संस्कार दूसरा वर्तमान जन्म का अभ्यास। ये ही कारण हैं जो बच्चों में अच्छे या बुरे गुणों का बीज बोते और पुष्ट और विकसित करते हैं।

हमारे जीवन के दो पहलू हैं। एक तो यह कि हम सदैव जन्म लेते हैं, जीते हैं, कुछ काम करते हैं, कुछ सीखते हैं और मर जाते हैं। इस प्रकार जीने मरने का क्रम चलता रहता है और प्रत्येक अगले जन्म में हम पूर्व जन्म का अनुभव जल्द सीख लेते हैं और जो सीख चुके हैं उससे आगे बढ़ते रहते हैं। इस प्रकार हमारा शील सदाचार का ज्ञान और अभ्यास बराबर बढ़ता जाता है।

हमारे जीवन का दूसरे पहलू का आरम्भ जन्म-समय से होता है। उस जन्म की शिक्षा गर्भ काल से ही आरम्भ हो जाती है। सदाचारी और शीलवान माता-पिता के बच्चे गर्भकाल में ही इसके बीज को अपने अन्दर संचित करते हैं। उसी प्रकार दुराचारी, पापी. झूठे, हत्यारे माता-पिता की संतान गर्भकाल में ही इन दुर्गुणों के बीज गर्भकाल में ही संचित करते हैं। इसीलिए यह भारतीय विवाह पद्धति प्राचीन काल से प्रचलित रही है कि स्त्रियों का कुल खानदान देख कर लोग विवाह करते थे। शीलवान और सदाचारी लोग बाजारू स्त्रियों से विवाह सम्बन्ध करना इसीलिए पाप समझते थे कि उनकी सन्तान निकम्मी, कायर, लोलुप और पापी हो जायगी।

आयुर्वेद के मत से चौथे मास में गर्भस्थ बालक में चैतन्य आ जाता है और सातवें मास में वह माता के मानसिक विचारों और अवस्थाओं से प्रभावित होने लगता है और उनके संस्कार बालक के मस्तिष्क और हृदय पर पड़ने लगते हैं। माता-पिता इस अवस्था में जो बातें करते, एक दूसरे से जिस तरह के विचारों का आदान प्रदान करते हैं और उनका जो प्रभाव माता के मस्तिष्क पर पड़ता है गर्भस्थ बच्चा उन सब को उसी समय से ग्रहण करने लगता है जो समय आने पर विकसित होता है और उस बच्चे के जीवन और आचरण तथा संस्कार का एक अंग बन जाता है।

इसी बात को मनोवैज्ञानिक इस प्रकार व्यक्त करते हैं कि बच्चों में वंशानुक्रम का गुण आता है। अपने आस पास के वातावरण का भी प्रभाव बच्चे पर पड़ता है। वातावरण का प्रभाव हमारे जीवन में अमिट होता है।

पशुपक्षी तक अपने वातावरण के अनुसार गुणों को ग्रहण कर लेते हैं इसी को संगति का प्रभाव भी कहते हैं।

तुलसीदास जी ने संगति का प्रभाव बताते हुए लिखा है —

साधु असाधु सदन सुक सारी।
सुमिरहिं राम देहिं गनि गारी॥

वातावरण और संगति का प्रभाव तो मनुष्य के सम्पूर्ण जीवन पर पड़ता रहता है। बालक सब कुछ संगति से ही सीखते हैं। इसीलिए शिक्षित और साधु प्रकृति की माता अपने बच्चे को विद्वान, बहादुर, सदाचारी और कर्तव्य परायण बना लेती हैं और जहाँ ऐसी अनुकूल शिक्षा और संगति नहीं मिलती वहाँ बच्चे इन गुणों से वंचित रह जाते हैं।

शिवाजी को शिवाजी उनकी माता जीजाबाई ने ही बनाया यह इतिहास प्रसिद्ध बात है। और जो कमी रह गयी थी उसे समर्थ गुरु रामदास ने अपनी संगति से उनमें पूर्ण किया।

कुछ अनुभवी शिक्षकों और उच्चकोटि के मनोवैज्ञानिकों का विचार है कि प्रत्येक बालक में सद्गुण हैं परन्तु उपयुक्त शिक्षा न मिलने के कारण वह अपने गुणों को प्रकट नहीं कर पाता। योग्य शिक्षा पाकर सभी बालक योग्य बन सकते हैं और उन गुणों को भी प्रकट कर सकते हैं जिनका माता-पिता में अभाव था।

बहुत से मनोवैज्ञानिकों का यह दृढ़ विश्वास है कि बच्चों के विकास पर माता पिता का बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है।

सदाचारी और बुद्धिमान माता पिता के बालक भी अक्सर सदाचारी और बुद्धिमान होते हैं। जिस प्रकार माता पिता से ही बालक अपना शरीर पाता है उसी प्रकार बच्चे चरित्र भी माता पिता के द्वारा ही पाते हैं। बच्चों की रुचि, चरित्र, आदतें और बुद्धि बहुत कुछ वंश परम्परा के अनुसार ही होती है।

जिस वातावरण में बच्चे पलते हैं उसका भी प्रभाव बच्चों के विकास पर पड़ता है। यह प्रत्यक्ष देखा गया है घर अच्छे और भले घर के बालक विपरीत वातावरण में पड़ने के कारण अपनी प्रतिभा खो बैठते हैं उनकी प्रतिभा का यथोचित विकास नहीं हो पाता। साथ ही योग्य शिक्षक के मिल जाने पर कितने ही दुर्बुद्धि और मूर्ख समझे जाने वाले बालक अत्यन्त बुद्धिमान और प्रतिभाशाली हो गये हैं।

जो लोग योग्य संतान पैदा करना चाहें उन्हें उसी योग्य पहले अपने को बनाना चाहिए। और उसी के अनुकूल स्त्री से विवाह करना चाहिए। शिकारी और क्रूर कर्म करने वाले तथा पतित आचरण के माता पिता से योग्य संतान की आशा नहीं की जा सकती। अमेरिका के एक ऐसे परिवार का अध्ययन एक मनोविज्ञान शास्त्री ने किया और उसे १००० वंशज़ों में केवल २० व्यक्ति ऐसे मिले जो रोजगार सीख कर अपना जीवन व्यतीत करते थे और शेष सब रोगी, अपराधी आदि हुए। इसी प्रकार एक दूसरे परिवार का अध्ययन एक दूसरे शास्त्री ने किया। उनमें अच्छी भली सदाचारिणी माता से उत्पन्न सन्तान सदाचारी, बुद्धिमान और प्रतिष्ठित कार्य करने वाली हुई और मन्द बुद्धि, दुराचारी स्त्री से उसी मनुष्य की सन्तान मूर्ख और दुराचारी हुई।

जन्म के समय सभ्य और असभ्य दोनों समाज के बालक एक से ही होते हैं। इनका झुकाव बर्बरता की ही ओर रहता है। इन्हें योग्य शिक्षा द्वारा ही सुधारा जा सकता है।

बालक के माता पिता जिन गुणों को अपने पूर्वजों से पाते हैं उनको तो बालक बपौती के रूप में अपने माता पिता से ग्रहण कर लेता है परन्तु जिन गुणों को माता पिता अभ्यास और परिश्रम द्वारा अर्जन करते हैं उन गुणों को बालक बिना अभ्यास कराये नहीं पा सकता।

माता पिता के अनुभव को भी उसकी संतान ले लेती है किन्तु यह बात एक ही पीढ़ी से नही होती कई पीढ़ियों के बाद ऐसा होना सम्भव है। इसी को हम लोग पूर्व संस्कार के नाम से पुकारते हैं।

शिक्षक बालक में प्रतिभा नहीं उत्पन्न कर सकता। बालक प्रतिभा अपने जन्म के साथ लेकर आता है। कुछ बालक प्रतिभाशाली होते हैं कुछ साधारण बुद्धि के होते हैं। हम शिक्षा द्वारा बालक में प्रतिभा के सदुपयोग की योग्यता ला सकते हैं।

सीखना

सीखने में अभ्यास का भारी महत्त्व है। किसी भी बात का बार बार अभ्यास करने से वह कार्य आसान हो जाता है और उसकी आदत भी पड़ जाती है। एक बार अर्जुन भोजन कर रहे थे। संयोग से हवा के झोंके से दीपक बुझ गया और अन्धेरा हो गया। जो कौर उन्होंने उठाया वह सीधे मुंह में गया। उन्होंने सोचा अँधेरे में कौर मुंह में ही गया आँख या नाक में न लगा। कौर के सीधे मुँह में जाने का कारण अभ्यास है फिर उन्होंने बायें हाथ से तीर चलाने का अभ्यास किया और उससे भी उतनी ही निपुणता के साथ वह तीर चलाते थे जितना कि दाहिने से। यह अभ्यास का ही फल था। जिन बातों की आदत आप बच्चों में डालना चाहें उनके बारे में रोज रोज बार बार अभ्यास कराइए।

हम या हमारे बच्चे उन्हीं कामों को करना चाहते हैं जिससे उन्हें सुख या सन्तोष हो। जिससे सन्तोष न हो उसे वे करना नहीं चाहते। इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रयत्न, सन्तोष और अभ्यास यही मूल बातें हैं जिनसे बच्चे सीख सकते हैं। बच्चे सीखने में भूलें बहुत करते हैं। उनकी भूलों पर मत हँसिए बल्कि उनके साथ सहानुभूति दिखाइए और उनका उत्साह सदैव बढ़ाते रहिए। आप बच्चों को केवल इतना ही बताइए कि किसी काम से सुख है, किससे दुख होता है। छोटे बच्चे अपने चारों ओर की चीजों का प्रत्यक्ष ज्ञान करना चाहते हैं। ऐसी प्रेरणा उनके अन्तःकरण से ही होती है। इसीलिए जिस चीज को नादान बच्चा देखता है सब को पकड़ना चाहता, उसे उलट पलट कर उसके बारे में जानना चाहता है। इसलिए बच्चा यदि कोई ऐसा काम करना चाहता है जिसे आप उसके लिए कष्टदायक समझते हैं तो उस काम के करने से उसे मत रोकिये। उसे करने दीजिए ध्यान इस बात का रखिए कि उसे चोट न लगने पाये और उसको अनुभव भी हो जाय। जैसे बालक दीपक को देख कर उसे पकड़ना चाहेगा। आप उसे ऐसा करने से यदि रोकेंगे तो उसकी इच्छा और बढ़ेगी और वह उसे कभी न कभी अवश्य पकड़ेगा। आप बच्चे का हाथ लौ के पास जाने दीजिए उस दूर से ही चिराग की गरमी लगने से बच्चा यह समझ जायगा कि यह पकड़ने की चीज नहीं है और वह उसे कभी भी नहीं पकड़ेगा।

इसी तरह बच्चे जीवन में अनेक गलतियाँ करते हैं उनको प्रोत्साहन दीजिए उन गलतियों की बुराइयों को बता दीजिए एक बार या दो बार गलती करने, चोट खाने के बाद बच्चा स्वयं उस ओर से ध्यान हटा देगा और उसे स्वयं कभी नहीं करना चाहेगा। बच्चों के सिखाने का सरल और सही तरीका यही है। शिक्षक को इन बातों की ओर ध्यान देना चाहिए साथ ही माता-पिता को भी इस नियम को जानना चाहिए।

बालकों में विचार शक्ति होती है अतः वह दूसरों को जो काम करते देखता है उसे सीख लेता है। परन्तु सूझ से भी वह बहुत से काम किया करता है। जिन बच्चों की सूझ जागृत हो जाती है वे सफलतापूर्वक उन कामों को भी कर लेते हैं जिनको न तो उसने किसी को करते देखा है और न स्वयं पहले किया है। विशेष परिस्थितियों में सूझ शक्ति की वृद्धि होती है बच्चों में यह शक्ति विकसित होने देनी चाहिए।

एक ही काम बार-बार करने से उस काम से अरुचि हो जाती है। बालक एक ही काम बारबार नहीं करना चाहता। अतः अभ्यास करने में वह उन्नति नहीं करता। ऐसी अवस्था में उस काम में रुचि उत्पन्न करना आवश्यक है इसके लिए शिक्षक या माता-पिता को चाहिए कि रोज-रोज उस काम में कुछ नवीनता रखें उसे इस ढंग से बच्चे से करावें कि वह नया काम समझ कर उसे दिलचस्पी से करे।

बच्चों के पढ़ने और खेलने का समय निश्चित रहना चाहिए। उनको नियमों की पावन्दी की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए। पहिले बालक नियमों की पावन्दी नहीं करना चाहते परन्तु कुछ ही दिनों के अभ्यास से वे उसके महत्त्व को समझ जाते हैं और आगे उन्नति करते जाते हैं। यदि बच्चा पढ़ते-पढ़ते थक जाये तो उसका पढ़ना बन्द करा देना चाहिए। पढ़ने, सीखने और खेलने सब में बच्चे की रुचि

एक सी होनी चाहिए जिन बच्चों को उचित ढंग से खेलने नहीं दिया जाता उनका उत्साह मर जाता है ।

आदत

बहुत से मानस शास्त्रियों का विचार है कि बचों में कोई आदत न डाली जाय । यदि कोई आदत डाली जाय तो यह कि किसी आदत का न पड़ना । परन्तु असली बात यह है कि बचा हर बातों की आदत डालता है । बिना आदत के कोई काम उसका चल ही नहीं सकता । वस्तुतः आदत और स्वभाव में बहुत अन्तर है । स्वभाव हमें प्रकृति द्वारा मिलता है । आदत हम अपने आप डालते हैं । आदत का हमारे जीवन पर बड़ा असर पड़ता है । परन्तु आदत को हम छोड़ सकते हैं स्वभाव को हम बदल नहीं सकते । आदतें वही डालनी चाहिए जो जीवन के लिए उपयोगी हों । ऐसी आदतें नहीं डालनी चाहिए जो जीवन में बेड़ी का काम दें ।

बचों को बहुत ज्यादा उपदेश मत दीजिए । जो उपदेश आप दें उसकी आदत डालिए जैसे दाँत साफ करने का उपदेश मात्र देने से कोई लाभ न होगा । उसे दाँत साफ करने के लाभ बताइए फिर रोज उससे दाँत साफ करने को कहिए । पहले आदत न होने के कारण बच्चा दांत साफ करना पसन्द न करेगा पर धीरे-धीरे उसे आदत पड़ जायगी और उसका लाभ भी उसे मिलने लगेगा और वह बिना आपके कहे दांत साफ करने लगेगा । सभी तरह के सद्गुणों को सीखने के लिए आदत डालने की जरूरत पड़ती है ।

बच्चे दुर्गुण भी तो आदत से ही सीखते हैं पर आदत वातावरण और परिस्थितियों के अनुसार पड़ती है । आदत का छोड़ना बड़ा मुश्किल काम है । कोई आदत छुड़ाने के लिए बच्चे को इतनी सजा न देनी चाहिए कि वह ऊपर से उस काम को छोड़ दे परन्तु छिपाकर करता रहे । किसी दुर्गुण की बुराइयों को बताकर उसे छुड़ाने का प्रयत्न करना चाहिए ।

खेल

खेल से हाथ-पाँव तो मजबूत होते ही हैं । भावी जीवन की नींव भी खेल से ही पड़ती है । खेल कई तरह के होते हैं । उनमें अनुकरण संबन्धी खेल बालक वही खेलता है जो अपने चारों ओरदेखता है । खेल से सहन शक्ति, नियम की पाबन्दी खेल जीतने के बहाने मन में उच्चाकांक्षा का बीज खेल से ही मन में अंकुरित होता है । उत्साह की वृद्धि होती है । जो लोग बच्चों को खेलने से रोकते वे बच्चों के भावी जीवन को नीरस बनाते हैं उनको दब्बू और बुजदिल बनाते हैं । खेल से बच्चों में हिम्मत बढ़ती है ।

बच्चों को सदैव नये-नये खिलौने मिलने चाहिए । किंडरगार्टन बक्स की तरह के खिलौने ही जो कुछ शिक्षा देने में भी उपयोगी हो सकें अच्छे होते हैं । देश के बहादुर, चरित्रवान, विद्वान और मुल्क की सेवा के लिए जो लोग प्रसिद्ध हों उनकी मूर्तियां बच्चों को दिखानी चाहिए, उनके गुणों से परिचिता कराना चाहिए ।

चरित्र निर्माण

जीवन का प्रधान लक्ष्य चरित्र-गठन है । यदि चरित्र उत्तम न बना तो शिक्षा का कोई महत्त्व नहीं रह जाता । चरित्रवान व्यक्ति ही संसार में सुखी रहता है चाहे उसके पास धन हो या न हो । चरित्र- बल वह धन है जिसकी तुलना संसार का कोई पदार्थ नहीं कर सकता। चरित्र मानसिक दृढ़ता को कहते हैं । चरित्र बल के जोर से ही आदमी सांसारिक कठिनाइयों को हँसते हँसते झेल जाता है और अपने निश्चित किये हुए मार्ग से विचलित नहीं होता चाहे कितनी बाधाएँ उसके मार्ग में क्यों न आवें । किसी राष्ट्र के उत्थान या पतन का कारण वहाँ के निवासियों का चरित्र होता है । जो लोग अपने निश्चय से एक इंच भी विचलित नहीं होते वे ही किसी राष्ट्र का निर्माण कर सकते हैं, वे ही किसी मुर्दा जाति में जीवन फूँक सकते हैं । चरित्र बल से ही मानसिक बल बढ़ता है । जिसमें मानसिक बल जितना ही अधिक होता है वह उतना ही चरित्र-बलवाला होता है ।

बच्चों का चरित्र-बल बढ़ाने की शिक्षा बचपन से ही दी जानी चाहिए। चरित्र गठन के लिए बहुत अधिक समय लगता है। किन्तु उसके परिपक्व होने के लिए सामग्री बचपन से ही इकट्ठी होने लगती है। ज्ञान और अभ्यास के द्वारा चरित्र निर्माण हुआ करता है। ऊँचे चरित्र वाले व्यक्तियों के जीवनचरित्र सुनाने से बच्चों के जीवन की प्रगति एक विशेष प्रकार की हो जाती है। महाराणा प्रताप, शिवाजी, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी दयानन्द सरस्वती, महात्मा गांधी, पं० जवाहरलाल नेहरू, सुभाष बोस आदि की जीवनियां सुनाकर और पढ़ा कर बचों का जीवन सुधारा जा सकता है, उनके जीवन में नई लहर पैदा की जा सकती है, जीवन का नया निर्माण किया जा सकता है। महाभारत और रामायण चरित्र-निर्माण के लिए अमूल्य ग्रन्थ हैं।

बचों को वीरों की कथाएं सुनाकर उन्हें वीर, देश सेवी, समाज सेवी और कर्तव्य परायण बनाया जा सकता है। इसी प्रकार इतिहास और वीरों की पूजा से भी चरित्र निर्माण में सहायता मिलती है। राम नवमी और कृष्ण जन्माष्टमी का महत्त्व इसीलिए है। उस दिन हम भगवान राम और कृष्ण के चरित्र पर विचार करते हैं उनके गुणों का गान करते हैं।

चरित्र निर्माण के लिए आत्म निरीक्षण भी अत्यन्त आवश्यक है। बचों को यह भी सिखलाना चाहिए कि वे अपने प्रतिदिन के कर्तव्य को देखें और विचारें कि उनमें क्या कमी है और उस कमी को पूरी करें। इस प्रकार चरित्र-निर्माण की आदत बचों में पड़ेगी।

चरित्र-निर्माण के अन्दर ही शील और सदाचार भी आते हैं। आज कल बचों को स्कूलों में शील और सदाचार की शिक्षा नहीं दी जाती। माता-पिता को यह कार्य स्वयं करना चाहिए और इसका विकास धीरे धीरे बच्चों में करना चाहिए। जिन बच्चों को शील और सदाचार की शिक्षा नहीं मिलती वे जीवन में कुछ कर ही नहीं सकते; न वे अपना कल्याण कर सकते हैं और न समाज का।

जो लोग बचों को स्कूल भेज कर यह समझ लेते हैं कि उन्होंने अपना कर्तव्य पूरा कर लिया वे गलती करते हैं। माता पिता को स्वयं बच्चों पर निगाह रखनी चाहिए और अपने उत्तम चरित्र द्वारा बचों का चरित्र-निर्माण करना चाहिए।

यदि किसी घर में एक से अधिक बचे हों तो सभी के साथ समानता का बर्ताव करना चाहिए। ऐसा न हो कि एक को अधिक प्यार किया जाय और दूसरे को कम। इस व्यवहार का असर उनके भावी जीवन पर बहुत खराब पड़ता है। उनमें आपस में ईर्षा होने लगती है और आपस का स्नेह कम हो जाता है।

बच्चों की ताड़ना

बचों के ताड़न के सम्बन्ध में अनेक मत हैं। जहाँ तक बच्चों से अभ्यास कराने का सम्बन्ध है वहां तक कड़ाई करना आवश्यक है क्योंकि बिना कुछ कड़ाई के काम उतना अच्छा नहीं होता। परन्तु जहाँ तक सम्भव हो शारीरिक दण्ड न दिया जाय। घोड़े पालने वाले जानते हैं कि अच्छे घोड़े मारने से खराब हो जाते हैं। बचे तो मार से और भी खराब हो जाते हैं। बचों पर कड़ी निगाह रखना और बात है और मारना और बात। जो बच्चे बिना मारे पीटे सिखाये जाते हैं वे मार पीट कर सिखाये जाने वाले बचों से कहीं ज्यादा अच्छे होते हैं। यदि बचे को सजा देने की आवश्यकता आ पड़े तो भी भर सक बचा जाइए। उससे दो घंटे मत बोलिए अपनी नाराजगी उसे समझा दीजिए साथ ही नाराज होने का कारण भी बता दीजिए। अक्सर इतने ही से काम चल जाता है। परन्तु कभी कभी ऐसा समय आ जाता है कि कुछ शारीरिक दण्ड देने की आवश्यकता पड़ जाती है। ऐसा समय आ जाने पर भी गुस्सा उतारने के लिए बचे को मत मारिए बल्कि उसकी आदत सुधारने का ही ध्यान रखना चाहिए। बचे को रोज रोज पीटने से वह मार से नहीं डरता इस बात को न भूलना चाहिए। इसलिए ऐसा अवसर बहुत कम आने देना चाहिए जब बचे को मारना पड़े। यदि मारने की जरूरत पड़ ही जाय और किसी प्रकार टाली न जा सके तो सजा किंचित कड़ी देनी चाहिए और बाद में बच्चे को अच्छी तरह समझा देना चाहिए कि क्यों उस पर मार पड़ी है। तभी वह सुधर सकेगा।

बच्चों से झूठा वादा कभी न करें। जो कुछ उससे कहें उसे अवश्य पूरा करें। जब माता पिता बच्चों से झूठा वादा करते हैं तभी बच्चों में झूठ बोलने का बीज पैदा होता है। हर बात में बच्चों को मना मत कीजिए उन्हें स्वतंत्रता पूर्वक अपने खेल का आरम्भ करने दीजिए। यदि बच्चा कोई काम आप से करने को कहे तो उसे भी पूरा कीजिए वरना बच्चा भी आपका कहना न मानना सीख जायगा। बच्चे के प्रश्नोंका उत्तर उनको अवश्य दीजिए इससे बच्चे की समझ बढ़ेगी।

जीवन का आरम्भ ९० वर्ष से

२६ जुलाई को जार्ज बर्नाड शा को पूरे ९० वर्ष हो गए। उनका मत है कि अब वह उस अवस्था तक पहुँच गये हैं जब वह कुछ-कुछ राजनीति समझ सकते हैं, सरकारी नीति पर मत देने के योग्य हो गए हैं और बैठकर जीवन का अनन्द ले सकते हैं।

उनका कहना है कि जीवन ९० वर्ष से ही आरम्भ होता है। इसके प्रमाण-स्वरूप आपने कुछ महीने पूर्व एक बीमा पालिसी ली है जिसके द्वारा ९९ वर्ष की आयु पर आपको बहुत-सा धन मिलेगा।

इस बात पर कि अमेरिका में पेनिसिलीन का प्रयोग करके जीवन की अवधि बढ़ाने की की परीक्षायें हो रही हैं, बर्नार्ड शा का कहना है—"पेनिसिलीन की भी वही दशा होगा जो मेरे देखते-देखते अन्य औषधियों की हुई है, जिनमें पारा, पोटाश आयोडाइड, संखिया, कुनैन आदि सभी शामिल हैं।"

(३३१ पेज का शेष)

रखना चाहिए कि गर्म पानी फैलाव उत्पन्न करता है, सख्ती या कड़ापन दूर करता है, जब कि ठण्डा पानी संकोचन उत्पन्न करता (सिकोड़ता) है, पहले शरीर में ठण्डक पैदा कर फिर गर्मी लाता है। इसलिये जब खून के बन्द होने, रुकने या कम होने की अवस्था हो तो गर्म पानी का प्रयोग करना चाहिए। गर्म पानी दर्द को भी दूर करता है। लेकिन गर्म जल के प्रयोग के बाद ठण्डे पानी का प्रयोग भी आवश्यक है। क्योंकि लगातार गर्म पानी के प्रयोग से कमजोरी बढ़ती है। इन बातों को ध्यान में रखते हुए मेहन स्नान या ठण्डे पानी में बैठने के स्नान से काम लेना चाहिए।

यदि खून बहुत अधिक आता हो तो उस हालत में स्थानिक उपचार के लिए अच्छा होगा कि एक कपड़े की थैली में बर्फ भर कर पेड़ू पर रक्खा जाय। यदि बर्फ न मिले तो खूब ठन्डे पानी में कपड़े की गद्दी तर करके रक्खें। योनि मार्ग में भी कुछ बरफ के टुकड़े रक्खे जा सकते हैं। ठण्डे पानी का डूश या तरारा देने से भी यही लाभ हो सकता है। पेड़ू पर बिजली का प्रयोग लाभदायक होगा। ठण्डे जल में थोड़ी फिटकिरी मिला कर डूश भी दे सकते हैं।

भोजन सुधार, व्यायाम आदि का क्रम किसी अनुभवी चिकित्सक से राय लेकर निश्चित किया जा सकता है। लेकिन सच तो यह है कि प्राकृतिक चिकित्सा का प्रयोग कुछ समय तक नियमित रूप से और लगन के साथ जारी रख कर ही लाभ उठाया जा सकता है। ऊपर बताई गई हिदायतों का कड़ाई के साथ पालन करते हुए धैर्य के साथ कुछ समय तक अगर इस क्रम को जारी रक्खा जाय तो कोई कारण नहीं कि इस रोग से हमेशा के लिये छुटकारा न मिल जाय।

रोग कैसे होता है ?

(त्रिदोषों की आलोचना)

डॉ० पुच्चा वेंकटरामय्या एन० डी०, डी० यम्० संपादक "प्रकृति" और "इण्डियन नेचुरोपैथ"

शरीर-यंत्र के संचालन में वात, भित्त और कफ इन तीन धातुओं का प्राधान्य होता है। इनके अधिष्ठान देवता क्रम से पवनदेव, सूर्य और चन्द्रमा हैं। हमारे शरीर-यंत्र को वायु संचालित करता, पित्त पाचन क्रिया के लिए आवश्यक उष्णता प्रदान करता, और कफ शरीर के कल पुरजों के सुचारु रीति से कार्य के लिए 'आयलिंग' या तेल डालने का काम करता है। इनमें से किसी एक भी धातु की मात्रा में न्यूनाधिक्य होना रोगोत्पति का मूल कारण बनता है।

इस तथ्य को अनुभवी लेखक ने बड़े सुन्दर ढंग से समझाया है। इसे एक बार आप अवश्य पढ़ें।—सं

विष्णु, विधाता और ईश्वर की तरह सूर्य, चन्द्र और पवन देव भी आर्यों से पूजे जाते थे। इसी कारण आज भी समाज में सूर्योपासना, सोमयज्ञ, और वायुपूजा देखने में आते हैं। ये ही तीनों शारीरिक धातुओं के अधिष्ठान देवता माने जाते हैं। सूर्य शरीर में गरमी पैदा करता है, चन्द्र शीतलता और पवन गति।

वात

पलक लगने, नाक से साँस लेने, हाथ-पैर हिलाने हृदय की स्पंदन-क्रिया, खून बहने तथा यान्त्रिक जीर्ण-क्रिया के चलने के लिये वात या वायु ही जरूरी है जो इन सभी क्रियाओं में गति या वेग उत्पन्न करती है। इसी के आधार पर शरीर के समस्त क्रिया-कलाप होते हैं। वात या वायु का मतलब सिर्फ हवा नहीं है। आयुर्वेद कहता है कि शरीर के जिस तत्व से हमें बाहरी हवा का भी स्पर्श-ज्ञान होता है, वही "वात" है। शरीर में नाड़ियों के जरिये यह काम होता है। नाड़ी-मण्डल की यह क्रिया जब तक समान-गति से चला करती है, तब तक हृदय-स्पंदन आदि शारीरिक क्रियायें इतनी स्वाभाविक रीति से हुआ करती हैं कि हमें उनके होने का भान भी नहीं होता। अगर इस यन्त्र की किसी भी क्रिया का ज्ञान हमें हुआ, तो समझना चाहिये कि इस वात में कुछ कमी-बेशी हुई है देह-यन्त्र का कोई भी पुरजा यदि अपने चलने में हमें ज़रा भी तकलीफ देता है, तो समझना होगा कि "वात" की गति में विषमता आगई है। "वात" वह धातु है जो सिर से लेकर पैर तक फैली हुई है। उसके द्वारा सिर्फ शारीरिक क्रियायें ही नहीं, बल्कि मानसिक क्रियाएं भी होती रहती हैं। अगर किसी आदमी को उन्माद रोग हुआ, तो उसका कारण वात में ही देखना चाहिये। इसी प्रकार किसी आदमी के अधिक चिन्तन अथवा कुछ नहीं सोच सकने का कारण भी "वात" ही होता है। आयुर्वेदिक ग्रन्थों में इसी वात की कमी-बेशी के कारण होने वाले ८० रोग बतलाये गये हैं जो "अशीति वात" कहे जाते हैं। मैं यहाँ पर यह बात स्पष्ट करना चाहता हूं कि वात के न्यूनाधिक्य से होने वाले ये रोग तभी दूर होते हैं जब कि

> "प्रकृति की पुकार पर जो लोग ध्यान नहीं देते उन्हें तरह-तरह के रोग और दुःख घेर लेते हैं, परंतु पवित्र प्राकृतिक जीवन बिताने वाले जंगल के प्राणी रोगमुक्त रहते हैं और मनुष्य के दुर्गुणों और पापाचारों से भी बचे रहते हैं"।
>
> —रिटर्न टु नेचर।

नाड़ी-मण्डल की मलिनता दूर करके नाड़ियों की गति में समानता स्थापित करते हैं।

पित्त

पित्त का मतलब है—गरमी। हम जिन चीजों को खाते हैं उनके पचने के लिये गरमी की आवश्यकता होती है। शरीर के भीतर वाले सभी विषों को बाहर करने और उन्हें जलाकर खाक करने के लिये भी यह गरमी जरूरी है। यह पित्त शरीर को तेज तथा फुर्तीला भी रखता है। जब तक शरीर के अन्दर पाचन, मलमूत्र, स्वेद-क्रियायें आराम से हुआ करती हैं, तब तक समझना चाहिये कि पित्त अपनी ठीक दशा में है। शरीर के ताप के घटने बढ़ने का और शरीर में कोई पीड़ा होने का मतलब यह होगा कि पित्त की मात्रा में कुछ अन्तर आया है। भूख के मन्द पड़ जाने या अधिक होने, मल मूत्र का ज्यादा होने या बन्द होने और पसीने का अधिक निकलने या बिलकुल नहीं निकलने का कारण पित्त की विषमता ही है। पित्त सूर्य अर्थात् अग्नि से संबंधित है। इसीलिये शरीर के किसी भाग में कुछ जलन पैदा हुई, तो मानना होगा कि वह गरमी के हेर फेर से ही हुआ है। शरीर के किसी भाग की कांति कम हो गई, तो उसका कारण पित्त का अभाव ही है। किसी अंग में ग्रन्थि पैदा हुई, तो उसकी भी वजह पित्त का अभाव है। पित्त की अधिकता से फोड़ा-फुन्सी होती हैं। इसलिये शरीर की गरमी की मात्रा में को साम्यावस्था पर लाने से पित्त सम्बन्धी सभी रोग दूर हो जाते हैं। देह की गरमी की कमी बेशी के कारण होने वाले सभी रोगों को आयुर्वेद में "पैत्य-रोग" बताया गया है।

श्लेष्म

यह वह चीज है जो देखने में नाक के नेटे की तरह रहती है। यह श्लेष्म हमेशा शरीर के गति शील पुर्जों के पास रहता है जिससे वे घिसकर या जलकर नष्ट नहीं होने पाते। मशीनों में काम करने वाले सभी यह बात अच्छी तरह जानते हैं कि हमेशा चलने वाले पुर्जों में तेल लगाना पड़ता है ताकि रगड़ के कारण उनमें जलन न पैदा होने। साधारण गाड़ी चलाने वाले भी अपनी गाड़ी की धुरी में तेल लगाते हैं। श्लेष्म शरीर के लिए तेल या इंगनी का काम देती है। यही नहीं; इस श्लेष्म के द्वारा कुछ दूसरे काम भी सधते हैं। शरीर के अन्दर की शीतलता तथा गरमी के फैलने में भी इस श्लेष्म धातु से सहायता मिलती है। शरीर के सभी पुर्जे इस धातु से ढके रहने के कारण उनमें से कोई भी, गरमी से घिसने नहीं पाता और वे शिथिल या कमजोर न होकर बहुत दिन तक टिके रहते हैं।

श्लेष्म में जल का प्राधान्य है। यह गोंद जैसा लसदार और कम परिमाण में होता है। जैसी यह जब आवश्यक परिमाण में मिला रहता है, तब सभी शारीरिक क्रियायें अपने आप बेरोक-टोक आराम से चला करती हैं। यदि कभी इस देह-यन्त्र की तेज चाल से गरमी पैदा हुई, तो समझना होगा कि श्लेष्म धातु की कमी हो गई है। शरीर के पुर्जो की गतिमें यदि कहीं अवरोध हुआ, तो समझना चाहिये कि श्लेष्म का परिमाण आवश्यकता से अधिक हो गया है। इस प्रकार इस श्लेष्म धातु की कमी-बेशी पर ही हमारे शरीर का स्वास्थ्य निर्भर करता है। इसके अलावा वात के कारण शरीर में होने वाला चलन भी इस श्लेष्म की कमी-बेशी के अनुसार बदलता रहता है। देह के शीत और उष्ण का संचलन भी इस श्लेष्म की बदौलत परिवर्तित होता है। इन परिवर्तनों के कारण होने वाली सभी बीमारियों को आयुर्वेद "श्लेष्म-व्याधियाँ" कहता है।

श्लेष्म का अधिष्ठान देवता चन्द्रमा है। इसीलिए

"श्लेष्मः सौम्यः" यह उक्ति प्रसिद्ध है। सोम चन्द्रमा को कहते हैं। चन्द्र जल देवता है। इसलिये श्लेष्म जल धातु कहलाता है। हम जो जो चीजें खाते हैं, वे पहले आमाशय में पहुँचती हैं और वहाँ पर उनका रस बनता है जिसे अंग्रेज़ी में 'लिंफ' (Lymph) कहते हैं। यह रस शोषरस केश नालिकाओं द्वारा (Lymphatic capillaries) जो जीर्णावयवों के साथ करोड़ों की संख्या में फैली हुई हैं, लिया जाता है और वहाँ से शोषरस की नलियों में पहुँचता है। जिस प्रकार सारे बदन में नाड़ियां और धमनियां फैली हुई हैं, उसी प्रकार ये "शोष रस नालियां" भी अंग-प्रत्यंग में फैली हुई हैं।

इन नालियों के दो नाम और हैं—श्लेष्म रस वाहिका और शोष रस वाहिका (Lymphatic channels)। रस केश नालियों के द्वारा, जो जीर्ण मण्डल के साथ फैली हुई हैं, शरीर के दूसरे अंगों को भोजन बन कर जाता है। शरीर की यह क्रिया उसी प्रकार है जैसे हम मजदूरों से काम करवा कर उन्हें भोजन देतेहैं। हाथ-पैर शरीर के नौकर हैं। नित्य उनसे काम लिया जाता है और उन्हें बदले में "रस धातु" के रूप में भोजन दिया जाता है।

जीर्ण-मण्डल में उत्पन्न रस एक परिमाण में "जाठर-सिरा (Vena portae) के जरिये पित्ताशय में पहुंचता है और वहाँ पित्तरस के साथ मिलकर बृहत्सिरा (Vena cavae) में पहुँचता है। बृहत्सिरा में पहले से ही जो सिरा-रक्त पहुँचा रहता है, वह हृदय कोश में जाता है और वहाँ साफ हो कर शुद्ध रक्त के रूप में बदल जाता है। यह शोषरस भी हृदय कोश में "रंजकपित्त" (Heimoglodin) से मिलकर रक्त बन जाता है।

किसान के खेत में पैदा होने वाली फसल से इस रस की उपमा दी जा सकती है। किसान अपनी फसल में से अपनी जरूरत भर के लिये अनाज बचा कर बाकी बाजार में बेच देता है और रुपयों को अपने यहाँ जमा रखता है। रुपयों से वह जो भी चाहे खरीद सकता है। अर्थात् वह अपने रुपयों को कई तरह की चीजों में बदल सकता है। इसी प्रकार शरीर की जरूरतों के लिये जितना (Lymph) रस) चाहिये, उसको छोड़ कर बाकी रक्त बन जाता है। इसलिये रक्त की उपमा किसान के रुपयों से ठीक टती है। रक्त से शरीर की सभी धातुएं बनती हैं। जैसे—ांस, उपास्थि, हड्डी, मज्जा, दिमाग, वीर्य, नाखून, बाल ादि-आदि।

मैं पहले ही कह चुका हूँ कि श्लेष्म शरीर के अंगों ो रगड़ खाकर नष्ट होने से बचाता है। इसलिये यह स, जो श्लेष्म नालियों के जरिए शरीर के अंगों में फैला आ है उनका सिर्फ भोजन ही नहीं बनता, बल्कि शरीर उन भागों के पास जमा रहता है, जो निरंतर हिलते-लते हैं। गाड़ी के पहियों में तेल न डालने से न ल पहिये ही नष्ट होते हैं, बल्कि गाड़ी के संचलन में बाधा पड़ जाती है। इसी प्रकार शरीर के

श्लेष्म धातु के घट जाने से एक तो शरीर के जोड़ घिस जाते हैं, दूसरे रगड़ से पैदा होने वाली अग्नि से राज-यक्ष्मा आदि भयंकर बीमारियां होती हैं अथवा पीड़ा उत्पन्न होती है। इस प्रकार देह के संचलन में ही रुकावटें पैदा होती हैं।

शरीर के जिन अंगों का निरंतर संचलन होता रहता है, उनमें फेफड़ों का नम्बर पहला है। यही कारण है कि श्लेष्म की उत्पत्ति यद्यपि पाकस्थली में होती है, फिर भी उसका प्रधान कार्य फेफड़ों में है। अतः श्लेष्म का न्यूनाधिक्य फेफड़ों में पहले प्रगट होता हैं।

प्रायः देखा जाता है कि श्लेष्म की साम्यावस्था से फेफड़े बराबर आराम से काम करते हैं। जब श्लेष्म इतनी मात्रा में वर्तमान रहता है कि वह देह की जरूरतों को पूरा कर सके, तब शरीर में सौंदर्य, तृप्ति, आनुरूप्यता, सुख आदि नीरोग लक्षण पाये जाते हैं। यही नहीं, बल्कि शरीर बल, स्फूर्ति तथा उत्साह का भी अनुभव करता है। अगर श्लेष्म शरीर की जरूरतों के लिये काफी नहीं होगा, तो शरीर सुस्ती, थकान, उत्साहहीनता आदि मानसिक दुस्थिति का अनुभव नहीं करेगा, बल्कि उसमें गरमी की तीव्रता होगी, पाँव, हथेली आदि छोरों में जलन पैदा होगी, सिर में चक्कर का-सा अनुभव होगा, प्यास, मूर्छा, तन्द्रा आदि रोग के लक्षण प्रगट होंगे।

शरीर का उपयोग पूरा होने पर श्लेष्म जो थोड़ा बचा रहता है, उसका एक अंश शरीर के अंदर मेद के रूप में बच रहता है, ताकि ज़रूरत पड़ने पर भविष्य में उसका उपयोग किया जाय। यह मेद पेड़ू, छाती, चूतड़ आदि उन भागों में जमा रहता है, जिनमें संचलन नहीं होता। इसको हम शरीर का धरोहर या पूंजी (Deposit) कह सकते हैं। जिस समय शरीर में भोजन का अभाव पड़ता है, उस समय मेद रूपी यह पूंजी फिर रस-रक्त के रूप में परिणत होकर शरीर के लिये आहार बनती है।

श्लेष्म का एक अंश शरीर के जोड़ों में इकट्ठा रहता है। शरीर में जमा हुआ यह अतिरिक्त श्लेष्म जरूरत पड़ने पर गल कर द्रव बन जाता है, और उन भागों के

शेष पृष्ठ ३४७ पर

प्राणायाम और स्वास्थ्य

प्रो० लालजीराम शुक्ल, एम. ए. बी. टी

मनुष्य का मन और सभी बातों की ओर तो खूब दौड़ता है; लेकिन वह स्वयं अपने विषय में विचार करने में उदासीन ही बना रहता है। अपने प्रति मनुष्य का यह उपेक्षा भाव ही रोग का मुख्य कारण है। प्राणायाम आत्म-निर्देश का एक सहज साधन है, इसके द्वारा हम आध्यात्मिक, नैतिक एवं शारीरिक सभी प्रकार के लाभ उठा सकते हैं—विद्वान लेखक ने इस लेख में यही दर्शाया है। —सं

आधुनिक प्राकृतिक चिकित्सा-विधि में प्राणायाम के अभ्यास को बहुत महत्व का स्थान दिया जाता है। प्राणायाम से रोग का होना ही बन्द हो जाता है। हेनरी लिराड लाहर महाशय ने अपने प्राकृतिक चिकित्सा में प्राणायाम के अभ्यास की बड़ी महत्ता दर्शायी है। उन्होंने इस सम्बन्ध में भारत के योगियों की प्रशंसा की है। प्राणायाम करते समय पर्याप्त वायु हमारे फेफड़ों में जाती है। इससे खून साफ होने में शीघ्रता होती है। अनेक प्रकार के हानिकारक कीटाणु भी साँस के साथ बाहर निकल आते हैं। जो लोग घर के बाहर किसी निर्जन स्थान से प्राणायाम करते हैं वे अपने स्वास्थ्य को अच्छा बनाये रहते हैं। बैठकर काम करने वाले लोगों के लिए तो प्राणायाम अत्यन्त आवश्यक है।

प्राणायाम के उपयोगिता बताते समय प्रायः उसके मानसिक पहलू पर विचार नहीं किया जाता। यदि प्राणायाम के मानसिक पहलू पर विचार किया जाय, उसके आध्यात्मिक लाभ पर दृष्टि रक्खी जाय तो प्राणायाम और भी अधिक लाभकारी सिद्ध हो। प्राणायाम से वास्तव में शारीरिक और मानसिक दोनों प्रकार के लाभ होते हैं। प्राणायाम आत्म-निर्देश का एक साधन है। साधारणतः हमारे विचार इधर-उधर बिखरे रहते हैं। इसके कारण हमारा मन स्वास्थ्य-रक्षा की ओर जाता ही नहीं। कितने ही लोगों को अपने शरीर के विषय में सोचने की फुरसत ही नहीं रहती। उठते-बैठते, खाते-पीते वे सदा किसी व्यवसाय के चिन्तन में पड़े रहते हैं। आजकल भोजन भी कई लोगों के साथ किया जाता है और भोज करते समय अनेक प्रकार के व्यवसाय की बातचीत होती रहती है। पार्टियाँ और भोज तो राजनीतिक वार्ताओं के एक खास अंग बन गए हैं—इनमें भाग लेना राजनीतिक सम्मेलन में भाग लेना समझा जाता है। इस प्रकार का जीवन मनुष्य को स्वयं अपने विषय में अनभिज्ञ रखता है। मनुष्य का मन और बातों में तो चक्कर काटता घूमता रहता है। वह केवल अपने घर के सुधारने अर्थात् अपने शरीर के विषय में उदासीन रहता है। इसका परिणाम होता है कि मनुष्य जगत में प्रख्यात् होने के तो अनेक काम कर डालता है, वह कीर्ति-धन-सम्पत्ति अनेक प्रकार की वस्तुएं प्राप्त कर लेता है पर अपने मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य को बिगाड़ लेता है। सभी प्रकार की मानसिक और शारीरिक बीमारियों का कारण अपने विषय में न सोचना मात्र ही है। संसार के कार्यों में फंसा हुआ व्यक्ति एक ओर तो बड़ा स्वार्थी होता है और दूसरी ओर वह अपने वास्तविक स्वार्थ के विषय में उदासीन रहता है। अपने आध्यात्मिक-जीवन के विषय में चिंतन करना तो दूर रहा वह अपने भौतिक-जीवन के विषय में अर्थात् शरीर के विषय में भी कदाचित् सोचता है।

इस प्रकार की मानसिक स्थिति अनेक प्रकार के रोगों का होना सुगम कर देती है। जिस तरफ चेतना का प्रकाश जाता है अर्थात् जिस विषय के बारे में हम सोचते रहते हैं वही विषय उन्नति कर जाता है, और जिसके विषय में मुख मोड़ लें वह बिगड़ जाता है। धनी मनुष्य सदा धन का चिन्तन करता है, विद्वान विद्या का, राजनीति का, इसके कारण धन, विद्या और राजनैतिक लाभ मनुष्य को होते हैं। पर इन विषयों में अधिक लगे रहने के कारण मनुष्य का शारीरिक और मानसिक बिगड़ जाता है इसे सुधारने के लिए शरीर और

मन के विषय में उतनी ही लगन के साथ चिन्तन करना आवश्यक है जितनी लगन के साथ अन्य विषयों की चिन्ता की जातो है।

प्राणायाम के अभ्यास के समय मनुष्य अपनी चेतना को अपनी ओर मोड़ने की चेष्टा करता है। साँस लेना एक भौतिक कार्य है। भौतिक कार्य से भौतिक लाभ होता है। जब हम अपने मन को भी श्वास-प्रच्छ्वास में लगाते हैं तो आध्यात्मिक लाभ भी होता है। प्राणायाम से अधिक से अधिक लाभ उठाने के लिए यह आवश्यक है कि हम अपने विचारों को स्थिर करें। प्राणायाम करते समय जब हम त्रिकुटी पर ध्यान केन्द्रित करते हैं तो मानसिक शक्ति का संचय होता है। प्राणायाम करते समय हमें यह सोचना आवश्यक है कि हम प्रकृति की अनंत शक्ति को अपने भीतर ग्रहण कर रहे हैं और यह शक्ति हमारे मानसिक और शारीरिक विकारों को नष्ट करेगी। जैसे ही वायु भीतर जाय हमें यह सोचना चाहिए कि शरीर को बल देने वाला प्राण हमारे भीतर जा रहा है। हमारे शरीर का बल वायु के ऊपर निर्भर नहीं करता वह हमारी प्राण-शक्ति पर निर्भर करता है। यह प्राण-शक्ति भौतिक वायु से पृथक वस्तु है। यह सूक्ष्म तत्व है। इस तत्व का मानसिक अंग भी है। प्राण-शक्ति का संग्रह चित्त की एकाग्रता पर निर्भर करता है। जब हम आत्म-निर्देश के द्वारा इस शक्ति का संचय करना चाहते हैं तभी यह शक्ति संचित होती है।

यदि शरीर का कोई अंग रुग्ण हो जाय तो उसे स्वस्थ बनाने के लिए यह आवश्यक है कि हम प्राणायाम करते समय उसका ध्यान करें और यह सोचें कि प्राण-शक्ति उस अंग में जाकर जीवन का संचार कर रही है और रोग के कीटाणुओं का नाश हो रहा है। इस प्रकार के विचार करते रहने से थोड़े ही दिनों में रोग का विनाश हो जाता है। हृदय की बीमारियाँ, पेट की बीमारियाँ इस प्रकार नष्ट की जा सकतीं हैं। पेट से ही सभी प्रकार की बीमारियों का प्रारम्भ होता है। जब पेट और हृदय में स्फूर्ति आ जाती है, जब प्राण-शक्ति उनमें नवजीवन संचार कर देती है तो शरीर के अन्य अंग अपने आप, स्वस्थ हो जाते हैं।

प्राणायाम से मानसिक रोग का भी निराकरण होता है। प्राणायाम से चित्त में शान्ति उत्पन्न होती है और विचार अनेक स्थानों से मुक्त होकर एकाग्र हो जाते हैं। विचारों की एकाग्रता और शान्ति का उत्पन्न होना अनेक प्रकार के मानसिक रोगों का अपने आप नष्ट कर देता है।

बौद्ध-धर्म में प्राणायाम को मानसिक क्रिया ही माना गया है। प्राणायाम सम्यक स्मृति का अंग है। बौद्धों की प्राणायाम-विधि हमारी सामान्य प्राणायाम-विधि से भिन्न है। प्राणायाम को पानायान सात कहा जाता है। पानायान-सति का अभ्यास करने वाला व्यक्ति पहले एकांत स्थान में बैठकर अपने विचारों को अपने साँस के आने और जाने की क्रिया के ऊपर एकाग्र करता है। वह अपने सभी प्रकार के विचारों को इस समय बन्द करने की चेष्टा करता है। इस प्रकार विचारों पर विजय पाने का उपाय पानायान सति है। जब इस प्रकार के अभ्यास में मनुष्य को कुछ सफलता प्राप्त हो जाती है तो सभी जगह रहते हुए इसका अभ्यास करने की चेष्टा की जाती है। बौद्ध भिक्षु चलते फिरते भी पानायान सति का अभ्यास करते रहते हैं। लेखक का एक मित्र महीने भर तक इस विधि का अभ्यास करता रहा। उसे इस अभ्यास के कारण न तो नींद आई और न कोई शारीरिक अथवा मानसिक थकावट ही हुई।

जब हम अपने विचारों को बाहर से खींच ले आते हैं तो ये विचार हमारे अचेतन मन में प्रवेश करते हैं और तब हमारा शारीरिक और आध्यात्मिक कल्याण करने लगते हैं। अपने स्वास्थ्य को ठीक रखने के लिये स्वास्थ्य के विषय में चिन्तित होना हानिकारक होता है, इसके लिये सबसे अच्छा उपाय अपने आपको सब प्रकार की चिन्ताओं से मुक्त कर लेना मात्र पर्याप्त है। सभी प्रकार की चिन्तायें, चाहे वे किसी बाहरी वस्तु के प्रति हों अथवा अपने स्वास्थ्य के विषय में, हानिकारक हैं। विचार को स्तब्ध कर देना, मन को निर्विषय कर देना, ही स्वास्थ्य लाभ का सर्वोत्तम उपाय है। यह निर्विषयता प्राप्त करने का साधन ही प्राणायाम अथवा पानायान विधि है।

दवा या जहर?

(ले० गुलाब चन्द जे० गोयल, 'प्रचंड' साहित्यरत्न, इन्दौर)

आज मानव-समाज किसी न किसी रोग का शिकार पाया जाता है, पूर्ण स्वस्थ मनुष्य बहुत ही कम दिखाई पड़ते हैं। हां, डाक्टरी प्रमाण पत्रों द्वारा तो पूर्ण स्वस्थ मनुष्यों की कमी नहीं। आज के डाक्टर भी प्रायः उन ब्राह्मणों के समान होते हैं जो समय देख कर विवाह की कुंडलियां बनाया करते हैं। परन्तु यह निर्विवाद है कि आज का मानव-समाज रोगों के चंगुल में बुरी तरह से फंसा हुआ है। और उसके उद्धार को असंभव नहीं तो महा कठिन अवश्य कहना पड़ेगा। हर वर्ष बड़े-बड़े मेडिकल कालेजों से डाक्टर बन-बन कर छात्र निकलते हैं, प्रतिदिन नई-नई दवाइयां बनती हैं, लगभग हर विषय पर नित्य प्रति नूतन आविष्कार होते हैं, यह सब क्यों... ?

उसी समाज के सुख और शांति के लिये ही न जो दुखी है, पीड़ित है, और बीमार है? परन्तु क्या ये सब आविष्कार, दवायें एवं डाक्टर मानव-समाज को कुछ भी सुखी कर सके, शांति दे सके, पीड़ा-हरण कर सके? 'हां' मानव को भुलावे में डालने का अभ्यास आज के प्रत्येक चतुर चिकित्सक को कालेजों में कराया जाता है। और जो जितना चतुर हो सके वह उतना ही धन अवश्य एकत्र कर सकता है और अपने जीवन को सुखी बना सकता है। इन सब का तात्पर्य यह है कि डाक्टरों की जितनी संख्या बढ़ती है उतनी ही बीमारियों की संख्या भी बढ़ती है। और जैसे-जैसे दवा दी जाती है वैसे वैसे रोगों का नाश होता जाता है। प्रायः यह भी देखा जाता है कि जब एक रोग का उपचार किया जाता है तो कुछ समय के लिये वह दब जाता है। रोगी को यह विश्वास दिलाया जाता है कि वह रोग मुक्त हो गया। रोगी के मस्तिष्क में उसके विधाता का आदर बहुत बढ़ जाता है। कुछ ही समय में वह प्रथम रोग दूसरे अंग से फूट पड़ता है और फिर डाक्टर साहब कहते हैं कि यह दूसरा रोग है, हां, उससे भयंकर अवश्य है। फिर दवा दी जाती है। प्रथम रोग को दबाने के लिये दूसरे रोग का बीजारोपण होता है। दूसरे रोग का उपचार करने अथवा दबाने के प्रयत्न करने में तीसरे का श्रीगणेश होता है।

इन सबसे यह ज्ञात होता कि वह प्रणाली जिसके द्वारा रोग का निदान एवं उपचार किया जाता है और दवा बनाई जाती है, गलत है। क्योंकि अगर ऐसा नहीं होता तो हमें ऐसे भयंकर परिणाम नहीं देखने पड़ते।

यह सब देख कर विचार आता है कि प्राचीन काल में जब ऐसे महान डाक्टर, इतने सूक्ष्म औजार एवं यंत्र और इन सब आविष्कारों का जन्म नहीं हुआ था, उस समय मनुष्य आज के मुकाबले में अधिक सुखी, शान्त, एवं सम्पन्न कैसे रहता था? वह बहुत कम बीमारी का शिकार होता था। बड़ी जल्दी ठीक हो जाता था, और उसे इतने कष्ट का भी अनुभव नहीं करना पड़ता था। अब प्रश्न यह है...यह इतना महान परिवर्तन क्यों हुआ? आज हम सभ्यता के इस उन्नति काल में भी उस समय के मनुष्य की अपेक्षा दुखी क्यों हैं?

इस सब का एक मात्र कारण यह है कि हमने उस समय के तरीकों को भुला दिया अथवा उनसे अनभिज्ञ बन गए, जो सरल थे, आसान थे, परन्तु जिनका निर्माण बड़े कठोर नियमोंके आधार पर हुआ था...पर वे नियम अभ्यास के बाद बहुत ही आसान हो जाते हैं। आज हम ज्ञान एवं सभ्यता के प्रपंचों में पड़ कर इतने शक्तिहीन हो गए कि हम में उन नियमों के पालन करने की शक्ति ही नहीं रही। हमारी सभ्यता ने हमें अन्धा बना दिया और हम भूल गए कि हम सुख और शान्ति से दूर जा रहे हैं। विज्ञान की दुहाई दी गई, अन्धों को 'नेत्र' मिलने लगे, पर हम भूल गए कि इन उपनेत्रों से 'नेत्रों' की अवशिष्ट शक्ति भी नष्ट होती है उपनेत्र सुन्दरता के चिन्ह भी समझे जाने लगे, धन्य हमारी नादानी? जिस सभ्यता एवं विज्ञान को हमने

जल की निर्मल धारा समझा वह केवल मृग तृष्णा मात्र है, बालू या रेत के चमकते कणों के समान लुभाने वाला यह विज्ञान हमें दुखों एवं हमारे जीवन को अशान्त बनाने का एक मात्र कारण है।

यह सब लिखने से यह नहीं समझना चाहिए कि हम उस स्तर पर आ गए हैं, जहाँ से हमारा उद्धार नहीं हो सकता। यह बात असम्भव नहीं, फिर भी कठिन अवश्य है। अपने उद्धार का यह कार्य भी विश्व में फिर से आरम्भ हो गया है और एक ऐसी प्रणाली भी शनैः शनैः तैयार हो रही है जिससे मानव पूर्ण सुख एवं शान्ति प्राप्त कर सके। यह प्रणाली कोई नई नहीं है। परन्तु प्राचीन प्रणाली का नया कल्प मात्र है और वह प्रणाली प्राकृतिक चिकित्सा है। यह वही प्रणाली है, जिसकी सहायता से हमारे प्राचीन पूर्वज सदा स्वस्थ रहते थे, शान्ति से उनका जीवन व्यतीत होता था। आज हम उसको भूल कर अथवा भुला कर विज्ञान की उस नई खोज के पीछे पड़े हुए हैं, जो हमारी सदा शक्ति को क्षीण करती है या केवल सुख का स्वप्न दिखा कर दुख के गहरे कूप में ढकेल दे रही है।

प्राकृतिक चिकित्सा प्रणाली बड़ी आसान है। इस चिकित्सा में उन्हीं पंच तत्वों की सहायता ली जाती है जिससे हमारे शरीर का निर्माण हुआ है।

ये पंच तत्त्व हैं १ जल, २ मिट्टी, ३ वायु, ४ अग्नि, और ५ प्रकाश। इन्हीं की सहायता से प्रत्येक रोग का नाश किया जा सकता है। जर्मनी के डाक्टर लूई कूने ने एक बार इस सम्बन्ध में व्याख्यान देते हुए कहा था कि प्रत्येक रोग ठीक हो सकता है परन्तु प्रत्येक रोगी नहीं। तात्पर्य यह है कि अगर रोगी विशेष या कोई अंग ही नहीं हो तो वह ठीक नहीं हो सकता। उदाहरणार्थ एक मनुष्य की आँख फूट गई तो उसे किसी प्रणाली के अनुसार ठीक नहीं किया जा सकता, परन्तु अगर ज्योति चली गई है और आंख ठीक, अङ्ग सुधरने की शक्ति रखते हैं तो वे इस प्रणाली द्वारा ठीक भी हो सकते हैं। परन्तु उसके लिए सतत अभ्यास की आवश्यकता है। रोगों के कारण एवं उपचार के सम्बन्ध में मैं अपने आगे के लेखों में प्रकाश डालने का प्रयत्न करूँगा। (क्रमशः)

पृष्ठ ३४३ का शेष

चलने में सहायक होता है। वरना यह अतिरिक्त श्लेष्म जम कर कड़ा बनता है और अंगों की चलन-क्रिया में बाधक होता है।

अतएव हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि जब श्लेष्म एक धातु के रूप में रहता है, तब शरीर के अंग-प्रत्यंग के लिये भोजन तथा शरीर के लिये तेल का काम देता है और शरीर को स्वस्थ, सुन्दर, तृप्त, हलका और उत्साही बनाता है। इसी में जब दूषण पैदा होता है, या इसकी मात्रा कम हो जाती है, तो शरीर में निरुत्साह, थकावट, तन्द्रा, प्यास, आदि रोग लक्षण देखने में आते हैं। श्लेष्म की मात्रा जब अधिक होती है, तब वह अपनी तरुणावस्था में गमननिरोध, मान्द्य, उत्साहहीनता, आदि बीमारियां होती हैं। वही पुराना पड़ कर गठिया, मेदोवृद्धि, विद्रधि, अतिमूत्र आदि बीमारियां होती हैं। इसके प्रतीकार के लिये हमें चाहिये कि खाद्याखाद्य का खयाल रखें, अर्थात् अपने भोजन का सोच समझ कर निर्णय कर लें, कसरत काफी किया करें, शुद्ध हवा, साफ पानी और धूप का सेवन करें।

जुकाम होने पर नाक से निकलने वाला नेटा, फोड़ों से निकलने वाली मवाद, पुरुषों के वीर्य-पात रोग का वीर्य, स्त्रियों के श्वेत-कुसुम रोग की श्वेत-धातु, गांठों और फोड़ों के अन्दर रहने वाली कड़ी चीज़, घुटना, कुहना आदि जोड़ों के पास जमा होकर तकलीफ देने वाला द्रव्य, आदि का मूल श्लेष्म के अंतर्गत है।

(क्रमशः)

अनुवादक—चे० कृष्णाराव

ज्वर का प्रकोप

श्री शारदा प्रसाद गुप्त

आधुनिक युग में ज्वर एक भयानक रोग समझा जाता है। इसके कई एक नाम हैं। मलेरिया, टाइफाइड, कालाज़ार, इत्यादि जिन्हें बहुत ही विषम रूप दिया जाता है। ज़रा सा ज्वर चढ़ा कि हम बेचैन हो जाते हैं डाक्टरों के पास दौड़ते हैं और अनेक विषमय दवाइयाँ खाने में तनिक भी नहीं हिचकते। हम यह भूल जाते हैं कि इन दवाओं में रोग को जड़ से उखाड़ फेंकने की तनिक भी शक्ति नहीं है। ये तो केवल अपने जहरीले प्रभाव से रोग को दवा देती हैं और अन्य लक्षण, जैसे चर्म रोग, दस्त, सिर में गरमी, सिर दर्द इत्यादि, पैदा हो जाते हैं। बुखार भी प्रायः ऐसी दवाओं से शत प्रतिशत छूटता हुआ नहीं देखा गया। प्रत्यक्ष देखने में आता है कि किसी को मलेरिया ज्वर छः महीने तक नहीं छोड़ता और किसी को छोड़-छोड़ कर दुहराता और तिहराता रहता है। मियादी बुखार भी एक महीने से कम समय प्रायः नहीं लेता। और प्रत्येक बार रोगी को एकदम निर्बल कर देता है। कुनैन नाम की दवा से सभी लोग परिचित होंगे। इसके दुष्परिणाम को अब लोग जानने लग गये हैं और इसका प्रयोग शिक्षित समाज में कुछ कम हो चला है। सस्ती होने के कारण अभी गरीबों में इसका प्रयोग जारी है। बेचारे यहाँ तक, नहीं जानते कि यह क्या चीज है। लकीर के फकीर हैं। जैसा डाक्टर ने कहा वैसा ही करते हैं। और कभी कभी तो अपना रोग शीघ्र आराम करने के लिए अधिक मात्रा में खा जाते है। मैंने एक रोगी ऐसा स्वयं देखा है जो मलेरिया से तो अच्छा हो गया था पर कुनैन ने अपना असर बुरी तरह दिखाया। रोगी के कान से बहुत कम सुनाई देता था। शिर में सदा चक्कर और आँख से कम दिखाई देता था। रोगी कहता था कि जितना कष्ट उसे ज्वर से नहीं था उतना अब उसे कुनैन के सेवन करने के बाद मालूम होता है।

आधुनिक शिक्षा-प्रणाली का हम पर ऐसा प्रकोप है कि हम प्राकृतिक-चिकित्सा पर विश्वास नहीं करते। यदि कोई इस तरफ संकेत करता भी है तो हम मजाक में टाल देते हैं। अपने घर ही धूप, जल, मिट्टी ऐसी महान अचूक औषधियों को छोड़ कर हम दूसरों की शरण लेते हैं। दवाओं पर हमारा अटूट विश्वास हो गया है। बड़े-बड़े पाश्चात्य चिकित्सकों ने भी दवाओं का घोर विरोध किया है। डाक्टर वेलो (लंदन) लिखते हैं "I have no faith whatever in medicine" अर्थात् 'औषधि में मेरा तनिक भी विश्वास नहीं है।' प्रोफेसर ई० एच० डेवेड, एम० डो० (न्यूयार्क मेडिकल कालेज) लिखते हैं "The vital effects of medicine are very little understood if is a term used to cover our ignorance" अर्थात् औषधि में कोई जीवन-शक्ति है यह बात हमारी समझ में नहीं आती। औषधि नाम की कोई चीज़ है यह बात हम अपनी अज्ञानता छिपाने के लिये कहा करते हैं। इस प्रकार के कई उदाहरण डा० के० लक्ष्मण शर्मा बी० एल० एल० की प्रैक्टिकल वाटर हीलिंग (practical water healing) नामक पुस्तक में दी हुई है। बड़े-बड़े देशी विदेशी डाक्टरों ने भी अपना मत ऐलोपैथिक चिकित्सा की ओर से बदल कर प्राकृतिक चिकित्सा में लगाया है। इनमें डा० के० एल० शर्मा और डाक्टर चौधरी सुविख्यात हैं।

लूई कूने के मतानुसार तल पेट (पेड़ू) में विसदृश पदार्थों का जमा होना और अंत में उनके सड़न से एक प्रकार की खमीर (Fermentation) उठना, जिसमें अत्यधिक गर्मी होती है, ही ज्वर कहलाता है। ज्वर की न्यूनता और उग्रता उसी विसदृश पदार्थों के न्यूनाधिक्य पर निर्भर करता है। ध्यान से सोचा जाय तो ज्वर कोई भयानक रोग नहीं दीख पड़ता। शरीर को गर्मी का सामान्य से अधिक हो जाना ही ज्वर कहलाता है।

इस प्रकार पेड़ू में जो खमीर उठती है उसका मूल कारण कोष्टबद्धता है। सभी रोग इसी कोष्टबद्धता से पैदा होते हैं परंतु हम यहां केवल ज्वर को ही लेते हैं।

अब इसकी नैसर्गिक-चिकित्सा की ओर ध्यान देना चाहिए। एक ज्वरपीड़ित बालक कैसे अच्छा हो गया इसका वर्णन यहाँ किया जाता है। पाठक स्वयं समझ लेंगे कि यह चिकित्सा कितनी चमत्कारपूर्ण है।

मेरा २॥ वर्ष का एक बालक अचानक ज्वर-ग्रस्ति हो गया। उसे १०४° तापमान हो गया। डाक्टरों ने इसे मियादी बुखार बताया। मैंने इसकी कोई चिंता न कर इस प्रकार उपचार करना प्रारम्भ किया। एक दिन तक ज्वर की गति देखने से मालूम हुआ है कि ज्वर एक बार दोपहर में कुछ उतरा और फिर उसी प्रकार चढ़ गया। रात में भी इसी भांति कुछ उतर कर फिर चढ़ गया। पान का डंठल चाकू से ज़रा छीलकर तिल का तेल लगाकर गुदा मार्ग में एक इञ्च प्रविष्ट कर दिया गया और दो तीन मिनट में बाहर निकाल लिया गया। रोगी को तत्काल एक दस्त हुआ और उसका कोष्ठ साफ हो गया। सिवा ठंडा पानी के और कुछ नहीं दिया जाता था। पानी अधिक मात्रा में पिलाया जाता था। दूसरे रोज कुनकुने पानी का एक एनिमा दिया गया जिससे उसकी आंतें धुल कर साफ हो गईं और सारा विसदृशपदार्थ बाहर निकलगया। दिन में दो बार प्रातःकाल और सायंकाल रोगी के संपूर्ण शरीर पर गीली पट्टी दी जाने लगी। सिर को बाहर निकाल कर सारे बदन को गीली चादर में लपेट कर ऊपर से एक कंबल में लपेट दिया जाता था। आधे घंटे बाद रोगी को बाहर निकाल कर उसका बदन ठंडे गीले तौलिये से पोंछ कर सूखे तौलिये से रगड़-रगड़ कर पसीना पोंछ दिया जाता था और कपड़ा पहनाकर सुला दिया जाता था। पट्टी देने के बाद रोगी का ज्वर बहुत कुछ कम हो जाता था। प्रायः पेड़ू पर मिट्टी की पट्टी भी दी जाती थी। पाचवें दिन रोग दूर हो गया। तब छठे दिन उसे फल का रस दिया गया। सातवें दिन दूध और फल का रस मिला कर और आठवें दिन से हलका सामान्य भोजन दिया जाने लगा।

कितनी सरल और स्वाभाविक चिकित्सा है यह! अटकल बाज़ों का इसमें कोई स्थान नहीं। अविश्वास की कोई गुंजाइश हो नहीं। यदि धैर्य से काम लिया जाय तो कोई दुष्परिणाम की संभावना ही नहीं होती। हां, यदि कोई बात समझ में न आये तो अपने मन से कुछ न करना चाहिये बल्कि किसी जानकार से सलाह लेनी चाहिये या इस विषय की किसी पुस्तक का अध्ययन करना चाहिए। प्रायः लोग अज्ञानवश भूल कर बैठते हैं। इसलिये कुछ बातें नीचे लिखी जाती हैं। यदि उन्हें भली भांति प्रयोग में लाया जाय तो तेज और भयानक से भयानक ज्वर की भी कमर टूट जाती है और रोगी अल्प समय में ही अच्छा हो जाता है।

(१) एनीमा द्वारा पेट की सफाई। यह अत्यंत आवश्यक है। यदि यंत्र पास न हो तो किसी डाक्टर से किराये पर ले लेना चाहिये या वहीं डाक्टर से ही एनीमा ले लेना चाहिए। पर याद रहे कि पानी में सिवाय नींबू के रस के और किसी प्रकार का तैल अथवा साबुन न मिलाया जाय। केवल सामान्य उष्ण जल हो।

(२) दिन में कई बार तल पेट पर, ठंडी मिट्टी की पट्टी रक्खी जाय।

(३) ज्वर तेज होने पर संपूर्ण शरीर की गीली पट्टी (wet sheet pack) दी जाय। कमरे में इस समय अधिक हवा न लगनी चाहिये।

(४) रोगी को ठंडा जल और नींबू के रस के सिवा और कुछ न खिलाया जाय। प्रायः लोग ऐसी अवस्था में रोगी को दूध देते रहते हैं। यह बहुत हानिकारक है। यदि रोगी बहुत कमजोर हो या ज्वर अधिक दिन तक चलता रहे तो फलों का रस दिया जा सकता है।

(५) अन्यथा ज्वर शांति होने के बाद फलों का रस और बाद में फल और दूध और अन्त में धीरे-धीरे सामान्य भोजन पर आना चाहिये।

स्मरण रहे कि पहले और पाँचवे नम्बर का अक्षरशः पालन करना नितांत आवश्यक है, वर्ना कोई लाभ न होगा।

महिला जगत्

केश-विन्यास

श्रीमती सावित्रीदेवी

सौन्दर्य पुजारिनी नारी की सर्वोच्च शृङ्गार-विभूति उसके केश ही हैं। फिर भी वह उनकी रक्षा तथा अभिवृद्धि के साधनों से सर्वथा अनभिज्ञ हैं। आधुनिक मनोवैज्ञानिक युग में जब भारत चिरदासता से मुक्त हो स्वतन्त्रता के आंगन में आ पहुंचा है, यह अनुचित है।

आजकल प्रत्येक विवाह योग्य कन्या को सौन्दर्य कसौटी में कसने के पश्चात् ही पत्नीत्व का वरदान मिल पाता है। कुरूप कन्यायें समाज के सम्मुख एक जटिल समस्या के रूप में उपस्थित हैं। सौन्दर्य-विज्ञान की उन्नति के साथ-साथ शायद यह समस्या भी धीरे-धीरे सुलझती जायगी। इसलिये चतुर माँ का कर्तव्य है कि वह अपनी कन्याओं को बाल्य-काल से ही केश व्यायाम, केश-रक्षा और केश को संवारने के प्रत्येक प्रसाधन और उपकरण से परिचित करा दें।

हम देखते हैं कि लोग आधुनिकता से चिढ़कर नन्हीं बालिकाओं के चुटियाँ डालने लगते हैं या फैशन की धारा में बह कर १२ या १४ साल तक उसके बाल (Bobed) कटवाते रहते हैं। ये दोनों ही अनुचित ढङ्ग हैं।

जल्दी चुटिया चोटी डालने से न तो बालों में सघनता आती है, न उनकी जड़ें सुदृढ़ हो सकती हैं। आगे चलकर बाल झड़ने लगते हैं, और अधिक समय तक बाल कटवाने से बालों में अजीब मोटापन, खुरदरापन, सख्ती आ जाती है और सघनता आवश्यकता से अधिक आ जाने से वेणी में भी स्वाभाविक सौन्दर्य नहीं आ पाता।

बालों को ५ वर्ष तक कटाना चाहिये; फिर चुटीला डालना प्रारम्भ कर देना चाहिए। यदि बालों में सघनता कम हो तो फिर एक, दो बार उस्तरा फिरवा देना चाहिए और घुटे हुए सिर पर घमरा, सीकाकाई, और आँवला चूर्ण चन्दन-सा, महीन पीसकर तीन दिन तक लेप करना चाहिये। टाइफाइड, चेचक तथा अन्य संक्रामक और भयानक रोगों के पश्चात् उस्तरा फिरवाना अति आवश्यक है।

शरीर की भांति बालों को भी व्यायाम की अत्यधिक आवश्यकता है। यदि नियम पूर्वक व्यायाम किया जाय तो बालों में गंज रोग, बाल झड़ना, आदि पास फटकने भी न पायेंगे।

(१) सफाई से कँघी करने के बाद उँगली के पोरवों से धीरे-धीरे सहलाना शुरू करना चाहिये। फिर धीरे-धीरे सहलाने की गति को बढ़ाते जाना चाहिये; यहाँ तक कि सारा सिर फनफना-सा उठे। १० मिनट तक यह क्रिया चलानी चाहिए।

(२) रात्रि में कुछ मोटे कंघे से तेल लगाने के पश्चात् इस प्रकार बाल काढ़ें कि सिर में कोई रगड़ या खरोंच न लगे; पर बालों पर काफी जोर पड़े। ऐसा करने पर बालों में बिजली-सी निकलती है।

बाल काढ़ने के लिये अधिक मोटे अथवा अधिक महीन दांतों का कँघा हानिकारक है। हां, बाल, सुलझाने और चिकनाने के लिए मोटा महीन कँघा हलके-हलके इस्तेमाल कर सकते हैं।

बालों में तेल लगाने की प्राचीन प्रथा अत्यधिक उपयोगी है। कटोरी में तेल रखकर उँगली से लगाने से बालों की जड़ें मजबूत होती हैं।

बालों को धोना भी बहुत सावधानी पूर्वक होना चाहिये। बालों को सुलझा कर काढ़ने के पश्चात् दो भागों में बांट कर उन्हें धीरे-धीरे निम्नलिखित वस्तुओं से धोना चाहिये। जिससे निम्न लाभ होगा।

(१) आँवला चूर्ण और नींबू का रस—बाल काले, नर्म और मजबूत होंगे।

(२) नींबू और बेर के पत्ते—नये बाल उगेंगे और लम्बे होंगे।

(३) दही—बालों की जड़ें न फटेंगी।

(४) बथुए का साग उबालकर—बाल बेहद नर्म होंगे।

(५) तिल के फूल और गाजर—बाल लम्बे तथा सघन होंगे।

यदि बंगाली महिलाओं की भांति बाल प्रतिदिन तेल लगाने के पश्चात् धो डाले जायँ तो उन्हें अन्य किसी वस्तु लगाकर धोने की आवश्यकता ही न पड़े।

गंज रोग प्रायः ३५ या ३६ वर्ष की अवस्था में होता है। यदि प्रारम्भिक काल में ही देख-भाल तथा उपचार कर लिया जाय तो यह रोग बढ़ नहीं पाता, पर जब वह बढ़ जाता है तब अच्छा होना काफी कठिन हो जाता है।

उपचार—चाय की पत्ती को खूब पानी में उबाल कर उसे ठंडा करके सिर धो डालिये। फिर काली मिर्च और नींबू का रस मिलाकर उससे लगातार तीन दिन तक धोयें। जब फियास और खुजली मालूम हो तो फिर आँवला चूर्ण, कलौंजी चूर्ण लोहे के बर्तन में पीसकर, घोलकर रख दें और आध घन्टे बाद नींबू निचोड़ कर रोज धोते रहें और गरी के तेल में आँवला या घमरा का रस मिलाकर लगावें।

भोजन में भी कुछ दिनों के लिए घी, रोटी, खटाई, मिर्च, तेल, गोश्त, अण्डे कम कर दें। फल, दूध, शाक और मक्खन पर ही रहें। अधिक परिश्रम और आलस्य इन दोनों को ही त्याग दें।

व्यायाम करना कभी न भूलें। रात में जूड़ा या चुटिया कँघी करना विशेष हानिप्रद है। दो ढीली चुटिया या बिना चुटीली की एक चुटिया अच्छी है, पर दिन में बिना पिन या चुटीले के कभी न रहना चाहिये। फियास निकलने पर कुछ लोग उरद, अरहर की दाल पीसकर प्रयोग करते हैं।

बाल फटने पर बथुए का साग उबाल कर या दही या कच्चे आँवले का रस लगाना अत्यन्त लाभकारी है।

बालों को लम्बा करने के लिए—व्यायाम, तेल मर्दन और धोने के अतिरिक्त कुछ ऐसी वस्तुएँ भी हैं जो बालों को बढ़ाने में काफी सहायता पहुँचाती हैं।

(१) गाजर पीस करके लेप करके दो घन्टे बाद धो डालने में काफी लम्बापन आ जाता है।

(२) तिल के फूल पीसकर लेप करना भी उपयोगी है। खुशबूदार तेल लगाना बहुत हानिकारक है। बालों को कस कर बाँधना और उन्हें खुले रखकर उलझाना दोनों ही बालों को कमजोर बनाते हैं।

बाल धोते समय उन पर पानी की मोटी तेज धार कभी न डालनी चाहिये। लोटे से हलका पानी डालकर धोना चाहिये। अगर सादे बाल धोना है, तो हलका जूड़ा कर लेना चाहिए।

रात्रि में बालों को चिमटी, जाली क्लिप आदि से मुक्त कर देना चाहिये। बालों को लम्बा और सघन करने के लिये 'घमहा' अत्यन्त लाभकारी वस्तु है। पहले की छोटी पत्ती और सफेद फूलों का पेड़ कम जगहों में उगता है। कहीं-कहीं इसे भंगराली कहते हैं!

बालों को काढ़ने के अनेक ढंग हैं और ये ढंग सदैव फैशन की चक्की की गति के साथ-साथ चलते रहते हैं और लौटते भी रहते हैं। आज जिस प्रकार का बाल काढ़ना फैशन कहा जाता है कुछ दिनों बाद वही बाबा आदम के जमाने का कह कर हँसा जायेगा। यहाँ बाल सँवारने के आधुनिक ५ ढंग दिये जाते हैं। उनमें से अपने बालों का आकार प्रकार अपनी मुखाकृति और परिस्थितियों का ध्यान रखकर कोई भी ढंग पसन्द किया जा सकता है। सीधी माँग काढ़ना ही आधुनिक फैशन है।

(१) यदि मस्तक संकीर्ण है तो बालोंको ऊपर खींचकर, काढ़कर एक फीता कानों के आगे ठोड़ी के नीचे से बाँध दीजिए; फिर बालों को पीछे झुकाकर चुटिया कर लीजिये। फीता खोलने के पहिले कान के पीछे दो काली चिमटियाँ लगा लीजिये। बाल काफी सुन्दर, फूले और सधे हुए लगेंगे।

(२) यदि मस्तक चौड़ा है तो बाल सीधे खींच कर फिर आधे सिर से पीछे की ओर झुका दीजिये। यदि बाल सघन है, तो दो जूड़े, दो चुटियाँ डालने के पश्चात् काँटों की सहायता से बनाना चाहिये।

(शेष पृष्ठ ३५५ पर)

नेत्र-चिकित्सा पर एक नया अध्ययन

डा० आर० एस० अग्रवाल, नेत्र-विशेषज्ञ, दिल्ली

दृष्टि-शक्ति क्षीण क्यों पड़ती है, आधुनिक डाक्टरों ने इसके अनेक कारण बताए हैं पर उन्होंने सत्य की सच पूछिए तो उपेक्षा ही की है। अमेरिका के प्रसिद्ध के प्राकृतिक चिकित्सक डा० बेट्स ने अपने अन्वेषण तथा अनुभवों से सिद्ध कर दिया है कि मानसिक तथा मन से सम्बन्ध रखने वाली स्नायुओं की कमजोरी ही दृष्टिशक्ति क्षीण होने का वास्तविक कारण हैं।

डा० अग्रवाल भारत के एक प्रसिद्ध नेत्र-विशेषज्ञ एवं प्राकृतिक चिकित्सक हैं। आपके अनेक लेख 'जीवन सखा' में प्रकाशित हो चुके हैं। अब आपने एक लेख माला प्रस्तुत करने का विचार किया है, जिसका यह पहला लेख है। आशा है हमारे पाठक इससे लाभ उठायेंगे ॥ —सं०

आज कल के जमाने में लगभग प्रत्येक मनुष्य को कमजोर दृष्टि की शिकायत हो जाती है। कमजोर दृष्टि के कारण मनुष्य को बहुत सी असुविधायें हो जाती हैं और अनेक बार भयानक नेत्र-रोग पैदा हो जाते हैं। नेत्र-ज्योति बिलकुल खराब हो जाती है और आंख अंधी हो जाती है। कमजोर दृष्टि का इलाज नेत्र-विशेषज्ञ केवल चश्मा लगाना ही बतलाये हैं। परन्तु चश्मा लगाने से नेत्र-दृष्टि ठीक नहीं होती, खराब ही होती चली जाती है।

यदि नेत्र-विशेषज्ञों से यह पूछा जाय कि आज कल नेत्र दृष्टि चश्मा लगाने पर भी ज्यादा कमजोर क्यों होती जाती है और एलोपैथिक चिकित्सक समाज कोई ऐसा इलाज क्यों नहीं ढूँढ सका है जिससे कि कमजोर दृष्टि और भयानक नेत्र रोग पैदा ही न हों तो जवाब मिलता है कि प्रकृति ने नेत्रों के बनाने में बड़ी भूल की है। प्रकृति ने नेत्रों को दूर के पदार्थों को देखने के लिए बनाये हैं न कि लिखने, पढ़ने या और अनेक काम नजदीक से करने के लिये। वे यह भी कहते हैं कि जब मनुष्य जंगल में रहता था, वह शिकार खेलता भेड़ बकरी चराता या खेती करता था। उसकी आँखें बहुत स्वस्थ बनी रहती थीं क्योंकि वह अपनी दृष्टि सिर्फ दूरस्थ पदार्थों को देखने में ही इस्तेमाल करता था। बहुत नजदीक की वस्तुओं को देखने के वास्ते वह अपनी दृष्टि बहुत कम काम में लाता था इसलिये उन पर अधिक जोर नहीं पड़ा करता था। परन्तु नेत्र-विशेषज्ञ अपने इस प्रमाण की पुष्टि में यह कहना भूल गये कि उस समय के आदमियों की स्त्रियाँ जो कातना, बुनना और चित्रकारी करने का काम करती थीं वे भी अपनी दृष्टि आदमियों की तरह अच्छी बनाये रखती थीं।

वे अपना सबूत नीचे लिखी बातों से देते हुए कहते हैं कि जब से मनुष्य ने अपने विचारों को लिखने, पढ़ने के द्वारा प्रकट करना सीखा है तब से नेत्रों को ऐसे ऐसे कामों के कारण बहुत कष्ट करना पड़ गया है। पहले तो थोड़े से आदमियों की दृष्टि ही खराब हुई। फिर धीरे धीरे संख्या बढ़ती गई और आजकल तो लगभग हर किसी को ही कमजोर दृष्टि की शिकायत हो जाती है। २०० या ४०० वर्ष पहिले राजाओं के बच्चों को भी पढ़ना-लिखना नहीं पड़ता था लेकिन आजकल तो हर किसी को स्कूल जाना पड़ता है चाहे वह पढ़ना चाहे या नहीं। यहाँ तक कि छोटे छोटे बच्चे भी किण्डरगार्टेन (Kinder garten) में भेजे जाते हैं। प्राचीन जमाने में किताबें बहुत कीमती और बहुत ही कम मिलती थी आजकल तो हर प्रकार की किताबों की लाइब्रेरी खुली है हर कोई किताब सस्ते दामों में ही लेकर लिख पढ़ सकता है। दीपक की रोशनी से ही पहले लोग सन्तुष्ट रहते थे पर अब तो इससे अनेक प्रकार के कृत्रिम प्रकाश (artificial lights) निकाले हैं। बिजली की रोशनी घर-घर में और दफ्तर में इस्तेमाल करने को मिलती है, मनुष्य रात-दिन बहुत देर तक लिखने, पढ़ने का काम करता रहता है और जब से सिनेमा आगया है तब से नेत्रों को बहुत ही अधिक हानि पहुँची है और पहुँच रही है।

क्या नेत्र-विशेषज्ञों की यह बात ठीक है ? क्या वे प्रकृति को ऐसे नेत्र बनाने में समर्थ नहीं कर सकते जो आजकल की नई मांगों को पूरा करने में समर्थ हो ? उनका कहना है कि "प्रकृति ने न तो ऐसे नेत्र ही बनाये और न बना ही सकती थी। संसार के सूक्ष्म कार्य बहुत कुछ दृष्टि द्वारा ही किये जाते हैं और इन सब कामों के लिये नेत्र बहुत अपूर्व बने हैं।"

इस परिणाम का औचित्य बताने के लिए कुछ तथ्य भी मिल सकते हैं और सम्भवतः जंगली आदमी की भी दृष्टि कुछ खराब हो जाती होगी। आजकल २५ वर्ष से ऊपर के लोगों में दस में से नौ की दृष्टि खराब ही मिलती है और जैसे-जैसे आयु बढ़ती जाती है कमजोर दृष्टि वालों की संख्या बढ़ती जाती है और ४० वर्ष की आयु होने पर तो प्रायः हर किसी की दृष्टि कमजोर पाई जाती है। अनेक ग्रंथ, और आधुनिक सेना सम्बन्धी असाधारण मानदण्ड (Unusual standards of modern army) इन तथ्यों को अच्छी तरह जाहिर करते हैं। परन्तु प्रकृति ने अपने नियमों में कभी भूल नहीं की। लेकिन इसके बावजूद यह तो मनुष्य की शोध की कमी है, जो वह प्रकृति नियमों का ठीक ठीक पता न लगा सका और उससे पूरा पूरा लाभ उठाने में असमर्थ रहा। प्रकृति के नियमों का सदा पालन करते रहने से उसकी दृष्टि में कमी नहीं आ सकती चाहे वह कितना ही बारीक काम क्यों न करे।

लगभग ५०० वर्ष से एलोपैथिक चिकित्सक समाज इस खोज में है कि ऐसे तरीके तलाश किये जायँ जिससे आजकल की सभ्यता के कारण दृष्टि-शक्ति कमजोर न हो सके। जर्मनों ने विशेषज्ञों की सलाहों को कार्य रूप में परिणत करने में बहुत रुपया खर्च किया है परन्तु उसका कोई लाभ नहीं हुआ और अब कुछ विशेषज्ञ मानने लगे हैं कि जो तरीके हमारे बच्चों की दृष्टि को ठीक रखने के लिये ठीक समझे जाते थे उनसे शायद ही कुछ फायदा होता हो।

चश्मे द्वारा कमजोर दृष्टि के इलाज से इसी तरह का फायदा होता है जैसे कि एक लंगड़े को लकड़ी का सहारा। एक यह भी विचार प्रचलित है कि चश्मा लगाने से दृष्टि भविष्य में खराब होने से रुक जाती है परन्तु सच बात तो यह है कि एक बार चश्मा लगाने के बाद दृष्टि गिरती ही चली जाती है। एक प्रसिद्ध डा० सिडलर हुगुनीन (Dr. sidler Huguenin) लिखते हैं कि चश्मा या जो कुछ भी कमजोर दृष्टि के इलाज के साधन हमारे पास हैं, उनसे बहुत थोड़ा ही लाभ रोगियों को पहुँचता है। हम न तो दृष्टि को ज्यादा कमजोर होने से ही रोक सकते हैं और न उन भयानक नेत्र-रोगों को ही जो कमजोर दृष्टि के कारण हो जाते हैं। उनका कहना है कि वह हजारों रोगियों के सम्बन्ध में इस बात का अनुभव कर चुके हैं।

अमरीका के प्रसिद्ध डा० बेट्स (Dr. Bates) ने भी चश्मे या दूसरे तरीकों की उपयोगिता इसी प्रकार देखी कि मर्ज बढ़ता ही गया ज्यों-ज्यों दवा की। परन्तु यह विचार उनको आता था कि यह समस्या ऐसी तो नहीं है कि जिसका हल न हो सकता हो।

डा० बेट्स ने पहले यह खोज करनी शुरू की कि नेत्र-रोग कैसे पैदा होते हैं। उन्होंने ३० वर्ष के घोर परिश्रम से यह खोज निकाला कि हम जो कुछ देखते हैं मन द्वारा (Mind) से देखते हैं। नेत्र तो केवल यंत्र मात्र है और यदि मन (Mind) स्वस्थ रहे तो नेत्र-रोग पैदा नहीं हो सकते। दृष्टि कमजोर होने का बाह्य कारण मन से सम्बन्धित नसों पर पड़ने वाला दबाव है जिसके द्वारा बाहरी दृश्य ठीक-ठीक रूप में अन्दर की सतह पर नहीं फेंका जा रहा है और इसीलिए शिथिलीकरण (Relaxation) उसका इलाज है। अपनी किताब में डा० बेट्स ने अनेक तरीके शिथिलीकरण के बताये हैं और यह तरीके कमजोर दृष्टि जैसे नेत्र रोगों में बहुत ही लाभदायक साबित हुए हैं।

डा० बेट्स की यह खोज वास्तव में आधुनिक मानव-जाति के लिए वरदान के रूप में संसार के अनेक बच्चे, स्त्री और पुरुष उनका यश-गान करते हैं क्योंकि डा० बेट्स के इलाज के तरीकों से उनकी कमजोर दृष्टि को बहुत लाभ पहुँचा है, अंधों को ज्योति मिली है। वास्तव में मसीहा बन कर डा० बेट्स डाक्टरी-संसार में अवतरित हुए।

मैं डाक्टरी की परीक्षा पास करने के बाद से ही नेत्र-चिकित्सा में दिलचस्पी लेता रहा हूं। प्रैक्टिस के शुरू में हर किसी कमजोर दृष्टि वाले को चश्मा देना मेरा कार्य था।

(शेष पृष्ठ ३५८ पर)

सीधा उठना बैठना सीखिए

श्री रामसुजान सिन्हा

सीधा उठना-बैठना व्यायाम या कसरत की पहली सीढ़ी है। जो आदमी सीधे उठ-बैठ नहीं सकता उससे व्यायाम की क्या आशा की जा सकती है? अतः स्वास्थ्यार्थियों को इस पर ध्यान रखना नितान्त आवश्यक है। इस लेख में आप देखेंगे कि इस मामूली सी बात का शरीर पर कितना भारी प्रभाव पड़ता है। साथ ही इस तरह की आदत से छुटकारा पाने के उपाय भी इस लेख में बताए गए हैं। —सं

मनुष्य को अपना स्वास्थ्य ठीक रखना अत्यन्त आवश्यक है। बिना स्वास्थ्य ठीक रखे जीने से क्या लाभ? स्वास्थ्य ठीक रखने के लिए मनुष्य को कई बातें अपने रोजमर्रा के काम में करनी पड़ती हैं। जैसे भोजन सुधार, सूर्य-स्नान, स्वच्छ ज़ल स्नान, कसरत, स्वच्छ वायु का नित्य प्रति सेवन इत्यादि मनुष्य के लिए अत्यन्त ही आवश्यक हैं। केवल ये ही नहीं, स्वास्थ्य के लिए एक साधारण सी बात और है जिसकी तरफ बहुत से लोग ध्यान नहीं देते। वह है नित्य प्रति सीधा उठना, बैठना। अच्छा स्वास्थ्य रखने के लिए सदैव सीधे उठना, बैठना व सीधे ही चलना, फिरना, अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रखता है। यह हमारी भूल है कि इस ओर हम तनिक भी ध्यान नहीं देते।

सीधा उठना-बैठना उसी को कहते हैं जिससे अपनी कमर व गर्दन हमेशा सीधी रहे, झुके नहीं। अपनी कमर को हमें हमेशा सीधी रखना चाहिए। ज्यादातर लोगों का देखा गया है कि वे बैठते हैं तो उनकी कमर सदैव ही झुकी रहती है तथा चलने-फिरने में भी वही हाल रहता है। कमर झुकी हुई रहने से पेट पर दो तीन गुड़ी पड़ जाती है जिससे अन्दर के अवयव तथा पाचन-यन्त्र हमेशा दबे रहते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि हमारी पाचन-शक्ति बिगड़ जाती है और जो भी हम भोजन करते हैं वह ठीक तरह से खून के दौरान में समीकृत (absorbed) नहीं हो पाता जिससे हमारे स्वास्थ्य को हानि पहुँचती है। नया गोश्त नहीं चढ़ता तथा दिन पर दिन दुबले होते जाते हैं पेट में गुड़ी पड़ जाने से खून भी उसी जगह जाकर ज्यादा जमा हो जाता है। खून ही केवल एक ऐसी चीज है जो कि हमें जीवन-शक्ति के अलावा पोषण (Nurition) भी सारे बीज-कोषों (cells) को देता है जिससे उनकी वृद्धि होती है। यह कई बार देखा गया है कि ऐसे लोगों को जो अपनी रीढ़ को सीधा नहीं रखते व जिनकी कमर झुकी रहती है उनको कब्जी शिकायत बनी रहती है और उनका स्वास्थ्य अच्छा नहीं रहता। ऐसे लोगों का स्वास्थ्य तब भी बिगड़ा ही रहता है जब कि वे अच्छा भोजन करते हैं व शुद्ध वायु लेते हैं। बहुधा देखा जाता है कि जिनका स्वास्थ्य इस कारण से गिरा हुआ रहता है वे डाक्टरों के पास जाकर अपनी जांच कराते हैं। डाक्टर उसे कोई बीमारी जानकर दवा या कोई टानिक दे देते हैं जिससे कोई लाभ नहीं होता बल्कि हानि ही होती है। इस प्रकार अपना स्वास्थ्य गिरता देख एक डाक्टर से दूसरे व तीसरे के पास, जाकर अपना पैसा खराब करते हैं? और नुक़सान के सिवाय उन्हें कुछ हाथ नही लगता!

एक व्यापारी का स्वास्थ्य इसी कारण से धीरे-धीरे गिर रहा था। उसके चेहरे पर झुर्रियाँ पड़ गईं थी उसे हमेशा कब्ज़ की शिकायत बनी रहती थी। उसने कई डाक्टरों से अपनी चिकित्सा कराई लेकिन लाभ तनिक भी नहीं हुआ। एक दिन वह एक प्रसिद्ध प्राकृतिक चिकित्सक के पास गया और अपने हाल सुनाया। डाक्टर ने इस पर विचार किया व उसके खड़े होने और बैठने की विधि को देखकर यही परिणाम निकाला कि उसकी कमर झुकी रहना व पेट में दो तीन गुड़ी पड़ जाना ही उसकी अस्वस्थता का कारण है। इसलिए डाक्टर ने उससे कहा कि "महाशय आपके पेट पर दो तीन गुड़ी पड़ी (folds) रहती हैं जो आपकी अस्वस्थता का मूल कारण है"। उन सज्जन को यह बड़ी विचित्र सी बात प्रतीत हुई? उसने डाक्टर को विश्वास

दिलाया कि उसके पेट में कोई गुड़ी पड़ी नहीं है और न वह उसकी अस्वस्थता का कारण हो ही सकता है। लेकिन डाक्टर के जोर देने व उसके कपड़े उतरवाने से डाक्टर की ही बात सत्य निकली—उसके पेट में तीन बड़ी-बड़ी गुड़ी (folds) पड़ी हुई थी। डाक्टर ने उसे भोजन सुधार के साथ, सदैव सीधे उठने, बैठने के लिए कहा तथा दिन में दो बार करने के लिए दो तीन आसन बतलाए जिससे कि उसकी रीढ़ झुकी रहने की आदत छूटे। पहले पहल तो उस को सीधे उठने में बहुत कठनाई मालूम हुई किन्तु बराबर उसी ओर प्रतिदिन ध्यान देते रहने से अन्त में वह आदत छूट गई। कुछ दिनों बाद वह पूर्ण स्वस्थ हो गया। उसका चेहरा भर आया और वजन भी बढ़ा इस प्रकार उसने डाक्टर साहब का अनेक धन्यवाद देकर विदा ली।

इससे हमें विदित होता है कि मनुष्य की मुद्रा (posture) अच्छे स्वास्थ्य के लिये कितना आवश्यक है। बहुत लोग अपनी कमर व गर्दन को सीधा नहीं रखते। उन्हें तो कमर झुकी हुई रहने से तो आराम मिलता है क्योंकि लगातार उसी प्रकार से बैठने व चलने-फिरने की उनकी आदत सी पड़ी हुई रहती है।

पृथ्वी में जो गुरुत्वाकर्षण शक्ति रहती है जिससे पृथ्वी के ऊपर की सब वस्तु उसकी तरफ खिंचती है उसके कारण हमारा शरीर भी उसकी तरफ खिंचता है और यही कारण है कि हमारी कमर झुक जाती है। अतः हमें ध्यान रखना चाहिये कि खिंचाव के कारण हमारी रीढ़ न झुके। लेकिन उसे हम बिलकुल ध्यान नहीं देते।

अगर सीधा न बैठने सकने की आदत पड़ गई है तो वह आदत भी छुड़ाई जा सकती है। उसको अपनी कमर सीधी रखने का सदैव ध्यान रखना आवश्यक है। इसके लिए कुछ आसन भी हैं जैसे अर्थात अर्ध शलभासन, और सर्वासन। इन आसनों को प्रतिदिन करने से यह आदत छूटेगी। इन आसनों में टिड्डासन इसके लिए मुख्य है। इस आदत को छुड़ाने के लिए टिड्डासन को दिन में तीन बार करना चाहिए। टिड्डासन इस प्रकार है। जमीन पर पट लेट जाइए और दोनों हाथों को कमर के समानान्तर पर इस तरह रखिए कि गदेली ऊपर की ओर रहे। फिर एक पैर को धीरे-धीरे ऊपर, जहां तक उठा सके उठाइए और फिर धीरे-धीरे नीचे लाइए इसी तरह दूसरे पैर से करिए। फिर उसी विधि के अनुसार दोनों पैर उठाइए, और नीचे लाइए। पैर जब सबसे ऊपर पहुँच जाएं तो उन्हें दो मिनट तक उसी तरह रखना चाहिए। और फिर नीचे धीरे-धीरे लाना चाहिए। इस प्रकार आठ या दस बार पैर ऊपर नीचे करना चाहिए। यह आसन अगर दिन में तीन बार किया जाय तो अच्छा है।

केश-विन्यास

(पृष्ठ ३५१ का शेषांश)

(३) यदि बाल पीछे बड़े और आगे छोटे हैं और मस्तक भी कुछ छोटा है तो बालों को ऊपर काढ़ कर 'वेव' करवा लेना चाहिये; पर ध्यान रहे कि 'वेव' करवाने के बाद बाल काढ़ने की आशा करना व्यर्थ है।

(४) जिनके माथे कुछ चौड़े है और बाल सघन हैं उनको त्रिवेनी और सामने खूब फूले हुए बाल खूब शोभा देंगे और मुँह यदि बहुत चौड़ा है तो कान ढंक लेना भी बुरा न होगा।

(५) जिसके बाल सामने काफी छोटे हैं और पीछे बड़े, उन्हें सीधे बाल काढ़ने के बाद दोनों कानों के पीछे से एक बड़ी लट निकाल कर सिर के ऊपर से ले जाकर दूसरे कान के पास चिमटियों से कस देना चाहिए; फिर पीछे बाल गिराकर काढ़ लेने से सामने बाल फूल आने पर भी सधे रहेंगे। फिर पीछे लम्बा शाखाकार जूड़ा डाल लेना बहुत ही आकर्षक प्रतीत होगा। सफर या लम्बी सैर में कुछ बाल छोड़ कर सिर में जाल लगाना अच्छा रहता है। बाल बिखरने नहीं पाते। जूड़े के जाल भी अच्छे लगते हैं, पर नव विवाहित बहुओं और लड़कियों को विशेष शोभा देते हैं।

प्रकृति स्वयं चिकित्सक है

डा० शत्रुहन प्रसाद सिंह

आज यह कोई कहने की बात नहीं रह गई है कि जितने रोगी रोग से पीड़ित होकर मरते हैं उससे कहीं अधिक मृत्यु गलत उपचार, या जहरीली दवाइयों के प्रयोग से होती है। दूसरे शब्दों में बड़े-बड़े डाक्टर और वैद्य अपनी दवाओं के प्रयोग से जितने रोगियों को अच्छा नहीं करते उससे कहीं अधिक रोगियों को मार डालते हैं।

रोग मनुष्य की गलतियों का—प्रकृति की अवज्ञा करने का ही—परिणाम है। यह दण्ड प्रकृति उसे भलाई के लिए ही देती है। रोग को हम प्रकृति का उपचार-क्रम या शरीर को शुद्ध एव मलरहित बनाने की क्रिया कह सकते हैं। अनुभवी लेखक के, जो स्वयं एक अनुभवी चिकित्सक एव सेवासदन, मुजफ्फरपुर, के सुयोग्य संचालक हैं, इस सुन्दर लेख का यहीं सार है। —सं०

बीमार होना कोई नियम नहीं। सोना, जागना, लड़के से जवान होना, बूढ़ा होना और फिर मर जाना जैसे बंधे नियम हैं वैसे ही बीमार होना भी किस के लिये अनिवार्य नहीं है। जन्म से मृत्यु पर्यन्त स्वस्थ रहना ही प्राकृतिक नियम है। एक स्वस्थ मनुष्य जब अपने प्रति बहुत अत्याचार करता है तभी बीमार होता है—हाँ, अत्याचार और वह भी बहुत दिनों तक। छोटी-मोटी गलतियों को तो प्रकृति भले ही एक आध बार कर क्षमा कर दें लेकिन यदि कोई अनवरत नियमोल्लंघन ही करता रहे तो उसे वह कदापि क्षमा नहीं कर सकती। प्रकृति इस शरीर रूपी यंत्र को चलाती है वह इसे ठीक रखने की जवाब दे ही लेती है। बशर्तें कि उसके मार्ग में बाधा न डाली जाय, उसके नियमों का उल्लंघन जाय या यों कहिये कि उसे क्रुद्ध न किया जाय। जब उसके मार्ग में बाधा डाली जाती है, उसे ललकारा जाता है उसके नियमों को तोड़ा जाता है तब वह रुष्ट होती है, सजा देती है, किसी की एक भी न सुनती। उत्तेजक पदार्थों का प्रचण्ड दवाओं का, इंजेक्शनों का, झाड़ फूंक का, जादू टोना का उसे भय दिखाया जाता है; वह हंसती है, भयंकर अट्टहास करती है, और कभी तुरन्त कभी देर से घुमा फिरा कर मानव को बेवकूफ साबित करती है। ऐसी सजा देती है जो पहले की साधारण सजा से कहीं भयंकर और दीर्घकाल तक नरक में डालने वाली होती है। वह देवी है, संहारिणी शक्ति है, पर इसके साथ ही वह माँ है दया का सागर संतान वत्सला, शरणागत को उठाने वाली, निराशा में आशा का संचार करने वाली, नरक से स्वर्ग में लाने वाली भी है। गलती करने पर वह सजा देती है। नियम पालन करने पर या गलती के बाद चुपचाप सजा भुगत कर रास्ते पर आ जाने से अमृत घूंट पिलाती, बलवान बनाती, तीक्ष्ण बुद्धि देती और हर तरह से आनन्दमय बनाती है। इस विचित्र, दयालु मां को मानव पहचाने, उसके आदेश पालन करे, इसी में उसका कल्याण है अन्यथा उसे भटकते युग बीत जायेंगे, सुखशान्ति न प्राप्त होगी।

हमारे शरीर में हमेशा कुछ ऐसी चीजें होती हैं जिनकी शरीरों को कोई आवश्यकता नहीं होती। जो सर्वथा त्याज्य हैं। इन त्याज्य वस्तुओं को शरीर अपने से बाहर फेंक देती है इनसे अपना पिण्ड छुड़ा लेती है यह शरीर का नित्य काम है, एक साधारण व्यापार है। इन्हें बाहर निकालने के लिये शरीर में चार द्वार है। मल द्वार, मूत्र मार्ग, रोम कूप और श्वांस नली। जब मनुष्य अपने अनुचित खान-पान या रहन-सहन से ऐसी स्थिति पैदा कर देता हैं कि ये द्वार इन त्याज्य पदार्थों को पूर्णतः निकालने में असमर्थ होते हैं तो ये भीतर रुकने एवं बुराई पैदा करने लगते हैं और इन्हें हम विकार कहते हैं। बुरे आचरणों का सिलसिला जारी रहने से विकार बढ़ते जाते हैं, उपर्युक्त द्वार दिन-दिन और असमर्थ होते जाते हैं जिससे विकारों की वृद्धि और भी अधिक होती है। विकारों का साधारण द्वारों से सामान्य रीति से निकलना असम्भव हो जाने पर प्रकृति उन्हें असाधारण,

मार्गों से, असाधारण ढंग से, बाहर निकालने का प्रयत्न करती है क्योंकि ये सर्वथा त्याज्य है, अग्राह्य हैं, बर्दाश्त नहीं किए जा सकते। भले के लिये इन्हें बाहर निकालना ही चाहिये। इस तरह असाधारण ढंग से विकारों को बाहर निकालने में जो कस-मकश होता है, तूफान बरपा होता है उसमें तकलीफ मालूम होती है, बेचैनी सी जान पड़ती है और तब हम इसे रोग का नाम देते हैं।

इस रोग को हमें समझना चाहिये, अपनी गलती का खयाल करना चाहिये। सोचना चाहिये कि हमने जो अपराध किये हैं उनका प्रायश्चित हमें करना पड़ रहा है। प्रायश्चित भी अपने ही भले के लिये क्योंकि अगर ये विकार शरीर में रह जाते, इन गलतियों का सिलसिला जारी रहता तो हमारा भयंकर अपकार होता। हम धीरे-धीरे निष्क्रिय होते जाते, जीवन बेकार हो जाता और अन्त में अकाल मृत्यु हो सकती थी। किन्तु प्रकृति माता ने जो बराबर हमारी भलाई के लिये सचेष्ट है हमारे विकार की सफाई आरम्भ कर दी है असली रोग की चिकित्सा कर रही है। हम जिसे रोग कहते हैं वह वास्तव में चिकित्सा है। अतएव हम इससे डरें नहीं, इसे शत्रु नहीं मित्र समझे, इसका स्वागत करें। ऐसा समझ कर हमें प्रकृति मार्ग में बाधा नहीं डालना चाहिये बल्कि उसका मार्ग प्रशस्त करना चाहिये। प्रकृति सारा काम सुन्दरता से कर लेगी। वह स्ययं चिकित्सक है।

अगर हमने अज्ञानवश ऐसा नहीं सगझा और अग्नी तकलीफ को भूत, डायन, या रोग पैदा करने वाले कोटाणुओं का फसाद समझकर झाड़-फूंक कराने लगे, उत्तेजक पदार्थों का सेवन करने लगे, दवाओं का जहर पीने लगे, या डाक्टरों के ब्रह्मास्त्र सूई शरीर में भोंकवाने लगे तो प्रकृति के मार्ग में बाधा पड़ती है, उसका सफाई का काम बन्द हो जाता है, उसकी चिकित्सा रुक जाती है। ऐसा करने से कभी-कभी तो तात्कालिक ही स्थिति भयंकर हो जाती है कि तुरन्त लेने के देने पड़ जाते हैं और नहीं तो प्रायः तकलीफ उस समय के लिये बन्द हो जाती है और हमारी भावी भयंकर तकलीफों का प्रोग्राम बन जाता है। काश, इस प्रोग्राम को हम जान पाते!

बार-बार अपनी इस तरह के भूलों के कारण मनुष्य जीर्ण रोगों के फन्दे में फंस जाता है। पहले के विकार रहते ही हैं आगे भी विकार इकट्ठे होते हैं और उनसे भी बढ़कर तो विकार आ जाते हैं दवाओं के रूप में। दवायें विसदृश पदार्थ होने के कारण स्वतः विकार हैं और अपना गहरा असर डालती हैं। धीरे-धीरे जीवन-शक्ति क्षीण हो जाती है और तब वह एक बार जोरों से विकारों को निकालने का आन्दोलन नहीं कर सकती। मानव उन विकारों के बोझ से दब कर कराहता रहता है तिल-तिल कर मरता है। इसी को जीर्ण रोग कहते हैं। जीर्ण रोग का रूप क्या है और किस तरह होता है यह स्वतः एक खास विषय है। इस पर एक अलग लेख लिखा जा सकता है।

हाँ, तो क्या जीर्ण रोग से पिण्ड नहीं छूट सकता! छूट सकता है। प्रकृति माता दयालु है। जभी इसकी शरण में आ जाइये, इसके नियमों पर चलने लगिये वह दया दृष्टि डालती है, स्वास्थ्य में सुधार होने लगता है। फिर वही बात। प्रकृति स्वयं चिकित्सक है। उसके मार्ग की बाधायें हटा दीजिये, उसका मार्ग प्रशस्त कीजिये, नई-नई बाधायें मत डालिये वह चिकित्सा-कार्य खुद कर लेगी।

किन्तु जीर्ण रोग से छुट्टी पाना आसान नहीं है। इसके लिए धैर्य चाहिये, विश्वास चाहिये। घबड़ाइये मत। बहुत बड़ी-बड़ी गलतियों के बाद, बहुत दिनों की असावधानी से जीर्ण रोग होता है अतः इससे छुट्टी पाने में समय लगता है। आपका काम है प्राकृतिक नियमों का पालन करना। रोग-निवारण का कार्य प्रकृति पर छोड़ दीजिये। उपचार

की मियाद मत बांध दीजिये। शीघ्र अच्छा होने के लिये प्राकृतिक चिकित्सा के विविध उपचारों का तांता मत लगा दीजिये। धीरे-धीरे बढ़िये। समय आयेगा, आप देखेंगे कि आपकी काया कंचन हो गयी। नया जीवन पा जाइयेगा और कह उठियेगा वास्तव में प्रकृति स्वयं चिकित्सक है'। सेवा-सदन के कितने ही मरीजों के इलाज में मैं घबड़ा उठा हूँ, मेरा धैर्य छूटने लगा है पर विश्वास के साथ मरीज को प्रकृतिक नियमों पर रखता गया हूं, और अन्त में देखा है कि रोगी ने बहुत ही सुन्दर ढंग से स्वास्थ्य लाभ कर लिया। मैं कहता हूँ कि यह कोई कोई कोरा सिद्धान्त नहीं, कोई भावना नहीं, दिन-रात यही बात व्यवहार में सत्य उतरती है। अन्य प्राकृतिक चिकित्सकों की तरह मैंने भी असंख्य जगहों पर अपने असंख्य मरीजों पर इस सिद्धान्त को सत्य होते देखा है। सोचा हैं, विचारा है, आंखों देखा है और तब माना है कि प्रकृति स्वयं चिकित्सक है।

नेत्र-चिकित्सा पर एक नया अध्ययन

(पृष्ठ ३५३ का शेषांश)

जरूरत होने पर आपरेशन भी करता, दवाई भी देता। धीरे-धीरे कुछ आयुर्वेद की नेत्र-चिकित्सा पढ़ने का शौक हुआ। सुश्रुत से लिखी दवाइयों और इलाज आदि की जानकारी बढ़ाई, अनुभव किया कि उनमें बहुत कुछ सत्य छिपा है। परन्तु यह इलाज नेत्र-रोगों की चिकित्सा के वास्ते पर्याप्त नहीं है।

परन्तु, जब से डाक्टर बेट्स के प्राकृतिक इलाज के तरीकों को जाना है तब से कमजोर दृष्टि के व नेत्र-रोगों के इलाज में बहुत सफलता हुई है। मैं स्वयम् पहले ९ वर्ष तक चश्मा लगाता रहा था पर डाक्टर बेट्स के इलाज से एक मास में अपने नेत्रों को ठीक कर लिया। एक विद्यार्थी जो बचपन से एक आँख से अन्धा था—डेढ़ मास में अच्छा हो गया। मुझे ऐसा लगता था कि कोई शक्ति मुझे पीछे से सहायता कर रही है और मुझे मजबूर कर रही है कि मैं अच्छी तरह डाक्टर बेट्स के इलाज के तरीकों का अध्ययन करूँ।

इस तरह मैंने हर तरह की नेत्र-चिकित्सा को सीखा और सब में से तत्व खोज कर एक जगह इकठ्ठा कर लिया। मैं समझता हूँ कि हर एक प्रकार की नेत्र-चिकित्सा जैसे औषधियाँ, आपरेशन, चश्मा, डाक्टर बेट्स के प्राकृतिक इलाज के ढङ्ग—ये सब ही सहायक हैं, काम की चीजें हैं परन्तु शिथिलीकरण विधियों (Rlaxation methods) का उपयोग हर एक किसी रोगो पर करने की आवश्यकता है क्योंकि उनके द्वारा ही हम नेत्रों को लगातार खराब होने से रोक सकते हैं, भयानक रोगों पर काबू पा सकते हैं।

ये उपाय इतने सरल हैं कि जरा सा ध्यान देने पर हम भविष्य में बहुत बड़े कष्ट का सामना करने से बच जाते हैं।

मैं अपनी इस पुस्तक* में हर तरह की नेत्र-चिकित्सा सम्बन्ध की अपने अनुभूत प्रयोगों तथा अनुभवों का जनता के लाभ के लिये लिपिबद्ध करता हूँ।

अब हम पाठकों की पूरी जानकारी के लिये जिससे वे तरीकों का पूरा-पूरा अध्ययन कर सकें—एक लेख माला प्रस्तुत करने का विचार कर रहे हैं। अब अगले लेख में आँखों की बनावट और अन्दर वे अपना कार्य कैसे करती हैं इस पर प्रकाश डालेंगे।

---

*डा० अग्रवाल की नेत्र चिकित्सा सम्बन्धी यह पुस्तक अग्रवाल नेत्र-चिकित्सागृह (Dr. Agarwals Eye Institute, Delhi दिल्ली के पते से मिल सकती है।

अपने विचार

एक नैतिक बीमारी

मनुष्य को पूर्ण स्वस्थ तभी कहना चाहिए जब कि उसके शारीरिक, मानसिक और नैतिक ये तीनों पहलू पूर्ण स्वस्थ अवस्था में हों। संसार की प्रायः सभी प्रचलित चिकित्सा-प्रणालियाँ शारीरिक व्याधि का ही उपचार करती हैं—उनमें शारीरिक रोगों के उपचार का ही विधान मिलता है—मानसिक या नैतिक व्याधियों की तो उनमें प्रायः पूर्णतया उपेक्षा ही की गयी है। किन्तु नैसर्गिक चिकित्सा-प्रणाली स्वास्थ्य के इन दोनों पहलुओं पर भी उतना ही ध्यान रखती है जितना कि शारीरिक व्याधियों के उपचार के सम्बन्ध में। इसी लिये इसका दायरा भी अन्य प्रचलित प्रणालियों की अपेक्षा बहुत बड़ा है। इस चिकित्सा-प्रणाली को 'नैसर्गिक' कहते हैं। क्योंकि यह अलौकिक है!

शरीर की सारी क्रियाओं का संचालन मन के ही निर्देश से होता है। इस शरीर रूप रथ का सारथी मन ही है। मनः स्थिति पर ही उसकी जीवन-यात्रा पूर्णतया निर्भर करती है। यदि वह स्वस्थ, विकार-रहित तथा उन्नत स्थिति में है तो निःसन्देह उसका शारीरिक स्वास्थ्य भी सर्वथा सन्तोषजनक होगा। किन्तु यदि वह इसके सर्वथा विपरीत अवस्था में है तो निश्चय ही उसकी जीवन-यात्रा सुखशान्ति पूर्ण कदापि नहीं हो सकती। मन से सम्बंधित व्याधियों की एक और भी विशेषता है। वह यह कि शारीरिक व्याधियों का कष्ट या परिणाम तो केवल व्यक्ति विशेष को ही भोगना पड़ता है किन्तु मानसिक व्याधियों का कुप्रभाव केवल उससे पीड़ित होने वाले व्यक्ति पर ही नहीं बल्कि उस समूचे समाज पर भी पड़ता है जिसके बीच वह रहता है। इस दृष्टि से मानसिक या नैतिक बीमारी की भयानकता, उसकी संहारकारिता, शारीरिक व्याधियों के मुकाबले में कहीं अधिक होती है।

आजकल हमारा देश, जब कि वह स्वतंत्रता की देहरी पर पहुँच गया है, दुर्भाग्य से कुछ कतिपय प्रतिक्रियावादी व्यक्तियों के गलत पथ-प्रदर्शन में पड़कर एक ऐसी नैतिक व्याधि के चगुल में फँस गया है जिसका परिणाम बहुत ही निराशाजनक तथा अन्धकारपूर्ण जान पड़ता है। जहाँ तक हम निसर्गोपचारकों का सम्बन्ध है, हम इसे भी अन्य शारीरिक व्याधियों की ही भांति समझते हैं और हमारा ख्याल ही नहीं विश्वास भी है कि इस व्याधि का भी उपचार हो सकता है। आजकल हमारे देश में फैली हुई यह नैतिक बीमारी, जिसके बाह्य लक्षण, लूटमार, अग्निकाण्ड, हत्या तथा संहार के रूप में व्यापक रूप से प्रकट हो रहे हैं, व्यक्तिगत, वर्गगत या जातिगत विद्वेष के ही कारण हुई है। कलह इसका सामान्य लक्षण है। इस व्याधि का उन्मूलन केवल निसर्गोपचार द्वारा ही हो सकता है। इसका उपचार सम-दृष्टि में निहित है। मनुष्य अपनी ही भांति दूसरे मनुष्यों को समझे, दूसरों के प्रति सहिष्णुता, सद्भाव और सहानुभूति रक्खे, अपने दृष्टिकोण को व्यक्तिगत, दल गत या जातिगत लाभ तक ही सीमित न रखकर सम्पूर्ण मानव-जाति के लाभ तथा कल्याण के लिए विस्तृत बनायें—इसी से वह अपना, अपने समाज का, देश का, राष्ट्र का उद्धार कर सकता है। मनुष्य होकर पाशविक आचरण करना न तो उस व्यक्ति, वर्ग या जाति के लिए कल्याणकारी हो सकता है और न देश या राष्ट्र के हीं लिए। यदि वह ऐसा नहीं करता तो उसका अधःपतन अवश्यम्भावी है। मनुष्य मानव बने—मानवता को समझे उसकी कद्र करे—इसी पर उसके जीवन की सार्थकता, उसके समाज की अभिवृद्धि और उसके देश तथा राष्ट्र का अभ्युत्थान अवलम्बित है। यदि वह इस व्याधि से छुटकारा नहीं पा जाता तो न तो वह अपना कल्याण कर सकता है, न देश का या न राष्ट्र का।

कृतज्ञता-प्रकाश

श्री मानिकचन्द डागा, सरदार शहर (बीकानेर) 'जीवन सखा' के प्रचार के लिए १०१ रु० दिए हैं। इसके लिए हम उनके प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करते

हैं। 'जीवन सखा' इसी प्रकार के अपने प्रेमियों के सहयोग एवं साहाय्य को अपनी निधि समझता है और इसी बल पर यह अपने पथ पर दृढ़तापूर्वक अग्रसर हो रहा है। इस धन का इसके निमित्त समुचित रीति से उपयोग किया जायगा।

हम कुंवरानी जगदीशप्रसाद साहिबा के भी विशेष अनुग्रहीत हैं, जिन्होंने बराबर की भांति इस वर्ष भी 'जीवन सखा' के सहायतार्थ ५१ रु० भेजे हैं। आपकी यह उदारतापूर्ण सहायता 'जीवन सखा' को पिछले ३-४ वर्षों से नियमित रूप से प्राप्त हो रही है।

अन्धों को 'दृष्टि' प्राप्त होगी

विगत महायुद्ध के दिनों में विद्युत्कणों सम्बन्धी विज्ञान में काफी अनुसंधान हुआ है और वैज्ञानिक लोग आज विद्युत्-कणों के प्रेषण की ऐसी विधि खोज निकलने के प्रयत्न में है, जिससे अन्धों को भी दृष्टि प्राप्त हो सके। इसके लिए वे ऐसे उपाय की खोज में हैं। इसके द्वारा आंखों से देखी जा सकने वाली दृश्य वस्तु; कानों से सुनी जा सकने वाली ध्वनि में परिवर्तित की जा सके। इस सिलसिले में पहले कई विधियां निकाली भी जा चुकी हैं। किन्तु वे इतनी अच्छी नहीं है। आज अनेक ब्रिटिश आविष्कारक इस यत्न में हैं कि चलते समय अंधों की राह में जो अड़ंगे पड़ें, उनकी और उनकी दूरी तथा दिशा की पूरी सूचना अंधे व्यक्ति के कानों को मिल सके। यह कार्य रेडार की प्रणाली से काम लेकर पूर्ण किया जा सकता है। शत्रु के दूरस्थ विमानों का पता जिस प्रकार रेडार द्वारा मिल सकता था, उसी प्रकार मार्ग की बाधाओं की सूचना नये यंत्र द्वारा नेत्रहीन व्यक्ति को मिलती रहेगी और उनसे बचने के लिए वह मुड़ जाया करेगा। रेडार में उक्त सूचना, मार्गविरोधी वस्तु के उच्च शक्ति के वेग में परिवर्तित होने के कारण प्राप्त होती थी, और इसी प्रकार नये यंत्र से अंधे व्यक्ति को भी आवश्यक सूचना प्राप्त होती रहेगी। यद्यपि रेडार ५० गज की दूरी के भीतर की वस्तु का पता नहीं दे सकता, किन्तु नये यंत्र में यह कठिनाई निकाल देने का यत्न किया जा रहा है।

जीवन सखा के पंजाबी पाठकों के लिए शुभ-समाचार

जीवन सखा के पंजाबी पाठकों को यह जान कर अत्यन्त हर्ष होगा कि उनकी सेवा के लिये अमृतसर में एक प्राकृतिक चिकित्सालय खोल दिया गया है।

यहां पर हर तरह के पुराने व नये रोगों की चिकित्सा प्राकृतिक ढंग से की जाती है—जैसे दमा, गठिया, बवासीर, पेचिश, अधरंग, नपुंसकता, पुरानी खांसी, मलांत्र-प्रदाह (एपेन्डिसाइटिस) चर्मरोग, इत्यादि। पत्र-व्यवहार द्वारा भी चिकित्सा की जाती है। पत्र-व्यवहार कृपया निम्न पते पर करें:—

डा० जसवंत सिंह C/O सरदार नंदसिंह
फ्लावर्स कन्ट्रैक्टर बाबा अटल साहिब, अमृतसर

प्रश्नोत्तर

[इस स्तम्भ में जिज्ञासु पाठकों के प्रश्नों के उत्तर दिए जाते हैं। पाठकों को चाहिए कि वे एक बार दो से अधिक प्रश्न पूछने का कष्ट न करें और जहां तक हो सके अपने प्रश्न संक्षेप में ही लिखें। ध्यान रहे कि इस स्तम्भ का एक महत्त्वपूर्ण उद्देश्य यह है कि किसी एक व्यक्ति की जिज्ञासा का लाभ दूसरे पाठक भी उठावें।

प्रश्नों के भेजने के सम्बन्ध में आवश्यक नियम यह है कि प्रश्नों को प्रश्नोत्तर कूपन के साथ भेजा जाय। प्रश्नोत्तर कूपन कवर के तीसरे पेज के नीचे दिया गया है। सं०—]

प्रश्न १—आँत का नीचे उत्तर जाना क्या होता है। इसके कारण व लक्षण क्या हैं? इसका स्वास्थ्य पर क्या प्रभाव पड़ता है? इसका प्राकृतिक उपचार क्या है! इस रोग के साथ क्या दूसरी व्याधियाँ भी हो सकतीं हैं?

यदि हो सके तो निम्न प्रश्न पर भी प्रकाश डालिये—

ऐलोपैथी प्रणाली में इस रोग की क्या चिकित्सा है तथा उसमें उसे कहाँ तक सफलता मिली है?

प्रश्न २—सीने की शीघ्राति शीघ्र वृद्धि तथा कमर का कुबड़ापन मिटाने के लिये क्या करना चाहिये। तथा इनके कारण क्या हैं।

यदि प्रश्न १ व प्रश्न २ के सभी रोग साथ साथ हों तो क्या करना चाहिये?

निहालचन्द्र जैन, नरसिंहगढ़ राज्य।

उत्तर—इस किस्म की 'हर्निया' प्रायः कमजोरी से हुआ करती है। शरीर कमजोर होने पर माँसपेशियाँ भी कमजोर हो जाती हैं। उस हालत में कब्जियत की पुरानी शिकायत होने, उस स्थान की माँसपेशियों पर दबाव पड़ने या एकबारगी झटका लगने पर वहाँ का छिद्र फट जाता है और तब बोझ से दबी हुई आँतों के नीचे की नलिका में प्रवेश कर जाने पर, यह 'हर्निया' की बीमारी हो जाती है। 'हर्निया' की बीमारी अण्ड-कोष के एक तरफ, पेड़ू और जंघा के जोड़ में, या दोनों तरफ हो सकती है। यदि यह दोनों तरफ है तो उसे 'डबल हर्निया' कहते हैं। अण्डकोष का फूल जाना, उस स्थान में पेड़ू में भारीपन मालूम होना या उस स्थान का फूल जाना इस रोग के सामान्य लक्षण हैं। कभी कभी पेड़ू में उस स्थान पर दबाने से गुड़गुड़ाहट सी आवाज होती है और आँत नीचे उतरी सी जान पड़ती है। आँतें उतरने पर असाधारण पीड़ा, बेचैनी और कभी-कभी तो प्राणान्तक कष्ट होता है। इस प्रकार की उग्र अवस्था में रोगी की मृत्यु तक हो सकती है। इसके विपरीत यह भी देखा गया है कि कभी-कभी आँत उतरने पर रोगी को बिलकुल कष्ट नहीं होता। वह धीरे से अपनी आँतें फिर ऊपर चढ़ा लेता है। इसका साधारण स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ना स्वाभाविक ही है। 'हर्निया' का रोगी स्वस्थ नहीं रह सकता। कब्जियत ही इसकी मुख्य जड़ है।

ऐलोपैथी में इसके दो ही इलाज हैं—एक तो 'हर्निया' की पेटी (Truss) लगाना और दूसरा अपरेशन। इसके अपरेशन में उस नलिका का मार्ग सिल देते हैं जिससे आँत उतरती है। इस प्रकार यह जाहिर है कि अपरेशन के बाद डाक्टर इस बात की गारन्टी नहीं कर सकता कि अब उसे यह बीमारी फिर होगी ही नहीं। अपरेशन करने पर भी यह बीमारी फिर हो सकती है। इसकी प्राकृतिक चिकित्सा 'हर्निया की पेटी' के इस्तेमाल के साथ आरम्भ करनी चाहिए। पेटी को बराबर पहने रहना चाहिये अर्थात् आँत को किसी हालत में भी उतरने न दिया जाय। रात में पेटी उतार कर सोना चाहिए। इसके बाद ही वे उपचार किये जायँ जो यहाँ बताये जाते हैं। इसके लिए रोगी को लिटा दिया जाय और जिस तरफ की आँत उतरती है पेड़ू के उस भाग पर वृत्ताकार (circular massage) मालिश की जाय। अगर दाहिने तरफ यह शिकायत हो तो दायें से बायें हाथ घुमाकर मालिश की जाय और अगर बायें तरफ हो तो मालिश के लिए बायें से दायें

हाथ घुमाया जाय। यह मालिश सुबह-शाम दोनों वक्त ५ मिनट से आरम्भ करके क्रम-क्रम से १० मिनट तक ले जाना चाहिये। रात के सोते समय पेड़ू पर मिट्टी की पट्टी, कटि-स्नान, के अलावा यहाँ बताए गए आसन भी विशेष लाभदायक होंगे—सर्वाङ्गासन, अर्ध सर्वाङ्गासन, पश्चिमोत्तान-भुजंगासन, और शलभासन। आहार ऐसा हो जो जल्द पच जाने वाला और कब्ज न करने वाला हो। एनिमा का बराबर उपयोग करके आँतों को साफ और मल-रहित रक्खा जाय। इस प्राकृतिक उपचार से रोगी को शारीरिक शक्ति के अनुसार, शीघ्र या कुछ समय बाद इस बीमारी से स्थायी रूप से छुटकारा पाया जा सकता है।

२—कूबड़पन के कई प्रकार हैं। एक तो वह है जो जन्म-जात है। इस तरह के कूबड़पन का कोई इलाज नहीं। किन्तु यदि शारीरिक दुर्बलता, शक्तिहीणता के कारण कमर टेढ़ी पड़ गयी या झुकगयी है तो उसके लिये उपचार बताया जा सकता है। गुप्तेन्द्रिय की बीमारी के कारण ज्यादातर कूबड़पन आ जाता है। कमर सीधे करने के लिए क्या उपाय है यह 'जीवन सखा' के इसी अंक में 'सीधे उठना बैठना सीखिए' शीर्षक लेख में बताया गया है, उसे एक बार पढ़ जाइए और उसमें जो आसन बताए गए हैं उन्हें नियमित रूप से करना चाहिए! सीने की वृद्धि के लिए कई प्रकार की कसरते हैं इनमें से अपनी सुवधा और स्वेच्छानुसार कोई भी चुन ली जा सकती है। सीना बढ़ाने बढ़ाने के लिए सांस की क्रियाएं भी बहुत जरूरी हैं।

यदि रोगी में 'हर्निया' और कूबड़पन ये दोनों शिकायतें मौजूद हो तो यहां पर बताए गए दोनों उपचार साथ-साथ चलाने चाहिएं।

प्रश्न—मैं बहुत दिनों से एक प्रश्न के उत्तर के उधेड़ बुन में हूं। वैद्यक की पुस्तकों व 'स्नानों' (जल-चिकित्सा आदि) की पुस्तकों में भी यह लिखा है कि जब औरत 'मासिक-धर्म' से हो तब उसे नहाना बन्द कर देना चाहिए। वह समझ में नहीं आता क्यों! मेरे खयाल से बराबर नहाते रहना चाहिए क्योंकि नहाने से जो कुछ भी उन दिनों की परेशानी होगी वह दूर होती जाएगी तथा अगर कोई रोग है तो वह भी शान्त हो जायगा। कृपया इस पर प्रकाश डालियेगा।

—फूलचन्द्र, भदोरा, टीकमगढ़

उत्तर—मासिक धर्म के दिनों में स्नान के सम्बन्ध में आपके विचार केवल 'विचार' ही है। अनुभव की दृष्टि से यह बात साफ जाहिर है कि शीतलता से मांसपेशियों में संकोचन होता है। ठंडा स्नान मासिक स्राव से सम्बधित पेशियों में संकोचन उत्पन्न करता है। फलतः मासिक धर्म रुक जाने (एमीनोरिया), कष्ट के साथ मासिक-स्राव होने तथा अन्य प्रकार की भयानक व्याधियाँ हो सकती हैं। इसलिए 'मासिक धर्म' के दिनों में न केवल शीतल जल से स्नान न करना बल्कि ठंडे जल में पैर भी न पड़ने देना चाहिए। यदि स्नान करना बहुत जरूरी हो तो किसी बन्द कमरे में और गुनगुने गरम जल से ही स्नान करके बदन अच्छी तरह पोंछ कर कपड़े पहन लेना चाहिए। —डा० बालेश्वर प्रसाद सिंह

सूचना

जीवन सखा १।।) में पुस्तकालयों को रियायती मूल्य पर देने की जो विज्ञप्ति हम अभी तक प्रकाशित कर रहे थे, उसकी अवधि अब समाप्त हो गई है, अस्तु अब जीवन-सखा ३) में ही ग्राहकों को साल भर तक उपलब्ध हो सकेगा।

—व्यवस्थापक

स्वास्थ्य सम्बन्धी सर्वोत्तम और नवीनतम पुस्तकें

कविराज महेन्द्रनाथ पाण्डेय की स्वास्थ्य सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण कृतियाँ प्राकृतिक रोगोपचार के प्रेमियों के बीच कितनी लोकप्रिय हुई हैं यह कहने की बात नहीं। इनकी प्रत्येक पुस्तक की अत्यधिक मांग ही उनकी लोकप्रियता का सहज प्रमाण है। आपकी नयी युक्तियां निम्नलिखित हैं।

(१) **हमारे बच्चे**—शिशु विज्ञान को भली भांति समझने के लिए यह पुस्तक प्रत्येक गृहस्थी के लिए अनिवार्य है मूल्य १॥।)

(२) **जीवन तत्त्व**—जैसा इस पुस्तक का नाम है वैसा इसका विषय भी। इस विटामिनों खनिज लवणों, प्रोटीन आदि पर विस्तृत अध्ययन के साथ प्रकाश डाला गया है। मूल्य १॥)

(३) **फलाहार चिकित्सा**—फलों द्वारा किस प्रकार चिकित्सा होती है—इनमें क्या गुण हैं—आदि बातों पर प्रकाश डाला गया है। मूल्य २)

(४) **स्वास्थ्य के लिए शाक तरकारियाँ**—शाक तरकारी के सम्बन्ध में वैद्यक शास्त्र से लेकर आजतक के वैज्ञानिक अनुसंधानों एवं प्राकृतिक चिकित्सा के आधार पर लिखी पुस्तक। द्वितीय संस्करण मूल्य १॥)

(५) **मठा और उसके गुण**—मठे से स्वास्थ्य कैसे बनता है—यह रहस्य इस पुस्तक में निहित है। मूल्य ॥≡)

(६) **आँख का अचूक इलाज**—चश्मा छोड़ने की अनुभूत विधि बतानेवाली पुस्तक। द्वितीय संस्करण मूल्य २)

(७) **जुकाम**—इसमें जुकाम, ब्रोंकाइटिस दमा, खाँसी, निमोनिया आदि रोगों का अचूक इलाज बताया गया है। मूल्य १॥)

(८) **शहद के गुण और उपयोग**—शहद के सम्बन्ध में पूर्ण जानकारी व इलाज जानने के लिए पुस्तक अवश्य पढ़ें। मूल्य ॥।)

(९) **हमारा भोजन**—अपने विषय की नवीन और बे जोड़ पुस्तक। जीवन दायक भोजन क्या है, कैसे ग्रहण किया जाय रोग निवारक शक्ति कैसे बढ़े आदि प्रश्नों का उत्तर पुस्तक में पढ़िए। मूल्य ४)

(१०) **तपेदिक**—राजयक्ष्मा या तपेदिक का ठीक ठीक कारण, लक्षण और उसकी चिकित्सा पद्धति का ज्ञान इस पुस्तक को पढ़ने से ही हो सकता है। मूल्य ४)

(११) **दूध चिकित्सा**—दूध में क्या गुण है, इससे जीवनी शक्ति किस तरह बढ़ती है यह उपयोगी वर्णन इस पुस्तक में पढ़िए। मूल्य ४)

(१२) **भोजन ही अमृत है**—इस पुस्तक का विषय एकदम भिन्न है। इस पुस्तक में बताया गया है कि किस रोग में क्या भोजन करना लाभदायक होता है। मूल्य १॥।)

मंगाने का पता—

स्वास्थ्य ग्रन्थ भंडार

२८७, बादशाही मंडी, प्रयाग।

पढ़िये ! **लाभ उठाइये !!**

सुन्दर, स्वस्थ और सुखी जीवन के इच्छुकों को

ये पुस्तकें पढ़नी चाहिए

(१)	शक्ति-दर्शन—श्री शंकरलाल तिवारी	१)
(२)	बच्चों की रक्षा—लुई कूने	॥=)
(३)	मैं निरोग हूँ या रोगी ?—लुई कूने	॥=)
(४)	स्वास्थ्य के नुस्खे—'जीवन सखा' कार्यालय	।)
(५)	क्या और कैसे खायं—डा० बालेश्वर प्रसाद सिंह	।=)
(६)	ब्रह्मचर्य ही जीवन है—स्वामी शिवानन्द	१॥)
(७)	आनन्दमय जीवन—श्री शंकरलाल तिवारी	॥)
(८)	कब्ज या कोष्ठबद्धता : डा० बालेश्वरप्रसाद सिंह	१)
(९)	प्राकृतिक चिकित्सक—श्री रामनारायण दुबे	७॥)
(१०)	फलाहार—श्री नारायणप्रसाद अरोड़ा	१)
(११)	आसन—डा० बालेश्वर प्रसाद सिंह	३॥)
(१२)	प्राकृतिक चिकित्सा—श्री रामनारायण वर्मा	३)
(१३)	हम सौ वर्ष कैसे जीवें : श्री केदारनाथ गुप्त, एम० ए०	१॥।)
(१४)	आरोग्य-साधन—महात्मा गाँधी	॥।)
(१५)	स्वास्थ्य साधन—श्री रामदास गौड़	३॥)
(१६)	दवाओं से बचो—श्री गंगाप्रसाद गौड़, 'नाहर'	१)
(१७)	उपवास चिकित्सा—श्री रामचन्द्र वर्मा	२)
(१८)	मूत्राशय और पित्त की पथरी एवं शूल की प्राकृतिक चिकित्सा—डा० रमाचरण	।=)
(१९)	आहार ही औषधि है—डा० लक्ष्मी नारायण रत्रा	१।)
(२०)	Your diet in health & disease by Harry Benjamin	1-4-0
(२१)	Food-de-Medicine by Dr, L. N. Ratra, H. M. B.	1-2-0
(२२)	Bettersight without glasses by Harry Benjamin	3-12-0
(२३)	Practical Nature cure Dr. K. Lakshman Sharma.	8-8-0
(२४)	Constipation and Dyspepsia	1-8-0
(२५)	Gems of health by Dr. Jatashankar Nandi	2-0-0
(२६)	Drugless healing by L. Kameshawar Sharma	1-0-0
(२७)	New science of healing by louis kuhne	9-0-0

स्वास्थ्य सम्बन्धी पुस्तकें मिलने का पता:—

मैनेजर, स्वास्थ्य ग्रंथ-भंडार २८७, बादशाहीमंडी, चौक, प्रयाग ।

|प्रश्नोत्तरी कूपन सितम्बर-अक्टूबर १९४६|

Reg. No: A-172 Jiwan Sakha.

प्राकृतिक चिकित्सा और बापू

विश्ववंद्य पूज्य महात्मा गांधी जी की राय में प्राकृतिक चिकित्सा रोग मिटाने के इलाजों का तरीका नहीं वरन्‌जीवन की एक पद्धति है, जिसमें रोग या बीमारी के लिए कोई गुंजाइश ही नहीं रहती।

वास्तव में प्राकृतिक चिकित्सा हमको जीने की कला (Art of living) सिखाती है। अन्य प्रणालियों की अपेक्षा यह प्रकृति से कहीं अधिक सम्बन्धित है। इसका ईश्वर से सीधा संपर्क है। प्रकृति चिकित्सा मुख्यतया प्राकृतिक साधनों पर ही निर्भर करती है अतएव इसमें देवत्व के सभी गुण निहित हैं।

अस्तु, यदि आप बापू की भाँति अपने स्वास्थ्य, कार्य, एवं व्यक्तित्व को ईश्वर के चरणों में समर्पित करना चाहते हैं तो **जीवन सखा मासिक मंगाकर पढ़ें।**

जीवन सखा का उद्देश्य जनसाधारण के शारीरिक, मानसिक एवं नैतिक स्वास्थ्य का पथ प्रदर्शन करना एवं प्राकृतिक चिकित्सा का घर घर सन्देश पहुँचाना है।

व्यवस्थापक—

जीवन सखा कार्यालय,

२८७ बादशाही मंडी इलाहाबाद।

Printed by R. N. Avasthi at the K. P. Press and Printing School, Alld.
Published by Sri Baleshwar prasad Sinha. 287, Badshahi Mandi,
Chowk, ALLAHABAD.

जीवन सखा

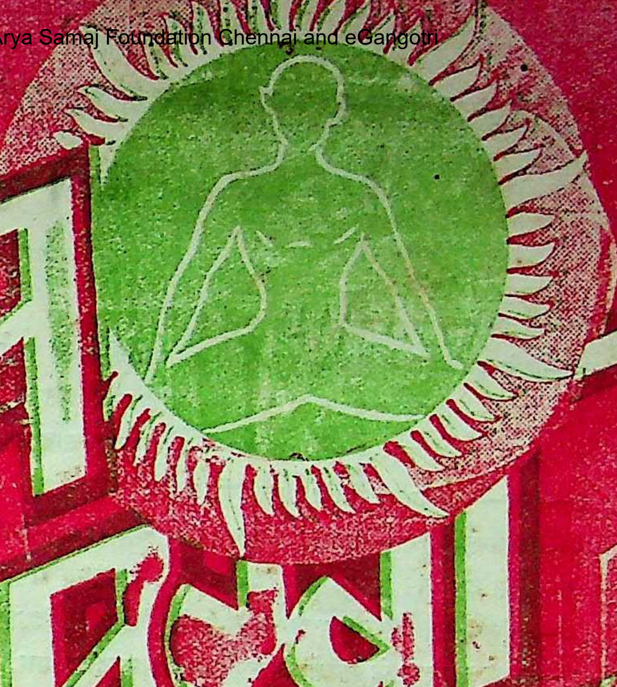

रिक, मानसिक और नैतिक स्वास्थ्य का पथ-प्रदर्शक

इस अंक के कुछ विशेष आकर्षण

१. जाड़े का मौसम और तन्दुरुस्ती—श्री जानकी शरण वर्मा
२. मिट्टी-उसके कुछ सफल प्रयोग—श्री शारदा प्रसाद गुप्त
३. मन्य और स्वास्थ्य—श्री हरिश्चन्द्र गुप्त, एम० ए०
४. उपयुक्त भोजन—श्री कृष्ण न [illegible] अंबरी आयुर्वेदिक कालेज, पटना

न
व
म्ब
र

वार्षिक चन्दा [illegible] इस प्रति का [illegible]

काँगड़ी गुरुकुल में ८ जनवरी १९४८ ई० को प्राप्त
हस्ताक्षर पद प्रस्यादस्य
ग्राहक सं ५३

विषय सूची

—:o:—

१—जीवन क्या है ?—श्री विद्यानन्द बी. ए. ३६
२—जाड़े का मौसम और तन्दुरुस्ती—श्री जानकीशरण वर्मा ३६
३—मिट्टी—उसके कुछ सफल प्रयोग—श्री शारदा प्रसाद गुप्त ३६
४—रोग उनके कारण एवं उपचार—श्री गुलाबचन्द जे० गोयल, 'प्रचंड' साहित्यरत्न, इन्दौर ३७
५—सेव—श्री मूलनारायण मालवीय, प्रयाग ३
६—टाँसिल बढ़ना—डाक्टर युगलकिशोर चौधरी अग्रवाल, पो० नीम का थाना (जयपुर) ३
७—तीस वर्ष की उम्र में मरा, ६० वर्ष में दफनाया गया—डा० रामचरण महेन्द्र, एम० ए०, डी० लिट् ३
८—अंजीर-एक पौष्टिक आहार—श्री रामेशवेदी आयुर्वेदालंकार, हिमालय हर्बल इंस्टिट्यूट बादामीबाग, लाहौर ३
९—वृद्धा अवस्था के रोकने के उपाय—श्री रुद्रदत्त मिश्र, विशारद ३
१०—सत्य और स्वास्थ्य—श्री हरिश्चन्द्र गुप्त, एम० ए०
११—शहद—श्री पी० दास
१२—उपयुक्त भोजन—श्री कृष्ण जीवन त्रिवेदी आयुर्वेदिक कालेज, पटना
१३—चेहरे का सौंदर्य—श्रीमती सावित्री देवी
१४—हमारी दृष्टि में
१५—अपने विचार

जीवन सखा प्रेमियों से

जीवन सखा का उद्देश्य जन साधारण के शारीरिक, मानसिक एवं नैतिक स्वास्थ्य का पथ-प्रदर्शन क है—बस, इसी भावना से प्रेरित होकर हम गत दस वर्षों से युग के अनेक थपेड़ों को सहतें हुए भी जीवन प्रकाशित करते आ रहे हैं। हमें अपने उद्देश्य में सफलता भी मिली, किन्तु पूर्ण रूप से नहीं। हमारी मनोका थी कि जीवन सखा का संदेश देश के लक्ष्मीपतियों के भव्य भवनों से लेकर गरीब भाइयों की अँधेरी झोप तक में गूँज उठे, पर हम अपने लक्ष्य से सर्वथा दूर ही रहे—कुछ युग की विकरालतावश; कुछ अपने स के सक्रिय सहयोग के अभाववश। अब देशवासियों के गिरते हुए स्वास्थ्य को देखकर हमारी हार्दिक इच्छा बल्कि अनुरोध है, कि समस्त जीवन सखा प्रेमी व्यक्तिगत रूप से हमारी ओर से प्रत्येक स्वास्थ्य प्रेमी स्त्री-पुरुष जीवन सखा द्वारा प्रचारित प्राकृतिक चिकित्सा प्रणाली के अनुपम रहस्य से परिचित कराने का भरसक प्र करें उनसे जीवन सखा परिवार में शामिल होने का अनुरोध करें ताकि जीवन सखा का अधिकाधिक प्रचार जीवन सखा का संदेश घर घर में पहुँचे और सर्वसाधारण का स्वास्थ्य सुधरे। इतना होने पर ही हम अपनी मं पर पहुँच सकेंगे, अन्यथा नहीं। आशा है हमारे स्नेही हमारी इस प्रार्थना पर ध्यान देकर अपना सक्रिय सह प्रदान करेंगे।

—व्यवस्थापक

Reg. No. A-172

शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्
NATURE ONLY HEALS

जीवन सखा

सम्पादक
डा० बालेश्वरप्रसाद सिंह

वर्ष ११] नवम्बर १९४६ [अङ्क ११

जीवन क्या है ?

श्री विद्यानन्द बी. ए.

एक समय की बात है चिड़ियाँ अपना गाना बन्द करके आराम करने लगी थीं उसी समय एक बुलबुल ने उस नीरवता को भंग करते हुए प्रश्न किया—जीवन क्या है ?

इस प्रश्न को सुन कर कुछ चिड़ियाँ सहम गईं पर एक बटेर (लवा) ने शीघ्र ही उत्तर दिया—"जीवन एक संगीत है।"

एक छछून्दर ने अपने बिल से बाहर निकलते हुए कहा—"नहीं, अन्धकार में संग्राम करना ही जीवन है।"

श्वेत कमल की कलिका ने अपनी नन्हीं-नन्हीं पंखुरियाँ खोलते हुए कहा—"जीवन विकास है।"

एक भ्रमर ने कमल पुष्प का चुम्बन करते हुए कहा—"जीवन आनन्द है।"

पास में बैठी हुई एक मक्षिका ने कहा—"नहीं जीवन मेरी अल्प बुद्धि में एक छोटे से ग्रीष्मकाल के समान है।"

एक चींटी ने अपने से बड़ा तिनका खींचते हुए श्रम से उद्विग्न होकर उत्तर दिया—"कठिन श्रम का नाम ही जीवन है।"

आकाश से गिरती हुई बून्दों ने कान के समीप आकर कहा—"जीवन आँसुओं के सिवा कुछ नहीं।"

जरा दूर उड़ते हुए इगल-पक्षी ने कहा—"तुम्हारा कथन ठीक नहीं; जीवन स्वतंत्रता है—जीवन शक्ति है।"

इतने में सर्वत्र अन्धकार छा गया और सायंकाल की पवन ने वृक्षों के कान में कहा—"जीवन एक स्वप्न है।"

निशा की नीरवता दूर हुई। प्राची में उषा की अरुणिमा उदित हुई। उस समय एक विद्यार्थी ने दीपक को बुझाते हुए कहा—"जीवन एक पाठशाला है।"

कुछ लोग अभी शयन कर रहे थे और कुछ लोग उठकर घरों से निकल कर कह रहे थे—"जीवन एक अतृप्त अभिलाषा है।"

प्रभात की शोभा निखर रही थी। द्रुमावली की शिखायें स्वर्ण-रंजित सी हो रही थीं। ऐसे सुहावने समय में दिवस के प्रकाश ने जागती हुई पृथ्वी का चुम्बन किया तो यह शब्द गूंजने लगे—"जीवन एक आरम्भ है।"

मैंने सब सुना और कहा जीवन आरम्भ नहीं और जीवन अन्त भी नहीं, जीवन है आरम्भ से अन्त तक के संघर्षों का नाम! जिसमें हानि-लाभि, सुख-दुख, शीत, उष्ण, शत्रु और मित्र, मान-अपमान, आशा, निराशा, सबका सामना करते हुए कार्य करना पड़ता है और वह भी फल की इच्छा न रखते हुए अर्थात् निष्कामं।

मेरा यह कहना था कि उसी समय, महात्माओं की वाणी धर्मशास्त्र, और कर्तव्यशील वीर पुरुषों ने एक ही स्वर में मिलाकर कहा—"ठीक है तुम्हारा कहना—जीवन एक संघर्ष है।"

सात समुद्र पार से भी एक आवाज सुनाई दी और वह थी "Life is the struggles of actions"

—'जीवन विज्ञान'

जाड़े का मौसम और तन्दुरुस्ती

श्री जानकीशरण वर्मा

बचपन से ही सुनता आ रहा हूँ कि जाड़े में खूब खाना चाहिए और यह भी कि इस मौसम में किशमिश, अखरोट इत्यादि मेवों के खाने से तन्दुरुस्ती बनती है। दशहरे की छुट्टी के बाद जब कालेज में मैं पढ़ने के लिए गाँव से शहर आता (यह ४० साल पहले की बात है) तो माता जी बड़े प्यार से समझातीं--'बेटा, हर रोज किशमिश, छुहारे बादाम खाकर दूध पीना।" पिताजी मेवों के लिए अलग रुपये देते और कहते—"देखो अमरूद, नारंगी ज्यादा न खाना। ये फल ठंडे होते है, सर्दियों में तो सूखे मेवे ही अच्छे होते हैं।" मेवों पर जोर तो रहा ही और अब भी है, पर मैंने देखा कि जैसे जैसे पश्चिमी सभ्यता का प्रभाव बढ़ा अंडों पर भी जोर दिया जाने लगा। अंडों पर जोर देने वाले घर वाले नहीं होते थे, बल्कि साथ के पढ़ने वाले, कोई कोई डाक्टर और कभी-कमी कालेज के प्राफेसर भी होते थे। मेवा खाने की प्रथा के साथ अंडों के व्यवहार की रस्म भी चल ही पड़ी। जाड़ा पहले भी तन्दुरुस्ती सुधारने का समय समझा जाता था और अब भी समझा जाता है। जाड़े के मौसम में खाने-पीने की चीजें सचमुच बहुत होती हैं। आलू के स्वाद को दुगना करने वाली गोभी और सोया-मेथी, अच्छे हलवा का सामान पहले सिंघाड़ा और फिर गाजर, जीवन को आनन्दमय बनाने वाली हरी मटर और फिर हरे चने, बीसवीं सदी का प्यारा टमाटर और इसके साथ साथ गन्ना, अमरूद, सन्तरा—यह सब इसी मौसम की देन हैं। क्या आम को भी इसी मौसम में होना चाहिए था ?

जैसे जैसे उम्र बढ़ी, सोचने की शक्ति भी बढ़ी और अनुभव का घेरा चौड़ा हुआ। मैंने यह देखा कि आम बहुत गर्म होता है, पर वह गर्मियों में ही मिलता है, अमरूद और सन्तरे ठंडे हैं, पर वे जाड़ों में ही मिलते हैं। या तो प्रकृति की गलती है या प्रकृति के इशारे को न समझ कर उल्टा-पुल्टा काम करना मनुष्यों की गलती है। अलग अलग मौसम में अलग अलग फल और साग भाजी की उपज की बात को समझना और उस समझ से लाभ उठाना एक जरूरी बात है, ऐसी भावना मन में धीरे धीरे जगह करने लगी।

कुछ दिनों बाद मेरे अनुभव में कुछ और बातें आईं उनमें से एक यह था—मेरे एक मित्र जाड़ों में खूब मेवे खाते थे। सुबह और तीसरे पहर दूध के साथ अच्छी मात्रा में मेवे खाना और फिर सोते समय सोंठ का एक लड्डू खा कर दूध पीना उनके दैनिक जीवन का जरूरी अंग था। शुरू कार्तिक से आधा फागुन तक वह मेवों और सोंठ के लड्डू का प्रयोग करते, ठंड से बचने के लिए मफलर, गुलूबन्द, शाल, चेस्टर इत्यादि को अच्छी तरह काम में लाते, गर्म पानी से नहाते और रात में सभी दरवाजे और खिड़कियां बन्द कर कम्बल और रजाई को कई तहों के नीचे अपने आप को सुरक्षित रखने। क्या उनकी तन्दुरुस्ती अच्छी थी ? नहीं। आये दिन उन्हें जुकाम होता, खाल रूखी सूखी और बे-जान मालूम होती, चाल में फुर्ती का

नाम न रहता और बसन्त ऋतु के आते ही-खुजली-खारिश उन्हें सताने लग जाती ।

मैंने ऐसी ऐसी सब बातों पर विचार किया और इस नतीजे पर पहुँचा कि जाड़े का मौसम सचमुच तन्दुरुस्ती बनाने और बढ़ाने का मौसम है, पर उसके ढंग कुछ और ही हैं। निजी अनुभव से जो कुछ मैंने सीखा वह पाठकों की सेवा में पेश करता हूँ।

पहली बात तो यह है कि जाड़े की ठंड से डरना न चाहिए। किसी भी मौसम की विशेषता से न घबराना चाहिए—न गर्मियों की गर्मी, न बरसात की झड़ी और न जाड़े की ठंड से। मौसमों की विशेषता से जितना भी जरूरी हो उतना बचाव जरूर करना चाहिए लेकिन उनसे बिलकुल भाग जाना या बनावटी इन्तजाम से उनके प्रभाव को बिलकुल रद्द कर देना मौसमों में होने वाले लाभ से अपने आप को वंचित करना है। जाड़ों में उतने कपड़े जरूर पहने जांय जिनसे कि मामूली तौर पर ठंड से बचाव हो सके, लेकिन बनियाइन पर ऊनी कमीज, उस पर ऊनी पुलोवर, पुलोवर पर गर्म कोट और कोट के ऊपर भारी ओवरकोट या चेस्टर, फिर पहले सूती पाजामा और उस के ऊपर भारी फलालैन की पतलून इत्यादि का इस्तेमाल बेढंगा और तन्दुरुस्ती को खराब करने वाला है। जाड़ों में भी थोड़ी सी हवा को खाल तक पहुँचना चाहिए। एक बात और है। जो लबादे पर लबादा पहनता है वह अन्दर ही अन्दर एक तरह की सर्दी का अनुभव करता है। जरूरत भर गर्म कपड़े जरूर पहने जायँ, लेकिन इसका ध्यान भी जरूर रहे कि शरीर और हवा के बीच रुकावट की दीवार न खड़ी हो जाय।

स्नान में ठंडे जल का प्रयोग

गर्म पानी से नहाना सभी तरह हानिकर है। हर क्रिया की प्रतिक्रिया होती है और क्रिया और प्रतिक्रिया एक दूसरे के विपरीत, पर बराबर मात्रा की होती हैं। जो गर्म पानी से नहाता है उसे पहले गर्मी का अनुभव होता है, पर थोड़ी ही देर में गर्मी की प्रतिक्रिया-स्वरूप उतनी ही मात्रा में ठंड लगने लगती है। इसलिए गर्मी लाने के लिए ठंडे पानी से नहाना चाहिए, क्योंकि ठंडे पानी से ठंड की प्रतिक्रिया गर्मी होगी। जो गर्म पानी से नहाते हैं उन्हें नाड़ियों की दुर्बलता का रोग होता है और उन्हें जुकाम भी जल्दी-जल्दी होता है। जो बहुत दिनों से गर्म पानी से नहाने के आदी हैं या जो बहुत कमजोर हैं उन्हें पहले ठंड पानी में उतना गर्म पानी मिला लेना चाहिए जितने से ठंड मर जाय। इस तरह धीरे धीरे उन्हें ठंड और ठंडे पानी से नहाने का आदी हो जाना चाहिए। जाड़ों में ठंडे पानी से नहाने का आनन्द वही जानता है जो बहुत सबेरे शौच और दातुन के बाद हलकी कसरत करके सारे शरीर को सूखी तलहथी से अच्छी तरह रगड़ता है और फिर बन्द कमरे में ठंडे पानी से नहा कर और सूखे तौलिए से शरीर को रगड़-रगड़ कर सुखा देता है। अगर सूखी तलहथी से शरीर को रगड़ने के बाद थोड़ा सरसों के तेल से भी शरीर मला जाय तो और लाभ हो। इस तरह नहाने के बाद दस-बारह मिनट के लिए संध्या-गायत्री कर के और मामूली गर्म कपड़े पहन कर डेढ़-दो मील तेजी से टहल लिया जाय तो दो-ढाई महीने में ही शरीर खिल जाय। ये सारे काम सूरज निकलते निकलते खतम हो जाय। इस तरह ठंडे पानी से नहाने वाले को ठंड कम लगती है और साथ ही उसका नाड़ी-संस्थान पुष्ट होता है; पाचन-शक्ति बढ़ती है, खाल की बीमारियाँ नहीं होती और जुकाम उससे दूर ही रहता है।

जाड़ों में बन्द कमरे में सोना महा पाप है। या तो बरामदे में सोया जाय, जहां खूब हवा आती हो या सभी खिड़कियां खोलकर कमरे में सोया जाय। अगर सर्दी ज्यादा हो तो एक के बदले दो-तीन कम्बल ऊपर से ओढ़ लिए जाय, पर सोया जाय हवादार जगह में ही और चेहरा खुला रहे, जिससे कि सोने की अवस्था में सांस के सहारे काफी साफ हवा फेफड़ों में पहुँचे। सुप्तावस्था में ही शरीर की अन्दरूनी मरम्मत होती है। ठंड के डर से मरम्मत के काम के लिए हवा को शरीर के अन्दर न पहुंचने देना अव्वल दर्जे की मूर्खता है।

व्यायाम की आवश्यकता

दूसरी बात यह है कि जाड़े का मौसम कसरत करने और क्रियाशील बनने का मौसम है। कुछ कसरत तो हर मौसम

में और हर रोज करनी चाहिये, लेकिन जाड़े में कसरत की मात्रा बढ़ाई जा सकती है और कसरत से पूरा लाभ उठाया जा सकता है। सर्दी के कारण शरीर के अन्दर का खून कुछ जमा-सा और अपनी गति में सुस्त रहता है। कसरत से ही उसका दौरान ठीक किया जा सकता है। कसरत अपनी शक्ति से ज्यादा न करनी चाहिए, पर जाड़े में यह संभव है कि और मौसमों के बनिस्बत कसरत की मात्रा धीरे-धीरे बढ़ाई जाय और कसरत के अलावा खुले मैदान में शक्ति भर तेजी से टहला भी जाय। जो जी खोलकर अपनी शक्ति के अनुसार नियमित रूप से टहलता है और टहलते समय प्रकृति की सौन्दर्य-रूपी महौषधि को अपनी आँखों से पीता है वह तन्दुरुस्त ही नहीं, दीर्घायु और यशस्वी कर्मयोगी भी हो जाता है। जाड़ों में ही टहलने का आनन्द है। और मौसमों में सुबह वा शाम को टहला जा सकता है, लेकिन जाड़ों में सारा दिन—धूप में भी—और कुछ देर तक रात में भी टहलने का समय रहता है।

धूप-नहान

जाड़ों में धूप- की कसरत की भी सुविधा मिलती है। नंगे बदन धूप में थोड़ी देर रहने के बाद नदी में नहाना, फिर थोड़ी देर धूप में लेटना और फिर नहाना। इतवार के या छुट्टी के दिन दोपहर के समय की एक विशेष कसरत है, जो जाड़ों में ही की जा सकती है। अगर तैरना आता हो तो क्या कहना! इस तरह के धूप और जल-नहान से शरीर में जीवन-शक्ति बढ़ती है और एक तरह की विद्युत्-शक्ति भी आती है। साथ ही शरीर में विटामिन 'डी' के बढ़ने से स्वास्थ्य बहुत अच्छा होता है। ऐसे धूप नहान से अनेक लाभ होते हैं, जिनका वर्णन इस छोटे से लेख में नहीं किया जा सकता। धूप-नहान के बाद अगर नदी में नहाने की सुविधा न हो तो कुएँ पर या नल के नीचे नहाना भी हितकर होगा।

गहरी सांस

स्वास्थ्य के लिए गहरी सांस लेने की जरूरत सबको मालूम है। इस गहरी सांस का मूल्य जाड़ों में बढ़ जाता है। जो लोग नियमित रूप से गहरी सांस लेते हैं उन्हें औरों के बनिस्बत कम ठंड लगती है। गहरी सांस के कारण काफी आक्सीजन फेफड़ों में पहुँचती है। वह न सिर्फ खून को शुद्ध करती है, बल्कि कुछ गरमी भी शरीर के अन्दर पैदा करती है। ऊपर बताया गया है कि जाड़ों में कसरत की मात्रा बढ़ाई जा सकती है और साथ ही तेज टहलने का आनन्द भी लिया जा सकता है। कसरत के बीच-बीच में और टहलते समय भी गहरी सांस लेना स्वास्थ्य के लिए बहुत अच्छा है। इससे बहुत तरह के रोग सहज ही में चले जाते हैं और तन्दुरुस्ती चमक उठती है। कसरत और टहलने के समय के अलावा सोकर उठने पर, दोपहर में और रात में सोने से पहले साफ हवा में गहरी सांस लेने से और ज्यादा लाभ होता है। चारपाई छोड़ते ही खिड़की के सामने या छत पर गहरी सांस लेने से जाड़ा भाग सा जाता है। जो गहरी सांस लेने की आदत डालता है वह रात में सोने की हालत में भी गहरी सांस लेता रहता है, जिससे उसके शरीर और दिमाग को बहुत लाभ पहुंचता है। इसी से ऐसी जगह सोना चाहिए, जहाँ काफी मात्रा में साफ हवा मिल सके।

गहरी सांस लेने के लिए हवा का साफ होना जरूरी है। ऐसी हवा में खड़े होकर या सीधा बैठकर या चलते-चलते या चित लेटकर गहरी सांस का आनन्द लिया जा सकता है। नथनों को बिना सिकोड़े धीरे-धीरे हवा को अन्दर खींचना, जिसमें सीना अच्छी तरह फूल जाय और फिर हवा को धीरे-धीरे बाहर निकाल देना (अगर सांस खींचने के समय के बनिस्बत सांस फेंकने का समय दुगुना ज्यादा हो सो बहुत अच्छा हो)—बस, यही गहरी सांस की क्रिया है। यूरोप-अमेरिका वाले पेट और सीना दोनों का फूलना जरूरी बताते हैं, पर अपने यहाँ के योगी पेट का फूलना हानिकर बताते हैं। अभ्यास करनेवालों को एक बार तीन चार सांस से ज्यादा न लेनी चाहिए। धीरे-धीरे सांसों की संख्या बढ़ाकर एक-एक बार में १५-१५, २०-२० सांसें खींची और निकाली जा सकती है।

फल और भाजियों का प्रयोग

तीसरी बात यह है कि जाड़े में मिलने वाले फल और भाजियों से पूरा पूरा लाभ उठाना चाहिए। सच तो यह है

कि फल और भाजी ही जीवित खाद्य पदार्थ हैं। जो अपना स्वास्थ्य बनाना चाहते हैं उन्हें दिन-रात की भोजन सामग्री में आधा हिस्सा फल और भाजी का रखना चाहिए। अगर एक समय का भोजन ताजा फल दूध या फल-दही या (अगर दूध न मिल सके तो) ताजा फल और बादाम या अखरोट या पिश्ता हो तो क्या कहना। अगर ऐसा न हो सके तो नाश्ते में फल और दिन के भोजन के साथ कच्चे टमाटर और गाजर का 'सलाद' तो लिया ही जा सकता है। भोजन का विषय बहुत बड़ा है और यह संभव नहीं कि इस लेख में सब बातें बताई जा सकें, पर इतना तो कहा ही जा सकता है कि दिन भर के तीन या चार भोजनों में हर बार अन्न खाना रोगों को न्योता देना और समय से पहले बुढ़ापे को बुलाना है।

कुछ फल मंहगे जरूर हैं, पर अमरूद, टमाटर, गाजर, गन्ना बहुत मंहगे नहीं हैं। फलों में संतरे, टमाटर और गाजर (टमाटर और गाजर फल और भाजी दोनों हैं) खून को साफ करने वाले और साथ ही खाल और चेहरे की चमक को बढ़ाने वाले हैं। शर्त यह है कि ये काफी मात्रा में खाये जायं, जिसका आशय यह हुआ कि अन्न की मात्रा कम कर दी जाय, और टमाटर (पके लाल) और गाजर (काली या पीली) कच्चा ही खाई जायं। ये तीनों फल जाड़े की ही देन हैं। नमूने के लिए, अगर सबेरे एक संतरा या एक या आधी छटांक किशमिश खाकर एक पाव दूध पी लिया जाय, ११ बजे के लगभग एक टमाटर और एक गाजर पहले खाकर दो-तीन फुलके या कुछ चावल और दाल और एक पकी भाजी खाई जाय तीन या साढ़े तीन बजे कुछ गन्ने या एक अमरूद खाया जाय और फिर रात में ८ बजते-बजते दो-तीन फुलके और एक या दो पकी भाजी खाई जाय (अगर पहले से शरीर में कोई कठिन रोग नहीं है) तो दो-ढाई महीने में ही तन्दुरुस्ती सराहने लायक हो जाय। अति भोजन न करना, खाई चीजों को अच्छी तरह चबाना, खाते समय पानी बहुत कम या नहीं पीना; सबेरे उठने पर खाने के आध घंटे पहले और दो घंटे बाद और बाद और फिर रात सोने से पहले पानी पीना, और दो भोजनों में काफी अंतर देना, भोजन के जरूरी नियम हैं, जिनका पालन भी होना चाहिए। अगर तीन ही बार भोजन किया जाय तो और अच्छा हो—लगभग १० बजे दिन में कच्ची भाजी, रोटी-दाल और पकी भाजी; लगभग ३ बजे तीसरे पहर अमरूद या गन्ना और दूध या चार-छः बादाम और लगभग ८ बजे रात को रोटी-भाजी और कुछ मुनक्के या छुहारे। आंवले और धनिया की हरी पत्ती की चटनी न भूलिए!

जाड़ों में गर्म चीजों की तरफ बहुत झुकना न चाहिए। जो बहुत मेवे-अंडे खाते हैं, पर ठंडे फलों का व्यवहार नहीं करते वे बसंत ऋतु या गर्मी में दुख भोगते हैं।

किसी भी मौसम में स्वास्थ्य सुधारा और उन्नत किया जा सकता है, पर जाड़ों में विशेष सुविधाएं अवश्य मिलती हैं। इस जाड़े से पूरा लाभ उठाइए।

सूचना

जीवन सखा १।।) में पुस्तकालयों को रियायती मूल्य पर देने की जो विज्ञप्ति हम अभी तक प्रकाशित कर रहे थे, उसकी अवधि अब समाप्त हो गई है, अस्तु अब जीवन-सखा ३) में ही ग्राहकों को साल भर तक उपलब्ध हो सकेगा।

—व्यवस्थापक

मिट्टी—उसके कुछ सफल प्रयोग

श्री शारदा प्रसाद गुप्त

मिट्टी जितनी सर्व-सुलभ—और शायद इसलिये जितनी नगण्य समझी जाने वाली—है इसकी गुण-गरिमा उतनी ही महान् है। विश्व-वंद्य गांधी जी ने इसके इसी गुण पर रीझ कर अपने मस्तक पर चढ़ाया है। इसमें मल का शोषण कर लेने की जितनी अद्भुत शक्ति है उतना शायद संसार के किसी अन्य पदार्थ में नहीं। अनुभवी लेखक ने यहाँ पर मिट्टी के अद्भुत प्रयोग बताए हैं। पाठक उससे लाभ उठायेंगे। —सं

मानव शरीर की रचना में मिट्टी का एक प्रमुख स्थान है। उसे पंचतत्वों में सर्व श्रेष्ठ माना जा सकता है। सारी सृष्टि मिट्टी की ही दीख पड़ती है। मिट्टी से ही हम पैदा होते हैं. इसी से हमारी रक्षा होती है, हम बड़े होते हैं और अंत में इसी में विलीन हो जाते हैं। पेड़ पौधे, कंद मूल, फल, नाज सभी इसी मिट्टी में पैदा होते हैं। सारांश यह कि मिट्टी से ही प्रकृति की रचना हुई है और यह वायु के समान सर्व-व्यापक है।

इतना महत्व है इस मिट्टी की, परन्तु तनिक आधुनिक सभ्यता की ओर तो देखिये। आज का समाज इससे घृणा करता है। शरीर में कहीं तनिक मिट्टी लग जाय, बस तुरन्त 'मिट्टी लग गई कपड़ा गन्दा हो गया' और झट पानी से धो लिया जाता है। खेल कूद में ऐसे वस्त्र बनाये जाते हैं जिससे शरीर में कहीं मिट्टी न लग जाय। पैर में मोजे और किरमिच के जूते पहन लिये जाते है। और भी ध्यान दीजिये। अमीरों के घर मिट्टी से और भ घृणा रहती है। उनके पैर कभी मिट्टी का स्पर्श तक नहीं करते। उनके प्रत्येक कार्य के लिये अलग अलग जूते होते हैं। शौच जाने के लिये, स्नान करने के लिये, भोजन करने के लिये, बाहर जाने के लिये उठने बैठने और सोने के लिये भी अलग अलग जूते होते है। वे शायद इस बात पर कभी सोचते भी नहीं कि जिस वस्तु से वे इतनी घृणा करते है, उसी से वे पैदा हुये हैं, और अंत में इसी में मिलना भी है। यह हुई उच्च घरानों की हैं बात, पर देहातों में ऐसी बात नहीं है। वहां लोग मिट्टी में खेलते हैं, बदन में इसकी मालिश करते हैं, और उनका बदन सदा चमकता रहता है और वे पूर्ण स्वस्थ रहते हैं।

मिट्टी की उपयोगिता

अब मिट्टी की उपयोगिता पर कुछ प्रकार डालना चाहिए। इसकी शोषण-शक्ति इतनी तीव्र होती है कि इसके संयोग से कोई भी गन्दा पदार्थ कुछ ही घंटों में इसमें घुलमिल जाता है और दुर्गन्ध हवा हो जाती है। प्रत्यक्ष उदाहरण देहातों में देखने को मिलता है। खेतों में मल विसर्जन किया जाता है और कुछ समय बाद मिट्टी उस मल को भी मिट्टी सदृश बना देती है और वह दुर्गन्ध रहित हो जाता है। देहातों में कच्चे मकान मिट्टी से ही पोते जाते हैं। और वे कितने स्वच्छ लगते हैं। भारतीय रसोई गृह कितने स्वच्छ रहते हैं। यह मिट्टी से लीपने का ही प्रभाव है। जाकर किसी विदेशी का चौका अथवा बावर्ची खाना देखिये और और अपने मिट्टी से लिये पुते चौके से मिलान कीजिये, आप को जमीन आसमान का अन्तर मिलेगा। मिट्टी में ऐसी शोषण-शक्ति है कि यदि गन्दे से गन्दा स्थान भी जहाँ बच्चा पाखाना कर दिया हो, मक्खियाँ भिनभिनाती हो, केवल मिट्टी से लीप देने से वह स्वच्छ और सुन्दर हो जाता है।

मिट्टी कई प्रकार की होती है। काली, लाल, पीली, और सफेद। इनके गुण और प्रयोग भी अलग अलग हैं। काली मिट्टी अधिकतर कछार में पाई जाती है। बालों की रक्षा करने के लिये यह अत्यधिक गुणकारी सिद्ध हुई है। लाल मिट्टी विन्ध्य प्रदेश और अन्य पहाड़ी देशों में पाई जाती है। गेरु भी इसी तरह की एक मिट्टी है जो मकान के पुताई के काम आती है। पीली और सफेद मिट्टी खेतों और तलाब के किनारे पाई जाती हैं। दंत रोगों में इसका प्रयोग बहुत सफल होता है। किसी भी सूजन या फोड़े पर इसकी पुल्टिस (गीली मिट्टी) रखकर बांधने और बारंबार बदलते रहने से या तो फोड़े बैठ ही जाते हैं,

या पक कर फूट जाते हैं और लगातार मिट्टी की पट्टी लगाते रहने से अंत में सूख कर आराम हो जाते हैं। खुले हुये घावों पर मिट्टी लगाने से घबड़ाना नहीं चाहिये। घाव को गुनगुने पानी से प्रायः धोते रहना चाहिये जिससे खून का संचार बराबर वहां बना रहे। इसकी पट्टी रात को भोजन के दो तीन घंटे बाद तलपेट (पेड़ू) पर रख कर ऊपर से कोई कपड़ा ढक कर सो जाने से प्रातः पाखाना खूब साफ होता है। यह पट्टी आंतों के अंदर का मल ढीला कर देती है। इस प्रकार इस पट्टी का बार बार प्रयोग करने से अनेक बीमारियां जैसे, कोष्ठ वद्धता आंवका पड़ना, स्वप्न दोष, धातु क्षीणता, प्रमेह, तिल्ली का बढ़ना, इत्यादि और स्त्री-रोग अच्छे हो जाते है। परन्तु साथ साथ भोजन सुधार अत्यन्त आवश्यक है। भोजन क्षारमय होना चहिये और फलों की मात्रा अधिक होनी चाहिये। दो चार दिन का उपवास भी साथ साथ लाभप्रद सिद्ध हुआ है।

यहां पर कुछ उदाहरण दे देना अप्रासंगिक न होगा और पाठक भी समझ जायँगे कि मिट्टी की उपयोगिता कितनी महान है। 'जीवन सखा' के प्रेमी पाठकों से मेरा यह अनुरोध है कि वे मेरी तरह इन प्रयोगों को अपने पास पड़ोस में आजमावें और लोगों को प्राकृतिक चिकित्सा के लिए प्रोत्साहित करें।

(१) नाल काटने का उचित प्रबन्ध करने पर भी मेरी पुत्री को गत वर्ष बहुत कष्ट भोगना पड़ा। उस समय तो नाल सूख कर गिर गई और ढूँढ़ी अच्छी हो गई पर एक माह बाद उसमें पीब पड़ गया। स्त्रियों से अवश्य ही कोई असावधानी हुई थी। मैंने पहले ही मिट्टी का प्रयोग करना चाहा पर स्त्रियों के आगे कोई वश न चला। 'घर की मुर्गी साग बराबर'। पहले उन लोगों ने अपनी चिकित्सा की, राख लगायी, बिनौले का तेल लगाया, सुपारी घिसकर लगाया पर सब व्यर्थ। पीव का बहना लगातार जारी रहा। अंत में होमियोपैथिक दवा के शरण में आना पड़ा। साइलीसिया, कैलकेरिया कार्व मैग. सल्फ मरक्यूरिक सल्फ, इत्यादि अनेक दवायें वारी वारी से सेवन कराई गई पर सब व्यर्थ। इन दवाओं का यह दावा है कि नासूर तक सूख जातर है। पर आश्चर्य था कि एक मामूली पीव का बहना तक न बन्द हो सका। लगाने के लिए भी अच्छी से अच्छी दवाओं का प्रयोग किया गया। कैलेंडुला, ऐलोपैथिक दवायें आइडोफार्म, मरक्युरिक लोशन इत्यादि लगाया गया। पर सब व्यर्थ गय। दो महीने समाप्त हो गये। अब घबराहट मची। कहीं नासूर न हो जाय या टिटनेस की बीमारी (जम) न हो जाय। हार मान कर रोगी को मुझे सौंपा गया और एक बार मुझे भी अपनी चिकित्सा आजमाने का मौका मिला। केवल गर्म पानी के फौवारे देना और धोना और मिट्टी की पट्टी बारंबार घाव पर लगाना, यही हमारी चिकित्सा थी। पहले दो तीन दिन पीव बहना कुछ बढ़ गया लेकिन धीरे धीरे कम होता गया और पाचवे दिन घाव एक दम सूख गया और सातवें दिन वहां केवल एक दाग रह गया। यह थी सरल प्राकृतिक कि चिकित्सा जिसको न मानने के कारण दो महीने कष्ट और कुछ रुपये भी व्यर्थ गंवाये। एक बहुत अच्छे एलोपैथ का तो दूध का इन्जेक्शन देने का विचार था। यदि वैसा किया गया होता तो परिणाम क्या होता ईश्वर ही जाने।

(२) पिछले महीने पड़ोस में ही एक चार वर्ष के बालक के तमाम चूतड़, फोते और जननेद्रिय पर भयानक फुड़िया निकल आई थी। उसके मां बाप की असावधानी के कारण स्थान सड़ सा गया था और बदबू आने लगी थी। जननेद्रिय अत्याधिक मोटी होकर धनुषाकार और कई स्थानों पर टेढ़ी मेढ़ी हो गई थी। अग्रभाग चिपक गया था और उसमें पीव भर गया था। जिस समय मुझे दिखाया गया मैं सिहर उठा। उसके मां बाप अस्पताल ले जाने को तैयार थे। परन्तु वे डरते थे कि वहाँ बिना चीर फाड़ के काम न चलेगा। मैंने उन्हें ढाढ़स दिया कि यह रोग दो रोज में अच्छा हो सकता है। यदि तुम लोग धैर्य के साथ इसका उपचार करो। लोगों ने उन्हें अस्पताल ले जाने को बहुत कहा पर वे मेरी बात पर विश्वास कर गए थे। अस्पताल में आठ दस दिन से कम तो लगता नहीं और घन्टों बैठ कर कम्पाऊंडर और डाक्टर की बाट जोहनी पड़ती। बच्चे का उपचार इस प्रकार हुआ। चारपाई के पैताने बच्चे को बैठाकर नीचे से नीम की पत्ती का भाप दिन में दो बार दिया गया। उस समय उस स्थान में बहुत सा विकार और पसीना

(शेष ३७२ पृष्ठ पर)

रोग-उनके कारण एवं उपचार

श्री गुलाब चन्द जे० गोयल, 'प्रचड' साहित्यरत्न , इन्दौर)

रोग अपने आप आसमान से टपक पड़ने वाली कोई चीज़ नहीं। यह मनुष्य की करनी का ही फल होता है। प्रकृति यह सजा मनुष्य के कल्याण के लिए—उसे लाभ के लिए देती है। इससे बचाव का एक मात्र उपाय यही है कि हम उन कारणों को दूर करें जिनसे रोग पैदा होने की नौबत आती है। रोग के इन्हीं मूल कारणों पर होनहार लेखक ने प्रकाश डाला है। आप प्राकृतिक चिकित्सा विषयक एक पुस्तक लिख रहे है उसी के कुछ अंश धारावाहिक रूप से पाठकों के सामने प्रस्तुत किया जाता है। यह चीज़ कैसी होगी, इसे पाठक स्वयं समझ सकते हैं।

—सं]

मैं अपने पिछले लेख में बता चुका हूँ कि मानव शरीर पंच तत्वों, जल, मिट्टी, वायु, अग्नि, एवं अकाश से बना है और अगर यह शरीर प्राकृतिक नियमों का पालन करे तो कभी रोगी नहीं हो, और कभी हो भी जावे तो शीघ्र ठीक भी हो सकता है। महान् डाक्टर, पिचकारी, आविष्कार एवं औषधियों की कोई आवश्यकता नहीं है। मेरे विचार से इस दशा में जानवर मानव से आगे बढ़ गया है। वह प्राकृतिक नियमों का मानव के मुकाबले में अधिक पालन करता है। जानवर रोग के बहुत कम शिकार होते है। वे स्वस्थ रहते है और कभी रोगी हुए भी तो अपना उपचार स्वयं कर लेते हैं, वह भी शीघ्रता से।

प्राचीन काल में जब मानव प्राकृतिक नियमों के साथ अपने जीवन का निर्वाह करता था उस समय वह आज के समान सभ्य सम्भवतः न रहा हो परन्तु आज के देखते हुये सुखी, स्वस्थ, शान्त एवं शक्तिशाली अवश्य था। उस समय उसकी सन्तान चूहे-बिल्ली से नहीं डरती थी। बल्कि शेर का सामना करती थी, सिंह का सामना करने में उसे आनन्द आता था। शक्ति का ह्रास इस उन्नतिकाल में दिन दिन होता जा रहा है। मानव की यह धारणा ही इस नाश का कारण है कि वह सुख प्राप्त कर रहा है, शान्ति अब उससे दूर नहीं, शक्ति उसके पैरां तले उसका दास के समान है। इस प्रकार के विश्वास ने उसके जीवन में कृत्रियता को स्थान दिया है।

आज भी जब उससे कहा जाता है कि प्राकृतिक नियमों के पालन में सुख और शान्ति मिल सकती है तो उत्तर यही मिलता है कि अमुक डाक्टर के ही यह रोग समझ में नहीं आया, जो इतना पहुँचा हुआ है तो मिट्टी, पानी, उपवास से क्या हो सकता है? धन्य है यह बुद्धि और धन्य है यह विश्वास! वे यह भूल जाते हैं कि जब तपेदिक असाध्य हो जाता है तो उनके भाग्य-विधाता वे पहुंचे हुए डाक्टर भी नदी पर्वत आदि की शरण में जा कर प्राकृतिक वायु सेवन करने के लिये कह देते हैं और वे दवायें शीशियों में ही बन्द रह जाती है। मुझे डर है कि मैं विषयान्तर जा रहा हूँ। अतः आगे न बढ़ कर नीचे वे मुख्य कारण देता हूँ जिनसे रोग उत्पन्न होते हैं।

अनियमितता—प्राचीन काल में मानव हर कार्य नियम पूर्वक करता था। केवल भोजन ही नहीं परन्तु उसके प्रत्येक कार्य नियम से बंधे हुए थे। एक बार जीवन नियम से बंध जाने पर वह फिर नियमों के साथ स्वयं चलता है और मानव का स्वभाव कुछ ऐसा हो जाता है कि फिर नियम को तोड़ना उसे बुरा मालूम होता है। आज भी मानव अपने शरीर एवं जीवन का नियम से बांध कर चले तो उसके कई रोगों के छुटकारा पा सकता है। मनुष्य ने अपने कार्य बहुत बढ़ा लिए हैं जिन्हें वह आसानी से समाप्त नहीं कर सकता उन कार्यों को वह अपने पर ले लेता है और फिर दुखी होता है। स्वास्थ्य खोता है और फिर शांवि

की तलाश करता है। सारांश यह है कि तृष्णा ही मानव को अनियमित बनाती है।

स्वाद—मानव समाज ने अनादि काल से कई प्रकार के विकास के रूप, कई प्रकार की सभ्यता और कई प्रकार के परिवर्तन देखे हैं। समय की मांग को देख कर भी व्यक्तिगत एवं सामाजिक परिवर्तन करने पड़े। सभ्यता के उन्नति काल में भोजन में भी कई प्रकार का परिवर्तन हुआ और शनैः शनैः स्वादिष्ट भोजन बनने लगा। यहां तक कि आज मानव केवल स्वादिष्ट भोजन ही करता है और प्राकृतिक भोजन से उसे क्रमशः घृणा होती जा रही है। बनावटी रसों के स्वाद में मानव प्राकृतिक रसों को भूलता जा रहा है और आज प्राकृतिक भोजन विशेष कर रोगियों का माना जाने लगा है। स्वाद के लिये नये नये मसालों का निर्माण हुआ नई नई वस्तुयें बनने लगीं। यहां तक यह रोग बढ़ा कि नशे की भिन्न वस्तुएं तैयार हुईं। चाय, सिगरेट,, बीड़ी, आदि के अनेक बड़े बड़े कारखाने खुले, और भिन्न भिन्न प्रकार की वस्तुएं उनमें बनने लगीं। इस सब को पढ़ कर आप विचार करेंगे कि आप यह कुछ भी सेवन नहीं करते और फिर भी अस्वस्थ हैं। परन्तु मैं आप से जानना चाहता हूँ कि क्या आप प्राकृतिक फल सब्जी साग भाजी, बिना छने आटे की रोटियाँ, शुद्ध कुए के जल का सेवन एवं नियम पूर्वक व्यायाम आदि करते हैं? अगर नहीं तो फिर स्वास्थ्य की भीख मांगना निरी मूर्खता नहीं तो क्या है?

आधुनिक काल में रोज नए नए पाकशास्त्र बन कर निकलते हैं और हमारी देवियाँ नित नए प्रकार के भोजनों का प्रयोग करतीं हैं। जैसे जैसे स्वाद आता है वैसे वैसे हाजमा बिगड़ता है और दवा आती है। भोजन के समय प्रायः यह भी कहते सुना जाता है भोजन से पेट तो भर चुका पर मन नहीं भरा। अतः कुछ और सही। बस यह कुछ और ही रोग का मित्र है और फिर देखते हैं कि मानव स्वाद को खाने वाला नहीं रह जाता पर स्वाद मानव को खाने लगता है अब तो यह मर्ज यहाँ तक बढ़ गया हैं कि अच्छे से अच्छे फल भी बिना नमक एवं मसालों के अच्छे नहीं लगते। स्वाद में मानव जब भोजन करने लगता है तो वह भूल जाता है कि उसका मेदा यह सब नहीं पचा सकेगा। बंधन टूटने पर वह तभी डरता है जब कि शरीर सब प्रकार से थक जाता है। उस समय बुद्धिमान मानव लंबी लंबी डकारें लेता हुआ उठता है, उठते देर नहीं हुई कि सोने का जी चाहता है, मानो भोजन नशा उसे सताता हो। सोने के पहले किसी को चूर्ण, किसी को पान, किसी को सिगरेट, कुछ न कुछ चाहिए, जिससे भोजन पच सके।

(३) **अधिक भोजन**—दिन में केवल दो बार ही स्वाद की गुलामी के कारण अगर पथभ्रष्ट मानव अधिक भोजन करता तो वहाँ तक भी संतोष होता, परन्तु नहीं सभ्यता ने उसे इस हद तक ऊँचा बना दिया है कि एक दिन में कई प्रकार का कई कई बार भोजन करता है। प्रातः काल नाश्ता उससे पहले भी सिगरेट, चाय आदि, फिर नाश्ते में कई प्रकार की बासी सड़ी गली सब प्रकार की वस्तुएँ मिलती है और शौक से खाई जाती है। यह सब पचे या न पचे कुछ ही समय में भोजन होता है, उसके कुछ समय बाद चाय। चाय के साथ कुछ न कुछ हो, खाली चाय सभ्यता को देखते हुए ठीक नहीं समझा जाता है। संध्या के भोजन के पहले एक और छोटा भोजन होता है और रात्रि को सोने के पहले संध्या का बड़ा भोजन होता है, इस प्रकार दिन भर मशीन चलती रहती है। उसे आराम देना मूर्खता समझा जाता है। यहाँ तक कि बीमारी में भी जब उपवास के लिये कहा जाता है, तो स्वजन कहते देखे गये हैं कि बिना खाए तो शक्ति ही नहीं रहेगी और कठिनाई भी हो सकती है, अतः डाक्टर कुछ न कुछ खाने को बता देते हैं। दवा की मात्रा भी बढ़ती है, और डाक्टर की फीस भी अंदाज से बढ़ती है। यह देख कर डा० शर्मा के लक्ष्मण ने प्रसिद्ध ग्रंथ 'प्रैक्टिकल नेचर क्यूर' के अध्याय १५४ पर उन लोगों के लिए लिखा है, जो अधिक भोजन करते हैं—'एक चौथाई भोजन से भोजन करने वालों का पोषण होता है, और तीन चौथाई से डाक्टरों का पोषण होता है।

(४) गन्दी हवा—नगरों में गन्दी हवा भी एक प्रकार का अभिशाप है। ऊँचे ऊँचे मकान बनते है, सीलभरे कमरे में लोग रहते है, आबादी अधिक होने के कारण एक-एक

कमरे में कई कई मनुष्य रहते है, जिस से कई प्रकार के रोग लग जाते है, व्यायाम आदि का अवकाश न नहीं मिलता। कभी टहलने जाने का विचार भी किया तो कहां जावें, मीलों तक नगर ही नगर रहता है, और बेकार समय नष्ट होता है। इस प्रकार से नगर में सभ्य मनुष्य रहते हैं, और वहां की गन्दी हवा से अपना स्वास्थ्य नष्ट करते हैं।

रोग एक प्रकार का वह द्रव्य है, जिस की मानव शरीर को कोई आवश्यकता नहीं, और वह ऊपर बताये हुए किसी भी कारण अथवा और भी किसी प्रकार से शरीर में प्रवेश कर जाता है, और समय पर नहीं निकालने से शनैः शनैः बढ़ने लगता है, यही वह द्रव्य जो शरीर की जाति का न होने के कारण विजातीय द्रव्य कहलाता है, रोग के नाम से पुकारा जाता है। यह जिस स्थान पर जमा होता है, उसी के नाम से यह पुकारा जाता है।

इस द्रव्य को शरीर से निकाल देना ही रोगी को रोगमुक्त करना है। अधिकतर रोग पेट की गड़बड़ी से होता है, पेट की गड़बड़ी अधिक भोजन से, और अधिक भोजन का कारण स्वाद होता है। यह विजातीय द्रव्य शरीर में चाहे जिस मार्ग से प्रवेश करे, क्यों कि मार्ग भिन्न भिन्न है, परन्तु रोग हर दशा में एक ही रहेगा। उपचार भी उसका एक ही है शरीर से उस विजातीय द्रव्य को निकाल देना। उपाय जल, मिट्टी, उपवास सूर्य भिन्न भिन्न है, जिनका अलग अलग विवरण में अपने आगे के लेखों में देने का प्रयत्न करूंगा।

(क्रमशः)

(३६९ का शेष)

बाहर निकलता। भाप देने के बाद उस स्थान पर ठंडी मिट्टी का लेप लगा दिया गया। पहले ही दिन सूजन कम हो गई जख्म में लाली आ गई और बच्चा आराम से खेलने लगा। एक गर्म जल का एनीमा देकर उसके पेड़ू पर मिट्टी की पट्टी भी रख दी गई जिससे पेट की गर्मी शांत हो जाय। दो दिन लगातार भाप देने से और मिट्टी का लेप लगाने से रोग दूर हो गया। बाद में नारियल का तेल नीबू के साथ मिलाकर लगाने से दो तीन दिन में सब साफ हो गया।

(३) ऐसे ही एक सज्जन के हाथ में और उँगलियों में बहुत पुरानी खुजली हो गई थी। अनेक इलाज करने पर भी कोई फायदा हुआ। तब ऊबकर उन्होंने मुझसे पूछा। और मेरे कहने पर दो तीन दिन उस स्थान पर भाप देकर मिट्टी का लेप लगा कर अपने को चंगा कर लिया। इस प्रकार छोटे छोटे फोड़े फुंसियाँ मिट्टी के प्रयोग से तत्काल अच्छी हो जाती है।

लेखकों से नम्र निवेदन

'जीवन सखा' के लिये जो लेख भेजें वे सरल, सुबोध शैली और साफ अक्षरों में होने चाहिये। जहाँ तक हो सके अपने विचारों को स्पष्ट किन्तु संक्षेप में प्रकट करें। लेख को अनावश्यक रूप से लम्बा बनाने की प्रवृत्ति की सर्वथा उपेक्षा की जानी चाहिये। लेख की पंक्तियाँ घनी न होनी चाहिये। इससे सम्पादन में बड़ी असुविधा होती है। लेख के आदि अथवा अन्त में लेखक का नाम अवश्य लिखा होना चाहिये, पर साथ ही उस पर अपना पता भी लिख दें तो वह हमारे लिये और भी सुविधाजनक होगा।

—सम्पादक।

सेव

श्री मूलनारायण मालवीय, प्रयाग

सेव आहार भी है और औषध भी। इसलिए इसका प्रयोग रोगी और निरोगी सभी के लिए समान रूप से लाभदायक है। मालवीय जी प्रयाग के एक अनुभवी वैद्य हैं—किन्तु आपकी उपचार क्रिया में आयुर्वेद एवं प्राकृतिक चिकित्सा दोनों का ही समन्वय है। इसलिये आप उपचार के लिये जो तरीके बताते हैं वे सर्वथा निर्दोष अहानिकारक तथा लाभकारी होते हैं। आपका यह लेख पढ़ने योग्य है।—सं०

स्वस्थ और सुखमय जीवन व्यतीत करने के लिए उत्तम आहार की आवश्यकता सर्वोपरि है। प्रकृति ने मनुष्य मात्र के लिए अच्छी वस्तुओं का निर्माण किया है, जिनको व्यवहार में लाकर प्राणी नीरोग और सुखी रह सकता है। यह ठीक है कि बिना अन्न के जीवन धारण करना कठिन है। हिन्दू ग्रंथों में ऐसा पढ़ने को मिलता है कि "कलौ अन्नगते प्राणाः" पर ऐसा नहीं है। आज भी ऐसे कितने मनुष्य मिलेंगे जो केवल फल, साग और दूध पर अपना जीवन निर्वाह करते हैं और उनका स्वास्थ्य अन्न खाने वालों से कहीं अच्छा दिखलाई पड़ता है।

फल अनेक प्रकार के मिलते हैं और उनके भिन्न भिन्न गुण होते हैं। उन्हीं गुणों को ध्यान में रखकर उनका उपयोग किया जाता है। फलहार की प्रथा हिन्दुओं में परम्परा से चली आ रही है। एकादशी इत्यादिक् व्रतों में फलाहार करना लोग अपना धार्मिक कर्तव्य मानते हैं। यहां पर यह कहना अनुचित न होगा कि फल शाकादिकों का व्यवहार किया तो जाता है किन्तु उसमें स्वाद के लिए मसाला इत्यादि मिला कर इतनी कृत्रिमता ला देते हैं जिससे उनके वास्तविक गुणों का लोप हो जाता है। फल खाने के समय हमें यह अवश्य ध्यान रखना चाहिये कि हम फलों का ऐसा व्यवहार करें जिसमें उनके द्वारा होने वाले लाभ नष्ट न हों।

भारत वर्ष में अनेक प्रकार के फल उपजते हैं। उनमें अधिक तर यहां ही होते थे और कुछ दूसरे देशों से आकर यहां उत्पन्न होने लग गये हैं। सेव भी इसी प्रकार के फलों में है और अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है। सेव के वृक्ष हिमालय, काश्मीर, पंजाब, सिंध, संयुक्त प्रान्त, मध्य-भारत तथा दक्षिण आदि में पाये जाते हैं। सेव का वृक्ष २५-३० फुट तक ऊंचा होता है। इसके पुष्प सफेद होते हैं और उसमें लाल छींटे पड़े रहते हैं। सेव के फल का रंग लाल, हरा और पीला होता है। कच्ची अवस्था में सेव खट्टा और पकने पर मीठा हो जाता है। एक प्रकार का जंगली सेव भी आता है और वह खट्टा होता है। सेव में 'ए', 'बी', और 'सी०' तीनों प्रकार की विटामिन होते हैं। इसमें 'सी०' विटामिन की अधिकता मानी गई है।

आयुर्वेद के मत से सेव पित्त नाशक, पुष्टिकर्ता, कफकारी, भारी, स्वादिष्ट, पाक में मधुर, शीतल, रुचिकारी और शुक्र प्रगट करने वाला, मस्तिष्क, यकृत और आमाशय को बल प्रद, गरमी को शान्त करने वाला, हृदय की व्याकुलता तथा हांफने में गुणकारी, क्षुधावर्धक और रुधिर का शीघ्र उत्पन्न करने वाला होता है। पथरी जैसे भयंकर रोग भी सेव के सेवन से नष्ट जाते हैं। ध्यान रहे कि सेव अन्य फलों की अपेक्षा शीघ्र पच जाता है। किन्तु अधिक सेवन करने से अगर यह अवगुण करे तो इसका दर्द नाशक, दालचीनी, शहद और गुलकंद है। सेव न मिलने पर इसका पूरक बीही होता है।

सेव को संस्कृत में मुष्टि प्रमाण, बदर, सिंचितिका फल कहते हैं। सेव का कल्प भी किया जाता है। अगर केवल सेव खाया जाय तो यह मूत्रकृच्छ्र, प्रमेह, बवासीर, खांसी, रक्तपित्त इत्यादि को दूर करता है। जिन्हें अतिसार या, संग्रहणी हो उन्हें सेव का छिलका उतार कर खाना चाहिये। क्योंकि सेव का छिलका अतिसार को बढ़ाता है।

जिन्हें कोष्ठ बद्धता हो, पेट में वायु भरती हो उन्हें इसका रस देना चाहिये। मस्तिष्क की निर्बलता, स्मरणशक्ति की कमी शिर दर्द तथा बेहोशी, सनक, उन्माद की अवस्था में यह विचित्र गुण करता है। डाक्टर ज्वर की अवस्था में भी इसका सेवन करते हैं। सेव के गुणों पर मुग्ध होकर वर्तमान समय के प्राकृतिक चिकित्सक इसकी भूरि भूरि प्रशंसा करते हैं। सेव के खाने के सम्बन्ध में कुछ लोगों का मत है कि इसे भोजन के पहिले खाना चाहिये किन्तु जहां तक हो सके भोजन के दो घंटे बाद अगर इसका सेवन किया जाय तो यह खाये हुए आहार को पचाने में यह सहायक होगा। जहां तक हो फलों का सेवन दिन में ही करना चाहिये क्योंकि सभी फल कफ उत्पन्न करते हैं।

सेव विशेष कर ऐसे ही खाया जाता है किन्तु इसकी चटनी और मुरब्बा भी बनता है। सेव के मुरब्बे में छोटी इलायची, वंशलोचन और चांदी का वर्क मिलाकर सेवन किया जाय तो शरीर और हृदय को बल प्राप्त होता है। वैद्य और हकीम निर्बल तथा हृद्रोग से पीड़ित रोगियों को अपनी तरह तरह की औषधियों को सेव के साथ सेवन कराते सेव के खाने से शरीर तो पुष्ट होता ही है रुधिर भी शुद्ध होता है और मुख का स्वाद सुधरता है तथा गले की पीड़ा भी मिटती है। कच्चा सेव खट्टा तो होता है और वह दस्त को रोकता है पर इसके रस में सेंधा निमक मिलाकर लेने से वमन दूर होता है। अफीम खाने तथा शराब पीने की जिन्हें लत पड़ गई हो उन्हें सेव से व्यवहार करने से उनका यह दुर्व्यसन छूट जाता है।

जिन्हें अनिद्रा का रोग हो अर्थात् जिन्हें नींद न आती हो उसके लिए सेव हित कर होगा। जिन्हें रक्तातिसार हो उसे पोस्ते के साथ में सेव का शरबत मिलाकर पिलाने से बड़ा लाभ होगा। शरबत बनाने की यह विधि है कि जितना सेव हो उसकी आधी चीनी मिलाकर शरबत बनाये। शरबत की मात्रा दो तोले की होनी चाहिये। सेव के रस में ४ रत्ती कपूर मिलाकर आध आध घंटे पर कई बार पिलाने से बिच्छू का विष उतर जाता है। पित्तोन्माद में सेव के शरबत में ब्राम्ही के दो मासे चूर्ण को मिला कर व्यवहार में लाना गुणकारी होता है।

गर्मी से होने वाले दस्त में सेव का मुरब्बा अच्छा काम करता है। पके हुए सेव के रस में मिश्री मिलाकर लेने से सूखी खांसी और मूर्च्छा दूर होती है। गर्मी से होने वाली आंख की पीड़ा में सेव पीस कर लेप करने से लाभ होता है। सेव के टुकड़े मुख में रखने से तृषा शान्त होती है।

देखा यह जाता है कि लोग सेव के बीज को निकम्मा समझ कर फेंक देते हैं किन्तु सेव के बीज में बड़ा गुण होता है। 'फलाहार' नामक पुस्तक के विद्वान लेखक ने सेव के बीजों के जो प्रयोग दिये हैं उनकी उपयोगिता को देख कर हम उसका भी वर्णन करना अपना कर्तव्य समझे हैं। हैजे में सेव के बीज, लौंग और काली मिर्च इन तीनों को बराबर बराबर मिलाकर झरबेरी बेर के समान गोली बनाकर एक एक घंटे पर गोली खिलाने से लाभ होगा। जब कै बंद हो जाय तब दवा रोक देनी चाहिये। खून के दबाव रक्तचाप में बीज बहुत लाभ करते हैं। सेव के बीज से कफ के समस्त रोग दूर होते हैं। सेव के बीज और सेंधा नमक समभाग लेकर पीस कर प्रातः काल गर्म जल से लेने से बहुमूत्र अच्छा होता है। इसी प्रकार सेव के बीजों को पीस कर दिन में दो तीन बार गर्म दूध के साथ लिया जाय तो भी बहुमूत्र के लिए लाभकारी होगा।

टांसिल बढ़ना

डाक्टर युगलकिशोर चौधरी अग्रवाल, पो० नीम का थाना (जयपुर)

वर्तमान सम्ययुग में बच्चों व बूढ़ों के टांसिल फूलने व बढ़ने की शिकायत बहुत फैलती जा रही है। इन बढ़े हुए टांसिलों (गिल्टी) को कटवा डालना ही इसका एक मात्र इलाज समझा जाता है। यद्यपि प्रगट में टांसिलों का इलाज आपरेशन ही सही दीखता है पर वास्तव में टांसिल कटवा कर फेंक देना एक अत्यंत भ्रम पूर्ण, मिथ्या व हानिकर उपचार है। और जिन व्यक्तियों के टांसिल काट डाले जाते हैं उनका भावी स्वास्थ्य पहले से बहुत खराब हो जाता है।

चित्र नं० १

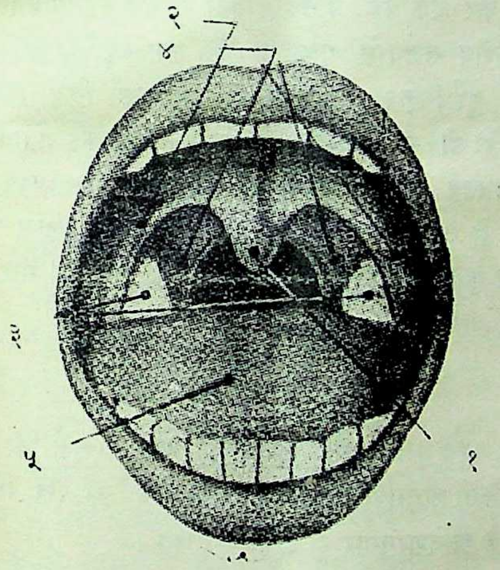

१—अलि-जिह्वा—घांटी
२—पिछली गलस्तम्भिका
३—उपजिह्विका (टांसिल)
४—अगली गलस्तम्भिका
५—जिह्वा

टांसिल एक प्रकार की गिल्टियाँ हैं जो गले के द्वार पर स्थित हैं और उनका काम यह है कि सिर, मुख, व शरीर के दूसरे ऊपर के भागों से विजातीय द्रव्य, तथा विषैले पदार्थ बाहर निकाल फेंके और उन्हें साफ़ रखें तथा पाचक रस (लार) काफी मात्रा में उत्पन्न कर के भोजन पचाने में सहायता करें। जरा सोचिए ऐसे उपयोगी, आवश्यक भाग को निकाल देने से शरीर को कितनी अधिक हानि उठानी पड़ेगी ?

चित्र नं० २

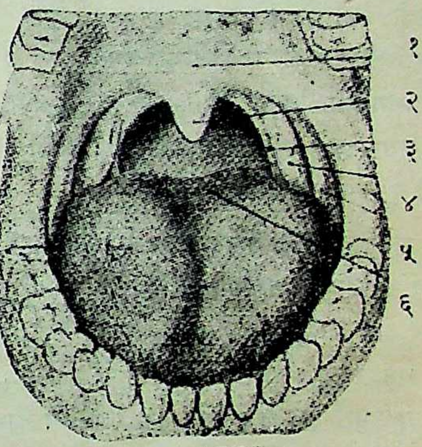

१— तालु
२— अति-जिह्व —घांटी
३—अगली गल.स्तम्भिका
४—उपजिह्विका
५—पिछली गल स्तम्भिका
६—जिह्वा-मूल

टांसिल बढ़ जाना इस बात का स्पष्ट चिन्ह है कि शरीर में प्रकृति विरुद्ध भोजन के द्वारा काफी कचरा या मैल भर गया है जिसके निकालते निकालते बेचारे टांसिल थक कर फूल गए हैं और आकार में बढ़ गए हैं।

ऐसी स्थिति में उचित इलाज शरीर की सफाई है न कि टांसिल को काट कर फेंक देना। टांसिल के आपरेशन से कभी शरीर की सफ़ाई नहीं हो सकती बल्कि शरीर को उसके एक आवश्यक अंग से वंचित कर दिया जायगा और भविष्य में उसके अभाव में शरीर को भारी हानि सहनी पड़ेगी जिस प्रकार घड़ी या किसी भी मशीन का कोई छोटा

पुरज़ा अलग कर देने से वह घड़ी व मशीन निकम्मी हो जाती है।

आज के डाक्टर शल्य क्रिया को इतना महत्त्व देते हैं कि वे यह सोचना भी भूल जाते हैं कि प्रकृति ने शरीर के हर एक अंग को जरूरी समझ कर बनाया है और किसी भी भाग को निकाल देने से सारा शरीर खराब व कमजोर हो जाता है क्योंकि हर एक भाग का एक दूसरे से गहरा संबंध है।

यह कोई महत्व पूर्ण सच्चा इलाज नहीं कि शरीर के किसी रोगी भाग को काटकर फेंक दिया जाय बल्कि उत्तम चिकित्सा तो यह होगी कि स्थाई रूप से उस विकृत रोगी भाग को विकार रहित और स्वस्थ बना दिया जाय और ऐसा केवल प्राकृतिक उपचारों द्वारा ही हो सकता है, किसी दूसरे उपाय से नहीं।

शल्य क्रिया टांसिल की की जाय या चाहे उपांत्र की किन्तु यह डाक्टरों के लिए तो लाभप्रद है परंतु आपरेशन कराने वाले रोगी के लिए इसमें सब तरह हानि ही है क्योंकि उसे धन, स्वास्थ्य और दीर्घ जीवन से हाथ धोना पड़ता है।

कठिनाई तो यह है कि जनता विवेक से काम नहीं लेती। वह रूढ़िवाद तथा अंध विश्वास की लीक पर चल रही है बाहरी चमक टीप टाप, विज्ञान के चमत्कारों पर लट्टू हो रही है गहराई मर्म व रहस्य को समझने की चेष्टा नहीं की जाती।

कहते हैं कि जिन लोगों के टांसिल फूल जाते हैं उन्हें अकसर यह शिकायतें होने लगती हैं—बार बार सरदी जुकाम हो जाना, शरीर का ठीक न बढ़ना, मुंह से श्वास लेना, बुद्धि मंद हो जाना आदि।

डाक्टरों का मत है कि अगर बढ़े हुए टांसिलों को निकाल दिया जाय तो उपरोक्त खराबियां दूर हो जाती हैं और वास्तव में आपरेशन के बाद क्षणिक लाभ भी दिखाई देता है परंतु यह धोखा है और शीघ्र ही नई शिकायतें पैदा होने लगती हैं। जर्मनी, अमरीका, इंगलैंड आदि देशों के बड़े बड़े डाक्टरों का मत है कि टांसिल कटवा देने से दमा खांसी शिर दर्द, अग्नि मांद्य आदि रोग बाद में हो जाते हैं।

जब कोई टांसिल का रोगी डाक्टर के पास लाया जाता है तो डाक्टर कहते हैं: आपरेशन कर डालो सब ठीक हो जायगा वे कभी यह सोचने का कष्ट नहीं करते कि टांसिल क्यों बढ़े यह शिकायत क्यों हुई और शरीर के रोगी यानी रोग होने से भी इसका कोई संबंध है या नहीं। बेचारे अज्ञान, भोले भाले, स्वास्थ्य के नियमों से अनभिज्ञ रोगी भय और आशा से प्रभावित हो कर डाक्टर का यह भयानक प्रस्ताव मजबूर हो कर मान लेते हैं और आपरेशन करा लेते हैं। लेकिन जो लोग यह भली भांति जानते हैं कि टांसिल बढ़ने बढ़ाने का प्रधान कारण दूषित रक्त है वे टांसिल का आपरेशन कभी नहीं करावेंगे बल्कि प्राकृतिक उपायों द्वारा अपना रक्त शुद्ध बनावेंगे और तब टांसिल स्वयं ठीक हो जायँगे।

विलायत के प्रसिद्ध सर्जन डाक्टर विलियम हावर्ड ने एक बार एक बड़े प्रसिद्ध डाक्टर टांसिल व एपेंडिसाइटीज़ के विशेष सर्जन से पूछा था कि क्या बढ़े हुए टांसिल व सूजी हुई विकृत उपांत्र बिना चीर फाड़ किसी उपाय से ठीक हो ही नहीं सकती, तो उन्हों ने हंस कर जवाब दिया कि वास्तव में तो दोनों ही रोग बिना चीर फाड़ के भी ठीक हो सकते हैं परंतु अगर हम और कोई इलाज करें तो समय कुछ अधिक लगेगा और हमारी फीस की मोटी रकमें मारी जायँगी।

इलाज

बहुत पुराने तथा अधिक बढ़े हुए टांसिलों का इलाज तो किसी अनुभवी प्राकृतिक चिकित्सक की देख रेख में व उसके आदेशानुसार ही होना चाहिए।

परंतु साधारण टांसिल के लिए जनता के लाभार्थ हम इस लेख में ऐसा इलाज लिख रहे हैं जिससे हर एक मनुष्य घर पर कर सके। धैर्य और विवेक से काम लेना उचित है। विधि पूर्वक लगातार इलाज से अवश्य पूर्ण लाभ होगा इसमें संदेह नहीं। रोगी को अपनी शारीरिक व आर्थिक परिस्थिति को देखते हुए आरंभ में एक से तीन दिन तक उपवास करना चाहिए। उपवास काल में केवल संतरा अनार मौसमी अंगूर नीबू या मुनक्का का रस ही लेना चाहिए और

(शेष ३७८ पर)

लेखक

तीस वर्ष की उम्र में मरा, साठ वर्ष में दफ़नाया गया

डा० रामचरण महेन्द्र, एम० ए०, डी० लिट्

आज कल मरने वाले अधिकांश मनुष्यों की कब्र पर यही लिखना चाहिए कि "३० वर्ष की उम्र में मरा, पर साठ वर्ष में दफ़नाया गया।" क्यों ?

कितने ही व्यक्ति हमारे देखने में ऐसे-आये हैं, जो तीस वर्ष की चढ़ती जवानी में ही अपने आपको बुड्ढे की उपाधि देने लगते हैं। जो जवान दीखते हुए भी वास्तव में बूढ़े हो चुके हैं। उनका हृदय बूढ़ा और कार्य भी बूढ़े ही होते हैं। उनका तन बूढ़ा नहीं, मन बूढ़ा होता है। मन का बुढ़ापा तन के बुढ़ापे से ज़्यादा ख़तरनाक है। हम कालेज में वर्षों से प्रोफ़ेसरी करते आ रहे हैं। ढेर के ढेर लड़के हमारे सामने से गुज़रते हैं। हमने अनेक ऐसे युवक विद्यार्थी देखे हैं जो मन के बूढ़े हैं। देखने में तो युवक प्रतीत होते हैं किन्तु इनके हृदय से मस्ती, जोश सुख-स्वप्न एवं यौवन की मधुर कल्पनाएँ सदैव के लिए बरबाद हो चुकी हैं। इन्हें जीवन फीका, नीरस, क्षणभंगुर तथा फ़ानी मालूम होने लगा है।

हमारे एक पुराने मित्र ने हमें एक पत्र लिखा है। उनका नाम, अज्ञात रखते हुए हम पत्र का एक अंश यहां उद्धृत करेंगे। आप लिखते हैं —

"..........कभी कभी मुझको बोर्डिंग के कमरे की याद आती है, जब हम भी तुम्हारे पास होते थे, जब घूमने फिरने, खेलने कूदने सैर सपाटे में एक वहम सी थी। जब जीवन एक मादक वस्तु के समान था और अधिकाधिक हम और तुम उसमें मग्न हो सकते थे। तब तुम जैसे मित्रों से बातें करने में जीवन एक सुनहरा रंगीन सपना सा प्रि। मालूम होता था और मस्तिष्क की सूक्ष्म गति के प्रदर्शन में एक अजीब आनन्द सा आता था। अब तो मालूम होता है कि तृप्ति और संतोष की भावना ने शरीर और मस्तिष्क के तीखेपन को नष्ट कर दिया है। मुझे कोई कष्ट नहीं है, सुख ही है। मेरी इच्छाओं की पूर्ति, इससे पहिले कि मैं उनका ख़्याल करूं—हो जाती है। फिर भी, वह सुख नहीं है। अजीब काहिली सी छा गई है और एक घड़ी की भाँति जीवन की घड़ियों को गिनता जा रहा हूँ......तुम से पुराने चिन्ता विहीन दिनों की बातें कर, वर्तमान या भविष्य में नहीं, भूत में स्नान कर कुछ समय के लिए प्रसन्न होना चाहता हूँ......।"

उदासीनता, बेबसी, निराशा और अशक्तता से भरी यह मानसिक दशा हमारे एक इन्हीं मित्र की नहीं हज़ारों की है। न जाने क्यों लोग जीवन के प्रति उल्लसित नहीं हैं। आजकल हम देख रहे हैं कि मनुष्य बहुत जल्दी वृद्ध और

कमज़ोर होते जा रहे हैं और असमय ही काल के ग्रास बन रहे हैं। इसका प्रधान कारण है हममें विचारों की बुढ़ापा। मन तो शरीर का स्वामी है। मुख की झुर्रियाँ वास्तव में मन की वृद्धावस्था के बाह्य चिह्न हैं। आज हम देख रहे हैं कि मन के बुढ़ापे ने लोगों को परेशान कर रक्खा है। हम बुढ़ापे की दुखदायिनी हृदय-विदारिणी भावना में रमण करते हैं। न जाने क्या बुरी बातें भविष्य के लिए सोचते हैं और इस दुःखद चिन्तन से समय से पूर्व ही बूढ़े बनते हैं।

प्रिय पाठक! स्मरण रखिये रोगों, व्याधियों एवं अन्य बुरी बातों के चिन्तन से आप मन का बुढ़ापा बुलाते हैं। मन का बुढ़ापा ही सच्चा बुढ़ापा है मन की जवानी सच्ची जवानी है। मन की जवानी बूढ़े शरीर को भी स्निग्ध रखती है। मन के हाथ में तन की सत्ता है। अतः मन की जवानी को क़ायम रखिये। बुढ़ापे के ख़्याल में डूबकर, वृद्धावस्था की कुत्सित कल्पनाओं में गोता लगा कर, हर समय बुढ़ापे के स्वप्न देख देख कर और निरन्तर बुढ़ापे चिन्ता में जलकर हम तन की झुर्रियाँ समय से पूर्व ही बुलाते हैं। ऐसा सोच सोच कर हम उसके लिए अनुकूल मानसिक स्थिति बना देते हैं। मन के हाथ में शरीर की बागडोर है। जहाँ मन में बुढ़ापे की बात बैठी कि बुढ़ापे का प्रकटीकरण शरीर में प्रारंभ हो जाता है फिर वही मानसिक रोग, वही चिंता वही कुत्सित कल्पना भयकर शारीरिक विकारों का रूप धारण कर शरीर से प्रकट होता है। इस प्रकार मन के विकार से, हम अपने हाथों से अपना भाग्य फोड़ते और स्वास्थ्य रूपी कुमुद को काले बादलों से ढक लेते हैं।

बुढ़ापे को भगाने के उपायों की खोज में वर्षों ठोकरें खाने के पश्चात् मुझे अचानक ज्ञात हुआ है कि बड़े ज़ोर शोर से इनकी तलाश करने से, सदा इन्हीं की चिन्ता में लगे रहने से, हम इन्हें नहीं प्राप्त कर सकते। सौ बात की एक बात यह है कभी एक क्षण के लिए भी ~~कि कभी एक क्षण के लिए भी~~ अपने मन में इस बात का विचार न आने दो कि हम बूढ़े हैं बीमार हैं कमज़ोर हैं। अपनी आयु को बिल्कुल भूल जाइये। बीमारी की बात ही न सोचिये। सालगिरह न मनाइये, विवाह-तिथि मनाइये। कविता पढ़िये। युवकों के सम्पर्क में रहिये। मन को आशा के सुखमय स्वप्न देखने की आदत डालिये। यौवन के पवित्र आशय को लेकर जीवन में प्रविष्ट हो जाइये और महत्त्वाकांक्षा की दिव्य ज्योति से उसे प्रकाशित कीजिए।

[३७६ पेज का शेष]

कुछ नहीं। इसके सिवा रोज सुबह शौच के बाद गरम जल का एनेमा लेना चाहिए ताकि बड़ी आंत साफ़ हो जाय। इसके बाद शक्ति व सामर्थ्य के अनुसार एक से दो सप्ताह केवल फल, दूध शाक, मेवेजात आदिपर रहना चाहिए। एनेमा जरूर लें। अगर रोग पुराना हो तो दो तीन सप्ताह पुनः दूध व फलों पर रहना जरूरी है अन्यथा नए रोग में थोड़ा अन्न रोटी हरे शाक आदि लेने चाहिएँ और फिर साधारण भोजन पर आजायं। किंतु भावी स्वास्थ्य को बनाए रखने के लिए यह आवश्यक है कि सफ़ेद चीनी, तेज मसाले आचार, मैदा नशा से परहेज रखें।

कपड़े यथा शक्ति कम पहनें, हलके पतले ढीले पहनें। भारी जूते न पहनें। चप्पल पहनना अच्छा होगा। रोज़ाना हवा स्नान, धूप स्नान, पेड़ू स्नान भी आवश्यक हैं।

इसके अलावा सूजन व पीड़ित भाग गले पर अच्छी तरह गीली चिकनी मिट्टी दिन में तीन बार लगावें। २-२ घंटे पर पट्टी रखें। बीच बीचमें गीली पानी पट्टी भी रखी जाय। प्रातः उठकर और रात को सोते समय थोड़ा नींबू का रस मिलाकर ठंडा जल मुंह में भर कर गरारे या कुल्ले करना चाहिए। बार बार कुल्ला कर के पानी फेंकते रहें। दवा न सिलाई जावे। गरारा २-३ बार कर सकते हैं। मवाद हो तो साफ कर देना चाहिए। दवा या चीर फाड़ का आश्रय न लें। इन उपायों से पूर्ण लाभ होगा और भावी स्वास्थ्य बहुत उत्तम रहेगा।

अंजीर—एक पौष्टिक आहार

श्री रामेशवेदी आयुर्वेदालंकार, हिमालय हर्बल इंस्टिटयूट, बादमी बाग, लाहौर

सूखे फलों में अंजीर का स्थान बहुत ऊंचा है। इसका इस्तेमाल भोजन और औषधि दोनों में समान रूप से होता है। इस लेख में अनुभवी लेखक ने अंजीर की उपादेयता का बहुत थोड़े में किन्तु बड़े सुन्दर ढंग से वर्णन किया है।

वेदी जी आयुर्वेदशास्त्र के अच्छे मर्मज्ञ एवं कुशल चिकित्सक भी हैं। आहार-शास्त्र और विशेषतः बनस्पतियों के सम्बन्ध में आपका अध्ययन उच्च कोटि का है। आपकी तद्विषयक अनेक पुस्तकें भी प्रकाशित हो चुकी हैं। आशा है, हमारे जिज्ञासु पाठक श्री वेदी जी के लेखों का समुचित स्वागत करेंगे।

—सं]

वानस्पतिक जगत् में अंजीर वंश सब से बड़े वंशों में से एक है। वनस्पति शास्त्र के विद्वानों ने इस वंश में ६०० से अधिक पौधों का पता लगाया है और उनका वर्णन किया है। इन छः सौ प्रकारों में ऐसे पौधे थोड़े ही है जिनके फल खाने के काम आते हैं। काटी हुई शाखाओं में सुगमता से उग आना, गर्मी और पाले से मुकाबला करने की शक्ति का होना शीघ्र फल देने लग जाना तथा मानवीय भोजन के रूप में प्रयुक्त होना आदि गुणों के कारण यह पौधा बहुत से प्रदेशों में फैल गया है।

क्या अंजीर भारत का पौधा नहीं है ?

इस पौधे का आदि स्थान भारत होने में बहुत सन्देह है। भारतीय संस्कृत साहित्य में क्षीरी वृक्षों (दूध वाले वृक्षों) में औदुम्बर (गूलर) के भेद काकोदुम्बरिका को आमतौर पर अंजीर का नाम देने का रिवाज प्रचलित हो गया है, परन्तु यह शुद्ध अंजीर के लिए ही प्रयुक्त हुआ है, इसके लिए कोई निश्चित प्रमाण नहीं दिया जा सकता। अंजीर शब्द फारसी का है। संस्कृत साहित्य में इस शब्द को इसी रूप में अपनाने वाला सब से पहला लेखक मदन पाल प्रतीत होता है उसके बाद शब्द कल्पद्रुम (१८८६) वैद्यक शब्द सिन्धु तथा निघण्टु के अन्य ग्रन्थों में भी हम अंजीर शब्द का प्रयोग देखते हैं।

मालूम होता है कि पूर्व की ओर व्यापार के लिए आने वाले अरब व्यापारियों के फारसी नाविकों द्वारा अंजीर भारत में आया। फारसी लोग निस्सन्देह अपनी खाद्य सामग्री में सूखे अंजीरों को भी रखते थे। इस लिए सम्भव है कि भारत में अंजीर का प्रसार उन्हीं के द्वारा हुआ हो, यह विचार धारा आंशिक रूप में सत्य हो सकती है। क्योंकि प्रायः दो हजार साल पहले से तो इस देश में हम अंजीर को सुमधुर बढ़िया फल के रूप में उपयोग किया जाता हुआ देखते हैं। इसका संस्कृत नाम फल्गु है। फलों के गुणों के प्रकरण में चरक ने इसे एक महत्वपूर्ण उपयोगी फल बताया है। इसलिए हमें अंजीर को भारत की भूमि पर ही प्राकृतिक रूप में स्वतः उगने वाला पौधा मानना चाहिए।

अच्छे अंजीर की पहिचान और उसका संग्रह

कच्चे और पके दोनों प्रकार के फल भोजन में और औषधि के रूप में काम आते है। पक जाने पर जिस पर जिस फल के इधर का छिलका पहला हो और अन्दर के बीज तथा गूदा साफ दिखाई दे वह अच्छा माना जाता है। स्मर्ण से भारत में आने वाले अंजीर सब से अच्छे समझे जाते है।

पके जाने पर फल सावधानी के साथ पेड़ से तोड़ लिए जाते हैं। अच्छा रंग बनाए रखने और छिलके को नरम करने के उद्देश्य से कभी-कभी सुखाने से पहले फलों को गन्धक की धूनी दी जाती है या नमक और शोरा मिले हुए गरम

पानी के घोल में डुबो कर निकाल लिया जाता है। पहली प्रक्रिया से फलों में एक अप्रिय स्वाद आ जाता है। सुखाने के लिए उद्यान के बाहर साफ़ जगह होनी चाहिए जहां सूर्य की किरणें फलों पर खूब अच्छी तरह लग सकें और वे शुद्ध ताजी वायु के सम्पर्क में रहें। पहले, इनको दिन में दो बार और बाद में एक बार पलट देना चाहिए। छः-सात दिन में धीरे-धीरे सुखाने से उत्तम किस्म के अंजीर बन जाते हैं। सुखाते समय ओस और बारिश में नहीं भीगने देना चाहिए। अच्छी तरह सूख जाने पर टोकरियों और बोरियों में भर लिए जाते है। सूखते समय जो फल फट जाते हैं, वे खराब हो जाते हैं।

शरीर पर प्रभाव तथा गुण

अंजीर शीतल; अनुलोमक, लेपक, क्षोभहर, कफ नाशक, कहते हुए खून को बन्द करने वाले, बलदायक और पुष्टिकर फल है। इसके दूध में विद्यमान पैप्टोनाइजिंग फर्मेन्ट का फाइब्रीन पर और दूध पर पेपेन के समान प्रभाव होता है। यह निशास्ते को शर्करा में बदल देता है।

फलों में विद्यमान बीज आन्तरिक प्रयोग में आँतों की मल को आगे खिसकाने की गति को बढ़ा देते हैं जिससे मल शीघ्रता से आगे खिसकता है। उस प्रकार फलों का मल विसर्जक और अनुलोमक प्रभाव होता हैं।

रासायनिक संघटन

प्रोटीन	१·३	प्रतिशत
वसा	·२	"
खनिज पदार्थ	·६	"
कर्बोदित (कर्बोहाइड्रेट्स)	१६·१	"
चूना कैल्शियम	·०६	"
प्रस्फुटक	·०६	"

प्रति सौ ग्राम (एक ग्राम लगभग एक माशे के बराबर होता है) अंजीर में लोहे का परिमाण १·५ मिलीग्राम होता है। १०० ग्राम में खाद्योज (विटामिनों) की २७१ अन्तर्राष्ट्रीय इकाइयाँ होती है और खाद्योज सी २ मिलीग्राम होता है। अंजीर का प्रत्येक औंस हमें गर्मी की इक्कीस इकाइयाँ देता है और सौ ग्राम में ऊष्मा की इकाइयां ७५ होती है।

बच्चों के लिए अत्यन्त हितकर फल

मानवदुग्ध और ताजे अंजीरों के रासायनिक संघटन से जब हम तुलना करते हैं तो हमें दोनों में बहुत अधिक समता दिखाई देती हैं, विशेषकर खनिज लवणों के अनुपात के सम्बन्ध में जननी के दूध में जहां वसा की प्रतिशतकता उच्च है वहां अंजीर में फलों की शर्करा अधिक है। इस प्रकार प्रति औंस ऊष्मा इकाइयों का परिमाण एक समान ही है। यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि महत्वपूर्ण पदार्थ सोडियम, लोह और गन्धक अंजीर में दूध तथा गेहूं की अपेक्षा अधिक अनुपात में होते है।

सूखे अंजीर यदि सुरक्षित रासायनिक तत्वों (Chemical preservations) से रहित है तो बच्चों के लिए खाँड मिठाई और निशास्ते वाले भोजनों के स्थान पर अत्यन्त स्वास्थ्यप्रद और पोषक फलों में से एक है। ये दांतों की रक्षा करते हैं। सुगमता से पल जाते हैं और मलबन्ध को सटाते है। भोजन और औषध दोनों में ये समान रूप से इस्तेमाल होते हैं और इसलिए प्रत्येक घर में इनका, इस्तेमाल बढ़ना चाहिए।

बढ़ते हुए बच्चों में क्योंकि शारीरिक वृद्धि तथा मानसिक विकास ही होता रहता है इस लिए उपचय और अपचय की प्रक्रिया के लिए इनकी अधिक जरूरत पड़ती है। अन्य पदार्थों की अपेक्षा ये पदार्थ अधिक शीघ्रता से नये पहुँचा देने चाहिए और इनका हमारे भोजनों में पर्याप्त परिमाण में होना बहुत महत्व की बात है। इस लिए शारीरिक और मानसिक सब प्रकार की थकान को दूर करके शरीर में पुनः जीवन शक्ति भर देने के लिए अंजीर निर्विवाद रूप से उपादेय है।

वृद्धा अवस्था के रोकने के उपाय

श्री रुद्रदत्त मिश्र, विशारद

उत्पत्ति, स्थिति और लय यह संसार का अटल नियम है और मनुष्य के जीवन में भी इसी नियम का समावेश है। प्रत्येक जीवधारी को इन तीन अवस्थाओं में प्रवेश करना पड़ता है। मनुष्य जीवन के अन्तिम भाग का नाम वृद्धावस्था है, इसके पिछले सिरे का सम्बन्ध लय अर्थात् मृत्यु से है! जिस प्रकार स्वाभाविक रीति से काल यापन करने पर क्रमशः युवा, प्रौढ़ तथा वृद्धावस्था और अन्त में देहान्त की आदर्श व्यवस्था प्रकृति करती है उसी प्रकार अस्वाभाविक रूप से जीवन बिताने पर प्रकृति की आदर्श व्यवस्था छिन्न-भिन्न होकर परिणामस्वरूप अकाल मृत्यु, युवा काल में बृद्धता और वृद्धता के प्रारम्भ में जीवन क्षय के लक्षणों का प्रदर्शन होने लगता है। जीवन की डोर को इस प्रकार सम्हाल कर रखना चाहिये कि कहीं अनुचित दबाव के कारण वह समय से पहिले ही न टूट जाय। बस, इसी विद्या का नाम दीर्घायु विज्ञान है।

प्रायः हम लोग बाल्य और युवा काल में दीर्घायु प्राप्ति के लिये प्रयत्न नहीं करते, हां इच्छुक तो होते हैं—सब ही चाहते हैं कि हम शतायु बनें। जीवेम् शरदः शतम्.. आदि की भावना अब केवल बाणी प्रयोग मात्र रह गयी है, उस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये जो नियम बनाये गये हैं उनकी हम परवाह नहीं करते।

युवा काल की जीवनचर्या को छोड़कर यहां हम वृद्धावस्था के सम्बन्ध में विचार करेंगे कि किस प्रकार वृद्धावस्था की निराशाजनक स्थिति से बचकर आरोग्य और आनन्दमय जीवन व्यतीत कर सकते हैं। जरा अवस्था वास्तव में मनुष्य जीवन की अन्तिम शान्तिमय अवस्था है। इसमें मनुष्य को युवा काल से अधिक विचारवान्, अधिक बुद्धिमान् और शान्ति-प्रिय तथा निश्चिन्त और प्रसन्नमुख एवं साफल्य विजयोल्लास पूरित, कान्तियुक्त होना चाहिये; परन्तु इसके विपरीत बृद्धों की दशा अत्यन्त चिन्ताजनक, करुणापूर्ण और रुग्ण होती है। उनकी चेष्टा निराशमय, उनकी कान्ति असफल, पराजित व्यक्ति के सदृश दिखाई देती है। उनकी प्रकृति अशान्त, स्वभाव चिड़चिड़ा और बुद्धि "सठियाई" हुई होती है। इसका क्या कारण है?

यह तो सर्व सम्मत बात है कि संसार में ऐसे वृद्ध पुरुषों की कमी नहीं रही है जिनकी दूरदर्शिता, विचार परिपक्वता और अनुभूत कार्य-प्रणाली से संसार ने बड़ी सहायता न ली हो। अतएव कोई कारण नहीं कि वृद्धावस्था में मनुष्य की मानसिक दशा अवनत हो जाय। हां, शारीरिक शक्ति अवश्य क्षीण होती पाई गई है और यह स्वाभाविक भी है; पर इतनी नहीं कि ४० ही वर्ष के उपरान्त अंगं गलितं पलितं मुण्डं दशन विहीनं जातं तुण्डम्।। बृद्धो-याति गृहीत्वा दण्डं... वाली अवस्था उपस्थित हो जाय। इसे रोकना मनुष्य की बुद्धिमत्ता है और कम से कम १०० वर्ष तक तो मनुष्य को स्वस्थ और सबल मस्तिष्क रहना ही चाहिये। जीवन व्यापार के स्वाभाविक परिणामस्वरूप बुढ़ापा आता है और यह मृत्यु का सन्देश लाता है तो भी आयुष्य बढ़ाने का साधन इस समय में सुभीते से बन पड़ता है। एक वस्तु हानिकारक होते हुए भी लाभप्रद हो सकती है। अनेक बार दुःख में से सुख की प्राप्ति होती है। अंग्रेजी में भी एक कहावत प्रसिद्ध है—Out of evil, comes good—यद्यपि सामान्य रूप से यह बात विपरीत ज्ञात होती है, किन्तु व्यवहार में इस बात की सत्यता प्रमाणित होती है। बुढ़ापा को जिस तरह से जीवन का शत्रु माना जाता है उसी तरह यहमनुष्य जीवन का परम मित्र भी है। कारण स्पष्ट है। वृद्धावस्था में जीवना-शक्ति न्यून हो जाती है, उसमें जीवनोद्धार करने की सामर्थ्य भी न्यून होती है, इस प्रकार पुरुषार्थ और स्फूर्ति का नाश होने पर मृत्यु का आगमन होता है। लेकिन वृद्धावस्था में मनुष्य के मनोविकारों में भी शिथिलता आ जाती है इस

कारण मनुष्य के अनेक दुर्विचारों, दुर्व्यसनों का अन्त इस अवस्था में हो जाता है। ऐसा होने से शरीर की क्षय क्रिया रुक जाती है, जितनी ही शान्ति प्राप्त होगी शरीर का क्षय उतना ही न्यून होगा। वास्तव में वृद्धावस्था में मन शान्त हो जाने से समस्त शरीर में शान्ति व्याप्त हो जाती है। उग्रता अशान्ति का अन्त होने से व्यर्थ जीवन-नाश .. क्रम ढीला पड़ जाता है और आरोग्य बढ़ाने में सहायक होता है।

वृद्धावस्था में आयुष्य की वृद्धि की जाती है परन्तु भिन्न प्रकार के नियमों का पालन करना पड़ता है:—

(१) वृद्धावस्था में रक्त-वाहिनी नलियां कठोर हो जाती हैं इसलिए उनके नरम रखने के लिये प्रयत्न करने की आवश्यकता है। व्यायाम आदि अंग सञ्चालन की क्रियायें इसके लिये उपयोगी हैं। यदि नालियों में कठोरता रहेगी तो रक्त-संचालन में रुकावट होगी और शरीर का पोषण न हो सकेगा, परिणाम स्वरूप मृत्यु शीघ्र आ घेरेगी।

(२) जीवन क्षय को रोकने के लिये हलका किन्तु पौष्टिक प्रवाही पदार्थ भोजन के रूप में लेना चाहिये, जैसे गरम दूध तथा दलिया, सूखे व हरे फल, मेवे, ताजी तरकारियां आदि।

(३) शरीर की उष्णता और शक्ति कम होती जाती है; इसलिये उसको यथोचित मात्रा में रखने के लिये प्रयत्नशील रहना चाहिये। गरम कपड़ों का उपयोग विशेष करना चाहिये।

(४) वृद्धावस्था में मल, मूत्र स्वेद आदि उचित मात्रा में शरीर से बाहर नहीं निकलते, इसलिये इस बात पर विशेष ध्यान रखना चाहिये कि कब्ज न होने पावे और शरीर का पसीना निकलता रहे, इसलिये नियमित व्यायाम और स्नान करते रहें। पेट की शुद्धि भी होती रहनी चाहिये। यदि जहरीले पदार्थ शरीर से न निकल सकेंगे तो इकट्ठा होकर विकार उत्पन्न करेंगे और मनुष्य को रोग आ घेरेंगे। एनिमा का उपयोग भी सहायक है। स्नान गरम पानी से किया जाय।

(५) वृद्धावस्था में अफीम और शराब आदि मादक द्रव्यों का उपयोग कदापि न करना चाहिये। हुक्का, तम्बाकू, बीड़ी, सिगरेट का पीना भी बहुत कमकर देना चाहिये। इस अवस्था में फेफड़ों की शक्ति क्षीण हो जाती है। यदि धूम्र पदार्थों का सेवन जारी रहेगा तो खांसी, श्वास, दमा, क्षय की शिकायतें पैदा हो जायंगी। रक्त स्वच्छ न हो सकेगा और शक्तिहीनता आ घेरेगी।

(६) इस अवस्था में संयम-नियम से रहना आवश्यक है। विषय वासना के विकारों से दूर रहना श्रेष्ठ है। माया, मोह, क्रोध, शोक, ईर्षा और लालच तथा वैमनस्य आदि विनाशकारी भावनाओं का परित्याग होना आवश्यक है।

(७) वृद्धावस्था में यदि हो सके तो मनुष्य एकान्त शान्त स्थान में जाकर रहे। नदी तट, तीर्थ स्थान, आदि का निवास सुख और शान्ति को बढ़ाने वाला होता है। वहाँ दुनिया की झंझटों से छुटकारा मिल सकता है और विचारों में पवित्रता बढ़ती है।

(८) युवा काल में खाने-पीने आदि सब कार्यों की अनियमितता से प्रायः हानि नहीं जान पड़ती; परन्तु ढलती आयु में इन सब बातों में नियमितता होनी चाहिये।

खाना-पीना, चलना फिरना, सोना और विश्राम करना यह सब नियमित रूप से होना आवश्यक है।

(९) बुढ़ापे में मालिश करना बड़ा लाभकारी है— इससे रक्त वाहिनी नालियाँ सशक्त और निर्विकार तथा पुष्ट रहती है, उनमें कार्य क्षमता बढ़ती और रक्त सञ्चार में कमी नहीं पड़ने पाती। गाड़ी में बैठकर वायु सेवन के लिये बाहर घूमना अत्यन्त लाभकारी है। अति परिश्रम से बचना भी उतना ही आवश्यक है।

(१०) अन्तिम और मुख्य उपाय बुढ़ापे को रोकने का यह है कि अपने विचार सदा उन्नत और उत्साहयुक्त रखे जाँय। अपनी संगति में आनन्दी स्वभाव वाले निर्दोष बालकों और युवकों को स्थान दिया जाय। महात्मा गांधी बच्चों के साथ उसी तरह खेलते हैं जिस तरह कि सरल हृदय निर्दोष बालक। ऐसा करने से वृद्धावस्था में भयकारी विचार मनुष्य को क्षुब्ध नहीं करते और जीवन के शेष दिन आनन्द के साथ व्यतीत होते हैं। बुढ़ापे के विचारों को स्थान न दिया जाय और यह भी ख्याल न किया जाय कि हमारी आयु अब [illegible] हो चली है, और हम अशक्त होते जा रहे हैं, कुछ दिनों बाद नेत्रों की ज्योति न रहेगी आदि।

इस परमात्मा की उपासना और लोकोपकार जीवन बढ़ाने के लिये बहुत जरूरी हैं। ईश्वर से प्रेम किया जाय और उसकी निकटता प्राप्त की जाय। धीरे-धीरे मनुष्य की अन्तर्शक्ति जागृत होकर उसके बाहरी संकटों को नाश कर देगी और अकाल-मृत्यु को रोक कर सात्विक स्वाभाविक शरीर परिवर्तन क्रिया द्वारा मनुष्य को दूसरे आनन्द लोक में स्थान दिलायेगी।

(कल्पवृक्ष से)

हमारी सलाह मानिए

घर, बाजार और जंगल में सुगमता से मिलनेवाली सस्ती और सरल चीज़ों से

अपना इलाज आप

कीजिये। इसके लिए श्री रामेश वेदी आयुर्वेदालङ्कार द्वारा लिखी हुई निम्नलिखित पुस्तकें सदा आप के घर में रहनी चाहिएं।

तुलसी—	मूल्य २)
त्रिफला—दूसरा परिवर्द्धित संस्करण	मूल्य २।)
देहाती इलाज—	मूल्य १)
सोंठ—	मूल्य ।।।)
अंजीर—	मूल्य ।।।)
डाक खर्च	।।=)

इन पुस्तकों की उपयोगिता इस बात से स्पष्ट है कि अखिल भारतीय आयुर्वेद महामण्डल ने लेखक को २५०) के स्वर्णपदक द्वारा सम्मानित किया है।

आज ही मंगा लीजिये।

पता—हिमालय हर्बल इंस्टिट्यूट, बादामी बाग, लाहौर।

सत्य और स्वास्थ्य

श्री हरिश्चन्द्र गुप्त, एम० ए०

'रोग और स्वास्थ्य हमारी परिस्थितियों की ही तरह हमारी विचार-धारा की उपज है। भय और चिन्ता मनुष्य को बन्दूक की गोली से भी शीघ्र मृत्यु का शिकार बना देते हैं। अतः यह मानना ही पड़ता है कि हम स्वयं ही अपने आपको बनाने-बिगाड़ने वाले हैं।

जब तक मनुष्य के जीवन में सत्य और त्याग किसी आदर्श के लिए पागल की भांति नहीं दौड़ते, जब तक जीवन में कोई निःस्वार्थ वृहत् भावना एवं आकांक्षा घर नहीं कर लेती तबतक रोग-चिन्ता, भय-विषाद जीवन की छोटी-छोटी घटनाओं पर रोष असन्तोष दुख-ग्लानि मनुष्य को घुन की भांति खाए ही जायगी। अतः सत्य से विमुख होकर स्वास्थ्य खोजना मृग तृष्णा ही है।'—लेखक

पिछले वर्षों में अमेरिका में कुछ आंकड़े एकत्रित किये गये। उनसे पता चला कि हरएक अमेरिकन के जीवन की सबसे बड़ी चिंता उसे अपने स्वास्थ्य की ही होता है, फिर यौन-सम्बन्ध या काम धन, यश, ख्याति आदि की। इधर भारत में प्राचीन काल से ही प्रचलित है—"शरीरमाद्यं खलु धर्म साधनम्"—शरीर ही सारे धर्मों की साधना का हेतु है। अंग्रेजी में भी कहा जाता है—"A Sound mind in a Sound body"—स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मस्तिष्क रहता है। वृक्ष की जड़ यदि गल गई तो पुष्पित पल्लवित वृक्ष हर हालत में नष्ट हो जायगा।

दूसरी ओर सारा संस्कृत साहित्य, विशेषकर उपनिषद, आत्मा की महिमा के गान से भरे हुए हैं। छान्दोग्य उपनिषद् में कहा गया है कि मनुष्य जैसा सोचता है, वैसा ही बन जाता है। शरीर तो केवल हमारे मस्तिष्क का दास है। रोग और स्वास्थ्य, हमारी परिस्थितियों की तरह ही, हमारी विचार-धारा की उपज हैं। भय और चिंता, मनुष्य को बन्दूक की गोली से भी शीघ्र, मृत्यु का ग्रास बना देते हैं। जेम्स एलन सरीखे विद्वानों का कहना है कि हमारा शरीर तो एक उद्यान है, जिसका माली हमारा मस्तिष्क है। फ्रायड और उसके बाद आने वाले मनोवैज्ञानिकों ने तो मनोविश्लेषण द्वारा, हमारे सामने एक नया मानसिक जगत् प्रस्तुत कर दिया है जिसमें मस्तिष्क बुद्धि अथवा आत्मा ही सब कुछ है। अतः यह मानना ही पड़ता है कि—"The Divinity that shapes our ends is in ourselves; it is very self"—हम स्वयं ही तो अपने आपको बनाने-बिगाड़ने वाले हैं।

लेकिन विज्ञान के युग में रहते हुए भी हम प्रायः यह भूल जाते हैं कि हर कारण का कोई प्रभाव या फल अवश्य होता है, और हर एक फल के पीछे कोई यत्न या साधना, कारण-रूप में, अवश्य होती है। इस प्रकार कार्य-कारण शृंखला, इस जगत् को सब ओर जकड़े हुए हैं। मानव भी, प्रकृति की गोद में पनपता है, अपनी शक्तियों के चरम विकास को प्राप्त होता है। वह कोई मशीन का बना गुड्डा तो है नहीं। अतः भूत प्रकृति की ही भांति उसके आत्मिक-बौद्धिक मानसिक विकास के पीछे भी प्रकृति के अटल नियम काम करते हैं। चरित्र की अलौकिक प्रतिभा एवं विद्युत आकर्षण, बापू जैसे व्यक्ति में कोई अचानक या अनियंमत घटना थोड़े ही है! वह तो जीवन-व्यापी तपस्या और उनकी सत्यनिष्ठा का फल है। बूढ़े मनुष्यों के मुख पर सबने झुर्रियां देखी हैं। बापू के मुख पर भी हैं। रवीन्द्र के मुख पर भी थीं, और हम रात-दिन कबाबियों शराबियों का भी मलिन-मुख देखते हैं। लेकिन कितना अन्तर है इन मुखों में!!! निर्मलता, सहृदयता, जीवन की तपस्या और, त्याग एक ओर, वासना, स्वार्थ तथा पतन दूसरी ओर, इन्हीं झुर्रियों में कैसे प्रत्यक्ष दिखाई देते हैं।

अतः सोचना पड़ता है कि सत्य, जो आत्मा की एक विभूति है और स्वास्थ्य, जिसका सम्बन्ध साधारणतया शरीर से ही समझा जाता है—इन दोनों में क्या सम्बन्ध है ? आत्मा के सम्बन्ध में व्यर्थ के विवाद में न जाकर, हम चैतन्य शक्ति को ही लें। हमारी क्षण-क्षण परिवर्तित होने वाली, चेतना-शक्ति का प्रवाह भी, भूत-जगत् की अन्य वस्तुओं एवं व्यापारों की भांति, एक परिणाम ही है—फिर चाहे उस परिणाम में कितने ही कारण क्यों न हों—लेकिन फिर भी है तो परिणाम ही।

दूसरी ओर यह देखना चाहिए कि स्वास्थ्य क्या है ! स्वास्थ्य भी, चेतना-शक्ति की भांति अथवा भौतिक, जगत् के अन्य व्यापारों की भांति एक परिणाम है—कारणों का प्रभाव अथवा प्रतिक्रिया है। सत्कर्म और सत्य मार्ग के प्रयत्नों से होने वाला अनिवार्य आत्मस्पंदन, आत्मोल्लास की स्फूर्ति का अनुभव है।

लेकिन प्रश्न उठता है कि सत्य को देखने के अलग-अलग दृष्टि-कोण और सत्य खोजने के अलग-अगल मार्ग है। हम स्वयं भी अपने सत्य की खोज के प्रयत्नों को सदैव एक-सा मूल्य नहीं देते। जो कार्य आज हम बहुत प्रशंसनीय समझ कर करते हैं, उसे ही कल निकृष्ट-हेय समझने लगते हैं। गांधी जैसे महापुरुष और भविष्य-द्रष्टा भी आज एक बात को बतलाते है और कल को उसे अपनी भूल स्वीकार कर लेते हैं। जो काम करते समय उत्तमोत्तम जंचता था, वही अवांच्छनीय समझा जाने लगा। ऐसी परिस्थिति में सत्य के बारे में क्या धारणा की जाय !

ऐसा लगता है कि सत्य की खोज में किसी घटना को इस प्रकार देखने का यह दृष्टि कोण ही गलत है। हम अपने कार्यों का मूल्य उनके अच्छे-बुरे फल से लगाने लगते हैं। यह बुद्धिमानी का काम नहीं है। किसी भी कार्य में हमें अपना उद्देश्य या हेतु (motive) और उसके सफल करने में हमें त्याग और परिश्रम के रूप में जो मूल्य देना पड़ता है उसे ध्यान में रखना अधिक आवश्यक है—और फिर यदि किसी कार्य के सफलीभूत करने में हमें जीवन-पर्यन्त शनैः शनैः एकत्र किये हुए बल को, पिता-पितामहों से प्राप्त आत्मिक-शक्ति को व्यय करना पड़े—अर्थात् जीवन में बड़े से बड़ा आत्म-त्याग और अतुल परिश्रम करना पड़े; तो वह कार्य स्वतः सत्कर्म क्या पुण्य कर्म हो जाता है—कम से कम यह हमें हमारे आत्मिक-विकास की माप तो दे ही देता है। इस माप में हमें आत्म-संतोष और आत्म-विश्वास दोनों ही मिलते हैं। आत्म-संतोष इसलिए कि हमारे सब प्रयत्न सत्य और शिव की खोज में हुए—हमारा हृदय सदैव निर्मल-निस्वार्थ रहा और आत्म-विश्वास इसलिए कि हमें अपनी प्रच्छन्न आत्मिक-शक्ति की झांकी मिल गई, जो भविष्य में सत्यमार्ग के अनुसरण में हमारी अमूल्य निधि रहेगी।

फिर किसी कार्य को केवल फल की दृष्टि से देखने का एक इससे भी बड़ा, दुष्परिणाम होता है। हम यह भूल जाते हैं कि आज के त्याग और प्रयत्नों से हमने अपनी आत्मिक-शक्ति को इतना बढ़ा लिया है कि भविष्य में आने वाले कार्यों में—जिनका हमें रंच मात्र ज्ञान नहीं है—हमें कोई विशेष प्रयत्न की आवश्यकता अथवा पीड़ा न होगी, और हम इस विकसित आत्मिक शक्ति को लोक-सेवा और जन-हित जैसे कार्यों में लगा सकेंगे, जिनके सामने आज के बड़े से बड़े आत्म-त्याग से किये गये कार्य तुच्छ एवं हेय जान पड़ेंगे। आज हम उनका मूल्य अधिक समझते हैं और उनको अपने जीवन का 'महान कार्य' समझते हैं; क्योंकि हमें लगता है कि उनके करने में हमने अपनी सारी आत्मिक शक्ति लगा दी है। लेकिन भविष्य में उस नव-प्राप्त आत्मिक-शक्ति के सामने यह कैसे तुच्छ लगेंगे। ऐसी विचित्र शक्ति मिलती है हमें निर्मल-निस्वार्थ हेतु से किये हुए कार्य से—फिर चाहे वह सफल हो या असफल। हमारे सत्य के लिये किये हुए त्याग और प्रयत्न, बूंद बूंद संचित होकर हमारी जीवन-कला को अनजाने ही पल्लवित-पुष्पित और फलित कर देते हैं।

सत्कर्म अथवा सन्मार्ग तो नदी की प्रवाह की भांति स्वप्रेरणा से ही गतिशील है। उसकी गति शिथिल होने और उसमें म्लानता आने का तो प्रश्न ही नहीं उठता। उस गति-शील जीवन में कोई कार्य, एक ही रूप में, दो बार तो ठीक हो ही नहीं सकता, जैसे नदी का जल लौटकर फिर वापस, उसी स्थान पर नहीं आसकता। जो जल आगे

बढ़ गया वह जल ही बदल गया। इसी प्रकार किसी सत्कर्म को कर लेने के पश्चात्, हमारी जो आत्मा विकसित हुई वह अगले कार्यों को, अपनी इस नव-प्राप्त एवं विकसित शक्ति को लगाकर ही करेगी, फिर इसमें दृष्टिकोण, भावना, उद्योग, सब ही नवीन होंगे—एक तरह से यह आत्मा ही दूसरी आत्मा होगी।

इतना मान लेने पर, साथ ही साथ, हमें यह भी मानना पड़ेगा कि सत्कर्म की प्रतिक्रिया, परिणाम अर्थात् आत्मोल्लास भी गतिशील ही है। उसके प्रवाह में भी कहीं शिथिलता अथवा म्लानता आने का प्रश्न नहीं उठता है, न उठना चाहिए। विज्ञान के नियमों में जरा भी विश्वास रखने वाले, इस अन्योन्याश्रय सम्बन्ध को मानेंगे। जैसे-जैसे सत्य के मार्ग पर अग्रसर होते जायेंगे, जैसे-जैसे हमारा जीवन और शक्ति सत्कर्मों में विलीन होता जायगा, वैसे ही हमारा आत्मोल्लास (दूसरे शब्दों में स्वास्थ्य ही) उन्नत होता जायगा।

हाँ, हमें विज्ञान के सिद्धान्त को दूसरे दृष्टिकोण से भी देखना होगा। वह प्रकृति का नियम कड़ुवा तो बहुत है, लेकिन है सत्य ही। संसार का हर पदार्थ गतिशील तो अवश्य है; लेकिन गति दोनों ओर है—ऊपर और नीचे! सत्य नहीं तो असत्य की ओर, शिव नहीं तो अशिव की ओर, और सुन्दर नहीं तो असुन्दर की ओर!—अतः उसकी प्रतिक्रिया स्वरूप, आत्मोल्लास की ओर नहीं तो आत्म प्रवंचन, दीनता, हेयता, हीनता की ओर—दूसरे शब्दों में, सत्य का मार्ग छोड़ने से यह भी निश्चित है कि मनुष्य स्वास्थ्य से रोग-व्याधि की ओर अग्रसर होगा—फिर चाहे मोह-वश, उस कार्य-कारण-श्रृंखला और अनिवार्यता को समझने का वह प्रयत्न करे या न करे।

जैसे हमारे उद्देश्य, प्रयत्न और चैतन्य-शक्ति अपनी विकसित तथा निर्मल-निस्वार्थता द्वारा किसी सीमा तक सत्कर्म करने में सफल होते हैं, उसी परिणाम में हमारे सत्कर्म और सत्यानुसंधान के प्रयत्न भी अपनी पवित्रता और त्याग-शक्ति के अनुसार हमें आत्म-स्पंद (दूसरे शब्दों में फिर स्वास्थ्य) प्रदान करने में सफल होते हैं।

अतः हमें इस निष्कर्ष पर पहुंचना पड़ता है कि स्वास्थ्य वास्तव में एक प्रतिक्रिया या परिणाम है। जितना ही हमारी आत्मा सजग, चैतन्य-पूर्ण, गति-शील होगी, जितना ही हम अपनी 'दैव-दुर्लभ' शक्तियों का उपयोग सत्कर्मों में करेंगे, उतना ही हमारे जीवन का तारतम्य प्रकृति के अटल नियमों के साथ हो जायगा और हमें परमेश्वर से आत्मविश्वास, सजीवता और स्वास्थ्य का बरदान मिलेगा।

कोई भी मनुष्य जो यह दावा करता है कि आज वह कल से अधिक सजग और सजीव नहीं है, सन्मार्ग पर अग्रसर व सत्यानुसंधान में अधिक गतिशील नहीं है, स्वस्थ भी नहीं है। प्रकृति में कहीं स्थिरता तो है ही नहीं! मनुष्य प्रतिदिन स्वास्थ्य या व्याधि की ओर बढ़ता है। अपने को धोखा देने के लिए चाहे वह अपने आपको कितना ही स्वस्थ समझे! लेकिन उसके अन्तर को कृमि ने उसी प्रकार खाना शुरू कर दिया है जैसे बाहर से अच्छे लगने वाले सेव को।

जब तक मनुष्य के जीवन में सत्य, त्याग, किसी आदर्श के पीछे पागल की भांति नहीं दौड़ते, जब तक जीवन में कोई निस्वार्थ, बृहत् भावना एवं आकांक्षा घर नहीं कर लेती, तब तक रोग, चिन्ता, भय-विषाद, जीवन की छोटी छोटी घटनाओं पर रोष-असंतोष, दुःख-ग्लानि मनुष्य को घुन की भांति खाये ही जायेंगी।

अतः सत्य से विमुख होकर स्वास्थ्य खोजना मृगतृष्णा ही है।

'जीवन-साहित्य'

शहद

श्री पी० दास

शहद एक उत्तम अहार होने के अलावा शीघ्र शक्ति बढ़ाने की एक दवा भी है। कमजोर बच्चों के लिए यह एक पुष्टिकारक पदार्थ है। ग्लूकोज भी जिसे लोग इतनी लाभदायक बताते हैं इस प्राकृतिक तरल ग्लूकोज का मुकाबला नहीं कर सकती। इस लेख में आपको शहद के गुण और इसकी उपयोगिता की समुचित जानकारी प्राप्त होगी। —सं

हजारों वर्षों पूर्व जो मक्खियाँ शहद बनाती थीं, वे ही आज भी बनाती हैं। उस समय इसका महत्त्व इतना नहीं था जितना आज है। आज तो शहद भोजन का अंग बन गया है। यद्यपि शहद मनुष्य का सबसे पुराना भोजन कहा गया है फिर भी बहुत से वैज्ञानिकों के लिए यह एक अद्भुत पदार्थ है। हमारा विज्ञान अभी तक फूलों से पुष्पासव निकाल कर शहद बनाने की गुप्त क्रिया देखकर चक्कर में पड़ा हुआ है। इतना ही नहीं इसका प्रवेश घरों में भी नहीं होने पाया है कि क्योंकि गृहणियों ने अभी तक इसका महत्त्व नहीं जाना है। चिकित्सक इस प्राकृतिक मिठास के औषधि-सम्बन्धी तत्त्व को सीखते ही जा रहे हैं विशेषतः बच्चों और वृद्धों के उपचार के लिए।

इधर कितने शहरों और देहातों में ग्रामोद्योग-संघ कायम हो गये हैं लेकिन शहद की मक्खियों का पालना अभी शुरू नहीं हुआ है। शहद ही केवल ऐसी मीठी चीज है जिसके तैयार करने के लिए किसी भी प्रकार के मशीन या कारखाने की जरूरत नहीं होती। शहद की मक्खियाँ स्वयं ही श्रमिक हैं जो पुष्प से पुष्पासव निकालकर शहद बनाती हैं। कितने रसायन-शालाओं ने इस पुष्पासव के बनाने की कोशिश की लेकिन वह सफल नहीं हो सके। केवल मक्खियाँ ही इस रहस्य को जानती हैं।

शहद तैयार होने की गुप्त और विचित्र विधि पहले पुष्पों के विकसित होने से शुरू होती है। पुष्पासव की बूँदें फूलों के विकसित होने पर खुशबू को अपना लेती हैं। पुष्पों को इतनी शक्ति प्रातः की ताजगी भर देनेवाली ओस की बूँदों से और सुनहरी एवं शक्तिदायिनी सूर्य की किरणों से मिलती है। इसके बाद व्यस्त छोटी मक्खियाँ आती हैं जो पुष्पासव को समेट लेती है और अपने छत्तों को रवाना कर देती हैं। वहाँ अलौकिक बुद्धिमानी से यह तरल पदार्थ शहद में परिणत कर दिया जाता है। यह शहद, मक्खियों के 'छत्तों' में इकट्ठा होता जाता है। पुष्पासव की केवल एक बूँद लाने के लिए मक्खियों को बड़ी दूर जाना पड़ता है। एक-एक छत्ते में हजारों मक्खियाँ होती हैं, उन सबके लिए काफी पुष्प एक ही जगह नहीं मिल सकते।

पुष्पासव में एक प्रकार की चीनी होती है जो रासायनिक रीति से गन्ने और चुकन्दर की चीनी की तरह होती है। मक्खियाँ इस पुष्पासव को अपने छत्ते में लाने के बाद उसे इस खूबी से रखती हैं कि उसमें की अतिरिक्त नमी बाहर निकल जाती है फिर वह उसमें कुछ फेन की तरह के अतिरिक्त पदार्थ मिलाती हैं। यह फेन पुष्पासव को शहद में परिणत कर देता है।

शहद में प्रतिशत चीनी मिली होती है। चीनी अंगूर अन्य फलों की है। दो ७५ प्रतिशत के लगभग गन्ने की यह चीनी भी होती है। साथ ही इसमें कितने ही खनिज पदार्थ मिले हुए हैं—कैलशियम, फासफारस, लोहा, ताँबा और मैंगनीज। ये पदार्थ बड़े गाढ़े और गोंद की भाँति चिपकनेवाले हैं। इसके स्वाद में जो विलक्षणता है वह खुशबूदार पदार्थों में भी आता है। शहद में २० प्रतिशत पानी भी होता है जिससे इतना तरल रहता है। यद्यपि शहद में बहुत तरह के खनिज पदार्थ हैं लेकिन फिर भी वे इतने थोड़े हैं कि उनका भोजन की भाँति उपयोग नहीं किया जा सकता।

इसमें की दो किस्म की शर्करा एक फलों की और दूसरी चिरचिरी पाचन-शक्ति के लिए बड़ी ही लाभदायक हैं। शहद तो पहले ही से पचाया हुआ भोजन है। क्योंकि

मक्खियों द्वारा मिलाया हुआ फेन पहले ही से इसे पूरा कर देता है। इसीलिए इसके खाने के आध घण्टे बाद ही यह अपना रास्ता खून तक पहुँचने के लिए निकाल लेता है। इस तरह शहद शीघ्र शक्ति बढ़ाने की एक दवा भी है। कमजोर बच्चों के लिए यह पुष्टिकारक चीज है। ग्लूकोज जिसे लोग इतनी लाभदायक बताते हैं वह भी इस प्राकृतिक तरल ग्ल्यूकोज का मुकाबला नहीं कर सकती। अभी तक एलोपैथिक डाक्टरों की निगाह में यह बात नहीं आई है।

शहद भोजन को बहुत जल्द और आसानी से पचा देता है शहद के स्वाद को उसका रंग इस तरह बदल देता है कि एक स्वादिष्ट पेय बन जाता है। शहद की सुगन्धि जो कि कितने ही प्रकार के सुन्दर फूलों से आती है, सचमुच आनन्ददायक हैं। शहद खानेवाले बहुत जल्द अपनी स्वाद-इन्द्रिय की उन्नति कर लेते हैं। बहुधा गाढ़े शहद का स्वाद अधिक मीठा होता है और पतले का कम।

शहद के विषय में कितनी भ्रान्तियाँ फैली हुई हैं। सबसे पहली चीज आजकल का नकली शहद है। ज्यों-ज्यों शहद की माँग बढ़ती जा रही है त्यों-त्यों नकली शहद भी तैयार होता जा रहा है। यह शहद शीरे इत्यादि से तैयार होता है जो बहुत ही हानिकारक है।

दूसरी चीज यह है कि शहद चीनी की तरह रवादार बनकर भी आने लगा है। इसके असली होने में भी बड़ा सन्देह रहता है। यदि असली रवादार मिल भी गई तो यह तरल शहद की भाँति लाभदायक नहीं होता क्योंकि इसके कितने ही खाद्य पदार्थ रवादार बनाते समय जल जाते हैं।

शहद बहुत ही शुद्ध पदार्थ है। यह सभी को बड़ी आसानी से सोख लेता है। यहाँ तक कि यक्ष्मा के कीटाणु इसमें देर तक......जीवित नहीं रहने पाते। इससे शहद की शुद्धता का अन्दाज आसानी लगाया जा सकता है।

लोग शहद कई तरह से खाते हैं। शहद का मक्खन अर्थात् शहद और मक्खन को बराबर बराबर हिस्सों में मिलाकर खाया जाये। अगर चाहें तो इसमें तो इसमें अखरोट, केला और सन्तरे का रस मिलाकर स्वादिष्ट बना सकते हैं। केला बहुत ही घुला हुआ होना चाहिए जिससे वह मक्खन में बड़ी आसानी से मिल जाय। शहद चीनी की तरह व्यवहार में लाया जा सकता है। इसे व्यवहार में लाया जाय तो चीनी से कम. क्यों कि यह चीनी से बहुत ज्यादा मीठा होता है। हाँ पतला शहद दूध में छोड़कर, पानी में मिलाकर और सलाद में छोड़कर पीयें। हर तरह से चीनी की जगह इसे काम में ला सकते हैं। इसका स्वाद चीनी से बहुत ही मधुर होता है।

ज्यों-ज्यों शहद का उपयोग बढ़ता जा रहा है त्यों-त्यों मधुमक्खियों को पालतू बनाने का भी शौक होता जा रहा है। इसे देहात या शहर हर जगह बड़ी आसानी से पाल सकते हैं। इसमें अधिक देख-भाल की जरूरत भी नहीं होती। केवल शहद उतारते समय सावधान रहना पड़ता है और फिर शहद की उपयोगिता देखते हुए यह कुछ भी नहीं है।

आज चीनी की कठिनाई के समय सम्पन्न लोगों को शुद्ध शहद का ही उपयोग करना चाहिए।

उपयुक्त भोजन

श्री कृष्णजीवन त्रिवेदी आयुर्वेदिक कालेज, पटना

भोजन का अभिप्राय यही होता है कि वह शरीर का पोषण करे।

इसलिये यह प्रश्न उठता है कि मनुष्य के लिये कौन सा भोजन उत्तम है। उसको किस भोजन की कितनी मात्रा खानी चाहिये जिससे उसके शरीर की सारी आवश्यकताएँ पूर्ण हो जायँ।

संसार में भोजन के नाना पदार्थ हैं किन्तु भोजन के सब पदार्थ तीन ही श्रेणियों में बँटे हैं, प्रोटीन, वसा और कार्बोज (Carbohydrate)। इन्हीं वस्तुओं के योग से भोजन के पदार्थ बनते हैं। प्रोटीन में कार्बन, हाइड्रोजन, नाइट्रोजन, आक्सीजन, गंधक, स्फुरक (phospherus) इत्यादि सब मौलिक रहते हैं।

यदि हम भिन्न-भिन्न जातियों के भोजन का निरीक्षण करें तो हम यह पायेंगे कि संसार की सब जातियों का भोजन इन तीन खाद्य-तत्वों का मिश्रण होता है। किसी देश में कोई वस्तु अधिक खाई जाती है तो दूसरे देश में दूसरी वस्तु का अधिक प्रयोग होता है। एक जाति प्रोटीन अधिक खाती है, तो दूसरी के भोजन में वसा की अधिकता है। जो लोग पृथ्वी के अत्यन्त शीत प्रदेशों में रहते हैं वे वसा और प्रोटीन अधिक खाते हैं। जापान में कार्बोज की बहुत अधिकता होती है। अरब के रहने वाले प्रोटीन अधिक खाते हैं। सभी लोग इन भिन्न-भिन्न प्रकार के भोजनों द्वारा पुष्ट रहते हैं। यह तो स्पष्ट है कि देश व काल के अनुसार भोजन के स्वरूप और मात्रा में अवश्य ही अन्तर रहेगा। दिन भर मजदूरी करने वाले और कालेज में लेक्चर देने वाले अध्यापक का भोजन समान नहीं हो सकता है।

इस सम्बन्ध में यह देखना आवश्यक है कि साधारण मनुष्य को एक दिन में कितना काम करना पड़ता है, क्योंकि उसी पर भोजन निर्भर करता है। भोजन भी ऐसा होना चाहिये कि वह दिन भर के काम के योग्य शक्ति उत्पन्न कर सके और साथ साथ शरीर के ताप को ठीक रखने के लिये उचित उष्ण भी उत्पन्न कर सके। साधारण काम करने वाले मनुष्य जो अधिक शारीरिक परिश्रम नहीं करता उसे एक दिन में २५०० केलोरी उष्ण उत्पन्न करनेवाला भोजन करना चाहिये। विशेष परिश्रम न करनेवाला मनुष्य २४ घन्टे में ४१० केलोरी के बराबर उष्णता का व्यय करता है। इस क्षति को पूर्ण करने के लिये ऐसे भोजन की आवश्यकता है जो कम से कम छः गुनी उष्ण उत्पन्न कर सके अर्थात् २५०० केलोरी उष्ण उत्पन्न करे। नौ सेना विभाग (Navy) के सैनिकों को ५००० केलोरी का भोजन प्रतिदिन दिया जाता है।

उत्तम भोजन में निम्नलिखित गुण होने चाहिये

(१) भोजन में पोषक-शक्ति पूर्ण रूप से होनी चाहिये। उसका केलोरी के रूप में मूल्य २,५०० से कम न होना चाहिये। यदि उस भोजन के खाने से २,५०० केलोरी से कम उष्णता उत्पन्न होती है, तो वह शरीर का उचित पोषण नहीं कर सकता।

(२) उस भोजन में प्रोटीन, वसा और कार्बोज इन तीनों वस्तुओं की पर्याप्त मात्रा होनी चाहिये। मिश्रित भोजन ही शरीर के लिये उत्तम है। केवल एक पदार्थ पर स्वास्थ्य ठीक नहीं रह सकता।

(३) भोजन में कुछ ताजे फल अवश्य होने चाहिये। विटामिन (vitamin) ताजी वस्तुओं ही में होती है। भोजन पदार्थ को गर्म करने और पकाने से उसमें की पोषक शक्ति नष्ट हो जाती है। ताजे दूध में प्रोटीन प्रचुर मात्रा में होती है किन्तु उसे उष्ण करने से वह नष्ट हो जाती है। नींबू नारंगी, टमाटर, अंगूर, सेब, हरा चना, मटर, केला इत्यादि वस्तुओं में विटामिन की पूर्ण मात्रा होती है। इसके प्रयोग से विटामिन की कमी पूरी हो सकती है।

(४) उत्तम भोजन में भिन्न-भिन्न लवणों (Salts) की जैसे पोटाशियम (potassium) कैलशियम (Calcium) इत्यादि की पर्याप्त मात्रा होनी चाहिये। यह लवण भोजन के पचने में अधिक सहायता देते हैं। जल की पर्याप्त मात्रा भी बहुत आवश्यक है।

(५) भोजन का स्वादिष्ट होना भी अत्यन्त आवश्यक है। जिस पदार्थ का स्वाद उत्तम नहीं होता, उसका पाचन भी ठीक नहीं होता। जब कुत्ते को मांस खाने को दिया जाता है तब उसके आमाशय में रस अधिक बनता है। इसी प्रकार स्वादिष्ट भोजन से उत्तम रस बनता है। अस्वादिष्ट भोजन से पाचन में गड़बड़ी पड़ती है।

महिला जगत्

चेहरे का सौंदर्य

(लेखिका : श्री सावित्री देवी)

हर अच्छी नौकरी और वर-वधू के निश्चय के साथ-साथ दिखावा और मुलाकात जुड़ी रहता है। परीक्षा में सफल होने पर और सर्व गुण सम्पन्न होने पर भी लड़के और लड़कियाँ केवल एक सौन्दर्य की कमीसे स्थान-स्थान पर अवहेलना और नापसन्दगी ही पाती हैं। वस्तुतः प्रत्येक व्यक्ति का मुख-सौन्दर्य उसकी जीवन सफलता में काफी हाथ रखता है। मुख ही शरीर का प्रधान अंग है। इसलिये निर्णय करने वाला निर्णय करते समय मुख को ही विशेष महत्व देता है।

मुख-सौन्दर्य को भी स्थायी रखने के लिये उसे अवस्था, प्रौढ़ता और रोग-प्रहारों से बचाने के लिये तीन बातों को ध्यान रखने की आवश्यकता है।

(१) सदा प्रसन्न चित्त रहना।

(२) संयम और (३) शृंगार साधनों का उचित प्रयोग।

चिन्तित, दुखी और आकुल रहने वालों की श्रेणी के परिचित लोगों को देखें तो हमें आश्चर्य होगा कि उनमें से अधिक संख्या में ऐसे ही लोग हैं, जो ईश्वरीय प्रकोप से उतने दुखी नहीं हैं, जितने अपनी मानसिक दुर्बलता के कारण।

आने वाले दुःखों की चिन्ता और अघटित घटनाओं के आने की शंका और दूसरों का दुःख उन्हें सदा चिन्तित, दुखी और उदास रखता है। लोग यदि असमय झुर्रियों और बुढ़ापे के शिकार हो जाय तो क्या आश्चर्य।

एक विशेषज्ञ सौन्दर्य अन्वेषक का कहना है कि हमारा मुख हमारा जीवन का दर्पण है और हमारे जीवन की प्रत्येक हँसी, प्रत्येक सुखद घटना, प्रत्येक रुदन तथा कष्ट की छाप हमारे मुख पर अवश्य प्रभाव डालती है। इसलिये हमें दुःखों को भूलकर सदैव प्रसन्नचित रहना चाहिये।

संयम और सौन्दर्य का भाईचारा है। जहाँ संयम है, वहाँ रोग नहीं और जहाँ स्वास्थ्य है, वहाँ सौन्दर्य अपने आप ही आ जाता है। संयम से ही स्वाभाविक सौन्दर्य और भोलापन मुख पर स्थायी रहता है।

सौन्दर्य नष्ट करने में रोग सबसे बढ़ चढ़ कर काम करता है। रात में देर से सोने, देर से सोकर उठने तथा अपचन से मुंहासे निकल कर मुख सौन्दर्य नष्ट कर देते हैं और चर्म खुरदुरा, दाग वाला और कड़ा हो जाता है। चेचक व टाइफाइड से सुन्दर चेहरा भी बिलकुल कुरूप हो जाता है।

परिश्रम से जी चुराने वाली लड़कियाँ भी अनजाने ही प्रकृति से भद्देपन का दण्ड पा जाती हैं और वे मोटी हो जाती हैं। आजकल शृंगार के प्रसाधनों का उपयोग दिनों दिन बढ़ रहा है, किन्तु फिर भी ऐसे व्यक्ति जो उनका उचित उपयोग कर सकें, उँगलियों पर गिने जा सकते हैं।

लोगों की यह धारणा कितनी गलत है कि पाउडर, साबुन और 'स्नो रंग को निखार देते हैं अथवा मुंहासे और झांईसे छुटकारा दिला देते हैं। रंग साफ करने और गोरा करने के लिये लड़कियाँ अधिकतर रात में खूब पाउडर लगा कर सोती हैं, पर इससे खाल बिलकुल खराब होकर फट जाती है। यह अत्यन्त हानिकर है।

पाउडर, क्रीम, स्नो आदि केवल क्षणिक सौन्दर्य बढ़ाते हैं और दिन में धूल गर्द से बचाते हैं, इसलिये रात में मुंह बेसन अथवा दूध से स्वच्छ करके ही सोना चाहिये देशी उबटन, मलाई, नीबू, ग्लैसरीन, शहद का यदि नियमित रूप से उपयोग किया जाय तो खाल बहुत चिकनी व साफ हो जाती है और रंग निखर आता है। मुंहासे झाई आदि भी अच्छे हो जाते हैं।

१—सदैव हँसते रहना मुख का सब से अच्छा व्यायाम है।

२—सदा प्रसन्न रह कर मुस्कराते रहना क्रीम से अधिक उपयोगी है। स्वास्थ्य और संयम के सभी नियम पालन करने से सौन्दर्य स्थायी रह सकता है।

३—दूध और बेसन सबसे उत्तम साबुन है।

४—मलाई, ग्लैसरीन, नीबू, सबसे अच्छी क्रीम है।

हमारी दृष्टि में

मृत्यु और उसके बाद—लेखक श्री गंगाप्रसाद गौड़ 'नाहर'; प्रकाशक, पुस्तक भण्डार, लहेरियासराय और पटना, मूल्य ३ रु० सजिल्द।

जन्म और मृत्यु इन दोनों की उत्पत्ति एक ही समय हुई है। जन्म धारण कर लेने पर मानव मृत्यु की ही साया में जीवन के खेल खेलता और खेल समाप्त होने पर मृत्यु की ही साया में सो जाता—चिरनिद्रा-विलीन हो जाता है! मृत्यु और जन्म दोनों एक साथ हँसते-खेलते रहते हैं! मृत्यु के बाद क्या होता है?—यह जानने की अभिलाषा मनुष्य के मन में हमेशा से बनी रही है। खास करके हिन्दू-धर्म में तो इसका बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है, क्योंकि हिन्दूधर्म पुनर्जन्म का प्रतिपादक है। भारतीय दर्शन तो इस विषय को लेकर संसार में एक आदर का स्थान रखता है। किन्तु मृत्यु के बाद के जीवन के सम्बन्ध में कुछ जानने की निज्ञासा अन्य देशों के निवासियों—जो पुनर्जन्म में विश्वास नहीं रखते—के भी मन में हुई है। उन्हें कुछ ऐसे उदाहरण या दृष्टान्त मिले हैं जिनसे उन्हें भी पुनर्जन्म में विश्वास करना पड़ गया है।

प्रस्तुत पुस्तक की उपयोगिता विषय की रोचकता से जानी जा सकती है। 'नाहर' जी ने इस पुस्तक को सर्वांगपूर्ण बनाने का यथेष्ट प्रयत्न किया है और इसमें उन्हें आशातीत सफलता भी प्राप्त हुई है। इस पुस्तक में न केवल भारतीय दर्शनकार की दृष्टि से मृत्यु के रहस्य का बड़े सुन्दर ढङ्ग से विवेचन किया गया है, मृत्यु के बाद की अवस्था के बारे में रोचक दृष्टान्त दिये गये हैं, व एक पाश्चात्य देशों के निवासियों के तत्सम्बन्धी अनुभवों और उदाहरणों को भी संग्रहीत किया गया है। पुस्तक आदि से अन्त तक रोचक—एक साँस में पढ़ जाने की चीज है। इस सफलता के लिये 'नाहर' जी को बधाई।

पुस्तक की छपाई-सफाई सुन्दर और गेटअप आकर्षक है। कोई सवा तीन सौ पृष्ठों की साजिल्द पुस्तक का ३ रु० मूल्य बहुत मुनासिब जान पड़ता है।

—आनन्द कुमार

शिशु पालन

बच्चों का पालन पोषण—लेखक श्री व्रजमोहन मिहिर, साहित्यकुंज, पो० आ० ऐग्रिकलचरल इन्सटीटयूट, इलाहाबाद मूल्य २।)

शिशु-पालन का विषय कितना महत्वपूर्ण है, यह बताने की आवश्यकता नहीं। 'आज के शिशु भावी राष्ट्र के जनक हैं'—इस तथ्य को ध्यान में रखने वाले सभी व्यक्ति इसे सहज ही समझ सकते हैं। किन्तु यह बड़े दुर्भाग्य की बात है कि शिशु-पालन जैसे गम्भीर एवं सतत चिन्तनीय विषयके प्रति जिसका हमारे राष्ट्र के भविष्य से अविभाज्य सम्बन्ध है, हमारे यहाँ आमतौर पर उपेक्षा ही प्रकट की जाती है। हमारी गैरजानकारी, उदासीनता या उपेक्षा के कारण भारत में हर साल होने वाली शिशुओं की मृत्यु-संख्या पर यदि हम विचार करें तो रोंगटे खड़े हो जाते हैं। शिशुओं तथा प्रसूताओं की जितनी अधिक मृत्यु संख्या भारत में है उतनी संसार के किसी भी देश में नहीं पाई जा सकती।

हर्ष का विषय है कि श्री व्रजमोहन मिहिर अपनी प्रस्तुत की रचना करके एक बहुत बड़े अभाव की पूर्ति की है। विशेषतः हिन्दी में तो इस तरह की पुस्तक का सर्वथा अभाव ही है। इस विषय पर जितनी ही उपयोगी पुस्तकें लिखी जायँ, जितना ही प्रचार हो, हमारे लिए यह उतना ही श्रेयस्कर होगा। मिहिर जी ने अपनी इस पुस्तक में बच्चों के पालन-पोषण सम्बन्धी प्रत्येक ज्ञातव्य बात का उल्लेख किया है। पुस्तक बहुत उपयोगी है। इसका घर-घर में प्रचार हो, यही हमारी कामना है।

चिकित्सा

बुखार का अचुक इलाज—लेखक व प्रकाशक डा० युगुल किशोर चौधरी, अग्रवाल पो० आ० नीम का थाना, जयपुर। तृतीयावृत्ति। मूल्य ।≡)

ज्वर एक साधारण बीमारी है। प्रायः सभी घर और सभी व्यक्ति इस मामूली रोग के शिकार बनते रहते हैं।

लेकिन इसके विषम रूप भी हैं, जिनकी भयानकता किसी से छिपी नहीं है। 'टायफायड' जैसे विषम ज्वर के नाम में ही एक प्रकार का गाम्भीर्य आतंक और भरा है। एलोपैथी प्रणाली न केवल ज्वर को जड़ से दूर करने में बिलकुल असमर्थ है, बल्कि वह तरह तरह की दमनकारी, मारक, और जहरीली दवाइयों और सूइयों के प्रयोग से इस की साधारण अवस्था को—जो कि प्रकृति मलविसर्जन-क्रिया के एक प्राकृतिक साधन के रूप में और शरीर के कल्याण के लिये उत्पन्न करती है—बहुत विषम बना देती, बिगाड़ देती है। फलतः इस तरह के रोगी के लिये मृत्यु की भी आशंका होने लगती है। प्राकृतिक चिकित्सा तो ज्वर को—और सच पूछिये तो सभी रोगों को—मित्र समझती है। ज्वर का प्राकृतिक उपचार बिलकुल सहज—पर बहुत ही प्रभावोत्पादक है, जिसका पूरा वर्णन आपको इस पुस्तक में मिलेगा। इस पुस्तक के प्रणेता अनुभवी चिकित्सक ने प्रायः सभी के ज्वरों के कारण निदान तथा प्राकृतिक उपचार बताये हैं। पुस्तक प्रत्येक घर में रखने लायक है।

हमारे नए सहयोगी

जीवन-विज्ञान—सम्पादक व प्रकाशक श्री चन्द्रराज भण्डारी, ज्ञानमन्दिर मानपुरा; मुद्रक द० ह० कांक श्री नाथ प्रेस, इन्दौर। वार्षिक चन्दा और एक प्रति मूल्य, इस अंक में कहां दिया है, यह ढूँढने पर नहीं मिला।

जीवन-विज्ञान निस्सन्देह 'जीवनोपयोगी सर्वांगीण साहित्य का समग्र भारत में पहला' मासिक पत्र है। इसके जोड़ का दूसरा कोई मासिक पत्र हमारी दृष्टि में तो नहीं जान पड़ता। नारी समस्या, वनस्पति विज्ञान, चिकित्सा, आरोग्य, साहित्य, संस्कृति, शासन, कृषि, शिक्षा, धर्म, कला आदि जीवनोपयोगी विषयों पर सुन्दर सामयिक और उपयोगी लेख, कविता, कहानी आदि इसके विशेष आकर्षण हैं। जुलाई का अंक, जो इसका तीसरा अंक है, हमारे सामने है। इस अंक के लेखों के विषय या स्तम्भ हैं—वर्तमान दुनिया और उसकी गति-विधि, साहित्य-संस्कृति और कला, धर्मतत्व और ज्ञान, आरोग्य और जीवनतत्त्व, चिकित्सा विज्ञान, वनस्पति विज्ञान, कृषि और पशु पालन, नारीजगत्, और कहानी और साथ में तीन सुन्दर कविताएँ। इसके अधिकांश लेख चोटी के लेखकों के हैं। प्रत्येक लेख उपादेय और पठनीय है। इसका हिन्दी संसार में जितना ही आदर और स्वागत हो उतना ही यह उसकी मर्यादा की वृद्धि करने वाला होगा। इसके कतिपय लेख 'जीवन सखा' में उद्धृत करने का लोभ संवरण नहीं कर हो सके हैं। हम इसकी सफलता की हार्दिक कामना करते हैं।

जीवन सखा के पंजाबी पाठकों के लिए शुभ-समाचार

जीवन सखा के पंजाबी पाठकों को यह जान कर अत्यन्त हर्ष होगा कि उनकी सेवा के लिये अमृतसर में एक प्राकृतिक चिकित्सालय खोल दिया गया है।

यहां पर हर तरह के पुराने व नये रोगों की चिकित्सा प्राकृतिक ढंग से की जाती है—जैसे दमा, गठिया, बवासीर, पेचिश, अर्धरंग, नपुंसकता, पुरानी खांसी, मलांत्र-प्रदाह (एपेन्डिसाइटिस) चर्मरोग, इत्यादि। पत्र-व्यवहार द्वारा भी चिकित्सा की जाती है। पत्र-व्यवहार कृपया निम्न पते पर करें:—

डा० जसवंत सिंह
नेचर क्योर हेल्थ होम रंजितपुरा
पो०—खाल्सा कालेज अमृतसर
(पंजाब)

अपने विचार

बुढ़ापा

बुढ़ापा जीवन की एक स्वाभाविक अवस्था है। बीज से पौधा उगता है, पनपता है, उसमें फल-फूल लगते हैं और अन्त में उसकी पत्तियाँ मुरझा कर गिर जाती हैं, पौधा सूख जाता है। मनुष्य का जीवन भी एक पौधे के समान है जो इसी प्रकार उगता, फलता-फूलता और अन्त में मुरझा जाता है। लेकिन दुर्भाग्य से ऐसे भाग्यवान व्यक्तियों की संख्या बहुत ही कम होगी जिनका जीवन-क्रम प्रकृति के नियमानुसार संचालित होता है। आजकल तो ४० की अवस्था पार करते ही लोग बूढ़े हो जाते हैं, वे किसी भी कार्य के करने में अपने को शारीरिक और मानसिक दृष्टि से अक्षम और असमर्थ समझने लगते हैं। हमारी यह दुर्दशा क्यों?

प्रौढ़ों की तो बात ही अलग रही, हमारे बहुत से होनहार युवक भी, जिनपर भारत का भविष्य निर्भर करता है, बूढ़े ही नजर आते हैं। हमारे लिए यह सचमुच बड़े शर्म और अफसोस की बात है। असमय में बुढ़ापे को आमंत्रित करने वाली, हमारे देशवासियों की गरीबी, धनाभाव, समुचित पोषण-तत्वों का अभाव हो सकता है; लेकिन हमारी इस दयनीय अवस्था का सोलहों आना यही कारण है ऐसा हम कदापि नहीं समझते। हमारी इस आर्थिक परवशता के साथ ही साथ जीवन के प्रति निराशावादी दृष्टिकोण, हर बात में असहायता अथवा पराजयता की भावना, आत्म-ग्लानि, भी इस दुःखद स्थिति का प्रबल कारण बनती हैं। शरीर पर मन का कितना जबर्दस्त प्रभाव पड़ता है, इसका उल्लेख हम कई बार कर चुके हैं। मन का शरीर की स्नायु-प्रणाली से गहरा सम्बन्ध है—स्नायु प्रणाली की ही क्रियाशीलता से समूचे शरीर का विकास होता है। अतः यह स्पष्ट है कि यदि मन स्वस्थ और सुखी है तो उसका सद्प्रभाव समूचे शरीर पर पड़ेगा।

इसलिए इस अवांछित स्थिति के परिहार के लिए सबसे बड़ी आवश्यकता हम बात की है कि इस जीवन के प्रति अपने मानसिक दृष्टिकोण में परिवर्तन करें। हम इस विचार को सर्वथा त्याग दें कि ४५ की अवस्था पार जाने वाले व्यक्ति को बूढ़ा समझना चाहिए। यदि हमें 'जीवेत् शरदः शतम्' के आर्ष-काव्य को चरितार्थ करना है, तो इस दूषित भावना को तिलांजलि दे देनी पड़ेगी। आधुनिक युग के महान मनीषी, संसार प्रसिद्ध नाट्यकार जार्ज बर्नार्ड शा० ने तो अपनी ९० वीं वर्षगांठ के अवसर पर यह विचार प्रकट किया है कि जीवन का आरम्भ इसी अवस्था से होता है। हम उनके कथन पर विचार करें और तुलना करें जीवन के प्रति भारतीय दृष्टिकोण से, फिर अपनी इस दयनीय स्थिति का बोध अपने आप हो जायगा। हम इस धारणा के समर्थक नहीं कि ठण्डे देशों के लोग दीर्घजीवी होते हैं—उनके मुकाबले में गर्म देशों के निवासियों की आयु कम होती है। भारत की भौगोलिक स्थिति आज भी वही है जो आज से सैकड़ों वर्ष पूर्व थी, किन्तु उस समय के तथा आज के आयुष्य में आकाश-पाताल का अन्तर हो गया है, ऐसा क्यों? स्पष्ट है कि जीवन के प्रति हमारा दृष्टिकोण आज वह नहीं रहा, जो पहले था, आज हम प्रकृति से कोसों दूर हैं। भौतिक विघ्न-बाधाओं, रोग-व्याधियों, दुख दैन्य ने हमें ग्रस्त कर लिया है हम अपने आदर्श को भूल बैठे हैं। हम इस खेदजनक स्थिति का निवारण करें, हमारा कल्याण इसी में निहित है।

इस दृष्टि से इस अंक में भी रुद्रदत्त मिश्र का लेख—'वृद्धावस्था रोकने के उपाय' शीर्षक—बहुत महत्वपूर्ण है। इसमें विद्वान लेखक ने वृद्धावस्था के शारीरिक और मानसिक इन दोनों पहलुओं पर प्रकाश डाला है। हम इस विषय पर मनन करें, इससे लाभ उठावें। हमें विश्वास है ऐसा करने पर आज इस गिरी हुई आर्थिक तथा राजनीतिक अवस्था के बावजूद हम संसार के सामने एक नया आदर्श प्रस्तुत कर सकेंगे।

स्वास्थ्य सम्बन्धी सर्वोत्तम और नवीनतम पुस्तकें

कविराज महेन्द्रनाथ पाण्डेय की स्वास्थ्य सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण कृतियाँ प्राकृतिक रोगोपचार के प्रेमियों के बीच कितनी लोकप्रिय हुई हैं यह कहने की बात नहीं। इनकी प्रत्येक पुस्तक की अत्यधिक मांग ही उनकी लोकप्रियता का सहज प्रमाण है। आपकी नयी युक्तियां निम्नलिखित हैं।

(१) **हमारे बच्चे**—शिशु विज्ञान को भली भांति समझने के लिए यह पुस्तक प्रत्येक गृहस्थी के लिए अनिवार्य है मूल्य १।।)

(२) **जीवन तत्त्व**—जैसा इस पुस्तक का नाम है वैसा इसका विषय भी। इस विटामिनों खनिज लवणों, प्रोटीन आदि पर विस्तृत अध्ययन के साथ प्रकाश डाला गया है। मूल्य १।।)

(३) **फलाहार चिकित्सा**—फलों द्वारा किस प्रकार चिकित्सा होती है—इनमें क्या गुण हैं—आदि बातों पर प्रकाश डाला गया है। मूल्य २)

(४) **स्वास्थ्य के लिए शाक तरकारियाँ**—शाक तरकारी के सम्बन्ध में वैद्यक शास्त्र से लेकर आजतक के वैज्ञानिक अनुसंधानों एवं प्राकृतिक चिकित्सा के आधार पर लिखी पुस्तक। द्वितीय संस्करण मूल्य १।।)

(५) **मठा और उसके गुण**—मठे से स्वास्थ्य कैसे बनता है—यह रहस्य इस पुस्तक में निहित है। मूल्य ।।≡)

(६) **आँख का अचूक इलाज**—चश्मा छोड़ने की अनुभूत विधि बतानेवाली पुस्तक। द्वितीय संस्करण मूल्य २)

(७) **जुकाम**—इसमें जुकाम, ब्रोंक इटिस दमा, खाँसी, निमोनिया आदि रोगों का अचूक इलाज बताया गया है। मूल्य १।।)

(८) **शहद के गुण और उपयोग**—शहद के सम्बन्ध में पूर्ण जानकारी व इलाज जानने के लिए पुस्तक अवश्य पढ़ें। मूल्य ।।।)

(९) **हमारा भोजन**—अपने विषय की नवीन और बेजोड़ पुस्तक। जीवन दायक भोजन क्या है, कैसे ग्रहण किया जाय रोग निवारक शक्ति कैसे बढ़े आदि प्रश्नों का उत्तर पुस्तक में पढ़िए। मूल्य ४)

(१०) **तपेदिक**—राजयक्ष्मा या तपेदिक का ठीक ठीक कारण, लक्षण और उसकी चिकित्सा पद्धति का ज्ञान इस पुस्तक को पढ़ने से ही हो सकता है। मूल्य ४)

(११) **दूध चिकित्सा**—दूध में क्या गुण है, इससे जीवनी शक्ति किस तरह बढ़ती है यह उपयोगी वर्णन इस पुस्तक में पढ़िए। मूल्य ४)

(१२) **भोजन ही अमृत है**—इस पुस्तक का विषय एकदम भिन्न है। इस पुस्तक में बताया गया है कि किस रोग में क्या भोजन करना लाभदायक होता है। मूल्य १।।।)

मंगाने का पता—

स्वास्थ्य ग्रन्थ भंडार

२८७, बादशाही मंडी, प्रयाग।

पढ़िये ! **लाभ उठाइये !!**

सुन्दर, स्वस्थ और सुखी जीवन के इच्छुकों को

. ये पुस्तकें पढ़नी चाहिए

(१)	शक्ति दर्शन—श्री. शंकरलाल तिवारी	१)
(२)	बच्चों की रक्षा—लुई कूने	॥=)
(३)	मैं निरोग हूँ या रोगी ?—लुई कूने	॥=)
(४)	स्वास्थ्य के नुस्खे —'जीवन सखा' कार्यालय	।)
(५)	क्या और कैसे खायं—डा० बालेश्वर प्रसाद सिंह	।=)
(६)	ब्रह्मचर्य ही जीवन है—स्वामी शिवानन्द	१॥)
(७)	आनन्दमय जीवन—श्री शंकरलाल तिवारी	॥)
(८)	कब्ज या कोष्ठबद्धता : डा० बालेश्वरप्रसाद सिंह	१)
(९)	प्राकृतिक चिकित्सक—श्री रामनारायण दुबे	७॥)
(१०)	फलाहार—श्री नारायणप्रसाद अरोड़ा	१)
(११)	आसन—डा० बालेश्वर प्रसाद सिंह	३॥)
(१२)	प्राकृतिक चिकित्सा—श्री रामनारायण वर्मा	३)
(१३)	हम सौ वर्ष कैसे जीवें : श्री केदारनाथ गुप्त, एम० ए०	१॥।)
१४)	आरोग्य-साधन—महात्मा गाँधी	॥।)
(१५)	स्वास्थ्य साधन—श्री रामदास गौड़	३॥)
(१६)	दवाओं से बचो—श्री गंगाप्रसाद गौड़, 'नाहर'	१)
(१७)	उपवास चिकित्सा—श्री रामचन्द्र वर्मा	२)
(१८)	मूत्राशय और पित्त की पथरी एवं शूल की प्राकृतिक चिकित्सा—डा० रमाचरण	।-)
(१९)	आहार ही औषध है—डा० लक्ष्मी नारायण रतरा	१।)
(२०)	Your diet in health & disease by Harry Benjamin	1-4-0
(२१)	Food-de-Medicine by Dr, L. N. Ratra, H. M. B.	1-2-0
(२२)	Bettersight without glasses by Harry Benjamin	3-12-0
(२३)	Practical Nature cure Dr. K. Lakshman Sharma.	8-8-0
(२४)	Constipation and Dyspepsia	1-8-0
(२५)	Gems of health by Dr. Jatashankar Nandi	2-0-0
(२६)	Drugless healing by L. Kameshawar Sharma	1-0-0
(२७)	New science of healing by louis kuhne	- 0-

स्वास्थ्य सम्बन्धी पुस्तकें मिलने का पताः—

मैनेजर, स्वास्थ्य ग्रंथ-भंडार २८७, बादशाहीमंडी, चौक, प्रयाग ।

[प्रश्नोत्तरी कूपन नवम्बर १९४८]

Reg. No. A-172

प्राकृतिक चिकित्सा और बापू

विश्ववंद्य पूज्य महात्मा गांधी जी की राय में प्राकृतिक चिकित्सा रोग मिटाने के इलाजों का नमूना [illegible] जीवन की एक पद्धति है, जिसमें रोग या बीमारी के लिए कोई गुंजाइश ही नहीं रहती।

वास्तव में प्राकृतिक चिकित्सा हमें जीने की कला (Art of living) सिखाती है। अन्य प्रणालियों की अपेक्षा यह प्रकृति से कहीं अधिक सम्बन्धित है। [illegible] ईश्वर में आस्था जगाती है। प्रकृति निर्भरता मनुष्य में प्राकृतिक सामर्थ्य का निर्माण करती है अतः इसमें [illegible] सभी गुण निहित हैं।

अतः यदि आप प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा अपने [illegible] एवं व्यक्तित्व को ईश्वर के चरणों में समर्पित करना चाहते हैं तो जीवन सखा मासिक मंगाकर पढ़ें।

जीवन सखा का उद्देश्य जनसाधारण के शारीरिक, मानसिक एवं नैतिक स्वास्थ्य का पथ प्रदर्शन करना एवं प्राकृतिक चिकित्सा का वैज्ञानिक सन्देश पहुँचाना है।

व्यवस्थापक—

जीवन सखा कार्यालय,

२८७ बादशाही मंडी इलाहाबाद।

Printed by R. N. Avasthi at the K. P. Press and Printing School, Alld.
Published by Sri Baleshwar prasad Sinha, 287, Badshahi Mandi,
Chowk, ALLAHABAD

जीवन

सखा

रिक, मानसिक और नैतिक स्वास्थ्य का पथ-प्रदर्शक

इस अंक के कुछ विशेष आकर्षण

१. आर्त्तवक्षय या 'अवस्था बदलना' —डा० इन्दुमती सि० एन० डी० इत्यादि
२. स्नान और साबुन का प्रयोग—श्री शारदा प्रसाद गुप्त
३. डा० बोनाडक्ट लुस्ट—डा० जेधी मसर गेहमन
४. विटामिन का भूत !—डा० बी० बी० राव, एल० एम० बी०

तथा अन्य उपयोगी लेखादि

वार्षिक चन्दा ३)

इस प्रति का ।-)

दि
स
क
ब
र

१
१
४
६

कांगड़ी गुरुकुल को २८ फरवरी सन १९५६ ई. को [illegible] प्राप्त
ह. मद भवानी प्रसाद ई.य

—डा० बालेश्वरप्रसाद सिं

विषय सूची

—:o:—

१—रोग-व्याधियों का कारण—चरक संहिता । ३६५

२—रोग कैसे होता है ?-डा० पुच्चावेंकटरमय्या, एन० डी०, डी यम०, सं "प्रकृति" और "इंडियन नेचुरोपैथ" ३६६

३—मानसिक रोगों की उत्पत्ति—डा० रामचरण महेन्द्र यम० ए० हर्बर्ट कालेज, कोटा ३९८

४—आर्त्तवक्षय या 'अवस्था बदलना'—डा० इन्दुमती सिनहा एन० डी० वाई० ४००

५—स्नान और साबुन का प्रयोग—श्री शारदा प्रसाद गुप्त ४०६

६—शास्त्रीय मालिश—डा० विट्ठलदास मोदी, संचालक, आरोग्य मन्दिर, गोरखपुर ४०८

७—डा० बेनिडिक्ट लुस्ट—डा० जेसी मर्सर गेहमन ४११

८—बच्चों का मिश्रित भोजन—श्री महेन्द्रनाथ, पाण्डेय, आयुर्वेद-विशारद ४१३

९—विटामिन का भूत !—डा० बी० बी० राय, एल० एम० पी ४१६

१०— तत्त्व-चिकित्सा का इतिहास—श्री गंगाप्रसाद गौड़ 'नाहर' ४१८

११—आराम कीजिए—डा० शत्रुघ्न सिंह, संचालक सेवा-सदन, मुजफ्फरपुर ४२०

१२—उपवास—श्री गोपालकृष्ण मल्लिक ४२२

१३—पुस्तक परिचय ४२४

१४—अपने विचार ४२६

जीवन सखा प्रेमियों से

जीवन सखा का उद्देश्य जन साधारण के शारीरिक, मानसिक एवं नैतिक स्वास्थ्य का पथ-पदर्शन करना है;—बस, इसी भावना से प्रेरित होकर हम गत दस वर्षों से युग के अनेक थपेड़ों को सहते हुए भी जीवन सखा प्रकाशित करते आ रहे हैं। हमें अपने उद्देश्य में सफलता भी मिली किन्तु पूर्ण रूप से नहीं। हमारी मनोकामना थी कि जीवन सखा का संदेश देश के लक्ष्मीपतियों के भव्य भवनों से लेकर गरीब भाइयों की अँधेरी झोपड़ियों तक में गूँज उठे, पर हम अपने लक्ष्य से सर्वथा दूर ही रहे—कुछ युग की विकरालतावश; कुछ अपने स्नेहिय के सक्रिय सहयोग के अभाववश। अब देशवासियों के गिरते हुए स्वास्थ्य को देखकर हमारी हार्दिक इच्छा है, बल्कि अनुरोध है, कि समस्त जीवन सखा प्रेमी व्यक्तिगत रूप से हमारी ओर से प्रत्येक स्वास्थ्य प्रेमी स्त्री-पुरुष को जीवन सखा द्वारा प्रचारित प्राकृतिक चिकित्सा प्रणाली के अनुपम रहस्य से परिचित कराने का भरसक प्रयत्न करें उनसे जीवन सखा परिवार में शामिल होने का अनुरोध करें ताकि जीवन सखा का अधिकाधिक प्रचार हो, जीवन सखा का संदेश घर घर में पहुँचे और 'सर्वसाधारण का स्वास्थ्य सुधरे। इतना होने पर ही हम अपनी मंजिल पर पहुँच सकेंगे, अन्यथा नहीं। आशा है हमारे स्नेही हमारी इस प्रार्थना पर ध्यान देकर अपना सक्रिय सहयोग प्रदान करेंगे।

—व्यवस्थापक

Reg. No. A-172

शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्

NATURE ONLY HEALS

जीवन सखा

सम्पादक

डा० वालेश्वरप्रसाद सिंह

वर्ष ११] दिसम्बर १९४६ [अङ्क १२

रोग-व्याधियों का कारण

काल बुद्धीन्द्रियार्थानां योगोमिथ्यानं चातिच।
द्वयाश्रयाणां व्याधीनां त्रिविधो हेतु संग्रहः ॥
शरीर सत्वसंज्ञचव्याधीनामा श्रयोमतः।
तथा सुखानां योगस्तु सुखानांकारणंशमः ॥
प्रशाम्यत्यौषधैः पूर्वो द्रव्ययुक्ति व्यपाश्रयैः।
मानसो ज्ञान विज्ञान धैर्य स्मृति समाधिभिः ॥

अर्थात् काल, बुद्धि, इन्द्रिय, विषय, इनका मिथ्या योग, अयोग और अतियोग यह तीन प्रकार का व्यापार होना ही शारीरिक तथा मानसिक व्याधियों का कारण है। शरीर और मन यह दोनों ही रोग के अधिष्ठान हैं, अर्थात् रोग शरीर में और मन में ही होते हैं। और काल, बुद्धि, इन्द्रियों के विषय, इनका उचित योग रहने से रोग न होकर सुख प्राप्त होता है। शारीरिक रोग द्रव्यों की युक्तियों से सम्बन्ध रखने वाले औषधों मे और मानसिक रोग ज्ञान, विज्ञान धैर्य, स्मृति, समाधि आदि से शान्त होते हैं।

—चरक संहिता।

रोग कैसे होता है ?

(त्रिदोषों की आलोचना)

डा० पुच्चा वेंकटरमय्या, एन० डी०, डी० यम०, संपादक "प्रकृति" और "इंडियन नेचुरोपैथ"

पित्त :—

पिछले प्रकरण में हम जल धातु- यानी श्लेष्म के बारे में विचार कर चुके हैं। अब इस प्रकरण में उष्ण धातु यानी पित्त की आलोचना करेंगे। शरीर की गति तथा स्थिति तभी संभव है, जब इन दोनों धातुओं में समंजस्य हो। पित्त के अधिष्ठान देवता सूर्य भगवान हैं और आसन है हृदयकमल। अक्सर लोग पित्त का अर्थ भ्रमवश "पैत्य कोश" से निकलने वाला पित्त रस मान लेते हैं। सच यह है कि पैत्यकोश हृदय की धड़कन की गति को नियंत्रित करता है। अर्थात् पैत्यकोश शरीर के रक्त के गमन को एक हद में रखता है। इसलिये हम कह सकते हैं कि यह गौण रूप से शरीर के उष्णधर्म को शासित करता है। इस प्रकार देखने से पता चलता है कि उष्ण का वासस्थान हृदय के पास होने पर भी उसकी कमी-बेशी शरीर के किनारों पर, खास कर सिर में प्रकट होती है।

मैं पहले एक जगह कह आया हूं कि आहार अन्नकोश में जाकर रस के रूप में परिणत होता है। यह भी कहा जा चुका है कि शरीर के कुछ अंग उसी रस को अपना आहार बनाते हैं। बाकी रस 'जाठर सिरा' की राह से "पैत्यरस" से होकर बृहत्सिरा (Venacave) के रास्ते से हृदयकोश में पहुँचता है। हमारे आहार में जब कार्बन हैद्रज (श्वेतसार) वसा और प्रोटीन सम परिमाण में मिले रहते हैं, तब "पैत्यकोश" पर किसी भी प्रकार का दबाव नहीं होता इसके सिवा जब यह रस हृदयकोश में जाकर रक्त बनता है, हृदय की धड़कन की संख्या कम या ज्यादा न होकर समान रहती है।

हमारे आहार में श्वेतसार या मधुर पदार्थ ज्यादा होने पर पैत्यकोश उसे ठीक करके हृदयकोश में भेजता है। नहीं तो उन चीजों का अंगार यानी कोयला हृदय में एक प्रकार की सिकुड़न पैदा करता है। लेकिन यहाँ तमाशा यह है कि जब तक जिगर बलवान रहता है, तब तक वह अपने अंदर किसी प्रकार की सिकुड़न नहीं होने देता और अधिक तेजी के साथ स्पंदन पैदा करके प्राणवायु खींच कर उस अंगार को जला देता है। इस क्रिया से रक्त में अधिक गरमी पैदा हो जाती है। रक्त को इस दशा से बचाने के लिये पैत्यकोश आहार के आटे और शक्कर को "ग्लाइकोजिन" (glycogen) बना कर अपने अंदर समा लेता है। इससे हृदय में दबाव (pressure) कम होता है। यदि किसी समय हमारे आहार में आटादार श्वेतसार और मधुर पदार्थ का अभाव होता है या कभी हम उपवास करते हैं उस समय पैत्यकोश का यह ग्लाइकोजिन अपने स्थान से निकलता है और हृदयकोश में पहुँच कर रक्त बनता है। अगर हम लगातार इस किस्म के कोयले को अपने शरीर के अंदर पहुँचाते रहें, तो उसकी मात्रा अधिक होती है और उसे पैत्यकोश अपने अन्दर समा नहीं पाता है। उस दशा में भूख कम हो जाती है। मंदाग्नि का रोग होता है। उस समय हृदय की स्पंदन क्रिया अधिक होती है। उसी को ज्वर कहते हैं। पैत्यकोश का ग्लाइकोजिन जब तक खर्च नहीं होगा, तब तक भूख नहीं लगती। ज्वर भी नहीं उतरता। इस ज्वर से शरीर के भिन्न भिन्न अंगों में मेद के रूप में जमा हुआ कोयला जल जाता है। ऐसे शक्तिशाली ज्वर को क्याइना पाषाण आदि दवाओं से दबा देने पर हृदय की धड़कन कम हो जाती है। तब शरीर के ऊपर कितना बड़ा जुल्म होता है, यह बात बुद्धिमान लोग आसानी से समझ सकते हैं।

हृदय-कोश के चार कमरे होते हैं। ऊपरी कमरों को "कार्णिकायें" और निचले कमरों को "जठरिकायें" कहते

है। बृहद्शिरा के रास्ते से दाहिनी ओर की कर्णिका के अंदर जो अन्नसार तथा मलिनरक्त जाता है, वह वहाँ से दाहिनी जठरिका के अंदर पहुँचाता है। वहां से निकलकर वह रक्त श्वासकोश की धमनी के रास्ते दोनों फेफड़ों में पहुँचाता है। वहाँ वह केश नालियों में रहता है जो लाखों की संख्या में फैली हुई हैं।

हम जो सांस लेते हैं, वह श्वासनाल के ज़रिये दोनों फेफड़ों में पहुंचता है और वही वायुगोलों में, जो लाखों की संख्या में विभक्त हैं, रह कर केशनालिकाओं के कोयले को अपनी तरफ़ आकर्षित करता है और विषवायु बन कर बाहर निकलता है। केशनालियों में स्थित मलिनरक्त सांस की प्राणवायु को लेकर शुद्ध होता है और लाल हो जाता है। शुद्ध रक्त फेफड़ों में फैली हुई छोटी शिराओं से होकर वहां बड़ी शिरा में से होकर बांयी कर्णिका में पहुंचता है। वहां से बाँयी जठरिका में, फिर बृहद्धमनी में जाता है। वहां से शुद्ध रक्त छोटी धमनियों तथा केशनालियों के जरिये, जो समूचे बदन में फैली हुई है पैर से लेकर सिर तक जाता है और देह के सभी भागों को प्राणवायु बांटकर अंगों में नित्य नयी स्फूर्ति पैदा करता है। अंगों को अपने साथ लाया हुआ अन्नसार आहार देता है। रगड़ खाकर घिसे हुए क्षीण कणों को फिर बलवान बनाता है। देह को ठंडक के मारे शिथिल होने से बचाता है और हमेशा उष्ण धर्म की रक्षा करता है। मल, मूत्र, स्वेद आदि के जरिये शरीर के विष पदार्थ को निकाल बाहर करनेवाले अंगों को आहार देकर उनकी मदद करता है। इसके सिवा यह शुद्ध रक्त माँसपेशियों, हड्डियों, उपास्थियों, संधिबन्धनों, नाड़ियों, मस्तिष्क तथा मज्जा का पोषण करता है। यह रक्त उनका पोषण करने के अलावा उन भागों के शिथिल दूषित अंश को अपने साथ लेकर छोटी सिराओं में वहाँ से बड़ी सिराओं में, फिर वृहत्सिरा में पहुंचता है। उसके बाद जो काम होता है वह पहले ही लिखा गया है। अब आप समझ गये होंगे कि शुद्ध रक्त वह धातु है जो शरीर को गरमी देती है।

जब हम स्वास्थ्यकर आहार को ठीक परिमाण में नियमित समय पर लेते हैं, जब आहार के अनुसार मेहनत करते हैं, जब हम छल-कपट, द्वेष, असूया, डाह, दंभ आदि विकारों से रहित होकर सात्विक जीवन बिताते हैं, तब हृदय की स्पंदन-क्रिया समान गति से चलती है। रक्त हमेशा शांत तथा शुद्ध रहता है। दिल की धड़कन अधिक होने से शरीर में गरमी तथा कम होने से रक्त क्षीणता होती है। हृदय का स्पंदन ज्यादा होने से मस्तिष्क, मज्जा और नाड़ियों में विकार होता है। रक्त क्षीणता होने पर मस्तिष्क की नाड़ियों को काफी आहार नहीं मिलता। इस दशा में उदासीनता, सुस्ती, स्मरण-शक्ति का अभाव, उत्साह हीनता बुद्धि हीनता, एकांतप्रियता, भय, कायरता, मानसिक व्याधियों के अलावा, मूर्छा, उन्माद, अपस्मार आदि दैहिक व्याधियाँ होती है।

छाती की धड़कन अधिक होने पर ज्वर, जलन, पिपासा तंद्रा, शोष, हिक्का, छर्दी, सिर में चक्कर आना, आंखों में जलन, विकार, रक्त-पित्त आदि होते हैं। आहार में कार्बन हाइड्रज के अलावा चर्बीदार चीजें अधिक होने से पैत्यकोश दुर्बल हो जाता है। इस कारण से भी हृदय स्पंदन में कमी-बेशी हुआ करती है। मूत्राशय यदि अपना काम ठीक तरह से नहीं करता तो मूत्र संबंधी यूरिक अम्ल रक्त से मिल जाता है जिससे पित्ताशय कमजोर हो जाता और छाती जोर से धड़कने लगती है। मूत्राशय के खराब होने से रक्त के बहाव में जो विकार पैदा होता है, उससे पैदा होनेवाले रोग ये हैं—शिशुमेह, सिकतामेह, लालमेह, कालामेह, नाना प्रकार के उपदंश, प्रमेह, बहुमूत्र, मधुमेह, असृग्धरा, अतिसार, ग्रहणी, आदि।

शरीर से पसीना नहीं निकलने या नित्य शारीरिक श्रम न करने से रक्त की गन्दगी रक्त में ही रह जाती है। इस कारण शरीर का भारी मालूम होना, आलस्य, कोई भी काम करने में उत्साह न होना, अकाल में बालों का पक जाना, रक्त का दबाव आदि व्याधियां होती हैं। मल-विसर्जन ठीक तरह से न होकर यदि मल अंदर ही जम जाये तो वह भीतर ही भीतर सड़ जाता है। उसकी दुर्गंध रक्त में मिल जाती है। उस समय भी हृदय-स्पंदन अधिक होता है। वह दुर्गंध स्वाभाविक मार्ग से न निकल कर जब मस्तिष्क में पहुँचती है तब सिर में चक्कर, सिर का भारीपन, आंखों

(शेष ३९६ पर)

मानसिक स्वास्थ्य पर एक सुन्दर लेख

मानसिक रोगों की उत्पत्ति

[डा० रामचरण महेन्द्र एम० ए० हबर्ट कालेज, कोटा]

आदि काल का आदिम पुरुष देश, काल, समाज, नैतिकता आदि के सभ्य बन्धनों से सर्वथा उन्मुक्त था। सभ्यता के नाना प्रकार के मिथ्याडम्बर समाज के वज्र-कठोर नियम, लोक निंदा का भय, अनेक प्रकार के प्रचलित सम्प्रदायों की सारहीन उलझनें, उचित अनुचित का सीमा-बन्धन या विवेक का नियन्त्रण न होने के कारण उसकी भीतरी रागात्मिका प्रवृत्तियां, निर्बं वासनाओं, निर्द्वन्द्व पाशविक मनोवृत्तियों, मनोविकारों, इच्छाओं का बाह्य सृष्टि के साथ पूर्ण रूप से सामंजस्य (Harmony) था। वासनाओं, मनोवृत्तियों, मनोविकारों की परितृप्ति का खुला अवसर प्राप्त होता था। कोई उँगली उठाने, टीका-टिप्पणी करने, या बुरा भला कहने वाला न था। प्रेम, क्रोध, ईर्सा, द्वेष, घृणा, हास, उत्साह, भय, करुणा आदि मनोवेगों (Emotions) का प्रवाह अबाध था। उसमें विवेक, सत् असत् तथा नैतिकता के उत्कृष्ट विचारों का इतना विकास नहीं हुआ था। सुख की अनुभूति पर हाथ पाँवों के संचालन द्वारा रो पीट कर चिल्ला कर मन के घाव पर मरहम लगा लिया जाता था। दंड का भय, लोक निंदा का डर, या सन्देह न था। कोई भी नियंत्रण न होने के कारण निर्द्वन्द मनोवृत्तियाँ खुले रूप से व्यंजित होती थीं। जिस युग में मानव सभ्य नहीं हो पाया था लाखों वर्ष पूर्व के उस निर्बाध युग में पाशविक ममोवृत्तियों की पूर्ति के लिए खुला अवसर प्रत्येक व्यक्ति को मिल जाता था। मानसिक स्वास्थ्य की दृष्टि से यह युग सर्वोत्तम रहा होगा।

विकास के स्वाभाविक नियमों के अनुसार क्रम से मानव ने सभ्यता को अपनाया। नैतिकता ने अपने नेत्र खोले। समाज के शिष्टाचार के नियम बने। रूढ़ियाँ, उचित अनुचित का ज्ञान, यश-अपयश का विवेक, सामाजिक क्रिया-प्रतिक्रिया, आघात प्रतिघात, वैयक्तिक ऊहापोह, क्रमशः मानव समाज में विकसित होते गये। भिन्न भिन्न सामाजिक प्रतिक्रियाओं से अंहकार जाग्रत हुआ, आत्म-गौरव, सौभाग्य-दुर्भाग्य, विवेक बुद्धि का नियंत्रण, अनेक प्रकार के मर्श-विमर्श, नैतिकता के जाल का उन्मेष हुआ।

वासना तथा विवेक के संघर्ष से मानसिक उलझनों की सृष्टि हुई। यश-अपयश, सामाजिक टीका-टिप्पणी के विचार से हम आदिम पाशविक निर्द्वन्द मनोवृत्ति,

से संचालित होने लगे। नैतिक बुद्धि ने दुर्वासनाओं के ऊपर नियंत्रण प्रारम्भ किया। यही नहीं, यह हो; यह अच्छा, यह बुरा; यह उचित यह अनुचित; यह कुरूप यह रूपवान; यह उत्तम यह निकृष्ट—इन दो परस्पर विरोधी अनुभूतियों का संघर्ष (Conflict) चलता रहा। शुभ अशुभ का निर्णय करने वाली विवेक बुद्धि ने अनुभूतियों के मार्ग निर्धारण का कार्य एक अदूरदर्शी सरकार की भांति निर्दयता पूर्वक प्रारम्भ किया।

इस संघर्ष से मानसिक जगत् में हाहाकार का कोलाहल सा मच गया। जैसे अत्याचार से किसी घर के व्यक्ति या राज्य के नागरिक घबराकर अस्त व्यस्त हो जाते हैं, वैसे ही अन्तर्जगत् का वातावरण अशान्त, अतृप्त सा बन गया। बेचारी कितनी ही इच्छाओं, मनोवृत्तियों, यातनाओं, कल्पनाओं को निर्दयता पूर्वक कुचल डाला गया; वासनाएँ प्रताड़ित होकर बड़ी अशान्त, अतृप्त, अस्थिर रहने लगीं। उन्होंने इस कठोर नियंत्रण के विपक्ष में क्रान्तिकारियों का कार्य प्रारम्भ किया। यदि दूरदर्शी सरकार की भांति विवेक-बुद्धि इस नियंत्रण के कार्य को धीरे धीरे करती, या कम करती तो अन्तःकरण की विभिन्न मनोवृत्तियों में इतनी क्रान्ति, इतनी अस्तव्यस्तता, इतना हाहाकार न मचता और फलतः इतनी अशान्ति उत्पन्न नहीं होती। एकदम नियंत्रण कर देने से संघर्ष में उग्रता रही और यह काम लगातार वर्षों तक चलता रहा। विपक्षी मनोवृत्तियों को विरोध का पर्याप्त अवकाश मिलता रहा।

जब मनुष्य अपनी इच्छाओं, वासनाओं का दमन (Repression) करता है तो मानसिक गांठें बनती हैं। जब हम अपनी इच्छाओं को दबाते हैं, तो ये मरती नहीं वरन् अज्ञात चेतना के अतल गह्वर में जा छिपती हैं। वहीं से उत्तेजना और अवसर पाकर वे दलित इच्छाएँ नाना प्रकार के मानसिक रोगों में प्रकट होती हैं। यही मनोजनित रोगों की उत्पत्ति का रहस्य है।

रोग कैसे होता है ?

(३९७ का शेष)

की जलन, सिर दर्द, माथे की पीड़ा, आधी शीशी, आंखों में पीड़ा, दांत सम्बन्धी व्याधियाँ, मूर्छा, विकार, आँखे पीली होना, उन्माद, प्रलोप आदि विकार पैदा होते हैं। चर्बीदार चीजें ज्यादा खाने से शरीर उनका उपयोग ठीक से नहीं कर पाता और शरीर में वह चर्बी बना कर जम जाती है। यह चर्बी हृदय के आच्छादनों में पहुँच कर हृदय की गति को मंद कर देती है। ऐसी हालत में कामला, रक्त क्षीणता, शोथ आदि रोग होते हैं।

मूत्राशय की हालत जब खराब रहती है, उस समय पित्ताशय की भी वही हालत रहती है। इस हालत में पित्ताशय में विद्रधि, पित्तरस के मार्ग में पथरी, फोड़े, श्वास शिथिलता आदि रोग होते हैं।

रक्त जब तक धातु के रूप में रह कर सारे शरीर में बहता है तब तक शरीर में बल, स्वास्थ्य, उत्साह, स्फूर्ति सतर्कता आदि स्वस्थ लक्षण होते हैं। इसके आलावा शरीर के ग्राहक अंग और बहिष्करण अंग-दोनों अपने-अपने काम ठीक से करते रहते हैं। शरीर की स्वस्थता का प्रभाव मन पर भी अच्छा पड़ता है। देखिये, इस हालत में मन शांत तथा निर्मल रहता है। बुद्धि सत्यासत्य का निर्णय करने में समर्थ होती है। शरीर का नाड़ी-मंडल बड़ी ही फुर्ती तथा आसानी से काम करता है।

नाड़ी-मंडल में होनेवाली गड़बड़ी ही अक्सर सभी रोगों की जड़ है। तन्दुरुस्ती चाहने वाले हर व्यक्ति का कर्त्तव्य है कि वह अपने खान पान में सजग रहे। मानसिक विकारों के वश में न हो और मल-मूत्र की हाजत का अवरोध न करें।—अनुवादक—श्री चेलसाधिराव।

आर्त्तव क्षय या 'अवस्था बदलना'

डा० इन्दुमती सिनहा। एन० डी० डी० वाई०

आर्तव क्षय का मतलब है मासिक धर्म हमेशा के लिये बन्द हो जाना। इसके दो भेद हैं—१--स्वाभाविक और २--शारीरिक विकार जन्य। ४२ और ५२ साल की अवस्था के बीच मासिक-धर्म का बन्द हो जाना नारी-जीवन की एक स्वाभाविक अवस्था है। यह न तो कोई रोग है और न इसका कोई खास उपचार ही होना चाहिए। लेकिन अगर समय से पहिले, अपेक्षाकृत कम उम्र में ही मासिक-धर्म बन्द हो जाता है तो निःसन्देह उसे अस्वाभाविक अथवा रोग-जन्य ही समझना चाहिए। ऐसी अवस्था खास करके शरीर दुर्बल होने, बदन में खून की कमी होने या किसी जीर्ण रोग से ग्रस्त रहने के कारण उत्पन्न होती है।

ओवरी का आपरेशन करा देने, उसे कटा कर निकलवा देने, गर्भाशय के अपने स्थान से हट जाने, ओवरी (डिम्बाशय) या योनि-मार्ग में चतौड़ी होजाने आदि कारणों से भी मासिक-धर्म हमेशा के लिये बन्द हो जाता है और आर्त्तव क्षय की अवस्था आ जाती है।

आर्त्तव क्षय से यह साफ जाहिर होता है कि अब ओवरी या डिम्बाशय की क्रियाशीलता समाप्त हो गयी, अब स्त्री गर्भ-धारण नहीं कर सकती। इसके लक्षण आर्त्तव क्षय के २-३ साल पहले ही प्रकट होने लगते हैं—स्त्री के बिगड़े हुए स्वास्थ्य के रूप में। ओवरी की क्रियाशीलता नष्ट होने का कारण ज्यादातर पोषक-पदार्थों के अभाव में उसकी (ओवरी की) छीजन ही होती है यह अवस्था ज्यादातर प्रणाली-हीन ग्रंथियों के आन्तरिक स्राव में परिवर्तन होने से उत्पन्न होती है। एक नवजात बालिका की ओवरी में लगभग ३०,००० अण्डे या डिम्ब होते हैं जिनमें से केवल लगभग २०० ही परिपक्व अवस्था को प्राप्त होते हैं और बाहर निकलते हैं। इनमें से प्रत्येक अंडा सम्भावित गर्भाधान का कारण बन सकता है। इस अण्डे को एक प्राकृतिक शक्ति प्राप्त होती है जो १० साल की अवस्था तक सुप्त या निष्क्रिय बनी रहती है, यौवनावस्था में इसकी क्रियाशीलता सबसे अधिक बढ़ी हुई रहती है और उसके ३० या ३५ वर्ष बाद बिलकुल समाप्त हो जाती है। दूसरे शब्दों में स्त्री के उत्पादक अंग वृद्धावस्था को प्राप्त हो जाते हैं, जब कि शरीर के अन्य भाग अब भी सचेष्ट, सक्रिय और सशक्त बने रहते हैं। केवल अण्डों की क्रियाशीलता समाप्त हो जाना ही आर्त्तव-क्षय का परिणाम नहीं होता, बल्कि इसके अन्य परिणाम भी देखने को मिलते हैं—जैसे प्रणाली-हीन ग्रंथियों का वह आन्तरिक स्राव, जो कि सीना, आवाज और मनोवृत्ति के विकास का कारण होता है—बन्द हो जाता है। मासिक-धर्म हमेशा के लिये बन्द हो जाने की इस अवस्था के प्रायः ४ साल बाद ओवरी का कोई मुख्य तंतु बाकी नहीं रह जाता।

आर्तव क्षय की अवस्था

मातदिल (शीतोष्ण) देशों में आर्त्तव-क्षय ४० और ५० साल की आयु के बीच होता है। इस प्रकार औसत ४५ साल की आयु समझनी चाहिए। ठंडे देशों में इसके कुछ साल बाद और दक्षिणी देशों में इसके कुछ साल पहले यह 'अवस्था-परिवर्तन' या आर्तव-क्षय होता है। एशियाई देशों में औसतन आर्तव-क्षय ३५ साल की अवस्था में होता है। किसी किसी में यह अवस्था आने के समय में घट-बढ़ हो सकती है एक माता और उसकी दो लड़कियां इन तीनों को आर्त्तव क्षय ३९ साल की आयु में हुआ। इससे यह प्रकट होता है कि आर्त्तव-क्षय का सम्बन्ध माता की आयु से भी होता है। अर्थात् जिस साल में माता के आर्तव क्षय हुआ है उसकी लड़कियों के भी आर्तव क्षय की वही अवस्था समझनी चाहिये। यौवनावस्था और आर्त्तव-क्षय की अवस्था इन दोनों के बीच कोई निश्चित सम्बन्ध या कोई निर्धारित नियम नहीं हैं। लेकिन आमतौर पर यह बात सच पाई गई है कि किसी स्त्री के जितने जल्द मासिक-धर्म शुरू होता

है वह उतने ही समय तक जारी रहता है। लेकिन कच्ची उम्र में शादी हो जाने पर मासिक-धर्म जारी रहने, सन्तान उत्पन्न करने की शक्ति बनी रहने, की अवधि कम हो जाती है।

जो बहनें विवाहित हैं, जो दाम्पत्य-जीवन व्यतीत करती है, जिनके कई सन्ताने है जिन्हें वे स्वयं छाती का दूध पिलाती हैं उनके आर्त्तव-क्षय उन स्त्रियों की अपेक्षा अधिक समय में होता हैं जिनके कोई सन्ताने नहीं हैं। इस तरह की बहनों के यदि ५० या ५५ साल की अवस्था तक मासिकधर्म जारी रहे तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। शरीर से स्वस्थ और सशक्त स्त्रियों की अपेक्षा कमजोर और रोग-ग्रस्त स्त्रियें के आर्त्तव क्षय जल्द होता है। ऐसा देखा गया है। शारीरिक परिश्रम करने वाली मजदूर वर्ग की स्त्रियों के मुकाबले में ऊंचे घराने या मध्यवर्ग की महिलाओं के, जिन्होंने बड़े आराम पूर्वक जीवन व्यतीत किया है, आर्त्तव-क्षय प्रायः एक साल बाद होता है।

सन्तानोत्पत्ति से सम्बन्ध रखने वाले अंगों तथा अवयवों की शक्ति नष्ट या क्षीण हो जाने, उनकी क्रियाशीलता समाप्त हो जाने पर कामेच्छा या काम वासनाएँ भी धीमी पड़ जाना बिलकुल स्वाभाविक है और ये लक्षण आर्तव-क्षय के बाद के वर्षों में आमतौर पर उत्पन्न होते हैं। लेकिन आर्तव-क्षय के प्रारम्भिक वर्षों में अस्थायी तौर पर काम-वासनाए बढ़ जाती हैं। कुछ स्त्रियों में आर्तव-क्षय की इस प्रारम्भिक अवस्था में कामेच्छा की वृद्धि बहुत मामूली होती है, लेकिन कुछ स्त्रियें में, जिनके माता-पिता स्नायु-सम्बन्धी विकार से पीड़ित रहे हैं, अथवा जो शारीरिक दृष्टि से अपनी मनोभावनाओं को काबू में रखने में समर्थ नहीं होती, काम-भावनाएँ इस कदर बढ़ जाती हैं, कि उनके सामने समाज के सारे नियम-बन्धन ढीले पड़ जाते हैं।

इस तरह की स्त्रियों को 'निम्फोमेनियाक्स' (Nimphomaniacs) कहते हैं। इनका उपचार ऐसे चिकित्सा-गृहों में होना चाहिये जहाँ पर मानसिक रोगों का इलाज करने की विशेष ट्रेनिंग प्राप्त दाइयाँ रक्खी गयी हैं। इस असाधारण अवस्था के अलावा साधारण तौर पर कामेच्छा का कुपित होना या बढ़ना नारी जीवन का अंतिम चरण संकटपूर्ण होने का सूचक है। यह अवस्था ज्यादातर अनमेल विवाह के ही फलस्वरूप उत्पन्न होती है।

आर्तव क्षय के लक्षण

आर्तव-क्षय के आरम्भ में कभी-कभी कुछ समय के लिये मासिक धर्म बन्द हो जाता है और फिर कुछ समय तक होने लगता है। उसके बाद फिर बन्द हो जाता है। लेकिन इस हालत में भी ओवरी की क्रियशीलता जारी रहती है। वह बन्द नहीं होती। मतलब यह है कि आर्तव-क्षय एकबारगी नहीं होता। स्राव की मात्रा धीरे-धीरे कम होकर यह अवस्था आ जाती है। आर्तव-क्षय की अवस्था में बेचैनी या मिजाज का चिड़चिड़ापन, मामूली सी मामूली बात पर दिमाग गर्म हो जाना आदि लक्षण उत्पन्न होते हैं। किसी किसी में यह मानसिक लक्षण इतने बढ़ जाते हैं कि पागलों की-सी हालत हो जाती है।

कुछ मामलों में मासिक-धर्म एकबारगी बन्द हो जाता है। लेकिन आमतौर पर मासिक स्राव धीरे धीरे बन्द होने से पहले काफी अनियमित होता है। इस प्रकार आर्तव-क्षय की पूर्णावस्था आने में एक दो साल या इससे भी अधिक समय लगता है। जब मासिक-धर्म एकबारगी और पूरीतौर से बन्द हो जाता है तो उस हालत में स्त्री के साधारण स्वास्थ्य पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। उसे अनेक तरह की व्याधियाँ आ घेरती हैं। लेकिन आमतौर पर मासिक-स्राव की मात्रा उत्तरोत्तर कम होने लगती है और एक मासिक-धर्म से दूसरे मासिक-धर्म का समय बढ़ने लगता है।

उदाहरण के लिये आर्तव-क्षय की अवस्था समीप होने पर मासिक धर्म हर महीने नियमित समय पर न होकर हर छठें या सातवें सप्ताह होता है। इसके अलावा यह भी हो सकता है कि मासिक धर्म तीन या चार महीने तक बन्द हो जाय और उसके बाद कुछ समय तक नियमित रूप से होता रहे और तब फिर कुछ महीने के लिये बन्द हो जाय।

आर्तव-क्षय की पहली अवस्था में अत्यार्त्तव, मासिक धर्म के समय अधिक खून जाने की शिकायत हो सकती है जो कभी कभी आर्तव-क्षय की पूर्व-सूचना के रूप में

होता है। जो बहनें शरीर से हृष्टपुष्ट होती हैं, जिनके बदन में खून की कमी नहीं है, जो बराबर कामकाज में लगी रहती हैं, उनके इस तरह के अत्यार्तव की शिकायत होने की विशेष सम्भावना रहती है। मासिक धर्म के रूप में इस प्रकार अधिक खून जाने के कारण उनका स्वास्थ्य बहुत गिर जाता है। लेकिन अगर शरीर में पहले से कोई रोग नहीं है तो उस हालत में इस तरह का अधिक खून जाना जल्द ही बन्द हो जाता है और उनकी हालत बिगड़ने नहीं पाती। जब तक मासिक-धर्म का होना पूरी तौर से बन्द नहीं हो जाता तबतक इस अवस्था में भी गर्भ धारण की सम्भावना हो सकती है।

यहां पर मैं यह भी कह देना चाहती हूँ कि आर्तव-क्षय केवल सन्तान उत्पन्न करने वाली इन्द्रियों की क्रियाशीलता का समाप्त हो जाना ही नहीं है। ओवरी या डिम्बकोष के क्रियाशील बने रहने का स्नायु-प्रणाली पर भी जबर्दस्त प्रभाव पड़ता है। और स्नायु प्रणाली के जरिये शरीर के प्रत्येक भाग में रक्त का संचार भी उसके प्रभाव से मुक्त नहीं रहता। ओवरी का कण्ठ-मणि (थायरायड़) जैसी निःस्रोतस (प्रणालीहीन) ग्रंथियों से विशेष सम्बन्ध रहता है। और इन्हीं निःस्रोतस ग्रंथियों की क्रियाशीलता पर शरीर के अंगों का विकास निर्भर करता है। मासिक धर्म हमेशा के लिए बन्द हो जाने पर उत्पन्न आमतौर से तलपेट या पेड़ू की इन्द्रियों में परिवर्तन हो जाता है। उत्पादक (सन्तान उत्पन्न करने वाले) अंगों में परिवर्तन हो जाते हैं। लीबिया की वसा गायब हो जाती है। योनि-मार्ग की श्लैष्मिक झिल्ली सिकुड़ जाती है। गर्भाशय और गर्भाशय ग्रीवा का आकार छोटा हो जाता है। स्तन-ग्रंथियाँ नहीं रह जातीं, इसलिये स्तन सिकुड़ जाता या छोटा हो जाता है। शरीर में सब जगह वसा जमा हो जाती है।

मतलब यह कि यौवनावस्था के आरम्भ में जो परिवर्तन होते हैं उसके ठीक विपरीत परिवर्तन आर्तव-क्षयकी अवस्था में होते हैं। इसके अलावा शरीर के समूचे गठन पर भी इसका प्रभाव पड़े बिना रहता।

इस प्रकार आर्तव-क्षय से सम्बन्ध रखने वाले लक्षण और उनकी गम्भीरता एक-सी नहीं होती उनके विविध रूप देखने को मिलते हैं। शरीर से मल-विसर्जन का एक महत्त्वपूर्ण साधन (मासिक-धर्म) बन्द हो जाने के कारण स्नायु-प्रणाली में होने वाली परिवर्तन अथवा रक्त-संचालन में अस्थायी तौर से होने वाली अनियमिता या गड़बड़ी; ये सब इसी के विभिन्न रूप हो सकते हैं। रक्ताधिक्य (Flushes), स्वभाव का चिड़चिड़ापन, रक्ताल्पता (बदन में खून की कमी) क्षय और स्नायु-दुर्बलता ये सब लक्षण ज्यादातर देखे जाते हैं।

आर्तव-क्षय होने पर मोटापा का रोग भी हो जाना एक बहुत सामान्य लक्षण है। लेकिन अधिकांश मामलों में यह रोग नारी-जीवन के इस अनिवार्य अवस्था-परिवर्तन की वजह से होने के बजाय गलत-रहन और खानपान की वजह से ही होता है। इस अवस्था-परिवर्तन के कारण स्त्री की शारीरिक-शक्ति अस्थायी तौर से क्षीण हो जाती है ऐसी हालत में बहुत सी स्त्रियां आलसी की भांति जीवन व्यतीत करने लगतीं, या अत्यधिक भोजन करने लग जाती है। फलस्वरूप उनमें अनावश्यक रूपको मोटापन आ जाता है।

कुछ स्त्रियों के मोटापा रोग होने के साथही साथ कुछ इस तरह के भी लक्षण प्रतीत होते हैं—नाड़ी की गति धीमी पड़ जाना, शरीर की खाल (त्वचा) रूखी हो जाना, बालों का झड़ना, दिमाग में भारीपन, जो कि इस बात का सूचक है कि आर्तवक्षय से कण्ठमणि और शायद पाचक रस उत्पन्न करने वाली ग्रन्थि (panereas) पर भी बहुत बुरा प्रभाव पड़ा है। कण्ठ-मणि की क्रियाशीलता बढ़ाने के लिए सर्वांगासन और शीर्षासन सबसे प्रभावकारी और लाभदायक साधन हैं। इस तरह की स्त्रियां भोजन सुधार और व्यायाम के द्वारा अच्छी हो सकती हैं। उन्हें फल, सलाद और शाक-भाजियों का प्रयोग अधिकता से करना और श्वेत-सार प्रधान खाद्य और मिष्ठान्न का जहाँ तक हो सके कम इस्तेमाल करना चाहिये। इन उपायों से काम लेने पर एक रोगिणी को—जो मोटी, काहिल, कुन्द और उत्साहहीन हो गई थी दुबली-पतली, फुर्तीली, और प्रसन्न-चित बन जाते देखा गया है।

आर्तव-क्षय का शरीर की रक्त-संचरण प्रणाली पर जो प्रभाव पड़ता है उसका सामान्य लक्षण विभिन्न रूप में प्रकट होते हैं। शरीर के किसी स्थान पर, विशेषतः चेहरे,

और पेट पर लाल धब्बे जैसे पड़ जाते हैं जिनमें चुनचुनाहट या प्रवाह-सा होता है ऐसा जान पड़ता है कि यह विकार त्वचा के विभिन्न भागों में रक्त संचार में कोई अकस्मात गड़बड़ी हो जाने के कारण उत्पन्न हुआ है। कभी-कभी तो हृदय की गति भी अकस्मात बहुत तेज हो जाती है और वह प्रबल रूप धारण कर लेती है। कुछ भी मेहनत करने पर हृदय-गति (धड़कन) बहुत बढ़ जाती है। लेकिन कभी-कभी अकारण, बिना किसी कारण के भी दिल की धड़कन बढ़ जाते देखा गया है। यह दौरा दिन या रात किसी भी समय हो सकता है। हृदय की धड़कन बढ़ने के साथ ही साथ सांस फूलने, बेचैनी मालूम होने, आदि उग्र लक्षण भी प्रकट होते हैं। मस्तिष्क में रक्त संचार समुचित रीति से न होने के कारण अक्सर रोगिणी को चक्कर आने की शिकायत हो जाती है। यह चक्कर आने की शिकायत एकबारगी होती और कुछ सेकेण्ड या कुछ मिनट तक रहती है आंखों की रोशनी धुँधली हो जाती और कानोंमें झनझन की आवाज होने की भी शिकायत हो सकती है।

कुछ स्त्रियों के रक्त-स्राव बहुत अधिक और लगातार होता है। इस तरह के लक्षण दिखाई देने पर किसी अनुभवी चिकित्सक से फौरन राय लेनी चाहिये।

आर्तव-क्षय की अवस्था में शरीर के किसी भी भाग में मीठा-मीठा दर्द और नसों (स्नायुओं) में साधारणतौर पर तनाव होने के कारण सभी तरह के दर्द अपेक्षा से अधिक तीव्र होते हैं। लेकिन उसका सबसे सामान्य लक्षण न्यूरेलिजिया के रूप में प्रकट होता है। सम्भव है कि वह हेमीक्रेनिया (Hemicrania) या अधकपारी की, जिसमें सिर का एक भाग दर्द करता है, शिकायत शुरू हो जाय। इसमें नसें इतने जोरों से टपकती है कि जान पड़ता है कि जैसे सिर फट रहा है। यह शिकायत ज्यादातर शाम को होती है। स्तनों का न्यूरेलजिया इसका एक दूसरा सामान्य लक्षण है। इसमें स्तन की नसें जोरों से टपकती हैं, जान पड़ता है कि फोड़ा हो जायगा। इसी प्रकार पेट की न्यूरेलजिया हो जाना भी कोई असामान्य या असाधारण बात नहीं। इसमें दर्द पेट के बीचोबीच (मध्यभाग) में मालूम होता है। अक्सर उबकाई आती है। यह ज्यादातर भोजन के समय होता है। कै भी हो सकती है। कै हो जाने पर कुछ आराम मालूम होता है। पीठ का दर्द भी होता है जिसका प्रभाव कटि-प्रदेश पर पड़ता है लेकिन कुछ समय का अन्तर दे-देकर अनियमित रूप से मूत्राशय और ओवरी का दर्द भी हो सकता है। प्रकट रूप से यह शिकायत बहुत अधिक परिश्रम करने से होती जान पड़ती है।

पाचन-प्रणाली में भी अक्सर कुछ गड़बड़ी हो जाती है इसमें अजीर्ण या इसी से सम्बन्ध रखने वाली दूसरी शिकायतें पैदा हो सकती हैं। लेकिन ज्यादातर पाचन-प्रणाली की गड़बड़ का परिणाम पेट में वायु भरने और अजीर्ण होने की शिकायत के रूप में प्रकट होता है इसमें उदर के ऊपरी भाग पर बोझ या दबाव सा पड़ता मालूम होता है। भूख न लगना इसका सबसे स्पष्ट लक्षण हो सकता है। यह शिकायत केवल थोड़ा सा भोजन सुधार और व्यायामोपचार से बड़ी आसानी से दूर की जा सकती है। कब्ज की भी शिकायत, जो इसमें ज्यादातर होती है, दूर कर देनी चाहिए।

गिरी हुई मानसिक स्थिति

आर्तव-क्षय की अवस्था में जहाँ तक मानसिक मुद्रा का सवाल है, ज्यादातर रोगिणी के स्वभाव में अस्थायी परिवर्तन देखने को मिलते हैं, लेकिन बहुत कम मामलों में यह परिवर्तन अपनी पराकाष्ठा पर पहुँचते हैं। आमतौर से गर्म स्वभाव का होजाना, मामूली सी मामूली बात पर भी झल्ला उठना, चिड़चिड़ाना आदि लक्षण देखने को मिलते हैं। इसके अलावा थोड़ी सी मेहनत करने से थक जाना, व्यर्थ की दुःशंकाएं या खतरों की कल्पना करना, प्रफुल्लचित्त रहने के बजाय हर घड़ी उदास रहना, यह सब मानसिक लक्षण प्रकट होते हैं। इस तरह की गिरी हुई मानसिक स्थिति से बचाव का एक मात्र उपाय यही है कि रोगिणी के साथ सहिष्णुता का व्यवहार किया जाय, इस तरह की कोई बात न होने देनी चाहिए जो कि रोगिणी को उत्तेजित करने वाली हो। इसके विपरीत उसे सदैव प्रसन्न रखने, उसका मन बहलाव करने और उसके साथ प्रेमपूर्ण वर्ताव करना चाहिए।

कुछ स्त्रियों की मानसिक अवस्था इससे भी अधिक उग्र हो जाती है। उनमें उदासीनता बहुत बढ़ जाती है।

और कभी-कभी तो उनके मनोभाव ऐसे हो जाते है कि जान पड़ता है जैसे उनके हिस्टीरिया की बीमारी हो गयी है, जिसमें रोगिणी एक क्षण अट्टहास करती और दूसरे क्षण फूट-फूट कर रोने लगती है। उनमें दूसरों के प्रति सन्देह करने की भावना इतनी बढ़ जाती है कि वे छोटी से छोटी बात में भी अपना अपमान समझने लगती हैं। जो स्त्रियाँ पहले से ही किसी जीर्ण स्नायविक रोग—जैसे मृगी य अपस्मार आदि—से पीड़ित हो रही है, उनकी तकलीफ आर्तव-क्षय की अवस्था में अस्थायी तौर से बढ़ जाती है।

स्वाभाविक 'अवस्था परिवर्तन:' उसके परिणाम

आर्तव-क्षय या 'अवस्था बदलना' नारी-जीवन की एक स्वाभाविक अवस्था है। कुछ स्त्रियाँ इस परिवर्तन काल को बड़ी आसानी से, बिना क संकट का सामना किये ही, पार कर जाती हैं। लेकिन यह बात केवलउन्हीं स्त्रियों के बारे कही जा सकती है—लेकिन जिनकी संख्या शायद कम ही होगी—जिन्होंने प्रकृति के नियमों के अनुसार जीवन व्यतीत किया है। आधुनिक सभ्यता के वातावरण में पलने या शहरी जीवन व्यतीत करने वाली बहनों में तो ज्यादातर यह 'अवस्था-परिवर्तन' का समय संकट पूर्ण ही होता है।

यह मैं पहले ही निवेदन कर चुकी हूं कि असंयमित जीवन ही उसकी सारी कठिनाइयों की जड़ है। सचमुच यह बड़े खेद के साथ कहना पड़ता है कि आधुनिक सभ्यता के वातावरण में पलने वाली अधिकांश बहनें इस सम्बन्ध में प्रकृति के नियमों की सर्वथा उपेक्षा हीं करती हैं और उसी की वजह से इसी तरह की व्याधियों का शिकार बनना पड़ता है।

उपचार

आर्तव-क्षय का यही तात्पर्य है कि उसके जीवन के तीसरे और चौथे चरण का मार्ग खुल गया। स्वाभाविक रूप से इस 'परिवर्तन' की अवस्था का स्त्री के स्वास्थ्य पर कोई प्रभाव न पड़ना चाहिये—इससे स्वास्थ्य और सुख में कोई अन्तर न आना चाहिए।

लेकिन खेद के साथ कहना पड़ता है कि बहुत सी बहनें ऐसी होती हैं जो स्वस्थ नहीं रहतीं, उनका स्वास्थ्य हमेशा औसत से नीचे गिरा रहता है। ऐसी बहनों में आर्तव-क्षय होने पर शारीरिक और मानसिक क्रियाओं में तरह तरह की खराबी या गड़बड़ी पैदा हो जाती है। और कभी-कभी तो उनमें कोई खास रोग भी पैदा हो जाता है। ऐसा क्यों हो जाता है?—यह बताने के लिये इस पुस्तक में बताई जा चुकने वाली कुछ बातों की ओर फिर से ध्यान दिलाना होगा। पहले यह कहा जा चुका है कि खान-पान, रहन-सहन, आहार-विहार में अनियमितता होने, जीभ और मन को बे लगाम रखने के कारण जिन बहनों का स्वास्थ्य औसत से गिरा हुआ होता है उनके शरीर से जहरीले पदार्थों को निकाल बाहर करने के लिए प्रकृति मासिक-स्राव का उपयोग एक विशेष साधन के रूप में करती है। यह भी बताया जा चुका है कि मासिक धर्म बन्द हो जाने पर बच्चेदानी में बतौड़ी हो जाती है या मल बाहर निकाल देने के इस अतिरिक्त साधन के न रह जाने के फलस्वरूप उत्पादक अंगों से सम्बन्ध रखने वाली कई तरह की बीमारियाँ पैदा हो जाती है। आर्तव-क्षय की अवस्था में बहुत सी बहनों के तरह तरह के शारीरिक और मानसिक रोग हो जाया करते हैं। लेकिन ऐसा होता सिर्फ इसीलिए है कि उनका स्वास्थ्य हमेशा औसत से गिरा होता है, न कि स्वतः इस 'अवस्था-परिवर्तन' के कारण। इसलिए आर्तव-क्षय के बाद यदि किसी के शरीर में कोई रोग उत्पन्न होता है तो उसका कारण आर्तव क्षय को नहीं बल्कि उस स्त्री की शारीरिक अवस्था को ही समझना चाहिये।

अगर इस आर्तव क्षय की अवस्था का उसके शरीर पर कोई विपरीत प्रभाव पड़ता है तो यह समझना चाहिये कि उसके शरीर में विजातीय द्रव्य या जहरीले पदार्थ भरे हुए हैं, जिन्हें दूर कर के शरीर को साफ, मल-रहित और शुद्ध बना लेने की आवश्यकता है। शरीर से मल का साफ हो जाना बहुत जरूरी है। मानसिक परिश्रम करना बन्द कर देना चाहिए। इसके अलावा और कोई चिकित्सा कराने, औषधियों का प्रयोग करने की कोई आवश्यकता नहीं। हाँ, अगर मानसिक दशा में कोई विशेष फर्क जान पड़े तो किसी अनुभवी चिकित्सक या विशेषज्ञ से अवश्य राय लेलेनी चाहिये और उसी के मुताबिक इलाज करना चाहिये। जहाँ तक प्राकृतिक चिकित्सा का सम्बन्ध है इसका 'उपचार

एमोनिरिया तथा ल्यूकोरिया के लिए बताए गए उपचार के अनुसार चलेगा। इसका वास्तविक उपचार आहार-विहार सम्बन्धी सुधार करना, कब्ज किसी भी हालत में न रहने देना, स्वास्थ्य सम्बन्धी प्राकृतिक नियमों का पालन करना ही है। प्रकृति के बताए नियमों का पालन करके इस तरह की खराबियों से बड़ी आसानी के साथ और उनसे कम समय में छुटकारा पाया जा सकता और जीवन के अन्तिम चरण का सुख और शान्तिपूर्वक आनन्द लिया जा सकता है, क्योंकि यह स्पष्ट है कि जो अवस्था स्त्री-जीवन में सर्वथा स्वाभाविक समझी जाती है उसमें यदि कोई गड़बड़ी उत्पन्न हो तो उसका उपचार भी प्राकृतिक ही होना चाहिए। इसके लिए डाक्टरों की जहरीली या पेटेन्ट दवाइयाँ खानें, या आपरेशन के चक्कर में पड़ने की कोई आवश्यकता नहीं। इस कठिनाई को पार कर जाने के लिए यहाँ पर जो उपाय बताए गए हैं उनको यदि सचाई के साथ काम में लाया जाय तो उससे न केवल अवस्था-परिवर्तन में कोई तकलीफ न होगी बल्कि आगे का जीवन भी सुख-शान्ति पूर्वक व्यतीत होगा।

आर्तव-क्षय नारी जीवन की एक ऐसी अवस्था है जिसमें हर तरह के उत्तेजक पदार्थों का पूरी तौर से बहिष्कार करना चाहिए। चाय, तम्बाकू आदि उत्तेजक वस्तुओं को दूर दूर ही से प्रणाम करना चाहिए। आहार-विहार बहुत ही सन्तुलित और संयमित होना चाहिये। कोई बहुत परिश्रम पूर्ण कार्य करना इस अवस्था में हानिकारक होगा। जहाँ तक सम्भव हो, एकान्त में शान्ति पूर्वक काम करना चाहिए। स्वच्छ, वायु, सेवन, नियमित जीवनक्रम, अर्थात् हर एक काम निश्चित समय पर होना, भूख से कुछ कम भोजन करना, हंसी-खुशी के साथ रहना यही इस अवस्था की सबसे बड़ी आवश्यकताएं हैं।

जहाँ तक सम्भव हो इसका उपचार इस प्रकार का होना चाहिए जो कि स्नायु-प्रणाली तथा रक्त-संचालन प्रणाली के समुचित रीति से संचालित होने में सहायता पहुँचानेवाला हो। आन्तरिक और वाह्य स्वच्छता के सभी उपकरणों का उपयोग करना चाहिए। यदि किसी स्त्री की मानसिक अवस्था बहुत गिरी हुई है तो उसका मानसोपचार किया जाय, उसके मन में यह विश्वास दिला दिया जाय कि वस्तुतः उसे कोई बीमारी नहीं है, उसके जीवन के लिए कोई खतरा नहीं है। उसे साधारण घरेलू काम-काज में मन लगाना और व्यर्थ की चिन्ता न करनी चाहिए।

आर्तव-क्षय की प्रारम्भिक अवस्था में त्वचा, गुर्दे और पक्वाशय की मल-विसर्जक क्रिया को बढ़ाना चाहिए। इसके लिए गुनगुने गरम जल से स्नान, घर्षण-स्नान, और एनिमा का प्रयोग लाभदायक होगा। स्नायुओं की क्रियाशीलता बढ़ाने के लिए कसरत भी निहायत जरूरी है।*

---

*लेखिका की शीघ्र प्रकाशित होने वाली पुस्तक 'नारी आरोग्य दर्शन' से।

जीवन सखा के पंजाबी पाठकों के लिए शुभ-समाचार

जीवन सखा के पंजाबी पाठकों को यह जान कर अत्यन्त हर्ष होगा कि उनकी सेवा के लिये अमृतसर में एक प्राकृतिक चिकित्सालय खोल दिया गया है।

यहां पर हर तरह के पुराने व नये रोगों की चिकित्सा प्राकृतिक ढंग से की जाती है—जैसे दमा, गठिया, बवासीर, पेचिश, अधरंग, नपुंसकता, पुरानी खांसी, मलांत्र-प्रदाह (एपेन्डेसाइटिस) चर्मरोग, इत्यादि। पत्र-व्यवहार द्वारा भी चिकित्सा की जाती है। पत्र व्यवहार कृपया निम्न पते पर करें:—

डा० जसवंत सिंह
नेचर क्योर हेल्थ होम रंजितपुरा
पो०—खालसा कालेज, अमृतसर
(पंजाब)

स्नान और साबुन का प्रयोग

श्री शारदा प्रसाद गुप्त

आधुनिक वातावरण में रहने वाले व्यक्तियों का स्नान साबुन के बिना पूरा हो ही नहीं सकता। उनकी समझ में शरीर को मल तथा दुर्गध से रहित, साफ सुथरा बनाए रखने का सबसे सहज साधन साबुन ही है। फैशन के पुजारियों अथवा बिना सोचे-समझे दूसरों की नकल करने वाले इन व्यक्तियों की यह धारणा कितनी भ्रामक और अनिष्टकारी भी है, इसी का उल्लेख लेखक ने यहाँ पर किया है। साथ ही आपने कुछ ऐसे साधन भी बताए हैं जो स्वास्थ्य एवं सौन्दर्य की वृद्धि के लिए साबुन के मुकाबले में कितने अधिक उपयोगी हो सकते हैं। —स

साबुन पाश्चात्य सभ्यता की एक देन है। पहले न तो साबुन था और न लोग साबुन लगाना ही जानते थे। फिर भी लोग आजकल से अधिक स्वस्थ और सुंदर थे। अब तो स्नान और साबुन का घनिष्ट सम्बन्ध हो गया है। वह स्नान ही कैसा जहाँ साबुन न हो? प्रत्येक स्नानगृह में दो-एक साबुन की बट्टियाँ अवश्य मिलेंगी। हम बाहरी नकल करने में बड़े तेज होते हैं। चाहे अपने देश की प्रथा कितनी भी सुन्दर और लाभप्रद हो, हम बाहरी प्रथा को झट अपना लेते हैं और उसकी नकल करने में तनिक भी नहीं हिचकते। आजकल साबुन लगाकर स्नान करना एक फैशन हो गया है। अमीर तो अमीर ही ठहरे, नये नये शौकीन तबीयत वाले भी जिन्हें भर पेट भोजन नहीं मिलता, हाथ में साबुन की बट्टी लिये हुए स्नान करने जाते हैं और अपने बदन को सफेद फेनयुक्त बनाकर बड़ा गर्व करते हैं।

विचार करने की बात है कि आखिर साबुन को इतना महत्व क्यों दिया जाता है? मेरी राय में इसका केवल यही मुख्य कारण है कि इसके लगाने से कम समय में शरीर स्वच्छ और सुन्दर हो जाता है। लोगों के पास समय तो कम होता है या यों कहिये कि स्नान के लिये वे समय कम देना चाहते हैं और अधिक स्वच्छ तथा सुन्दर बनना चाहते हैं। ठीक भी है। साबुन उनकी इच्छा तत्काल पूरी कर देता है। बाजार में आने-दो आने से लेकर रुपये-दो रुपये का एक बट्टी साबुन मिलता है और अमीर गरीब अपनी हैसियत अनुसार इसको खरीदते हैं। कोई कोई तो कपड़े वाला साबुन भी शरीर में लगा लेते हैं। मूर्ख तो मूर्ख ही ठहरे पर शिक्षितों के बुद्धि पर तरस आता है। वे भूल जाते हैं कि यह त्वचा के लिये कितना हानिकारक होता है। रोमकूपों के भी प्रविष्ठ कर रक्तवाहिनी नालिकाओं को कमजोर बना देता है। त्वचा को खुश्क कर देता है। सिलीकेट और राज़न भी इसी प्रकार हानिकारक सिद्ध हुये हैं। एक सफेद चिकनी परत त्वचा पर जम जाती है जिससे रोम कूप बंद हो जाते हैं और शरीर की बेचैनी बढ़ जाती है। साबुन से स्नान करने के कुछ ही समय बाद बहुत रूखापन मालूम होता है। और जाड़े के दिनों से तो बिना तैल लगाये चैन नहीं पड़ता। यही वस्तुयें साबुन में पड़ती हैं। कोई बढ़िया आकर्षक रंग और सुमधुर सुगन्ध भी उसमें मिला दिया जाता है, जिससे ग्राहक को पसन्द आ जाय।

यह तो व्यापार की बातें हैं जो साबुन को सुन्दर से सुन्दर बनाकर ग्रहकों से मनमाना दाम लिया जाता है, वर्ना तेल, सोड़ा, राजन, और सिलिकेट यहीं इसकी प्रमुख वस्तुयें हैं। कारबोलिक, नीम और दूसरे प्रकार के भी साबुन उचित मात्रा में उक्त वस्तुयें मिलाकर बनाये जाते हैं।

शरीर की गन्दगी दूर करने के लिये ही साबुन का प्रयोग किया जाता है। परन्तु वास्तविक गन्दगी इस प्रकार दूर नहीं होती। स्नान करते समय देह को मोटे खुरदुरे तौलिये से खूब रगड़ना चाहिये। ऐसा करने से शरीर में खून का संचार होता है और रोमकूपों द्वारा गन्दगी बाहर निकल आती है। और इस प्रकार कुछ देर घर्षण स्नान करने से सारी मैल दूर हो जाती है और बदन स्वच्छ और चिकना हो जाता है। साबुन लगाने की कोई आवश्यकता नहीं, यदि इस प्रकार स्नान किया जाय। समय अवश्य कुछ अधिक लगेगा परन्तु इससे मनुष्य सदा निरोग रहेगा, रगड़ कर स्नान करने से रक्त का संचार खूब तेज हो जाता है और ऊपर से जब शीतल जल पड़ता है तो अत्यधिक आनन्द आता है। त्वचा सदा क्रियाशील बनी रहती है और वृद्धावस्था में भी झुर्रियां नहीं पड़तीं।

आजकल बालों को भी साबुन से धोने का रिवाज है। यही कारण है कि अकाल ही हमारे बाल पक कर गिर जाते हैं, बालों की जड़ें कमजोर पड़ जाती हैं। स्त्रियों को बाल बढ़ाने का विशेष चाव होता है पर वे साबुन का प्रयोग कर अपना बाल असमय में ही खो बैठती हैं! सिर में लगाने के लिये आंवला, बेसन, दही, नींबू और मिट्टी (काली) बड़े लाभप्रद सिद्ध हुई हैं। इनसे बाल मुलायम रहते हैं। शीघ्र सफेद नहीं होते और जड़ें मज़बूत बनी रहती है। सिर में कोई रोग नहीं होता। विचार करें कि बिना पैसे की ऐसी अमूल्य वस्तुयें त्याग कर हम अपना धन साबुन में वृथा गँवाते हैं, क्या यह उचित है? बालों को अधिक काले, नर्म और मज़बूत बनाने के लिये आंवला चूर्ण और नींबू का रस मिला कर कुछ देर सिर में भली भाँति रगड़ कर स्नान कर लेना चाहिये। इसी प्रकार नींबू के रस और बेर के पत्तों के रस को मिलाकर बालों में रगड़ने से गंजे स्थान पर भी बाल उग आते हैं। दही लगाने से बालों की जड़ें फटने नहीं पातीं। बथुये का साग उबाल कर बालों में लगाने और उसके पानी से धोने से बाल बेहद नर्म होते हैं। तिल के फूल और गाजर को पीसकर बालों में रगड़ने से बाल लम्बे तथा सघन होते हैं? पाठक एक बार इनकी परीक्षा कर लाभ उठावें और तब उन्हें ज्ञात होगा कि इन बेपैसे की वस्तुओं का कितना मूल्य है? प्रकृति ने इन सब चीजों को हमारे लाभ के लिये पैदा किया है पर अज्ञान वश हम उनके प्रयोग से वंचित रह जाते हैं।

घर्षण स्नान का महत्व शब्दों में नहीं लिखा जा सकता। आप स्वयं कर देखें और तब आप को इसके आनन्द का पता लगेगा और फिर आप कभी साबुन लगाना पसंद नहीं करेंगे। उनके लिये, जो अधिक परिश्रम नहीं करते और न करना चाहते हैं, यह स्नान बड़ा गुणकारी है। कुर्सी पर बैठ कर काम करने वाले बाबुओं और सेठ-साहुकारों के लिए जिन्हें टहलने या थोड़ी कसरत करने का भी अवकाश नहीं मिलता, यह स्नान बड़ा लाभदायक सिद्ध हुआ है। ऐसा करने से उनके शिथिल अंगों में रक्त का संचार हो जाता है और शरीर की बढ़ी हुई गर्मी भी शान्त हो जाती है। मन प्रसन्न रहता है और दिन भर मानसिक परिश्रम करने पर भी चित्त क्लान्त नहीं होता। स्नान करने वाले जल में कभी-कभी एक दो नींबू का रस मिलां लेना चाहिये। इससे शरीर का मैल छूट कर गिर जाता है और त्वचा मुलायम बनी रहती है। साबुन लगाने की आदत भी छूट जाती है। इन साधारण चीजों में ऐसे गुण विद्यमान हैं, यह शायद हमें मालूम नहीं था या यों कहिये कि कोई मालूम कराने वाला नहीं था। पर अब समय बदलता जा रहा है और लोग प्राकृतिक नियमों को समझने लगे हैं और उनके प्रति श्रद्धा बढ़ती जा रही है। हमारी भी हार्दिक इच्छा है कि इस प्रणाली का सर्वत्र प्रसाद हो और आज दुखी भारतवासी अपना स्वास्थ्य कुछ सुधार सकें!

शास्त्रीय मालिश

डा० विट्ठलदास मोदी, संचालक, आरोग्य मन्दिर, गोरखपुर

पिछले अंक में हमने बाबा राघव दास का 'शास्त्रीय मालिश' शीर्षक एक लेख प्रकाशित किया था। मोदी जी ने प्रस्तुत लेख उसी के उत्तर में लिखा है। इसमें आपने मालिश के महत्त्व का सही माने में स्वीकार करते हुए स्वास्थ्य एवं अरोग्य लाभ के लिए भोजन-सुधार के महत्त्व पर भी समान रूप से जोर दिया है। इस प्रकार आपका यह लेख एक निष्पक्ष समालोचना के ही रूप में है। आशा है, हमारे पाठक इस लेख को भी मनोयोगपूर्वक पढ़ेंगे। —सं०

श्री बाबा राघवदासजी के 'शास्त्रीय मालिश' शीर्षक लेख को मैंने ध्यानपूर्वक पढ़ा है। आरोग्य में मंदिर मेरे जो कई सहकारी यहाँ के रोगियों को मालिश देते हैं उनमें से एक युवक को बाबाजी की मालिश का भी व्यावहारिक ज्ञान है। यह ज्ञान उन्होंने गोरखपुर जेल में रहते बाबाजी से प्राप्त किया था। उनसे मैंनें यह मालिश उसका प्रभाव समझने के लिए कई बार ली है। मेरी दृष्टि से बाबाजी की मालिश-पद्धति अधूरी है और बाबाजी ने अपने लेख में कई अर्घ सत्य बातें कही हैं। अतः उनपर प्रकाश डालना आवश्यक है।

जहाँ तक मालिश के साधारण सिद्धांत का सम्बन्ध है उनका यह कहना सही है कि मालिश शरीर के चाहे जिस अंग की जाय मालिश में हस्त परिचालन इस प्रकार होना चाहिये कि रक्त हृदय की ओर जाय और सचमुच मालिश का सबसे बड़ा काम रक्त को हृदयं की ओर गतिमान करना ही है। इससे वह फेफड़ों में जाकर शीघ्रता से स्वच्छ हो पाता है, उस की गन्दगी दूर होती है। लाली बढ़ती है है और रक्त शरीर की थकान शीघ्रता से दूर करने में समर्थ होता है। यह कार्य जितनी अच्छी तरह हथेली एवं अँगुलियों को मिलाकर शरीर को रगड़ने से होता है उतना अन्य किसी प्रकार नहीं और बाबाजी अपनी मालिश में इस क्रिया को छोड़ देते हैं।

मालिश में हस्त-परिचालन की क्रिया को मोटे तौर से सात भागों में विभक्त किया जा सकता है :—

१—छूना
२—रगड़ना
३—थपथपाना
४—गूँधना
५—चुटकी भरना
६—कंपन
७—जोड़ों को हिलाना

इसमें 'छूना' एवं 'रगड़ना' ही मुख्य हैं जिनमें हथेली का उपयोग होता है। अन्य क्रियाओं एवं उनकी बीसियों शाखा प्रशाखाओं में भी हथेली का थोड़ा बहुत उपयोग करना ही पड़ता है। हाँ, साधारणतया अखाड़े में प्रचलित मालिश में, जहाँ केवल रगड़ना ही रहता है, सारी क्रिया में शुरू से आखीर तक हथेली का उपयोग होता है वहाँ शास्त्रीय-पद्धति में दबाव एवं रगड़ने की उतनी प्रधानता न होने के कारण हथेली पर ही सारी मालिश निर्भर नहीं है। सचमुच अंगुलियों की थिरकन त्वचा को जितना आनन्द देती है उतना हाथ का दूसरा उपयोग नहीं, पर रगड़ना जितना तेजी से रक्त को हृदय की ओर भेजता है उतनी तेजी से दूसरी क्रिया नहीं

भेज पाती। रगड़ने से विशेष गरमी तभी उत्पन्न होती है जब एक ही जगह पर बार-बार रगड़ा जाता है। चतुर मालिश करनेवाले का हाथ रगड़ते समय एक जगह पर फिर जाने के बाद जिस अंग को वह रगड़ रहा है उस सारे अंग पर फिर जाने के बाद ही फिर वहाँ पहुँचता है। रगड़ने में मालिश लेनेवाले के बलाबल का भी ध्यान रखना पड़ता है। काफी मजबूत लोग ही इतने दबाव से मालिश ले पाते हैं जिससे गरमी उत्पन्न हो जाय। यदि गरमी उत्पन्न हो भी तो वह मालिश का एक आवश्यक कार्य पूरा करती है। गर्मी के कारण रक्त-नलिकायें फैलती है जिससे शरीर के अन्दर का रक्त उन्हें भरने के लिए त्वचा की ओर गतिमान होता है, थपथपाना इन्हीं रक्त नलिकाओं को संकुचित करता है जिससे रक्त फिर अन्दर की ओर तेज़ी से दौड़ता है। इस प्रकार जब हम रक्त को हृदय की ओर भेजने का प्रयास करते हैं तब यह क्रिया त्वचा के निकट के रक्त तक ही सीमित नहीं रहती बल्कि सारे शरीर के रक्त पर इसका प्रभाव पड़ता है।

मालिश का जो माहात्म्य बाबाजी ने बताया है उसपर भी कुछ कहना आवश्यक है। मालिश से ढीली एवं स्थानच्युत आँतें, आमाशय एवं मूत्राशय को ठीक जगह बैठाया जा सकता है। चलते समय के अशुद्ध अंग परिचालन को दुरुस्त किया जा सकता है, चेहरे की झुर्रियों को दूर कर चेहरा वर्षों अधिक नया बनाया जा सकता है पर इन सब में भी स्थायी लाभ के लिए मालिश के साथ विशेष तरह के व्यायाम की जरूरत होती है। वस्तुतः मालिश व्यायाम का एक दूसरा नाम है। जहा सक्रिय व्यायाम में स्वयं सब कुछ करना पड़ता वहाँ मालिश निष्क्रिय व्यायाम है। इसमें मालिश करनेवाले के हस्त-परिचालन के विरोध-स्वरूप शरीर में वही व्यापार होता है जो कसरत का स्वाभाविक फल है। इससे अधिक मालिश का महत्त्व नहीं है। हाँ, कभी कभी मालिश के द्वारा शरीर के ऐसे अंगों को भी सचेत किया जा सकता है एवं असर डाला जा सकता है जो कसरत द्वारा संभव नहीं है।

मालिश द्वारा नींद बुलाना बहुत महत्त्वपूर्ण नहीं है वस्तुतः यह मालिश का स्वाभाविक फल है। माता अपने बच्चे को मालिश (थपकी) द्वारा ही तो सुलाती है। शरीरपर हाथ का कुछ समय तक लगातार किसी प्रकार भी हलका परिचालन नींद बुलाने में समर्थ है। त्वचा को हलके-हलके छूने से, यदि मालिश करानेवाले के प्रति विरोधी भाव नहीं है अथवा वह मालिश में अंगुलियों की गतिविधि की ओर अधिक चैतन्य नहीं है तो नाड़ी-मंडल में शैथिल्य उत्पन्न होता ही है जो स्वयं निद्रा का पूर्व रूप तंद्रा है।

मालिश के बल पर बाबाजी का गाँधीजी को सवा सौ वर्ष जिलाने की सोचना भावुकता मात्र है। गाँधीजी के अच्छे स्वास्थ्य एवं लंबी जिन्दगी पाने की इच्छा का रहस्य है उनका सन्तुलित भोजन, नियमित व्यायाम, निद्रा एवं विचारों पर अधिकार। मालिश उनके व्यायाम का पूरक मात्र है। किसी भी जवान को जो पूरी कसरत कर सकता है मालिश की जरूरत नहीं है। गाँधी जी ने अधिक उम्र हो जाने के बाद ही मालिश को अपनाया है। जब वे पूरा टहल पाते थे मालिश का उपयोग नहीं करते थे। आज मालिश के समान लाभ देने वाले गरम जल के नहान का भी उपयोग गांधीजी नित्य करते हैं. वे जितनी देर मालिश लेते हैं प्रायः उतनी ही देर शरीर ताप के समान गरम पानी से भरे टब में लेटते भी हैं। गरम पानी का यह स्नान शरीर में वह शिथिलता उत्पन्न करता है जो योगियों के लिए भी दुर्लभ है। जहाँ मालिश से मांस-पेशियों को कसरत का लाभ मिलता है वहाँ इस गरम नहान द्वारा ही नाड़ी-मंडल (स्नायु-जाल) को बल मिलता है, जिसका सशक्त रहना इस मशीनयुग के

नागरिक जीवन के लिए अत्यावश्यक है।

उपवास एवं मालिश का निश्चय ही बहुत बड़ा संबंध है। मैं आरोग्य मंदिर में अक्सर रोगियों को दो-तीन सप्ताह का उपवास कराता हूँ। देखता हूँ कि मालिश द्वारा उन्हें शक्ति मिलती है। अन्य बड़े शहरों में ऐसे बहुत से मालिश करने वाले हैं जो हजार-आठ सौ रुपये केवल मालिश द्वारा प्रति मास उपार्जित करते हैं। वे रोज हजारों की खोई कमाई करनेवाले सट्टेवालों को नित्य सौ-डेढ़-सौ रुपया मासिक लेकर उनके घर जाकर शरीर को आराम देनेवाली मालिश दे आते हैं और अपनी दूकान पर हर रोग मालिश द्वारा दवा करने का साइनबोर्ड लगाते हैं। जो अधिक चतुर हैं वे अब इतना ही पैसा लेकर सप्ताह में केवल तीन बार मालिश देते हैं तथा चार दिन टहलने की राय देते हैं। इन मालिश करने वालों को भोजन संबंधी अच्छा ज्ञान रहता है। जब इनके पास रोगी आता है तब वे मालिश करते वक्त रोगी से भोजन के विषय में पूछते हैं और उनके रोग में लाभ करनेवाले भोजन की इस भाँति सिफारिश करते हैं कि रोगी को ज्ञान ही नहीं होता कि उसे भोजन के रूप में दवा दी जा रही है। अतः भोजन के परिवर्तन से होने वाले लाभ को भी वे मालिश से मिला ही लाभ समझते हैं। ये मालिश करने वाले गठिया, कब्ज, रक्ताभाव, दुर्बलता आदि कुछ गिने चुने रोगों के ही रोगी लेते हैं। यदि इन रोगियों को मालिश और भोजन सुधार के साथ कुछ अन्य प्रयोग कराये जायँ, जैसे गठिया के रोगी को वाष्प-स्नान, कब्ज के रोगी को एनिमा का प्रयोग रक्ताभाव के रोगी को तीव्र ठंडा पानी के क्षणिक स्नान द्वारा रक्त के लाल कणों को बढ़ाने के बाद शरीर की हलकी मालिश, दुबले को छोटे-छोटे उपवास से तो लाभ शीघ्र मिल सकता है पर ऐसी अवस्था में, रोगी की आस्था मालिश पर से चली जायगी और मालिश करनेवाले की गोटी नहीं जम सकेगी। इसी प्रकार यदि बाबाजी दरियाफ्त करें तो श्री एबलेकर का कान बहना अच्छा होने में श्री एबलेकर के कान की मालिश के साथ साथ उनके कान में भोजन सुधार की बात डालने की बात जरूर मिलेगी। कान बहना अभावजन्य रोग है। यह चीनी, छंटे चावल, चोकर रहित आटे के अधिक प्रयोग एवं विटामिन एवं प्राकृतिक लवण प्रदाता फल-तरकारियों के अल्प उपयोग से होता है। जब यह चीज उलटी कर दी जायगी अर्थात् भोजन में फल तरकारी की मात्रा बढ़ा दी जायगी तब इस रोग का एक साल के अंदर चला जाना कठिन नहीं है। टांसिल अच्छा होने, तिल्ली ठीक होने तथा नींद आनेमें भोजन-परिवर्तनके साथ साथ शरीर में रक्त के ठीक तरह से संचालित होने का भी प्रभाव पड़ता है। बरनर मैकफेडनने लिखा है "अधिकतर रोग तो शरीर के किसी अंगमें रक्त के इकट्ठा हो जाने या कम हो जाने से ही होते हैं"। और रक्त की इस गड़बड़ी को दूर करने में सेक, ठंडे गरम पानी का स्नान, वायु तथा प्रकाश स्नान, एवं मालिश समान रूप से उपयोगी हैं।

मेरा आशय मालिश के महत्व को घटाना नहीं वरन् उसकी सीमा निर्धारित करना है। अपने अनुभव के आधार पर मैं कह सकता हूँ कि जहां स्वस्थ शरीर को अधिक स्वस्थ बनाने में मालिश बहुत बड़ी सहायक सिद्ध होती है वहां रोग को आराम देने में यह बेजोड़ है, पर इसे सर्व रोग हारी समझना गलत है।

सूचना

जीवन सखा १॥) में पुस्तकालयों को रियायती मूल्य पर देने की जो विज्ञप्ति हम अभी तक प्रकाशित कर रहे थे, उसकी अवधि अब समाप्त हो गई है, अस्तु अब जीवन-सखा ३) में ही ग्राहकों को साल भर तक उपलब्ध हो सकेगा।

—व्यवस्थापक

डा० बेनिडिक्ट लुस्ट

डा० जेसी मर्सर गेहमन

डा० बेनिडिक्ट लुस्ट एन० डी०, एम० डी० प्राकृतिक-चिकित्सा के उन महारथियों में थे जिनका नाम संसार में अमर है। वह फादरनीप के प्रिय शिष्यों में थे। नीप के ही आदेशानुसार उन्होंने अमेरिका में आकर जल-चिकित्सा प्रणाली का प्रचार एवं प्रसार किया था। अभी पिछले साल ५ सितम्बर उनकी को ऐसी अवस्था में मृत्यु हो गई जिसे विधि-विडम्बना ही कहा जा सकता है। वह 'सल्फा'-औषधियों के कट्टर दुश्मन थे—और इन्ही सल्फा-औषधियों ने उनका प्राणान्त करके 'अपने बैरी से बदला चुकाया। इस छोटे से लेख में उन्हीं के जीवन ा इतवृत्त आपको संक्षेप में मिलेगा। —सं०

डाक्टर बेनिडिक्ट लुस्ट का जन्म मिचेलबर्ग, बेडेन, जर्मनी, में ३ फरवरी १८७२ ई० को हुआ था। उनके ७ भाई और एक बहिन थी। वह बड़े अध्ययनशील थे। अत्यधिक परिश्रम करने से उनका शरीर युवावस्था में ही इतना कमजोर और शक्ति क्षीण हो गया कि उनके जीवन की आशा ही न रह गयी। डाक्टर घोषित कर चुके थे कि उनका एक फेफड़ा खराब हो गया है। चारों ओर से निराश हो जाने पर अन्ततोगत्वा वह रेवरेण्ड सेबेस्टियन नीप की शरण में पहुँचे।

फादरनीय के स्वास्थ्यगृह में रहकर उन्होंने अपना खोया हुआ स्वास्थ्य पुनः प्राप्त कर लिया। १८९२ में, जब वह २० वर्ष के युवक थे, फाद रनीप ने 'उन्हें अमेरिका जाकर जल-चिकित्सा का सन्देश सुनाने और सारे संसार में इसका प्रचार एवं प्रसार करने के लिए चुना। प्राकृतिक-चिकित्सा के उस महान अग्रणी से अनुप्राणित होकर वह अमेरिका पहुँचे, जहाँ पर उन्होंने फादरनीप की जल-चिकित्सा पद्धति का प्रचार किया। अमेरिका में उन्होंने 'नीप वाटर क्योर' नामक एक मासिक-पत्र निकाला, न्यूयार्क में एक स्कूल तथा कालेज स्थापित किया। वह मासिक-पत्र बाद में "नेचुरोपैथ" के नाम से प्रकाशित होने लगा। बाद में उन्होंने एक दूसरा पत्र "नेचर्स पाथ" ('प्रकृति का मार्ग') भी प्रकाशित किया। वह स्कूल 'अमेरिकन स्कूल आफ नेचुरोपैथी' और वह अस्पताल अब सुप्रसिद्ध 'यंगबार्न्स' अस्पताल के रूप में परिणत हो गया है। उनका एक अस्पताल बटलर, न्यू जेरसी, में और दूसरा टैंजरीन, फ्लोरिडा, में है।

१८९६ में यूरोप की विस्तृत यात्रा और प्राकृतिक-चिकित्सा की समस्त पद्धतियों की छानबीन कर चुकने के उपरान्त उन्होंने प्राकृतिक-चिकित्सा को प्रतिष्ठित किया। 'अमेरिकन स्कूल आफ नेचरोपैथी' की स्थापना करने के अलावा उन्होंने 'अमेरिकन स्कूल आफ चीरोप्रैक्टटिक' की भी स्थापना की। इन दोनों संस्थाओं में शिक्षा प्राप्त करके निकलने वाले ग्रेजुयेटों की संख्या हजारों में होगी, जो आज संसार के हर कोने में चिकित्सा-कार्य कर रहे हैं। डाक्टर लुस्ट ने अंग्रेजी तथा अन्य कई विदेशी भाषाओं में बहुत सी पुस्तकें भी प्रकाशित कीं।

डाक्टर लुस्ट न्यूयार्क के 'यूनीवर्सल आस्टियोपैथिक कालेज' के ग्रेजुएट थे। उन्होंने डाक्टरी शिक्षा न्यूयार्क के होमियोपैथिक मेडिकल कालेज में प्राप्त की थी। उस कालेज के एक बिभाग के प्रधान अक्सर कहा करते थे कि लुस्ट सरीखा जैसा प्रतिभाशाली छात्र उस कालेज में उन्हें पहले कभी नहीं देखने को मिला था।

डाक्टर लुस्ट १९१३ में न्यूयार्क एलेक्ट्रिक मेडिकल कालेज के ग्रेजुएट होकर निकले और उसके कोई साल भर बाद फ्लोरिया में डाक्टरी करने का उन्हें लाइसेन्स प्राप्त होगया। डा० लुस्ट एक मसीहा थे। उनका साहस और

संकल्प अदम्य था। उनमें एक वास्तविक अग्रणी की-सी कार्य-निष्ठा और संलग्नता थी।

यह उनके अदम्य साहस तथा दृढ़ निष्ठा का ही परिणाम था जो अमेरिका में प्राकृतिक-चिकित्सा प्रतिष्ठित हो सकी। उन्हीं के व्यक्तिगत प्रयत्न और त्याग से, शारीरिक तथा आर्थिक दोनों दृष्टियों से, अमेरिका में प्राकृतिक-चिकित्सा को जीवित रखने तथा प्राकृतिक-चिकित्सा की शिक्षा देने के लिये अमेरिका में स्थापित स्कूल कार्य-संलग्न और मासिक-पत्र प्रकाशित होते रहे। उन्होंने इस कार्य में वस्तुतः २,००,००० डालर लगा दिये थे, और अपने घरेलू जीवन को प्राकृतिक-चिकित्सा की सेवा में समर्पित कर दिया था।

विवाह होने के समय से लेकर अपनी पत्नी डा० लूसी के मरने तक वह देश में सर्वत्र प्राकृतिक चिकित्सा का संगठन कार्य करते रहे। उधर उनकी पत्नी भी उन संस्थाओं में कार्य करती रहीं। और आज जहाँ कहीं भी कानूनी सुविधाएँ प्राप्त हैं, वहाँ पर अपने सतत प्रयत्न से प्राकृतिक-चिकित्सा के लिये जमीन तैयार करना, बीज आरोपित करना उसमें उगने वाले पौधे की देखभाल करना, यह सब मुख्यतया केवल एक व्यक्ति के अनवरत प्रयत्नों का परिणाम था और वह व्यक्ति थे—एक मात्र डा० बेनिडिक्ट लुस्ट और अनुरागमयी सहधर्मिणी डा०लूसी।

कुछ लोगों ने डा० लुस्ट को गलत समझा है, क्योंकि वे दरअसल डा० लुस्ट को जानते ही नहीं। वह एक महान आत्मा थे। सारे संसार में प्राकृतिक-चिकित्सा आन्दोलन को आगे बढ़ाने के लिए उनकी आत्मा प्रकाश स्तम्भ की भांति युग-युगत्वक पथ-प्रदर्शन करती रहेगी। उनका केवल यही खयाल नहीं था कि प्राकृतिक-चिकित्सा प्रणाली को अपना कर चिकित्सक लोग अच्छी आमदनी कर सकते हैं। बल्कि वह समझते थे कि प्राकृतिक चिकित्सा-प्रणाली में वह महान शक्ति है जो अमीर-गरीब सभी मनुष्य के लिये समान रूप से रोग-व्याधियों से छुटकारा दिला सकती है।

संयुक्त राज्य अमेरिका में प्राकृतिक-चिकित्सा के प्रवर्तक डा० बेनिडिक्ट का बुधवार ५ सितम्बर १९४५ को देहान्त न्यूजेरसी के उसी अस्पताल में हुआ जिसकी उन्होंने कोई ५० वर्ष पूर्व स्थापना की थी। मृत्यु के कोई दो साल पहले उनकी फ्लोरिडा की संस्था में आग लग गयी जिसमें पड़कर वे स्वयं भी आहत हो गये। बेहोशी की हालत में उन पर सल्फा-औषधियों का प्रयोग किया गया जिसके कारण उनकी अवस्था इतनी अधिक खराब हो गयी कि वह उनकी मृत्यु का कारण बनी। जिस समय उन पर इन जहरीली दवाओं का, जब कि वह बेहोश पड़े थे, प्रयोग किया गया उस समय वह असहाय अवस्था में और चेतना-शून्य थे, उस समय उनके पास ऐसा कोई भी व्यक्ति मौजूद नहीं था जो कि यह जानता रहा हो कि वे सल्फा-औषधियों के कितने घोर विरोधी थे।

डा० लुस्ट न्यूजेरसी के प्रमुख नागरिकों वे में थे और मानव-जाति के उपकारक की हैसियत से सचमुच वह संसार के एक महान व्यक्ति थे। वह विश्व-नागरिक थे।

वह दक्षिणी अफ्रीका में भी उतने ही प्रसिद्ध थे जितने कि न्यूयार्क में। उनके संसार से कूच कर जाने पर दक्षिणी अमरीका, भारत, इङ्गलैण्ड, और जर्मनी में भी संयुक्तराज्य अमेरिका की भांति व्यापक रूप से शोक मनाया गया है। प्राकृतिक-चिकित्सा के इतिहास में बेनिडिक्ट लुस्ट का नाम अमर हो गया है।

बच्चों का मिश्रित भोजन

श्री महेन्द्रनाथ, पाण्डेय, आयुर्वेद-विशारद

जब बच्चे ६ महीने के होते हैं तब उनके दांत निकलने प्रायः शुरू होते हैं। यह इस बात की पहचान है कि अब बच्चों में पाचक रस बनने लग गया है। परन्तु गलती से लोग इसी समय बच्चों को दाल या लस्सी या चावल आदि चटाने लगते हैं। यह बच्चों के भोजन शुरू करने का समय नहीं है आगे के दो दांत निकलने का मतलब केवल इतना ही है कि बच्चा कुछ दाँत से पकड़ सकता है। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि वह कोई चीज चबा सकता है।

जब बच्चे को चबाने वाला दांत निकल आवे तब उसे कोई चीज मुलायम ऐसी दी जा सकती है जो आसानी से चबाई जा सके। इसके पहले कुछ देना हमारी राय में अच्छा नहीं है।

पहले बच्चों को नमकीन दलिया, कुछ उबली हुई तरकारियाँ आदि देना अच्छा है। सन्तरे, गाजर आदि का रस भी थोड़ा थोड़ा देना चाहिए।

तीन वर्ष की अवस्था में बच्चों को प्रायः सभी दांत निकल आते हैं। उस समय ये मामूली मुलायम चीजें चबा लेते हैं इस अवस्था में बच्चों को कुतुर कर खाने वाली चीजें मिलनी चाहिए जिसमें उनके दाँतों को थोड़ी मेहनत भी पड़े! यदि कुछ चबाने वाली चीजे इस अवस्था में न दी जाय तो दांतों के कमजोर हो जाने का डर रहता है।

कुछ ऐलोपैथ डाक्टरों की राय है कि इस उम्र में बच्चों को मांस का टुकड़ा दिया जा सकता है जिसे वे दाँतों से नोच सकें। हमारी राय में ५ वर्ष की उम्र तक बच्चों को मांस नहीं देना चाहिए। मांस के पचने में अधिक पित्त रस की आवश्यकता पड़ती है। छोटे बच्चों में इतना पित्त नही बनता कि वे मांस पचा सकें। मांस के पचाने में थाइराइड ग्लैंड से निकले हुए रस की आवश्यकता पड़ती है। पाँच वर्ष की अवस्था तक यह ग्रन्थि पूर्ण नहीं हो पाती और उससे रस भी नहीं निकलता इस कारण मांस का पाचन ठीक तरह से नहीं हो पाता।

यदि बच्चों को पूर्ण तन्दुरुस्त रखना हो तो ५ वर्ष की अवस्था तक दूध, रस दार फल जैसे संतरे, अंगूर, सूखे फल जैसे किशमिश, मुनक्के, काट कर खाये जा सकने वाले फल जैसे सेब, नाशपाती, नाख, केले आदि पर बालकों को रखना चाहिए। थोड़ी तरकारियाँ भी देनी चाहिए।

बच्चों को तन्दुरुस्त रखने की इच्छा रखने वाले माता-पित्ता को चाहिए कि वे अपने बच्चों का मुख्य भोजन दूध और फल रखें। यदि अन्न देना ही हो तो २४ घन्टे में एक बार थोड़ा-सा हलका भोजन दे सकते हैं। किन्तु इस बात को भूलना न चाहिए कि पाँच वर्ष की अवस्था तक अन्न न देना ही अच्छा है। अन्न खाने से बच्चों का पेट निकल आता है, पाचन-शक्ति पर अनावश्यक जोर पड़ता है जिसके फल-स्वरूप बच्चे कमजोर हो जाते हैं। कभी-कभी यकृत-विकार हो जाता है। बच्चों को चीनी या गुड़ हरगिज न दिया जाय। यह तो बच्चों को विष की तरह मार डालता है। यदि कुछ मीठा खिलाना ही हो तो दूध में थोड़ा मुनक्का डाल कर उसे मीठा कर लेना चाहिए अथवा थोड़ा असली शहद देने में कोई हर्ज नहीं है किन्तु जितने मीठे की आवश्यकता है उतना मीठा दूध के अन्दर मोजूद रहता है। पाँच वर्ष तक के बच्चों को आलू, शकरकन्द आदि कन्दशाक और दाल न देना अच्छा है। दाल की प्रोटीन देर में पचती है और बच्चों के हाजमे को बिगाड़ती है। दाल के पचाने में भी पाचक रस की बहुत आवश्यकता रहती है।

बच्चे का सर्वश्रेष्ठ आहार दूध ही है। माँ का दूध सर्वोत्तम होता है। यदि माँ के दूध से पेट न भरे तो ऊपर का दूध दिया जाना चाहिए। यदि ऊपर का दूध देना हो तो गाय का शुद्ध दूध देना चाहिए उसमें कुछ जल मिलाकर २-३ दाने मुनक्के डाल कर गरम कर लेना चाहिए फिर मलकर छान लेना चाहिए और पिलना चाहिए। जब बच्चा दो-तीन मास से ऊपर का हो जाय तो उसके थोड़ा फलों का रस या पालक अथवा टमाटर का रस पिलाना चाहिए।

जिस प्रकार विटामिनों और खनिज लवणों की आवश्यकता बड़े लोगों को पड़ती है उसी प्रकार बच्चों के उचित बढ़ती और स्वास्थ्य के लिए इनका मिलना आवश्यक है। माता के दूध और गाय के दूध में ये चीजें होती हैं किन्तु शाक-तरकारियों के रस और फलों के रस के इस्तेमाल से इनकी मात्रा बढ़ाई जा सकती है। टमाटर और गाजर का रस भी बड़ा लाभदायक है। कुछ लोगों का ख्याल है कि दो तीन महीने बाद बच्चों को सन्तरे का रस देना चाहिए और पाँचवें महीने से शाक-तरकारियों का रस दिया जाना चाहिए। टमाटर का रस प्रत्येक दृष्टि से बहुत ही उपयोग हैं है। एक डाक्टर साहब ने अपना अनुभव लिखते समय लिखा है कि बच्चों के भोजन में पालक का रस बढ़ा देने से उनके पोषण में बड़ा लाभ पहुँचता है। एक दूसरे डाक्टर लिखते हैं कि जब बच्चों को भोजन में गाजर या पालक का रस बढ़ा दिया जाता है तो दूध का कैलशियम खूब अच्छी तरह पचता है।

शाक का रस सावधानी से निकलना चाहिए। शाक को अच्छी तरह गरम पानी से धो लेना चाहिए, उसके बाद कुचल कर कच्चा रस निकाल लेना चाहिए। यदि शाक को खौलते जल से धो लिया जाय तो और अच्छा। पाँच मिनट तक शाक को उबाल लिया जाय तो उसके सब कीटाणु मर जायेंगे और विटामिन भी नष्ट नहीं होगा। फिर उसका रस निचोड़ कर देना चाहिए। तीन महीने के बच्चे को टमाटर या सन्तरे का रस छोटा एक चम्मच एक बार देना चाहिए। चार मास के बालक को दो चम्मच और ५ मास के बालक को तीन चम्मच देना चाहिए। इस अवस्था के बालक को गाजर या पालक का रस एक चम्मच खास तौर से देना चाहिए। रस निकाल कर मलमल के कपड़े से छान लेना चाहिए और सबेरे दूध पिलाने के दो घंटे बाद पिलाना चाहिए। इसी प्रकार अवस्थानुसार रस बढ़ाते जाना चाहिए।

जब बच्चा ६ मास का हो जाता है तभी लोग अपने साथ बैठाकर कुछ दाल या अन्न देने लगते हैं यह उचित नहीं है। बच्चों को अधिकतर फल और दूध पर ही रखना चाहिए। यदि ५ वर्ष की अवस्था तक अन्न न दिया जाय तो बच्चा पूर्ण स्वस्थ रहेगा। यदि फल महँगे पड़े तो उनके स्थान पर शाक-तरकारियों का प्रयोग किया जाय। जब बच्चा बड़ा हो जाय और दाँतों से कुतर कर खाने लगे तो टमाटर या नासपातीं खाने को दिया जा सकता है। यदि भोजन देना ही हो तो उनको हलका और सुपाच्य भोजन देना चाहिए। इसके लिए दलिया बना कर देना चाहिए या चोकर की हलकी रोटी देनी चाहिए। जब बच्चा कुछ बड़ा हो जाय अर्थात् साल डेढ़ साल का, तब शाक और तरकारियों के अतिरिक्त उबाल कर भी शाक-तरकारी दे सकते हैं।

पाँच वर्ष के बाद का भोजन

यह अवस्था बढ़ने की है। बच्चों के ठीक-ठीक बढ़ने के लिए उन्हें यथेष्ट प्रोटीन मिलनी चाहिए। प्रोटीन सुपच और उत्तम दर्जे की हो। जितनी प्रोटीन बच्चा पचा सके उतनी प्रोटीन उसे मिलनी चाहिए। ९ वर्ष तक की अवस्था के बालकों को ६ माशे शुद्ध प्रोटीन की जरूरत पड़ती है। अखरोट, नारियल आदि मेवे देर में पचते हैं। इनके खाने का समय जाड़ा है। इन मेवों को खूब चबा कर खाना चाहिए। जौ, गेहूँ, मकई की रोटी, तीन चार दिन के बाद कभी-कभी चावल, मूंग की दाल थोड़ी-सी देने में हर्ज नहीं है। यदि बच्चों को दाल न दी जाय तो अच्छा है। बच्चों को चार बार खाना देना चाहिए। तीन बार दूध और फल और एक बार फलदार तरकारियां, पत्तेवाले शाक और रोटी आदि। दोपहर को दिन में एक बार रोटी, सब्ज़ी और सुबह ७-८ बजे, शाम को ३-४ बजे और रात को ७-८ बजे दूध और फल दिया जाय। फलों में कोई खास नियम न रखना चाहिए। मौसिमी ताजे फल और सूखे मेवे, जो हलके हों, देने चाहिए। बादाम और अखरोट देर में पचते हैं। बच्चों को शुरू से ही खूब चबा-चबा कर खाने की आदत डालनी चाहिए। जितनी ही अच्छी तरह भोजन चबाया जाता है उतनी अच्छी तरह और जल्दी वह पचता है, खून बढ़ाता है और तन्दुरुस्ती लाता है। तन्दुरुस्त रहने के जितने नियम हैं उनमें खूब चबा-चबा कर खाना एक खास नियम है। इसकी आदत डालनी चाहिए। ९ से १२ वर्ष तक के बच्चों को २० माशे प्रोटीन चाहिए।

जिस प्रकार बच्चे को माँस या प्रोटीन वाले पदार्थ ठीक तरह नहीं पचते ठीक उसी तरह दाल भी देर में पचती है क्योंकि उसके पचने के लिए भी पाचक रस की आवश्यकता

रहती है। बादाम, पिस्ते, चिलगोजे, अखरोट और नारियल, काजू आदि फलों में प्रोटीन और तेल दोनों चीजें होती हैं। २ या ढाई वर्ष के बच्चे उन्हें पचा नहीं सकते। इनको छोटे बच्चों को नहीं खिलाना चाहिए।

आम यो तो अच्छी चीज है। परन्तु इसमें दोषों को निकालने का गुण हैं छोटे बच्चे इसे बहुत पसन्द करते हैं। परन्तु इसके अधिक खाने से फोड़े फुन्सी बहुत निकलते हैं और बच्चों का स्वास्थ्य खराब हो जाता है। यदि फोड़े बड़े हुए तो घातक सिद्ध होते हैं। हमारी राय में जहाँ तक संभव हो छोटे बचों को आम बहुत कम खाने देना चाहिए या बिलकुल ही न देना चाहिए।

सन्तरे, सेब, नासपाती, अमरूद आदि फल बचों को देना चाहिए।

खीरा, ककड़ी, गाजर, पालक आदि का रस निकाल कर २-४ चम्मच रोज दिन में दो तीन बार देना अच्छा होता है। इससे बचों को खनिज लवण और विटामिन मिलते रहते हैं।

गाजर और पालक ये दोनों ऐसी चीजें हैं जो दूध पचाने में बड़ी सहायता पहुंचाती हैं। दूध पीने वाले बचों को गाजर या पालक का रस २-३ चम्मच रोज देने से दूध का कैलशियम खूब पचता है, बच्चे तगड़े रहते हैं। सन्तरे का रस देने से भी दूध का कैलशियम खूब पचता है। दूध और संतरे का संयोग बड़ा अच्छा है इससे बच्चे तगड़े होते हैं उनकी रोग निवारक शक्ति बढ़ती है, कैलशियम की कमी पूरी होती है। हड्डियाँ मजबूत होती हैं और उनका वजन बढ़ने लगता है।

जो लोग पसन्द करें। बच्चों को थोड़ा थोड़ा अण्डा दे सकते हैं। मक्खन देना बचों को बहुत लाभदायक होता है।

पाँच वर्ष की अवस्था के बाद बच्चे को अन्न और शाक देना चाहिए। कन्द शाक देर में पचते है और कब्ज करते हैं इसलिये इनको अधिक न खिलाना चाहिए, कभी- पाँच वर्ष की अवस्था के बाद बच्चे को अन्न और शाक देना चाहिए। कन्द शाक देर में पचते हैं और कब्ज करते हैं इस लिये इनको अधिक न खिलाना चाहिए, कभी-कभी थोड़ा देना चाहिए। यह अवस्था बचों के बढ़ने की होती है इसमें प्रोटीन अधिक आवश्यकता पड़ती है, जितना प्रोटीन बच्चे पचा सकें उतना देना चाहिए इसके लिए दूध का प्रोटीन सर्वोत्तम समझा जाता है। बादाम और नारियल आदि फल कभी-कभी दिये जा सकते हैं वह भी जाड़े के दिनों में। गेहूँ, मकई, जौ आदि की रोटी देना अच्छा है। भात कम देना चाहिए। बच्चों को दिन भर में चार बार खाना देना चाहिए। ३ बार दूध और फल तथा एक बार हरी शाक-तरकारियां पकाई हुई रोटी। टमाटर आदि कच्ची खाई जाने वाली तरकारियाँ भी फलों के स्थान पर दी जा सकती हैं। प्रातःकाल, शाम को और रात को दूध और फल तथा दोपहर को रोटी और शाक देने से विशेष लाभ होगा। यही क्रम १२ वर्ष तक रखने से बचों की बढ़ोतरी खूब होती है। वे पुष्ट और स्वस्थ रहते हैं। उनका अंग-प्रत्यंग पूर्ण रूप से विकसित होता है, हड्डियाँ मजबूत बनतीं और चेहरे पर तेज आता है। इसके बाद साधारण मनुष्य की भाँति का भोजन दिया जा सकता है।

विटामिन का भूत !

डा० बी० बी० राय, एल० एम० पी

विटामिन-सिद्धान्त भोजन तथा स्वास्थ्य के लिए महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है—लेकिन मनुष्य के गिरे हुए स्वास्थ्य अथवा अस्वास्थ्य का कारण भोजन में विटामिनों का अभाव उतना नहीं होता जितना कि मनुष्य में पाचन-शक्ति का अभाव। यह पाचन-शक्ति बिगड़ती है तरह-तरह के खाद्याखाद्य, केक-बिस्कुट, चाय सिगरेट, शराब-कबाब के खाए-पिए बिना मनुष्य के न रह सकने की आदत से—और सच पूछिए तो इस तरह की आदत पश्चिमी-सभ्यता की ही देन है। इस दृष्टि से यह पश्चिमी सभ्यता अस्वास्थ्य का आगार ही है। और शायद तभी प्राकृतिक चिकित्सा का प्रादुर्भाव भी सबसे पहले पश्चिम के ही देशों में हुआ है।

इस लेख के लेखक स्वयं एक एलोपैथ चिकित्सक हैं। आहार तथा स्वास्थ्य सम्बन्धी इस तथ्य पर आपने इस लेख में बड़े मनोरंजक ढंग से प्रकाश डाला है। आपकी शैली विनोद-पूर्ण, मर्मस्पर्शी होने के साथ ही प्रभावोत्पादक भी है। पाठक इस सुन्दर लेख को एक बार अवश्य पढ़ें। —सं०

मैं आर्य हूँ, या अनार्य, हिन्दू हूँ या मुसलमान, ईसाई हूँ या पारसी, इससे कोई बहस नहीं। मैं हूँ और हूँ। यही सचाई है। मैं जो मशीन हूँ या मुझ में जो मशीन है वही संसार भर की मनुष्य जाति में है; और इससे यदि कल का मनुष्य सोचता विचारता या मनन करता था, तो वही सब कार्य मैं भी कर सकता हूँ। इसीलिये तो मैं इस तरह की दलीलों का कायल नहीं कि मनुष्य वानर-जाति का है, उसकी उत्पत्ति इतने हज़ार वर्ष पूर्व हुई थी, उसका आज विकास हुआ है—नहीं, विश्व अनादि है, विश्व की सभी चीजें अनादि हैं, सारी व्यवस्था अनादि है! फिर यह सब अगर दिमाग का फितूर नहीं तो क्या कहा जा सकता है कि मनुष्य कब पैदा हुआ था, उसकी उत्पत्ति से वानर-जाति से हुई हैं, आदि-आदि। हाँ, तो, मैं कहने यह जा रहा था कि मनुष्य आदि काल से चला आ रहा है और अनादि काल तक चलता रहेगा, इसीलिये उसका ज्ञान भी अपरिमित है।

जब पश्चिमी सभ्यता के रंग में रंग कर हम अपने जीवन की दिन-चर्य्या पर विचार करते हैं तब हंसी आ जाती है। आज के मनुष्य का जीवन उसकी इस दिन-चर्य्या के कारण इतना निठल्ला हो गया है कि उसे अपने बिगड़े शरीर के संबंध में यह भान ही नहीं होता है कि यही दिन-चर्य्या उसके गिरे स्वास्थ्य का कारण है। समाज में तरह-तरह के फ़ैशनेबल वाक्यों या शब्दों का प्रचार हो गया है, जिनसे मनुष्य को गर्व होता है। जैसे—"मैं तो लेट राइज़र हूँ" "मैं तो बेड टी लेता हूँ", "मुझे तो सुबह सिगरेट मिलना ही चाहिये"। मूर्ख मनुष्य, जो तू गर्व के साथ कहता है, यही तो तेरी मृत्यु है। तुझे कहना तो यह चाहिये कि 'मैं सूर्य-उदय के पहिले उठता हूँ; सुबह मैं कुछ नहीं खाता।' और यही तो है तेरे जीवित रहने का रहस्य!

तब फिर यदि इस तरह की गलतियाँ करता हुआ मनुष्य यदि स्वस्थ और दीर्घजीवी होना चाहे तो यह हँसी की बात नहीं तो क्या है? क्या कल का मनुष्य भोजन न करता था? करता था। क्या वह आज से कहीं अधिक बलवान न था? अवश्य था। तब आप क्या समझते हैं कि उसका भोजन जीवन-तत्वों से रहित था और आज का विटामिन-ज्ञान क्या हमारे जीवन में कोई अचम्भा पैदा हो गया है? क्यों हम इस विटामिनों के झमेले में पागल हो रहे हैं? इस 'कैलोरी वेल्यू आफ फूड' के फन्दे में जकड़े जा रहे हैं? निरर्थक है यह। आप विटामिनों से अपने पेट को भर लें, आप कैलोरी-माप से अपने भोजन को खूब तौल लें, परन्तु यदि आपके आमाशय में समीकरण-शक्ति का अभाव है, आप में भोजन पचाने की ताकत

नहीं है, यदि आपकी आँतों ने काम बन्द कर दिया है, तब निश्चिय जानिए यह एलोपैथी का स्वांग आपकी कोई मदद नहीं कर सकता। इतना ही नहीं, वह एक ओर तो आपको गलत रास्ते पर रखते हुए और दूसरी ओर तो चिकित्सा का आडंबर रचना कर आप को जल्दी ही दुनिया से चले जाने का वारंट कटा देगा! आप सोचे समझें मनन करें आपको मेरा कथन, मुझे विश्वास है, बिलकुल सत्य प्रतीत होगा।

आइये, मध्यप्रान्त के इन बियाबान जंगलों में आइये। जिला चांदा व बस्तर की रियासत से लेकर यह दक्षिण में गोदावरी के तट तक फैला है। यहाँ की जंगली जाति के लोगों के छरहरे बदन देख कर आप खुश होंगे। न तोंद का नाम, न चश्मे की जरूरत, बूढ़ों के दाँत पूरे व केश काले। इनका भोजन देखिये, कोदों, कुटकी, समा इत्यादि प्रकार का हलका अन्न। पानी में पकाकर ये पीते हैं। महुए व जंगली फलों के सिवा कभी कभी आखेट में पाया हुआ बिना मसाले का भूना हुआ माँस खाते हैं। फिर भी उनकी ताकत यह है कि उनकी स्त्रियाँ शेर मार लेती हैं और अगर कहीं दुर्भाग्य से पाला पड़ जाय तो मुझ सरीखे विटामिन-भोजी बाबू का उनके एक तमाचे से छठी का दूध आने लगे। यह सब क्यों? सिर्फ इसलिये कि उनकी याद पाचन-शक्ति चाय, पान, सिगरेट व मसालों से बिगड़ी नहीं है। वे जो कुछ भी खाते हैं, उसमें के पोषक-तत्वों को आसानी से पचा सकते हैं।

मनुष्य को आज का पाश्चात्य-विज्ञान मोटर की मशीन बना रही है; और इसे चलाने के लिये अपना ही 'मोबिल आयल' डालने की सलाह देती है। 'बिस्कुट खाओ' 'फोर्स खाओ' 'पोरिज खाओ' 'डिब्बे का दूध पिओ, 'बोतल का पानी पियो, अण्डे का चूर्ण चखो, 'डिब्बे की बदबूदार मछली खाओ', 'ताकत देने वाली शराब पियो' और हम भारतीय इसमें पागल हो रहे हैं। जब कि उसी पश्चिम के विचारशील लोग कहते हैं कि चोकर सहित गेहूँ की रोटी खाओ। दूध व शहद पियो, पनीर खाओ, मक्खन, फल, व हरी साग को ही अपना भोजन समझो।

आज के मनुष्य को अपने भोजन सम्बन्ध में बड़ा प्रेम हो गया है। उसे कदम कदम पर हर एक भोजन में विटामिन की कमी व 'कैलोरीज़' की न्यूनता प्रतीत होती है। माना कि विटामिन का सिद्धान्त ठीक है, किन्तु मनुष्य के अस्वस्थ होने का कारण विटामिन का इतना अभाव नहीं जितना कि उसकी पाचन-शक्ति की खराबी। प्रतिदिन की चाय, कहवा, शराब, तम्बाकू, पान, मांस व मिर्च मसालों ने और ऊपर से क्षण-क्षण पर औषधि खाने से उसका पाचन बिलकुल बिगड़ गया है, आमाशय का नाश हो गया है, आंतें बेकार हो गईं हैं। फिर रक्त बने तो कैसे बने?

हमारा पाचन ठीक हो तब जो कुछ भी रूखा-सूखा हम खायेंगे वह हज्म होगा, रक्त बनेगा, शरीर पुष्ट होगा। यह है भोजन द्वारा स्वस्थ होने का तरीका, न कि विटामिन ऊष्मा (कलैरीज) का ज्ञान।

धारावाहिक लेख—

तत्त्व-चिकित्सा का इतिहास

वर्तमान प्रगति

ले० श्री गंगाप्रसाद गौड़ 'नाहर'

[नवम्बर-दिसम्बर १९४५ अङ्क से आगे]

वर्तमान समय में प्राकृतिक चिकित्सा प्रणाली वा तत्त्व-चिकित्सा पद्धति ने पर्याप्त उन्नति की है, और साधारण जनता भी अब इसके गुणों और रहस्यों को समझने लगी है।

औषधियों से अब लोग प्रायः ऊब से गये हैं, और उनकी छलनामयी मारक प्रकृति से सभी वाक़िफ़ होते जा रहे हैं। प्राकृतिक-चिकित्सा को इस वर्तमान स्थिति में लाने का श्रेय उन महान अध्यवसायी आचार्यों को प्राप्त है जिन्होंने मान अपमान को सहन कर और सब प्रकार के क्लेशों और कठिनाइयों को झेलते हुए, इस विज्ञान का प्रचार संसार में किया है और करते जा रहे हैं।

डा० बेनेडिक्ट लुस्ट
(Dr. Benedict Lust

डा० एल्फ्रेड
डब्ल्यू मैक्कन्

डा० ऐण्ड्रयू ही
स्टिल

डा० डेनियल
डी० पामर
(Dr. Daniel
D. Palmer)

इन प्रचारकों में, आचार्य नीप के एक शिष्य डा० लुस्ट थे जो अमेरिका के एक अग्रगण्य प्राकृतिक शिक्षा-सम्बन्धी कालेज के प्रधान थे। इनका ५ सितम्बर १९४५ को स्वर्गवास हो गया। दूसरे डा० मैक्कन अमेरिका के सुप्रसिद्ध आहार शास्त्री हैं, जिनकी लिखी पुस्तक, "The Science of Eating" लोक प्रसिद्ध है तीसरे डा० स्टिल, आस्टियोपैथी के जन्मदाता, तथा चौथे डा० पामर Chiropractic के संस्थापक हैं। ये लोग आजकल प्राकृतिक चिकित्सा के प्रचारक में प्राणपण से लगे हुए हैं। डा० डी० डी० पामर का शायद अब देहान्त हो चुका है, उनकी जगह पर उनके सुपुत्र Col. B. J. palmer D. C. ph. C. अपने पिता द्वारा आविष्कृत विज्ञान की वृद्धि और प्रचार में प्राणपण से लगे हुए हैं।

डा० हैरी बेन
जामिन
Dr. Harry
Benjamin

इस डाक्टर की लिखी 'नेचर क्योर' पर कई उत्तम-उत्तम पुस्तकें, जनता का बड़ा लाभ कर रही हैं। इनकी तीन पुस्तकें—'Your diet in Health and Disease', 'Every body's Guide to Nature cure, तथा 'Better Sight Without Glasses', अधिक प्रसिद्ध और दृष्टव्य हैं।

स्टेनली लीफ़
Stanloy lief
N. d., d. o,
d. c.

वर्तमान समय के प्रमुख प्राकृतिक चिकित्सक, इंगलैण्ड से निकलने वाले 'health for All' पत्रिका के सम्पादक, तथा दो प्रसिद्ध पुस्तकें—'Diet Reform Simplified' और 'How to feed children fnom Infancy Onward', के लेखक, डा० लीफ़ आजकल स्वाभाविक-चिकित्सा पद्धति के सम्बन्ध में बहुत कुछ कर रहे हैं।

बरनर मैक
फ़ेडन
(Bernarr
Macfadden

आधुनिक काल के प्राकृतिक-चिकित्सा विशारदों से physical Culture पत्रिका के सम्पादक, तथा 'Book of Health' जैसी सर्वोपयोगी बहुत सी पुस्तकों के लेखक अमेरिकन डाक्टर बरनर मैकफ़ेडन अधिक प्रसिद्ध हैं। इन्होंने आजीवन संसार की समस्त व्यायाम-पद्धतियों का स्वयं अनुभव करके Father of physical culture की उपाधि प्राप्त की है। उपवास-चिकित्सा के, जो तत्व-चिकित्सा का एक अङ्ग है, आप बड़े ज़बर्दस्त समर्थक एवं प्रवर्त्तक हैं। डैन्सविलो (Dansvilli) न्यूयार्क अन्तर्गत

जगत प्रसिद्ध स्वास्थ्य-संस्था 'जैक्सन सेनिटोरियम' आजकल आपको संरक्षता में संचालित हो रही है।

सर विलियम अर्बथनाट लेन (Sir william Arbuthnot Lane

एलोपैथ होते हुए भी इस डाक्टर ने प्राकृतिक-चिकित्सा-प्रणाली का खूब प्रचार किया।

'Natures way' आदि प्राकृतिक-चिकित्सा सम्बन्धी कई पुस्तकों का लेखक था।

रेड्डी मालेट Reddie Mallett

यह जर्मन था किन्तु इसका प्रचार क्षेत्र अमेरिका था। अपनी चिकित्सा-प्रद्धति में यह फलाहार और उपवास पर बहुत जोर देता था। इसका कहना है कि केवल फलाहार ही वह खाद्य पदार्थ है, जिससे शरीर में विकार नहीं पैदा होता। स्वयं इसके सर के बाल गिर गये थे, लेकिन दो वर्ष के लगातार फलाहार और बीच-बीच के उपवास से इसने न केवल अपने सिर के बाल ही फिर से उगाये, अपितु अपनी काया कल्प भी साथ-साथ कर ली

प्रो० आर्नोल्ड एहरेट (Arnold Ehret)

इसकी बनायी दो पुस्तकें अधिक प्रसिद्ध हैं—पहिली, Rational Fasting और दूसरी, 'Mucusless Diet Healing System'

प्रो० डेयर (Prof Deyer)

वर्तमान समय में, प्रकृतिक-चिकित्सा सम्बन्धी ज्ञान, प्रत्येक भारतीय तक पहुंचाने में डा० डेयर बड़ा परिश्रम कर रहे हैं। इनकी बनाई हुई प्राकृतिक-चिकित्सा पर दर्जनों पुस्तकें, आज देश में लोगों का कल्याण कर रही हैं। उनमें से 'Miracles of Nature, 'Wonders of Water', तथा 'Live hundred years or more' इत्यादि अधिक प्रसिद्ध हैं।

डा० जे० एच० कैलॉग Dr. J. H. Kellog) एम० डी० एफ० आर० सी० एस०

अमेरिका का महान प्राकृतिक-चिकित्सक जल चिकित्सा, मालिश-क्रिया, धूप-चिकित्सा आदि अनेक विषयों पर अनगिनत पुस्तकों का लेखक; तथा मिचिगैन (Michigan) के संसार प्रसिद्ध बैटिल क्रीक-सैनिटोरियम के डाइरेक्टर, डा० केलॉग को आज संसार जानता और पहचानता है। इनकी लिखी पुस्तक 'The New dietetics' इनकी सर्वोत्तम कृति है।

डा० जे० एच० टिलडेन Dr J. H. Tiden)

अमेरिकन प्राकृतिक चिकित्सकों में डाक्टर टिलडेन अग्रगण्य हैं। आपके विचारनुसार उपचार की ठीक विधि यह है कि सर्व प्रथम उन कारणों को ही दूर कर दिया जाय जिनसे रोग उत्पन्न होते हैं, तत्पश्चात रोगी को यह शिक्षा दी जाय कि उसे स्वस्थ रहने के लिए, किस प्रकार का व्यतीत करना चाहिये। डा० टिलडेन, एक महान लेखक तथा जबरदस्त विचारक भी हैं। इनकी लिखी सबसे प्रसिद्ध पुस्तक 'Impaired health' है। प्राकृतिक आहार विज्ञान पर भी इन्होंने अच्छी पुस्तकें लिखी हैं।

डा० श्वेनिंगर Dr. Sehweninger

यह पहले एलौपैथिक डाक्टर थे, बाद को प्राकृतिक चिकित्सक बने। इन्होंने 'The Doctor' नामक एक सुविख्यात पुस्तक लिखकर, आजकल प्रचलित ज़हरीली तथा प्राण-घातक औषधियों द्वारा चिकित्सा-विधि की कड़ी आलोचना की है। यह जर्मनी के प्रिन्स विस्मार्क के 'फ़ेमली-डाक्टर' थे।

[सर्वाधिकार लेखक के आधीन]

आराम कीजिए

डा० शत्रुहन सिंह, संचालक, सेवा सदन, मुजफ्फरपुर

विश्राम की गणना सच पूछिए तो निष्क्रिय व्यायाम के अन्तर्गत होनी चाहिए, क्योंकि विश्राम व्यायाम का एक अनिवार्य पहलू है। कार्य निरत मशीन को भी विश्राम दिया जाता है। इंजन से यदि लगातार और लम्बे समय तक कार्य लिया जाय तो वह विनष्ट हो जाय। यही बात इस शरीर यंत्र के भी सम्बन्ध में सत्य है। इसी तथ्य का विद्वान लेखक ने इस लेख में बड़ी योग्यता पूर्वक निरूपण किया है।—सं०

इस तूफानी युग में मैं कह रहा हूँ आराम कीजिए। कामों का होड़ लगा है, मिनट-मिनट का मूल्य आँका जा रहा है, रात दिन बन रही है, दुनिया छोटी हो रही है, वर्ष महीना बन रहा है और महीना दिन, उस बीच में निवेदन करता हूँ कि आराम कीजिए। दुनिया सरपट दौड़ रही है और मुझे सूझा है आराम करना। मैं कहता हूँ मुझे ठीक सूझा है। हलचल के बीच मैं देखने लगा आराम के सिवाय कोई दूसरा उपाय नहीं है। इस घुड़दौड़ में दुनिया तबाह है। आराम अनिवार्य है। चारों ओर यही बात है।

मैं चिकित्सक हूँ, स्वास्थ्य सम्बन्धी बातें कहूँगा। लोग दवाएँ खाते हैं, सूई लेते हैं, झाड़-फूँक हो रहा है। सब व्यर्थ, आराम ही करना होगा। अन्यथा न तो हम स्वस्थ रहेंगे, न रोगों से छुट्टी मिलेगी। बिना विश्राम के प्राकृतिक-चिकित्सा के विविध उपचारों का क्या भरोसा? प्राकृतिक-चिकित्सा के उपचार आराम ही पहुँचाने के लिये किये जाते हैं।

लिखते हुये मुझे लगता है, कोई पूछ रहा हो, आप लोगों को आलसी बना रहे हैं क्या? जीवन का उद्देश्य कर्म करना है, इसे आप क्यों भुला रहे हैं? मैं कहता हूँ ऐसी बात नहीं है। काम करने के लिये उपदेश करने की जरूरत नहीं। मानव स्वभावतः कार्य शील है। एक स्वस्थ मनुष्य चुपचाप बैठ नहीं सकता। कुछ करेगा ही। काम उसके लिये खेल है, आनन्द का श्रोत है। यह एक दूसरा प्रश्न है कि वह अच्छा करता है या बुरा। अगर कोई काम से जी चुराता है, आलस्य करता है, तो निश्चय समझिये वह स्वस्थ नहीं है, किसी न किसी रूप में रोग ने धर दबाया है। विश्राम से मेरा मतलब है अतिश्रम से बचना। उचित मौकों पर ही शक्ति का व्यय करना, आपद काल के लिये शक्ति संचित रखना और बीमार होने पर बिलकुल कामों को बन्द रखना।

जब मैं परिश्रम की बात करता हूँ तो मेरा मतलब सांसारिक व्यापारों से ही नहीं होता। आराम से मेरा तात्पर्य है शरीर के प्रत्येक अंग के आराम से। शरीर अंगों की समष्टि है। समूचे शरीर के अतिश्रम से भी नुकसान होता है पर यदि किसी अंग विशेष को आराम न मिला तो समूचे शरीर के विश्राम से काम नहीं चल सकता। हमारे शरीर के प्रत्येक अंग के अलग अलग काम हैं। कुछ के कामों को तो हम प्रत्यक्ष रूप से देखते रहते हैं पर कुछ के काम दृश्य नहीं है, सीधे वश में भी नहीं है। अपने व्यवहारों से ही उनमें कमी या आधिक्य ला सकते हैं। जिन कामों को हम प्रत्यक्ष देखते समझते हैं उन्हें तो हम आसानी से संतुलित कर सकते हैं पर जिन अंगों के कामों को देखते नहीं उन्हें संतुलित करना या उन अंगों को आराम पहुँचाना आसान नहीं। बारीकी से समझना और चलना होगा। जब तक हम शरीर के प्रत्येक अंग से संतुलित रूप से काम लेते हैं तब तक हम स्वस्थ रहते हैं आनन्द का अनुभव करते हैं और जब किसी अंग विशेष या अंगों से अतिश्रम लेते हैं तो वे शिथिल पड़ जाते हैं और धीरे-धीरे हमारे आनन्द में कमी आने लगती हैं। सांसारिक व्यापारों में मन नहीं लगता। हम पौरुष खोने लगते हैं और एक दिन ऐसा आता है जब हम पूरे असमर्थ हो जाते

हैं। किसी काम के नहीं रह जाते। वाह्य अंगों का काम बन्द कर देने से ही हम आराम करना समझते हैं। पर वाह्य अंगों के काम बन्द कर देने पर भी जब चैन नहीं आती, आनन्द नहीं मिलता तब सोचना चाहिए इसके अन्दर कौन सा जादू है। असल बात तो यह है कि जब तक भीतरी अंगों को आराम नहीं मिलता हमें काम या आराम किसी में चैन नहीं आ सकती, आनन्द नहीं मिल सकता। भीतरी अंगों को उचित आराम मिलता है तो बाहरी अंगों के कामों में ही आनन्द आता है उनके बेकाम रहने में नहीं। यों तो बाहरी अंगों के अतिश्रम में भी यदि कष्ट है; उन्हें भी आराम मिलना ही चाहिए।

अगर कोई पेट और आंत से अतिश्रम लेता है, गरिष्ट या अधिक भोजन करता है तो अपच रोग हो जाता है। ऐसी हालत में उसे काम में आनन्द है न आराम में। गलत खान-पान से अशुद्ध रक्त बनता है एवं रक्त संचालन यंत्र को अधिक काम करना पड़ता है और इसी तरह मनुष्य आनन्दहीन हो जाता है। यही बात लीवर मूत्र यंत्र आदि सभी भीतरी अंगों के विषय में है। बाहरी अंगों की एवं ज्ञानेन्द्रियों की थकावट तो हम प्रत्यक्ष देखते हैं। एक अंग की थकावट का प्रभाव शरीर के प्रत्येक अंग पर पड़ता है। अतः शरीर को स्वस्थ रखने के लिये प्रत्येक अंग का विश्राम आवश्यक है। प्रत्येक अंग की शक्ति से कम ही काम लीजिए। बाकी शक्ति को विशेष आवश्यकता के लिये संचित रखिये। तभी जीवन संग्राम में विजयी हो सकते हैं। पूरी आयु भर जी सकते हैं। शक्ति, श्रोत विश्राम ही है। जो शक्ति हम कामों में खर्च कर लेते हैं वह पुनः आराम से प्राप्त हो जाती है। अगर आराम न कीजिए तो कितना भी पुष्टिकर खाद्य खाइये, बल नहीं मिलने को। बल्कि बल का ह्रास ही होता चला जाएगा। एक विचारक ने ठीक ही कहा है 'अगर भोजन से बल मिलता तो लोग रात में शयन-गृह न जाकर भोजन-गृह में ही जाते'। एक रात के जागरण से जो नुकसान होता है वह क्या आसानी से दूर किया जा सकता है? काम करते-करते थक गये हों थोड़ी देर तक आँखें बन्द कर लेट जाइए। चन्द मिनट के बाद उठकर देखियेगा आप में नया जीवन आ गया है, पूरे उत्साह से काम में लग जाइएगा। प्रत्येक अंग को उचित आराम पहुँचाने वाले शीघ्र थकते नहीं। कार्य-शक्ति बढ़ जाती है। बहुत देर तक काम में आनन्द लेते हैं।

अतिश्रम से बचना आराम है। काम के अतिरिक्त बोझ से छुट्टी पाना आराम है। विश्राम को बारीकी से समझना और उस उपलब्ध बनाना ही प्राकृतिक-चिकित्सा है। गांधी जी के शब्दों में प्राकृतिक-चिकित्सा जीवन-कला है। विश्राम का खयाल रखिये, अतिश्रम से बचिये, बीमार न होइएगा। अगर बीमार हो गये तो भी आराम ही का खयाल करना होगा। काम के अतिरिक्त बोझ से छुट्टी पाइए—अच्छे हो जाइएगा। विकार से शरीर भर गया है। अंग अवश हो रहे हैं, क्योंकि उन्हें अपने कामों में बाधा है। अतः अतिश्रम करना पड़ता है। तकलीफ मालूम होती है। उपवास कीजिए। रसाहार और फलाहार कीजिए। पेट को बहुत कम काम करना होगा। आराम मिलेगा। उसमें शक्ति आयेगी। पाचन सही होगा। शरीर को उचित रस मिलेगा। फलाहार से खून सतेज होगा। वह विकारों को ठेल निकालेगा और मिट्टी पानी विकारों को सोखेंगे या पिघलायेंगे जिससे वे बाहर निकलेंगे। खुला स्थान, शुद्ध वायु सभी विकारों को निकाल कर शरीर को विश्राम देने वाले ही हैं। थोड़ा बहुत टहलना या व्यायाम करना भी रोगी इसलिए बताया जाता है कि विकार दूर हो। अतः ये भी आराम देने वाले ही हैं। चिकित्सा-काल का पूर्ण विश्राम मनुष्य को रोग से छुटकारा दिलाता और साथ ही भविष्य के लिये नई शक्ति उत्पन्न करता है। नये रोगों में एक ओर तो प्रकृति विकार रूपी बोझ को निकालती है दूसरी ओर भोजन और सांसारिक कामों को बन्द कर बिछावन पर रोगी लेटता है। इस तरह उसे पूर्ण विश्राम मिलता है और रोगी शीघ्र चंगा होता है तथा नवीन स्फूर्ति लेकर उठता है। प्राकृतिक-चिकित्सा मे भी विश्राम का ख्याल न कर चिकित्सा क्रम गलत ढंग से चलाने पर रोगी स्वास्थ्य लाभ नहीं कर सकता।

विश्राम शक्ति का श्रोत है, आनन्ददायक है। इस पर जीवन निर्भर करता है। अतः आराम कीजिए।

उपवास

श्री गोपालकृष्ण मल्लिक

भोजन मनुष्य के लिए वरदान भी है और अभिशाप भी। जो भोजन रसना की परितृप्ति के लिए किया जाता है वह हमारे लिए अधिक आनन्ददयाक भले हा हो किन्तु वह अंततः अनिष्टकारी ही होता है अति भोजन का परिमार्जन हम अल्पाहार से कर सकते हैं। यदि हम इस नियम का पालन समुचित रीति से न कर सकें तो अच्छा होगा, कि उपवास के लिए कोई दिन निश्चित कर लें, और उस दिन पाचन-यंत्र को उपवास द्वारा आराम पहुँचायें—यह उचित सलाह आपको इस लेख में मिलेगी। —सं०

रोग निवारण के लिए उपवास करने की प्रथा उतनी ही पुरानी है जितनी की स्वतः मनुष्य जाति। बाइबिल, कुरान और हिन्दुओं के धर्म-ग्रन्थों में स्थान-स्थान पर, इसके अनेक हवाले मिलते हैं। कितनी ही बीमारियों के लिए उसमें उपवास और प्रार्थना करने का आदेश किया हुआ है। उपवास के जरिए रोग निवारण की चिकित्सा-कला आज अधिक विकसित हो रही है, किन्तु इसका उतना ही प्रचार नहीं हुआ है। मैं इन पृष्ठों में उपवास के जरिए रोग मुक्त होने का जिक्र करने का इरादा नहीं रखता, क्योंकि इस विषय में विगत कुछ काल से विस्तार से चर्चा होती रही है। अपितु मैं यहाँ उपवास के उन गुणों का विचार करना चाहता हूँ जो हमारे जीवन में नियमित और सामयिक रूप से मान्य होना चाहिए। प्रत्युत् महीने भर में, सप्ताह में एक दिन या दो दिन उपवास करके शरीर और पाचन-यन्त्र को पूर्ण विश्राम तथा अपने अंदर की पैदा हुई गड़बड़ी को ठीक करने के लिये होना चाहिए, इस विषय का थोड़ा प्रासंगिक विचार जाहिर किया चाहता हूँ।

क्षुधा हो चाहें नहीं पर अपने शरीर-बल को कायम रखने के लिए भोजन तो हमें करना ही चाहिए, यह विचार भ्रमोन्माद ही है। सालों साल जो अनेक व्यक्ति अपने समयके पहिले ही चल बसते हैं वे सब प्रायः भोजन सम्बन्धी हमारी इन आदतों—ठूँस ठूँस कर खाने—ही के कारण है। विवेक तो इसमें निश्चय ही बिलकुल नहीं। यह तो हमारी जिह्वा या स्वाद के गुलामी के ही कारण है।

फिर दावतों आदि में हम जितना खा जाते हैं साधारणतया वह हमारी आवश्यकता से कहीं ज्यादा होता है। सच पूछिए तो हमारी आवश्यकता तो उससे आधे में ही भली-भाँति पूर्ण हो सकती है। अतः यदि हम उतना ही खायें, साथ ही बीच-बीच में उपवास द्वारा पेट को शांति भी पहुँचाते रहें, तो हम अपनी इच्छानुसार तो खायेंगे ही, साथ ही भोजन भी लगेगा मजेदार।

ऐसे नियम से मांसपेशियों की सक्रियता और पुष्टि भी खूब होगी। क्योंकि भोजन के आनन्द के प्रभाव से उनके द्रव-पदार्थ पेट में पहुंच जाते हैं और वहाँ पहुँचते ही पाचन-क्रिया का आरम्भ हो जाता है। इसके विरुद्ध भूख न होने पर जो खाया जाता है वह अनिच्छा-पूर्वक पेट में पहुँचता है। वह हजम तो होता नहीं; बस वहाँ पड़ा रहता और सड़ कर गुड़गुड़ किया करता है। असल में इसी से फिर हम में अनेक भयंकर-बीमारियाँ पैदा हो जाती हैं।

पर विचित्रता तो यह है कि हर एक यही चाहता और करता है कि जितना भी खाया जा सके खाऊँ! यदि इसका उल्टा हो जाय—अर्थात् अपने स्वास्थ्य एवं बल को कायम रखने के लिए हम कम से कम खानें लगें, तो निश्चय ही इससे बड़ा लाभ होगा। सच तो यह है कि तमाम आधि-व्याधियों से बिलकुल बचा जा सकता है, जरूरत है सिर्फ यह जान लेने की कि कब और कैसे उपवास किया जाय? अपवाद इसमें भी मिलेंगे सही, पर बहुत कम।

अनेक धर्मोपदेशकों ने उपवास के लिए कुछ दिन नियत भी किये हैं। बहुत से धर्मोत्साहियों ने बिलकुल निराहार या दूध, फल अथवा ऐसे ही कठिन किसी अन्य नियम पर रह कर उनका पालन भी किया है। परन्तु बाद में जब 'शरीर-बल' को कायम रखने के अर्थ ठूँस-ठूँस कर

खाने, की धुन सवार हुई, तो उनकी इस धुन पर पानी फिर गया।

लेकिन शरीर को तो इसकी जरूरत है ही। उसे तो बीच-बीच में अनेक बार भोजन की छुट्टी या उपवास की आवश्यकता होती है—खास कर जब कि हमेशा हमें अपनी इच्छानुसार भोजन बिना किसी रुकावट के मिल जाता है। क्योंकि जो लोग भोजन के इस प्रकार आदी होते हैं, बीच-बीच में, उन्हें कोई न कोई रोग घेरे ही रहता है। यहां तक की धीरे-धीरे उनकी क्षुधा भी नष्ट हो जाती है, इच्छा होने पर भी वे खा नहीं सकते। उगल-उगल कर कुछ खा भी लेते हैं तो पेट हज़म नहीं कर पाता, किसी न किसी रूप में तुरन्त उसे बाहर निकाल देता है। तब अन्त में उन्हें उपवास करना ही पड़ता है। ऐसी दशामें अच्छा यही है कि उसी समय उपवास शुरू किया जाय, जब कि भूख न लगने की शिकायत का आरम्भ ही हो। ऐसा किया जाय तो फिर न तो उन्हें अन्त में उत्पन्न होनेवाली मजबूरी का सामना करना पड़े, और न रोग ही उन पर हमला कर सकेगा। अतः सलाह की बात यही है कि हमेशा जब कभी भूख में कमी मालूम दे अपनी खूराक कम कर दी जाय—भोजन बिलकुल बन्द कर दिया जाय तब तो कहना ही क्या!

सप्ताह में एक-दो दिन का उपवास करने की आदत ही डाल दी जाय, तब तो बड़ा अच्छा। रहा यह कि उपवास कैसे किया जाय? सो इसमें ध्यान रखने की बात यही है कि पानी खूब पीने में कोई कसर न हो। इसके लिए हर एक या दूसरे घंटे में अपनी प्यास को शांत करने के लिए धीरे-धीरे पर काफी पानी चूसकर पियें। दिन भर में चौथाई से एक गैलन पानी पिया जा सकता है। ऐसा न करने से बहुधा रक्त गाढ़ा पड़ जाता है और उसका अभिसरण भली भांति नहीं होता और उस दशा में रक्त-विकार के चिन्ह प्रकट होने लगते हैं।

'कुछ उपवास ऐसे भी हैं जिनके साथ कुछ खाया भी जा सकता है और इसलिए उनके करने में ज्यादा दिक्कत नहीं होती। जैसे बिलकुल भूखे न रहकर दिन भर में दो तीन नारंगियां अथवा उनका रस लेते हैं। ऐसे उपवास में यदि पेट की सफाई का लक्ष्य हो तो नारंगी के रस के साथ उसके छिलके में लगे हुये सफेद गूदे को खाना भी हितकर है। इसी प्रकार कुछ लोग दिन में तीन बार एक-एक ग्लास मट्ठा पीकर उपवास करते हैं। इससे भी पेट की सफाई अच्छी होती है; साथ ही इससे उपवास का बोझ भी हल्का हो जाता है। जिस प्याज को हम लोग घृणा की नजर से देखते हैं वह भी कुछ कम फायदेमन्द नहीं। शोधन-कार्य के लिए तो कची प्याज खासतौर पर उपयोगी है। इसमें बदबू तो जरूर है, लेकिन कृमि नाशक तत्व भी खूब है, खासकर कच्ची प्यास में। वैसे रंधी हुई प्याज भी अच्छी होती है।

संक्षेप में उपवास के मुख्य सिद्धान्त यही हैं कि जब कभी भूख में कमी मालूम दे तभी उपवास कर लें। अच्छा तो यह है कि इसके लिए सप्ताह में नहीं तो कम से कम महीने में तो जरूर एक दिन निश्चित कर लीजिए, और उस दिन अपनी आवश्यकता का विचार कर तदनुसार उपवास कर लिया करें। अगर हम अल्पाहारी हों तो निश्चय ही बिना किसी कष्ट के इस विधि का पालन कर सकते और बहुत दिनों तक अपने स्वास्थ्य को कायम रख सकते हैं।

दीर्घकाल तक स्वस्थ रहने के लिये सप्ताह में एक रोज अवश्य ही उपवास करें। समय का निश्चय अपने सुविधा से ही करें। और उपवास के रोज एनिमा लेकर अपने पेट की सफ़ाई भी करना जरूरी है। उपवास में एनिमा के प्रयोग से अधिक लाभ होता है। पेट की सफाई यानी पेट में इकट्ठे पुराने मल को निकालने में यह बहुत मदद करता है, जो पीछे जाकर शरीर में विजातीय द्रव्य फैलाने का काम करता है। ऐसा नहीं करने से हर साल कुछ दिनों के लिए बीमार रह कर इसका दंड भुगतना पड़ेगा।

जब कभी सुस्ती और आलस्य मालूम पड़े, रोजमर्रा का काम बोझ-सा मालूम पड़े, व उत्साह और लगन न मालूम दे, तभी समझ लें कि उपवास की जरूरत है। ऐसे समय में एक रोज भोजन न करने से पूर्वावस्था को प्राप्त कर सकते हैं। इसके विरुद्ध कहीं क्षुधा वृद्धि की दवा लेने जा पहुँचे तो अपना किस्मत आप बिगाड़ने की बात चरितार्थ होगी। सर्वोत्तम मार्ग तो यही है कि हम हमेशा भूख से कुछ कम भोजन करें, पेट में ठूंस-ठूंस कर नहीं। सदा अल्पाहार भी महा उपवास में आता है। इस नियम के के पालने वाले कभी बीमार नहीं पड़ते, औषधियाँ उनसे भय खाती हैं।

पुस्तक परिचय

आसन

लेखक—डा० बालेश्वर प्रसाद सिंह

हिन्दी के सुप्रसिद्ध लेखक, नाटककार तथा संगीतज्ञ पं० गणेश प्रसाद द्विवेदी एम. ए. ने गत ११ नवम्बर को आल इण्डिया रेडियो स्टेशन से इस पुस्तक का एक आलोचनात्मक परिचय ब्राडकास्ट किया था। उसी की प्रति-लिपि आल इण्डिया रेडियो के सौजन्य से हम यहाँ प्रस्तुत करते हैं। द्विवेदी जी ने इस पुस्तक का उल्लेख 'स्वास्थ्य और आसन' शीर्षक से किया है, किन्तु इस पुस्तक का शीर्षक सहूलियत के लिए केवल 'आसन' ही रक्खा गया है। इससे पाठक को कोई गलतफहमी न होनी चाहिए।

—सं०

'अब हमें सिर्फ एक किताब के बारे में दो दो बातें आपसे और करनी हैं। इसका नाम है—'स्वास्थ्य और आसन' और इसके बनाने वाले हैं डाक्टर बालेश्वर प्रसाद। इस किताब का मूल्य है ३॥) रु० और यह जीवन सखा कार्यालय से निकली है।

हमें अफसोस है कि हमारे देश के लोग अपनी तन्दुरुस्ती की तरफ से जितने लापरवाह हैं उतने शायद और किसी दूसरे देश के नहीं। यहां तन्दुरुस्ती और कसरत वगैरह के मसले पर अच्छी किताबें ही देखने में नहीं आती। जिन्हें जरूरत होती भी है उन्हें अंगरेजी वगैरह विदेशी भाषा में किताबें पढ़नी पड़ती हैं। पर जो लोग अंगरेज़ी नहीं जानते उनके लिए कोई चारा नहीं हैं। फिर लोगों का ऐसा ख्याल भी है कि जैसे अपनी बोली सीखने के लिए कोई किताब पढ़ने की जरूरत नहीं है उसी तरह तन्दुरुस्ती ठीक करने या रखने के लिए भी कोई साहित्य पढ़नी बेकार है। तन्दुरुस्ती गोया कोई ऐसी चीज है जो अपने आप अपनी हिफाजत कर लेगी। पर यही वजह है जिससे हमारे देश के लोगों की खास कर हमारे पढ़े लिखे लोगों की, सेहत इतनी खराब है।

योग, आसन, प्राणायाम वगैरह हमारे देश की पुराने योगियों की विद्या है। पर आज दिन हालत यह है कि इस विद्या को ठीक से जानने के लिए हमें अंगरेज़ी में लिखी हुई किताबों का सहारा लेना पड़ता है। और यह तय हो चुका है कि अमरीका और जर्मनी में बड़े से बड़े हेल्थ सेनोटोरियम, यानी तन्दुरुस्ती के अस्पताल बिगड़ी हुई तन्दुरुस्ती को सुधारने के लिए हैं। यह सही है आसनों की कसरत से वैसे उभड़े हुए सीने मोढ़े नहीं निकलते जैसे पहलवानों या जिमानास्टिक वगैरह करने वाले कसरतियों के। पर यह तय है कि ये उभड़े हुये सीने पुट्ठे कुछ दिन देखने दिखाने ही भर को होते हैं।

भारी भरकम कसरत करने वालों के दिल दिमाग पर ज्यादा जोर पड़ जाता है जो शुरू में तो नहीं मालूम होता पर आगे चलकर आदमी को निकम्मा कर देता है। और उसकी उम्र भी कम हो जाती है। [illegible] ऊंचाई, के आदमी के लिए जितना वजन चाहिये, न क[illegible] ज्यादा, वह उन्हीं योगिक आसनों से ही मुमकिन है।

अधेड़ उम्र में तो यही एक तरीका ही रह जाता है कसरत का मकसद है आदमी ज्यादा से ज्यादा दिन तक पूरी तन्दुरुस्ती के साथ जीता हुआ अपना सब काम बखूबी करता चले। वह इसी से हो सकता है यह मर्द, औरत सबके लिए है।

आज दिन मौजूदा सभ्य समाज या ज्यादातर दफ्तरों में बैठ कर काम करने वालों के लिये एक ऐसे सिस्टम या कसरत के तरीके की जरूरतें है जो कम से कम समय में कसरत का पूरा फ़ायदा दें और जिसमें नुकसान का कोई अंदेशा न हो। यह घर में की जाने वाली योगिक कसरतों से ही मुमाकिन है।

हिन्दी में यह पहली किताब है जो इस मसले पर ठीक

ढंग से लिखी गई है । इसके शुरू में (शरीर रचना) और भोजन के सिलसिले में जो दो बयान हैं यह खासतौर से ध्यान देने लायक हैं । हमें अपने शरीर के हर एक कल-पुर्जे का हाल एक हद तक जानना जरूरी है जिससे हम उसे ठीक रख सकें । फिर खाने, पीने और तन्दुरुस्ती से भी गहरा ताल्लुक है । हम कितना कसरत वगैरह क्यों न करें अगर खाने, पीने का ढंग ठीक नहीं है तो हम कभी तन्दुरुस्त नहीं रह सकते । क्या, कब, और कितना खाना हमारे लिए ठीक है यह इस किताब में समझा दिया गया है ।

फिर तन्दुरुस्ती ठीक रखने के सबसे ज्यादा मन ठीक और शान्त रखना एक सबसे बड़ी बात है और दुनियां में सबसे मुशकिल भी यही है । आदमी की छिपी हुई वह शक्तियां जिनसे बहुत ऊंचा जा सकता है, तभी मुमकिन है जब वह मन को बस में और ठीक रास्ते पर रख सके योग का सबसे बड़ा फायदा यही है और इसे हासिल करने का ढंग बताने की इस किताब में सही कोशिश की गई है । पर मन ठीक तभी होता है जब आसनों के जरिये शरीर पहले ठीक कर लिया जाय । दोनों एक दूसरे पर नहसिर है । खास खास सभी आसन तस्वीरें दे देकर तरह समझा दिये गये हैं कि कोई भी घर बैठे उन्हें सकत है । किस आसन से कौन से रोग दूर किये ते हैं यह भी इसमें बताया गया है । अंत में हमें ई कि इधर हाल में साहित्य की को ऐसी साके की ब नहीं निकली जिसकी चर्चा हम आज करते ।

शिशु-पालन

बच्चों का पालन-पोषण— लेखक श्री ब्रजमोहन मिहिर, प्रकाशक साहित्य-कुंज, पो० आ० ऐग्रीकलचरल इस्टीट्यूट, इलाहाबाद, मूल्य २।) रू०

श्री ब्रज मोहन मिहिर प्राकृतिक स्वास्थ्य-शास्त्र के एक अच्छे मर्मज्ञ हैं । आपके स्वास्थ्य विषयक लेख जीवन सखा में प्रायः निकलते रहते है । प्रस्तुत पुस्तक, जो आपकी नवीनतम कृति है, स्वास्थ्य प्रेमियों के लिये बड़े काम की चीज है । विशेषतः महिलाओं तथा भावी माताओं को तो इससे शिशु-पालन के सम्बन्ध में विशेष और प्रामाणिक जानकारी प्राप्त होगी ।

खेद के साथ यह कहना पड़ता है कि शिशु-पालन का विषय एक विकास शील राष्ट्र के लिए जितना ही महत्वपूर्ण स्थान रखता है उतना ही हमारे देश में उसके प्रति अबतक उदासीनता, अनिच्छा या निरुत्साह प्रकट किया गया है । यदि हम भारत में शिशुओं की होने वाली मृत्यु-संख्या का दूसरे देशों से तुलना करें तो जीवन की इस महत्वपूर्ण दिशा में हमारी दयनीय स्थिति पर क्षोभ हुए बिना न रहेगा । हमारे देश में तो हम विषय पर जितनी ही पुस्तकें लिखी जायं वह हमारे लिए अत्यन्त स्वागत विषय होगा ।

मिहिर जी ने इस पुस्तक को बड़ी लगन और परिश्रम से तैयार किया है जिसके फलस्वरूप आपकी यह कृति बहुत सफल और उपयोगी बन पड़ी है ।

इसमें मिहिर जी ने बच्चों का भोजन, स्वास्थ्य और आरोग्य सम्बन्धी महत्वपूर्ण बातों का विस्तृत उल्लेख करने के अलावा सगर्भा माताओं के लिए बहुत सी ज़रूररी बातें भी लिखी हैं जिनसे बहुत लाभ उठाया जा सकता है । इस तरह की पुस्तक की एक प्रति प्रत्येक घर में अवश्य रखनी चाहिए ।

—आनन्द कुमार

मासिक साहित्य

शिक्षा-सुधा—सम्पादक पं० रामनारायण मिश्र, विशारद, तथा श्री चन्द्रप्रकाश, मुद्रक ला० सागरमल गुप्ता बर्दश मण्डी धनौरा वार्षिक मूल्य २) एक प्रति का ।)

'शिक्षा-सुधा' छात्रोपयोगी मासिक-पत्रिका है । इसके लेख सुन्दर, ज्ञान-वर्धक, कविताएं ललित और कहानियाँ रोचक हैं । दिसम्बर १९४६ का अंक हमारे सामने हैं । इसकी प्रत्येक सामग्री सुरुचिपूर्ण और पठनीय है । यह पत्रिका पिछले १० वर्षों से प्रकाशित हो रही है । हम इसकी अधिकाधिक उन्नति एवं लोक-प्रियता की हार्दिक कामना करते हैं ।

अपने विचार

असली बनाम नकली

अभी हाल ही में मेडिकल रिसर्च (डाक्टरी अनुसन्धान) कौंसिल के औद्योगिक स्वास्थ्य अनुसंधान बोर्ड की प्रेरणा से हुए वैज्ञानिक प्रयोगों से स्वास्थ्य-जिज्ञासुओं में आमतौर से फैली हुई इस धारणा का खण्डन हो गया है कि बाजारों में बिकने वाले अथवा अनेक शफाखानों में व्यवहृत किये जाने वाले अल्ट्रावायलेट (पराकासनी) लैम्प से जो नकली सूर्य-प्रकाश उत्पन्न किया जाता और जिनको विभिन्न रोगों के उपचार में प्रयोग में लाया जाता है उसमें न तो 'विटामिन' ही विद्यमान है और न स्वास्थ्यकारक अथवा पौष्टिक गुण ही। इस निष्कर्ष की यथार्थता में उन लैम्पों के के आविष्कारकों तथा उनसे हमदर्दी रखने वाले व्यक्तियों को भले ही संदेह हो लेकिन एक प्रकृति के पुजारी प्राकृतिक-चिकित्सक के लिए यह एक सर्वथा असंदिग्ध बात है। उसे इस तथ्य की यथार्थता में कोई सन्देह नहीं हो सकता। वह कृत्रिम प्रकाश के धोखे में नहीं आ सकता। वह तो यही चाहेगा कि कृत्रिम साधनों का प्रयोग करना बन्द करके लोग ऐसे साधनों का प्रयोग करें जो 'सत्यं शिवं सुन्दरं' के प्रतीक हैं।

किन्तु मनुष्य नूतनता का प्रेमी है। वह नित्य नयी-नयी बातें देखना, सुनना और करना चाहता है; और सच पूछिए तो नित्य नयी-नयी सूझ ने ही तो आधुनिक सभ्य-समाज के रहन-सहन, आहार-विहार के साथ-साथ रोगोंपचार के मूल्य या कीमत को इतना बढ़ा दिया है कि वह गरीब लोगों की पहुंच के बाहर की बात बन गयी है? अगर यह बात न होती तो आज का मनुष्य जीवन के सुख, स्वास्थ्य और आनन्द के लिए सही और सुगम प्रकृति-मार्ग को छोड़कर, आंखों में चकाचौंध भरने वाले भड़कीले कृत्रिम मार्ग को क्यों अपनाता, वह टिकियों, टिन में बन्द करके बाहर से आने वाले खादों तथा रंग-बिरंगी शीशियों और बोतलों में भरी दवाइयों को स्वास्थ्य की कुंजी क्यों समझ बैठता? प्राकृतिक जीवन, प्राकृतिक रहन-सहन, रोगोन्मुक्ति के प्राकृतिक साधन कम खर्चीले-बिलकुल सस्ते साधन हैं। और उसका यह सस्तापन ही उसकी झूठी शान के खिलाफ पड़ता है। उसकी राय में सस्ती दवा का गुण भी 'सस्ता' होता है। उससे भला बीमारी कैसे दूर हो सकती है? लेकिन हमारी राय में उनका यह ख्याल भी उनके मानसिक अस्वास्थ्य, दिमाग की बीमारी ही है। उनकी यह मानसिक बीमारी, हम आशा करते हैं, इस नवीनतम प्रयोग से बहुत कुछ दूर हो जाने में सहायता मिलेगी।

इस प्रयोग के लिए रोगियों को तीन श्रेणियों में विभाजित कर दिया गया। पहली श्रेणी के रोगियों के उपचार १।४ 'मर्करी आर्क लैम्प' से, जो बाजारों और औद्योगिक चिकित्सा गृह में आमतौर से देखने को मिलता है, किया गया दूसरी श्रेणी के रोगियों के उपचार के लिए इसी तरह के लैम्प को प्रयोग में लाया गया, किन्तु अन्तर सिर्फ इतना था कि उस लैम्प के मुखपर साधारण शीशे लगादिए गए थे जिनसे होकर कृत्रिम प्रकाश की किरण रोगी पर पड़ती थी। तीसरी श्रेणी के रोगियों का वस्तुतः कोई उपचार नहीं किया गया। उन प्रयोगों की जो रिपोर्ट तैयार की गयी है जिसको इन प्रयोगों के निरीक्षक डाक्टरों ने प्रामा[illegible] स्वीकार किया है, उनसे प्रकट हुआ है कि जिन रोगि[illegible] 'उपचार' किया गया उन्हें वस्तुतः कोई फायदा [illegible] हुआ इसके विपरीत उन रोगियों की अवस्था में अधिक सुधार पाया गया जिनका कोई 'उपचार' नहीं किया गया था।

स्पष्ट है जो गुण धूप में, सूर्य की असली रोशनी में मौजूद हैं वे कृत्रिम साधनों द्वारा कदापि उत्पन्न नहीं किए जा सकते। यदि हम कृत्रिम साधनों में उन गुणों को उत्पन्न करने या हम कृत्रिम साधनों के द्वारा धूप के उन वास्तविक गुणों का लाभ उठाना चाहते हैं, तो उसमें हमें असफलता ही प्राप्त होगी, हमें निराश ही होना पड़ेगा। आधुनिक सभ्य और शिक्षित समाज इस तथ्य को समझे, उसे स्वीकार करे, कृत्रिमता की निस्तारता की ओर से मुँह मोड़कर प्रकृति के सरल, सुगम और प्रशस्त मार्ग को अपनाये यही हमारी हार्दिक आशा है।

028769

...कांगड़ी विश्वविद्यालय

पढ़िये ! लाभ उठाइये !!

सुन्दर, स्वस्थ और सुखी जीवन के इच्छुकों को

ये पुस्तकें पढ़नी चाहिए

(१)	शक्ति-दर्शन—श्री शंकरलाल तिवारी	१)
(२)	बच्चों की रक्षा—लुई कूने	॥=)
(३)	मैं निरोग हूँ या रोगी ?—लुई कूने	॥=)
(४)	स्वास्थ्य के नुस्खे—'जीवन सखा' कार्यालय	।)
(५)	क्या और कैसे खायं—डा० बालेश्वर प्रसाद सिंह	।=)
(६)	ब्रह्मचर्य ही जीवन है—स्वामी शिवानन्द	१॥)
(७)	आनन्दमय जीवन—श्री शंकरलाल तिवारी	॥)
(८)	कब्ज या कोष्ठबद्धता : डा० बालेश्वरप्रसाद सिंह	१)
(९)	प्राकृतिक चिकित्सक—श्री रामनारायण दुबे	७।)
(१०)	फलाहार—श्री नारायणप्रसाद अरोड़ा	१)
(११)	आसन—डा० बालेश्वर प्रसाद सिंह	३॥)
(१२)	प्राकृतिक चिकित्सा—श्री रामनारायण वर्मा	३)
(१३)	हम सौ वर्ष कैसे जीवें : श्री केदारनाथ गुप्त, एम० ए०	१॥।)
(१४)	आरोग्य-साधन—महात्मा गाँधी	॥।)
(१५)	स्वास्थ्य साधन—श्री रामदास गौड़	३॥)
(१६)	दवाओं से बचो—श्री गंगाप्रसाद गौड़, 'नाहर'	१)
(१७)	उपवास चिकित्सा—श्री रामचन्द्र वर्मा	२)
(१८)	मूत्राशय और पित्त की पथरी एवं शूल की प्राकृतिक चिकित्सा—डा० रमाचरण	।-)
(१९)	आहार ही औषध है—डा० लक्ष्मी नारायण रतरा	१।)
(२०)	Your diet in health & disease by Harry Benjamin ..	1-4-0
(२१)	Food-de-Medicine by Dr, L. N. Ratra, H. M. B. ..	1-2-0
(२२)	Bettersight without glasses by Harry Benjamin ...	3-12-0
(२३)	Practical Nature cure Dr. K. Lakshman Sharma.	8-8-0
(२४)	Constipation and Dyspepsia	1-8-0
(२५)	Gems of health by Dr. Jatashankar Nandi ..	2-0-0
(२६)	Drugless healing by L. Kameshawar Sharma ..	1-0-0
(२७)	New science of healing by louis kuhne ...	9-0-0

स्वास्थ्य सम्बन्धी पुस्तकें मिलने का पताः—

मैनेजर, स्वास्थ्य ग्रंथ-भंडार २८७, बादशाहीमंडी, चौक, प्रयाग ।

|प्रश्नोत्तर| कूपन दिसम्बर १९४६।

Reg. No. A-172

Jiwan-S

प्राकृतिक चिकित्सा और बापू

विश्ववंद्य पूज्य महात्मा गांधी जी की राय में प्राकृतिक चिकित्सा रोग मिटाने के इलाजों का तरीक
जीवन की एक पद्धति है, जिसमें रोग या बीमारी के लिए कोई गुंजाइश ही नहीं रहता।

वास्तव में प्राकृतिक चिकित्सा हमको जीने की
(Art of living) सिखाती है। अन्य प्रणालि
अपेक्षा यह प्रकृति से कहीं अधिक सम्बन्धित है।
ईश्वर से सीधा संपर्क है। प्रकृति चिकित्सा मुख्यतया
तिक साधनों पर ही निर्भर करती है अतएव इसमें दे
सभी गुण निहित हैं

अस्तु, यदि आप बापू की भाँति अपने स्वास्थ
एवं व्यक्तित्व को ईश्वर के चरणों में समर्पि
चाहते हैं तो जीवन सखा मासिक मंगाकर

जीवन सखा का उद्देश्य जनसाधारण के श
मानसिक एवं नैतिक स्वास्थ्य का पथ प्रदर्शन क
प्राकृतिक चिकित्सा का घर घर सन्देश पहुँचाना है।

व्यवस्थापक

जीवन सखा कार्यालय,
२८७ बादशाही मंडी इला

Printed and Published by Syt. Baleshwar prasad Sinha. 287, Badshahi M
Chowk, ALLAHABAD.

Compiled
1999-2000